ॐ

सच्चिदानन्दाय नमः ।

योगवासिष्ठ भाषा ।

भाग २ रा.

जिसमें

६ ठा निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्धोत्तरार्द्ध है ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रित कर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१ शके १८४६.

॥ श्रीः ॥

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानेकी परमोपयोगी स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें।

यह विषय आज २५।३० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि,इस छापाखानाकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दरप्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं। सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे-वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, साम्प्रदायिक, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दीभाषाके प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहतेहैं। शुद्धता, स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्द की बँधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुतही सस्तेरक्खे गये हैं और कमीशन भी पृथक् काट दिया जाता है। ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभवहै। संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें त्रुटि न करनाचाहिये. (ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है)॥ भेजकर 'सूचीपत्र' मँगा देखो ॥

योगवासिष्ठ-

निर्वाणप्रकरणकी अनुक्रमणिका ६.

पूर्वार्द्ध ।

योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका।

उत्तरार्धकी अनुक्रमणिका।

इति योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका समाप्त ॥

परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

षष्ठं निर्वाणप्रकरणं प्रारभ्यते ।

(पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः १.

दिवसरात्रिव्यापारवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच—हे भारद्वाज ! उपशमप्रकरणके अनंतर तू निर्वाण प्रकरण सुन, जिसके जाननेकारि तू निर्वाणपदको प्राप्त होवैगा, बडे उत्तम वचन मुनिनायकने रामजी प्रति कहे हैं, सो रामजी कैसे हैं, जो मुनीश्वरने वाक्यार्थ कहा है, तिसविषे सब ओरते मनको खैंचिकरि जिसने स्थापित किया है अरु और भी जो राजालोक हैं, सो सब निस्पंद हो रहे हैं, मानो कागजके ऊपर मूर्तियां लिख छोडी हैं, ऐसे होकरि वसिष्ठजीके वचनोंको विचारते हैं अरु जेते राजकुमार हैं, सो विचारते हैं अरु कंठोंको हिलाते हैं, शिर अरु भुजाको फेरते हैं अरु विस्मयको प्राप्त हुए हैं, तिसकरि प्रसन्नताको प्राप्त हुए हैं, यह जगत् सत्य जानकर विचरते थे सो है ही नहीं, ऐसे आश्चर्यविषे आश्चर्यको प्राप्त हुए हैं, तब दिनका चतुर्थ भाग अन्त रहा अरु सूर्य अस्त हुआ मानो वसिष्ठजीके वचन सुनिकरि इसको फल लगा है, सब तेज क्षीण हो गया है अरु शीतलता आनि प्राप्त भयी है अरु स्वर्गते जो सिद्ध देवता आये थे, तिनके गलेविषे मंदार आदिक वृक्षोंके फूल थे, पवनके चलनेकरि सब स्थान सुगंधित होत भये अरु भ्रमर फूलोंपर गुंजारव शब्द करें हैं अरु झरोखोंके मार्गसों सूर्यकी किरणें आवैं हैं, तिनकरि कमलफूल सूर्यमुखी राजा अरु देवताओंके शीश ऊपर थे, सो सूखके

जलने लगे, जैसे मनसों जगत्की सत्ता निवृत्त होवै अरु वृत्ति संकुचती जाती है, तैसे सूखते जाते हैं अरु बालक जो सभाविषे बैठे थे अरु पिंजरोंविषे पक्षी खेलनेको बैठे थे, तिनके भोजनका समय हुआ बालकोंके भोजननिमित्त माता उठी अरु चौथे प्रहर राजाकी नौबत, नगारे, भेरी, शहनाई बाजने लगीं, वसिष्ठजी जो बडे ऊंचे स्वरसे कथा करते थे, तिनका शब्द नगारे वाजित्रोंकरि आच्छादि गया, जैसे वर्षा कालका मेघ गर्जता है अरु मोर तूष्णीं हो जाते हैं, तैसे वसिष्ठजी तूष्णीं हो गये. ऐसा शब्द हुआ जिसकरि आकाश पृथ्वी सब दिशा भर रहीं, पिंजरेविषे पक्षी भड भड शब्द करने लगे, पंखोंको पसारकरि जैसे भूकम्प हुएते लोक कम्पते शब्द करते हैं, तैसे पक्षी भडकने लगे, बालक थे सो माताकी त्वचासे मिल गये, बडा शब्द हुआ, तिसके अनन्तर मुनिशार्दूल वसिष्ठजी सबके मध्यविषे बोले. हे निष्पाप रघुनाथ! मैं तेरे चित्तरूपी पक्षीके फँसावने निमित्त अपने वाक्रूपी जाल पसारी है, तिसते अपने चित्तको वश करिके आत्मपदविषे जोड. हे रामजी! यह जो मैं तुझको उपदेश किया है, तिसका जो सार है, तिसविषे दुर्बुद्धिको त्यागिकरि चित्तको लगाव, जैसे हंस जलको त्यागिकरि दूधको पान करता है, तैसे सब उपदेश आदिते लेकरि अन्तपर्यंत वारंवार विचारकरि सारको अंगीकार कर; इस प्रकार संसारसमुद्रते पार उतरिकरि परमपदको प्राप्त होवैगा अन्यथा न होवैगा. हे रामजी! जब इन वचनोंको अंगीकार करैगा, तब संसारसमुद्रको तर जावैगा. अरु जो अंगीकार न करैगा, तो नीचगतिको प्राप्त होवैगा, जैसे विंध्याचलपर्वतकी खातविषे हस्ती गिरा कष्ट पाता है, तैसे संसारविषे कष्ट पावैगा. हे रामजी! ये जो मेरे वचन हैं, इनको ग्रहण न करैगा तो अधःको गिरैगा, जैसे पंथी हाथविषे दीपक त्यागिकरि रात्रिके विषे टोहेपर गिरता है, तैसे गिरैगा अरु जो असंग होकरि व्यवहारविषे विचरैगा तौ आत्म सिद्धताको प्राप्त होवैगा, यह जो मैं तुझको तत्त्वज्ञान मनोनाश अरु वासनाक्षय कहे हैं, यह अभ्यासकरि सिद्धताको प्राप्त होवैगा, यह शास्त्रका सिद्धांत है. हे सभा! हे महाराजो! राम लक्ष्मण भूपति! जो कछु मैंने तुमको कहा है तिसको तुम विचारौ अरु और जो कछु कहना है, सो प्रातःकाल

कहौंगा. वाल्मीकिरुवाच–हे साधो ! इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा, तब सब सभा उठ खड़ी हुई अरु वसिष्ठके वचनोंको पाइकारि सब खिल आये, जैसे सूर्यको पाइकारि कमल खिल आते हैं, तैसे सब खिलि आये अरु वसिष्ठ विश्वामित्र दोनों इकट्ठे उठे, वसिष्ठजी विश्वामित्रको अपने आश्रमको ले गये अरु आकाशचारी जो देवता अरु सिद्ध थे, सो वसिष्ठजीको नमस्कार करिकै अपने अपने स्थानोंको गये, राजा दशरथ अर्घ्य पाद्यकारि वसिष्ठजीको पूजत भये, पूजाकारि अपने अंतःपुर-विषे गये और श्रोता भी आज्ञा लेकारि वसिष्ठजीको पूजते भये, पूजाकारि अपने अन्तःपुरविषे गये और श्रोता भी आज्ञा लेकारि अपने अपने स्थानोंको गये राजकुमार अपने मंडलको गये, मुनीश्वर वनको गये; राम लक्ष्मण शत्रुघ्न वसिष्ठजीके आश्रमको गये, पूजा करिकै बहुरि अपने गृहमें आये, तब श्रोता अपने अपने स्थानको जाइकारि स्नान संध्यादिक कर्म करते भये, बहुरि पितृदेवताको पूजते भये, बहुरि ब्राह्मणते लेकारि भृत्यपर्यंत सबको भोजन कराइकारि अपने मित्र भाइयोंके साथ भोजन किया, बहुरि यथाशक्ति अपने वर्णाश्रमके धर्मको साधते भये, तब सूर्य भगवान् अस्त हुए, दिनकी क्रिया निवृत्त हो गयी, रात्री आनि प्राप्त भयी निशाचर आय विचरने लगे, तब भूचर अरु राजर्षि ब्रह्मर्षि राजपुत्र जेते कछु श्रोते थे सो रात्रिको एकांत बैठकारि अपनी शय्या बिछाइकारि विचारते भये, राजकुमार राजा अपने स्थानोंपर बैठे, ब्राह्मण तपस्वी सो कुशादिक बिछाइकारि विचारते भये, कि संसारके तरणेका उपाय क्या कहे हैं, वसिष्ठजीने वचन कहे हैं, तिनविषे भले प्रकार चित्तको एकाग्र करते भये, एक प्रहर भले प्रकार विचारकारि निद्राको प्राप्त भये, जैसे सूर्य उदय हुए पद्मिनियां मूँदि जाती हैं, तैसे सुषुप्तिको प्राप्त भये अरु राम लक्ष्मण शत्रुघ्न तीन प्रहर वसिष्ठजीके उपदेशको विचारते रहे, अर्ध प्रहर सोये, बहुरि उठे, इस प्रकार सब विचार पूर्वक रात्रिको चितायुक्त भये प्रातःकाल होनेपर आया, सूर्यके प्रकाशकारि चंद्रमाकी कांति जाती रही चंद्रमुखी कमल मूँद गये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे दिवसरात्रि-व्यापारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

विश्रामदृढीकरणवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच–हे साधो ! इस प्रकार रात्रि व्यतीत भयी, तमका पटल निवृत्त हुआ, तब राम लक्ष्मण शत्रुघ्न उठिकारि स्नान करते भये; संध्यादिक कर्म किये, बहुरि वसिष्ठजीके आश्रमको गये, तहां जाय स्थित भये, बहुरि वसिष्ठजी संध्यादिक करिकै अग्निहोत्र करने लगे, जब करि चुके तब रामादिक वसिष्ठजीको अर्घ्य पाद्यकरि पूजत भये, चरणोंपर भले प्रकार मस्तक रक्खा, जब रामजी गये थे, तब वसिष्ठजीके द्वारेपर मौन था, एक घडीविषे कई अनेक सहस्र जीव आनि प्राप्त भये, राजकुमार ब्राह्मण, मुनीश्वर, हस्ती, घोडा, रथ बहुत सेना आय प्राप्त भयी, तब वसिष्ठजी रामादिकको साथ लेकरि राजा दशरथके गृहविषे आये, तब राजा दशरथ तिनके लेनेको आगे आया अरु वसिष्ठजीका आदरसे पूजन करत भया और लोकोंने भी बहुत पूजन किया, इस प्रकार सभाविषे आय प्राप्त हुए, तब नभचर अरु भूचर जेते कछु श्रोता थे, सो सब आय प्राप्त हुए, सभाविषे आइकारि नमस्कार करिके बैठ गये, जेते कछु सभाके लोक थे सो निस्पंद एकाग्र होइकारि स्थित भये, जैसे निस्पंद वायुकारि कमलोंकी पंक्ति अचल होती है, तैसे स्थित भये, भाटजन जो स्तुति करनेवाले थे, सो एक ओर स्थित भये, तब सूर्यकी किरणें झरोखेके मार्ग आय प्राप्त भयीं, मानो किरणें भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करने आई हैं, तब वसिष्ठजीकी ओर रामजी देखते भये, जैसे स्वामिकार्तिक शंकरकी ओर देखैं, जैसे कच बृहस्पतिकी ओर देखैं, जैसे प्रह्लाद शुक्रकी ओर देखैं, तैसे वसिष्ठजीकी ओर रामजी देखते भये, जैसे भ्रमर भ्रमता भ्रमता आकाशमार्गते कमलपर आय बैठता है, तैसे रामजीकी दृष्टि औरको देखते देखते वसिष्ठजीपर आय स्थित भयी अरु वसिष्ठजी रामजीकी ओर देखत भये देखिकारि बोलत भये. वसिष्ठ उवाच–हे रघुनंदन ! मैं जो तुमको उपदेश किया है, सो तुम कछु स्मरण किया ? जो यह वचन कहे हैं, कैसे कहे हैं ? जो परमार्थ बोधका कारण

आनन्दरूप महागंभीर कहे हैं, अब और भी बोधका कारण अरु अज्ञानरूप शत्रुके नाश करता इंदुप्रमाण वचन हैं, तिनको सुन, आत्मसिद्धांत निरंतर शास्त्र तुझको कहता हौं. हे रामजी! वैराग्य, दृढ अभ्यास अरु तत्त्वका विचार, इन करिकै संसारसमुद्रको तरता है, सम्यक् तत्त्वके बोधकरि दुर्बोध निवृत्त हो जाता है, तब वासनाका आवेश नष्ट हो जाता है अरु निर्दुःखपदको प्राप्त हो जाता है. कैसा पद है, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, सोई ब्रह्म जगतरूप होइकरि स्थित भया है अरु भ्रमकरिकै द्वैतकी नाईं भासता है, जो सब भाव करिकै अविच्छिन्न है, सर्वत्र ब्रह्म है, इस प्रकार यतस्वरूप जानिकरि शांतिमान् होहु. हे रामजी! केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, न कछु चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीव है यह सब कलना ब्रह्मविषे भ्रमकरिकै पडी फुरती है, जो स्पंद फुरणा दृश्य है अरु चित्त है, सो कलनारूप संभ्रम है, ब्रह्मते इतर पदार्थ कोऊ नहीं. हेरामजी! स्वर्ग पाताल भूमिविषे सदाशिवते आदि अरु तृणपर्यंत जो कछु दृश्य है, सो सब परब्रह्म है, चिद्रूपते अन्य कछु नहीं, उदासीन अरु मित्र बांधव आदिते लेकरि सब ब्रह्म है, जबलग अज्ञानकलनाकरि जगत्विषे स्थितबुद्धि है अरु ब्रह्मभाव नानात्व है, तबलग चित्तादि कलना होती है अरु जबलग देहविषे अहंभाव है अरु अनात्मदृश्यविषे ममत्व है, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है, जबलग संतजन अरु सच्छास्त्रोंकरि ऊंचे पदको नहीं प्राप्त भया अरु मूर्खता क्षीण नहीं भयी, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है. हे रामजी! जबलग देहाभिमान शिथिलताको नहीं प्राप्त भया अरु संसारकी भावना नहीं मिटी अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै स्थित नहीं पाई, जबलग चित्तादिक प्रकट हैं जबलग अज्ञानकरिकै अन्ध है, जबलग विषयोंकी आशाके आवेशकरि मूर्छित है, जबलग मोहमूर्छाते उठा नहीं, तबलग चित्तादिक कलना होती है. हे रामजी! जबलग आशारूपी विषकी गंध हृदयरूपी वनविषे होती है, तबलग विचाररूपी चकोर तहां नहीं प्राप्त होता, भोगवासना नहीं मिटती है, जब भोगोंकी आशा मिट जावै अरु सत्य शीतलता, संतुष्टता हृदयविषे आय प्राप्त होवै, तब चित्त-

रूपी भ्रम निवृत्त हो जाता है, जब मोह अरु तृष्णा निवृत्त करिये अरु नित्य संवित् होवै, तब चित्त शांत भूमिकाको प्राप्त होता है. हे रामजी ! जिस पुरुषकी स्थिति स्वरूपविषे भयी है, सो आपको देहते दूर देखता है, तिस सम्यक्दर्शीके चित्तकी भूमिका कही है, जब अनन्त चैतन्य तत्त्वकी भावना होती है अरु दृश्यको त्यागिकरि आत्मरूपविषे प्राप्त होता है तब वह पुरुष सब जगत्को अपना अंग ही देखता है. अर्थ यह कि, अपना सब स्वरूप देखता है, ऐसे जो आत्मरूप देखता है, तिसको जीवत्वादिक भ्रम कहा है, जब अज्ञानभ्रम निवृत्त होता है, तब परम अद्वैत-पद उदय होता है जैसे रात्रिके क्षीण हुए सूर्य उदय होता है, तैसे मोहके निवृत्त हुए आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जैसे सूखा पत्र अग्निविषे दग्ध हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त नष्टहो जाता है. हे रामजी ! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष है अरु परावरदर्शी है, सर्वत्र ब्रह्म जिसको दृष्टि आया है तिसका चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है सो चित्त सत्य कहाता है अरु तिसविषे वासना भी दृष्टि नहीं आती है, सो चेतन मन है, वह चित्त सत्यपदको प्राप्त भया है यह जगत् ज्ञानवान्को लीलामात्र भासता है अरु अन्तरते शांतरूप है, नित्यतृप्त है, सर्वदा उसको आत्मज्योति भासती है, विवेककरिकै उसके चित्तसों जगत्की सत्ता निवृत्त हो गयी है अरु स्वरूपविषे स्थिति पायी है सो चित्तसत्ता कहाती, है बहुरि वह कर्म चेष्टा करता दृष्टि भी आता है अरु मोहको नहीं प्राप्त होता, जैसे भूना, बीज उगता नहीं, तैसे ज्ञानीको चेष्टा जन्मका कारण नहीं अरु जो अज्ञानी है, तिसकी वासना मोहसंयुक्त है, जैसे कच्चा बीज उगता है, तैसे अज्ञानी वासना करिकै बहुरि बहुरि जन्म लेता है अरु जिस चित्तसों आसक्ति निवृत्त भयी है, सो तिसकी वासना जन्मका कारण नहीं वह चित्तसत्ता कहाती है. हे रामजी ! जिन पुरुषोंने पानेयोग्य पद पाया है अरु ज्ञानाग्निकरिकै चित्तको दग्ध किया है, बहुरि जन्म नहीं लेता, जेता कछु जगत् है, सो तिसको सब ब्रह्मरूप है, जैसे वृक्ष अरु तरु नाममात्र हैं, वस्तु एक ही है, तैसे ब्रह्म अरु जगत नाममात्र दो हैं, वस्तुते एक ही है, जैसे

जलविषे तरंग अरु बुद्बुदे जलरूप हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, चेतन आत्मारूपी मिर्च है अरु जगतरूपी तीक्ष्णता है. हे रामजी! ऐसा ब्रह्म तू है अरु जो तू कहै मैं चित्त नहीं, तौ कछु माना जाता है, क्यों, जो तू कहै, मैं जड़ हौं, तौ तू आकाशवत् हुआ, तेरेविषे कलनाका उल्लेख कैसे होवै अरु जो चेतन है सो शोक किसका करता है अरु जो चिन्मय है, तौ निरायास आदि अंतते रहित हुआ, सब तू ही है, अपने स्वरूपको स्मरण करौ, तब शांतिको प्राप्त होवोगे जो सब भावविषे स्थित है अरु सबको उदय करनेहारा है, सो तूही है, शांतरूप है, तू चैतन्य ब्रह्मरूप है. हे रामजी! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है, तिसके उदरविषे वासनारूपी फुरणा कहां होवै? वह तौ महाघनरूप है. हे रामजी! जो तू है, सो सोई है, उस अरु तेरेविषे भेद कछु नहीं सोई सत् अरु असतरूप होकरि भासता है, सब पदार्थ जिसके अंतर हैं अरु नानात्व जिसविषे कछु नहीं, अहं त्वम् अज्ञ तज्ज्ञ जिसविषे कलना कछु नहीं, ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है, तिसको नमस्कार है. हे रामजी! तेरी जय होवै, कैसा है, तू आदि अरु अन्तते रहित विशाल है अरु शिलाके अंतर्वत् चिद्घनस्वरूप है, आकाशवत् निर्मल है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, तैसे तेरेविषे जगत् है, सो लीलामात्र है, तू अपने घनस्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्राम-
दृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

ब्रह्मैक्यप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे निष्पाप रामजी! जिस चेतनरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग फुरते हैं अरु लीन हो जाते हैं, ऐसा अनंत आत्मा है सो तू भवकी भावनाते मुक्त है अरु भाव अभावते रहित है, ऐसा जो चिदात्मा तेरा स्वरूप है, सो सर्व जगत् वहीरूप है, तब वासनादिक

आवरण कहां है, जीव अरु वासना सब आत्माका किंचन है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, तब अपर कथा प्रसंग कैसे होवे ? हे रामजी ! महासलिल गम्भीर प्रकाशरूप जो चैतन्य समुद्र है, सो तेरा रूप है अरु रामरूपी एक तरंग फुरि आया है, सो समुद्र तू है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सोई जगत्रूपी होकरि व्यापारी भासता है, जैसे अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं अरु जैसे फूलते सुगन्धी भिन्न नहीं, जैसे कज्जलते कृष्णता भिन्न नहीं, अरु बर्फते शुक्लता भिन्न नहीं, जैसे गुडते मधुरता भिन्न नहीं अरु जैसे सूर्यते प्रकाश भिन्न नहीं, तैसे ब्रह्मते अनुभव भिन्न नहीं नित्यरूप है, अनुभवते अहं भिन्न नहीं, अहंते जीव भिन्न नहीं, जीवते मन भिन्न नहीं, मनते इंद्रियां भिन्न नहीं, इंद्रियोंते देह भिन्न नहीं अरु देहते जगत् भिन्न नहीं, इस प्रकार महाचक्र प्रवृत्तिकी नाईं हुआ है, सो कछु प्रवृत्त नहीं न शीघ्र प्रवर्ता है, न चिरकाल प्रवर्ता है, न कोऊ ऊन है न अधिक है, सर्व एक अखंड सत्ता परमात्मतत्त्व है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, वही सत्ता वज्रभूत होकरि स्थित है, वही पूर्ण होकरि स्थित है, इतर द्वैतकल्पना कछु नहीं ऐसे अपने स्वरूपविषे जोपुरुप स्थित है, सो जीवन्मुक्त है, ऐसा जो ज्ञानवान् है, सो मन इंद्रियां शरीरकी चेष्टा भी कर्त्ता है अरु उसको कर्तव्यका लेप कछु नहीं लगता. हे रामजी ! ज्ञानवान्को न कछु त्यागने योग्य रहता है, न ग्रहण करने योग्य रहता है, सर्व पदार्थते निर्लेप रहता है, जबलग इसकी ग्रहणत्यागकी बुद्धि होती है, तबलग संसारके सुखदुःखका भागी होता है, इस हेयोपादेयका जिसको अभाव है, सो सुखदुःखका भागी नहीं होता. हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्यत् कछु नहीं, जैसे घट मठकी उपाधि करि आकाश नाना प्रकार भासता है, जैसे समुद्र तरंगकारि अनेकरूप भासता है अरु नानात्वभावको प्राप्त नहीं होता, तैसे आत्माविषे नाना प्रकारका जगत् भासता है अरु नानात्वको नहीं प्राप्त होता, ऐसे स्वरूपको जानिकारि तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी ! अन्तर प्रकाशकी नाईं निर्मल स्थित

होहु अरु बाह्यते अपने वर्णाश्रमका व्यवहार करौ, काष्ठ पत्थरकी नाईं अंतर हर्षशोकते रहित स्थित होहु, संवित्‌मात्र आत्माको जो अपनारूप देखता है सोई सम्यक्‌दर्शी है, तिसका अज्ञान अरु मोह नष्ट हो जाता है, जैसे नदीका वेग मूलसहित तटके वृक्षको काटता है, तैसे आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञानको काटता है, मित्रता वैर हर्ष शोक राग द्वेष आदिक जो विकार हैं, सो चित्तविषे रहते हैं, सो चित्त उसका नष्ट हो जाता है. हे रामजी! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आता है अरु सोता कदाचित् नहीं, जिसका अनात्मविषे अहंभाव निवृत्त भया है अरु बुद्धि जिसकी लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष इस लोकको मारै तौ भी उसने कोई नहीं मारा अरु न वह बंधायमान होता है. हे रामजी! जो वस्तु होवै नहीं अरु भासे, तिसको मायामात्र जानिये उसको जानेते नष्ट हो जावैगी, जैसे तेलविना दीपक शांत हो जाता है, तैसे ज्ञानकरि वासना क्षय हो जाती है, चित्त अचित्त हो जाता है, जिसको सुखदुःखविषे ग्रहण त्याग नहीं सो जीवन्मुक्त आत्मस्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

चित्तभावाभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, इंद्रियादिक जो दृश्य है, सो सब अचिंत्य चिन्मात्र है, जीव भी अभिन्नरूप है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणविषे भेद कछु नहीं, तैसे चिन्मात्र अरु जीवादिक अभिन्न हैं, जबलग चित्त अज्ञानमें होता है, तबलग जगत्‌का कारण होता है, जब अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब चित्तादिकका अभाव हो जाता है, अध्यात्मविद्या जो वेदांतशास्त्र है, तिसके अभ्यासकरि नष्ट हो जाता है, जैसे अग्निके तेजकरि शीतका अभाव हो जाता है, तैसे अध्यात्मविद्याके अभ्यास विचारते अज्ञान नष्ट हो जाता है जबलग अज्ञानका कारण तृष्णा उपशमको प्राप्त नहीं भयीं, तबलग अज्ञान है, जब

तृष्णा नाश होवै तब जानिये कि अज्ञानका अभाव भया है. हे रामजी ! तृष्णारूपी विषूचिका रोग है, तिसके नाश करनेका मंत्र अध्यात्मशास्त्र है, तिसके अभ्यासकरि तृष्णा क्षीण हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्टहो जाती है, तैसे आत्मअभ्यासकरि चित्त शांत हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे विचारकरि मूर्खता नष्ट हो जाती है, जब चित्त अचित्तताको प्राप्त होता है, तब वासनाक्रम क्षीण हो जाता है, जैसे तागेसाथ मोती परोये होते हैं, तागेके टूटते मोती भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे अज्ञानके नष्ट हुए मन आदिक सब नष्ट हो जाते हैं अरु जो पुरुष अध्यात्मशास्त्रके अर्थको नहीं धारते अरु प्रीति नहीं करते; सो पापी कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होवैंगे. हे कमलनयन ! तेरेविषे जो कछु मूर्खता चंचलता थी सो नष्ट हो गयी है, जैसे पवनके ठहरते जल अचल होता है, तैसे तू स्थिरताको प्राप्त भया है, भावअभावरहित परम आकाशवत् निर्मलपदको प्राप्त भया है. हे रामजी ! ऐसे मैं मानता हौं, कि मेरे वचनोंकरि तू बोधको प्राप्त हुआ है अरु विस्तृत अज्ञानरूपी निद्राते जागा है, सामान्य जीव भी हमारी वाणीकरि जाग पड़ते हैं, तू तौ अति उदारबुद्धि है, तेरे जागनेविषे क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! जब गुरु दृढ़ होता है अरु शिष्य शुद्ध पात्र होता है, तब गुरुके वचन उसके अंतर प्रवेश करते हैं, सो मैं गुरु भी समर्थ हौं जो मुझको अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है अरु सच्छास्त्रके अनुसार मैं वचन कहे हैं अरु तेरा हृदय भी शुद्ध है, तिसविषे प्रवेशकरि गये हैं, जैसे तप्त पृथ्वीके क्षेत्रविषे जल प्रवेशकरि जाता है, तैसे तेरेविषे वचनोंने प्रवेश किया है. हे राघव ! हम महानुभाव रघुवंश कुलके बड़े गुरुके गुरु हैं, हमारे वचन तुमको धारणे आते हैं अरु खेदते रहित होकरि अपने प्रकृत आचारको करौ. वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार मुनीश्वरने जब कहा तब सूर्य अस्त होने लगा, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै अपने स्थानको गयी, रात्रिके व्यतीत हुए सूर्यकी किरणोंसाथ बहुरि आय बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चित्तभावाभाववर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

राघवविश्रांतिवर्णनम् ।

राम उवाच-हे मुनीश्वर ! मैं परम स्वस्थताको प्राप्त भया हौं, अब अपने आपविषे स्थित हौं अरु तुम्हारे वचनोंकी भावनाकरि जगत्-जाल स्थित भी मुझको शांत हो गयी है अरु आत्मानंदकरि तृप्त भया हौं. जैसे बडी वर्षाकरि पृथ्वी तृप्त होती है, तैसे मैं तृप्त सम शीतल भया हौं अरु प्रसन्नताको पाइकरि स्थित हौं अरु सर्व ओरते केवल आत्मारूप मुझको भासता है, नानात्वका अभाव भया है, जैसे कुहिडते रहित दिशा अरु आकाश निर्मल भासता है, तैसे सम्यक्ज्ञान-करि मुझको शुद्ध आत्मा भासता है अरु मोह निवृत्त हो गया है, मोह-रूपी जंगलविषे तृष्णारूपी मृग था अरु रागद्वेष आदिक धूर कुहिड़ थी, सो सब निवृत्त हो गयी हैं, ज्ञानरूपी वर्षाकरि सब शांत हो गये हैं, अब मैं आत्मानंदको प्राप्त भया हौं, जो आदिअंतते रहित है अरु अमृत है, अमृतका स्वाद भी तिसके आगे तुच्छ भासता है, ऐसे अपने आनंद स्वभावको प्राप्त भया हौं, मैं राम हौं. अर्थ यह कि, सबविषे रमणेहारा हौं, मेरा मुझको नमस्कार है, अब मैं सर्व संदेहते रहित हौं, सब संशय अरु विकार मेरे नष्ट भये हैं, जैसे प्रातःकालकरि निशाचर वैताल आदिक निवृत्त हो जाते हैं, तैसे मेरे रागद्वेषादिक विकारका अभाव भया है, निर्मल विस्तीर्ण हिमकी नाईं हृदयकमलविषे स्थित हौं, जैसे भँवरा फिरता फिरता कमलविषे आय स्थित होता है, तैसे मैं आत्म-रूपी सारविषे स्थित हौं; अविद्यारूपी कलंक आत्माको कहां था, मैं तौ निश्चयकरि निर्मलताको प्राप्त भया हौं, जैसे सूर्यके उदय हुए तमका अभाव हो जाता है, तैसे मेरे संशय अरु अविद्या नाश भयी है, सर्व आत्मा भासता है अरु कलना कोई नहीं, भावित आकार अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, पूर्व प्रकृतिको देखिकै हँसता हौं, कि क्या जानता था अरु क्या करता था, मैं तौ नित्य शुद्ध ज्योंका त्यों आदिअंतते रहित हौं. हे मुनीश्वर ! तेरे वचनरूपी अमृतके समु

द्रविषे मैं स्नान किया है, तिसकरि अजर अमर आनंदपदको प्राप्त भया हौं अरु सूर्यते भी ऊंचे पदको प्राप्त भया हौं अरु वीतशोक होकरि परमशुद्धता समता शीतलता अनुभव अद्वैतको प्राप्त भया हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे राघव-
विश्रांतिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

अज्ञानमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे महाबाहो ! बहुरि भी मेरे परम वचन सुन, तेरे हितकी कामना करिकै मैं कहता हौं, अब आत्मपदको तू प्राप्त भया है, परंतु बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि सुन, जिसके श्रवणकरि अल्प-बुद्धि भी आनंदपदको प्राप्त होवै. हे रामजी ! जिसको अनात्मविषे आत्माभिमान है अरु आत्मज्ञान नहीं, तिसको इंद्रियांरूपी शत्रु दुःख देते हैं, जैसे निर्बल पुरुषको चोर दुःख देते हैं, तैसे अज्ञानीको इंद्रियां दुःख देती हैं अरु जिसको आत्मपदविषे स्थिति भयी है, तिसको इंद्रियां दुःख नहीं देतीं, जैसे दृढ राजाके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, तैसे ज्ञान-वान्‌के इंद्रियगण मित्र होते हैं अरु जिस पुरुषको देहविषे स्थित बुद्धि है अरु इंद्रियोंके विषयकी सेवना करते हैं, तिसको बड़े दुःख प्राप्त होते हैं. हे रामजी ! आत्मा अरु शरीरका सम्बन्ध कछु नहीं, यह परस्पर विलक्षण स्वभाव है, जैसे तम अरु प्रकाश विलक्षण स्वभाव हैं, तैसे आत्मा अरु देहका परस्पर विलक्षण स्वभाव है, आत्मा सर्व विकारते रहित नित्य मुक्त है अरु उदय अस्तते रहित सबसों निर्लेप है, सदा ज्योंका त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत्‌रूप है, तिसका संबन्ध किससे होवै, देह जड़ अरु असत्य अज्ञानरूप तुच्छ विनाशी अकृतज्ञ है, तिसका संयोग किस भांति होवै, आत्मा चैतन्य ज्ञान सत् प्रकाशरूप है, तिसका देहसाथ कैसे संयोग होवै, अज्ञान करिकै देह अरु आत्माका संयोग भासता है, सम्यक्‌ज्ञानकरिकै संयोगका अभाव भासता है. हे रामजी ! यह

में निपुण वचन कहे हैं, तिनका वारंवार अभ्यास करेते संसारमोहका अभाव हो जावैगा, जब संसारका कारण मोह निवृत्त हुआ, तब बहुरि सद्भाव न होवैगा, जबलग अज्ञानरूपी निद्राते दृढ़ होकारि नहीं जागता, तबलग बहुरि आवरण हो जाता है, जैसे निद्राके जागेते बहुरि निद्रा घेरि लेती है, जब दृढ़कारि जागै तब बहुरि नहीं घेरती, तैसे दृढ़ अभ्यासकारि अज्ञान निवृत्त हुआ बहुरि आवरण न होवैगा, ताते मोहदुःख निवृत्तिके अर्थ दृढ़ अभ्यास करहु. हे रामजी! आत्मा देहके गुणको अंगीकार नहीं करता, जब देहके गुण अंगीकार करै, तब आत्मा भी जड़ हो जावै, सो तौ सदा ज्ञानरूप है अरु जो देह आत्माका गुण परमार्थते अंगीकार करै, तौ देह भी चेतन हो जावै, सो तौ जडरूप है, इसको अपना ज्ञान कछु नहीं, जब ज्योंका त्यों इसका ज्ञान होवै, तब शरीर तुच्छ जड़ भासै. हे रामजी! देह अरु आत्माका संयोग संबंध कछु नहीं अरु समवाय संबंध भी नहीं, बहुरि इससे मिलिकारि वृथा दुःखोंको ग्रहण करना, इसते अपर मूर्खता क्या है, यही मूर्खता है, जब कछु भी इसका समान लक्षण होवै; तब संबंध भी होवै, जिनका समान लक्षण कछु न होवै, तिनका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतन है, देह जड़ है, आत्मा सत्‌रूप है, देह असत्‌रूप है, आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है, आत्मा निराकार है, देह साकार है, आत्मा सूक्ष्म है, देह स्थूल है, बहुरि आत्मा अरु देहका संबंध कैसे होवै, जब संयोग नहीं, तब दुःख किसका होवै; जैसे सूक्ष्म अरु स्थूलका संयोग नहीं होता, जैसे दिन अरु रात्रिका संयोग नहीं होता, जैसे ज्ञान अरु अज्ञानका संयोग नहीं होता, जैसे धूप अरु छायाका मिलाप नहीं होता, जैसे सत् अरु असत्‌का संयोग नहीं होता, तैसे आत्मा अरु देहका संयोग नहीं होता, अज्ञानकारिकै तत्त्वरूप मिले हुए भासते हैं, परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे वायु अरु आकाशका संयोग नहीं होता, तैसे इनका संयोग नहीं होता, देहके सुखदुःखकारि आत्माको सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रम है, जरा मरण सुख दुःख भाव अभाव आत्माविषे रंचकमात्र भी नहीं, जब देहविषे अभिमान होता है, तब ऊंच नीच जन्मको पाता है, वास्तवते

कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे विकार कोई नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे होता है अरु जलके हलनेकरि प्रतिबिंब चलता भासता है, तैसे देहके सुखदुःखकरि आत्माविषे सुखदुःख विकार मूर्ख देखते हैं, आत्मा सदा निर्लेप है अरु जब सम्यक् यथाभूत आत्मज्ञान होवै, तब देहविषे स्थित भी भ्रमको न प्राप्त होवै. हे रामजी ! जब यथाभूत ज्ञान होता है, तब सत्को सत् जानता है अरु असत्को असत् जानता है, जैसे दीपक हाथविषे होता है, तब सत् असत् पदार्थ भासते हैं, तैसे ज्ञानकरि सत् असत् यथार्थ जानता है अरु अज्ञानकरि मोहविषे भ्रमता है, जैसे वायुकरि पत्र भ्रमता है; तैसे मोहरूपी वायुकरि अज्ञानी जीव भ्रमता है, स्वस्थ कदाचित् नहीं होता, जैसे यंत्रकी पूतली तागेकरिकै चेष्टा करती है, तैसे अज्ञानी जीव प्राणोंरूपी तागेकरि चेष्टा करते हैं, जैसे नटुआ अनेक स्वांगको धारता है, तैसे कर्मकरि जीव अनेक शरीरको धारता है. जैसे पेषणकी पुतली तृण काष्ठ फूलादिकको लेती त्यागती है अरु नृत्य करती है, तैसे यह प्राणी चेष्टा करते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंधका ग्रहण करते हैं, जैसे पुतलियां जड़ हैं, तैसे यह जड है अरु जो कहिये इनविषे प्राण है, तौ जैसे लुहारकी खाल होती है, वह श्वासको लेती त्यागती है, तैसे यह जीव भी चेष्टा करते हैं. हे रामजी ! अपना वास्तव स्वरूप है सो ब्रह्म है, तिसके प्रमादकरिकै मोह कृपणताको प्राप्त होते हैं. जैसे लुहारकी खाल वृथा श्वासको लेती है, तैसे इनकी चेष्टा व्यर्थ है, इनकी चेष्टा अरु बोलना अनर्थके निमित्त है, जैसे धनुषते जो बाण निकसता है, सो हिंसाके निमित्त है, और कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा अरु बोलना अनर्थ दुःखके निमित्त है, सुखके निमित्त नहीं, तिसकी संगति भी कल्याणके निमित्त नहीं, जैसा जंगलका ठूंठा वृक्ष होता है, तिसके छाया अरु फलकी इच्छा करनी व्यर्थ है, तिसते कछु फल नहीं प्राप्त होता अरु विश्रामके निमित्त छाया भी नहीं प्राप्त होती, तैसे अज्ञानी जीवकी संगतिते सुख नहीं प्राप्त होता, तिनको देना भी व्यर्थ है, जैसे कीचडविषे घृत डाला

व्यर्थ होता है, तैसे मूर्खको दान दिया व्यर्थ होता है अरु तिनके साथ बोलना भी व्यर्थ है, जैसे यज्ञविषे श्वानको बुलाना निष्फल है, तैसे उनके साथ बोलना निष्फल है. हे रामजी ! जो अज्ञानी जीव हैं, सो संसारविषे आते जाते जन्मते मरते हैं, शरीरविषे आस्था करते हैं अरु पुत्र दारा बांधव धनादिकविषे ममत्वबुद्धि करते हैं, इस मिथ्या दृष्टिकरिकै दुःख पाते हैं, मुक्ति कदाचित् नहीं होती, काहेते कि, अनात्माविषे आत्मबुद्धिको त्याग नहीं करते अरु ममताबुद्धिविषे दृढ रहते हैं, इसीते मुक्ति नहीं होती. हे रामजी ! जो अज्ञानी हैं, सो असत् पदार्थको देखते हैं अरु वस्तुरूपकी ओरते अंध हैं, इसकरि परमार्थ धनते विमुख रहते हैं, नरकका सार जो स्त्रियादिक हैं, तिनविषे प्रीति करते हैं अरु तिनको देखिकरि प्रसन्न होते हैं, जो नरकका साधन हैं. जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होता है, तैसे स्त्रियादिकनको देखिकरि मूर्ख प्रसन्न होते हैं. हे रामजी ! मूर्खके मारनेनिमित्त विषकी तिनके वल्ली है अरु नेत्ररूप तिसके फूल हैं, होठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी तिनके गुच्छे हैं अरु अज्ञानरूपी भँवरे तहां विराजमान होते हैं अरु नाशको पाते हैं अरु मतिरूपी तलाव है अरु हर्षरूपी तिसविषे कमल हैं, चित्तरूपी भँवरा तहां सदा रहता है अरु अज्ञानरूपी नदी है, दुःखरूपी तिसविषे लहरी हैं अरु तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं, ऐसी जो नदी है, सो मरणरूपी वड़वाग्निविषे जाय पड़ैगी. हे रामजी ! जब जन्म लेता है, तब महागर्भ अग्निते जलता हुआ निकसता है, सो महामूर्ख अवस्था निरस कर दुःखी होता है अरु जब यौवन अवस्थाको प्राप्त होता है; तब विषयको सेवता है, सो भी दुःखका कारण होते हैं, बहुरि वृद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है, तब शरीर अशक्त होता है अरु अंतरते तृष्णा पडी जलावती है, इस प्रकार जन्ममरण अवस्थाविषे पडे भटकते हैं. हे रामजी ! संसाररूपी कूप है, तिसविषे मोहरूपी घटमाला है अरु तृष्णा वासनारूपी रसडीसे बाँधे हुए जीवरूपी टीड भ्रमते हैं अरु ज्ञानवान्को संसार कोऊ दुःख नहीं देता, गोपदकी नाईं तुच्छ हो जाता है अरु अज्ञानीको समुद्रवत् तरना कठिन होता है, अपने अंतर ही भ्रमको देखता है, निकसि नहीं सकता, थोडा

भी उसको बहुत हो जाता है, जैसे पक्षीको पिंजराविषे बड़ा मार्ग होता है अरु जैसे कोल्हूके बैलको घरहीविषे बडा मार्ग होता है, तैसे अज्ञानीको तुच्छ संसार बडा हो भासता है. हे रामजी ! जिस जगत्को रमणीय जानिकरि पदार्थकी इच्छा करता है, सो सब पांचभौतिक पदार्थ हैं, मोहकरिकै तिनको सुन्दर जानता है अरु तिनविषे प्रीति करता है, स्थिर जानता है, सो अनर्थके निमित्त होते हैं. हे रामजी ! अज्ञानरूपी चंद्रमा उदय हुआ है, तिसकरि भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं, जन्मकी परंपरा रसको पावते अरु कर्मरूपी जलकरि सिंचते हैं, पुण्य अरु पापरूपी मञ्जरी होती है अरु अज्ञानरूपी चन्द्रमा है अरु वासनारूपी अमृत है, आशारूपी चकोर तिसको देखिकरि प्रसन्न होता है अरु आशारूपी कमलिनी है, अज्ञानरूपी भँवरा तिसपर बैठिकरि प्रसन्न होता है, ताते सब जगत् अज्ञानकरिकै रमणीय भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणेपूर्वार्द्धेअज्ञानमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

अज्ञानमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जगत् अज्ञानकरिकै स्थित है, तिस अज्ञानका प्रवाह सुन, अज्ञानरूपी चंद्रमा पूर्णहोकरि स्थित होता है, तब कामनारूपी क्षीरसमुद्र उछलता है अरु अनेक तरंगको पसारता है, तिसके रसकरि तृष्णारूपी मञ्जरी पुष्ट होती है अरु काम क्रोध लोभ मोहरूपी चकोर तिसको देखि प्रसन्न होते हैं अरु देह अभिमानरूपी रात्रिके निवृत्त हुए अरु विवेकरूपी सूर्यके उदय हुए अज्ञानरूपी चंद्रमाका प्रकाश निवृत्त हो जाता है. हे रामजी ! अज्ञानकरिकै यह जीव भ्रमते हैं अरु चेष्टा इनकी विपर्यय हो गयी है, जो तुच्छ नीच दुःखरूप पदार्थ हैं, तिनको देखिकरि सुखदायक रमणीय जानते हैं, स्त्रीको देखि प्रसन्न होते हैं, कवीश्वर कहते हैं, इसके कपोल कमलवत् हैं अरु नेत्र भँवरेवत् हैं, होठ हँसनेवाले हैं अरु वल्लीकी नाईं इसकी भुजा हैं अरु कञ्चनके कमलवत

स्तन हैं, उदर अरु वक्षस्थल बहुत सुंदर हैं अरु जंघास्थल केलेके स्तंभवत् इत्यादिक, जिसकी स्तुति करते हैं सो स्त्री रक्तमांसकी पूतली है, कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमांस हैं, भुजा विषके वृक्षके टासवत् हैं, स्तन भी रक्तमांस हैं, और भी संपूर्ण शरीर रक्तमांस अस्थिकरि पूर्ण एक बुत बनी है, इसको जो रमणीय जानते हैं, सो मूर्ख मोहकरि मोहित भये हैं, अपने नाशके निमित्त इसकी इच्छा करते हैं, जैसे सर्पिणीसे कोऊ हित करैगा सो नाशको प्राप्त होवैगा; तैसे इससे हित किये नाश होवैगा, जैसे कदलीवनका हस्ती महाबली कामकरि नीच गतिको पाता है अरु संकटमें पडता है, अंकुशको सहता है, अपमानको प्राप्त होता है, सो एक हस्तिनीके हितकरि ऐसी गतिको प्राप्त होता है, तैसे यह जीव स्त्रीकी इच्छा करिकै अनेक दुःखको प्राप्त होते हैं, जैसे दीपकको रमणीय जानकरि तिसविषे पतंग प्रवेश करता अरु नाशको प्राप्त होता है, तैसे यह जीव स्त्रीकी इच्छा करता है, तिसके संगकरि नाशको प्राप्त होता है अरु लक्ष्मीका आश्रय करिकै जो सुखकी इच्छा करता है, सो भी सुखी न होवैगा. जैसे पहाड़ दूरते देखनेमात्र सुंदर भासता है, तैसे यह भी देखनेमात्र सुंदर लगती है और लक्ष्मीका आश्रय करिकै सुखकी इच्छा करै सो न होवैगा, अंत दुःखको प्राप्त होवैगा, जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब अनर्थ पापको करने लगता है अरु दुःखका पात्र होता है, जब जाती है, तब दुःखको दे जाती है, तिसकरि जलता रहता है. हे रामजी! जगत्विषे जो सुखकी इच्छा करै, सो न होवैगा, प्रथम जन्म लेता है, तब भी दुःखसाथ जन्म लेता है, बहुरि जन्मकरि मूर्ख नीच बालक अवस्थाको प्राप्त होता है, तिसविषे विचार कछु नहीं होता, तिसकरि दुःख पाता है अरु शक्ति कछु नहीं होती, तिसकरि दुःख पाता है, जब यौवन अवस्थारूपी रात्रि आती है, तब तिसविषे काम क्रोध लोभ मोहरूपी निशाचर आय विचरते हैं अरु तृष्णारूपी पिशाचनी आय विचरती है, विवेकरूपी चंद्रमा उदय नहीं होता, तब अंधकारविषे सब क्रीडा करते हैं. हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकाल है, तिसविषे

बुद्धि आदिक नदियां मलिनभावको प्राप्त होती हैं अरु कामरूपी मेघ गर्जता है, तृष्णारूपी मोरनी तिसको देखकारि प्रसन्न होती है अरु नृत्य करती है अरु लोभरूपी भुजाग आवते हैं अरु शब्द करते हैं, इत्यादिक अनर्थका बीज होता है, बहुरि यौवन अवस्थारूपी चूहेको जरारूपी बिल्ली भोजन करि लेती है, अंग महाजर्जरीभूत हो जाते हैं, शरीर अशक्त हो जाता है, तृष्णा बढती जाती है, अंतरते पड़ा जलाता है, बहुरि मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिणको भोजन करि लेता है, इस प्रकार उपजता अरु मरता है आशारूपी रसडीसे बांधा हुआ घटीयंत्रकी नाईं पडा भटकता है, शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता. हे रामजी ! ब्रह्मांडरूपी एक वृक्ष है अरु जीवरूपी तिसको पत्र लगे हैं, सो कर्मरूपी वायुकरि हलते हैं अरु अज्ञानरूपी तिसविषे जडता है अरु चित्तरूपी ऊंचा वृक्ष है, तिसऊपर लोभादिक घूघू आय बैठते हैं अरु जगतरूपी ताल है, तिसविषे शरीररूपी कमल है, तिनविषे जीवरूपी भँवरे आय बैठते हैं अरु कालरूपी हस्ती आयकारि तिसको भोजन करि जाता है. हे रामजी ! यत्नरूपी जीर्ण पक्षी है आशारूपी फांसीसे बांधे हुए वासनारूपी शिक्षाविषे पड़े रहे हैं, रागद्वेषरूपी अग्निविषे पडे हुए कालरूपी पुरुषके मुखमें प्रवेश करते हैं अरु जनरूपी पक्षी उड़ते फिरते हैं, सो कोऊ दिन तिसको जब कालरूपी व्याध जाल पसारैगा, तब फँसाय लेवैगा. हे रामजी ! संसाररूपी ताल है अरु जीवरूपी तिसविषे मच्छियां हैं, कालरूपी बगला तिनको भोजन पड़ा करता है अरु कालरूपी कुंभार है, जनरूपी मृत्तिकाके बासन करता है, बहुरि शीघ्र ही फुटि जाते हैं अरु जीवरूपी नदी है, कर्मरूपी तरंगको पसारती है, सो कालरूपी वडवाग्निमें जाइ पडती है अरु जगद्रूपी हस्ती है जीवरूपी मोती तिसके मस्तकविषे है, तिस हस्तीको कालरूपी सिंह भोजन करि जाता है, सो कालरूपी भक्षक है, जिसने ब्रह्मादूको भोजन किया है अरु करता है, तृप्त नहीं होता, जैसे घृतकी आहुतिकारि अग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे काल जीवके भोजनकारि तृप्त कदाचित् नहीं होता. हे रामजी ! एक निमेषविषे जगत् उपजता है अरु उन्मेषविषे लीन हो जाता है,

सबके अभाव हुए जो शेष रहता है, सो रुद्र है, बहुरि निवृत्त हो जाता है, सबके पाछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है. हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, जन्म मरण बाल्य यौवन वृद्धत्वादिक विकार अज्ञानकरि भासते हैं, अज्ञानके नष्ट हुए सब नष्ट हो जाते हैं अरु जबलग आत्मविचार नहीं उपजा, तबलग अज्ञान रहता है, जब आत्मविचार उपजता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, केवल ब्रह्मपद भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अविद्यालतावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह संसाररूपी यौवन है, सो चेतनरूपी पर्वतके शृंगऊपर स्थित है, तिसविषे अविद्यारूपी वल्ली बढी है अरु विकासको प्राप्त भयी है अरु सुख दुःख भाव अभाव अज्ञान इसके पत्र फूल फल हैं, जहां अविद्या सुखरूप होकरि स्थित होती है, तहां ऊंचे सुखको भोगावती है, तिसके सत्ताभावको प्राप्त होती है अरु सुखरूप होकरि स्थित होती है, तहां दुःखरूप भासती है, सोई सुखदुःख इसके फल गुच्छे हैं, दिनरूपी फूल हैं अरु रात्रिरूपी भँवरे हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं अरु भोगरूपी रसकरि पूर्ण है, जब विचाररूपी घुण अविद्यारूपी वृक्षको खाने लगता है, तब नष्ट हो जाती है, जबलग विचाररूपी घुण नहीं लगा तबलग दिन दिन बढ़ती जाती है अरु दृढ हो जाती है. हे रामजी ! अविद्यारूपी वल्ली है अरु मूल इसका संवित्‌फुरणा है, तिसकरि पसरी है तारागण इसके किसी ओर फूल हैं, चंद्रमा सूर्य इसका प्रकाश है अरु दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कंटक हैं अरु शुभ कर्मरूपी स्वर्ग इसके फूल प्रकाशे हैं अरु सुखदुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी उसके पत्र हैं अरु कालरूपी वायुकरि हलते हैं, कई जीर्ण होकरि गिर पडते हैं, पृथ्वी-

रूपी त्वचा है, पर्वत घोडे हैं, मरणरूपी इसविषे छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं, मोहरूपी कलियां हैं, महासुंदर गौरांग है, तिसकरि जीव मोहित होते हैं, जैसे स्त्रीको देखिकरि मोहित होते हैं अरु सत समुद्रके जलकरि सिंचती है, तिसकरि पुष्ट होती है, तिस वल्लीविषे एक विषकी भरी सर्पिणी रहती है, जो कोऊ उसके निकट जाता है तिसको काटती है, तब वह मूर्च्छाकरि गिर पड़ता है, संसाररूपी मूर्च्छाको देनेहारी तृष्णारूपी सर्पिणी है, सो वल्ली अन्यथा नष्ट नहीं होती, जब विचाररूपी घुण इसको लगै, तब नष्ट हो जाती है. हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच तुझको भासता है, सो अविद्यारूप है, कहूं अविद्या जलरूप हुई है, कहूं पहाड़, कहूं नाग, कहूं देवता, कहूं दैत्य, कहूं पृथ्वी हुई है, कहूं चंद्रमा, कहूं सूर्य, कहूं तारे, कहूं तम, कहूं प्रकाश, कहूं तेज, तमते रहित, कहूं पाप, कहूं पुण्य, कहूं स्थावर मूढरूप, कहूं अज्ञानकरि दीन होती है. कहूँ ज्ञानकरि आप ही क्षीण हो जाती है, कहूं तप दान आदिककरि क्षीण होती है, पापादिककरि वृद्ध होती है, कहूँ सूर्यरूप होकरि प्रकाशती है, कहूं स्थानरूप होती है, कहूँ नरकविषे लीन है, कहूँ स्वर्गनिवासी है, कहूँ देवता होती है, कहूँ कृमि होती है, कहूँ विष्णुरूप होकरि स्थित भयी है, कहूँ ब्रह्मा होकरि स्थित भयी है, कहूँ रुद्र है, कहूँ अग्निरूप, कहूँ पृथ्वीरूप भयी है, कहूँ आकाशके काल भूत भविष्य वर्तमान भयी है. हे रामजी ! जो कछु देखनेमें आता है, सो सब इसकी महिमा है, ईश्वरते आदि तृणपर्यंत सब अविद्यारूप है, जो इस दृश्यजालते अतीत है, तिसको आत्मलाभ जान.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अविद्यालतावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

—*—

अविद्यानिराकरणम् ।

राम उवाच–हे ब्राह्मण ! हरि विष्णु अरु हर आदिक तौ शुद्ध आकार आकाश जाति हैं, इनको अविद्या तुम कैसे कहते हो? यह सुनकर

मुझको संशय उत्पन्न हुआ है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! प्रथम अविद्या अरु तत्त्व श्रवण कर, कि किसको कहते हैं, जो अविद्यमान होवै अरु विद्यमान भासै, सो अविद्या है अरु जो सदा विद्यमान है, तिसको तत्त्व कहते हैं. हे रामजी ! शुद्ध संवित् कलनाते रहित चिन्मात्र आत्मसत्ता है, सो तत्त्व है, तिसविषे जो अहम् उल्लेखकरि संवेदन कलना पूर्णरूप फुरी है, सो चिन्मात्र संवित्का आभास है, सोई फुरिकरि सूक्ष्म स्थूल मध्यभावको प्राप्त भयी है, स्थानभेदकारि बहुरि वही दृढस्पंदकारि मनभावको प्राप्त भयी है अरु सात्त्विक राजस तामस तीनों उसके आकार हुए हैं, सो अविद्या त्रिगुण प्राकृतधर्मिणी होत भयी है अरु तीन गुण जो तुझको कहे हैं, सो भी एक एक गुण तीन प्रकार हुआ है, अविद्याके गुण नव प्रकारके भेदको प्राप्त भये हैं; जेता कछु तुझको दृश्य भासता है, सो अविद्याके नवगुणविषे ऋषीश्वर मुनीश्वर सिद्ध नाग विद्याधर देवता जो हैं, सो अविद्याका सात्त्विक भाग हैं, तिस सात्त्विकके विभागविषे नाग सात्त्विक तामस हैं अरु विद्याधर सिद्ध देवता मुनीश्वर यह अविद्याके सात्त्विक भागविषे सात्त्विक राजस हैं अरु हरिहरादिक सात्त्विक हैं. हे रामजी ! सात्त्विक जो प्राकृत भाग है, तिसकरि तत्त्वज्ञ जो हुए हैं, सो मोहको नहीं प्राप्त होवैं, मुक्तिरूप होते हैं, सो हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं, सदा मुक्तरूप होकरि जगत्विषे स्थित हैं, जबलग जगत्विषे हैं, तबलग जीवन्मुक्त हैं, जब विदेहमुक्त हुए, तब परमेश्वरको प्राप्त होते हैं. हे रामजी ! एक अविद्याके दो रूप हैं, एक अविद्यारूप बहुरि वही विद्यारूप होती है, जैसे बीज फलभावको प्राप्त होता है अरु फल बीजभावको प्राप्त होता है, जैसे जलविषे बुद्बुदा उठता है, तैसे अविद्याते विद्या उपजती है अरु विद्याकरि अविद्या लीन होती है, जैसे काष्ठते अग्नि उपजिकरि काष्ठको दग्ध करती है, तैसे विद्या अविद्याते उपजिकरि अविद्याको नाश करती है अरु वास्तवते सब चिदाकाश है, जैसे जलविषे तरंग कलनामात्र हैं, तैसे विद्या अविद्या भावनामात्र इसको त्यागिकरि शेष आत्मसत्ता रहती है; अविद्या अरु विद्या आपसमें प्रतियोगी हैं, जैसे तम अरु प्रकाश होता है, ताते इन दोनोंको त्यागिकरि आत्मसत्ताविषे स्थित

होहु, विद्या अरु अविद्या कल्पनामात्र हैं, विद्याके अभावका नाम अविद्या है अरु अविद्याके अभावका नाम विद्या है, यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है, जब विद्या उपजती है, तब अविद्याका भास करती है, पाछे आप भी लीन हो जाती है, जैसे काष्ठते उपजी अग्नि काष्ठको जलायकरि आप भी शांत हो जाती है, तैसे अविद्याको नाश करिकै विद्या आप भी लीन हो जाती है, तिसते शेष रहता है, सो अशब्द पद सर्वव्यापी है, जैसे वटबीजविषे पत्र टास फूल फल पाते हैं, तैसे सर्वविषे एक अनुस्यूत सत्ता व्यापी है, सो ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्त है, सर्व शक्तिका स्पंद है अरु आकाशते भी शून्य है, जैसे सूर्यकांतविषे अग्नि होता है, जैसे दूधविषे घृत होता है, तैसे सब जगत्‌विषे ब्रह्म व्यापि रहा है, जैसे दधिके मथे विना घृत नहीं निकसता, तैसे विचार विना आत्मा नहीं भासता, जैसे अग्निते चिणगारे निकसते हैं अरु सूर्यते किरणें निकसती हैं, तैसे यह जगत् आत्माका किंचनरूप है, जैसे घटके नाश हुए घटाकाश अविनाशी है, तैसे जगत्‌के अभावते भी आत्मा अविनाशी है. हे रामजी ! जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिकै जड़ लोह चेष्टा करता है, परंतु चुंबक सदा अकर्ता ही है, तैसे आत्माकी सत्ताकरिकै जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं, चैतन्य होते हैं, परंतु आत्मा सदा कर्ता है, इस जगत्‌का बीज चेतन आत्मसत्ता है, तिसविषे संवित् संवेदन आदिक शब्द भी कल्पनामात्र हैं, जैसे जलको कहिये बहुत सुंदर चंचल है, सो जल ही जल है, तैसे संवेदन आदिक सब चेतनरूप हैं, जहां न किंचन है, न अकिंचन है, सो तेरा स्वरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विद्यानिराकरणवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अविद्याचिकित्सावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो आधिभौतिकताको नहीं प्राप्त भया, सब चिदा-

काशरूप है, तिसविषे कछु भाव अभावकी कल्पना नहीं अरु जीवादिक भेद भी नहीं, हमको तो भेदकल्पना कछु नहीं भासती, जैसे जेवरीविषे सर्पका अभाव है, तैसे ब्रह्मविषे भेदकल्पनाका अभाव है. हे रामजी! आत्माके अज्ञान करिकै भेदकल्पना भासती है, आत्माके जानेते भेदकल्पना मिटि जाती है, सो सर्व संपदाका अंत है अरु जब शुद्ध चेतनविषे चित्तका संबंध होता है, तब इसीका नाम अविद्या है, जो पुरुष चित्तकी उपाधिते रहित चिन्मात्र है, सो शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता अरु शरीरके उपजेते नहीं उपजता; शरीरके उपजने अरु विनशनेविषे सदा एकरस ज्योंका त्यों स्थित है, जैसे घटके उपजने अरु विनशनेविषे घटाकाश ज्योंका त्यों होता है, तैसे शरीरके भावअभावविषे आत्मा ज्योंका त्यों है, जैसे बालक दौड़ता है, तिसको सूर्य भी दौड़ता भासता है अरु स्थित होनेविषे स्थित भासता है, परंतु सूर्य ज्योंका त्यों है, तैसे चित्तकी चंचलता करिकै मूर्ख आत्माको व्याकुल देखते हैं अरु चित्तके अचलताविषे अचल देखते हैं अरु चित्तके उपजनेविषे उपजता देखते हैं, परंतु आत्मा सदा ज्योंका त्यों है, जैसे बबोहा अपनी तंतुकरि आप ही वेष्टित होता है, निकस नहीं सकता, तैसे यह जीव अपनी वासनाकरि आप ही बंधमान होते हैं. राम उवाच-हे भगवन्! अत्यंत मूर्खताको प्राप्त होकरि जो स्थावर आदिक तनुको पाइकरि घन स्थित हुए हैं, तिनकी वासना कैसे होती है, सो कृपा करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो स्थावर जीव हैं, सो अमन सत्ताको नहीं प्राप्त हुए अरु केवल मन अवस्थाविषे भी तिष्ठते नहीं मध्य अवस्थाविषे हैं, उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है, सो केवल दुःखका कारण है, उनका मन नहीं नष्ट हुआ, सुषुप्ति अवस्थाविषे जड़रूप स्थित है, सो कालकरि जागहिंगे, अब उनकी सत्ता मूक जड होकरि स्थित है, सत्ता मात्र स्थित है. राम उवाच-हे देव देवताविषे श्रेष्ठ! जब उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकरि स्थावरविषे स्थित है, तब मुक्ति अवस्था तिनके निकट भयी, यह सिद्ध हुआ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है, मुक्ति तब होती है, जब बुद्धिपूर्वक वस्तुको विचारै

है, तब यथाभूत अर्थ दृष्टि आवै, जब सत्तासमानका बोध होवै, तब केवल आत्मपदको प्राप्त होवै. हे रामजी ! जब ज्योंका त्यों पदार्थ जानिकरि वासनाका त्याग करै, सो उत्तम है, तब सत्तासमान पद प्राप्त होवै, प्रथम अध्यात्मशास्त्रको विचारै, तिसविषे जो सार है, तिसकी वारंवार भावना करै, तिसकरि जो प्राप्त होवै, सो सत्तासमान परब्रह्म कहाता है, स्थावरके अंतर वासना है परंतु ब्रह्मदृष्टि नहीं आती, काहेते जो उनकी सुषुप्त वासना है. जैसे बीजविषे अंकुर होता है, बहुरि उगता है, तैसे उनको जन्म होवैंगे अरु वासना जागैगी, जो उनके अंतर जगत्की सत्यता है अरु बाह्य नहीं दृष्टि आती, सो सुषुप्तवत् जडधर्म है, बहुरि अनंत जन्मके दुःख पावैंगे. हे रामजी ! स्थावर जो अब जड-धर्म सुषुप्त पदविषे स्थित हैं, सो वारंवार जन्मको पावैंगे. जैसे बीजविषे पत्र टास फूल फल स्थित होते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे घटशक्ति स्थित होती है, तैसे स्थावरविषे वासना स्थित है, जहां वासनारूपी बीज है, सो सुषुप्तरूप कहाता है, सो सिद्धता जो मुक्ति है, तिसको नहीं प्राप्त करती अरु जहां निर्बीज वासना है, सो तुरीया पद है, सिद्धताको प्राप्त करती है. हे रामजी ! जब चित्तशक्ति वासनासाथ मिली होती है, तब स्थावर होती है, सो बहुरि जागती है, जैसे कोऊ कर्म करता सोय जाता है, सुषुप्तिते उठिकरि बहुरि वही कर्म करने लगता है, कर्मरूपी वासना तिसके अंतर रहती है, तैसे स्थावर वासना करिकै बहुरि जन्मको पावैंगे, जब वह वासना अंतरते दग्ध हो जावै, तब जन्मका कारण नहीं होती अरु आत्मसत्ता समान करिकै घटपट आदिक सर्व पदार्थ-विषे स्थित है, जैसे वर्षाकालका मेघ एक ही नानारूप होकरि स्थित होता है, तैसे आत्मसत्ता एक ही सर्व पदार्थविषे स्थित होती है, ताते सर्व आत्मा ही व्यापि रहा है, ऐसी दृष्टिते जो रहित है, तिसको विपर्य-य दृष्टि भ्रमदायक होती है, जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती है, तब सर्व दुःख नाश हो जाते हैं. हे रामजी ! असम्यक् दृष्टिका नाम अविद्या बुद्धी-श्वर कहते हैं, सो अविद्या जगत्का कारण है, तिसकरि सब पसारा होता है, तिसते रहित जब अपना स्वरूप भासै तब अविद्या नष्ट होती

है, जैसे बर्फकी कणिका धूपकरि नाश हो जाती है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकरि अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे स्वप्नते रहित जब अपना स्वरूप देखता है, तब बहुरि स्वप्नकी ओर नहीं जाता है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकरि संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाता है. हे रामजी! जब वस्तुको वस्तु जानता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है. दीपकको हाथमें लेकरि देखिये तब अंधकारकी मूर्ति कछु दृष्टि नहीं आती, जैसे उष्णता करिकै घृतका लौदा गलि जाता है, तैसे आत्माके दर्शन हुए अविद्या नहीं रहती अरु वास्तवते अविद्या कछु वस्तु नहीं, अविचारते सिद्ध है, विचार कियेते लीन हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि तम लीन हो जाता है, तैसे विचारकरि अविद्या लीन हो जाती है, अज्ञानकरि अविद्याकी प्रतीति होती है, जबलग आत्मतत्त्वको नहीं देखा, तबलग अविद्याकी प्रतीति होती है, जब आत्माको देखा, तब अभाव हो जाता है. प्रथम यह विचार करै, कि जो रक्त मांस अस्थिका यंत्र शरीर है, तिसविषे मैं क्या वस्तु हौं, सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, तिसविषे जिसका अभाव होता है, सो असत्य है अरु जिसका अभाव नहीं होता सो सत्य है, बहुरि अन्वय व्यतिरेककरि विचारै, जो कार्य कल्पितके होते भी होवै अरु तिसके अभावविषे भी होवै, सो अन्वय सत्य है, जो देहादिक भावविषे भी आत्मा अधिष्ठान है अरु इनके अभावविषे भी निरुपाधि सिद्ध है, सो सत्य है अरु देहादिक व्यतिरेक असत्य है, ऐसे विचारकरि आत्मतत्त्वका अभ्यास करै अरु असत् देहादिकते वैराग्य करै, तब निश्चय करिकै अविद्या लीन हो जाती है, काहेते जो वास्तव नहीं, असत्यरूप है, तिसके नष्ट हुए जो शेष रहै सो निष्किंचन किंचनरूप है, सो सत्य है, ब्रह्म निरंतर है, सो तत्त्व वस्तु उपादेय करने योग्य है. हे रामजी! ऐसे विचार करिकै अविद्या नष्ट हो जाती है. जैसे गन्नेका रस जिह्वामें लगता है, तब अवश्य ही स्वाद आता है तैसे आत्मविचारकरि अविद्या अवश्य नष्ट हो जाती है अरु जब वास्तवते कहैं तब अविद्या भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, सर्व एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है, घट पट रथ आदिक जेते कछु पदार्थ हैं, जिसको भिन्न

भिन्न भासते हैं, तिसको अविद्या जान अरु जिसको सर्वविषे एकब्रह्मभावना है, तिसको विद्या जान. इस विद्याकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणेपूर्वार्द्धेऽविद्याचिकित्सावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

जीवन्मुक्तिनिश्चयोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! बोधके निमित्त मैं तुझको बारंवार सार कहता हौं, जो आत्मसाक्षात्कार भावना अभ्यास विना न होवैगा, यह जो अज्ञान अविद्या है, सो अनंत जन्मका दृढ भया है, सो अंतर बाहिरकरिकै देखाई देता है, आत्मा सर्व इंद्रियते अगोचर है. जब मन सहित षट् इंद्रियका अभाव हो जावै, तब केवल शांतिको प्राप्त होता है. हे रामजी ! जेती कछु वृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्या है. काहेते कि, आत्मतत्त्वते इतर जानिकरि फुरती है अरु जो अंतर्मुख आत्माकी ओर फुरती है सो विद्या है, सो विद्या अविद्याको नाश करैगी, अविद्याके दो रूप हैं, एक प्रधान रूप है, एक निकृष्ट रूप है. तिस अविद्याते विद्या उपजिकरि अविद्याको नाश करती है, बहुरि आप भी नाश हो जाती है, जैसे बांसते अग्नि उपजती है अरु बांसको जलायकरि आप भी शांति हो जाती है, तैसे जो अंतर्मुख है, सो प्रधानरूप विद्या है अरु जो बहिर्मुख है, सो अविद्या निकृष्टरूप है ताते अविद्याभागको नाश करहु. हे रामजी ! अभ्यास विना कछु सिद्ध नहीं होता, जो कछु किसीको प्राप्त होता है, सो अभ्यासरूपी वृक्षका फूल है, चिरकाल जो अविद्याका दृढ अभ्यास हुआ है, तब अविद्या दृढ भयी है, जब आत्मज्ञानके निमित्त यत्न करिकै दृढ अभ्यास करैगा, तब अविद्या नाश हो जावैगी. हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्ष है, तिससाथ अविद्यारूपी बुरी लता दृढ हो रही है, तिसको ज्ञानरूपी खङ्गकरिकै काटहु अरु जो कछु अपना प्रकृति आचार है, तिसको करहु, तब तुझको दुःख कोऊ न

होवैगा, जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकरि व्यवहारको करत भया है; तैसे आत्मज्ञानका दृढ अभ्यासकरि तू भी विचर. हे रामजी! जैसे पवन निश्चयको धारिकरि कार्याकार्यविषे विचरता है अरु जैसे निश्चय विष्णुजीको स्वरूपविषे है, सब कार्य करता है अरु जैसे निश्चय सदाशिवको जो गौरी अर्धांगमें रहती है अरु कदाचित् क्षोभको नहीं प्राप्त होता, सदा शांतरूप है अरु जैसे निश्चय ब्रह्माको है, जो बाह्य राग द्वेष दृष्टि आता है, अरु अंतर रागद्वेष कछु नहीं. जैसे निश्चय बृहस्पति देवताके गुरुका है अरु जैसे निश्चय चंद्रमा अरु अग्निका है, जैसे निश्चय नारद, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, भृगु, शुकदेवका है और भी ऋषीश्वर, मुनीश्वर ब्राह्मणका है, क्षत्रियादिकका ज्ञातज्ञेयका निश्चय है, सो तुझको प्राप्त होवै. राम उवाच- हे ब्राह्मण! जिस निश्चय करिकै बुद्धिमान् विशोक होकरि स्थित भये हैं, सो मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच- हे रामजी! जैसे संपूर्ण ज्ञानवान्का निश्चय है अरु व्यवहारविषे सम रहे हैं, सो सुन. विस्ताररूप जेता कछु जगत्-जाल तुझको भासता है, सो निर्मल ब्रह्मसत्ता अपने महिमाविषे स्थित है, जैसे तरंग समुद्रविषे स्थित होते हैं अरु नाना प्रकार उत्पन्न होते हैं, सो एक जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थजाल भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, जो ग्रहण करनेवाला है, सो भी ब्रह्म है अरु जिसको भोजन करता है सो भी ब्रह्म है, मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है यह निश्चय ज्ञानवान्को सदा रहता है, बहुरि कैसा है, ब्रह्मको ब्रह्म स्पर्श करता है, तब किसको स्पर्श किया. हे रामजी! जिनको सदा यही निश्चय रहता है, तिनको रागद्वेष कछु दुःख नहीं दे सकते, ब्रह्म ही ब्रह्मविषे फुरता है, भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है, इतर कछु नहीं बहुरि रागद्वेषकलना कैसे होवै, ब्रह्म ही ब्रह्मको चेतता है, ब्रह्म ही ब्रह्मविषे स्थित है, ब्रह्म ही अहम् अस्मि है; ब्रह्म ही सम है, ब्रह्म ही अंतर आत्मा है, घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही विस्तारको प्राप्त भया है. हे रामजी! जब सर्वत्र ब्रह्म ही है, तब राग विराग कलना कैसे

होवै, मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, मरता भी ब्रह्म है, मारता भी ब्रह्म है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे आत्माविषे सुखदुःख मिथ्या है. भोग भी ब्रह्म है, भोगनेवाला भी ब्रह्म है, भोक्ता देह भी ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्म ही है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिट जाते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं, तैसे शरीर उपजते अरु मिट जाते हैं, सो ब्रह्म ही ब्रह्मविषे स्थित है. हे रामजी ! जलके तरंग जो मृत्युको प्राप्त होते हैं, सो क्या हुआ वह तौ जल ही है, तैसे मृतक ब्रह्मने जो देह मृतक ब्रह्मको मारा, तब कौन मुआ अरु किसने मारा. जैसे एक तरंग जलते उपजा अरु दूसरे तरंगसाथ मिलि गया, दोनों इकट्ठे होकरि मिटि गये, सो जल ही जल है, तहां मैं दूसरा कछु नहीं; तैसे आत्माविषे जगत् है; सो आत्मा ही अपने आपविषे स्थित है, तेरा मेरा भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं, जलविषे तरंग होते हैं सो अभेदरूप हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं. हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थदर्शी हैं, तिनको सदा यही निश्चय रहता है अरु जिनको सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्त भया, तिनको विपर्ययरूप औरका और भासता है, वास्तवते सदा एकरूप है परंतु ज्ञान अरु अज्ञानका भेद है, जैसे जेवरी एक होती है, परंतु जिसको सम्यक्ज्ञान होता है, तिसको जेवरी भी भासती है अरु जिसको सम्यक्ज्ञान नहीं होता, तिसको सर्प हो भासता है, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिसको सब ब्रह्मसत्ता भासती है अरु जो अज्ञानी हैं तिनको जगतरूप भासता है, तिसको नाना प्रकारका जगत् दुःखदायक होता है अरु ज्ञानवानको सुखरूप है, जैसे अंधको सर्व ओर अंधकार भासता है अरु चक्षुवान्को प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व जगत् आत्मस्वरूप है, परंतु ज्ञानीको आत्मसत्ता सुखरूप भासती है, अज्ञानीको दुःखदायक है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल बुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है अरु बुद्धिमान् निर्भय होता है, तैसे अज्ञानीको जगत् दुःखदायक है, ज्ञानीको सुखरूप है अरु जब मेरा निश्चय पूछै, तब ऐसे है, मैं सर्व ब्रह्म हौं, नित्य शुद्ध सर्वविषे स्थित हौं, न कोऊ विनशता है, न उपजता है, जैसे जलविषे तरंग है सो न कछु उपजा

है, न विनशता है, जल ही जल है, तैसे भूत भी आत्मविषे है, जगत् भी आत्मरूप है, आत्मा ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, मृतरूप भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही अनेकरूप होकरि भासता है, ब्रह्मते भिन्न कछु शरीरादिक सिद्ध नहीं होते. जैसे तरंग फेन बुद्बुदे जलरूप हैं, तैसे देहकलना इंद्रियां इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं; जैसे स्वर्णते भिन्न भूषण नहीं होता, स्वर्ण ही भूषणरूप होता है, तैसे ब्रह्मते व्यतिरेक जगत् नहीं होता, ब्रह्म ही जगत्‌रूप है; जो मूढ हैं, तिनको द्वैतकलना भासती है. हे रामजी! मन बुद्धि अहंकार तन्मात्र इंद्रियां सब ब्रह्महीके नाम हैं, अपर सुख दुःख कछु नहीं. अहम् ऐसा जो शब्द है, तिसविषे भिन्न भिन्न भावना करनी सो व्यर्थ है. अपना अनुभव ही अन्यकी नाईं हो भासता है, जैसे पहाड़विषे शब्द करता है, तिसकरि प्रतिशब्दका भास होता है, सो अपना ही शब्द है, तिसविषे अपरकी कल्पना मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा देखता है, सो व्यर्थ है, सोई भासि आता है, जिसको असम्यक्‌ज्ञान होता है, तिसको ऐसे है. हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्त है, तिसविषे जैसी भावना होती है, सोई भासि आती है, जिसको सम्यक्‌ज्ञान होता है, सो निरहंकार स्वप्रकाश सर्वशक्त देखता है, कर्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण यह जो षट् कारक बुद्धि हैं, सो सब सर्वत्र ब्रह्म ही देखता है ब्रह्म अर्पण, ब्रह्म हवि, ब्रह्म अग्नि, ब्रह्म कर्म, ब्रह्म हुननेवाला, ब्रह्म ही फल देता है, ऐसे जाननेवालेका नाम ज्ञानी है, ऐसे न जानेते अज्ञानी है, जाननेवालेका नाम ब्रह्मवेत्ता है. हे रामजी! जब चिरकालका बांधव होवै अरु उसको देखिये तब जानिये जो बांधव हैं अरु जो देखनेमें न आया, उसका अभ्यास दूर हो गया, तब बांधव भी अबांधवकी नाईं हो जाता है, तैसे अपना आप ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है, तब ऐसे भासि आता है, जो मैं ब्रह्म हौं अरु द्वैत कल्पना भी लीन हो जाती है, सर्व ब्रह्म ही भासता है; जैसे जिसने अमृत पान किया है, सो अमृतमय होता है अरु जिसने नहीं पान किया सो अमृतमय नहीं

होता, तैसे जिसने जाना कि, मैं ब्रह्म हौं, सो ब्रह्म ही होता है, जिसने नहीं जाना तिसको नानात्वकल्पना जन्म मरण भासता है अरु ब्रह्म अप्राप्तकी नाईं भासता है. हे रामजी ! जिसको ब्रह्मभावनाका अभ्यास जागा है, सो अभ्यासके बलकरि शीघ्र ही ब्रह्म होता है, ब्रह्मरूपी बडे दर्पणविषे जैसी कोऊ भावना करता है, तैसा रूप हो भासता है, मन भावनामात्र है, दुर्वासना करिके इसका स्वरूप आवरण भया है, जब भावना नष्ट होती है, तब निष्कलंक आत्मतत्त्व भासता है, जैसे शुद्ध वस्त्र ऊपर केसरका रंग शीघ्र ही चढ जाता है तैसे वासनाते रहित चित्तविषे ब्रह्मस्वरूप भासि आता है. हे रामजी ! आत्मा सर्व कलनाते रहित है अरु तीनों कालविषे नित्य शुद्ध सम शांतरूप है, जिसको ज्ञान होता है, सो ऐसे जानता है, कि मैं ब्रह्म हौं, सर्वकाल सर्वविषे सर्व प्रकार, सर्व घटपटादिक जो जगज्जाल है, सो मैं ही ब्रह्म आकाशवत् सर्वविषे व्यापि रहा हौं, न कोऊ मुझको दुःख है, न कर्म है, न किसीका त्याग करता हौं, न वांछा करता हौं सर्व कलनाते रहित निरामय हौं, मैं ही रक्त हौं, मैं ही पीत हौं, मैं ही श्वेत हौं, मैं ही श्याम हौं, रक्त मांस अस्थिका वपु भी मैं ही हौं, घटपटादिक जगत् भी मैं ही हौं, तृण वल्ली फूल गुच्छे टास मैं ही हौं, बन पर्वत समुद्र नदियां मैं ही हौं, ग्रहण करना, त्याग करना, संकुचना भूतशक्ति सब मैं ही हौं, विस्तारको प्राप्त मैं ही भया हौं. वृक्ष, वल्ली, फूल, गुच्छे जिसके आश्रय फुरते हैं, सो चिदात्मा मैं ही हौं, सबविषे रसरूप मैं ही हौं, जिसविषे यह सर्व है, जिसते यह सर्व है, सो सर्व है, जिसको सर्व है, ऐसा चिदात्मा ब्रह्म है सो मैं ही हौं. चेतन आत्मा ब्रह्म सत्य अमृत ज्ञानरूप इत्यादिक जिसके नाम हैं, ऐसा सर्वशक्ति चिन्मात्र चैत्यते रहित मैं हौं, प्रकाशमात्र निर्मल सर्वभूतप्रकाशक मैं ही हौं, मन बुद्धि इंद्रियोंका स्वामी मैं हौं, जेती कछु भेदकलना है, सो इनने करी थी अब इनकी कलनाको त्यागिकरि अपने प्रकाशविषे स्थित हौं, चेतन ब्रह्म निर्दोष हौं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब जगत्का कारण है, तिन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म निरामय मैं ही हौं, अविनाशी हौं, निरंतर स्वच्छ आत्मा प्रकाशरूप मनके उत्थानते रहित मौनरूप मैं हौं,

परम अमृत निरंतर सर्वभूतके सत्तारूप करिकै मैं ही स्थित हौं सदा अलेपक साक्षी सुषुप्तकी नाई हौं, द्वैत कलनाते रहित अक्षोभरूपानुभव मैं ही हौं, शांतरूप सब जगत्‌विषे मैं ही पसरि रहा हौं, सर्व वासनाते रहित अक्षोभरूप अनुभव मैं ही हौं, सब स्वादका जिसकरि अनुभव होता है, सो चेतन ब्रह्म आत्मा मैं ही हौं, स्त्रीविषे आसक्त है चित्त जिसका अरु चंद्रमाकी कांतिकरि मुदिता अधिक है जिसकों, स्त्रीका स्पर्श अरु मुदिताका जिसकरि अनुभव होता है, ऐसा चेतन ब्रह्म मैं ही हौं, पृथ्वीविषे स्थित जो पुरुष है, तिसकी दृष्टि चंद्रमाके मंडलमें जाय लगती है तिसका अनुभव जिसविषे होता है सो मैं ही हौं, सुख दुःखकी कलनाते रहित अमनसत्ता अनुभवरूप जो आत्मा है, सो चेतनरूप आत्मा ब्रह्म मैं ही हौं, खजूर अरु निंब आदिकविषे स्वादरूप मैं ही हौं, खेद अरु आनंद लाभ अलाभ मुझको तुल्य है; जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति साक्षी तुरीयारूप आदि अंतते रहित चेतन ब्रह्म निरामय मैं ही हौं, जैसे क्षेत्रके गन्नेविषे एक ही रस होता है, तैसे अनेक मूर्तिविषे एक ब्रह्मसत्ता स्थित है, सो सत्य शुद्ध शम शांतरूप सर्वज्ञ है, प्रकृत जो सूक्ष्म तिसका प्रकाशक है, सूर्यकी नाई सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैं ही हौं, सब शरीरविषे व्यापि रहा हौं, जैसे मोतीविषे तंतु गुप्त होता है, तिसविषे मोती परोये हैं, तैसे मोतीरूप शरीरविषे तंतुरूप गुप्त मैं ही हौं अरु जगत्‌रूपी दूधविषे ब्रह्मरूपी घृत मैं ही व्यापि रहा हौं. हे रामजी ! जैसे स्वर्णविषे नाना प्रकारके भूषण बनते हैं, सो स्वर्णते इतर कछु नहीं, तैसे सब पदार्थ आत्माविषे स्थित हैं आत्माते इतर कछु नहीं; पर्वत समुद्र नदीविषे सत्तारूप आत्मा ही है, सर्व संकल्पका फलदाता अरु सर्वपदार्थका प्रकाशक आत्मा ही है अरु सर्व पाने योग्य पदार्थका अंत है, तिस आत्माकी उपासना हम करते हैं, घट पट तट कंधविषे स्थित हैं अरु जाग्रत्‌विषे सुषुप्तरूप स्थित है, जिसविषे फुरणा कोई नहीं ऐसे चेतनरूप आत्माकी उपासना हम करते हैं मधुरविषे जो मधुरता है अरु तीक्ष्णविषे तीक्ष्णता है अरु जगत्‌विषे चलना शक्ति है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं. जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया, तुरीयातीतविषे जो सम-

तत्त्व है, तिसकी हम उपासना करते हैं, त्रिलोकीके देहरूपी जो मोती हैं, तिनविषे जो तंतुकी नाईं अनुस्यूत है अरु पसारने संकोचनेका कारण है, तिस चेतनरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं जो षोडश कलासंयुक्त अरु षोडश कलाते रहित है अरु अकिंचन किंचनरूप है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, चेतनरूप अमृत है, जो क्षीरसमुद्रते निकसा है, चन्द्रमाके मंडलविषे रहता है, ऐसा जो स्वतःसिद्ध अमृत है, जिसको पाइकारि कदाचित् मृतक न होवे, तिस चेतन अमृतकी हम उपासना करते हैं. जो अखंड प्रकाश है अरु सर्व भूतको सुंदर करता है तिस चिदात्माको हम उपासते हैं. शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध जिसकारि प्रकाशते हैं अरु आप इनते रहित है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, सर्व मैं हौं अरु सर्व मैं नहीं और भी कोई नहीं, इस प्रकार वेद्य जानकारि अपने अद्वैत रूपविषे विगतज्वर होकारि स्थित होते हैं, यही निश्चय ज्ञानवान्का है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जीवन्मुक्तिनिश्चयोपदेशवर्णनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

जीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो निष्पाप पुरुष हैं, तिनको यही निश्चय रहता है, जो सत्यरूप आत्मतत्त्व है, यह पूर्ण बोधवान्का निश्चय है, तिनको न किसीविषे राग होता है, न द्वेष होता है, जीना मरणा उसको सुख दुःख नहीं देता, एक समान रहता है, सो विष्णु नारायणका अंग है. अर्थ यह कि, अभेद है, सदा अचल है; जैसे सुमेरु पर्वत वायुकारि नहीं चलायमान होता, तैसे वह दुःखकारि नहीं चलायमान होता, ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो वनविषे विचरते हैं, नगर द्वीप नाना प्रकारके स्थानविषे फिरते हैं, परंतु दुःखको नहीं प्राप्त होते, स्वर्गविषे फूलके वन बगीचेविषे फिरते हैं, कई पर्वतकी कंदराविषे

रहते हैं, कई राज्य करते हैं, शत्रुको मारिकरि शिरके ऊपर झुलावते हैं, कई श्रुति स्मृति अनुसार कर्म करते हैं, भोग भोगते हैं, कई विरक्त होकरि स्थित हैं, कई दान यज्ञादिक कर्म करते हैं, कई स्त्रीके साथ लीला करते हैं, कहूँ गीत सुनते हैं, कहूँ नंदनवनविषे गन्धर्व गायन करते हैं, कई गृह विषे स्थित हैं, कई तीर्थ यज्ञ करते हैं, कई नौबत नगारे तुरीयां सुनते हैं इत्यादिक नाना प्रकार कई स्थानविषे रहते हैं, परंतु आसक्त कोई नहीं होते, जैसे सुमेरु पर्वत तालविषे नहीं डूबता, तैसे ज्ञानवान् किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होते इष्टको पायकरि हर्षवान् नहीं होते, अनिष्टको पायकरि दुःखी नहीं होते, आपदा संपदाविषे तुल्य रहते हैं, प्रकृत आचार कर्मको करते हैं, परंतु अंतर सर्व आरंभते रहित है. हे राघव! इस दृष्टिको आश्रय करिकै तुम भी विचरौ यह दृष्टि सर्व पापका नाश करती है, अहंकारते रहित होकरि जो इच्छा होवै सो करौ, जब यथाभूतदर्शी हुए तब निर्बंध हुए, जो कछु पतित प्रवाहकरि आय प्राप्त होवैं, तिसविषे सुमेरुकी नाईं तुम अचल रहौगे. हे रामजी! यह सब जगत् चिन्मात्र है, न कछु सत्य है, न असत्य है, वही इस प्रकार होकरि भासता है, इस दृष्टिको आश्रय करिकै अपर तुच्छ दृष्टिको त्यागहु. हे रामजी! असंसक्तबुद्धि होकरि सर्व भावअभावविषे स्थित होकरि रागद्वेषते चलायमान नहीं होवैगा, अब सावधान होहु. राम उवाच-हे भगवन्! बडा आश्चर्य है, मैं तुम्हारे प्रसादकरि जानने योग्य पद जाना है अरु प्रबुद्ध हुआ हौं, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, जैसे शरत्काल-विषे कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे तुम्हारे वचनकरि मेरा संदेह नष्ट हुआ है. मान, मोह, मद, मत्सर सब नष्ट हो गये हैं, मैं अब सर्व क्षोभते रहित शांतिको प्राप्त भया हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे षष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.
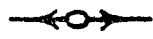
ज्ञानज्ञेयविचारवर्णनम् ।

राम उवाच—हे भगवन्! सम्यक्ज्ञान विलासकरि वासना उदय होती है, सो जीवन्मुक्तिपदविषे किस प्रकार विश्रांति पाइये सो कहौ. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! संसार तरनेकी युक्ति है, सो योगनाम्नी है, सो युक्ति दो प्रकारकी है; एक सम्यक् ज्ञानकरिकै अरु दूसरी प्राणके रोकने करिकै. राम उवाच—हे भगवन्! इन दोनोंविषे सुगम कौन है ? जिसकरि दुःख भी न प्राप्त होवै अरु बहुरि क्षोभ भी न होवै. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! दोनों प्रकार योगशब्दकरि कहाता है तौ भी योगनाम प्राणके रोकनेका है, संसारके तरनेके योग अरु ज्ञान दोनों उपाय हैं, इन दोनोंका फल एक ही सदाशिवने कहा है. हे रामजी ! किसीको योग करना कठिन है अरु ज्ञानका निश्चय सुगम है, किसीको ज्ञानका निश्चय कठिन है अरु योग करना सुगम है अरु जो मुझते पूछ तो दोनोंविषे ज्ञान सुगम है, इसविषे यत्न कष्ट थोड़ा है, जानने-योग्य पदार्थको जानेते बहुरि स्वप्नविषे भी भ्रम नहीं होता है, साक्षी-भूत होकरि दृष्ट देखता है अरु जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं, तिनको भी यत्न कछु नहीं, स्वाभाविक चले जाते हैं, तिनकी एक युक्ति सम-झिकरि चित्त शांत हो जाता है. हे रामजी ! दोनोंकी सिद्धता अभ्यास यत्नकरि होती है, अभ्यास विना कछु प्राप्त नहीं होती, सो ज्ञान तौ मैंने तुझको कहा है, जो हृदयविषे विराजमान ज्ञेय है; तिसको जानना ज्ञान है अरु जो प्राणअपानके रथ ऊपर आरूढ है, हृदयरूपी गुहा-विषे स्थित है. हे रामजी ! तिस योगका भी क्रम सुन जो परमसिद्धताके निमित्त है, प्राणवायु जो नासिका अरु मुखके मार्ग हो आती जाती है, तिसके रोकनेका क्रम कहता हौं तिसकरि चित्त उपशम हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ज्ञानज्ञेयविचारवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

सुमेरुशिखरलीलावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके किसी कोणविषे यह जगत्‌रूपी स्पंद आभास फुरा है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंकरि मृगतृष्णाका जल फुरि आता है, तैसे जगत् ब्रह्मते फुरि आया है, तिस जगत्‌के कारणभावको सोई प्राप्त हुआ है अरु ब्रह्मके नाभिकमलते जिसकी उत्पत्ति है अरु पितामह नामकरि कहाता है, तिसका मानसी पुत्र श्रेष्ठ आचार है. जिसका ऐसा जो मैं वसिष्ठ हौं अरु नक्षत्र ताराचक्रविषे मेरा निवास है, युग युग प्रति मैं तहां रहता हौं, सो मैं जब नक्षत्रचक्रते उठा, तब इन्द्रकी सभाविषे आया,तहां ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे थे. जब नारद आदिकविषे चिरंजीवीका कथाप्रसंग चला तब तहां शातातप नाम एक ऋषीश्वर था, सो कैसा था ? मन जो मान करनेके योग्य बुद्धिमान् था, सो कहत भया, कि हे साधो ! सबविषे चिरंजीवी है सो एक है, सुमेरु पर्वतकी जो कंदरा है, तिसकी कोण पद्मराग नाम्नी जो कंदरा है, तिसके शिखरपर एक कल्पवृक्ष है सो महासुन्दर अपनी शोभाकरि पूर्ण है. तिस वृक्षके दक्षिण दिशा टास है तहां पक्षी रहते हैं, तिन पक्षीविषे महा श्रीमान् एक कौवा रहता है, भुशुण्ड तिसका नाम है, सो कैसा है ? वीतराग अरु बुद्धिमान् वह वहां रहता है, उसका आलय कल्पवृक्षके टास ऊपर बना हुआ है, जैसे ब्रह्मा नाभिकमलविषे रहता है, तैसे वह आलयविषे रहता है. जैसे ऐसा वह जिया है, तैसे न कोऊ जिया है, न जीवैगा उसकी बड़ी आयुर्बल है, अरु श्रीमान् महाबुद्धिमान् विश्रांतिमान् शांतरूप अरु कालका वेत्ता वह है. हे साधो ! बहुत जीना भी तिसका सफल है अरु पुण्यवान् भी वही है, जिसको आत्मपदविषे विश्रांति भयी है अरु संसारकी आस्था जाती रही है, ऐसा जो पुरुष है सो वह है, ऐसे गुणकरि संपन्न तिसका नाम काकभुशुण्ड है, इस प्रकार जब उस देवताके देवने संपूर्ण सभाविषे कहा तब ऋषीश्वरने दूसरी बार पूछा, कि उसका वृत्तांत बहुरि कहौ, तब

उसने बहुरि वर्णन किया, तिस कालमें सब आश्चर्यको प्राप्त हुए, जब ऐसे कथा वार्ता हो चुकी, तब सब ही सभा उठि खडी हुई. अपने अपने आश्रमको गये अरु मैं आश्चर्यवान् हुआ कि ऐसे पक्षीको किस प्रकार देखिये, ऐसे विचार करिकै मैं सुमेरु पर्वतकी कंदराके सम्मुख हुआ अरु चला, तब एक क्षणविषे जाय प्राप्त भया, क्या देखा कि महाप्रकाशरूप कंदराका शिखर है, रत्नमणिकरि पूर्ण है अरु गेरूकी नाईं रंग है, जैसे अग्निकी ज्वाला होती है तैसे प्रकाशरूप है, मानो प्रलयकालमें अग्निकी ज्वाला पडी जागती है, ऐसे मणि अरु रत्नका प्रकाश है अरु बीज जो नीलमणि है, सो धूम्रके समान है, मानो धुआं पड़ा निकसता है अरु सर्व रंगकी खान है अरु जेते कछु संध्याके बादल लाल होत सो मानो इकट्ठे आनि हुए हैं, मानो योगीश्वरके ब्रह्मरंध्रते अग्नि निकसि इकट्ठी आय भई है, जठराग्नि इकट्ठी हुई है, मानो वडवाग्नि समुद्रते निकसिकरि मेघको ग्रहण करने निमित्त आनि स्थित भयी है, महासुन्दर रचना बनी हुई है, फल अरु रत्नमणिसंयुक्त प्रकाशमान है, ऊपर गंगाका प्रवाह चला जाता है, सो यज्ञोपवीतरूप हुआ है, गंधर्व गीत गाते हैं, देवीके रहनेके स्थान हैं, हर्ष उपजावनेको महासुंदर लीलाका स्थान विधाताने रचा है, तिसको मैं देखत भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुंडोपाख्याने सुमेरुशिखरलीलावर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

भुशुण्डदर्शनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! ऐसे शिखरके ऊपर कल्पवृक्षको मैं देखत भया, जो महासुन्दर फूलकरि पूर्ण, रत्न अरु मणिके गुच्छे लगे, स्वर्णकी वल्ली लगी हुई है अरु तारेसों दूने फूल दृष्टि आते हैं अरु मेघके बादलते दूने पत्र दृष्टि आते हैं, सूर्यकी किरणोंते दूने त्रिवर्ग भासते हैं, बिजलीकी नाईं चमत्कार है अरु पत्रपर देवता किन्नर अरु

विद्याधर, देवी आय बैठते हैं, अप्सरा आय नृत्य करती हैं अरु गायन करती हैं, जैसे भँवरे गुंजारव करते फिरते हैं. हे रामजी! तहां रत्नके गुच्छे निरंध्र अरु कलियां फूल भी निरंध्र, पत्र फल भी निरंध्र, मणिके गुच्छे निरंध्र, सब निरंध्र ही दृष्टि आवैं अरु सब स्थान फूल फल गुच्छेकरि पूर्ण अरु षट्ऋतुके फूल फल तहां मिलते हैं, महाविचित्र रचना बनी हुई है, तिसके एक टासपर पक्षी बैठे हैं, सिंह बैठे खाते हैं, कहूँ फूल फलादिक खाते हैं, कहूं ब्रह्माजीके हंस बैठे हैं कहूं अग्निके वाहन तोते बैठे हैं अरु कहूं अश्विनीकुमार अरु भगवतीके मोर शिखावाले हैं, कहूं बगले, कहूं कबूतर,कहूँ गरुड बैठे हैं अरु ऐसे शब्द करते हैं, मानो ब्रह्मकमलते उपजा हुआ ओंकारका उच्चार करता है, कई ऐसे पक्षी हैं, कि तिनकी दो दो चोंच हैं, तहां मैं देखिकरि आगे दक्षिणकी कोणको गया, जहां उस वृक्षका टास था, तहां कौए अनेक बैठे हैं,जैसे महाप्रलयविषे मेघ लोकालोक पर्वतपर आय बैठते हैं, तैसे वहां कौए अचल आकार बैठे हैं. सोम, सूर्य, इंद्र, वरुण कुबेर, इनकी यज्ञकी रक्षा वहांते लेनेहारे हैं अरु पुण्यवान् स्त्रियोंको प्रसन्नता देनेहारे भर्ताके संदेश पहुँचानेवाले हैं, सो वहां बैठे हैं, तिनको मैं देखत भया तिनके मध्य महा श्रीमान् भुशुण्ड बैठा है, ऊंची ग्रीवा किये हुए अरु बड़ी कांति है; जैसे नील मणि चमकती है, तैसे उसकी ग्रीवा चमकती है अरु पूर्णमन अरु मानी. अर्थ यह कि, मान करने योग्य है अरु श्याम सब अंग सुंदर अरु प्राणस्पंदको जीतनेहारा नित्य अंतर्मुख अरु नित ही सुखी चिरंजीवी पुरुष तहां बैठा है, जगतविषे दीर्घ आयु, जगत्की आगमापायी, जिसने देखते देखते बहुत कल्पका स्मरण किया है अरु इंद्रकी कई परंपरा देखी हैं, लोकपाल वरुण कुबेर यमादिकके कई जन्म देखे हैं, देवता सिद्धके अनेक जन्म इस पुरुषने देखे हैं, प्रसन्न अरु गंभीर अंतःकरण जिसका अरु सुंदर है वाणी जिसकी अरु वक्रताते रहित, निर्मम अरु निरहंकार सबको सुहृद् मित्र है, बडी कोटर हलवेकी नाईं है, जो पिता समान है, तिनको पुत्रकी नाईं है अरु जो पुत्रके समान हैं, तिनको उपदेश करनेनिमित्त पिता अरु गुरुकी नाईं समर्थ

होता है अरु सर्वथा सर्व प्रकार सर्वकाल सबविषे समर्थ है अरु प्रसन्न महामति हृदयपुंडरीक व्यवहारका वेत्ता है, गंभीर अरु शांतरूप महाज्ञातज्ञेय है, ऐसे पुरुषको मैं देखत भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुंडदर्शनवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

भुशुण्डसमागमवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी। तिसके अनंतर मैं आकाशमार्गते वहीं आया, महातेजवान् दीपकवत् प्रकाशवान् मेरा शरीर, जब मैं उतरा तब जेते कछु पक्षी बैठे थे सो जैसे वायुकरि कमलकी पंक्ति क्षोभको प्राप्त होती है, जैसे भूकंपकरि समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है, तैसे क्षोभको प्राप्त हुए, तिनके मध्य जो भुशुण्ड था, सो मुझको देखत भया, सो मैं कैसा था, जो अकस्मात् गया था तौ भी उसने मुझको जाना कि, यह वसिष्ठ है, ऐसे देखिकरि उठ खडा हुआ अरु कहत भया. हे मुनीश्वर! स्वस्थ तो हौ अरु कुशल तो है? हे रामजी! ऐसे कहिकरि संकल्पके हाथ रचे, तिसने मेरा अर्घ्य पाद्य किया, भावसंयुक्त पूजन करत भया अरु टहलूको दूर करिकै आप ही वृक्षके बडे पत्र लिये तिनका आसन रचिकरि मुझको बैठाया अरु कहत भया. भुशुण्ड उवाच-अहो! आश्चर्य है! हे भगवन्! तुमने बडी कृपाकरि दर्शन दिया है, चिरपर्यंत दर्शनरूपी अमृतकरि हम वृक्षसहित पूर्ण हो रहे हैं. हे भगवन्! मेरे पुण्य जो इकट्ठे हुए थे, सो इकट्ठे होकरि तुमको प्रसन्नताके निमित्त प्रेरि ले आये हैं. हे मुनीश्वर! देवता पूजने योग्य हैं, तिनके भी तुम पूज्य हौ, सो तुम्हारा आना किस निमित्त हुआ है, इस मोहरूप संसारते तुम ही उबरे हो, अरु अखंड सत्ता समानविषे तुम स्थित हौ सदा पावन हौ, अभीष्ट प्रश्न यह है कि, तुम्हारा आना किस निमित्त हुआ है. यह मुझको कहौ आपका मनोरथ क्या है? अर्थ यह कि, क्या

इच्छा है, अरु तुम्हारे चरणके दर्शन करके मैं तौ सब कछु जाना है, जिस निमित्त तुम्हारा आना हुआ है, स्वर्गकी सभाविषे चिरंजीवीका प्रसंग चला था, तब मैं शरणविषे आया था, तिसकरि तुम मुझको पवित्र करने आये हौ, यह तु हारे चरणके प्रताप करिकै मैं जाना है, परंतु प्रभुके वचनरूपी अमृतके स्वादकी मुझको इच्छा है, इस निमित्त मैं प्रभुके मुखते श्रवण करौं. हे रामजी! इसप्रकार चिरंजीवी भुशुण्ड नाम पक्षीने मुझको कहा, तब मैं कहत भया. वसिष्ठ उवाच–हे पक्षीके महाराज! जो कछु तुमने कहा है सो सत्य कहा है, मैं अभ्यागत तेरे आश्रम इस निमित्त आया हौं, कि चिरंजीवीकी कथा चली थी, सो तू मुझको शीतलचित्त दृष्टि आता है अरु कुशलमूर्ति है, अरु संसाररूपी जालते निकसा हुआ दृष्टि आता है, ताते मेरे संशयको दूर करु कि किस कालविषे तू जन्मा है, अरु ज्ञातज्ञेय कैसे हुआ है अरु तेरी आयु कितनी है अरु कौन कौन वृत्तांत तेरा देखा हुआ स्मरण है अरु किस कारण तहां निवास किया है? भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर! जो कछु तुमने पूछा है, सो सर्व ही कहता हौं, शनैः शनैः तुम श्रवण करो, तुम जो हौ सो साक्षात् प्रभु त्रिलोकीके पूज्य हौ अरु त्रिकालदर्शी हौ, परंतु जो कछु तुमनेआज्ञा करी है, सो मानने योग्य है. तुमसारखे महात्मा पुरुष मानने योग्य हैं, तुमसारखे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनके विद्यमान कहे हुए भी अपनेविषे जो कछु तप्तता होती है, सो निवृत्त हो जाती है, जैसे मेघके आगे आये हुए सूर्यकी तप्तता मिटि जाती है, तैसे तुम्हारे आगे कहनेकरि तप्तता निवृत्त हो जाती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डसमागमवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७

भुशुण्डस्वरूपवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! ऐसे कहकर भुशुण्ड मुझको कहत भया कैसा भुशुण्ड है, सर्वज्ञ अरु सुंदर अरु समतासंयुक्त है, सो स्निग्ध अरु

गंभीर वाणीकरि कहत भया, जिसने तागडीविषे ब्रह्मांड तोलि छोडा है, अरु जगत् जिसको तृणकी नाई तुच्छ भासता है. काहेते कि, लोककी उत्पत्ति अरु प्रलय उसने बहुत देखी हैं अरु चित्तकी वृत्ति किसीविषे लगाई नहीं जैसे क्षीरसमुद्रते निकसा मंदराचल परिपूर्ण समशुद्ध है, तैसे उसका मन शुद्ध है, जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वल है, तैसे वह आत्मपदविषे विश्राम पाय करि आनंदसों पूर्ण है अरु जगत्के उत्पत्ति विनाश जिसने देखे हैं, ऐसा योगीश्वर मुझको मधुर अरु उचित आगम वाणी कहत भया

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डस्वरूपवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

भुशुण्डोपाख्याने मातृव्यवहारवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर! इस जगत्विषे जो बडा है, सो सदाशिव सबका नायक देवताओंविषे देवताओंका देव है अरु अर्धांगी भगवती गौरीको शरीरविषे धारी है, महासुंदरमूर्ति त्रिनेत्र है अरु बडी जटा है अरु मस्तकपर चंद्रमा है अमृत जिसते स्रवता है अरु गंगा जिसकी जटाके चारों ओर चलती है, जैसे फूलमाला कंठविषे होती है, तैसे चलती है अरु नील-कंठ है, कालकूट विषके पानकरि वह विभूषण हो गया है अरु कंठविषे रुंडकी माला है अरु सर्व ओरते भस्म लगी हुई है अरु दिशा जिसके वस्त्र हैं अरु स्मशानविषे जिसका गृह है अरु महा शांतरूप विचरता है अरु साथ जो सेना है, तिसके महाभयानक आकार हैं, किसीके तौ रुद्रकी नाईं तीन नेत्र हैं अरु किसीका तोतेकी नाईं मुख है, किसीका ऊंटका मुख है, किसीका गर्दभका मुख है, किसीका बैलका मुख है, भूत विचरनेहारे हैं, कई जीवके अंतर प्रवेशकारि जानेहारे हैं, रक्तमांसका भोजन करनेवाले जिसके साथ फिरते हैं, कई पहाड़विषे रहते हैं, कई वनविषे, कई कंदराविषे, स्मशानविषे, इत्यादिक स्थानविषे उनका निवास होता है अरु साथ देवियां भी ऐसी हैं, जिनकी महाभयानक चेष्टा

आचार है, तिन देवियोंविषे जो मुख्य देवियां हैं, तिनका जिस जिस दिशाविषे निवास है सो सुनो. जया अरु विजया अरु जित अरु अपराजित वामदिशाकी ओर तुंबर रुद्रके आश्रित हैं, सिद्ध अरु सुखका अरु रक्तका अरु उतला भैरव रुद्रके आश्रित हैं, सो सर्व देवियोंके मध्य यह अष्ट नायिका और शत सहस्र देवियां हैं, रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, कौमारी, वासवी अरु सौरी, इत्यादिक शतसहस्र देवियां हैं, इनके साथ मिली हुई, आकाशविषे उत्तम देव, किन्नर गंधर्व पुरुषासुर संभवती हैं, तिसमेंसे मिलीहुई भूचर पृथ्वीविषे कोट है, नाना प्रकार रूप नाम धारणेहारी हो पृथ्वीविषे जीवका भोजन करती हैं, किसीके वाहन ऊंट हैं, किसीके गर्दभ हैं, किसीके काक, किसीके वानर हैं, किसीके वाहन तोते इत्यादिक वाहन तिनके तीनों जगत्‌विषे रहते हैं, तिन देवियोंविषे कई पशुधर्मिणी हैं, जो क्षुद्र धर्मविषे स्थित हैं अरु कई विदितवेद्य जीवन्मुक्त पदविषे स्थित हैं, तिनके मध्यम नायिका अलंबुषा देवी है, जैसे विष्णुका वाहन गरुड है, तैसे देवीका वाहन काक है, सो देवी अष्टसिद्धिके ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो देवियां एक कालमें समागम करत भयीं अरु विचार करत भयीं, जगतके पूज्य तुंबर अरु भैरवको पूजत भयीं अरु विचार किया कि, सदाशिव हमारे साथ भावसंयुक्त नहीं बोलता अरु हमको तुच्छ जानता है, हम इसको कछु अपना प्रभाव दिखावैं, प्रभाव दिखाये विना कोऊ किसीको नहीं जानता, ऐसे विचार करिके उमाको वश करि दुराय ले गयीं अरु वहां उत्साह किया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डोपाख्याने मातृव्यवहारवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

भुशुण्डालयलाभवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वरो ! फिर वे देवियां मद्य, मांसादिक भोजन करत भयीं अरु मायाके छलकरिके पार्वतीको मारिकारि चावलकी नाईं

रांधा अरु नृत्य करने लगी, उसके कछुक अंग रांधे हुए सदाशिवको आनि दिये, तब सदाशिवने जाना कि, मेरी प्यारी पार्वती इनने मारी है, ऐसे निश्चय करिके कोपने लगा, तब उन देवियोंने अपने अपने अंगते उसके अंग निकासे, सौरीने नेत्र निकासे, कौमारीने नासा निकासी, इस प्रकार अपने अपने अंगते निकासकरि तैसी ही पार्वतीकी मूर्ति लाय दीनी अरु नूतन विवाह करि दिया तब सदाशिव प्रसन्न भया, सर्व ठौर उत्साह आनंद किया,तब सर्व देवियां अपने अपने स्थानको गयीं अरु चंद्रनामा काक जो अलंबुषा देवीका वाहन था, सो ब्रह्माणीकी हंसिनीसाथ क्रीडा करत भया, क्रम करिके सबसे रमण क्रीडा करी, तब उन सबको गर्भ प्राप्त भये अरु हंसिनियां ब्रह्माणीके पास गयीं, तब ब्रह्माणीने कहा, अब तुमको मेरे उठावनेकी शक्ति नहीं, तुम गर्भवती भयी हो, जहां तुम्हारी इच्छा होवै तहां जाव, बहुरि फिरि आवना. हे मुनीश्वर! ऐसे कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भयी अरु नाभिसरोवर जो ब्रह्माजीका उत्पत्तिस्थान है, तहां जाय स्थित भयी, तिस तालके कमलपत्र ऊपर आय निवास किया, जब तहां केताक काल व्यतीत भया, तब उन हंसिनीने तीन तीन अंडे दिये, जैसे बल्लीते अंकुर उत्पन्न होता है, तैसे उनके एकविंशति अंडे क्रम करि उत्पन्न भये, तिनको फोडत भयीं, जैसे ब्रह्मांड खपरको फोडिये, तीन अंडते हमारे अंग उत्पन्न भये हैं, क्रम करिकै हम बडे उडने योग्य हुए, तब माता हमको ब्रह्माणीके पास ले गयी,तिसके आगे हम मस्तक टेका तब ब्रह्माणी समाधिते उतरी थी, तब उसने देखिकरि हमको कृपाकी वृत्ति धारी हमारे शीशपर हाथ रक्खा उसके हाथ रखनेसाथ हमारी अविद्या नष्ट हो गयी अरु हमारा मन तृप्त शांतरूप हो गया, जीवन्मुक्तपदविषे हम स्थित भये, तब हमको यह वृत्ति फुरि आयी कि किसी प्रकार एकांत ध्यानविषे स्थित होवैं, देवीने आज्ञा करी अब तुम जावहु, तब देवीजीकी आज्ञा करि हम पिताके पास आये. पिताने हमको कंठ लगाया अरु मस्तक चूंबा, तब हम अलंबुषा देवीकी पूजा करत भये, तब पिताने हमसे कहा. हे पुत्रो! तुम संसाररूपी जालविषे तौ नहीं फँसे अरु जो तुम निकसे

नहीं फँसे हौ, तब मैं भगवती देवीजीकी प्रार्थना करता हौं, वह भृत्यपर दयालु है, जैसे तुम प्राप्त होहुगे, तैसे तुमको प्राप्त करैगी. हे मुनीश्वर! तब हमने कहा हे पिता! हम तौ ज्ञातज्ञेय हुए हैं, जो कछु जानने योग्य है सो जाना है अरु जो पाने योग्य है सो हम पाया है; ब्रह्माणी देवीजीके प्रसादकरिकै अब हमको एकांत स्थानकी इच्छा है, जहां एकांत होवै तहां जाय स्थित होवैं, तब चंद्रपिताने कहा हे पुत्रो! एकांत स्थान सुन, निर्दोष महापावन सुन्दर आलय बना हुआ है, निर्भय निर्मोह सर्व क्षोभते रहित जहां कोऊ दुःख नहीं, ऐसा एकांत स्थान है अरु सर्व रत्नकी खान है अरु सर्व देवताओंका आश्रयरूप है, सुमेरु जो पर्वत है, सूर्य चंद्रमा उसके दीपक हैं, चहूँफेर फिरते हैं, ब्रह्मांडरूपी मण्डपका वह स्तंभ है अरु स्वर्णका है. चन्द्र सूर्य तिसके नेत्र हैं अरु ताराकी कंठविषे माल है, दशों दिशा तिसके वस्त्र, रत्नमणिका भूषण है, वृक्षवल्ली तिसके रोमावली हैं, त्रिलोकीविषे तिसकी पूजा है, षोडश सहस्र योजन पातालविषे हैं,तहां नाग दैत्य इसकी पूजा करते हैं अरु चौरासी सहस्र योजन ऊर्ध्वको है, तहां गंधर्व देवता किन्नर राक्षस मनुष्य इसकी पूजा करते हैं,ऐसा पर्वत जंबूद्वीपके एक स्थानविषे स्थित है, चतुर्दश प्रकारके भूतजात उसके आश्रय रहते हैं, बड़ा ऊंचा पर्वत है, तिसका पद्मराग नाम एक शिखर है, मानो सूर्य आय उदय हुआ है, ऐसा प्रकाशरूप है, तिस शिखरके ऊपर एक बड़ा कल्पवृक्ष है, मानो जगत्‌रूपी शिखरका प्रतिबिंब आय पड़ा है, तिस कल्पवृक्षके दक्षिण दिशाकी ओर जो टास है, तिसके महारत्न गुच्छे हैं अरु स्वर्णके पत्र चंद्रमाके बिंबवत् जिसके फूल हैं अरु सघन रमणीय गुच्छे लगे हैं, तहां एक आलय बना हुआ है, वहां मैं भी आगे रहि आया हौं, जब देवीजी समाधिविषे स्थित भयी थी, तब मैं वहां आलय बनायकरि स्थित भया था, चिंतामणिकी उसको शलाका लगी है, महारत्नसे बना है, स्वर्णवत् कुटीर बनी है, तहां तुम जाय निवास करौ; आगे भी वहां कौवेके पुत्र रहते हैं उनका अंतर आत्मज्ञानकरि शीतल है अरु बाह्यते फूलफलकरि शीतल है, तहां तुम भी जायकरि स्थित होहु. तुमको वहां भोग भी है अरु मोक्ष

भी है, खेदते रहित तहां जाय स्थित होहु. हे वसिष्ठजी ! जब इस-प्रकार पिताने हमको कहा, तब हम सब ही पिताके चरण लगे, पिताने हमारा मस्तक चुंबन किया, तब हम विंध्याचल पर्वतते उडे, आकाश मार्गको मेघके स्थान लंघे. नक्षत्रचक्र लंघे, लोकांतरके स्थान लंघि-कारि ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त हुए, देवीजीको प्रणाम करत भये; भले प्रकार उसने हमारे ऊपर कृपादृष्टि करी, दया अरु स्नेहसहित कंठ लगाय मस्तक चूमा हम भी मस्तक टेककारि सुमेरुको चले. सूर्य चंद्रमाके लोकको लंघ गये, तारागण लोकपाल देवताके लोकस्था-नको लंघ गये, मेघपवनके स्थानको लंघिकारि सुमेरु पर्वतके कल्पवृक्षपर आनि स्थित भये. हे मुनीश्वर ! जिस प्रकार हम उपजे हैं अरु जिस-कारि ज्ञानको प्राप्त भये हैं, जिस प्रकार यहां आय स्थित भये हैं, सो तुम्हारे आगे अखंडित कहा है, आगे तुमको जो कछु संशय होय सो पूछो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डोपाख्याने आलयलाभवर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०.

संतमाहात्म्यवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर ! यह चिरकालकी वार्त्ता तुमको कही है, बहुत कल्प व्यतीत भये हैं, वह सृष्टि इस सृष्टिते दूरि है, बहुत युग व्यतीत भये हैं, परंतु मैं तुमको अभ्यासके बलते वर्त्तमानकी नाईं सुनाया है. हे मुनीश्वर ! मेरा कोऊ पुण्य था, सो फला है, जो तुम्हारा निर्विघ्न दर्शन हुआ है, यह जो आलय अरु शाखा हैं अरु वृक्ष हैं, सो आज पावनताको प्राप्त हुए हैं, जो दर्शन हुआ है, अब जो कछु संशय रहता है, सो पूछो, मैं कहौं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार कहि-कारि उसने मेरा भले प्रकार आदर सहित अर्घ्यपाद्यकारि पूजन किया, तब मैं उसको कहा- हे पक्षियोंके ईश्वर ! तेरे वह भाई कहां हैं ? जो तेरे समान तत्त्ववेत्ता थे, सो तौ दृष्टि नहीं आते, एकला तू ही दृष्टि आता है. भुशुण्ड

उवाच–हे मुनीश्वर! यहां मुझको बहुत काल व्यतीत भया है, युगकी पंक्ति व्यतीत भयी है, जैसे सूर्यको कई दिन रात्रि व्यतीत हो जाते हैं तैसे मुझको युग व्यतीत भये हैं, केताक काल वह भी रहे थे, समय पायकरि उनने शरीर त्यागि दिये, तृणकी नाईं त्यागिकरि शिव आत्मपदको प्राप्त हुए. हे मुनीश्वर! बडी आयुर्बल होवै, अथवा सिद्ध महंत होवै, बली होवै, अथवा ऐश्वर्यवान् होवै, काल सबको ग्रासि लेता है. वसिष्ठ उवाच–हे साधो! जब प्रलयकालका समय आता है, तब सूर्य, चंद्रमा, वायु, मेघ यह अपनी मर्यादा त्यागि देते हैं, तब बड़ा क्षोभ होता है, तुझको खेद किसी कारणते नहीं होता, सूर्यकी तप्तताकरि अस्ताचल उदयाचल आदिक पर्वत भस्म हो जाते हैं, तिस क्षोभविषे तू खेदवान् किसकरि नहीं होता? भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर! एक जीव जगत्‌विषे आधारकरि रहते हैं, एक निराधार रहते हैं, जिनको ऐश्वर्य सेनादिक पदार्थ होते हैं, सो आधारसहित हैं अरु जो इन पदार्थते रहित हैं, सो निराधार हैं, सो दोनोंको हम तुच्छ देखते हैं, सत् कोऊ नहीं. बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् बली भी हैं, परंतु सत्य कोऊ नहीं, तिनविषे पक्षीकी जात महातुच्छ है, उजाड वनविषे उनका निवास है, वहां ही इनका दाना पानी है, यह निरालंब है, इनकी जीविका दैवने ऐसे बनाई है. हे भगवन्! मैं तौ सदा सुखी हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, आत्मसंतोषकरि मैं तृप्त हौं, कदाचित् इस जगत्‌के क्षोभकरि मैं नहीं खेदको प्राप्त होता, स्वभावमात्रविषे संतुष्ट हौं, कष्ट चेष्टाते मुक्त हौं. हे ब्राह्मण! अब हम केवल कालको व्यतीत करते हैं, अपर जगत्‌के इष्ट अनिष्ट हमको चलाय नहीं सकते. न मरनेकी हमको इच्छा है, न जीनेकी इच्छा है, काहेते कि जीना मरना शरीरकी अवस्था है आत्माकी अवस्था नहीं. हमको जीवनेविषे राग नहीं मरनेविषे द्वेष नहीं, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, तिसीविषे संतुष्ट हैं. हे मुनीश्वर! ऐसे ऐसे देखे हैं, सो बहुरि भस्म हो गये हैं तिनकी अवस्थाको देखिकरि हमारे मनकी चपलता जाती रही है अरु हम इस कल्पवृक्षपर बैठे हैं, कैसा कल्पवृक्ष है, रत्नकी वल्ली जिसको लगी है, तिसपर बैठिकरि मैं प्राण अपानकी गतिको देखता हौं, इसकी कलाकी

जो सूक्ष्म गति है, तिसका मैं ज्ञाता हौं अरु दिनरात्रिका मुझको ज्ञान कछु नहीं, सत् बुद्धिकरिकै मैं कालको जानता हौं अरु सार असारको भले प्रकार जानता हौं, हे मुनीश्वर ! जेता कछु विस्तार भासता है, सो सब झूठा है, सत् कछु नहीं, इसी कारणते हमको किसी दृश्य पदार्थकी इच्छा नहीं, परम उपशम पदविषे स्थित हौं, सब जगत् भी हमको शांतरूप है, जो कोऊ इस जगज्जालको आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता, यह जगत् सब चंचलरूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता. इसकी अवस्था-विषे हम पत्थरवत् अचल हैं, न किसीका हमको राग फुरता है, न द्वेष फुरता है, न कीसीकी इच्छा करै, सब जगत् हमको तुच्छ भासता है. यह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रविषे जाय पडती हैं अरु हम कांठेपर खडे हैं, कदाचित् नहीं डूबते, अपर जेते कछु जीवभूत हैं, सो पडे डूबते हैं, कई एक तुम सारखे निकसे हुए हैं अरु तुम्हारी कृपा करिकै हम भी निर्विकार पदको प्राप्त हुए हैं, हे मुनीश्वर ! मैं निर्विकार हौं, सब जगत्के क्षोभते रहित हौं, आत्मपदको पायकरि उपशमरूप हौं. हे मुनीश्वर ! तुम्हारे दर्शन करिकै मैं अब पूर्ण आनंदको प्राप्त हुआ हौं, संतकी संगति चंद्रमाकी चांदनीवत् शीतल है, अमृतकी नाईं आनंदको देनेहारी है. ऐसा कौन है, जो संतके संगकरि आनंदको प्राप्त न होवै, सब आनंदको प्राप्त होते हैं, यह अर्थ है, हे मुनीश्वर ! संतका संग चंद्रमाके अमृतते भी अधिक है. काहेते कि, वह शीतल गौण है, अंतरकी तप्तता नहीं मिटावती अरु संतका संग अंतरकी तप्तता मिटाता है, वह अमृत क्षीरसमुद्रके मथनते क्षोभसाथ निकसा है, अरु संतका संग सुखसे प्राप्त होता है, आत्मानंदको प्राप्त करता है, ताते यह परम उत्तम है, मैं तो इसते परे अपर उत्तम नहीं मानता, संतका संग सबते उत्तम है अरु संत भी वही हैं, जिनकी सर्व इच्छा आपात-रमणीय निवृत्त भयी है, अर्थ यह कि विचारविना दृश्य पदार्थ सुंदर भासता है अरु नाशवंत है. जिनको ऐसे पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं अरु सदा आत्मानंदकारि तृप्त हैं अरु अद्वैतनिष्ठा है, द्वैतकलनाका जिनको अभाव भया है, सदा आत्मानंदविषे स्थित हैं, ऐसे पुरुष संत कहाते

हैं तिन सन्तनकी संगति ऐसी है, जैसे चिंतामणि होता है, जिसके पायेते सर्व दुःख नाश होते हैं. हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी कमलके भँवरे एक तुम ही दृष्टि आते हौ, सब ज्ञानवान्‌ते उत्तम दृष्टि आये हौ, तुम्हारे वचन स्निग्ध सत्य कोमल आत्मरसकरि पूर्ण प्रिय हृदयगम्य अरु उचित हैं अरु हृदय महागंभीर उदार धैर्यवान् अरु सदा आत्मानंदकरि तृप्त है, ताते तुम सबते उत्तम मुझको दृष्टि आये हौ. तुम्हारे दर्शनकरि मेरे दुःख नष्ट भये हैं, आज मेरा जन्म सफल भया है, तुम सारखे संतका संग आत्मपदको प्राप्त करता है अरु दुःखभयको नष्ट करिकै निर्भयताको प्राप्त करता है.

इति श्रीयोगवसिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे संतमाहात्म्यवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१.

भुशुण्डोपाख्याने जीवितवृत्तान्तवर्णनम्।

भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर! तुमने पूछा था कि, सूर्य वायु जलका क्षोभ होता है, तब तू खेदवान् किसकरि नहीं होता, तिसका उत्तर श्रवण करहु. जब जगत्‌को क्षोभ होता है तब मेरा यह कल्पवृक्ष स्थिर रहता है; क्षोभको नहीं प्राप्त होता. हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सब लोकको अगम है, भूत नष्ट होते हैं, तब भी मैं इसकरि सुखी रहता हौं, जब हिरण्यकशिपु द्वीपसहित पृथ्वीको समेटिकरि पाताल ले गया था, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, जब देवताओंका अरु दैत्योंका युद्ध हुआ, तब अपर पर्वत सब चलायमान भये अरु मेरा वृक्ष स्थिर रहा अरु जब क्षीरसमुद्रके मथनेनिमित्त विष्णुजी सुमेरुको भुजासे उखाडने लगे तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया. बहुरि मंदराचलको ले गये, तब क्षीरसमुद्रको मथने लगे, प्रलयकालका पवन अरु मेघका क्षोभ हुआ तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, बहुरि एक दैत्य सुमेरुको आय पटकने लगा, उसने कछुक उखाड़ा परंतु मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं

भया. हे मुनीश्वर ! इत्यादिक बड़े बडे उपद्रव आनि हुए हैं, प्रलयकालके मेघ अरु पवन अरु सूर्य तपे हैं, तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है. वसिष्ठ उवाच–हे साधो ! जब प्रलयकालके वायु अरु मेघ आय क्षोभते हैं, तब तू विगतज्वर कैसे रहता है ? भुशुण्ड उवाच–हे साधो ! जब प्रलयकालके वायु मेघादिक क्षोभ करते हैं, तब मैं कृतघ्नकी नाईं अपने आलणेको त्यागि जाता हौं, सब क्षोभते रहित आकाशविषे जाय स्थिर होता हौं अरु सब अंगको सकुचाय लेता हौं, जैसे वासनाको रोकेते मन सकुचि जाता है, तैसे मैं अंगको सकुचाय लेता हौं. हे मुनीश्वर ! जब प्रलयकालका सूर्य तपता था, तव मैं जलकी धारणाकरि जलरूप हो जाता था अरु जब वायु चलता था, तब पर्वतकी धारणा बांधिकरि स्थित हो जाता था, जब बहुत तत्त्वोंका क्षोभ होता था, तब सबको त्यागिकरि ब्रह्मांड खपरके पार जो निर्मल परमपद है, तहां मैं जाय स्थित होता हौं, सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर हो जाता हौं,जब ब्रह्मा उपजिकरि बहुरि सृष्टिको रचता है, तब मैं सुमेरुके वृक्षऊपर इसी आलणेविषे स्थित होता हौं. वसिष्ठ उवाच–हे पक्षीश्वर ! जैसे तुम अखंड स्थित होते हौ तैसे अपर योगीश्वर स्थित क्यों नहीं होते ? भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर ! यह परमात्माकी नीति है, सो किसीसे लंघी नहीं जाती, उन योगेश्वरकी नीति इस प्रकार हुई है अरु मेरा होना इसी प्रकार हुआ है. ईश्वरकी नीति अतुल है, उसविषे तुल्यता किसीको करी नहीं जाती, जहां जैसी नीति हुई है. तहां तैसी ही है, अन्यथा किसीको नहीं होती, इसीप्रकार हमको भयी है, जो कल्पकल्पविषे इसी पर्वतके वृक्ष ऊपर आलणा होता है, हम आय निवास करते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे पक्षीके नायक ! तुम्हारी अत्यंत दीर्घ आयु, ज्ञानविज्ञानकरि संपन्न हौ अरु योगीश्वर हौ, तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं, तिनविषे जो स्मरणमें आता है सो कहौ. भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर ! एकबार ऐसे स्मरण आता है कि, पृथ्वीपर तृण अरु वृक्ष ही थे. अपर कछु न था बहुरि एकवार एकादश सहस्र वर्ष पर्यंत भस्म ही दृष्टि आवे जो वृक्ष तृण जलि गये, एक वार ऐसी सृष्टि हुई कि तिसविषे चंद्र सूर्य न उपजे, दिन अरु रात्रिकी गति कछु जानिये नहीं

कछु कछु सुमेरुके रत्नोंका प्रकाश होवै, एक कल्प ऐसा हुआ है, कि देवताओं अरु दैत्योंका युद्ध हुआ, दैत्योंकी जीत भयी, सब देवता तिनने मनुष्यकी नाईं हत किये. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों ही देवता रहे, अपर सब सृष्टि इनने जीती, बीस युगपर्यंत तिनहीकी आज्ञा वर्ती, बहुरि एक वार चित्तमें ऐसे आता है कि दो युगपर्यंत पृथ्वीपर वृक्ष ही रहे, अपर सृष्टि कछु न भासै, बहुरि एक वार दो युगपर्यंत पृथ्वीके ऊपर पर्वत ही सघन हो रहे, अपर कछु न भासै अरु एक वार ऐसे हुआ, कि सब जल ही हो गया, अपर कछु न भासै, एक सुमेरु पर्वत स्तंभेकी नाईं भासै अरु एक बार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाते आया अरु विंध्याचल पर्वत बढ़ा, सब ब्रह्मांड चूर्ण करि दिया, यह स्मरण आता है. हे मुनीश्वर! बहुत कछु स्मरण आता है, परंतु संक्षेपते सुनो. एक कालको सृष्टिविषे देवता ही थे, मनुष्य दैत्यादिक कछु न भासै, एक वार ऐसी सृष्टि हुई, कि ब्राह्मण मद्यपान करैं अरु शूद्र बडे हो बैठैं अरु जीवविषे विपर्यय ही धर्म होवैं अरु एक वार ऐसी सृष्टि स्मरणमें आती है, कि पृथ्वीविषे पर्वत कोई दृष्टि न आवैं, बड़ा उजाड़ ही हो रहा, एक वार ऐसी सृष्टि हुई कि, सूर्य चंद्रमा नक्षत्र लोकपाल कोई न उपजे एक सृष्टि ऐसी हुई जो सब ही उपजै, एक सृष्टि ऐसी हुई कि तिसविषे स्वामिकार्तिक न उपजा, दैत्य बढ़ि गये, दैत्योंहीका राज्य हो गया, इत्यादिक मुझको बहुत स्मरण है, केताक कहौं? सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, इंद्र, उपेंद्र, लोकपाल इनके बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं, जब हिरण्यकशिपुको हरिने मारा है, सो भी चित्त है, जो वेदको चुराय ले आया है अरु क्षीरसमुद्र मथे हैं, सो भी बहुत स्मरणमें आते हैं, ऐसी सृष्टि भी देखी है कि, विष्णुजीका वाहन गरुड़ हुआ नहीं अरु ब्रह्माजी हंसवाहन विना हुआ है अरु रुद्र बैल वाहन विना हुआ है, इसते आदिलेकरि बहुत कछु देखा है, क्या क्या तुम्हारे आगे वर्णन करौं?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुंडोपाख्याने जीवितवृत्तांतवर्णनं नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

चिरातीतवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर ! जब बहुरि सृष्टि उत्पन्न भयी तब तुम उत्पन्न हुए भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इंद्र, मरीचि, उद्दालक, त्रित, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार भृगेश आदिक उपजैं, बहुरि सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय, आदिक पर्वत उपजैं, अत्रि, व्यासदेव, वाल्मीकि इत्यादिक यह जो अल्पकालके उपजे हैं. हे मुनीश्वर ! तुम ब्रह्माके पुत्र हौ तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं, कभी तुम आकाशते उपजे हौ, कबहूँ जलते उपजे हौ, कबहूँ पहाडते, कबहूं वनते, कबहूं अग्निते उपजे हौ. हे मुनीश्वर ! मंदराचल पर्वत क्षीरसमुद्रविषे पायकरि जब मथने लगे तब देवता अरु दैत्य दोनों क्षोभवान् हुए, मंदराचल अधःको चलने लगा, तब विष्णुजी कछुवाका रूप धर पर्वतको ठहरावत भये अरु अमृतको निकासा सो मुझको द्वादश वार स्मरणमें आता है अरु तीनवार हिरण्याक्ष पृथ्वीको पातालविषे समेटि ले गया है अरु षड्वार परशुराम रेणुका माताका पुत्र हुआ है, बहुतसृष्टिके पाछे हुआ है, जब दैत्य क्षत्रियके गृहविषे उपजने लगे तिस निमित्त विष्णुजी परशुरामका अवतार लेत भये बहुत काल युगके व्यतीत हो गये हैं. हे मुनीश्वर ! एक सृष्टि ऐसी भयी है, कि अगलेते विपर्यय-रूप शास्त्र अरु पुराणके अर्थ अपर प्रकारके अरु एक कल्पविषे अपर ही पाठ, अपर ही युक्ति, अपर ही अर्थ, काहेते जो युग युग प्रति अपर ही पुराण होते हैं,कई देवता कहाते हैं,कई ऋषीश्वर मुनीश्वर कहाते हैं, अपर कथा इतिहास बहुत स्मरणमें आते हैं, वाल्मीकिने द्वादशवार रामायण कीनी हैं, सो विस्मरण हो गया है. जगत्‌विषे दो वार महाभारत व्यासने किये हैं अरु यह जो व्यासनामा जीव है, तिसने सप्तवार किया है. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार आख्यान कथा इतिहास शास्त्र जो जो हुए हैं, सो मुझको बहुत स्मरणमें आते हैं. हे साधो ! दैत्यनके मारनेनिमित्त विष्णुजीने युग युग प्रति अवतार धरे हैं. एकादश वार मुझको रामजी

स्मरण आते हैं अरु वसुदेवके गृहविषे पृथ्वीके भार उतारनेनिमित्त कृष्णजीने सोलह वार अवतार लिये हैं, सो मुझको स्मरण है. तीन वार नरसिंह अवतार धारिकारि हिरण्यकशिपुको मारा है. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आती हैं, परंतु सब ही भ्रममात्र है, कछु उपजती नहीं, जब आत्मतत्त्वविषे देखता हौं, तब सृष्टि कछु नहीं भासती, सब सत्तामात्र है जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकारि लीन हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे मनके फुरणेकारि कई सृष्टि उपजती हैं अरु लीन हो जाती हैं, तिस फुरणेकारि कई सृष्टि देखी हैं, कई सदृश ही उपजती हैं, कई अर्धसदृश कई विपर्ययरूप उपजती हैं. हे मुनीश्वर ! कई सृष्टिविषे उन ही जैसे आकार अरु उन ही जैसे कर्म आचार होते हैं, कई मन्वंतर मन्वंतरप्रति अपर ही अपर सृष्टि होती हैं, किसीविषे ऐसा होता है, पुत्र पिता हो जाता है शत्रु मित्र हो जाता है, बांधव अबांधव अरु अबांधव बांधव हो जाते हैं, इस प्रकार विपर्यय होते दृष्टि आये हैं, कबहूँ हेमलतावान् इस ही कल्पवृक्षपर आलय होता है, कबहूँ मंदराचलविषे, कबहूँ हिमालयपर्वतविषे, कबहूँ मालव पर्वतविषे हमारा आलय होता है, इसी प्रकार वन वृक्ष वल्ली ऊपर हो जाता है, कबहूँ इसी कल्पवृक्ष ऊपर ही हो जाता है, अब तौ बहुत काल हुआ है, जो इसी कल्पवृक्ष पर होता है अरु इसी आलयविषे हमारा निवास होता है, जब सृष्टि नाश हो जाती है, तब भी मेरा यही शरीर रहता है, मैं आसन लगायकारि अपनी पुर्यष्टकको ब्रह्मसत्ताविषे स्थित करता हौं, इसी कारणते मुझको बहुरि यही शरीर प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प फुरता है, तैसा आगे जगत् हो भासता है. यह जगत् सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं केवल भ्रमरूप है; तिस जगद्भ्रमविषे अनेक आश्चर्य दृष्टि आते हैं, पिता पुत्र हो जाता है, मित्र शत्रु हो जाता है, स्त्री पुरुष हो जाती हैं, पुरुष स्त्री हो जाता है, अनेक वार ऐसे होते हैं, कबहूँ कलियुगविषे सत्ययुग वर्त्तने लगता है, सत्ययुगविषे कलियुग वर्त्तने लगता है, द्वापरविषे त्रेता, त्रेताविषे द्वापर वर्त्तने लगता है, अदृश्य ही वेदविद्याके अर्थ होते हैं, नाना प्रकारके आश्चर्य भासते हैं. हे

मुनीश्वर ! सहस्र चौकडी युगकी व्यतीत होती हैं, तब ब्रह्माजीका एक दिन होता है, सो दो दिन ब्रह्मा समाधिविषे जुड़ रहा, सृष्टि शून्य ही रही, यह भी स्मरण आता है, अपर भी कई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं, क्या क्या कहौं ?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चिरातीतवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

भुशुण्डोपाख्याने संकल्पनिराकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार जब भुशुण्डने कहा, तब मैं बहुरि जिज्ञासाके अर्थ पूंछत भया, कि हे पक्षियोंके ईश्वर ! तू चिर-पर्यंत जगत्‌विषे व्यवहार करता रहा है, तेरे शरीरको मृत्युने किसनि-मित्त ग्रास न किया ? भुशुण्ड उवाच—हे मुनीश्वर ! तू सर्व जानता है, परंतु ब्रह्मजिज्ञासा करिकै पूँछता है, ताते जैसे भृत्य टहलुआ वेदार्थ पढ़िकारि बहुरि गुरुके आगे कहते हैं, तैसे मैं आज्ञा मानिकारि कहता हौं. हे मुनीश्वर ! मृत्यु जिसको मारता है अरु जिसको नहीं मारता, सो श्रवण करहु. दुःखरूपी जो मोती हैं, सो वासनारूपी तंतुसे परोये हैं, यह माला जिसके हृदयरूपी गलेविषे पड़ी हुई है, तिसको मृत्यु मारता है अरु जिसके कंठविषे यह माला नहीं पडी, तिसको मृत्यु नहीं मारता, शरीररूपी वृक्ष है अरु चित्तरूपी सर्प तिसविषे बैठा है, आशा-रूपी अग्नि जिस वृक्षको नहीं जलावता, सो मृत्युके वश नहीं होता अरु रागद्वेषरूपी विषसों पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है अरु तृष्णाकारि चूर्ण होता है, लोभरूपी व्याधकारि नष्ट होता है, तिसको मृत्यु मारता है अरु ग्रासि लेता है, जिसको इनका दुःख नहीं स्पर्श करता तिसको मृत्यु भी नहीं नाश करता. हे मुनीश्वर ! शरीररूपी समुद्र है, क्रोधरूपी वडवाग्निकारि जलता है, जिसको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलाता, तिसको मृत्यु भी नहीं मारता, जिसका मन परमपावन निर्मल पदविषे

दृढ विश्रांत स्थित हुआ है, तिसको मृत्यु नाश नहीं करता है. हे मुनीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिंता, चंचलता, प्रमाद इत्यादिक दुःख जिसविषे होते हैं, तिसको मृत्यु मारता है अरु जिसको काम, क्रोध, लोभादिक रोग (संसारबंधनका कारण) बांधि नहीं सकते अरु जो इनकरि लेपायमान नहीं होता, तिसको आधिव्याधिरूपी मल स्पर्श नहीं करते अरु जो लेता है, देता है, सब कार्य करता है अरु चित्तविषे अनात्माभिमान स्पर्श नहीं करता अरु जो पुरुष इष्टकी वांछा नहीं करता, अनिष्टविषे दोष नहीं करता, दोनोंकी प्राप्तिविषे सम रहता है, तिसको समाहितचित्त कहते हैं. हे मुनीश्वर! जेते कछु ऐश्वर्यवान् सुंदर पदार्थ हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, चक्रवर्ती राजा अरु स्वर्गविषे गंधर्व विद्याधर किन्नर देवता तिनकी स्त्री गण अरु सुरकी सेना आदिक सब नाशरूप हैं. मनुष्य, दैत्य, देवता, असुर, पहाड़, ताल, समुद्र, नदियां जेते कछु बडे पदार्थ हैं, सो सब ही नाशरूप हैं, स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक, पाताललोक जेता कछु जगत् है, भोग हैं, सो सब असत्‌रूप हैं अरु अशुभ हैं, कोऊ पदार्थ श्रेष्ठ नहीं, न पृथ्वीका राज्य श्रेष्ठ है, न देवताका रूप श्रेष्ठ है, न नागका पाताललोक श्रेष्ठ है, न कछु शास्त्रका विचारणा श्रेष्ठ है, न काव्यका जानना श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाके क्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न मूढताकरि मरजाना श्रेष्ठ है, न नरकविषे पड़ना श्रेष्ठ है, न इस त्रिलोकीविषे अपर कोऊ पदार्थ श्रेष्ठ है. जहां संतका मन स्थित है सोई श्रेष्ठ है, यह नाना प्रकारका जगत्क्रम चलरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मूढ होकरि चल पदार्थविषे नहीं रमते, वह बहुत जीनेकी इच्छा भी नहीं करते.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डोपाख्याने संकल्पनिराकरणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४.
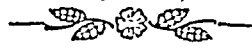
भुशुण्डोपाख्याने प्राणविचारवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच-हे मुनीश्वर ! केवल एक आत्मदृष्टि सबते श्रेष्ठ है, जिसके पायेते सर्व दुःख नाश होते हैं अरु परमपदको प्राप्त होते हैं, सो आत्मचिंतवन सर्व दुःखका नाश करता है, चिरकालके तीन ताप-करि तपा जो जीव है अरु जन्मके मार्ग करि थका हुआ है, तिसके श्रमको दूर करती है अरु तप्तता मिटावती है, समस्त दुःखको जो अविद्या-सत्ता अनर्थ प्राप्त करणेहारी है, तिसको नाश करती है, जैसे अंधकारको प्रकाश नाश करता है, तैसे इसके अंतर शीतल प्रकाश उपजाती है. हे भगवन् ! ऐसी जो आत्मचिंतवना है, सो सब संकल्पते रहित है सो तुम सारखेको सुगम प्राप्त है अरु हम सारखेको कठिन है, काहेते जो सम सतकलनाते अतीत है. हे मुनीश्वर ! तिस आत्मचिंतनकी सखी अपर भी कोऊ इसको प्राप्त होवै, तौ इसका ताप मिटि जावै अरु महाशी-तल होवै, तिनविषे मुझको एक सखी प्राप्त भयी है, सब दुःखका नाश करती है, सब सौभाग्य देनेहारी अरु जीनेका मूल है, ऐसी प्राण-चिंता मुझको प्राप्त भयी है. हे रामजी ! जब इस प्रकार मुझको काक भुशुण्डने कहा, तब मैं जानता हुआ भी क्रीडाके निमित्त बहुरि पूछा, कि हे सर्वसंशयके छेदनेहारे, चिरंजीवी पुरुष ! सत्य कहौ. प्राणचिंता किसको कहते हैं ? भुशुंड उवाच-हे सर्ववेदांतके वेत्ता, सर्व संशयके नाशकर्त्ता ! मुझको उपहासके निमित्त पूछता है, तू तौ सब कछु जा-नता है, परंतु तुमते शिक्षा मैं कहता हौं. गुरुके आगे कहना भी कल्या-णके निमित्त है,भुशुण्डको जीवनेका कारण अरु भुशुण्डको आत्मलाभ देनेहारी प्राणचिंता कहाती है. हे भगवन् ! इसी दृष्टिको आश्रय करिकै मैं परमपदको प्राप्त भया हौं, बंधन मुझको कहूँ नहीं होता. बैठते, चलते, जागते, सोते, सब ठौर, सब अवस्थाविषे मेरा चित्त सावधान रहता है, इस कारणते बंधन कोऊ नहीं होता. हे मुनीश्वर ! प्राण अरु अपानके संसरणेकी गति मैंने पायी है, तिस युक्तिकरि मुझको

आत्मबोध हुआ है, तिस बोधकरि मेरे मदमोहादिक विकार नष्ट हो गये हैं अरु शांतरूप होकरि स्थित भया हौं. हे मुनीश्वर ! जिसको प्राण अपानकी गति प्राप्त भयी, सो सब आरंभ कर्मको करै, अथवा सब आरंभका त्याग करै, परंतु सदा शांतरूप है, सुखसे तिसका काल व्यतीत होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डोपाख्याने प्राणविचारवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः २५.

समाधिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! फिर मैंने पूछा कि प्राण वायुकी गति कैसी होती है ? भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर ! प्राण जो उपजता है, सो हृदयकोटते उपजता है, उपजिकरि द्वादश अंगुलपर्यंत बाहिर जाता है, तहां जायकरि स्थित होता है, तिस ठौरते अपानरूप होकरि उदय होता है, सो अन्तर आता है, हृदयविषे आइकरि स्थित होता है. हे मुनीश्वर ! बाह्य आकाशके सम्मुख जो प्राण जाता है, सो अग्निमुखवत् उष्ण होता है अरु जो हृदयाकाशके सम्मुख आता है सो शीतल नदीके प्रवाहवत् आता है, अपान चंद्रमारूप है अरु बाहरते अंतर आता है अरु जो अंतरते बाहर जाता है सो प्राण है, अग्नि उष्ण सूर्यरूप है, प्राणवायु हृदयाकाशको तपाता है अरु अन्नको पचाता है अरु अपने हृदयको शीतल करता है, चंद्रमाकी नाईं है. हे मुनीश्वर ! अपानरूपी चंद्रमा जब प्राणरूपी सूर्यविषे लीन होता है तहां साठ तत्त्व हैं, तिनविषे मन स्थित हुआ बहुरि शोकको नहीं प्राप्त होता अरु प्राणरूपी सूर्य जब अपानविषे चन्द्रमाके घरविषे जाय लीन होता है, तिस अवस्थाविषे मन स्थित हुआ बहुरि जन्मका भागी नहीं होता; हे मुनीश्वर ! सूर्यरूप जो प्राण है, उसने अपने सूर्यभावको त्यागा अरु अपानरूप चन्द्रमाको जबलग नहीं प्राप्त भया, तिस

अवस्थाके देशकालको विचारे तब बहुरि शोकको नहीं प्राप्त होता, सब भ्रम नाश हो जाता है अरु द्वादश अंगुल पर्यंत जो आकाश है, तिसते अपानरूपी चंद्रमा उपजिकारि हृदयविषे प्राणरूपी सूर्यमें लीन होता है, अरु सूर्यभावको जबलग नहीं प्राप्त होता, तिसके मध्यभाव अवस्थाविषे जिसका मन लगा है, सो परमपदको प्राप्त होता है, हृदयविषे चंद्रमा अरु सूर्यके अस्तभाव अरु उदयभावका यह ज्ञाता हुआ अरु इसका आधारभूत जो आत्मा है तिसको जाना, तब मन बहुरि नहीं उपजता. हे मुनीश्वर ! प्राण अपानरूपी जो हृदयाकाशविषे सूर्य चंद्रमा उदय अरु अस्त होते हैं, तिनके प्रकाशकारि हृदयविषे भास्कर देव है, तिसको जो देखता है, सोई देखता है अरु बाहर जो सूर्य प्रकाशता है, कबहूँ अंधकार होता है, तब प्रकाशके उदय हुए अरु तमके क्षीण हुए कछु सिद्धता नहीं होती. परंतु जब हृदयका तम दूर होता है, तब परम सिद्धताको प्राप्त होता है, बाहरके तम नष्ट हुए लोकको प्रकाश होता है अरु हृदयके तम नष्ट हुए आत्मप्रकाश उदय होता है अरु अज्ञान अंधकारका अभाव हो जाता है, परमपदको जानिकारि मुक्त होता है, प्राण अपानकी युक्ति जानेते तम नष्ट हो जाता है. हे मुनीश्वर ! प्राण अपानरूपी जो चंद्रमा अरु सूर्य है, सो यत्नविना उदय अरु अस्त होते हैं, जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोटते उपजिकारि बाहरको गमन करता है, तब उसी क्षण अपानरूपी चंद्रमाविषे जाय लीन होता है. अपानरूपी चंद्रमा उदय हो जाता है अरु जब अपानरूपी चंद्रमा हृदयकोटविषे प्राणवायुरूपी सूर्यविषे आनि स्थित होता है, तब उसी क्षणविषे प्राणरूपी सूर्य उदय होता है, प्राणके अस्त हुए अपान उदय होता है अरु अपानके अस्त हुए प्राण उदय होता है, जैसे छायाके अस्त हुए धूप उदय होता है अरु धूपके अस्त हुए छाया उदय होती है, तैसे प्राण अपानकी गति है. हे मुनीश्वर ! जब हृदय कोटते प्राण उदय होता है, तब प्राणका रेचक होने लगता है अरु अपानका पूरक होने लगता है, जब जानिकारि अपानविषे स्थित हुआ, तब अपानका कुंभक होता है, तिस कुंभकविषे जब यह स्थित होता है, तब बहुरि तीन ताप कारि नहीं तपता, जब अपानका रेचक होता है, तब प्राणका

पूरक होने लगता है, जब अपान जाय स्थित होता है, तब प्राणका कुंभक होता है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब बहुरि तीन तापकरि तपायमान नहीं होता. हे मुनीश्वर! प्राण अपानके अंतर जो शांतरूप आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब तपायमान नहीं होता, जब अपान आय स्थित होता है अरु प्राण उदय नहीं भया, तिस अवस्थाविषे जो साक्षीभूत सत्ता है, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है तब बहुरि सो कठिन नहीं होता, जब अपानके स्थानविषे प्राण जाय स्थित होता है अरु अपान जबलग उदय नहीं भया, तहां जो देश काल अवस्था है, तिसविषे मन स्थित होता है, तब मनका मनस्त्वभाव जाता है, बहुरि नहीं उपजता. हे मुनीश्वर! प्राण जो स्थित होता है अपानविषे अरु अपान उदय नहीं भया, वह कुम्भक है अरु अपान आनि प्राणविषे स्थित भया है, प्राण जबलग उदय नहीं भया, वह जो कुंभक है, तिसविषे जो शांत तत्त्व है, सो आत्माका स्वरूप है, सो शुद्ध है, परम चैतन्य है, जो तिसको प्राप्त होता है, सो बहुरि शोकवान् नहीं होता, जैसे पुष्पविषे गंधसे प्रयोजन होता है, तैसे प्राण अपानके अंतर जो अनुभवतत्त्व स्थित है, तिससे प्रयोजन है, सो न प्राण है, न अपान है, तिस अनुभव आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं, प्राण अपानकोटविषे क्षयको प्राप्त होता है अरु अपान प्राणकोटविषे क्षय होता है, तिस प्राण अपानके मध्यविषे चिदात्मा है तिसकी हम उपासना करते हैं. हे मुनीश्वर! प्राणका जो प्राण है अरु अपानका जो अपान है, जीवका जीव है अरु देहका आधारभूत है; ऐसा चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जिसविषे सर्व है, जिसते यह सर्व है अरु जो यह सर्व है ऐसा जो चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जो सर्व प्रकाशका प्रकाश है अरु सर्व पावनका पावन है अरु सर्व भाव अभाव पदार्थका आपका अपना आप है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जो पवन परस्पर हृदयविषे संपुटरूप है, तिसविषे स्थित जो साक्षीरूप है अरु अंतर बाहर सब ठौर वही है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जब अपान अस्त होता है अरु प्राण उपजा नहीं, तिस

क्षणविषे कलंकते रहित है, तिस चेतनतत्त्वकी हम उपासना करते हैं. जब प्राण अस्त होता है अरु अपान उपजा नहीं, ऐसा जो नासिकाके अग्रविषे शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो सत्यता है, तिस चिद् सत्यताकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके उत्पत्तिका स्थान है, अंतर बाहर सर्व ओरते व्यापा है, सब योगकलाका आधारभूत है, तिस चित्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके रथपर आरूढ है अरु शक्तिका शक्तिरूप है; तिस चित्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं. हे मुनीश्वर ! जो संपूर्ण कला कलंकते रहित अरु सर्व कला जिसके आश्रय हैं, ऐसा जो अनुभवतत्त्व है, सर्व देवता जिसकी शरणको प्राप्त होते हैं, तिस आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशुण्डोपाख्याने समाधिवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६.

चिरंजीवित्वहेतुकथनम् ।

भुशुण्ड उवाच– हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मैं प्राणसमाधिको प्राप्त हुआ हौं, इस क्रमकरिकै मैं आत्मपदको प्राप्त हुआ हौं, इस निर्मल दृष्टिको आश्रय करिकै स्थित हौं, एक निमेष भी चलायमान नहीं होता सुमेरु पर्वतकी नाईं स्थित हौं, चलता हुआ भी स्थिर हौं, जाग्रत्‌विषे भी सुषुप्त हौं, स्वप्नविषे भी स्थित हौं, सर्वदा आत्मसमाधिविषे लगा रहता हौं, विक्षेप कदाचित् नहीं होता. हे मुनीश्वर ! नित्य अनित्यभावकारि जो जगत् स्थित है, तिसको त्यागिकरि मैं अंतर्मुख अपने आपविषे स्थित हौं अरु प्राण अपानकी कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है, सो तिसका सदा ऐसे ही प्रवाह चला जाता है, तिसविषे अयत्न समाधि है, इसकारि मैं सदा सुखी रहता हौं कष्ट कछु नहीं होता अरु जिसको यह कला नहीं प्राप्त भयी सो कष्ट पाता है. हे मुनीश्वर !

अज्ञानी जो जीव हैं, महाप्रलयपर्यंत संसारसमुद्रविषे डूबते हैं, निकसकर बहुरि डूबते हैं, इसी प्रकार पड़े गोते खाते रहते हैं अरु जिन पुरुषोंने पुरुषार्थकरि आत्मपद पाया है, सो सुखसे विचरते हैं. हे मुनीश्वर! भूतकालकी मुझको चिंता नहीं अरु भविष्यकालकी इच्छा नहीं, वर्तमानविषे यथाप्राप्त रागद्वेषते रहित होकरि विचरता हौं, सुषुप्तकी नाईं स्थित हौं, ताते केवल स्वरूपविषे स्थित हौं भाव अभाव पदार्थते रहित अपने आपविषे स्थित हौं, इस कारणते चिरंजीवता हौं अरु दुःखते रहित हौं, प्राण अपानकी कलाको सम करिकै स्वरूपविषे स्थित हौं इस कारणते निर्दुःख जीवता हौं, आज यह कछु पाया है अरु यह कल पाऊंगा, यह चिंता दूर भयी है, इस कारणते निर्दुःख जीवता हौं, न किसीकी स्तुति करता हौं, न कदाचित् निंदा करता हौं अरु सर्व आत्मस्वरूप देखता हौं, इस कारणते सुखी जीवता हौं इष्टकी प्राप्तिविषे मैं हर्षवान् नहीं होता, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान् नहीं होता, इस कारणते निःदुःख चिरंजीवता हौं, मैं परम त्याग किया है, सर्व आत्मभाव देखता हौं, जीवभाव दूरि हो गया है, इस कारणते अदुःख जीता हौं. हे मुनीश्वर! मनकी चपलता मिटि गयी है अरु रागद्वेष दूर हो गये हैं, मन शांतिको प्राप्त भया है, इस कारणते अरोग जीता हौं, काष्ठ अरु सुंदर स्त्री अरु पहाड़ तृण अग्नि स्वर्ण सर्वत्र समभाव देखता हौं, ताते निर्दुःख जीता हौं. अब हे मुनीश्वर! जरा मरणके दुःखविषे अरु राज्यलाभके सुखविषे शोकहर्षते रहित समभावविषे स्थित हौं, ताते निर्दुःख जीता हौं यह मेरे बांधव हैं, यह अन्य हैं, यह मैं हौं, यह मेरा है, यह कलना मुझको कछु नहीं, ताते सुखी जीता हौं, आहार व्यवहार करता हौं, बैठता चलता सूंघता स्पर्श करता श्वास लेता हौं, परंतु यह जो अभिमान है, मैं देह हौं, इस अभिमानते रहित सुखी जीता हौं, इस संसारकी ओरते सुषुप्तरूप हौं अरु इस संसारकी गतिको देखकरि हँसता हौं, जो है नहीं यह आश्चर्य है, इस कारणते निर्दुःख जीता हौं. हे मुनीश्वर! सर्वकाल सर्व प्रकार सर्व पदार्थविषे समबुद्धि हौं विषमता मुझको कछु नहीं

भासती, न किसीकरि सुखी होता हौं, न दुःखी होता हौं, जैसे हाथ पसारिये तौ भी शरीर है अरु संकोचिये तौ भी शरीर है, इस प्रकार मैं सर्वात्मा आपको जाना है, ताते मुझको दुःख कोऊ नहीं, मेरी बोली अरु निश्चय स्निग्ध अरु कोमल सबको हृदयगम्य है, सर्वत्र जो ऐसे देखता हौं, इस कारणते निर्दुःख जीता हौं, चरणते आदि मस्तकपर्यंत देहविषे मुझको ममता नहीं, अहंकाररूपी चीकडसों निकसा हौं, इस कारणते अरोग जीता हौं, कार्यकर्त्ता भोजनकर्त्ता भी दृष्टि आता हौं, परंतु मेरे मनविषे निष्कर्मता दृढ है, इस कारणते निर्दुःख जीता हौं. हे मुनीश्वर ! समर्थताकरिकै कार्य करौं, तौ भी मुझको अभिमान नहीं अरु दरिद्री होऊं, तौ भी संपत्ति सुखकी इच्छा नहीं, किसीविषे आसक्त नहीं होता, इस कारणते अदुःख जीता हौं, इस असत्यरूप शरीरके नाश हुए अभिमान नाश नहीं होता अरु भूतका समूह सब असत्यरूप है, आत्मा सत्यरूप है, ऐसे जानिकरि मैं स्थित हौं, इस कारणते सुखसों जीता हौं, आशारूपी फांसीते मुक्त चित्तकी वृत्ति समहित हुई है, अनात्मविषे आत्माभिमानकी वृत्ति नहीं फुरती, इस कारणते सुखी जीता हौं. हे मुनीश्वर ! मैं जगत्को असत्य जाना है अरु आत्माको सत्य हाथविषे बेलफलवत् प्रत्यक्ष जाना है, इस जगत्विषे सुषुप्त प्रबुद्ध हौं, तिस कारणते निर्दुःख जीता हौं, सुखको पाइकरि सुखी नहीं होता, दुःखको पायकरि दुःखी नहीं होता, सर्वका परममित्र हौं, इस कारणते मैं निर्दुःख जीता हौं, आपदाविषे अचलचित्त हौं, संपदाविषे सब जगत्का मित्र हौं, भाव अभावकरि ज्योंका त्यों हौं, इस कारणते सदा सुखी जीता हौं, न परिच्छिन्न अहं मैं हौं, न कोऊ अन्य है, न कोऊ मेरा है, न मैं किसीका हौं, यह भावना मेरे चित्तविषे दृढ़ है, तिस कारणते सुखी जीता हौं, बहुरि कैसा हौं, मैं ही जगत् हौं, मैं ही आकाश हौं, देश काल क्रिया सब मैं ही हौं, यह निश्चय मुझको दृढ़ है, ताते अरोग जीता हौं, घट भी चेतन है, पट भी चेतन है, रथ भी चेतन है, यह सब चेतनतत्त्व है, यह निश्चय मुझको दृढ़ है, इस

कारणते अदुःख जीता हौं. हे मुनिशार्दूल ! यह सब मैं तुझको कहा है, भुशुण्ड नाम काक त्रिलोकीरूपी कमलका भँवरा है, तिसने कहा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डोपाख्याने चिरंजीवित्वहेतुकथनं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७.

भुशुण्डोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

भुशुण्ड उवाच–हे मुनीश्वर ! जैसा मैं हौं, तैसा तुम्हारे आगे कहा है, सो तुम्हारी आज्ञाकी सिद्धिके अर्थ कहा है, नहीं तौ गुरुके आगे कहना भी ढिठाई है; तुम ज्ञानके पारगामी हौ. वसिष्ठ उवाच–हे भगवन् ! आश्चर्य है, आश्चर्यते आश्चर्य है, तुमने श्रवणका भूषण कहा है; आत्म-उदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं; सो परम विस्मयके कारण हैं. हे भगवन् ! तुम धन्य हौ ! तुम महात्मा पुरुष हौ; चिरंजीविके मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हौ, आज हम भी धन्य हैं जो तुम्हारे सरीखे महापुरुषके मुखते आत्मउदित इस प्रकार सुना है, जैसे मैं पूछा तैसे तुमने कहा. हे साधो ! मैं सब भूमिलोक देखा है अरु दिशागण देखे हैं; आकाशलोक देखा है, पाताललोक देखा है, त्रिलोकी देखी है, तुम सरीखा कोऊ विरला है, जैसे बांस बहुत हैं, परंतु मोतीवाला कोई विरला होता है, तैसे तुम सरीखे विरले हैं. हे साधो ! आज हम पुण्यरूप हुए हैं, हमारी देह आज पवित्र हुई है जो तुमसरीखे मुक्त आत्माका, दर्शन हुआ है. हे रामजी ! इस प्रकार कहकर बहुरि कहा. हे साधो ! अब हम जाते हैं, हमारे मध्याह्नका समय हुआ है, सप्तर्षिके मध्य जाते हैं, जब मैं ऐसे कहा तब कल्पलताते उठ खड़ा हुआ अरु संकल्पके हाथ करिकै उसने स्वर्णका पात्र रचिकारि मोती रत्नसे भरकर मुझको अर्घ्य पाद्य किया, पूजन करत भया. जैसे त्रिनेत्र सदाशिवकी पूजा करता है, तैसे चरणते लेकरि मस्तक-पर्यंत मेरा पूजन किया अरु बहुत नम्र होकरि प्रणाम किया अरु

मैं उसको प्रणाम किया, इस प्रकार परस्पर नमस्कार करिके मैं वहांते उठि खडा हुआ अरु आकाशमार्गको चला, जैसे पक्षी उडता है, तैसे मैं उडा वह भी मेरे साथ उड़ा, परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये एक योजनपर्यंत चले गये, तब मैंने उससे कहा-हे साधो! तुम अब यहांहीते फिरौ, वारंवार कहिकरि उसको स्थित किया, मैं चला गया, जबलग मैं उसको दृष्ट आता रहा तबलग वह देखता रहा, जब मैं दृष्ट आनेते रहा तब वह अपने स्थानमें जाय बैठा, मैं सप्तर्षिके मंडलविषे आय स्थित भया अरुंधतीकरि पूजित हुआ. हे रामजी! यह भुशुण्डके वचन मैं तुझको आश्चर्यरूप सुनाये हैं, अब भी सुमेरुके शृंगऊपर उस कल्पवृक्षकी लताविषे कल्याणरूप सम स्थित है अरु शांतिरूप है, मान्य करनेके योग्य है अरु सदा समाधिमान् है, ऐसा पुरुष अबलग वहां ही स्थित है. हे रामजी! यह हमारा अरु उसका समागम जब सत्ययुगके दोसौ वर्ष व्यतीत हुए थे तब हुआ था, अब सत्ययुग क्षीण हुआ है, त्रेता युग वर्तता है, तिसविषे तुम उपजे हौ. हे रामजी! अब भी अष्ट वर्ष व्यतीत हुए हैं, कि हमारा उसका मिलाप हुआ था, तिसी वृक्ष-लताके ऊपर है. हे रामजी! यह मैंने जो तुझको इतिहास कहा है, सो परम उत्तम है, इसको विचारैगा, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, अब यह मुनि वसिष्ठ अरु भुशुण्डकी कथा जो निर्मलबुद्धिसे विचारैगा, सो भवरूप संसारके भयते तरैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डोपाख्यानसमाप्ति-वर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे अनघ! यह मैंने तुझको भुशुण्डका वृत्तांत सब कहा है, इस बोधकरिके भुशुण्ड महासंकटको तरा है; इस दशाको तुम भी आश्रय करिके प्राणकी युक्तिका अभ्यास करौ, तब तुम भी भुशुण्डकी नाईं

भवसमुद्रके पारको प्राप्त होहुगे, जैसे भुशुण्ड ज्ञानयोगकरि पाने योग्य पद पाया है, तैसे तुम भी पावहु, जैसे प्राण अपानके अभ्यास करिकै भुशुण्ड परमतत्त्वको प्राप्त भया है, तैसे तुम भी अभ्यास करिकै प्राप्त होहु, विज्ञानदृष्टि जो तुझने श्रवण करी है, तिसकी ओर चित्तको लगायकरि आत्मपदको पावहु, बहुरि जैसे इच्छा होवै तैसे करो. राम उवाच–हे भगवन्! पृथ्वीविषे तुम्हारे ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके प्रकाशकरि मेरे हृदयसों अज्ञानरूपी तम दूर हो गया है, अब प्रबुद्ध हुआ हौं, अपने आनन्दरूपविषे स्थित भया हौं अरु जानने योग्य पदको जानत भया हौं मानों दूसरा वसिष्ठ भया हौं. हे भगवन्! यह भुशुण्डका चरित्र तुमने कहा है, सो परमविस्मयका कारण परमार्थबोधके निमित्त कहा है, तिसविषे शरीररूपी गृह रक्त मांस अस्थिका किसने रचा है अरु कहांते उपजा है अरु कैसे स्थित हुआ है अरु कौन इसविषे स्थित है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! परमार्थ तत्त्वके बोधनिमित्त अरु दुःखके निवृत्ति अर्थ यह मेरे वचन हैं, सो सुन. अस्थि इस शरीररूपी गृहका स्तंभ है अरु नव इसके द्वार हैं अरु रक्त मांससे यह लेपन किया है, सो किसने बनाया नहीं, आभासमात्र है, मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भ्रमकरिकै भासता है, तैसे असत्यरूप शरीर भ्रमकरिकै भासता है. हे रामजी! जबलग अज्ञान है तबलग देह सत्य भासता है, जब ज्ञान होता है, तब देह असत्यरूप भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थ सत्य भासते हैं अरु जाग्रत्कालविषे स्वप्न असत्य भासता है, तैसे अज्ञानकालविषे अज्ञानके पदार्थ देहादिक सत्य भासते हैं अरु ज्ञानकालविषे असत्य हो जाते हैं, जैसे बुद्बुदा जलविषे जलके अज्ञानकरिकै सत्य भासता है, जलके जानेते बुद्बुदा असत्य भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे मरुस्थलकी नदी भासती है, तैसे आत्माविषे देह भासता है. हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आभासमात्र अज्ञानकरिकै भासता है, अहं त्वम् आदिक कल्पना सब मननमात्र मनविषे फुरती हैं, तू कहता है, देह अस्थि मांसका गृह रचा है, सो अस्थिमांसकरि नहीं रचा

संकल्पमात्र है, संकल्पकरि भासता है, संकल्पके अभाव हुए देह नहीं पाता. हे रामजी ! स्वप्नविषे जो देह धारिकरि दिशा तट पर्वत तू देखता फिरता है, जाग्रत्‌विषे वह तेरा देह कहां जाता है, जो कछु देह सत्य होता तो जाग्रतविषे भी रहता अरु मनोराज्यकरिकै स्वर्गको जाता है अरु सुमेरुविषे भ्रमता है, भूमिलोकविषे फिरता है, तब यह देह तेरा कहां होता है. हे रामजी ! इन स्थानोंविषे जैसे मनका फुरणा देह होकरि भासता है, सो असत्यरूप है, तैसे यह शरीर मनके फुरणेमात्र है, ताते असत्य जानहु, यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है, इत्यादिक कल्पना मनकी रची हुई है, सबका बीज चित्त है. हे रामजी ! इस जगत्‌को दीर्घ कालका स्वप्न जान अथवा दीर्घ चित्तका भ्रम जान अथवा दीर्घ मनोराज्य जान और वास्तवते जगत् कछु नहीं, जब अपने वास्तव परमात्मस्वरूपको अभ्यासकरि जानता है, तब जगत् असत्यरूप भासता है . हे रामजी ! मैंने पूर्व भी तुझको ब्रह्माजीके वचनोंकरि कहा है, कि जगत् सब मनका रचा हुआ है, ताते संकल्पमात्र है, चिरकालका जो अभ्यास हो रहा है, तिसकरि सत् भासता है, जब दृढ पुरुषप्रयत्नकरि आत्माभ्यास होवै, तब असत्य भासै. हे रामजी ! जो भावना इसके हृदयविषे दृढ होती है, तिसका अभाव भी सुगम नहीं होता, जब उसकी विपर्ययभावनाका अभ्यास करिये, तब उसका अभाव हो जाता है कि, यह मैं हौं यह और है, इत्यादिक कलना हृदयविषे दृढ हो रही है, जब इसकी विपर्ययभावना होवै अरु आत्मभावना करिये, तब वह मिटि जावै, सर्व आत्मा ही भासै. हे रामजी ! जिसकी तीव्र भावना होती है, वहीरूप फल उसका हो जाता है, जैसे कामी पुरुषको सुंदर स्त्रीकी कामना रहती है, तैसे इसको आत्मपदकी चिंता रहै, तब वहीरूप होता है, जैसे कीट भृंगी हो जाता है, जैसे दिनविषे व्यापारका अभ्यास होता है रात्रिको स्वप्नविषे भी वही देखता है, तैसे जिसका इसको दृढ अभ्यास होता है, सोई अनुभव होता है, जैसे आकाशविषे सूर्य तपता है अरु मरुस्थलविषे जल होकरि भासता है, सो जलका अभाव है, तैसे पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रमकरिकै भावते रहित भावरूप

भासते हैं, जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे तरुवरे मोर पुच्छवत् भासते हैं, तैसे अज्ञानकरिकै जगज्जाल भासते हैं. हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है, स्वरूपके प्रमादकरिकै भय अरु दुःखको प्राप्त होता है जब स्वरूपको जानता है, तब भ्रमभयदुःखते रहित होता है, जैसे स्वप्नपुरविषे चित्तके भ्रमकरिकै सिंहिणीते भय पाता है, जब जाग्रत्स्वरूप चित्त आता है, तब सिंहिणीका भय निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरिकै निर्भय होता है, जब वैराग्य अभ्यास करिकै निर्मल शुद्ध आत्मपदको प्राप्त होता है, तब बहुरि क्षोभको नहीं प्राप्त होता, रागद्वेषरूपी मल इसको नहीं स्पर्श करता, जैसे तांबा पारसके स्पर्श करिकै स्वर्ण होता है, तब तांबेभावको नहीं ग्रहण करता, तैसे बहुरि मलिन नहीं होता, अहं त्वम् आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आभासमात्र ही है. हे रामजी! प्रथम सत्य असत्को जानै, असत्यका निरादर करै अरु सत्का अभ्यास करै, तब चित्त सर्व कलनाते रहित होता है अरु शांतपदको प्राप्त होता है, जो तत्त्वज्ञानकरि सम्यक्दर्शी हुआ है, तिसको जगत्के इष्ट पदार्थ पायेते हर्ष नहीं होता अरु अनिष्टके पायेते शोक नहीं होता, न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निंदा करता है, अंतरते शीतल शांतरूप हो जाता है, जब कोऊ बांधव मृतक हो गया है, तब तिसकरि तपायमान क्यों होना, सो तौ मरणेका ही था, जब अपना मृत्यु आवै, तब अवश्य शरीर छूटना है, वृथा क्यों तपायमान होना, जब संपदा आनि प्राप्त होवै, तब उस-करि हर्षवान् नहीं होता, काहेते जो कछु भोगना था, हर्ष किसकरि होना अरु दुःख आनि प्राप्त होवै, तब क्यों शोक करना, शरीरका व्यवहार सुखदुःख आता जाता है, यह अमिट है, जब अपनाकिया कर्म उत्पन्न होता है, तब भी शोक क्यों करना? हे रामजी! जो सत्य है सो असत्य नहीं है, जो असत्य है, सो सत्य नहीं, बहुरि रागद्वेष किस निमित्त करना जिसको ऐसा निश्चय हुआ है, कि न मैं हौं, न जगत् है, न पृथ्वी है, तौ भी शोक किसका करना अरु जब देहते अन्य हौं, चेतन हौं चेतनका तौ नाश नहीं, तब शोक किस निमित्त करना?

हे रामजी! दुःख तौ किसी प्रकार नहीं, जबलग विचार नहीं तबलग दुःख होता है विचार कियेतें दुःख कोई नहीं सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर है सो सत्यको सत्य जानता है, असत्यको असत्य जानता है, इस कारणतें दुःख नहीं पाता अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो अज्ञानकरिकै दुःख पाता है, जैसे दिनके अंतविषे मंडल शीतल हो जाता है, तैसे सम्यक्दर्शीका अंतर शीतल होता है, जिसको कर्तव्यविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, सो सम्यक्दर्शी है. हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनको अंतरतें आभासमात्र जान अरु बाहर जैसे आचार होवै तैसे करु अथवा तिसका भी त्याग करु, निराभास होकरि स्थित होहु, मैं चिदाकाश हौं, नित्य हौं सर्वज्ञ हौं अरु सर्वतें रहित हौं, ऐसे अभ्यासकरि एकांत निर्मल आपको देखैगा अथवा ऐसे धार कि, न मैं हौं न यह भोग हैं, न अर्थरूप जगत् आडंबर है, अथवा ऐसे धार कि, सर्व मैं ही हौं, नित्य शुद्ध चिदात्मा हौं आकाशरूप हौं, मेरेतें इतर कछु नहीं, मैं ही अपने आपविषे स्थित हौं, इन दोनों पक्षविषे जो इच्छा होवै, सो धर, तुझको सिद्धताका कारण होवैगा अरु जगत्को आभासमात्र जान, परंतु यह भी कलंकरूप है, इस चिंतनाको भी त्यागिकरि निराभास होहु, तू चिदाकाश नित्य है, सर्वव्यापी है अरु सर्वतें रहित है, आभासको त्यागिकरि निर्मल अद्वैत होय रहु, अथवा विधिनिषेध दोनों दृष्टिको आश्रय कर. हे रामजी ! क्रियाको करहु परंतु रागद्वेषतें रहित होहु, जब रागद्वेषतें रहित होवैगा, तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानन्दको प्राप्त होवैगा, जो सर्वका अधिष्ठान हैं, तिसको पावैगा. हे रामजी ! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्निकरि जलता है, तिसको संतोष वैराग्य आदिक गुण नहीं प्राप्त होते, जैसे दग्ध भूतलके वनविषे हिरण नहीं प्रवेश करते, तैसे रागद्वेषादिकवाले हृदयविषे संतोषादिक नहीं प्रवेश करते. हे रामजी ! हृदयरूपी कल्पतरु है, जो ऐसा वृक्ष रागद्वेषादिक सर्पनतें रहित है, तिसतें कौनके पदार्थ हैं जो न प्राप्त होवैं, शुद्ध हृदयतें सब कछु प्राप्त होता है, यह अर्थ है. हे रामजी ! जो बुद्धिमान् भी है अरु शास्त्रका ज्ञाता भी है,

परंतु रागद्वेषसंयुक्त है सो गीदडकी नाईं नीचे है तिसको धिक्कार है, जिन पदार्थनके पानेके निमित्त यह यत्न करते हैं सो तौ आते जाते हैं धनको इकट्ठा कोऊ करता है, कोऊ अपर ले जाता है, भोक्ता कोऊ अपर है, तब राग द्वेष किसका करिये, जो कछु प्रारब्ध है सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ क्या यत्न करिये, बांधव अरु वस्त्र आते हैं, बहुरि जाते भी हैं, जैसे समुद्रविषे झषका आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते, तैसे जगत्के पदार्थका आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते, भावअभावरूप परमेश्वरकी माया है, संसारकी रचना स्वप्नकी नाईं है, तिसविषे जो आसक्त होते हैं, तिनको सर्पिणीवत् दंशती है, धन बांधव जगत् वास्तवते मिथ्या ही अज्ञानकरिकै सत्य भासते हैं. हे रामजी ! जो आदि न होवै, अंत भी न रहै अरु मध्यविषे भासै, तिसको भी असत्य जानिये. जैसे आकाशविषे फूल असत्य हैं, तैसे संसाररचना असत्य है, जैसे संकल्परचना असत्य है, जैसे गंधर्वनगर सुंदर भासता है अरु नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नपुर दीर्घ कालका भासता है सो भ्रमरूप है, तैसे यह जगत् असत्यरूप भ्रममात्र है, संकल्परूप अभ्यासके वशते दृढताको प्राप्त भया है, कन्ध जो आकारवान् भासता है, सो आकारते रहित आकाशरूप है अरु आत्मपद सुषुप्तिकी नाईं अद्वैतरूप है, तिस सुषुप्तरूप पदते जब गिरता है; तब दीर्घरूप स्वप्नको देखता है. हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्राकरि अपने स्वभावते जो गिरा है सो संसाररूपी स्वप्नभ्रमको देखता है, जब अज्ञानरूपी निद्राका अभाव होवै, तब अपने आत्मराज्य पदको प्राप्त होता है अरु निर्विकल्प मुदिता आत्मपदको प्राप्त होता है, जैसे सूर्यको देखिकारि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे ज्ञानकरि शुभ गुण फूलते हैं, आत्मारूपी सूर्य कैसा है सर्व दुःखते रहित है जो पुरुष निद्राविषे होता है सो सूक्ष्म वचनकरि नहीं जागता बड़े शब्द अरु जल डारनेकरि जागता है, सो मैं तुझको मेघकी नाईं गर्जिकरि वचनरूपी जलकी वर्षा करी है, ज्ञानरूपी शीतलतासहित वचन हैं तिन वचनोंकरिकै अब तू ज्ञानरूपी जाग्रत बोधको प्राप्त भया है, ऐसे ज्ञानरूपी जगत्को भ्रमरूप देखैगा. हे रामजी ! तुझको न जन्म है, न

मृत्यु है, न कोऊ दुःख है, न कोऊ भ्रम है, सर्व संकल्पते रहित आत्मपुरुष अपने आपविषे स्थित है, सम है, शांत है, सुषुप्तिकी नाईं तेरी वृत्ति है, अतिविस्तृत सम शुद्ध अपने स्वरूपविषे स्थित है.

इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे पू० परमार्थयोगोपदेशो नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः २९.

ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मस्वरूपवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार जब वसिष्ठजीने वचन कहे, तब रामजी सम शांत चेतनतत्त्वविषे विश्रामको पावत भये अरु परमानंदको प्राप्त भये अरु अपर सभा जो बैठी थी, सो भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिकै सम आत्मसमाधिविषे स्थित हो रहे, बोलनेका व्यवहार शांत हो गया, पिंजरेमें पक्षी बोलते थे, सो भी शांत हो गये, वनके जो वानर थे सो भी वचन सुनिकारि स्थिर हो रहे, सर्व ओरते शांति हो रही, जैसे अर्धरात्रिके समय भूमिलोक शांतरूप हो जाता है, तैसे सभाके लोक तूष्णीं हो रहे अरु वचनोंको विचारने लगे कि, मुनीश्वरने क्या उपदेश किया है, एक घडीपर्यंत शांति हो रही, तिसके अनंतर बहुरि वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अब तू सम्यक् प्रबुद्ध हुआ है अरु अपने आपविषे स्थित भया है, जो कछु जाना है, तिसके अभ्यासका त्याग नहीं करना इसीविषे दृढ रहना. हे रामजी ! संसाररूपी चक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, तिस चित्तनाभिके स्थिर हुए संसारचक्र भी स्थिर हो जाता है, इसी संसाररूपी चक्रका तीक्ष्ण वेग है, यद्यपि रोकता है तौ भी फुरणे लगता है, ताते दृढ प्रयत्नबल करिकै इसको रोकिये, संतके संग अरु सच्छास्त्रके वचन युक्ति बुद्धि करि रोकता है. हे रामजी ! अज्ञानकरि जो दैव कल्पा है, तिसका त्याग करि अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, इसकारि परम शांतपद प्राप्त होता है, ब्रह्माते आदिलेकारि चींटीपर्यंत सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है, सो असत्यरूप

है, भ्रमकरिकै सत्यकी नाईं भासता है, तिसका त्याग करहु. हे रामजी !

देह है, तिसके नाश हुए तुम्हारा नाश तौ नहीं होता. हे रामजी ! दीर्घकालका रचा जो स्वप्नमय देह है, तिसके दुःख अरु नाशकरि आत्माको दुःख अरु नाश नहीं होता, चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती अरु स्वरूपते चलायमान भी नहीं होती, न विकारको प्राप्त होती है, सर्वदा शुद्ध अच्युतरूप अपने आपविषे स्थित है, देहके नाश हुए तिसका नाश नहीं होता, अज्ञानका दृढ अभ्यास हुआ है, तब देहके धर्म अपनेविषे भासने लगे हैं, जब आत्माका दृढ अभ्यास होवै, तब देहाभिमान अरु देहके धर्म अभाव हो जावैं, जैसे चक्रके ऊपर कोऊ चढता है अरु भ्रमता है, जब उतरता है, तब केताक काल भ्रमता भासता है, जब चिरकाल व्यतीत होता है, तब स्थित हो जाता है, देह-रूपी चक्र इसको प्राप्त भया है, अज्ञानकरिकै भ्रमा हुआ आपको भ्रमता देखता है, जब अज्ञानका वेग निवृत्त होता है, तब भी कोई काल देह-भ्रम भासता है, तिसकरि जानता है, मेरा नाश होता है, मुझको दुःख होता है, इत्यादिक कल्पना अज्ञानकरि भासती है, तिस भ्रम दृष्टिको धैर्यकरिकै निवृत्त करता है, तब अभाव हो जाता है. हे रामजी ! जैसे भ्रमकरिकै जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासना असत्य है, जड है, न कर्मको करती है, न मुक्त होनेकी इच्छा करती है अरु देव परमात्मा भी कछु करता नहीं वह सदा शुद्ध द्रष्टा प्रकाशक है, जैसे निर्वात दीप अपने आपविषे स्थित है, तैसे तू शुद्धस्वरूप अपने आपविषे स्थित होहु, जैसे सूर्य आकाशविषे स्थित होता है अरु सर्व जगतको प्रकाश करता है, तिसके आश्रय लोक चेष्टा करते हैं, परंतु सूर्य कछु नहीं करता, सबका साक्षीभूत है, तैसे आत्माके आश्रय देहा-दिककी चेष्टा होती है, परंतु आत्मा साक्षीरूप है, पापपुण्यते रहित है. हे रामजी ! यह देहरूपी शून्य गृह है, तिसविषे अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है, जैसे बालक परछाईंविषे वैताल कल्पता है अरु भयको पाता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाच कल्पिकरि भयको पाता है, सो अहंकाररूपी पिशाच महानीच है, सर्व संतजनकरि निंद्य है, जब अहं-काररूपी वैताल निकसै, तब आनन्द होवै, देहरूपी शून्य गृहविषेका इस

निवास है, जो पुरुष इसका टहलुआ हो रहा है, तिसको यह नरक-विषे जाता है, ताते तुम उसका टहलुआ नहीं होना, इसके नाशका उपाय करोगे, तब आनन्दको प्राप्त होहुगे. हे रामजी! यह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल है, जिसको स्पर्श करता है, तिसको अशुद्ध करता है. अर्थ यह कि, जिसका धैर्य अरु निश्चयविपर्ययकरि देता है, तिसकरि दुःखको प्राप्त करता है, अपने स्वरूपते गिराय देता है, जो बडे बडे साधु महंत हैं, सो भी इसके भयकरिकै समाधिविषे स्थित होते हैं, जो किसी प्रकार अहंकार अभाव होवै. हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करता है, तिसको आप जैसा करिलेता है, जैसा आप तुच्छ करता है, तैसा अपरको तुच्छ करता है अरु उजाडविषे रहता है, जहां संतसंग अरु सच्छास्त्रका विचार नहीं अरु आत्मज्ञानका निवास नहीं, तहां शून्य उजाडरूपी देहमंदिरविषे रहता है, जो कोऊ ऐसे स्थान-विषे प्रवेश करता है, तिसको प्रवेशकरि जाता है. हे रामजी! जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है तिसका धनकरि कल्याण नहीं होता; न बांधव मित्रकरि कल्याण होता है अरु अहंकार पिशाचसे मिला हुआ जेती कछु क्रिया कर्म करता है, सो अपने नाशके निमित्त करता है, विषयकी वल्लीको उपजावता अरु बढावता है. हे रामजी! जो पुरुष विवेक अरु धैर्यते रहित है, तिसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्र ही खाइ जाता है, सो कैसा है सबरूप है जिसको स्पर्श करता है, तिसको शवकरि छांडता है अरु जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो नरकरूपी अग्निविषे काष्ठकी नाईं जलैगा अरु अहंकाररूपी सर्प है, जिस देहरूपी वृक्षके छिद्रविषे विषको धारे बैठा है, तिसके निकट जो जावैगा, तिसको मृतक करैगा, जो अहं ममभावको प्राप्त होवैगा सो मृतक समान होवैगा जन्ममरणको पावैगा, अहंकाररूपी पिशाच जिसको लगा है, तिसको मलिन करता है, स्वरूपते गिरायकरि संसार-रूपी गर्तविषे डारता है अरु बडी आपदाको प्राप्त करता है, जेती आपदाको अहंकार प्राप्त करता है, सो बहुत वर्षपर्यंत करता रहै, तौ भी आपदाका वर्णन न करि सकौंगा. हे रामजी! यह

जो अभिमान है, कि मैं हौं, मैं मरता हौं, मैं दग्ध होता हौं, मैं दुःखी हौं, मै मनुष्य हौं इत्यादि कल्पना जो मलिन उठती हैं, सो अहंकाररूपी पिशाचकी शक्ति है, आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध चिदाकाश सर्वगत सच्चिदानंद है, सो सबका अपना आप है, अहंकारके वशते आपको परिच्छिन्न अलेप दुःखी मानता है, जैसे आकाश सर्वगत अलेप है, तैसे आत्मा सर्वविषे अलेप है अरु सर्वसाथ असंबंध है, अहंकारके संबंधते रहित है. हे रामजी! ग्रहण त्याग चलना बैठना इत्यादिक जेती कछु क्रिया होती है, सो देहरूपी यंत्र अरु वायुरूपी रसडीकरि अहंकाररूपी यंत्री करावता है, आत्मा सदा निर्लेप है, सबका अधिष्ठानरूप है, कारणकार्य भावते रहित है, जैसे वृक्षकी ऊँचाईका कारण आकाश है अरु निर्लेप है, तैसे आत्मा सर्व चेष्टाका कारण अधिष्ठान है अरु निर्लेप है, जैसे आकाश अरु पृथ्वीका संबंध नहीं, तैसे आत्मा अरु अहंकारका संबंध नहीं, चित्तको जो आप जानते हैं, सो महामूर्ख हैं, आत्मा प्रकाशरूप है, नित्य सर्वगत है, विभु है, चित्त मूर्ख है, जड़ है,आवरण करता है. हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ है, चेतनरूप है, चित्त मूढ है अरु पत्थरवत् जड़ है, इसको दूर करहु, इसका अरु तेरा संबंध कछु नहीं, तुम मोहको तरहु, देहरूपी शून्य गृहविषे चित्तरूपी वैतालका निवास है, जिसको अपने वश करता है, तिसको बांधव भी नहीं छुडाय सकते अरु शास्त्र नहीं छुड़ाय सकते अरु जिसका देहाभिमान क्षीण हो गया है, तिसको गुरु, शास्त्र भी छुड़ानेको समर्थ होते हैं, जैसे अल्प चीकडते हरिणको काढि लेता है, तैसे गुरु शास्त्र निकासि लेते हैं. हे रामजी! जेते देहरूपी शून्य मंदिर हैं, तिन सबविषे अहंकाररूपी पिशाच रहता है, कोऊ देहरूपी गृह अहंकार पिशाच विना भी है, अपर भयसाथ मिला हुआ है, जैसे पिशाच अपवित्र स्थानविषे रहता है, पवित्रस्थानविषे नहीं रहता, तैसे जहां संतोष, विचार, अभ्यास, सत्संगते रहित देह है, तिस स्थानविषे अहंकार निवास करता है अरु जहां संतोष, विचार, अभ्यास, सत्संग, होता है, तहांते अभाव हो जाता है, जेते कछु शरीररूपी श्मशान हैं, सो चित्तरूपी वैतालकरि पूर्ण हैं अरु अपरिमित मोहरूपी

वैताल हैं, जगत्‌रूपी महावनविषे मोहको प्राप्त होते हैं, जैसे बालक मोह पाता है. हे रामजी ! तू आपकरि अपना उद्धार करु, सत्य विचार करिकै धैर्यको प्राप्त होहु, यह जगत्‌रूपी पुरातन वन है, तिसविषे जीव-रूपी मृग विचरते हैं अरु भोगरूपी तृणको आश्रय करते हैं, सो भोग-रूपी तृण कैसे हैं, देखनेमात्र सुंदर भासते हैं, परंतु तिनके नीचे गर्त है, जैसे गर्तऊपर हरियावल तृण आच्छादन होते हैं, तिसको देखिकरि मृगके बालक भोजन करने लगते हैं अरु गर्तविषे गिर पडते हैं; तैसे जीवरूपी मृगको रमणीय जानिकरि भोगने लगते हैं, तिनकी तृष्णा-करि नरक आदिक जन्मविषे गिरते हैं; अग्निकी नाईं जलते हैं. हे रामजी ! तुम ऐसे नहीं होना, जो कोऊ भोगकी तृष्णा करैगा, सो नरक-रूपी गर्तविषे गिरेगा, ताते तुम मृगमतिको त्यागिकरि सिंहवृत्तिको धारहु, मोहरूपी हस्तिको सिंह होकरि अपने नखनसे विदारहु, भोगकी तृष्णाते रहित होना यह अर्थ है, भोगकी तृष्णावाले जीव जंबूद्वीपरूपी जंगलविषे मृगकी नाईं भटकते हैं, तिनकी नाईं तुम नहीं विचरना. हे रामजी ! स्त्री जो रमणीय भासती हैं, तिनका स्पर्श अल्प काल-विषे शीतल सुखदायक भासता है, परंतु चीकडकी नाईं है, जैसे चीक-ड़का लेप भी शीतल भासता है, परंतु तुच्छ है, जैसे संढा चीकड दल-दलविषे फँसा हुआ निकसि नहीं सकता, तैसे यह भोगरूपी दलदलविषे फँसा हुआ निकसि नहीं सकता, ताते तू संतकी वृत्तिको ग्रहण कर, सो ग्रहण करना किसको कहते हैं अरु त्याग करना किसको कहते हैं, ऐसे विचारकरि असत् वृत्तिका त्याग करौ अरु आत्मतत्त्वको आश्रय करौ. हे रामजी ! यह देह अपवित्र है, अस्थिमांसरुधिरकरि पूर्ण है अरु तुच्छ है अरु दुष्ट इसका आचार है, देहके निमित्त भोगकी इच्छा करनी, इसकरि परमार्थ कछु सिद्ध नहीं होता, देह औरने रची है, औरकरि चेष्टा करती है, औरने इसविषे प्रवेश किया है, दुःखको और ग्रहण करता है, जो दुःखका भागी होता है. संकल्पने देह रची है अरु प्राणकरि चेष्टा करता है, अहंकार पिशाचने इसविषे प्रवेश किया है अरु गर्जता है, मनकी वृत्ति सुखदुःखको ग्रहण करती है अरु दुःखी

जीव होता है, ताते आश्चर्य है. हे रामजी ! परमार्थसत्ता एक है अरु सर्वसमान है, इतर सत्ता तिसविषे कोई नहीं, जैसे पत्थर घन जड होता है, तिसविषे अपर कछु नहीं फुरता, तैसे सत्तामात्रते इतर अपर द्वैतसत्ता किसी पदार्थकी नहीं, जैसे पत्थर घनरूप है, तैसे परमात्मा घनरूप है, अपर जड चेतन भिन्न कोई नहीं, यह मिथ्या संकल्पकी रचना है, जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे सब कल्पना मनकी है, जैसे एक गन्नेके रसकरि गुड हो जाता है, कहूँ शक्कर खंड होती है, तैसे एक परमात्मसत्ता सर्व समान है, तिसविषे जडचेतनकी कल्पना मिथ्या है, जबलग सम्यक् दृष्टि नहीं प्राप्त भयी, तबलग जडचेतनकी दृष्टि होती है, जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है, तब भेदकल्पना सब मिटि जाती है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, सो न सत्य होता है; न असत्य होता है, तैसे आत्माविषे जडचेतन सत्यासत्य विलक्षण कल्पना है. हे रामजी ! जो सत्य है, सो असत्य नहीं होता अरु जो असत्य है, सो सत्य नहीं होता, आत्मा सदा सत्यरूप है अरु अपने आपविषे स्थित है, तिस-विषे द्वैत एकका अभाव है, जैसे पत्थरविषे अन्य सत्ताका अभाव है; तैसे आत्माविषे द्वैतसत्ताका अभाव है, नानारूप भासता है; तौ भी द्वैत कछु नहीं, सदा अनुभवरूप है, विभागकल्पना तिसविषे कछु नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जेती कछु भेदकल्पना भासती है, सो चित्तकरि भासती है जब चित्तका अभाव होता है, तब जडचेतनकी कल्पना मिटि जाती है, जैसे वंध्याके पुत्रको अभाव है, जैसे आकाशविषे वृक्षका अभाव है, तैसे आत्मा-विषे कल्पनाका अभाव है. हे रामजी! यह जो कल्पना है, कि यह चेतन है, यह जड है यह उपजता है, यह मिटि जाता है इत्यादिक सब कल्पना मिथ्या हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्माविषे कल्पना मिथ्या है अरु गुरुशास्त्र भी जो आत्माको चेतन कहते हैं अनात्माको जड कहते हैं, सो भी बोधके निमित्त कहते हैं, दृष्टांत युक्तिकरि दृश्यको आत्मस्वरूपविषे स्थित करते हैं, जब स्वरूपविषे दृढ स्थिति होवैगी, तब जडचेतनकी भेदकल्पना जाती रहैगी; केवल अचेत्य चिन्मात्रसत्ता भासैगी, जो तत्त्व है, इस प्रकार गुरु भी जडचेतनके

विभागका उपदेश करते हैं, तौ भी मूर्ख नहीं ग्रहण करि सकते; तौ जब प्रथम ही अचैत्य चिन्मात्र अवाच्यपदका उपदेश करै, तब कैसे ग्रहण करै. हे रामजी! और आश्चर्य देख कि, चित्त और है इंद्रिय और हैं, देह और है, देहका कर्त्ता कोऊ दृष्टि नहीं आता अरु अहंकार-करिकै वेष्टित करी है, यह जीव ऐसे मूर्ख हैं, जो देहको अपना आप जानते हैं अरु दुःखको प्राप्त होते हैं अरु जो विचारवान् पुरुष हैं, आत्मपदविषे स्थित हुए हैं, तिन महानुभावोंको कोऊ क्रिया दुःखबंधन नहीं कर सकती, जैसे मंत्र जाननेवालेको सर्प दुःख दे नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्को कर्म बंधन नहीं करता. हे रामजी! न तू शीश है, न नेत्र है, न रक्त है, न मांस है, न अस्थि आदिक है, न मन है, न तू भूतजात है तू चित्तते रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप है, शरीरसों ममता त्यागिकरि नित्य शुद्ध सर्वगत आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इसी दृष्टिको आश्रय कर अरु भेद कष्टदृष्टिका त्यागकर नाश कर, जब कष्टदृष्टि नष्ट होवैगी, तब आत्मानंद प्रगट होवैगा, जिस आनंदके पायेते अष्टसिद्धका ऐश्वर्य भी अनिष्ट जानिकरि त्यागैगा, अब अपर दृष्टि सुन, कैसी दृष्टि है जो महामोहका नाश करती है अरु जो आत्मपद पाना कठिन है, सो सुखेन प्राप्त होवैगा. बहुरि कैसी दृष्टि है, जिसका नाश कदाचित् नहीं होता अरु दुःखते रहित आनंदरूप मैं शिवजीते श्रवण करी है, पूर्ण कैलासकी कंदराविषे संसारदुःखकी शांति अर्धचंद्रधारी सदाशिवने मुझको कही थी. हे रामजी! महाचंद्रमाकी नाईं शीतल अरु प्रकाश है जिसका, ऐसा जो हिमालय पर्वत, तिसकी कंदरा कैलास पर्वत तहां गौरीके रमणीय स्थान मंदिर हैं, तहां गंगाका प्रवाह झरणेते चला जाता है अरु पक्षी शब्द करते हैं अरु मंद मंद पवन सुखदायक चलता है अरु कुबेरके मोर विचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुए हैं, महा उज्ज्वल शीतल सुंदर कंदरा है, मंदारवृक्ष, तमाल वृक्ष लगे हुए हैं, तिनके साथ फूल ऐसे हैं, मानो श्वेत मेघ हैं, तहां गंधर्व किन्नर आय गान करते हैं, देवताओंके रमणीय सुंदर स्थान हैं तिस पर्वतके ऊपर सदाशिव विराजते हैं,

त्रिनेत्र हैं अरु हाथविषे त्रिशूल है, गणोंकरि वेष्टित हैं अरु भगवती अर्धांगविषे विराजती है, ऐसा जो सर्व लोकका कारण ईश्वर है, सो तहां विराजता है, बहुरि कैसा है, कामदेवका गर्व नाश किया है अरु षण्मुखसहित स्वामिकार्तिक पास प्राप्त है अरु महाभयानक शून्य श्मशानोंविषे तिसका निवास है, तिस देवको मैं पूजत भया, तिस पर्वत ऊपर एक कालमें मैं तप करने लगा था, महापुण्यवान् एक कुटी बनाई, तिसविषे यथाशास्त्र पुण्यक्रियाकरि मैं तप करने लगा, एक कमंडलु पास रक्खा, वृक्षके फूल माला पूजनेनिमित्त रक्खे, जलपान करौं, फल भोजन करौं, बहुरि विद्यार्थी शिष्य साथ रहैं, तिनको पढावौं शास्त्रका अर्थ विचारौं, ब्रह्मविद्याके पुस्तकका समूह पड़ा हुआ आगे मृग अरु मृगके बालक विचरैं, इस प्रकार हम कालको बितावैं, वेदका पढ़ना, ब्रह्मविद्याको विचारना अरु शास्त्रानुसार तप करना इन गणहूँ संयुक्त कैलास वनकुञ्जविषे हम विश्राम करैं. तिसके अनंतर एक कालमें एक दिन श्रावण वदी अष्टमी अर्धरात्र व्यतीत भयी है, तिस कालमें समाधिते उतरकर देखता भया, दशों दिशा काष्ठ मौनवत् शांतरूप हैं अरु ऐसा तम है, जो शस्त्रहूकरि छेदनेवाला है अरु मन्द मन्द पवन चलता है, उसके कणका गिरते हैं, मानो पवन हाँसी करता है, तिसी समय चंद्रमा आनि उदय हुआ, महाशीतल अमृतरूप किरणोंको प्रकाशता भया, औषधिनको रससे पुष्ट करता भया, चन्द्रमुखी कमल खिलि आये, चकोर अमृतकी किरणोंको पान करने लगे, मानो चंद्रमारूप हो गये हैं, प्रातःकालविषे तारेमणिकी नाईं ऊपर आनि पडने लगे अरु सप्तर्षि शीशपर आनि स्थित भये, मानो मेरे तपको देखने आये हैं; सप्तर्षिविषे पिछले जो तीन तारे हैं, तिनके मध्यविषे मेरा मंदिर है, तहां मैं सदा विराजता हौं, तब चंद्रमाकरि शीतल स्थान हो गये, पवनकरि फूल गिरे हैं अरु चंद्रमाका प्रकाश महाशीतल है, तिसकरि स्थान शीतल हो गये. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अर्धरात्रिके समय जब मैं समाधिते उतरा, तब मुझको तेज प्रकाश दृष्टि आने लगा, जैसे मंदराचल पर्व-

तके पायेते क्षीरसमुद्र उछलि आता है, मानो हिमालय पर्वत मूर्ति धारिकरि स्थित है, मानो माखनका पहाड पिंड आनि स्थित हुआ है, मानो सब शंखकी स्पष्टता आनि स्थित भयी है, मानो मोतीका समूह इकट्ठा होकरि उडने लगा है, महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आवै, मानो गंगाका प्रवाह उछलने लगा है, परंतु तिस प्रकाशकी शीतलताने सब दिशा तट पूर्णकरि लिये हैं, तब मैं देखिकरि आश्चर्यवान् हुआ अकाल प्रलय होने लगा है, तब बोध दृष्टिकरि विचारने लगा कि, यह क्या है ? तब मैंने देखा कि, देवताओंके गुरु ईश्वर सदाशिव चंद्रकलाको धारे हुए चले आते हैं अरु गौरी भगवतीके साथ हाथ ग्रहण किया है अरु गणोंके समूहकरि वेष्टित हैं, कानोंविषे सर्प पड़े हुए हैं, कंठविषे रुंडकी माला है शीशपर जटा है, तिसपर कदंब वृक्ष है अरु तमाल वृक्षके फूल पडे हुए हैं, ऐसे सदाशिव जो सबको फल देनेहारे हैं, तिनको मनकरिकै मैं देखत भया अरु मनहीकरि मंदार वृक्षके पुष्प लेकरि अर्घ्य पाद्य करत भया अरु मनहीकरि प्रणाम करत भया अरु मनहीकरि दक्षिणा देत भया, ऐसे करिकै मैं अपने आसनते उठि खड़ा हुआ, अपने शिष्यको जगावत भया,जगायकरि अर्घ्य पाद्य ले चला, जायकरि त्रिनेत्र शिवको पुष्पांजलि दिया, देकरि प्रदक्षिणा करि प्रणाम किया, तब मुझको चंद्रधारी कृपादृष्टिकरि देखत भया अरु सुंदर मधुर वाणीकरि कहत भया, हृदयका तम नष्टकर्त्ता, शरन पडेको परम शांतिपद प्राप्तकर्त्ता ऐसे सदाशिवजी मुझको देखिकरि कहत भया. ईश्वर उवाच-हे ब्राह्मण ! ले आउ अर्घ्य पाद्य, हम तेरे आश्रमविषे अतिथि आये हैं. हे निष्पाप ! तुझको कल्याण तौ है ? क्यों कि, तू मुझको महाशांतरूप भासता है अरु महासुंदर उज्ज्वल तपकी लक्ष्मीकरि तू शोभता है, चलो हम तुम्हारे आश्रमको चलै हैं. हे रामजी ! फूलके स्थानविषे सदाशिव बैठे थे, सो ऐसे कहिकरि उठि खड़े हुए, तब इकट्ठे अपने आश्रमपर कुटीविषे आनि स्थित हुए, तहां मैं बहुरि पुष्प अर्घ्यकरि चरणोंकी पूजा करी, बहुरि हाथोंकी पूजा करी, इसी प्रकार चरणोंते लेकरि शीशपर्यंत सर्व अंगकी पूजा करी, बहुरि तैसे ही गौरी भगवतीका

पूजन किया, सखियोंका पूजन किया बहुरि गणोंका पूजन किया. हे रामजी! इस प्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वरका पूजन करि चुका, तब शशिकलाधारी शीतल वाणीकरि मुझको कहत भया. हे ब्राह्मण! नाना प्रकारकी चिंतवनेहारी जो चित्तकी वृत्ति है, सो क्या तेरे स्वरूपविषे विश्रांतिको प्राप्त भयी है अरु क्या संवित् तेरी आत्मपदविषे स्थित भयी है अरु तुम्हारे शिष्यको कल्याण तौ है अरु तुम्हारे पास जो हरिण विचरते हैं, यह सुखसे तो हैं अरु क्या मंदारवृक्ष तुमको पूजाके निमित्त फूल फल भले प्रकार देते हैं अरु मंदाकिनी जो गंगा है, सो क्या तुमको भले प्रकार स्नान कराती है अरु देहके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे तुम क्या खेदवान् नहीं होते अरु इस पर्वतविषे कुबेरके अनुचर यक्ष राक्षस रहते हैं, सो तुमको दुःख तौ नहीं देते अरु मेरे गण जो चक्षु निशाचर हैं, वह भी तुमको कष्ट तौ नहीं देते? हे रघुनंदन! इस प्रकार जब देवेशने मुझसे वांछित प्रश्न पूंछे, तब मैं उनसे कहत भया. वसिष्ठ उवाच–हे महेश्वर! जो कल्याणरूप तुझको सदा स्मरते हैं, तिनको इस लोकविषे ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो पाना कठिन होवै अरु भय भी किसीका नहीं, जिनका चित्त तुम्हारे स्मरणकरि आनंदसों सर्व ओरते पूर्ण भया है, सो जगत्विषे दीन नहीं होते, तेई देश तेई जनोंके चरण अरु दिशा पर्वत वंदना करने योग्य हैं, जहां एकांतबुद्धि बैठिकरि तुम्हारा स्मरण करते हैं. हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण पूर्व पुण्यरूपी वृक्षका फल है अरु वर्त्तमान कर्मोंकरि सिंचता है, तुम मनके परममित्र हौ, सर्व आपदाका हरणेहारा तुम्हारा स्मरण है; सर्व संपदारूपी लताके बढावनेहारे तुम्हारा स्मरण वसंतऋतु है. हे प्रभो! बड़ी महिमा अरु बडेते बड़े कर्मोंके कारणका कारण तुम्हारा स्मरण है. हे प्रभो! विवेकरूपी समुद्रविषे परमार्थरूपी रत्न है अरु ज्ञानरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्यका समूह तुम्हारा स्मरण है, ज्ञान अमृतका कलश अरु धैर्यरूपी चांदनीका चंद्रमा अरु मोक्षका द्वार तुम्हारा शरण है. हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण अपूर्वरूपी दीपक उत्तम है, चित्तका मंडप जो है संसार तिस सर्वको प्रकाशता है. हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण उदार चिंतामणिकी

नाईं सर्व आपदाको छेदनेहारा है अरु बडे उत्तम पदको देनेहारा है. हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण एक क्षण भी चित्तविषे स्थित होवै, तब सर्व दुःख अरु भयको नाश करता है अरु वरदायक है, तिसकरि तुम्हारे नाईं सुखसों वसता हौं. वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब दिनका अंत हुआ, सर्व सभा उठी, परस्पर नमस्कार करिकै अपने स्थानोंको गये, सूर्यकी किरणों साथ बहुरि अपने अपने आसनपर आय वैठे. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार मैंने कहा; तब गौरी भगवती जगन्माता जैसे माता पुत्रसे कहै, तैसे मुझसे कहत भयी. गौरी भगवत्युवाच–हे वसिष्ठजी ! पतिव्रता जो अरुंधती है, सो कहां है, जो पतिव्रताविषे मुख्य है, तिसको ले आउ, क्योंकि वह मेरी प्यारी सखी है तिससे मैं कथा शब्दचर्चा करौंगी. हे रामजी ! इस प्रकार जब मुझको पार्वतीने कहा, तब मैं शीघ्र ही जायकरि अरुंधतीको ले आया, वे दोनों परस्पर कथा चर्चा वार्त्ता संवादविषे लगीं अरु मैं विचारता भया कि, मुझको ईश्वर प्राप्त भया अरु पूछनेका अवसर पाया है, ताते सर्वज्ञानके समुद्रको पूँछौं, संदेहको दूर करौं. हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै गौरीशसे पूछत भया, तब जो कछु चंद्रकलाधारीने मुझसे कहा है; सो मैं तुझको कहता हौं सो सुन. वसिष्ठ उवाच–हे भगवन् ! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके ईश्वर अरु सर्व कारणके कारण तुम्हारे प्रसादकरिकै मैं कछु पूछनेको समर्थ हुआ हौं. हे महादेव ! जो कछु मैं पूछता हौं, सो प्रसन्नबुद्धि होकरि तत्त्वते शीघ्र ही उद्वेगको त्यागिकरि कहौ, हे सर्वपापके नाश करनेहारे अरु सब कल्याणकी वृद्धि करनेहारे ! देव अर्चनका विधान मुझको कहौ. ईश्वर उवाच–हे ब्राह्मण ! उत्तम जो देवअर्चन है, जिसके कियेते संसारसमुद्रको तरि जाइये, सो सुन. हे ब्राह्मणविषे श्रेष्ठ ! पुंडरीकाक्ष जो विष्णु है, सो देव नहीं अरु त्रिलोचन जो शिव है, सो भी देव नहीं कमलते उपजा जो ब्रह्मा है, सो भी देव नहीं अरु सहस्रनेत्र इंद्र भी देव नहीं न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चंद्रमा है,न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न तू है, न मैं हौं, न देह है, न चित्त है, न कलनारूप है, अकृत्रिम अनादि अनंत संवित्‌रूप देव कहाता

है, अपर आकारादिक परिच्छिन्नरूप हैं, सो वास्तवते कछु नहीं. एक अकृत्रिम अनादि अनंत चेतनरूप देव है, सो देव शब्दकरि कहाता है, तिसका जो पूजन है; सोई पूजन है, तिस देवको सर्वत्र जानना, जिसते यह सर्व हुआ है, जो सत्ता शांत आत्मरूप है, सर्व ठौरविषे तिसको देखना यही उसका पूजन है अरु जो तिस संवित्तत्त्वको नहीं जानते, तिनको आकारकी अर्चना कही है, जैसे जो पुरुष योजनपर्यंत नहीं चलि सकता, तिसको एक कोशका दो कोशका चलना भी भला है, तैसे जो पुरुष अकृत्रिम देवकी पूजा नहीं करि सकता, तिसको आकारका पूजना भी भला है. हे ब्राह्मण ! जिसकी भावना कोऊ करता है, तिसके फलको तिसी अनुसार भोगता है, जो प्रच्छन्नकी उपासना करता है; तिसको फल भी प्रच्छन्न प्राप्त होता है अरु जो अकृत्रिम आनंद अनन्त देवकी उपासना करता है, तिसको वही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है. हे साधो ! अकृत्रिम फलको त्यागिकरि कृत्रिमको चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कोऊ मंदार वृक्षके वनको त्यागिकरि करंजुएके वनको प्राप्त होवै, तैसे वह करते हैं, सो देव कैसा है अरु उसकी पूजा क्या है अरु क्यों करि होती है सो सुन, तीन फूल हैं, तिन फूलनसे तिसकी पूजा होती है, एक बोध १, एक साम्य २, एक शम ३, यह तीनों पुष्प हैं; बोध नाम सम्यक्ज्ञानका है कि, आत्मतत्त्वको ज्योंका त्यों जानना अरु साम्य नाम है, जो सर्वविषे पूर्ण देखना, शमका अर्थ यह कि, चित्तको निवृत्त करना आत्मतत्त्वते इतर कछु न फुरै, इन तीनों फूलनसे शिव चिन्मात्र शुद्ध देवकी पूजा होती है. हे मुनीश्वर ! बोध, साम्य, शम इन पुष्पनकरि आत्मादेवकी पूजा करते हैं, यही देवकी पूजा है, आकार अर्चनकरि अर्चा नहीं होती, जो आत्मसंवित् चिन्मात्र है, तिसको त्यागिकरि अपर जड़की जो अर्चना करते हैं, सो चिरपर्यंत क्लेशके भागी होते हैं. हे ब्राह्मण ! जो ज्ञातज्ञेय पुरुष हैं, सो आत्मध्यानते इतर पूजन अर्चन बालककी क्रीडावत् मानते हैं, आत्मा भगवान् एक देव है, सो शिव है, परम कारणरूप है, तिसका सर्वदा ही ज्ञान अर्चनकरि पूजन है,अपर पूजा कोई नहीं चेतन आकाश अवयव स्वभाव एक आत्म-

देवको तू जान, अपर पूज्य पूजक पूजा त्रिपुटीकरि आत्मदेवकी पूजा नहीं होती. वसिष्ठ उवाच–हे भगवन्! चेतन आकाशमात्र आत्माको जैसे यह जगत् है अरु चेतनको जीव कहते हैं, सो कहौ. ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर! चेतन आकाश प्रसिद्ध है, सर्व प्रकृतिते रहित है, जो महाकल्पविषे शेष रहता है, सो आप ही किंचनरूप होता है, तिस किंचनकरि यह जगत् होता है, जैसे स्वप्नविषे चिदात्मा ही सर्वगत जगत्‌रूप होकरि भासता है, तैसे जाग्रत् जगत् भी चिदाकाशरूप है, आदि सर्गते लेकरि इस कालपर्यंत आत्माते इतरका अभाव है, जैसे स्वप्नविषे जो जगत् भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, अपर इतर कल्पना कोई नहीं, चिन्मात्र ही पहाड़रूप है, चिन्मात्र ही जगत् है, चिन्मात्र ही आकाश है, चिन्मात्र ही सब जीव हैं, चिन्मात्र ही सब भूत हैं, चिन्मात्रते इतर कछु नहीं, सृष्टिके आदि अरु अंतपर्यंत अपर जो कछु द्वैतकल्पना भासती है, सो भ्रममात्र है; जैसे स्वप्नविषे किसीके अंग काटे सो किसीके काटे तौ नहीं निद्रादोषकरि ऐसे भासते हैं, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी भ्रममात्र है. हे मुनीश्वर! आकाश परमआकाश ब्रह्माकाश तीनों एकहीके पर्याय हैं, जैसे स्वप्नविषे संकल्पकरि मायामेंते अनुभव होता है, सो सब चिदाकाश है, तैसे यह जाग्रत् जगत् चिदाकाशरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे आकाशते इतर कछु नहीं होता, तैसे जाग्रत् स्वप्न भी आत्मतत्त्व होकरि भासता है; आत्माते इतर दूजी वस्तु कछु नहीं. हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्नविषे चिदाकाश ही घट पट आदिक होकरि भासता है, तैसे स्थितिप्रलयादि जगत् चिदात्माते इतर कछु नहीं, आत्मा ही ऐसे भासता है, जैसे शुद्ध संवित्‌मात्रते इतर स्वप्नविषे नगर नहीं पाता, तैसे जाग्रत्‌विषे अनुभवते इतर कछु नहीं पाता. हे मुनीश्वर! भावअभावरूप पदार्थ तीनों काल जगत् भासता है; सो सब चिदाकाशरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं. हे मुनीश्वर! यह देव मैं तुझको कहा है सो परमार्थते कहा है, तू मैं अरु सब भूतजाति सर्वजगत्‌का जो देव है सो चिदाकाश परमात्मा है, तिसते इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पपुरविषे चिदाकाश ही शरीर-

रूप हो भासता है, इतर कछु नहीं बना, तैसे यह सब चिदाकाशरूप है.
इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मरूपवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०.
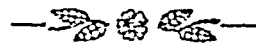
वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच–हे ब्राह्मण ! इस प्रकार यह सर्व विश्व केवल परमात्मारूप है परमात्माकाश ब्रह्म ही एक देवकरि कहाता है, तिसहीका पूजन सार है तिसहीते सर्व फल प्राप्त होते हैं, सो देव सर्वज्ञ है अरु सब तिसविषे स्थित हैं अकृत्रिम देव अज परमानंद अखंडरूप है, तिसको साधना करिकै पाना है, तिसकरि परमसुखको प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर ! तू जागा हुआ है, तिस कारणते इस प्रकार देवअर्चना मैं तुझको कही है अरु जो असम्यक्‌दर्शी बालक हैं, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि प्राप्त नहीं भयी, केवल चित्त है, तिनको धूप दीप पुष्पकर्म आदिक अर्चना कही है, आकारकरिकै कल्पित देवकी मिथ्या कल्पना करी है. हे मुनीश्वर ! अपने संकल्पकारि जो देव बनावते हैं, तिसको पुष्प धूप दीपादिककरि पूजते हैं, सो भावनामात्र है, तिसकरि तिनको संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है, सो बालकबुद्धिकी अर्चना है, जो तुमसारखे हैं, तिनको यही पूजा है, जो तुमको सर्व आत्मभावनाकरि कही है. हे मुनीश्वर ! हमारे मतविषे तौ अपर देव कोई नहीं एक ही परमात्मा देव तीनों भुवनविषे है, तिसते अपर देव कोई नहीं, सो शिव है अरु सर्व पदते अतीत है, सर्व संकल्पते उल्लंघन वर्तता है अरु सर्व संकल्पका अधिष्ठान वही है अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, सर्व प्रकार शांतरूप है, एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है, तिसको देवकरि कहते हैं. हे मुनीश्वर ! जो संवित्‌सत्ता पंचभूतकलाते अतीत है अरु सर्व भावके अंतर वही स्थित है अरु सर्वको सत्ता देनेहारा देव है अरु सर्वकी सत्ता हरनेहारा भी वही है. हे ब्राह्मण ! जो ब्रह्म सत्य असत्यके मध्य अरु असत्य सत्यके पर कहाता है, सो देव परमात्मा है,

परम स्वतः सत्ता स्वभावकरिकै सबको प्राप्त भया है अरु महाचित्तकरिकै कहाता है, सो परमात्मा देव सत्ता है, ऐसे सर्वविषे स्थित है, जैसे सर्व वृक्षकी लताके अंतर रस जल स्थित है, तैसे सत्ता समानरूपकरिकै परम चेतन आत्मा सर्व ओर स्थित है, जो चेतनतत्त्व अरुंधतीका है अरु जो चेतनतत्त्व तुझ निष्पापका है अरु जो चेतनतत्त्व पार्वतीका है, सोई चेतनतत्त्व मेरा है, सोई चेतनतत्त्व जगत् त्रिलोकीका है, सो देव है, अंपर देव कोई नहीं अरु जो अपर हस्तपादसंयुक्त देव कल्पते हैं, सो भी चिन्मात्र सार कछु नहीं, चिन्मात्र ही सर्व जगत्का सारभूत है, सोई अर्चना करने योग्य है, तिसीते सब फलकी प्राप्ति होती है, सो देव कहूँ दूर स्थित नहीं अरु किसी प्रकार किसीको प्राप्त होना भी कठिन नहीं, सर्वके देहविषे स्थित है अरु सर्वका आत्मा है,सो दूर कैसे होवै अरु कठिन तासों प्राप्त कैसे होवै ? सब क्रिया वही करता है, भोजन भी वहीं करता है भरण पोषण भी वही करता है, वही श्वास लेता है, सबका ज्ञाता वही है, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंबित होकरि प्रकाशता वही है; जैसे पर्वतके ऊपर चर-अचरकी चेष्टा होती है, चलते बैठते स्थित होते हैं,सो सबका आधारभूत पर्वत है, तैसे मनसहित षट् इंद्रियोंकी चेष्टा आत्माके आश्रय होती है, तिस देवकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त तत्त्ववेत्ताने कल्पी है, सो एक देव चिन्मात्र है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, निरंजन है, आत्मा है, ब्रह्म है, इत्यादिक नाम ज्ञानवान्ने शास्त्र बुद्धि उपदेश व्यवहारके निमित्त रक्खे हैं. हे मुनीश्वर ! जेता कछु विस्तारसहित जगत् भासता है, सो सबका प्रकाश वही है अरु सबते रहित है, सो नित्य शुद्ध अद्वैतरूप है, सब जगत्विषे अनुस्यूत है, जैसे वसंतऋतुविषे नाना प्रकारके फूल वृक्ष भासते हैं अरु सर्वविषे एक ही रसव्यापार है वही अनेकरूप हो भासता है, तैसे एक ही आत्मसत्ता अनेकरूप होकरि भासती है. हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगत् है, सो आत्माका चमत्कार भासता है, आत्मतत्त्वविषे स्थित है, कहूं आकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं जीवरूप होकरि स्थित है, कहूं चित्तरूप, कहूं अहंकाररूप होकरि स्थित है, कहूं दिशारूप, कहूं द्रव्यरूप, कहूं भाविकारूप, कहूं तमरूप,

कहूं प्रकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं सूर्य, कहूं पृथ्वी, कहूं जल, कहूं, अग्नि, वायु आदिक स्थावरजंगमरूप होकरि वही स्थित है. जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, तैसे एक परमात्मा देवविषे त्रिलोकियां हैं. हे मुनीश्वर! देवता दैत्य मनुष्य आदिक सब एक देवविषे पड़ बहते हैं, जैसे जलविषे तृण बहते हैं, तैसे परमात्माविषे जीव बहते हैं, वही चेतनतत्त्व चतुर्भुज होकरि दैत्योंको नाश करता है, जैसे जल मेघरूप होकरि धूपको रोकता है, वही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र, मस्तकपर चंद्रधारी, वृषभके ऊपर आरूढ, पार्वतीरूपी कमिलिनीके मुखका भँवरा रुद्र होकरि स्थित होता है अरु वही चेतन विष्णुरूप सत्ता है, तिसके नाभिकमलते उत्पन्न हुआ ब्रह्मा, त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनीकी तलावडी होकरि स्थित भया है. हे मुनीश्वर! इस प्रकार एक ही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकरि स्थित भया है अरु जैसे एक ही रस अनेकरूप होकरि स्थित होता है अरु जैसे एक ही स्वर्ण अनेक भूषणरूप होकरि स्थित होता है, तैसे एक ही चेतन अनेकरूप होकरि स्थित होता है, ताते सर्व देह एक चेतनतत्त्वके हैं, जैसे एक वृक्षके अनेक पत्र होते हैं, तैसे एक ही चेतनके सर्व देह हैं वही चेतन मस्तकऊपर चूडामणि धारणहारा त्रिलोकपति इंद्र होकरि स्थित भया है, देवतारूप होकरि भी वही स्थित भया है अरु दैत्यरूप होकरि भी वही स्थित भया है, मरण उपजनेका रूप भी वही धारता है, जैसे एक समुद्रविषे तरंगके समूह उपजते अरु मिट जाते हैं, सो जल ही जलरूप है, तैसे उपजना अरु विनशना चेतनविषे होता है, सो चेतनरूप परमात्मा एक ही वस्तु है. हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श है, तिसविषे जगत्‌रूपी प्रतिबिंब होता है, अपनी रची हुई वस्तुको आप ही ग्रहण करिके अपनेविषे धारता है. जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भको धारती है, तैसे चेतनतत्त्व जगत्‌प्रतिबिंबको धारता है. हे मुनीश्वर! सर्व क्रिया उसी देवकरि सिद्ध होती हैं, देना, लेना, बोलना, चालना, सब उसीकरि सिद्ध होता है, सूर्यादिक प्रकाशरूपी उसीकरि प्रकाशते हैं अरु उसीकरि प्रफुल्लित होते हैं, जैसे नीलकमल अरु रक्तकमल सूर्यकरि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्माकरि अंधकार अरु प्रकाश दोनों सिद्ध

होते हैं. हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतनरूपी वायुकरि उडती है, जेते कछु जगत्के आरंभ हैं, तिन सर्वको चेतनरूपी दीपक प्रकाश करता है, जैसे फूलके सिंचनेकरि वल्ली प्रफुल्लित होती है अरु फूल फलको प्रगट करती है, तैसे चेतन सत्ता सर्व पदार्थको प्रगट करती है, सबको सत्ता देकरि सिद्ध करती है. हे मुनीश्वर! चेतनहीकरि जडकी सिद्धता होती है अरु चेतनहीकरि जडका अभाव होता है, जैसे प्रकाशहीकरि अंधकार सिद्ध होता है अरु प्रकाशहीकरि अंधकारका अभाव होता है, तैसे सर्व देह चेतनकरि सिद्ध होते हैं अरु चेतनहीकरि देहोंका अभाव होता है, चेतन भी उसीकरि होता है, शिव भी उसीकरि होता है. हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो चेतन विना सिद्ध होवै, जो कोई पदार्थ है, सो आत्माहीकरि सिद्ध होता है. हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष सुंदर है, बडे ऊँचे टाससहित है, परंतु चेतनरूपी मंजरी विना नहीं शोभता, जैसे रस विना वृक्ष नहीं शोभता, तैसे चेतन विना शरीर नहीं शोभता, बढना घटना आदिक जो विकार हैं, सो भी एक आत्माकरि सिद्ध होते हैं, यह जगत् सब चेतनरूप है, चेतनमात्र ही अपने आप विषे स्थित है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणीकरि त्रिनेत्रने मुझसे कहा, तब मैं अमृतरूपी भले प्रकार वाणीकरि पूँछत भया. हे देव! जब सर्वगत चेतन देव व्यापकरूप स्थित है अरु चेतन ही बडे विस्तारको प्राप्त भया है, तब यह प्रथम चेतन था, अब यह चेतनताते रहित है, यह कल्पनाका सब लोकविषे प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है? ईश्वर उवाच–हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ! महाप्रश्न यह तुझने किया है, तिसका उत्तर सुन. हे ब्राह्मण! इस शरीरविषे दो चेतन स्थित हैं, एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है, एक निर्विकल्प आत्मा है, जो चैतन्योन्मुखत्व दृश्यसाथ मिला हुआ है, सो जीव है, संकल्पके फुरणेकरि अन्यकी नाईं हो गया है अरु वास्तवते अपर कछु नहीं हुआ, परंतु दृश्यसंकल्पके अनुभवको ग्रहण किया है, तिसकरि जीवरूप हुआ है, जैसे स्त्री अपने शील धर्मको त्यागिकरि दुराचारिणी होती है, तब शीलता उसकी जाती रहती है, परंतु स्त्रीका

स्वरूप नहीं जाता, तैसे चैतन्योन्मुखत्वकरिके अनुभवरूपी जीवरूप हो जाता है, परंतु चेतनस्वरूपका त्याग नहीं करता, जैसे पुरुष संकल्पके वशते एक क्षणविषे अपररूप हो जाता है, तैसे चित्तसत्ता फुरणेभावकरिकै अन्यरूप हुई है, जैसे जल दृढ जडताकरिकै पत्थरवत् हो जाता है, तैसे चेतनकला जीवरूप भयी है. हे मुनीश्वर ! आदि जो चित्तस्पंद चित्तकलाविषे हुआ है, तब शब्दके चेतनते आकाश हुआ बहुरि स्पर्श तन्मात्राका चेतना हुआ, तब वायु प्रकट भया इसी प्रकार पंच तन्मात्राके फुरणेकरि पंचतत्त्व हुए, बहुरि देश आदिका उपाय हुआ तिसविषे जीव प्रतिबिंबित भया, बहुरि निश्चयवृत्ति हुई, तिसका नाम बुद्धि हुआ, बहुरि अहंवृत्ति फुरी, तिसका नाम अहंकार हुआ, बहुरि संकल्प विकल्पवृत्ति फुरी, तिसका नाम मन हुआ, चिंतवना करिकै चित्त हुआ बहुरि संसारकी भावना हुई, तब संसारका अनुभव हुआ, अभ्यासके वशते संसार भासने लगा जैसे विपर्यय भावनाकरिकै ब्राह्मण आपको चंडाल जानै, तैसे भावनाके विपर्ययकरि आपको जी मारने लगा है, संकल्पकी जडता करिकै चेतनरूपी जीवको ग्रहणकरि संकल्पविषे वर्तता है, अनंत संकल्पते जडता तीव्रताको प्राप्त होकरि जडभावको ग्रहणकरि देहभावको प्राप्त होता है, जैसे जल दृढ जडता करिकै बर्फरूप हो जाता है, तैसे चेतन अनंत संकल्पकरिकै जड देहभावको प्राप्त होता है, तब चित्त मन मोहित हुआ जडताको आश्रय करिकै संसारविषे जन्म लेता है, मोहको प्राप्त हुआ तृष्णाकरिकै पीडित होता है; कामक्रोधसंयुक्त भावअभावविषे प्राप्त होता है, अपनी अनंतताको त्यागिकरि परिच्छिन्न व्यवहारविषे वर्तता है, दुःखदायक अग्निकरि तप्त हुआ शून्यभावको प्राप्त होता है, भेदभावको ग्रहण करिकै महादीन हो रहता है. हे मुनीश्वर ! मोहरूपी जो गर्त है, तिसविषे जीवरूपी हस्ती फँसा है, भावअभावकरि सदा डोलायमान होता है, जैसे जलविषे तृण भ्रमता है, तैसे असाररूप संसारविषे विकारसंयुक्त रागद्वेषकरि तपता रहता है, शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता है जैसे यूथते बिछुरा एक मृग कष्टवान् होता है, तैसे आवरणभाव,

जन्ममरणकरि कष्टवान् होता है, अपने संकल्पकरि आप ही भय पाता है, जैसे बालक अपने परछाईविषे वैताल कल्पिकरि आप ही भय पाता है, तैसे जीव अपने संकल्पकरि आप ही भयभीत होता है अरु संकटको पाता है, आशारूपी फाँसीकरि बांधा हुआ कष्टते कष्टको पाता है, कर्मकरिकै तपायमान हुआ अनेक जन्म पाता है अरु भयविषे रहता है, बालक होता है, तब महादीन परवश होता है, बहुरि यौवन अवस्थाविषे कामादिकके वश हुआ स्त्रीविषे चित्त रहता है अरु वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकरि मग्न होता है, दुःख कष्ट पडा पाता है, जब मृतक होता है, तब कर्मोंके वश चला जाता है, बहुरि जन्मता है, गर्भविषे दुःख पाता है, बहुरि बालक यौवन वृद्ध अरु मृतक अवस्थाको पाता है, इसी प्रकार भटकता है, स्वरूपते गिरा हुआ स्थिर कदाचित् नहीं होता. हे मुनीश्वर ! एक चित्तसत्ता स्पंदभावकरिकै अनेक भावको प्राप्त होती है, कहूँ दुःखकरि रुदन करती है, कहूँ दुःख भोगती है, कहूँ स्वर्गविषे देवांगना होती है, पातालविषे नागिनी होती है, असुरविषे असुरी, राक्षसविषे राक्षसी होती है, वनकोटविषे वानरी, सिंहविषे सिंहिणी, किन्नरविषे किन्नरी, हरिणोंविषे हरिणी होती है, विद्याधरी, गंधर्वी, देवताविषे देवी इत्यादिक जो रूप धारती है, सो चेत्योन्मुखत्व जीवकलारूप धारती है क्षीर-समुद्रविषे विष्णुरूप होकरि स्थित होती है, ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्मारूप होकरि स्थित होती है, पञ्चमुख होकरि रुद्ररूप स्थित होती है, स्वर्ग-विषे इंद्ररूप होकरि स्थित होती है, तीक्ष्ण कलाकरि सूर्यरूप दिनका कर्ता होती है, क्षण दिन मास वर्षको करती है, चंद्रमा होकरि रात्रिको करती है, काल होकरि नक्षत्रको करती है, कहूँ प्रकाश, कहूँ तम होती है, कहूँ बीज, कहूँ पाषण, कहूँ मनरूप होती है, कहूँ नदी होकर बहती है, कहूँ फूल होकरि फूलती है, कहूँ भँमरा होकरि सुगंध लेती है, कहूँ फल होकरि दिखावती है, कहूँ वायु होकरि चलती है, कहूँ अग्नि होकरि जलावती है, कहूँ बर्फ होती है, कहूँ आकाश होकरि दिखावती है. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार सर्वात्मा सर्वगत सर्व शक्तता करिकै एक ही रूप चित्तशक्ति आकाशते भी निर्मल है, जैसे चेता तैसे होकरि स्थित भयी है,

जैसी जैसी भावना करती है, शीघ्र ही तैसा रूप हो जाती है, परन्तु स्वरूपते इतर कछु नहीं होती, जैसे समुद्रविषे फेन तरंग होकरि भासता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं होता, जल ही जल है, तैसे चित्तशक्ति अनेक रूप धारती है, परन्तु चेतनते कछ इतर नहीं होती, कहूँ हंस, कहूँ काक, कहूँ शूकर, मक्खी, चिडी इत्यादिक रूप धारिकरि संसारविषे प्रवर्त्तती है, जैसे जलविषे आय तृण भ्रमता है, तैसे भ्रमती है अरु अपने संकल्पते आप ही भय पाती है, जैसे गधेड़ा अपने शब्दकरि आप ही पडा दौड़ता है अरु भय पाता है, तैसे जीव अपने संकल्पकरिकै आप ही भय पाता है. हे मुनीश्वर ! जीवशक्तिका आचार मैंने तुझको कहा है इस आचारको ग्रहण करिकै बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है, स्वरूपके प्रमाद करिकै जैसा जैसा संकल्प करती है, तैसी तैसी कर्मगतिको प्राप्त होती है अरु शोकवान् होती है, अनंत दुःखको प्राप्त होती है अपनी चेत्यताकरिकै मलिन होती है, जैसे चावलका स्वरूप तुपकरि आवरा जाता है अरु बडे संतापको प्राप्त होता है, बहुरि बहुरि बोता है, बहुरि उगता काटता है, तैसे स्वरूपके आवरणकरिकै जीवकला दुर्भाग्यता जन्ममरणदुःखको प्राप्त होती है, जैसे भरतारते रहित स्त्री शोकवान् होती है तैसे यह कष्टको पाती है. हे मुनीश्वर ! जड जो है दृश्य अनात्मरूप, तिससे प्रीति करनेकरि अरु निजस्वरूपके विस्मरणकरि आशारूपी फांसीसे बांधा हुआ चित्त जीवको नीच योनिविषे प्राप्त करता है. जैसे घटीयंत्रके टींड कबहूँ अधःको जाते हैं, कबहूँ ऊर्ध्वको जाते हैं, तैसे जीव आशाका वश हुआ कबहूँ पाताल, कबहूँ आकाशको जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारो नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

ईश्वरोपाख्याने मनःप्राणैक्यप्रतिपादनम् ।

ईश्वर उवाच—हे मुनीश्वर ! स्वरूपके विस्मरण करिकै इस प्रकार होता है, कि मैं हंता हौं मैं दुःखी हौं सो अनात्माविषे अहंप्रतीति

करिकै दुःखका अनुभव करता है, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपको पर्वतते गिरता देखता है, दुःखी होता है अरु मृतक हुआ आपको देखता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरिकै अनात्मविषे आत्माभिमान करिकै दुःखी आपको देखता है. हे मुनीश्वर! शुद्ध चेतनतत्त्वविषे जो चित्तभाव हुआ है, सो चित्तकला फुरणेकरि जगत्का कारण हुआ है, तिसकरि जगत् होता गया है, परन्तु वास्तव स्वरूपते इतर कछु नहीं भया, जैसे जैसे चेतती गयी है, तैसे तैसे जगत् होता गया है, वह चित्तका कारणरूप भी नहीं भया, जब कारण ही नहीं भया, तब कार्य किसको कहिये? हे मुनीश्वर! न वह चित्त है,न चेतन है, न चेतनेवाली है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न दर्शन है, जैसे पत्थरविषे तेल नहीं होता, सो न कारण है, न कर्म है, न करण इंद्रियां हैं, जैसे चंद्रमाविषे समता नहीं होती; न मन है, न मानने योग्य दृश्य वस्तु है,जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं होता. न अहंता है, न तू है, न दृश्य है, जैसे शंखको श्यामता नहीं होती. हे मुनीश्वर! न नाना है, न अनाना है, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, न शब्द है, न शब्दका अर्थ है, जैसे मरुस्थलविषे वल्ली नहीं होती, न वस्तु है, न अवस्तु है,जैसे बर्फविषे उष्णता नहीं होती, न शून्य है, न अशून्य है, न जड है, न चेतन है, जैसे सूर्यमंडलविषे अंधकार नहीं होता. हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्द अरु अर्थकी कल्पना उसविषे कछु नहीं,जैसे अग्निविषे शीतलता नहीं होती, केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है, स्वरूपते किसीको कछु भी दुःख नहीं. हे मुनीश्वर! जगत्को असत् जानकरि अभावना करनी अरु आत्माको सत् जानिकरि भावना करनी इस भावनाकरि सर्व अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं, सो अपर किसीकरि प्राप्त नहीं होता अपने आपहीकरि प्राप्त होता है अरु अनादि ही सिद्ध है, जब तिसकी ओर भावना होती है, तब भ्रम सब मिटि जाता है, जब अनात्मभावना होती है, तब पाना कठिन होता है, यत्न विना वह कैसे पावै, जो यत्न साथ है, सो यत्न विना नहीं पाया जाता, आत्मा कैसा है, निर्विकल्प है, अद्वैत है, सर्वते अतीत है, सो अभ्यास विना कैसे पाइये, आत्मतत्त्व परम है, एक स्वच्छ है, तेजका

भी प्रकाशक है, सर्वगत निर्मल नित्य है, सदा उदित निर्मल शक्ति-रूप है, निर्विकार निरंजन है, सो घट, पट, वट, वृक्षविषे, गादीविषे, वानरविषे, दैत्य देवता समुद्रविषे, हस्तिविषे इत्यादिक स्थावरजंगम-सरूप जेता कछु जगत् है, सो सर्वविषे एक आत्मतत्त्वविषें साक्षी-रूप होकरि स्थित है, दीपकवत् सर्वको प्रकाशता है अरु सर्व क्रियाते अतीत है अरु तिसकरि सर्व कार्यसिद्धि होती है, सर्व क्रिया संयुक्त भासता है अरु सर्व विकल्पते रहित जडवत् भी भासता है, परंतु परम चेतन है, सर्व चेतनका सार चेतन है, निर्विकल्प परम सूक्ष्म है अरु अपने आपविषे किंचन हो भासता है अरु अपने प्रमाद-करिकै रूप अवलोकन नमस्कार त्रिपुटी भासती है, जब बोध होता है, तब ज्योंका त्यों आत्मा भासता है, नित्य शुद्ध निर्मल परमानंद-रूप है, तिसके प्रमादकरिकै चित्तभावको प्राप्त होता है, जैसे साधु भी दुर्जनके संगकरिकै असाधु हो जाते हैं, तैसे अनात्माके संगकरि यह नीचताको प्राप्त होता है, जैसे सोना धातुकी मिलवनीकरि खोटा हो जाता है, जब शोधा जाता है, तब शुद्धताको प्राप्त होता है,तैसे अनात्माके संगकरि यह जीव दुःखी होता है, जब अभ्यास यत्न-करिकै अपने शुद्धरूपको पाता है, तब वहीरूप हो जाता है, जैसे मुखके श्वासकरि दर्पण मलिन हो जाता है, तब उसविषे मुख नहीं भासता, जब मलिनता निवृत्त होती है, तब शुद्ध होता है, तिसविषे मुख स्पष्ट भासता है, तैसे चित्त संवेदन प्रमादते फुरणेकरि जगद्रूप भासने लगता है अरु आत्मस्वरूप नहीं भासता, जब यह जगत्सत्ता फुरणेस-हित दूर होवैगी, तब आत्मतत्त्व भासैगा, जगत्की असत्यता भासैगी. हे मुनीश्वर ! जब शुद्ध संवित्विषे चेतनका फुरणा निवृत्त होता है, तब अहंताभावको प्राप्त होता है, जब अहंकारको प्राप्त भया; तब अवि-नाशी रूपको विनाशी जानता है. हे मुनीश्वर ! स्वरूपते कछु भी उत्थान होता है, तिसकरि स्वरूपते गिरकै कष्ट पाता है, जैसे पहाड़ते गिरा अधः चला जाता है अरु चूर्ण होता है, तैसे स्वरूपते उत्थान हुआ अरु अनात्माविषे अभिमान अहं प्रतीत हुई, तब अनेक दुःखहूको प्राप्त

होता है. हे मुनीश्वर ! सर्व पदार्थका सत्तारूप आत्मा है, तिसके अज्ञानकरिकै देवत्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तिसका बोध होवै, तब देवत्वभाव निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा शुद्ध चिन्मात्रस्वरूप है, तिसकी सत्ताकरिकै देह इंद्रियादिक भी चेतन होते हैं अरु अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि सब जगत्‌का व्यवहार होता है,प्रकाश विना व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्माकी सत्ताकरिकै देह इंद्रियादिकका व्यवहार होता है, अपने अपने विषयको ग्रहण कर लिया है. हे मुनीश्वर ! प्राणवायुको किये जो नेत्रहूविषे सुख श्यामता है, सो अपने आपविषे रूपको ग्रहण करती है, तिसका बाह्य विषयसाथ संयोग होता है, तिस रूपका जिसविषे अनुभव होता है, सो परम चैतन्यसत्ता है, त्वचा इंद्रियां अरु स्पर्शविषे जब संयोग होता है, इन जडनहूका जिसकरि अनुभव होता है, सो साक्षीभूत परम चेतनसत्ता है अरु नासिका इंद्रियका जब गंध तन्मात्रसाथ संयोग होता है, तिसके संयोगविषे जो अनुभव सत्ता है सो परम चेतन है, इसी प्रकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह जो पांचों विषय हैं अरु श्रोत्र नेत्र त्वचा रसना नासिका इन पांचों इंद्रियसाथ मिलिकरि इनके जाननेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्व है, सो सुख संवित् परम चेतन कहाता है अरु जो बहिर्मुख फुरिकरि दृश्यसाथ मिला है, सो मलिन चित्त कहाता है अरु जब वही मलिनरूप अपने शुद्ध स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शुद्ध होता है. हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब आत्मस्वरूप है, शिला घनकी नाईं अद्वैत सर्व विकारते रहित है, न उदय होता, न अस्त होता है, संकल्पके वशते जीवभावको प्राप्त होता है, संकल्पके निवृत्त हुए परमात्मारूप हो जाता है. हे मुनीश्वर ! आदि जो चित्तकला फुरी है, सो जीवरूपी रथपर आरूढ हुए हैं अरु जीव अहंकाररूपी रथपर आरूढ हुआ है, अहंकार बुद्धिरूपी रथपर आरूढ है अरु बुद्धि मनरूपी रथपर आरूढ है, मन प्राणरूपी रथपर चढा है अरु प्राण इंद्रियांरूपी रथपर चढे हैं, इंद्रियका रथ देह है अरु देहका रथ पदार्थ है, जो कर्म करती है, कर्महूकरि जरामरणरूपी संसारपिंजरेविषे भ्रमती

है, इस प्रकार चक्र वर्तता है, तिसविषे जीव प्रमाद करिकै पड़ा भटकता है. हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्माका आभास विरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् वास्तव कछु नहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रमकरिकै भासती है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है. हे मुनीश्वर! मनका रथ प्राण है, जब प्राणकला फुरणेते रहित होती है, तब मन भी स्थित हो जाता है, प्राणके स्थित हुए मनका मनन शांत हो जाता है अरु जब प्राणकला फुरती है, तब मनका मनन भी फुरता है, प्राणकला स्थित भयी, तब मनन निवृत्त हो जाता है, जैसे प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासते, जैसे वायुके शांत हुए धूलि उडनेते रहि जाती है, तैसे प्राणके फुरनेते रहित मन शांत होता है, जैसे जहां पुष्प होते हैं तहां गंध भी होती है, जहां अग्नि है तहां उष्णता भी होती है, तैसे जहां प्राणस्पंद होता है, तहां मन भी होता है, हृदयविषे जो नाड़ी है, तिसविषे प्राण स्वतः फुरते हैं, तिसकरि मनन होता है, संवित् जो है स्वच्छरूप सो जड़ अजड सर्वत्र भासती है अरु संवेदन प्राणकलाविषे फुरती है. हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है, परंतु जहां प्राणकला होती है, तहां भासती है, जहां प्राणकला नहीं, तहां नहीं भासती, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां उज्ज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होता है, तहां प्रतिबिंब भासता है अपर ठौर नहीं भासता, तैसे आत्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां प्राणकला पुर्यष्टक होती है, तहां भासती है, अपर ठौर नहीं भासती, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है शिलाविषे नहीं भासता, तैसे पुर्यष्टक जो मनरूप है, सर्वका कारण है अहंकार बुद्धि इंद्रियां सो तिसीके भेद हैं, जो आपहीकरि कल्पित हैं, सर्व दृश्यजाल तिसहीकरि उदय होते हैं, अपर वस्तु कोऊ नहीं, यह भले प्रकार अनुभव किया है, ताते मन ही देहादिकको प्रवर्तत्ता है, सो परमतत्त्व वस्तु तिसहीविषे भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने मनःप्राणैक्यप्रतिपादनं नामैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारवर्णनम्।

ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता विना जीव कंधवत् होता है अरु आत्मसत्ताते चेतन होकरि चेष्टा करता है, जैसे चुम्बक पाषाणकी सत्ताते जड लोहा चेष्टा करता है, तैसे सर्वगत आत्माकी सत्ताकरि जीव फुरता है अरु आत्मसत्ता भी जीवकलाविषे भासती है, अपर ठौर नहीं भासती. जैसे मुखका प्रतिबिंब दर्पणविषे भासता है अपर ठौर नहीं भासता, तैसे परमात्मा सर्वगत सर्वशक्ति भी है, परंतु भासता जीवकला हीविषे है. हे मुनीश्वर! शुद्ध वास्तव स्वरूपते जो इस जीवकलाका उत्थान हुआ है अरु दृश्यकी ओर वही है, तिसकरि चित्तभावको प्राप्त भयी है. जैसे शूद्रनकी संगतिकरिकै ब्राह्मण भी आपको शूद्र मानने लगता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरिकै जीवकला आपको चित्त दृश्यभाव जानने लगी है, अज्ञानकरिकै आच्छादित जीव महादीनभावको प्राप्त हुआ है. जड देहके अध्यासकरि कष्ट पाता है, कामक्रोधादिक वातपित्तादिककरि जलता है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा कर्म करता है, तिस कर्मकी भावनासाथ मिला हुआ भटकता है, जैसे खंभाणीकरि चलाया पत्थर चला जाता है, तैसे कर्मवासनाका प्रेरा जीव भ्रमता है, जैसे रथपर आरूढ होकरि रथी चलाता है, तैसे आत्मा मन अरु प्राण कर्मको दृढ करिकै चलता है. हे मुनीश्वर! चेतन ही जड दृश्यको अंगीकार करिकै जीवत्वभावको प्राप्त होता है, मन प्राणरूपी रथपर चढ़करि पदार्थकी भावनाते नाना प्रकारके भेदको प्राप्त हुएकी नाईं स्थित होता है, जैसे जल ही तरंगभावको प्राप्त होता है, तैसे चेतन नाना प्रकार होकरि स्थित होता है, सो यह जीवकला आत्माकी सत्ताको पायकरि वृत्तिविषे स्फुरणरूप होती है, जैसे सूर्यकी सत्ताको पायकरि नेत्ररूपको ग्रहण करते हैं, तैसे परमात्माकी सत्ता पायकरि जीववृत्तिविषे फुरता है, परमात्मा चित्तत्त्वविषे जो स्थित है, तिसकरि फुरणरूप जीवता है, जैसे घरविषे दीपक होता है, तब प्रकाश होता है, दीपक विना प्रकाश नहीं होता, अपने स्वरूपको

भुलायकरि जीव दृश्यकी ओर लगा है, इस कारणते आधिव्याधिकरि दुःखी होता है, जैसे कमल डोंडीसाथ लगता है, तब भँवरे आनि स्थित होते हैं, तैसे जब जीव दृश्यकी ओर लगता है, तब दुःख आनि स्थित होते हैं, तिसकरि जीव दीन हो जाता है, जैसे जल तरंगभावको प्राप्त होता है, जैसे घुराण अपनी क्रियाकरि आप बंधायमान होती है, जैसे बालक अपने परछाईंको देखकर आप ही अविचारते भय पाता है, तैसे अपने स्वरूपके प्रमादकरिकै आप ही दुःख पाता है अरु दीनताको प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर! चिच्छक्ति सर्वगत अपना आप है तिसकी अभावनाकरिकै दीनताको प्राप्त हुआ है, जैसे सूर्य बादलकरि आच्छादित हो जाता है, तैसे मूढताकरिकै आत्माका आवरण हुआ है, जब प्राणोंका अभ्यास करै, तब जडता निवृत्त होवै, अपना आप आत्मस्मरण होवै, जिनकी वासना निर्मल भयी है, हृदयते दूर नहीं होती सो स्थिर हुई एकरूप हो जाती है, तब जीव जीवन्मुक्त होकरि चिरपर्यंत जीवता है, हृदयकमलविषे प्राणोंको रोकिकरि शांतिको प्राप्त होता है, जैसे काष्ठ लोष्ट होता है, तैसे देह गिर पडती है, तब पुर्यष्टका आकाशविषे लीन हो जाती है, जैसे आकाशविषे पवन लीन होता है, तैसे तिसका मन पुर्यष्टका तहां ही लीन हो जाती है. हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्ध नहीं भयी, सो मृत्युकालविषे तिनकी पुर्यष्टका आकाशविषे स्थित होती है तिसके अनंतर बहुरि फुर आती है, वासनाके अनुसार स्वर्गनरकको देखने लगता है, जब शरीर मनपवनते रहित हुआ, तब शून्यरूप हो जाता है. जैसे पुरुष घरको त्यागिकरि दूरि जाय रहता है, तैसे शरीरको त्यागिकरि मन अरु प्राण अपर ठौर जाते रहते हैं, तब शरीर शून्य हो जाता है. हे मुनीश्वर! चित्सत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां जीव पुर्यष्टका होती है, तहां भासती है, चेतनताका अनुभव होता है, अपर ठौर नहीं होता. हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीरको त्यागता है, तब पंच तन्मात्राको ग्रहण करिकै संग ले जाता है, जहां इसकी वासना होती है, तहां जाय प्राप्त होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, बहुरि दृश्यके दृढ अभ्यासकरि स्थूलभावको प्राप्त हो जाता है, अंतवाहकता विस्मरण

हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरि स्थूल आकार देखता है, मोह मोह-करिकै मरता है, तब अपनेसाथ स्थूल आकार देखता है, बहुरि स्थूल देहविषे अहं प्रतीति करता है, तिससे मिलिकरि क्रिया करता है, तब असत्यको सत्य जानता है अरु सत्यको असत्य जानता है, इस प्रकार भ्रमको प्राप्त होता है, जब सर्वगत चिदंशकरि जीव मन होता है, तब जगत्भावको प्राप्त होता है, जब देहसों पुर्यष्टका निकसती है, तब आकाशविषे जाय लीन होती है, तब देह फुरनेते रहित होती है, तिसको मृतक कहते हैं अपने स्वरूपशक्तिको विस्मरण करिकै जर्जरीभावको प्राप्त होता है, जब जीवशक्ति हृदयकमलविषे मूर्च्छित होती है; प्राण रोके जाते हैं, तब यह मृतक होता है, बहुरि जन्म लेता है, बहुरि मरि जाता है. हे मुनीश्वर ! जैसे वृक्षसाथ पत्र लगते हैं, काल पायकरि नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नूतन लगते हैं, तैसे यह जीव शरीरको धारता है वह नष्ट हो जाता है, बहुरि अपर शरीर धारता है, वह भी नष्ट हो जाता है, जो वृक्षके पत्रनकी नाईं उपजते अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करना व्यर्थ है. हे मुनीश्वर ! चेतनरूपी समुद्रविषे शरीररूपी तरंग बुद्बुदे अनेक उपजते हैं अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करना व्यर्थ है, जैसे दर्पणविषे अनेक पदार्थका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणते इतर कछु नहीं, तैसे चेतनविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, सो चेतन निर्मल आकाशकी नाईं विस्तीर्णरूप है, तिसविषे जो पदार्थ फुरते हैं, सो अनन्यरूप हैं, विधि शरीर भी वही रूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

ईश्वरोपाख्याने द्वैतैक्यप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे अर्धचंद्रधारी ! जो चेतनतत्त्व परमात्मा पुरुष है, सो अनंत एकरूप है, तिसको यह द्वैत कहांते प्राप्त भया है ? अरु

भूत भविष्यत् काल कहांते दृढ़ हो रहा है ? एकविषे अनेकता कहांते प्राप्त भयी है ? अरु बुद्धिमान् दुःखको कैसे निवृत्त करते हैं ? अरु कैसे निवृत्त होता है ? ईश्वर उवाच–हे ब्राह्मण ! ब्रह्म चेतन सर्वशक्त है; जब वह एक ही अद्वैत होता है, तब निर्मलताको प्राप्त होता है, एकके भावकरि द्वैत कहाता है, द्वैतकी अपेक्षाकरि एक कहाता है, सो दोनों कल्पनामात्र हैं, तब चित्त फुरता है, जब एक अरु दोनोंकी कल्पना होती है, चित्तस्पंदके अभाव हुए अरु दोनोंकी कल्पना मिटि जाती है अरु कारणकरि जो कार्य भासता है, सो भी एकरूप है, जैसे बीजते लेकरि फलपर्यंत वृक्षका विस्तार है; सो एकरूप अरु बढना घटना उसविषे कल्पना होती है, तैसे चेतनविषे चित्तकल्पना होती है, तब जगत्‌रूप हो भासता है, परंतु तिस कालविषे भी वहीरूप है. हे मुनीश्वर ! वृक्षके समय भी वस्तु बीज एकरूप है, कछु अपर नहीं हुआ, परंतु बीज फुरता है, तब वृक्ष हो भासता है, तैसे जब शुद्ध चेतनविषे चेतनकलना फुरती है, तब जगत्‌रूप हो भासती है. हे मुनीश्वर ! यह जो कारणकार्य विकाररूप जगत् भासता है, सो असम्यक् दृष्टिकरि भासता है, जैसे जलविषे तरंग भासते हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, जैसे शशेके सींग असत् हैं, जैसे जलविषे द्वैत तरंगकलना असत् है, अज्ञानकरिकै भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, जैसे द्रवताकरिकै जल ही तरंगरूप हो भासता है, तैसे फुरणेकरि आत्मतत्त्व जगत्‌रूप हो भासता है, अपर द्वैत कछु नहीं, चेतनरूपी वल्ली पसरी है, तिसविषे पत्र फूल फल एक ही रूप हैं, जैसे एक वल्ली अनेकरूप हो भासती है, तैसे एक ही चेतन अहं त्वं देश काल आदिक विकार होकरि भासता है, सो वहीरूप है. हे मुनीश्वर ! जब सब ही चेतन है, तब तेरे प्रश्नका अवसर कहां होवै? देश कालक्रिया नीति आदिक जो शक्ति पदार्थ हैं, सो एक ही चिदात्मा है; जैसे जलविषे जब द्रवता होती है, तब तरंगरूप हो भासता है, तिसका नाम तरंग होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् फुरता है, तब अहं त्वम् आदिक नाना प्रकारके नाम होते हैं; परम ब्रह्म शिव परमात्मा चेतनसत्ता द्वैत

अद्वैत आदिक नाम भी फुरणेकरिकै कहते हैं, जो इन नामोंते अतीत है, सो वाणीका विषय नहीं, ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, यह जगत् जो कछु भासता है, सो भी वही चेतनतत्त्व है, जैसे वल्ली फूल पत्र होकरि पसरती है, तैसे चेतन सर्वरूप होकरि पसरता है, सो वहीरूप है. हे मुनीश्वर! महाचेतनविषे जब किंचन होता है, तब जीवरूप होकरि स्थित होता है, आगे द्वैतकलनाको देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपना स्वरूप त्यागिकरि अपर परिच्छिन्न वपुको धारता है अरु आगे द्वैतरूप जगत्को देखता है; जब जागता है, तब अपने अद्वैतरूपको देखता है, परंतु जागे विना भी द्वैत कछु हुआ नहीं, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी कछु हुआ नहीं, भ्रमकरि भासता है, जब यह जीव अपने वास्तव स्वरूपकी ओर सावधान होता है, तब तिसके अभ्यासकरि वही रूप हो जाता है. हे मुनीश्वर! इस जीवका जो आदि वपु है, सो अंतवाहक है, संकल्प ही तिसका रूप होता है, जब तिसविषे अहंभावना तीव्र होती है, तब वही आधिभौतिक होकरि भासता है, तिसविषे सत्यता दृढ हो जाती है, तिसकी सत्यताकरि रागद्वेषसों क्षोभायमान होता है, जब काकतालीयवत् अकस्मात् हृदयविषे विचार आनि उपजता है, तब संकल्परूपी आवरण दूर हो जाता है अरु अपने वास्तव स्वरूपको प्राप्त होता है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयको पाता है, तैसे यह जीव अपने संकल्पकरिकै आप ही भय पाता है. हे मुनीश्वर! यह जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प इसके हृदयविषे दृढ होता है, तैसा ही भासने लगता है, प्रत्यक्ष देख जो पुरुष कछु कार्य करता है, तब सो कर्तृत्वभाव तिसके हृदयविषे दृढ होता है, बहुरि कहता है, यह कार्य मैं न करौं, जब यही संकल्प दृढ होता है, तब उस कार्यते आपको अकर्ता जानता है, तैसे दृश्यकी भावनाकरि जगत् सत्य दृढ हो गया है, जब दृश्यका संकल्प निवृत्त करता है अरु आत्मभावनाविषे जुडता है तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, आत्मा ही भासता है. हे

मुनीश्वर ! परमार्थते कछु द्वैत है ही नहीं, सब संकल्परचना है, संकल्पकरि रचा जो दृश्य सो संकल्पके अभावते अभाव हो जाता है. जैसे मनोराज्य गंधर्वनगर मनकरि रचित होता है, बहुरि संकल्पके अभाव हुएते अभाव होता है, तब क्लेश कछु नहीं रहता. हे मुनीश्वर ! यह जगत् संकल्पकी पुष्टताकरिकै जीव दुःखका भागी होता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्पकरिकै दुःखी होता है, इस संकल्पमात्रकी इच्छा त्यागनेविषे क्या कृपणता है अरु स्वप्नविषे जो सुख भोगता है, सो सुख भी कछु वस्तु नहीं, भ्रममात्र है, तैसे यह सुख भ्रममात्र है. हे मुनीश्वर ! संकल्पविकल्पने इसको दीन किया है, जब संकल्पविकल्पका त्याग करता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है अरु परम ऊंच पदविषे विराजमान होता है, जिस पुरुषने विवेकरूपी वायुकरि संकल्परूपी मेघको दूर किया है, सो परम निर्मलताको प्राप्त होता है. जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे संकल्पविकल्परूपी मलते रहित उज्ज्वलभावको प्राप्त होता है, संकल्पके त्यागेते जो पाछे शेष रहता है, सो सत्तामात्र परमानन्द तेरा स्वरूप है. हे मुनीश्वर ! आत्मा सर्वशक्तिरूप है जैसी भावना होती है, तैसा ही अपनी भावनाकरि देखता है, ताते सब संकल्पमात्र है, भ्रमकरिकै उदय हुआ है, संकल्पके लीन हुए सब लीन हो जाता है. हे मुनीश्वर ! संकल्परूपी लकडी अरु तृष्णारूपी घृतकरिकै जन्मरूपी अग्निको यह जीव बढ़ावता है, तिसकरि अन्त कदाचित् नहीं होता, जब असंकल्परूपी वायुकरि अरु जलकरि इसका अभाव करै तब शांति हो जाती है. जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे जन्मरूपी अग्निका अभाव हो जाता है अरु संकल्परूपी वायुकरि तृणकी नाईं भ्रमता है. हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी करंजुएकी वल्ली है, तिसको संकल्परूपी जलकरि पडा सिंचता है,जब असंकल्परूपी शोषता अरु विचाररूपी खड्गकरि काटै, तब तिसका अभाव हो जावै, जो आभासमात्र है, सो आभासके क्षय हुए अभाव हो जाता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे यह जगत् असम्यक् ज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे कोऊ राजा होवै अरु स्वप्नविषे रंक हो जावै, पूर्वका स्वरूप

विस्मरण हो जावे अरु दीनताको प्राप्त होवै, जब पूर्वका स्वरूप स्मरण आवै, तब आपको राजा जाने अरु दुःख मिटिजावै, निर्दुःख पदको प्राप्त होवै, तैसे इस जीवको अपना वास्तव पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो गया है तिसकरि आपको परिछिन्न दीन दुःखी जानता है, जब स्वरूपका ज्ञान होवै, तब सब दुःखका अभाव हो जावै, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल हो जावै, जैसे वर्षाकालका मल गयेते आकाश निर्मल होता है, तैसे अज्ञानरूपी मलते रहित जीव निर्मल होता है, शुद्ध पदको प्राप्त होता है, जो ऐसे युक्तिकरि भावना करता है, कि मैं आत्मा हौं, एक हौं, द्वैतते रहित हौं, जब ऐसी भावना करैगा, तब सोई होवैगा, द्वैतका अभाव हो जावैगा, उत्तम पद ब्रह्मदेव पूज्य पूजक पूजा किंचित् निष्किंचनकी नाईं चित्त एकरूप हो जावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने द्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः. ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशवर्णनम्।

ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर! देव निरंतर स्थित है, द्वैत अरु ऐक्यपदते रहित है अरु द्वैत एक संयुक्त भी वही है, संकल्पसाथ मिलिकरि चेतन-रूप संसारको प्राप्त भया है अरु जो संकल्पमलते रहित है, सो संसारते रहित है, जब ऐसे जानता है, कि मैं हौं, तब इसी संकल्पकरि बंधमान होता है, जब इसके भावते मुक्त होता है, तब सुखदुःखका अभाव हो जाता है, शुद्ध निरंजन एक सत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होता है, इसीका नाम मुक्ति है, आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होता है. वसिष्ठ उवाच–हे प्रभो! जब मनविषे मन क्षीण होता है अरु इंद्रियां मनविषे लीन होती हैं, द्वितीय अरु तृतीय पद किसीकी नाईं शेष रहता है, जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्वको लीन करता है, सो किसकी नाईं है? ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर! मनकरि जब मन छेदता है, इंद्रियां जिसके अंग हैं, विचार करिकै

अथवा अपर उपासना करिकै जब आत्मबोध इसको प्राप्त होता है, तब द्वैत एककी कल्पना नष्ट हो जाती है, जगज्जालकी सत्यता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मतत्त्व प्रकाशता है, जैसे भूने बीजते अंकुर नहीं उपजता, तैसे जब मन उपशम होता है तब तिसविषे जगत्सत्ताका अभाव हो जाता है, चेतनसत्ता जो है, सो चित्त-सत्ताको भक्षणकरि लेती है, जब मनरूपी मेघकी सत्ता नष्ट होती है, तब शरत्कालके आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है, चित्तकी चपलता मिटि जाती है, तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होता है, अपर द्वैत एक भाव अभावरूपी संसारकल्पना मिटि जाती है, सम-सत्तारूप तत्व जो सर्वव्यापक है अरु संसार समुद्रते पार करनेहारा है, सो प्राप्त होता है, सुषुप्तिकी नाईं बोध निर्भय हो जाता है, शांतिरूप आत्माको पाइकरि शांतिरूप हो जाता है. हे मुनीश्वर! मनकी क्षीण-ताका प्रथम पद यह तुझको कहा है, अब द्वितीय पद सुन. हे मुनीश्वर! जब यह चित्तशक्ति मनके मननते मुक्त होती है, कैसी मननवृत्ति है, जो अनेक ओरको धावती है, तिसते जब मुक्त होता है, तब चन्द्रमाके प्रकाशवत् शीतल हो जाता है अरु आकाशवत् विस्तृतरूप अपना आप भासता है अरु घन सुषुप्तरूप हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला पोलते रहित होती है, तैसे दृश्यते रहित घन सुषुप्त इसका रूप होता है, लोणवत् रसमय ब्रह्म हो जाता है, जैसे आकाशविषे शब्द लीन हो जाता है, तैसे इसका चित्त आत्माविषे लीन हो जाता है, जैसे वायु चलनेते रहित अचल होता है, तैसे चित्त अचल हो जाता है, जैसे गंध पुष्पविषे स्थित होता है, तैसे चित्तवृत्ति आत्मतत्त्वविषे विश्रामको पाती है, सो आत्मसत्ता कैसी है, न जड़ है, न चेतन है, सर्व कलनाते रहित अचेत्य चिन्मात्र है, अंकुररूप सर्व सत्ताके धारणेहारी देशकालके परिच्छेदते रहित है, जिसको यह प्राप्त होती है, तिसको तुरीयापद भी कहते हैं, सर्व दुःखकलंकते रहित पद है, तिस सत्ताको पाइकरि साक्षीकी नाईं स्थित होता है, सर्वत्र सर्व काल सम स्थित है, सर्व प्रकाश वही है अरु शांतिरूप है, तिस आत्मसत्ताका जिसको आत्मतत्त्वकरि अनुभव

होता है, तिसको द्वितीय पद प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर ! यह द्वितीय पद तुझको कहा है, अब तृतीयपद श्रवण कर, जब वृत्तिका अत्यन्त प्रणाम आत्मतत्त्वविषे होता है, तब ब्रह्म आत्मा आदिक नामकी भी तहां निवृत्ति हो जाती है, भाव अभावकी कलना कोई नहीं फुरती, स्थाणुकी नाई अचल वृत्ति हो जाती है,परम शांत निष्कलंक तुरीयातीत सबते जो उल्लंघित पद है, तिसको प्राप्त होता है सर्वका अन्त अरु सर्व आधाररूप है, एक अद्वैत नित्य चिन्मात्र तत्त्व है तुरीयाते भी आगे पद है जिसविषे वाणीकी गम नहीं, तिस पदको प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर ! सर्व कलनाते रहित अतीतपद मैं तुझको कहा है, तिसविषे स्थित होहु, सोई सनातन देव है अरु विश्व भी वही रूप है, वही तत्त्व संवेदनके वशते ऐसे रूप होकरि भासता है अरु वस्तुते न कछु प्रवृत्त है, न कछु निवृत्त है; समसत्ता प्रकाशरूप अद्वैत तत्त्व अपने आपविषे स्थित है; आकाशवत् निर्मल है, तिसविषे द्वैत एक भ्रमता अभाव है, एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अरु जगत्‌विषे भेद रंचक भी नहीं, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म-अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, सम सत्य सत्ता शिव शांतिरूप है अरु सर्व वाणीके विलासते अतीत है, इसकी चतुर्मात्रा हैं, तुरीया शांत परम है. वाल्मीकिरुवाच--हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब ईश्वरने कहा अरु परमशांतिरूप आत्मतत्त्वका प्रसंग वसिष्ठजीने श्रवण किया, तब दोनोंकी वृत्ति आत्मतत्त्वविषे स्थित हो गयी अरु तूष्णीं हो रहे, मानो मूर्त्ति लिख छोड़ी है, एक मुहूर्त्तपर्यंत चित्तकी वृत्ति ऐसे रही, बहुरि ईश्वर जागा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच-एक मुहूर्त्त उपरांत सदाशिवजी तीनों नेत्रोंको खोलत भये जैसे पृथ्वीरूपी डब्बेते सूर्य निकसे, तैसे नेत्र निकसे, जैसे द्वादश सूर्यका प्रकाश इकट्ठा होवै, तैसे नेत्रका प्रकाश हुआ अरु देखत भया, कि वसिष्ठजीके नेत्र मुँदे हुए हैं, तब कहा. हे मुनीश्वर! जागौ, अब नेत्र काहेको मूँदि लिये हैं, जो कछु देखना था सो तौ देखा है, अब समाधिविषे जुडनेका श्रम किस निमित्त करते हौ, तुमसारखे तत्त्ववेत्ताको हेयोपादेय किसीविषे नहीं होता, तू जैसा बुद्धिमान् है, तैसा ही है तू आत्मदर्शी है, जो कछु पानेयोग्य था, सो पाया है, जाननेयोग्य था, सो जाना है अरु बालकके बोधनिमित्त जो तुम मुझते पूछा सो मैंने कहा है, अब तुमको तूष्णींसाथ क्या प्रयोजन है? हे रामजी! इस प्रकार कहकर मेरे अंतर प्रवेश करिकै चित्तकी वृत्तिसाथ जगाया, जब मैं जागा, तब बहुरि ईश्वर कहत भया. हे वसिष्ठजी! इस शरीरकी क्रियाका कारण प्राणस्पंद है, प्राणोंकरि शरीरकी चेष्टा होती है, तिसविषे आत्मा उदासीनकी नाईं स्थित है, न कछु करता है, न भोगता है, जब इस जीवको अपने स्वरूपका प्रमाद होता है, तब देहविषे अभिमान होता है, क्रिया करता आपको मानता है, बहुरि भोगता मानता है, इसकरि दुःख पाता है, इस लोक परलोकविषे भटकता है अरु जब आत्मविचार उपजता है, तब आत्माका अभ्यास होता है, देह अभिमान मिटि जाता है, दुःखते मुक्त होता है, शरीरके नष्ट हुए आत्माका नाश नहीं होता अरु शरीर जो चेतन होकरि फुरता है, सो प्राणोंकरि फुरता है, जब बीचते प्राण निकसि जाते हैं, तब शरीर मूकजडरूप हो जाता है अरु जो चलावनेहारी अरु पवित्र करनेहारी संवित्शक्ति है, सो आकाशते भी सूक्ष्म है, वह शरीरके नाश हुए नाश नहीं होती, जब नाश नहीं होती तौ नाशका भ्रम कैसे होवै? हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु भासती तहां है, जहां सात्त्विक गुणका अंश मन होता है अरु प्राण

होते हैं, मन अरु प्राणोंसहित देहविषे भासती है, जैसे निर्मल दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है अरु आदर्श मलिन होता है, तब मुख विद्यमान भी होता है, परंतु नहीं भासता है, तैसे मन अरु प्राण जब देह-विषे होते हैं,तब आत्मा भासता है, जब मन अरु प्राण निकसि जाते हैं, तब मलिन शरीरविषे आत्मसत्ता नहीं भासती. हे मुनीश्वर! आत्म-सत्ता सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासती नहीं,जब तिसका अभ्यास होवै, तब सर्वात्मरूप होकरि भासती है, सर्व कलनाते रहित शुद्ध शिवरूप, सर्वकी सत्तारूप वही है, विष्णु भी वही है, शिव भी वही है, ब्रह्मा भी वही है, देवताजात भी वही है, अग्नि, वायु,चंद्रमा, सूर्यादिक सब जगत्का आदि वपु वही है, सो एक देव है, शुद्ध चेतनरूप है, सर्व देवनका देव है, अपर सब तिसके टहलुए हैं अरु सब तिसके चित्त उल्लास हैं. हे मुनीश्वर! हम जो इस जगत्विषे बड़े ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं,सो उस ही तत्त्वते प्रकट भये हैं, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं, जैसे समुद्रते तरंग प्रकट होते हैं, तैसे हम तिसते प्रगट भये हैं, यह अविद्या भी तिसते प्रगट भयी है अरु अनेक शाखाको प्राप्त भयी है, देव अदेव वेद अरु वेदके अर्थ अरु जीव सब उस अविद्याकी जटा हैं अरु अनंतभावको प्राप्त भयी है, बहुरि बहुरि उपजती अरु मिटती है, देश काल पृथिव्यादिक सब उसीकरि संपन्न हैं, परंतु सर्वकी सत्तारूप वही आत्मा देव है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, हम जो हैं, सो हमारा परम पिता आत्मा है, सर्वका मूल बीज वही देव है सब तिसते उपजे हैं, जैसे वृक्षते पत्र उपजते हैं, तैसे सब महादेवते उपजते हैं, सर्वका अनुभवकर्ता वही है, सर्वको सत्ता देनेहारा वही है, सब प्रका-शका प्रकाश वही है, सो तत्त्ववेत्ताकरि पूजनेयोग्य है, सर्वविषे प्रत्यक्ष है, सर्वदा सर्वप्रकार सर्वविषे उदित आकार चेतन अनुभवरूप है, तिसके आवाहनविषे मंत्र आसन आदिक सामग्री नहीं चाहिये, काहेते कि सर्वदा अनुभवरूपकरिकै प्रत्यक्ष है अरु सर्वप्रकार सर्व ठौरविषे विद्यमान है, जहां जहां तिसते पानेका यत्न करिये, तहां आगे ही विद्य-मान है, वह शिवतत्त्व आदि ही सिद्ध है, मन वाणीविषे तीनों रूप वही हो भासता है, सबकी आदि है अरु पूजनेयोग्य है अरु नम-

स्कार करनेयोग्य भी वही है अरु जाननेयोग्य भी वही है. हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सो जरा मृत्यु शोक भयके काटनेहारा है, तिसको आपकरि आप ही देखता है, तिसके साक्षात्कार हुए चित्त भुने बीजकी नाईं हो जाता है, बहुरि नहीं उगता, सो शिवतत्त्व जीवका जीव है, सर्व पदका पद वही है, अनुभवरूप है, आत्मा है, परमपद है, इतर दृष्टिका त्याग करौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.
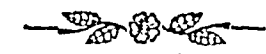
महेश्वरवर्णनम्।

ईश्वर उवाच—हे मुनीश्वर! सो चिद्रूपतत्त्व सर्वके अंतर स्थित है अरु अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर है, सब बीजका बीज वही है,सर्व सारका सार वही है कर्मका कर्म, धर्मका धर्म वही है, सो चेतन धातु निर्मलरूप सब कारणका कारण वही है अरु आप अपना कारण है, सर्व भाव अभावका प्रकाशक वही है, सर्व चेतनका चेतन वही है, परमप्रकाशरूप है, भौतिक प्रकाशते रहित है; अलौकिक प्रकाशक है, सर्व जीवका जीव वही है, चेतनघन निर्मल आत्मा अस्ति सन्मयरूप है सत् असत्ते रहित महासत्रूप है, सर्व सत्ताकी सत्ता वही चिन्मात्रतत्त्व है, सोई नानारूप हो रहा है, जैसे एक ही आत्मसत्ता स्वप्नविषे आकाश कंध पहाड आदिक होकरि भासती है, तैसे नाना रंग रंजना वही होकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे मरुस्थलकी नदी हो भासती है, अनेक कोट किरणोंते अनेक तरंग हो भासते हैं, तैसे यह जगत् तिसविषे भासता है. हे मुनीश्वर! उसी आत्मतत्त्वका यह आभास प्रकाश है, तिसते इतर कछु नहीं, जैसे अग्निते उष्णता भिन्न नहीं, वहीरूप है, तैसे आत्माते जगत् कछु भिन्न नहीं, वही स्वरूप है अरु सुमेरु भी तिसके आगे परमाणुरूप है अरु संपूर्ण काल तिसका निमेषरूप है,

कल्पकी निमेष उन्मेषवत् उदय अरु लय होते हैं अरु सप्तसमुद्रसंयुक्त पृथ्वी तिसके रोमके अग्रवत् तुच्छ है, ऐसा वह देव है; बहुरि कैसा है, संसाररचनाको करता नहीं अरु कर्तृत्वभावको प्राप्त होता है, बडे कर्मोंका फुरता भासता है, तौ भी कछु नहीं करता, द्रव्यरूप दृष्टि आता है, तौ भी द्रव्यते रहित है, निर्द्रव्य है, तौ भी द्रव्यवान् है, देह-वान् नहीं तौ भी देहवान् है अरु बडा देहवान् है तौ भी अदेह है, सर्वका सत्तारूप वही देव है, हंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मागले बेली, घिलिमला, लोबलाग, युगुल, सभस इत्यादिक वाक्य निरर्थक हैं, इनका अर्थ कछु नहीं सो भी देवकरि सिद्ध होते हैं, ऐसा कछु नहीं, जो देवविषे असत् नहीं अरु ऐसा भी कछु नहीं जो देवकरि सत् नहीं. हे मुनीश्वर ! जिसते यह सर्व है अरु जो यह सर्व है, जो सर्वमें नित्य है, तिस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे महेश्वरवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.
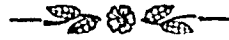
ईश्वरोपाख्याने नियतिनृत्यवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच-हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्दकी सत्तारूप वही है, सर्वसत्ता-रूप रत्नका डब्बा वही है, तत्त्व चमत्कार करिकै फुरता है, जैसे जल तरंग फैन बुद्बुदा आदिक आकारकरिकै फुरता है, तैसे देव नाना प्रकारके आकार होकरि फुरता है, वही फूल गुच्छेरूप होकरि स्थित होता है, आप ही तिसविषे सुगंध होकरि स्थित होता है, घ्राणइंद्रियविषे स्थित होकरि आप ही सूँघता है, आप ही त्वचा इंद्रिय होता है, आप ही पवन होकरि चलता है, आप ही स्पर्शकरि ग्रहण करता है, आप ही जलरूप होता है, आप ही वायु होकरि सुखावता है, आप ही श्रवणेंद्रिय होकरि, आप ही शब्द होकरि, आप ही ग्रहण करता है, इसी प्रकार जिह्वा त्वचा नासिका कर्ण नेत्र होकरि आप ही स्पर्श - रूप रस गंध शब्दको ग्रहण

करता है, उसीने पदार्थ रचे हैं, उसीने नीति रची है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव पंचम ईश्वर सदाशिव तिसपर्यंत वही देव इस प्रकार हुआ है, आप ही साक्षीवत् स्थित होता है, जैसे दीपकके प्रकाशकरि मंदिरकी सर्व क्रिया होती है, तैसे संसाररूपी मंडपकी सब क्रिया साक्षीकरि होती हैं, तिसविषे उसकी शक्ति नृत्य करती है अरु आप साक्षीरूप होकरि देखता है. वसिष्ठ उवाच–हे जगन्नाथ ! शिवकी शक्ति क्या है अरु कैसे स्थित है अरु देवको साक्षात् कैसे है अरु तिसका नृत्य कैसा होता है? ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर ! आत्मतत्त्व स्वभावते अचल है अरु शांतरूप है, शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप निराकार है, तिसकी आसक्ति इच्छा॰ शक्ति है, कालशक्ति है, नीतिशक्ति है, मोहशक्ति है, ज्ञानशक्ति है, क्रियाशक्ति है, कर्त्ताशक्ति है, परंतु स्वरूपते सदा अकर्ता है इत्यादिक आत्माकी शक्ति हैं, तिन शक्तिका अंत नहीं, अनंतरूप चिन्मात्र देव है, यह जो मैं तुझको शक्ति कही है, सो भी शिवरूप है, भिन्न नहीं, जो कर्तृत्व भोक्तृत्व साक्षिता आदिक भावनाते शक्ति विविधरूप धारा है, शिव अरु शक्ति एकरूप है अरु बहुत भासती है, पदार्थविषे अर्थशक्ति है, आत्माविषे साक्षीशक्ति कल्पित है, तैसे कालशक्ति है, नृत्यकी नाईं ब्रह्मांडरूपी नृत्यमंडलविषे नृत्य करती है, क्रियाशक्ति कर्तृत्वकरि नृत्य करती है, इत्यादिक शक्ति कहाती है, जैसे आदि नीति हुई है, ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत तैसे ही स्थित है, अन्यथा नहीं होती. हे मुनीश्वर ! यह संपूर्ण जगत् नृत्य करता है, संसाररूपी नटनी तिसके प्रेरणेहारी नीति है अरु परमेश्वर परमात्मा है, सो साक्षीरूप है, सदा उदित प्रकाशरूप है, एकरस देव स्थित है अरु नीति आदिक शक्ति भी तिसते भिन्न नहीं, वहीरूप है, ताते देव ही जान, अपर द्वैत कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने नियतिनृत्यवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

ईश्वरोपाख्याने बाह्यपूजावर्णनम्।

ईश्वर उवाच- हे मुनीश्वर! जो एक देव परमात्मा है, सो संतकरि पूजने योग्य है, चिन्मात्र अनुभव आत्मा सर्ग है, घट पट गादी कंदबांतर आदिक सर्वविषे वह स्थित है, ब्रह्मा इंद्रादिक देवता अपर जीव सबके अंतर बाहर वही स्थित है, सर्वात्मा शांतरूप देवताका पूजन दो प्रकारका होता है सो सुन, इष्ट देवताका पूजन ध्यान है अरु ध्यान है सो पूजन है, त्रिभुवनका आधारभूत आत्मा है, तिसको ध्यान करि पूजा करौ, जहां जहां मन जावै, तहां तहां चिद्रूप आत्माको करौ, सबका प्रकाशक आत्मा ही है, सो चिद्रूप अनुभव करिकै अंतर स्थित है, अहंता-करिकै सिद्ध है; सो सबका साररूप है अरु सबका आश्रयरूप है, तिनका जो विराट्रूप है, सो सुन, तिसको जानिकरि पूजन करौ, बाह्य कैसा है, अनंत है, पारावारते रहित है, परमाकाश है, सो उसकी ग्रीवा है अरु अनंत पाताल उसके चरण हैं, अनंत दिशा तिनकी भुजा हैं, सर्वप्रकाश उसके शस्त्र हैं, हृदयकोश कोणविषे स्थित है, ब्रह्मांडसमूहोंकी परंपरा प्रकाशता है, परमाकाश पारअपाररूप है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता जीव उसके रोमावली हैं, त्रिलोकीविषे जो देहरूपी यंत्र हैं, तिनविषे इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है, तिसकरि सब चेष्टा करते हैं, सो देव एक ही है अरु अनंत है अरु सत्तामात्र स्वरूप है, सब जगज्जाल तिसका निवृत्त है अरु काल तिसका द्वारपाल है, पर्वतादिक ब्रह्मांड जगत् तिसके देहविषे किसी कोणमें स्थित हैं, तिस देवकी चिंतवना करौ, बहुरि कैसा देव है, सहस्र जिसके चरण हैं अरु सहस्र नेत्र, सहस्र जिसके शीश हैं अरु सहस्र भुजा हैं अरु सहस्र भुजाविषे भूषण हैं, सर्वत्र जिसकी नासिका इंद्रिय हैं, सर्वत्र जिसकी रसना इंद्रिय हैं, सर्वत्र श्रवण इंद्रिय हैं सर्व ओर जिसका मन है अरु सर्व मनकलाते अतीत है, सर्व ओर वही शिवरूप है, सर्वदा सर्वका कर्ता है, सर्व संकल्पके अर्थका फलदायक है, सर्व भूतके अंतर स्थित है अरु सर्व साधनका सिद्ध कर्ता है, ऐसा जो देव है, सो सर्वविषे सर्वप्रकार सर्वदा

काल स्थित है, तिस देवकी चिंतवना करौ, ऐसे देवके ध्यानविषे सावधान रहौ, सदा तिनहीका आकार रहना, यह उस देवका पूजन है, अब अंतरका पूजन श्रवण करौ. हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ ! संवितमात्र जो देव है, सो सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, तिसका पूजन दीपककरि नहीं होता, न धूपकरि होता है, न पुष्पकरि होता है, न दानकरि, न लेपके रसकरि तिसका पूजन होता है, अर्घ्यपाद्यादिक जो पूजाकी सामग्री है, तिसकरि देवका पूजन नहीं होता, तिसका पूजन क्लेश विना नितही होता है. हे मुनीश्वर ! एक अमृतरूपी जो बोध है, तिस देवका सजातीय प्रतीत ध्यान करना सो तिसका परम पूजन है. हे मुनीश्वर ! शुद्ध चिन्मात्र जो देव है अनुभवरूप है, तिसका सो सर्वदा काल सर्व प्रकार पूजन करौ, देखता है, स्पर्श करता है, सूँघता है, श्रवण करता है, बोलता है, देता है, लेता है, चलता है, बैठता है इसते लेकरि जो कछु क्रिया करता है, सो सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षीविषे अर्पण करौ, तिसी परायण होहु, इस प्रकार आत्मदेवका पूजन करौ. हे मुनीश्वर ! आत्मदेवका जो ध्यान करना यही धूप दीप हैं अरु सर्व सामग्री पूजनकी यही है, ध्यान ही देवको प्रसन्न करता है, तिसकरि परमानंद प्राप्त होता है, अपरकारि देवकी प्राप्ति नहीं होती. हे मुनीश्वर ! मूढ होवै अरु इस प्रकार ध्यानकरि ईश्वरकी पूजा करै, तब त्रयोदश निमेष जगत् उद्धानफलको पाता है अरु सत् निमेषके ध्यानकरि प्रभुको पूजै, तब मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको पावै अरु ध्यानके बलकरि आत्माका घडीपर्यंत पूजन करै, तब वह पुरुष राजसूययज्ञ कियेके फलको पावै, जो दो प्रहरपर्यंत ध्यान करै तो लक्ष राजसूययज्ञके फलको पावै, जो दिनपर्यंत ध्यान करै, सो असंख्य फलको पावै. हे मुनीश्वर ! यह परम योग है अरु यही परमक्रिया है, यही परम प्रयोजन है. हे मुनीश्वर ! दोनों पूजा मैं तुझको कही है जिसको यह परम पूजा प्राप्त होती हैं,सो परम पदको प्राप्त होता है, सर्व देवता तिसको नमस्कार करते हैं, सर्व करिकै वह पुरुष मेरुवत् पूजने योग्य होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने बाह्यपूजावर्णनं नामाष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

देवार्चनविधानवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर ! अब अभ्यंतरका पूजन तू श्रवण कर, जो सर्वत्र पवित्र करनेहारेको भी पवित्र करता है अरु सर्व तम अज्ञानका नाश करता है, सो आत्मपूजन मैं तुझको कहता हौं; कैसा पूजन है जो सर्व प्रकारकरिकै सर्व कालविषे तिस देवका पूजन होता है, व्यवधान कबहूँ नहीं पडता; चलते, बैठते, जागते, सोवते, सर्वव्यवहारविषे नित्य ध्यानमें रहता है. हे मुनीश्वर ! इस संसारविषे नित्य स्थित संवित्‌रूप चिन्मात्र है, तिसका पूजन करौ, जो सर्व प्रत्ययका कर्ता है, सदा अनुभवकरि प्रकाशता है; तिसका आपकरि आप पूजन कर, सो तू है, उठता चलता खाता पीता जेते कछु बाह्य अर्थ हैं, त्याग करता ग्रहण करता भोगको भोगता, तिन सबको करता भी देवकी पूजा कर. हे मुनीश्वर ! शरीरविषे जो शिवलिंग है;चिह्नते रहित लिंग जो बोधरूप चिह्न है, सो देव है, यथाप्राप्तविषे सम रहना सो तिस देवका पूजन है, यथाप्राप्तके समभावविषे स्नान करिकै शुद्ध होकरि बोधरूप लिंगका पूजन करहु, जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषते रहित होना सर्वदा साक्षीरूप अनुभवविषे स्थित रहना यही तिसका पूजन है. हे मुनीश्वर ! सूर्यके भुवन आकाशविषे वही सूर्य होकरि प्रकाशता है, चंद्रमाके भुवनविषे वही चंद्रमा होकरि स्थित होता है, इनते आदि लेकरि जो पदार्थके समूह हैं, जैसी जैसी भावनाकरि फुरणा हुआ है, सोई रूप होकरि देव स्थित है. हे मुनीश्वर ! नित्य शुद्ध बोधरूप अद्वैत है, तिसको देखना, अपरविषे वृत्ति कोन लगावनी, यही देवका पूजन है, प्राण अपानरूपी रथपर आरूढ हुआ, अंतर गुहाविषे जो स्थित है, तिसका जो ज्ञान है अरु जेते कछु कर्म हैं, तिन सबका कर्ता वही है, सर्व भोगका भोक्ता वही है, शब्दका स्मरण करनेहारा वही है अरु भागवतरूप है, सबकी भावना करनेहारा परम प्रकाशरूप है, ऐसा जो संवित् तत्त्व है, तिसको सर्वज्ञ जानिकरि चितवना करणी सो तिसका पूजन है,बहुरि कैसा है देव ? सकल भी वही

है, देहविषे स्थित है, तौ भी आकाशवत् निर्मल है, जाता भी है अरु नहीं जाता भी वही है, प्राणरूपी आलयविषे प्रकाशता है, हृदय, कंठ, तालु, जिह्वा, नासिका पीठविषे व्यापक है, शब्द आदिक विषयको कर्त्ता मनको प्रेरता है, जैसे तिलविषे तेल आश्रय भूत है, तैसे आत्मा सर्वविषे आश्रय भूत है, कलनारूपी कलंकते रहित है अरु कलनागणकरि संयुक्त भी वही है, संपूर्ण देहोंविषे एक ही देव व्याप रहा है, परंतु प्रत्यक्ष हृदयविषे होता है, सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है, कलनारूपी कलंकते रहित सदा प्रत्यक्ष है, अपने आपहीकरि अनुभव होता है, सर्वदा पदार्थका प्रकाश प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो अपने फुरणेकरिकै शीघ्र ही द्वैतकी नाईं हो जाता है. हे मुनीश्वर ! जेता कछु साकाररूप जगत् दृष्टि आता है, सो सब विराट् आत्मा है, ताते आपको विराट्की भावना करु, हस्त पाद नख कैसे यह संपूर्ण ब्रह्मांड मेरा देह है, मैं ही प्रकाशरूप एक देव हौं अरु नीति इच्छादिक मेरी शक्ति है, सब मेरी उपासना करती हैं. जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्तारकी सेवा करती है, तैसे शक्ति मेरी उपासना करती हैं. बहुरि कैसा हौं, मन मेरा द्वारपाल है, त्रिलोकीका निवेदन करनेहारा है अरु चितवना मेरी आने जानेवाली प्रतीहारी है नाना प्रकारके ज्ञान मेरे अंगके भूषण हैं, कर्म इंद्रियां मेरे द्वार हैं, ज्ञान इंद्रियां मेरे गण हैं, ऐसा मैं एक अनंत आत्मा अखंडरूप हौं, व्यवच्छेद भेदते रहित अपने आपविषे स्थित हौं, सर्वविषे परिपूर्ण एक मैं ही हौं. हे मुनीश्वर ! इसी भावनाकरिकै जो एक देवको पूजा करता है, सो परमात्मादेवको प्राप्त होता है, तब दीनता आदिक क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक नहीं उपजता, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष नहीं उपजता, न तोषवान् होता है, न कोपवान् होता है, विषयकी प्राप्तिकरि न तृप्ति मानता है, इनके वियोगकरि न खेद मानता है, न अप्राप्तकी वांछा करता है, न प्राप्तके त्यागकी इच्छा करता है सर्व पदार्थविषे समभाव रहता है, ऐसा जो पुरुष है सो देवका परम उपासक है, ग्रहणत्यागते रहित सबविषे तुल्य है, भेदभावको नहीं प्राप्त होता, सो देवका अर्चन उत्तम है. हे मुनीश्वर ! चेतनतत्त्व देव मैं तुझको कहा है, जो इसी

देहविषे स्थित है, जो प्राप्त वस्तु होवै, तिसको अर्चन करणी सब तिसीके आगे रखणी, सबका साक्षी आत्माको देखना, किसीते खेदवान् न होना, अहंप्रतीति तिसविषे रखनी, इतर दृश्यकी भावना नहीं करनी, यही देवकी अर्चना है. हे मुनीश्वर! जो कछु आनि प्राप्त होवे, तिसविषे यत्न विना तुल्य रहना, जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आनि प्राप्त होवै सो देवके आगे रखना, ग्रहणत्यागकी बुद्धि तिसविषे न करनी सो देवका पूजन है, सर्व पदार्थकी प्राप्तिविषे देवकी पूजा करनी इसकरि अनिष्ट भी इष्ट हो जाता है, मृत्यु आवै तो देवकी पूजा, जीवना आवै तब देवकी पूजा, दारिद्र आवै तब देवकी पूजा, राज्य प्राप्त होवै तौ देवकी पूजा, विचित्र नाना प्रकारकी चेष्टा करनी, सो सब देवके आगे पुष्प हैं, रागद्वेषविषे सम रहना सो समताकरि देवकी पूजा है, संतके हृदयकी रहनेहारी जो है मैत्री, जो सम्पूर्ण विश्वका मित्र होना, तिस मित्रताकरिकै देवका पूजन है, भोगकरि त्यागकरि रागकरि जो कछु आनि प्राप्त होवे, तिसकरि देवका पूजन करु, हंता होउ, अहंता होउ, युक्ति करु, अयुक्ति करु, हेयोपादेयते रहित होकरि तिस देवका पूजन करु, जो नष्ट हुआ सो हुआ; जो प्राप्त हुआ सो हुआ दोनोंविषे निर्विकार रहना, इसकरि देवका अर्चन करु, यह भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं, नष्ट भी हो जाते हैं, इनकी इच्छा न करनी, सदा संतुष्ट रहना, जैसे आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषते रहित होना सो देवका अर्चन है. हे मुनीश्वर! जो कछु प्रारब्धकरिकै आनि प्राप्त होवै, तिसकरि आत्माका अर्चन करौ, इच्छा अनिच्छाको त्यागिकरि जो प्राप्त होवै तिसकरि देवका अर्चन करौ. हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसीकी इच्छा करता है, न त्याग करता है, जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै तिसको भोगता है, जैसे समुद्रविषे नदी जाय प्राप्त होती हैं, तिनकरि न कछु हर्ष करता है, न शोक करता है, तैसे ज्ञानवान् इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषते रहित यथाप्राप्तको भोगता है, सो देवका पूजन है, देश काल क्रिया शुभ अथवा अशुभ प्राप्त होवै, तिसविषे संसरणविकारको प्राप्त न होना, सो देवकी अर्चन है, जब द्रव्य अनर्थरूप होवै, तब भी

समरससाथ मिला हुआ अमृत हो जाता है, जैसे षट्रस स्वाद है, सो खांडसे मिले हुए मधुर हो जाते हैं, तैसे अनर्थरूपी रस समरससे मिले हुए अमृत हो जाते हैं, खेद नहीं करते अनंतरूप हो जाते हैं, चंद्रमाकी नाईं सब भावना अमृतमय हो जाती हैं, जैसे आकाश निर्लेप है, तैसे समताभावकरिकै चित्त रागद्वेषते रहित निर्मल हो जाता है, द्रष्टाको दृश्यसे मिला न देखना, साक्षीरूप रहना सो देवकी अर्चना है, जैसे पत्थरकी शिला निस्पंद होती है, तैसे विकल्पते रहित चित्त अचल होता है, सो देवकी अर्चना है. हे मुनीश्वर ! अंतरते अकाशवत् असंग रहना अरु बाह्य प्रकृत आचारविषे रहना किसीका संग अंतरस्पर्श न करै, सदा समभाव विज्ञानकरि पूर्ण रहना, सो देवका उपासन होता है, जिसके हृदयरूपी आकाशते अज्ञानरूपी मेघ नष्ट हो गया है, तिसको स्वप्नविषे भी विकार नहीं प्राप्त होता अरु जिसके हृदयरूपी आकाशते अहंतारूपी कुहिड शांत हो गयी है सो शरत्कालके आकाशवत् उज्ज्वल होता है. हे मुनीश्वर ! जिसको समभाव प्राप्त भया है तिसकरि देवको पाया है, सो पुरुष ऐसा हो जाता है, जैसा नूतन बालक रागद्वेषते रहित होता है, जीवरूपी चेतनाको उल्लंघिकरि परम चेतनतत्त्वको प्राप्त होता है, सकल इच्छाभ्रमते रहित सुख दुःख भ्रमते मुक्त शरीरका नायक तिष्ठित होता है सो देव अर्चना है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे देवार्चन विधान-वर्णनं नामैकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

ईश्वरोपाख्याने देवत्वविचारवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर ! जैसी कामना होवै, जो कछु आरंभ करै अथवा न करै, सो अपने आपकरि चिन्मात्र संवित् तत्त्वकी अर्चना कर, इसकरि देव प्रसन्न होता है, जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रकट होता है, जब उसको पाया अरु स्थित भया, तब रागद्वेषादिक शब्दका अर्थ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे फका कणका नहीं पाता, तैसे इसविषे रागद्वे-

षादिक नहीं पाता, ताते तिस देवकी अर्चना करनी योग्य है, जो राज्य आनि प्राप्त होवै, अथवा दारिद्र्य आनि प्राप्त होवै, सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, तिसविषे सम रहना, सो देवअर्चना करनी. हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्रसों प्रमादी न होना, इसीका नाम अर्चना है, जेता कछु घट पट आदिक जगत् भासता है, सो सब आत्मारूप है, तिसते इतर कछु नहीं, सो आत्मा शिव शांतिरूप अनाभास है, एक ही प्रकाशरूप है, संपूर्ण जगत् प्रतीतिमात्र है, आत्माते इतर कछु द्वैतवस्तु आभास नहीं, सर्वात्मारूप अद्वैत तत्त्व जब भासै तब तिसविषे हुआ जानता है, जो बड़ा आश्चर्य है, घट पट आदिक सब वहीरूप हैं, अपर तौ कछु नहीं. हे मुनीश्वर! यह सर्वात्मा अनंतरूप शिवतत्त्व है, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्त भया है, तिसने देवकी पूजा जानी है, घट पट आदिक जो पदार्थ हैं, पूज्य पूजा पूजकभाव सो सब ब्रह्मरूप हैं निर्मल देव आत्माविषे कछु भेदभाव नहीं. हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्ति अनंतरूप है, तीनों जगत्विषे तिसते भिन्न कछु नहीं, निर्मल प्रकाश संवित्रूप आत्मा स्थित है, हमको तौ ईश्वर देवते इतर कछु नहीं भासता, सर्वत्र सर्व प्रकार सर्वात्मा संपूर्ण दृष्टि आता है अरु जिनको देश कालके परिच्छेदसहित ईश्वर भासता है, सो हमारे उपदेशके पात्र नहीं, वह ज्ञानबंध नीच हैं, तिनकी दृष्टिको त्यागिकरि मेरी दृष्टिका आश्रय लेहु, जो मैं तुझको कही है, तिसकरि स्वस्थ वीतराग निरामय होहु, यथाप्रारब्ध जो कछु सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, खेदते रहित होकरि तिस देवका अर्चन करु, तब शांतिको प्राप्त होवै. हे मुनीश्वर! तिस देवकी सर्व प्रकार सर्वात्मा करिकै भावना करु यही तिसका पूजन है, जो वृत्ति सदा अनुभवरूपविषे स्थित रहै अरु यथाप्राप्तविषे खेदते रहित विचरना यही देवकी अर्चना है, जैसे स्फटिकके मंदिरविषे प्रतिबिंब भासते हैं, सो कछु नहीं, निष्कलंक स्फटिक है, तैसे सर्व ओरते रहित जन्मादिक दुःखते रहित निष्कलंक आत्मा है, तिसकी प्राप्तिते तेरेविषे कलंक जन्मादिक दुःख कछु न रहैंगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने देवत्वविचारो नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे देव ! शिव किसको कहते हैं अरु ब्रह्म किसको कहते हैं, आत्मा किसको कहते हैं अरु परमात्मा किसको कहते हैं, तत् सत् किसको कहते हैं, निष्किंचन शून्य विज्ञान किसको कहते हैं, इत्यादिक भेद संज्ञा किस निमित्त हुई है ? सो कृपा करिकै कहौ. ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर ! जब सबका अभाव होता है, तब अनादि अनंत अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है, जो इंद्रियोंका विषय नहीं, तिसको निष्किंचन कहते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे ईश्वर ! जो इंद्रियां बुद्धि आदिकका विषय नहीं, तिसका पाना किसकरि होता है ? ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर ! जो मुमुक्षु है अरु वेद आश्रयकरि संयुक्त सात्त्विकी वृत्ति जिसको प्राप्त हुई है, तिसको सात्त्विकीरूप जो गुरु शास्त्र नाम्नी विद्या प्राप्त होती है, तिसकरि अविद्याका भाग नष्ट हो जाता है अरु आत्मतत्त्व प्रकाशि आता है, जैसे साबुनकरिकै धोबी वस्त्रका मैल उतारता है, तैसे गुरुशास्त्र अविद्याका सात्त्विकी भाग अविद्याको दूर करते हैं, जब केते कालते अविद्या नाश होती है, तब अपना आपहीकरि देखता है, जैसे वायुकरि बादल दूर होते हैं अरु नेत्रकरि सूर्य देखता है, जैसे किसीके हाथको स्याही लगै, सो मृत्तिका जलकरि धोयेते दूर हो जाती है, सो मैलकरि मैल दूर होता है, तैसे अविद्याका सात्त्विकी भाग गुरुशास्त्र सो अविद्याके आवरणको नष्ट करते हैं. हे मुनीश्वर ! जब गुरुशास्त्रको मिलिकरि विचार प्राप्त होता है, तब विचारकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है, सर्व आत्मा ही प्रकाशता है,जब विचारद्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ, कि सर्व आत्मा है, इतर कछु नहीं, ऐसा निश्चय जहां होता है, तहांतें अविद्या जाती रहती है. हे मुनीश्वर ! आत्माकी प्राप्तिविषे गुरुशास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं, काहेते जो वस्तु जिनके क्षय हुएते पाये, सो तिनके विद्यमान हुए कैसे पाइये ? इंद्रियके समूहका नाम गुरु है अरु

ब्रह्म सर्व इंद्रियते अतीत है, इनकरि कैसे पाइये ? अकारण है, परंतु कारण भी है, काहेते जो गुरुशास्त्रके क्रम करिकै अज्ञानकी सिद्धता होती है, गुरुशास्त्र विना बोधकी सिद्धता नहीं होती, आत्मा निर्देश है अरु अदृश्य है, तौ भी गुरुशास्त्रकरि पाता है अरु न गुरुकरि न शास्त्रकरि पाता है, अपने आपहीकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ होवै अरु दीपक प्रकाशकरि देवै, सो दीपककरि नहीं पाया, अपने आपकरि पाया है, तैसे गुरुशास्त्र भी है, जब दीपक होवै अरु नेत्र न होवै, तब कैसे पाइये ? नेत्र होवै अरु दीपक न होवै, तौ भी नहीं पाता, जब दोनों होवें, तब पदार्थ पाता है, तैसे गुरुशास्त्र भी होवैं अरु अपना पुरुषार्थ तीक्ष्ण बुद्धि भी होवै, तब आत्मतत्त्व पाता है, अन्यथा नहीं पाता है गुरु शास्त्र अरु शुद्ध बुद्धि शिष्यको तीनों इकट्ठे मिलते हैं, तब संसारके सुखदुःख दूर होते हैं अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, गुरुशास्त्र आवरण दूर करि देते हैं, तब आपकरि आप ही पाता है, जैसे वायु बादलको दूर करता है, तब नेत्रकरि सूर्य दीखता है, अब नामके भेद सुन. हे मुनीश्वर ! जब बोधके वशते कर्मइंद्रियां, बुद्धिइंद्रियां क्षय हो जाती हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है, तिसका नाम संवित्तत्त्व आत्मसत्ता आदि नामकरि कहाता है, जहां यह संपूर्ण नहीं इनकी वृत्ति भी नहीं तिसके पाछे जो शेष सत्ता रहती है, सो आकाशतें भी सूक्ष्म अरु निर्मल है, अनंत है, परम शून्यरूप है, जहां शून्यका भी अभाव है. हे मुनीश्वर ! अब शांतरूप जो है मुमुक्षु अरु मननकलनाकरि संयुक्त है, तिनको जीवन्मुक्ति पदके बोधनिमित्त शास्त्र मोक्षोपाय रचे हैं, ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र लोकपाल पंडित पुराण वेद शास्त्र सिद्धांत रचे हैं, तिनविषे यह नाम तीन मैं कहे हैं, चेतन ब्रह्म शिव आत्मा परमात्मा ईश्वर सत् चित् आनंद आदिक संज्ञा अनेक कही हैं, शिव आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिक भिन्न भिन्न नाम शास्त्रकारोंने कल्पे हैं अरु ज्ञानीको कछु भेद नहीं. हे मुनीश्वर ! ऐसा जो देव है, तिसका ज्ञानवान् इस प्रकार अर्चन करते हैं, जिस पदके हम आदिक टहलुए हैं, तिस परमपदको प्राप्त

होते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे भगवन् ! यह जगत् सब अविद्यमान है, अरु विद्यमानकी नाईं स्थित है, सो कैसे हुआ है, समस्त कहनेको तुम ही योग्य हौ. ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर ! जो ब्रह्म आदिक नाम-करि कहाता है, सो शुद्ध केवल संवित्मात्र है, आकाशते भी सूक्ष्म है, जिसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल जैसा होता है, अणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तिसविषे जब वेदनाशक्ति आभास होकरि फुरी, तब तिसका नाम चेतन हुआ, बहुरि अहंताभावको प्राप्त हुआ, जो अहम् अस्मि, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपको हस्ती देखने लगै, तैसे आपको अहं मानने लगा, बहुरि देशकाल आकाश आदिक देखने लगा, तब चेत-नकला जीव अवस्थाको प्राप्त भयी अरु वासना करनेहारी भयी, जब जीवभाव हुआ, तब बुद्धि निश्चयात्मक होकरि स्थित भयी, शब्द अरु क्रिया ज्ञानसंयुक्त भयी, एक एकसाथ मिलिकरि शीघ्र ही कल्पित भयी, तब मन हुआ सो मन संकल्परूपी भाषाका बीज है, तब अंतवाहक शरीरविषे आत्मस्वरूप होकरि ब्रह्मसत्ता स्थित भयी, इस प्रकार यह उत्पन्न भयी है, बहुरि वायुसत्ता स्पंद हुई, तिसते स्पर्शसत्ता त्वचा प्रकट भयी, बहुरि तेजसत्ता हुई तिसते प्रकाशसत्ता हुई, प्रकाशते नेत्रसत्ता प्रगट भयी, बहुरि जलसत्ता, जलते स्वादसत्ता, स्वादते रससत्ता ताते जिह्वा प्रगट भयी, बहुरि गंधसत्ता गंधते भूमिसत्ता भूमिते घ्राणसत्ता पिंडसत्ता प्रगट भयी देशसत्ता कालसत्ता हुई, सर्वसत्ता इनको इकट्ठा करिकै फुरी, जैसे बीज पत्र फूल फलादिकका आश्रय होता है, तैसे यह पुर्य-ष्टका जान, यही अंतवाहक देह है, तिसका आश्रय भयी, वास्तवते कछु उपजा नहीं, परमात्मसत्ता अपने आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे जल फुरता है, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे फुरती है. हे मुनीश्वर ! संवित्विषे जो संवेदन पृथक्‌रूप होकरि फुरै, सो निस्पंद करिकै जब स्वरूपको जाना, तब नष्ट हो जाती है, जैसे संकल्पका रचा नगर संकल्पके अभाव हुए अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके ज्ञानते संवेद-नका अभाव हो जाता है. हे मुनीश्वर ! संवेदन तबलग भासता है, जबलग इसको जाना नहीं, जानता तब है, संवेदनका अभाव हो जाता

है, संवित्‌विषे लीन हो जाती है, भिन्नसत्ता इसकी कछु नहीं रहती. हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी, सो भावनाके वशते स्थूल देहको प्राप्त भयी, स्थूल देह होकरि भासने लगी, आगे जैसे जैसे देश काल पदार्थकी भावना होती भयी, तैसे तैसे भासने लगे, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नपुर भासता है, तैसे भावनाके वशते यह पदार्थ भासने लगे हैं. वसिष्ठ उवाच–हे भगवन्! गंधर्वनगर अरु स्वप्नपुरके समान इसको कैसे कहते हौ? यह जगत् तौ प्रत्यक्ष दिखाता है. ईश्वर उवाच–हे मुनीश्वर! संसार दुःख इसको वासनाके वशते दीखता है, जो अविद्यमानविषे स्वरूपके प्रमादकरिकै विद्यमान बुद्धि हुई है, जगत्‌के पदार्थको सत् जानिकरि जो वासना फुरती है, तिस वासनाकरि दुःख होता है. हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, तिसविषे वासना अरु वासक वासना करने योग्य तीनों वृथा हैं,जैसे मृगतृष्णाका जल पानकरि तृप्त कोऊ नहीं होता. काहेते कि जल ही असत् है, तैसे यह जगत् ही असत् है, इनके पदार्थकी वासना करनी वृथा है, ब्रह्माते आदि क्रमपर्यंत सब जगत् मिथ्यारूप है, वासना वासक वासना करने योग्य पदार्थ तिन्होंके अभाव हुए केवल आत्मतत्त्व रहता है, सब भ्रम शांत हो जाता है, हे मुनीश्वर! यह जगत् भ्रममात्र है, वास्तवते कछु नहीं, जैसे बालकको अज्ञानकरि अपने परछाईंविषे वैताल भासता है, जब विचारकरि देखै तब वैतालका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि यह जगत् भासता है, आत्मविचारकरि इसका अभाव हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञानकरिकै देह भासता है, जिसकी देहादिकविषे स्थिर बुद्धि है, सो हमारे उपदेशके योग्य नहीं है. हे मुनीश्वर! जो विचारवान् है, तिसको उपदेश करना योग्य है अरु जो मूर्ख भ्रमी है अरु असत्‌वादी सत्कर्मते रहित अनार्जव है, तिसको ज्ञानवान् उपदेश करै, जिसविषे विचार अरु वैराग्य होवै, कोमलता अरु शुभ आचार होवै, तिसको उपदेश करना योग्य है अरु जो इन गुणोंते

रहित विपर्यय है, तिसको उपदेश करना ऐसे होता है, जैसे महासुंदर स्वर्णवत् कांति ऐसी कन्या किसीकी होवै अरु स्वप्न कल्पित पुरुषको विवाहि देनेकी इच्छा करे, तैसे ही अपात्रको उपदेश करना मूर्खता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनवर्णनं नामैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.
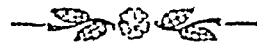
परमार्थविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे भगवन् ! वह जीव जो आदि सर्गते उत्पन्न भया अरु देहभ्रम अपने साथ देखत भया, तिसके अनंतर कैसे स्थित हुआ ? ईश्वर उवाच-हे मुनीश्वर ! परमाकाशते उपजा, जैसे तुमको कहा है, सो अपनेसाथ शरीर देखत भया, स्वप्ननगरकी नाईं सर्वगत चिद्घन आत्माके आश्रय उपजिकरि जीव अपने शरीरको देखत भया. हे मुनीश्वर ! आदि जो जीव फुरा है अरु प्रमादको प्राप्त न भया, अपने स्वरूपही विषे अहंप्रत्यय रहा, इस कारणते ईश्वर होकरि स्थित भया, तिसको यह निश्चय रहा कि, मैं सनातन हौं, नित्य हौं, शुद्ध परमानंदस्वरूप हौं अव्यक्तरूप परम पुरुष हौं, इस प्रकार आदि जीवका निश्चय रहा, आत्माकी अपेक्षा करिकै तिसको जीव कहा है अरु सृष्टि जगत्की अपेक्षा करिकै उसको ईश्वर कहा है. हे मुनीश्वर ! वह जो आदि जीव है, सो कोऊ विष्णुरूप होकरि ब्रह्माको नाभि कमलते उत्पन्न किया है, किसी सृष्टिविषे प्रथम ब्रह्मा हुआ है, विष्णु रुद्र तिसते हुए हैं किसी सृष्टिविषे प्रथम रुद्र हुआ है, विष्णु ब्रह्मा तिसते हुए हैं, चेतन आकाशविषे जैसा जैसा संकल्प फुरा है, तैसा होकरि स्थित भया है, आदि जीव उपजिकरि जिस जिस प्रकारका संकल्प किया है, तैसा होकरि स्थित भया है, वास्तवते सब असत्रूप है, अज्ञान भ्रमकरिकै हुआ है, जैसे परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै सत्रूप हो भासता है, आदि पुरुषते लेकरि जो सृष्टि है सो

परमाकाशके एक निमेषते हुई है अरु उन्मेषविषे लय हो जाती है, एक निमेषके प्रमादकरि कल्पके समूह व्यतीत हो जाते हैं अरु परमाणु-परमाणुविषे सृष्टि फुरती है, कल्प अरु महाकल्प तिनविषे भासते हैं, कई सृष्टि परस्पर दीखती हैं, कई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं, इसी प्रकार सृष्टि तिसके स्पंदकलाविषे फुरी है, चमत्कार होता है अरु जब स्पंदकला स्वरूपकी ओर आती है, तब लीन हो जाती है, जैसे स्वप्नका पर्वत जागेते लीन हो जाता है, तैसे जाग्रत्की सृष्टि अफुर हुए लीन हो जाती है. हे मुनीश्वर! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, तिन सृष्टिको कोऊ देशकाल रोक नहीं सकता, काहेते कि अपने अपने संकल्पविषे स्थित है अरु आत्माका चमत्कार है, जैसा फुरना फुरता है, तैसा चमत्कार हो भासता है. हे मुनीश्वर! न कछु उपजा है, न कछु नाश होता है, स्वतः चेतनतत्त्व अपने आपविषे चमकता है. जैसे स्वप्ननगर उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, जैसे संकल्पका पहाड़ उपजिकरि मिटि जाता है, तैसे जगत् उपजिकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्न अरु संकल्प पहाड़को कोऊ रोक नहीं सकता, तैसे अपनी अपनी सृष्टिको देशकाल रोक नहीं सकता, काहेते कि अपर ठौरविषे इनका सद्भाव नहीं, ताते यह जगत् अपने अपने कालविषे सत्‌रूप है, आत्माविषे सद्भाव नहीं, संकल्परूप है. हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्वते जीव ईश्वर फुरे हैं, तैसे क्रम फुरे हैं, रुद्रते लेकरि वृक्षपर्यंत सब एक क्षण-विषे उसी तत्त्वते फुरि आये हैं, सुमेरु आदिक भी अपने स्थिति-विषे रोकते हैं, अन्य अणुको नहीं रोक सकते. काहेते कि, वहाँ है ही नहीं, ताते आत्माविषे सृष्टि आभासरूप है. हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब जगत् मायामात्र है, भावनाकरि भासता है, जब आत्माका अभ्यास होता है, तब भेदकल्पना मिटि जाती है, केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है. हे मुनीश्वर! निमेषका जो समभाव है, तिसके अर्धभाग प्रमाद होनेकरि नाना प्रकारका जगत् हो भासता है, सत् असत्‌रूप जगत् मनरूपी विश्वकर्मा बनाता है, आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न अधः है, न ऊर्ध्व है, न पूर्व है, न पश्चिम है, सत् असत्के मध्य अनुभवरूप

सर्वका ज्ञाता है, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण तिसके विषे नहीं करिसकते, जैसे जलविषे अग्नि नहीं निकसता है. हे मुनीश्वर ! जो कछु तुमने पूछा था, सो मैं कहा है, तिसविषे चित्तको लगाना, तेरा कल्याण होवै, अब हम अपने वांछित स्थानको जाते हैं, चलौ पार्वती, अपने स्थानको जावैं. हे रामजी ! इस प्रकार ईश्वरने जब कहा, तब मैं अर्घ्यपाद्यकरि पूजन किया, पार्वती अरु गणको लेकरि ईश्वर आकाशमार्गको चलते भये, जबलग मुझको दृष्टि आवते रहे, तबलग उनकी ओर मैं देखता रहा, बहुरि मैं अपने कुशके स्थानपर आनि बैठा, जो कछु ईश्वरने उपदेश किया था, सो मैं अपनी सुध बुध साथ विचारने लगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमार्थविचारो नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

विश्रांत्यागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी।जो कछु ईश्वरने मुझसे कहा सो मैं आप भी जानता था अरु तू भी जानता है, यह जगत् भी असत् है, देखनेवाला भी असत है, तिस मायारूप जगत्विषे मैं तुझको सत् क्या कहौं अरु असत् क्या कहौं, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे पवनविषे स्पंद होता है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है. हे रामजी ! जो कछु पतित प्रवाहकरि आनि प्राप्त होता है, तिसकरि मैं देव अर्चन करता हौं, इस क्रमकरिके मैं निर्वासनिक हौं, जगत्की क्रियाविषे भी मैं निर्दुःख होकरि चेष्टा करता हौं, व्यवहार करता दृष्टि आता हौं, तौ भी सदा शांतिरूप हौं, यथाप्राप्त आचाररूपी फूलकरि मैं आत्मदेवकी अर्चना करता हौं, छेद भेद मुझको कोई नहीं होता. हे रामजी ! विषय अरु इंद्रियोंका संबंध सर्व जीवको तुल्य है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सावधान रहते हैं, जो कछु देखते, सुनते, बोलते, खाते, सूँघते, स्पर्श करते हैं, सो आत्मा-

तत्त्वविषे अर्चन करते हैं, आत्माते इतर नहीं जानते, इस प्रकार सावधान रहते हैं अरु अज्ञानी हैं, तिनको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान होता है, तिसकरि दुःखी होते हैं. हे रामजी ! तुम भी ऐसी दृष्टिको आश्रय करिकै संसाररूपी वनविषे विचरौ, निःसंग होकरि तुमको खेद कछु न प्राप्त होवैगा, जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान हो गयी है, तिसको बड़ा कष्ट आनि प्राप्त होवै, धनबांधवका वियोग होवै, तौ भी तिसको खेद नहीं होता, यह जो दृष्टि मैं तुझे कही है, तिसका अश्रय करैगा, तब तुझको दुःख कोऊ न होवैगा. हे रामजी ! सुख दुःख धन बांधवका वियोग यह सब पदार्थ अनित्य हैं, यह आते भी हैं, जाते भी हैं, इनको आगमापायी जानकरि विचरौ, यह संसार विषमरूप है, एक रस कदाचित् नहीं रहता, इसको स्थित जानकरि दुःखी नहीं होना. हे रामजी ! पदार्थ काल जैसे आवै, तैसे आवै अरु जैसे सुखदुःख आवै तैसे आवै, यह सब आगमापायी पदार्थ हैं, आते भी हैं, जाते भी हैं, इष्टकी प्राप्ति अनिष्टकी निवृत्तिविषे हर्षवान् नहीं होना अरु अनिष्टकी प्राप्ति इष्टके वियोगकरि खेदवान् नहीं होना, जैसे आवै, तैसे जावै, जैसे जावै, तैसे आवै, जिसे आवना है सो आवैगा, जिसे जाना है सो जावैगा, ये सुख-दुःख प्रवाहरूप हैं, इनविषे आस्थाकरि तपायमान नहीं होना. हे रामजी ! यह सब जगत् तू ही है अरु तू ही जगत्‌रूप है अरु चिन्मात्र विस्तृत आकार तू है जब तू ही है, तब बहुरि हर्षशोक किस निमित्त करता है, इसी दृष्टिको आश्रय करिकै जगत्‌विषे सुषुप्तिकी नाईं विचरु, बहुरि तुरीयातीत अवस्थाको प्राप्त होवैगा, जो सम प्रकाशरूप है. हे रामजी ! जो कछु मुझे तुझको कहना था, सो कहा है, आगे जो तेरी इच्छा होवै सो करु अरु पाछे तुझने पूछा था कि, ब्रह्म अनन्त रूपविषे मैं कलंक कैसे प्राप्त भया हौं ? सो अब बहुरि प्रश्न करु, जो मैं उत्तर कहौं. राम उवाच–हे ब्राह्मण ! अब मुझको संशय कछु नहीं रहा सब संशय नष्ट हो गया है, जो कछु जानना था सो मैं जाना है, अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तताको प्राप्त भया हौं. हे मुनीश्वर ! आत्माविषे न मैल है, न द्वैत है, न एक है, कोई कल्पना नहीं, पूर्व मुझको अज्ञान था, तब मैं पूछा था,

अब तुम्हारे वचनोंकरि मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कलंक कछु नहीं भासता, आत्माविषे न जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्म ही है.हे मुनीश्वर! भ्रम संशयकरि उपजता है, सो संशय मेरा नष्ट हो गया है, जैसे जन्त्रीकी पुतली हिलावनेते रहित अचल होती है, तैसे मैं संशयते रहित अचल-चित्त स्थित हौं, सर्व-सारोंका सार मुझको प्राप्त भया है, जैसे सुमेरु अचल होता है, तैसे अचल हौं, कोई क्षोभ मुझको नहीं, ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागने योग्य होवै अरु ऐसा भी कोई नहीं जो ग्रहण करने योग्य होवै, न किसी पदार्थकी मुझको इच्छा है, न अनिच्छा है, शांतरूपविषे स्थित हौं, न स्वर्गकी मुझको इच्छा है, न नरकविषे द्वेष है, सर्व ब्रह्मरूप मुझको भासता है, मन्दराचल पर्वतकी नाईं आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं. हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तुविषे वस्तु बुद्धि होती है अरु कलनाकला हृदयविषे स्थित होती है, सो किसीका ग्रहण करता है, किसीका त्याग करता है अरु दीनताको प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूप है; रागद्वेषरूपी तिसविषे कल्लोल हैं अरु शुभअशुभरूपी तिसविषे मत्स्य रहते हैं, ऐसे भयानक संसारस-मुद्रते अब मैं तुम्हारे प्रसाद करिकै तरगया हौं, सब सम्पदाके अन्तको प्राप्त भया हौं, सब दुःख नष्ट हो गये हैं, सर्वके सारको प्राप्त भया हौं, पूर्ण आत्मा हौं, अदीनपदको प्राप्त भया हौं अरु परमशांत अभेदस-त्ताको प्राप्त भया हौं, आशारूपी हस्तीको मैंने सिंह होकरि माना है, आत्माते इतर मुझको कछु नहीं भासता, सब विकल्पके जाल गलत हो गये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट हो गये हैं, दीनता जाती रही है, तीनों जगत्‌विषे मेरी जय है, सदा उदितरूप हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विश्रांत्यागमनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

चित्तसत्तासूचनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! देह इंद्रियोंकरि जो केवल करता है अरु मनविषे असंगता है, तब जो कछु वह कर्ता है, सो भी कछु नहीं करता जो कछु इंद्रियोंकरि इष्ट प्राप्त होता है, सो एक क्षणमात्र सुख प्राप्त होता, तिस क्षण प्रसन्नताविषे जो बंधमान होता है सो बालकवत् मूर्ख है, जो ज्ञानवान् है, सो तिसविषे बन्धमान नहीं होता. हे रामजी! वांछा ही इसको दुःखी करती है, जो सुंदरविषयकी वांछा करता है, जब यत्नकरि तिनकी प्राप्ति होती है, तब मध्यक्षण सुख होता है, बहुरि वियोग होता है, तब इसको दुःख दे जाते हैं, तिस कारणते इनकी वांछा त्यागनी योग्य है, इनकी वांछा तब होती है, जब स्वरूपका अज्ञान होता है अरु देहादिकविषे अहंभाव होता है, जब देहादिकविषे अहंभाव होता है तब अनेक अनर्थकी प्राप्ति होती है. ताते हे रामजी! ज्ञानरूपी पहाड़परि चढ़े रहना. अहंतारूपी गर्तविषे नहीं गिरना. हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत है, तिसपर चढी बहुरि अहंता अभिमान करिकै गर्तविषे वास लेना सो बडी मूर्खता है, ताते गर्तविषे नहीं गिरना, जब दृश्यभावको त्यागेगा तब अपने स्वभावसत्ताको प्राप्त होवैगा, जो सम शांतरूप है अरु विकल्पजाल सब मिटि जावैगा, समुद्रवत् पूर्ण होवैगा, द्वैतरूप फुरणा कोऊ न फुरैगा. हे रामजी! जब अन्तरते विषयको विष जानै तब मन भी निरस हो जाता है, चित्त निःसंग होता है, वस्तुते देखै तौ सबविषे सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है, तिसते जो कछु इतर द्वैत भासता है, सो स्वरूपके प्रमादकरि भासता है. हे रामजी! आत्माका अज्ञान ही बंधनरूप है आत्माका बोध ही मुक्तरूप है, ताते बलकरिकै आपको आप ही जगावहु, तब इस बंधनते मुक्त होहुगे. हे रामजी! जिसविषे विषयका स्वाद नहीं अरु जिसविषे इनका अनुभव होता है, सो तत्त्व आकाशवत् निर्मल सत्ता वासनाते रहित है, जो वासनाते रहित होकरि पुरुष कछु क्रिया करता है, सो विकारको नहीं प्राप्त होता, यद्यपि अनेक

क्षोभ आनि प्राप्त होवैं, तौ भी उसको विकार कछु नहीं प्राप्त होता, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय यह तीनों आत्मरूप भासते हैं, जब ऐसे जाना तब भय किसी का नहीं रहता, चित्तके फुरणे कारि जगत् उत्पन्न होता है, चित्तके अफुर हुए लीन हो जाता है, जब वासनासहित प्राण उदय होते हैं, तब जगत् उदय होता है, जब वासना सहित प्राण लीन होते हैं, तब जगत् लीन होता है, अभ्यासकरिकै वासना अरु प्राणोंको स्थित करौ, जब मूर्खता उदय होती है, तब कर्म उदय होते हैं अरु मूर्खताके लीन हुए कर्म भी लीन होते हैं, ताते सत्संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि मूर्खताको क्षय करौ, जैसे वायुके संगकारि धूलि उड़िकै बादल आकार होती है, तैसे चित्तके फुरणेकारि जगत् स्थित होता है. हे रामजी! जब चित्त फुरता है, तब नाना प्रकारका जगत् फुरि आता है अरु चित्तके अफुर हुए जगत् लीन हो जाता है. हे रामजी! वासना शांत होवै, अथवा प्राणोंका निरोध होवै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, सो वासनाके क्षय हुए अथवा प्राणोंके रोकेते चित्त अचित्त होता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब परमपदको प्राप्त होता है. हे रामजी! दृश्य दर्शन संबंधके मध्यविषे जो सुख है, सो परमात्मसुख है, जो एकांतका सुख है, सो संवित् ब्रह्मरूप है, तिसके साक्षात्कार हुए मन क्षय होता है, जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्तते रहित अकृत्रिम सुख है, ऐसा सुख स्वर्गविषे भी नहीं जैसे मरुस्थलविषे वृक्ष नहीं होता तैसे चित्तसहित विषयके विषे सुख नहीं होता, चित्तके उपशमविषे जो सुख है, सो अवाच्य है, वाणीकारि नहीं कहा जाता, तिसके समान अपर सुख कोई नहीं, और तिसते अतिशय सुख भी नहीं, अपर सुख नाश हो जाता है, आत्मसुख नाश नहीं होता अविनाशी है, उपजने विनशने दोनोंते रहित है. हे रामजी! अबोधकरिकै चित्त उदय होता है अरु आत्मबोधकरिकै शांत हो जाता है, जैसे मोहकरिकै बालकको वैताल दिखाई देता है, मोहके नष्ट हुए वैताल नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानकारि चित्त उदय होता है, अज्ञानके नष्ट हुए चित्त नष्ट हो जाता है, जब विद्यमान भी चित्त भासता है, तब भी बोधकरि

निर्बीज होता है, जैसे लोहा पारसकेसाथ मिलिकरि स्वर्ण हो जाता है, आकार तौ वही दृष्टि आता है, परंतु लोहे भावका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि जगत् भासता है अरु ज्ञानकरि चित्त अचित्त हो जाता है अरु जड जगत् नहीं भासता वही ब्रह्मसत्ता होकरि भासता है, सत् पदको प्राप्त होता है, परंतु नामरूप तैसे ही भासता है. हे रामजी! ज्ञानीका चित्त भी क्रिया करता दृष्टि आता है, परंतु चित्त अचित्त हो जाता है, जो अज्ञानकरिकै भासता है, सो ज्ञानकरिकै शून्य हो जाता है, जेता कछु जगत् अबोधकरिकै भासता था, सो बोधकरिके शांत हो जाता है, बहुरि नहीं उपजता, वह चित्त शांतपदको प्राप्त होता है, कोई काल तौ वह भी तुरीया अवस्थाविषे स्थित हुआ विचरता है, बहुरि तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्म ही सदा इस प्रकार अनेक होकरि स्थित भया है, अनेक भ्रमकरिकै भी एक ही है, सर्वात्मा ही है, अपर चित्तादिक कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चित्तसत्तासूचन-वर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशतमः सर्गः ४५.

बिल्वोपाख्यानवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! अब तू संक्षेपते एक अपूर्व आश्चर्यरूप बोधका कारण अज्ञान सुन, एक बेलफल है अरु अनंत योजनपर्यंत तिसका विस्तार है अरु अनंत युग व्यतीत हो गये हैं, वह जर्जरीभावको कदाचित् नहीं प्राप्त होता अरु अनादि है, तिसविषे अविनाशी रस है, कबहूँ नाश नहीं होता, रसकरि पूर्ण है अरु चंद्रमाकी नाई सुंदर है, बहुरि कैसा है, जो सुमेरु आदिक बडे पहाड हैं, तिनको महाप्रलयका पवन तृणोंकी नाई उडावता है, सो पवन भी तिसको हिलाय नहीं सकता. हे रामजी! योजनके अनंत कोटकोटान करिकै तिसकी संख्या नहीं करी जाती, ऐसा वह बेलफल है, बहुरि

कैसा है, बहुत बडा है, जैसे सुमेरुके निकट राईका दाना सूक्ष्म तुच्छ आसता है, तैसे तिस बेलफलके आगे ब्रह्मांड सूक्ष्म तुच्छ भासता है, सो बेलफल रसकारि पूर्ण है, गिरता कबहूं नहीं अरु पुरातन है, तिसका आदि, अंत, मध्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक भी नहीं जान सकते, न उसके मूलको कोई जान सकता है, न मध्यको कोई जान सकता है, अदृष्ट उसका आकार है अरु अदृष्ट फल है, अपने प्रकाशकारि प्रकाशता है, बहुरि कैसा है, एक घन है आकार जिसका अरु सदा अचल है, किसी विकारको नहीं प्राप्त होता, सत् है, निर्मल निर्विकार निरंतररूप है, निरंध्र है अरु चंद्रमाकी नाई शीतल सुंदर है, अरु अज्ञान संवित्‌रूपी तिसविषे रस है, सो अपना रस आप ही लेता है अरु सर्वको रस देनेहारा भी वही है, सबको प्रकाश करता भी वही है, तिसविषे अनेक चित्र रेखाने आनि निवास किया है, परंतु अपने स्वरूपको त्यागता नहीं. अनेकरूप होकरि भासता है, तिसविषे स्पंदरूपी रस फुरता है, तत्, त्वम्, इदम्, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत-भविष्यत्-काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या, इत्यादिक कलनाजाल इसके फुरणे करिकै फुरते हैं, सो बिल आत्मरूप है, अनुभवरूपी तिसविषे रस है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, नित्य शांतरूप है, तिसको जानिकारि पुरुष कृतकृत्य होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे बिल्वो-
पाख्यानं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

शिलाकोशोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! सर्व धर्मके वेत्ता ! तुम यह बेलरूपी महाचिद्घनसत्ता कही, सो ऐसे मेरे निश्चय भया कि, जो चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत् है, इसविषे भेद रंचक भी नहीं, द्वैत एक कलना सर्व वही है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे ब्रह्मांडकी मज्जा सुमेरु आदिक

पृथ्वी है, तैसे चेतन बिलकी मज्जा यह ब्रह्मांड है, सब जगत् चेतन बेलरूप है, इतर कछु नहीं, तिस सर्व जगत् चेतनका विनाश संभवता नहीं. हे रामजी! चेतनरूपी मिर्च बीज है, तिसविषे जगतरूपी चमत्कार तीक्ष्णता है, सो सुषुप्तवत् निर्मल है, शिलाके अंतरवत् अमिश्रित है. हे रामजी! अब अपर आश्चर्यरूप आख्यान सुन. चन्द्रवत् महासुंदर प्रकाश अरु स्निग्ध शीतल स्पर्श है अरु विस्तृतरूप शिला है, सो महानिरंध्र है. घनरूप है, तिसविषे कमल उपजते हैं, ऊर्ध्व तिसकी वल्ली है अरु अधः मूल है अरु अनेक तिसकी शिखा हैं. राम उवाच–हे भगवन्! सत्य कहते हौ, यह शिला मैं भी देखी है, जो विष्णुकी मूर्ति नदीविषे शालग्राम है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! ऐसे तू जानता है अरु देखा भी है, परंतु तैसी तिसके सब अंतर हैं, जो शिला मैं कहता हौं सो अपूर्व शिला है, तिसके अंतर ब्रह्मांडके समूह हैं और कछु भी नहीं. हे रामजी! चेतनरूपी शिला मैं तुझको कही है, तिसविषे संपूर्ण ब्रह्मांड है सो घन चेतनता करिकै शिला वर्णन करी है, अनंत घन अरु निरंध्र है, सो परब्रह्म आकाशवत् शिला है, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियां, समुद्र इत्यादिक सब ही विश्व तिस शिलाके अंतर स्थित हैं अरु कछु है नहीं, जैसे शिलाके ऊपर कमल लिखे होते हैं, सो शिलारूप है, शिलाते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आत्मारूपी शिलाविषे है, आत्माते भिन्न कछु नहीं. हे रामजी! भूत भविष्य वर्त्तमान जो तीनों काल हैं, सो उस शिलाकी पुतलियां हैं, जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, कि एती पुतलियां इस शिलाते निकसैं तैसे यह जगत् आत्माविषे है, उपजा नहीं. काहेते कि जो मनरूपी शिल्पी कल्पता है तिसकरि नाना प्रकारका जगत् भासता है आत्माविषे कछु उपजा नहीं जैसे सुषुप्तिरूप शिलाके ऊपर कमलरेखा लिखी होती है सो शिलाते इतर कछु नहीं तैसे यह जगत् आत्माविषे है सो आत्माते भिन्न नहीं, जैसे शिलाविषे पुतली होती है सो न उदय न अस्त होती है, ज्योंकी त्यों शिला है, तैसे आत्माविषे जगत् न उदय न अस्त होता है, काहेते कि, वास्तव कछु नहीं अरु आत्माते इतर जो कछु द्वैतकल्पना

होती है, सो अज्ञानकरिके भासती है, जब बोध हुआ तब शांत हो जाती है, जैसे जलकी बूँद समुद्रविषे डारी समुद्ररूप हो जाती है, तैसे बोधकरि कल्पना आत्माविषे लीन हो जाती है. हे रामजी! चेतन आत्मा अनंत है, तिसविषे विकारकल्पना कोई नहीं, अज्ञानकरि कल्पना भासती है, ज्ञानकरिके लीन हो जाती है, विकार भी आत्माके आश्रय भासते हैं अरु आत्मा विकारते रहित है, ब्रह्मते विकार उत्पन्न होते हैं, अरु ब्रह्महीविषे स्थित हैं अरु वास्तवते कछु हुए नहीं, सब आभासमात्र हैं, जैसे किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगतविकार आभास होता है, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, पत्र टास फूल फलका विस्तार एक ही बीजके अंतर होता है अरु बीजसत्ता सबविषे अनुस्यूत होती है, बीजते इतर कछु नहीं होता, तैसे चिद्घन आत्माके अंतर जगत्विस्तार है, सो चिद्घन आत्माते इतर कछु नहीं, वही अपने आपविषे स्थित है अरु जगत् भी वहीरूप है, जब एक मानिये तब द्वैत भी होता है, जब एक कहना भी नहीं, तब द्वैत कहां होवै, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, आत्मा ही अद्वैत अपने आपविषे स्थित है, जैसे शिलाविषे मूर्ति लिखी होती है, सो शिलारूप है तैसे जगत् आत्मारूप है, जैसे शिलाविषे भिन्न भिन्न विषमरूप मूर्तियां होती हैं, आधाररूप शिला अभेद है, तैसे आत्मविषे जगत्मूर्तियां भिन्न भिन्न विषमरूप भासती हैं अरु आधार चेतन अभेद है, ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् सम स्थित है, बड़े विकार भी तिसविषे दृष्टि आते हैं, परंतु वास्तव सुषुप्तवत् विकारते रहित स्थित हैं. फुरणेते रहित चेतन शिला स्थित है, तिस नित्य शांत चिद्घनरूप सत्ताविषे यह जगत् कल्पित है, अधिष्ठानसत्ता सदा सर्वदा शांतरूप है, भेदको प्राप्त कदाचित् नहीं होती, जैसे जलविषे तरंग अभेदरूप हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण अभिन्नरूप हैं, तैसे आत्माविषे जगत् अभिन्नरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे शिलाकोशोपदेशवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

सत्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे बीजके अंतर फूलफल वृक्ष संपूर्ण होता है, सो आदि भी बीज है अरु अंत भी बीज है,जब फल परिपक्क होता है तब बीज ही होता है, तैसे आत्मा भी जगत्विषे है, परंतु सदा अच्युत है अरु सम है, कदाचित् भेदविकार परिणामको नहीं प्राप्त भया, अपनी सत्ताकरि स्थित है, जगत्के आदि भी वही है, मध्य भी वही है, अंत भी वही है, कछु अपर भावको प्राप्त नहीं भया, देश काल कर्म आदिक जेती कलना भासती है; सो वहीरूप है जेते कछु शब्द अरु अर्थ है, सो आत्माते भिन्न नहीं होते जैसे वृक्षके आदि भी बीज है अरु अंत भी बीज है, मध्य जो कछु विस्तार भासता है सो भी वहीरूप है; भिन्न कछु नहीं, तैसे जगत्के आदि भी आत्मसत्ता है, अंत भी आत्मसत्ता है, मध्य जो कछु भासता है, सो भी वहीरूप है. हे रामजी! चेतनरूपी महा आदर्श है तिसविषे संपूर्ण जगत् प्रतिबिंब होता है अरु संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा किसीविषे फुरण दृढ होता है, तैसा ही आत्मसत्ताके आश्रित होकरि भासता है, जैसे चिंतामणिविषे जैसा कोऊ संकल्प धारता है, तैसा ही प्रकट हो आता है, सो संकल्प ही मात्र होता है, तैसे जैसी जैसी भावना कोऊ करता है, तैसी तैसी आत्माके आश्रित होकरि भासती है, अनंत जगत् आत्मारूपी मणिके स्थित होते हैं, जैसी कोऊ भावना करता है, तैसा ही तिसको हो भासती है. हे रामजी! आत्मरूपी डब्बा है; तिससों जगत्रूपी रत्न मोती पन्ने निकसते हैं, जैसा फुरणा होता है, तैसा जगत् भासि आता है, जैसे शिलाके अंतर रेखा होती है, सो नाना प्रकार चित्र भासती है, सो अनन्यरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् अनन्यरूप है,जैसे शिलाके अंतर शंखचक्रादिक रेखा भासती हैं, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासता है,सो आत्मारूप है, आत्मारूपी शिला निरंध्र है, तिसविषे छिद्र कोई नहीं जैसे जलविषे तरंग जलरूप होते हैं तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है,सो कैसा ब्रह्म है,सम शांतरूप

सुषुप्तवत् स्थित है, तिसविषे जगत् कछु फुरा नहीं, शिलाकी रेखावत् है, जैसे बिलके अंतर मज्जा स्थित होती है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, जैसे वायुविषे स्पंदता होती है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् हैं, ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, जैसे तरु अरु वृक्षविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं ब्रह्म ही जगत् है, जगत् ही ब्रह्म है. हे रामजी ! भाव अभाव भेदकल्पना कोऊ नहीं, ब्रह्मसत्ताही प्रकाशती है, ब्रह्मसत्ता ही जगतरूप होकरि भासती है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणैं जलरूप होकरि भासती हैं, तैसे ब्रह्म जगतरूप होकारि भासता है. हे रामजी ! सुमेरु आदिक पर्वत अरु तृण वन अरु चित्त जगत् परिणामते लेकरि भूतको विचारि देखिये तो परमसत्ता ही भासती है, सब पदार्थविषे स्थूल अरु सूक्ष्म भावकरि वही सत्ता व्यापी है, जैसे जलका रस वनस्पतिविषे व्यापा हुआ है, तैसे सब जगतविषे सूक्ष्मता करिकै आत्मसत्ता व्यापी हुई है, जैसे एक ही रस-सत्ता वृक्ष तृण गुच्छेविषे व्यापी हुई है अरु एक ही अनेकरूप होकरि भासती है, तैसे एक ही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकरि भासती है. हे राम-जी ! जैसे मोरके अंडविषे अनेक रंग होते हैं, जब अंड फूटता है, तब शनैः शनैः अनेक रंग तिसते प्रगट होते हैं, सो एक ही रस अनेकरूप हो भासता है, तैसे एक ही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकरि भासता है, जैसे मोरके अंडविषे एक ही रस होता है, परंतु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी हैं, तिनको भविष्यत् अनेक रंग उसविषे भासते हैं, सो अनउपजे ही उपजे भासते हैं, तैसे यह जगत् अनउपजा ही नानात्व अज्ञानीके हृदय-विषे स्थित होता है अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनको एकरस ब्रह्मसत्ता भासती है, जैसे मोरका रस परिणामको नहीं प्राप्त भया, एकरस है अरु जब परिणामको प्राप्त होकरि नानारूप भया, तब भी एकरस है, तैसे यह जगत् परमात्माविषे गुह्य है, तौ भी परमात्मा ही है अरु जब नाना-रूप होकरि भासता है, तौ भी वही है परिणामको नहीं प्राप्त भया; परंतु अज्ञानीको नानात्व भासता है, ज्ञानवान्को एक सत्ता भासती है, अथवा इस दृष्टांतका दूसरा अर्थ है, जैसे मोरके अंडविषे नानात्व कछु हुई नहीं;

जिसको दिव्यदृष्टि है, तिसको उसविषे अनउपजी नानात्व भासती है, अरु जिसको दिव्यदृष्टि नहीं तिसको बीज ही भासता है, नानात्व नहीं भासता जैसे जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है, तिनको अनउपजा जगत् नानात्व हो भासता है अरु जो अज्ञानदृष्टिते रहित हैं, तिनको एक ही ब्रह्म भासता है, अपर कछु नहीं भासता. हे रामजी ! नानात्व भासता है तौ भी कछु नानात्व है नहीं, जैसे मोरके अंडेविषे नानारंग भासते हैं, तौ भी एकरूप है, तैसे यह जगत् भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, तौ भी एक ब्रह्मसत्ता है, द्वैत कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सत्तोपदेश-
वर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

ब्रह्मैकताप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे अनउपजी कांतिरंग मयूरके अंडविषे होते हैं, सो बीजते इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वम् आदिक जगत् आत्माविषे अनउदय ही उदयरूप भासता है, जैसे बीजविषे उन रंगहूकी उदय भी अनउदयरूप है,तैसे आत्माविषे जगत्की उदय भी अनउदय-रूप है अरु आत्मसत्ता अशब्द पद है, वाणीकरि कछु कहा नहीं जाता ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं पाता है अरु अपर भी किसी स्थानविषे ऐसा सुख नहीं पाता, जैसा सुखआत्माविषे स्थित हुए पाता है. हे रामजी ! आत्मसुखविषे विश्रांति पानेनिमित्त मुनीश्वर, देवता, गण अरु सिद्ध महाऋषि दृश्य दर्शनसंबंध फुरणेको त्यागिकरि स्थित होते हैं,ताते उत्तम सुख है, संवित्‌विषे जो संवेदनका फुरणा है, सो जिनका निवृत्त हुआ है, तिसका जिनने त्याग किया है, तिन पुरुषोंको दृश्यभावना कोई नहीं फुरती, न कोऊ तिनको कर्म स्पर्श करता है अरु प्राण भी तिनके निस्पंद होते हैं,चित्त चेतनके संबंधते रहित चित्रकी मूर्तिवत् स्थित होते हैं, अरु शांतरूप स्थित होते हैं. हे रामजी जब चित्तकला फुरती है, तब

इसको संसारभ्रम प्राप्त होता है अरु जब चित्तका फुरना मिटि जाता है, तब यह शांतरूप अद्वैत स्थित होता है, जैसे राजाकी सेना युद्ध करती है अरु जीत हार राजाकी होती है, तैसे चित्तके फुरणेद्वारा आत्मविषे बन्ध मोक्ष होता है, यद्यपि आत्मा सतरूप अच्युत है, परंतु मन बुद्धि अन्तःकरणद्वारा आत्माविषे बंधमोक्ष भासता है आत्मा सबका प्रकाशक है, जैसे चन्द्रमाकी चांदनी वृक्षादिकको प्रकाशती है, तैसे आत्मा सर्व पदार्थको प्रकाशता है. सो कैसा है न दृश्य है, न उपदेशका विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल अनुभव चेतनरूप आत्माकारि सिद्ध है. न देह है, न इंद्रियगण है, न चित्त है, न वासना है, न जीव है, न स्पन्द है न अपरको स्पर्श करता है, न आकाश है, न सत् है, न असत् है, न मध्य है, न शून्य है, न अशून्य है, न देशकाल वस्तु है, न अहं है, न इतर है, इत्यादिक सर्व शब्दते रहित हृदयस्थानविषे प्रकाशता है, अनुभवरूप है, तिसका न आदि है, न अंत है, न शस्त्र काटते हैं, न अग्नि जलाय सकता है, न जल गलाय सकता है, न यह है,न वह है,न वायु शोष सकता है,अपर किसीकी समर्थता नहीं;सो चित्तरूपआत्मतत्त्व है,न जन्मता है,न मरता है अरु देहरूपी घट कई बार उपजते हैं कई बार नष्ट होते हैं, अरु आत्मरूपी आकाश सबके अंतर बाहिर अखण्ड अविनाशी है,जैसे अनेक घटविषे एक ही आकाश स्थित होता है,तैसे अनेक पदार्थविषे एक ही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप करके स्थित है. हे रामजी ! जेता कछु स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है, सो सब ब्रह्मरूप है. कैसा ब्रह्म है, निर्धर्म निर्गुण है, निरवयव निराकार है, निर्मल निर्विकार है, आदि अंतते रहित सम शांतरूप है, ऐसी दृष्टिको आश्रय करिकै स्थित होहु. हे रामजी ! इस दृष्टिको आश्रय करोगे तब बड़े आरंभ कार्य भी तुमको स्पश न करैंगे. जैसे आकाशको बादल स्पर्श नहीं करते हैं, तैसे तुमको कर्म स्पर्श न करैंगे काल क्रिया कारण कार्य जन्म स्थिति संहार आदिक जो संसरणारूप संसार है, सो सब ब्रह्मरूप है, इसी दृष्टिको आश्रय करिकै विचरौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैकताप्रतिपादनवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

संसृतिविचारयोगवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! जब प्रत्यक्ष ब्रह्माविषे कोई विकार नहीं, तब भावअभावरूप जगत् किसकरि भासता है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! विकार किसको कहते हैं, प्रथम तौ यह सुन, जो वस्तु अपने पूर्वरूपको त्यागिकरि विपर्ययरूपको प्राप्त होवै अरु बहुरि पूर्वके स्वरूपको प्राप्त न होवै, तिसको विकार कहते हैं, जैसे दूधते दही होता है, वह बहुरि दूध नहीं होता. अरु जैसे बालक अवस्था बीति जाती है, बहुरि नहीं होता अरु युवावस्था गयी हुई बहुरि नहीं आती, तिसका नाम विकार है अरु ब्रह्म निर्मल है, आदि भी निर्विकार है, अंत भी निर्विकार है मध्य जो तिसविषे कछु विकार मल भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है मध्यविषे भी ब्रह्म अविकारि ज्योंका त्यों है. हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप हो जाता है सो बहुरि अपने स्वरूपको नहीं प्राप्त होता अरु ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों अद्वैतरूप आत्मानुभवकरिकै प्रकाशती है जो कबहूँ अन्यथारूपको प्राप्त न होवै, तिसको विकार कैसे कहिये? हे रामजी! जो वस्तुविचार ज्ञानकरिकै निवृत्त हो जावै, तिसको भ्रममात्र जानिये वास्तव कछु नहीं, जेते कछु विकार हैं सो अज्ञान करिकै भासते हैं, जब आत्मबोध होता है, तब निवृत्त हो जाते हैं, जिसके बोध करिकै विकार नष्ट हो जावे हैं, तिसविषे विकार कैसे कहिये, जो ब्रह्म शब्दकरिकै कहाता है सो निर्वेदरूप आत्मा है, जो आदि अंतविषे सत् होवै सो मध्यविषे भी जानिये कि सत् है, इसते इतर होवै, सो अज्ञान करि जानिये, आत्मरूप सदा सर्वदा यमरूप है, आकाश पवन भी अन्यभावको प्राप्त हो जाते हैं, परंतु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्यभावको प्राप्त नहीं होता, प्रकाशरूप है अरु एक नित्य है, निर्विकार ईश्वर है, भाव अभाव विकारको कदाचित् नहीं प्राप्त होता है. राम उवाच-हे भगवन्! विद्यमान एक तत्त्व है, सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है, तिस संवित् ब्रह्मविषे यह अविद्या कहांते आई है? वसिष्ठ

उवाच—हे रामजी ! यह सर्व ब्रह्म है, आगे भी ब्रह्म था अरु पाछे भी ब्रह्म होवैगा, तिस निर्विकार आदि अंत मध्यते रहित ब्रह्मविषे अविद्या कोई नहीं, यह निश्चय है, जिसको वाच्य वाचक कर्मकरि उपदेशनि-मित्त ब्रह्म कहता है, तिसविषे अविद्या कहां है.? हे रामजी ! अहं त्वम् आदिक जगद्भ्रम अग्नि वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है, अपर अविद्या रंचकमात्र भी नहीं, जिसका नाम ही अविद्या है, सो भ्रममात्र असत् जान, जो विद्यमान नहीं है, तिसका नाम क्या कहिये. ? राम उवाच—हे भगवन् ! उपशम प्रकरणविषे तुमने क्यों कहा ? कि अविद्या है, अब इस प्रकार कैसे कहते हौ, कि विद्यमान नहीं है ? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! एते कालपर्यंत तू अबोध था, तिस निमित्त मैं कल्पकरि तुझको युक्ति कही थी, सो तेरे जगावने निमित्त कही थी अरु अब तू प्रबुद्ध हुआ है, तब मैं कहा अविद्या अविद्यमान है. हे रामजी ! अविद्या अरु जीव जगत् आदिकका क्रम अप्रबोधको जगावने निमित्त वेदवादीने वर्णन किया है, जबलग अप्रबोध मन होता है, तबलग इसको अविद्याभ्रम है, सो युक्ति विना अनेक उपायकरि भी बोधवान् कदाचित् नहीं होता अरु जब बोधवान् होता है, तब सिद्धांत उपदे-शसों युक्ति विना भी पाय लेता है अरु अबोध मन युक्ति विना पाय नहीं सकता. हे रामजी ! जो कार्य युक्तिकरि सिद्ध होता है, अपर यत्नकरि साध्य नहीं जाता, जैसे अंधकार युक्तिरूपी दीपककरि दूर होता है, अपर बल यत्नकरि निवृत्त नहीं होता, तैसे युक्ति विना अपर यत्नकरि अज्ञाननिद्रा निवृत्त नहीं होती, जो अप्रबोधको सर्व ब्रह्म सिद्धांतका उपदेश करिये, तब वह व्यर्थ होता है, जैसे कोई दुःखी अपना दुःख स्थाणुके आगे जाय कहै तब उसका कहा वह सुनता नहीं, उसका कहना भी वृथा होता है, तैसे अप्रबुद्धको सर्व ब्रह्मका उपदेश व्यर्थ होता है, ताते मूढको युक्तिकरि जगावता है अरु बोधवान्को प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश करता है. हे रामजी ! एता काल तू अप्रबोध था, इस कारणते मैं तुझको नाना प्रकारकी युक्ति उपदेशकरि जगाया है, अब तू जागा है, तब मैं तुझको प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश किया है. हे रामजी !

अब तू ऐसे धार कि, मैं ब्रह्म हौं,यह तीनों जगत् भी ब्रह्म हैं, अहं त्वम् आदिक सब ब्रह्म है, द्वैतकल्पना कछु नहीं, ऐसे धारिकरि जो तेरी इच्छा होय सो कर, दृश्य संवेदन फुरै नहीं, सदा आत्माविषे स्थित रहै, इस-प्रकार अनेक कार्यविषे भी लेप न होवैगा. हे रामजी ! जो चेतन वपु परमात्मा प्रकाशरूप है, सो सदा अहंभावकरिकै फुरता है, ऐसा जो अनुभवरूप है, चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टा करते तिसीविषे स्थित रहु तब अहं ममभाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, अवेदन जो शांतरूप ब्रह्म सर्व भूतविषे स्थित है, तिसको तू प्राप्त होवैगा, तब आदि अंतते रहित प्रकाशरूप आपको देखैगा, शुद्ध संवितमात्र आत्माको देखैगा, जैसे मृत्तिकाके पात्र टिंड, दोली घट आदिक सब मृत्तिकाका अपना आप है, तैसे तू सर्वभूत आत्माको देखैगा, जैसे मृत्तिकाते घट भिन्न नहीं तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं जैसे वायु अरु स्पंद भिन्न नहीं. अरु जलते तरंग भिन्न नहीं तैसे आत्माते प्रकृति भिन्न नहीं. जैसे जल अरु तरंग शब्दमात्र दो हैं, तैसे आत्मा अरु प्रकृति शब्दमात्र दो हैं, भेद-भाव कछु नहीं, अज्ञानकरिकै भेद भासता है, ज्ञानकरिकै भेद नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे प्रकृति है. हे रामजी ! चित्तरूपी वृक्ष है अरु कल्पनारूपी बीज है, जब कल्पनारूपी बीज बोता है, तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है, तिसते भावरूप संसार उत्पन्न होता है, जब आत्मज्ञानकरिकै कल्पनारूपी बीज दग्ध होता है, तब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जाता है. हे रामजी ! चित्त-रूपी अंकुरते सुखदुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जावै, तब सुखदुःखरूपी वृक्ष कहां उपजै ? हे रामजी ! जेता कछु द्वैतभ्रम है सो अबोधकरि उपजता है, बोधकरि नष्ट हो जाता है, आत्मा जो परमार्थसार है, तिसकी भावना करु, संसा-रभ्रमते मुक्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संसृतिविचार-योगवर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

अक्षसंवेदनविचारवर्णनम्।

राम उवाच-हे मुनीश्वर! जो कछु जानने योग्य था, सो मैंने जाना है अरु जो कछु देखने योग्य था, सो देखा है, अब मैं तुम्हारे ज्ञानरूपी अमृतके सिंचने करिकै परमपदविषे पूर्ण आत्मा हुआ हौं. हे मुनीश्वर! पूर्णने सब विश्व पूर्ण करी है, पूर्णते पूर्ण प्रतीत करी है, पूर्णविषे पूर्ण ही स्थित हैं, अपर द्वैत कछु नहीं, यह मुझको अब अनुभव भया है. हे मुनीश्वर! ऐसे मैं जानिकारि लीलाके निमित्त अरु बोधकी बुद्धिके निमित्त तुमसों पूँछता हौं, ज्यों बालक पितासों पूंछता है, तब पिता उद्वेग नहीं करता, तैसे तुम उद्वेगवान् नहीं होना. हे मुनीश्वर! श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना, घ्राण पांचों इंद्रियें प्रत्यक्ष दृष्टि आतीं हैं, जब यह मरजाता है, तब तिस कालविषे विषयको ग्रहण क्यों नहीं करती अरु जीवते कैसे ग्रहण करती हैं अरु मुए क्यों नहीं ग्रहण करती हैं? अरु घटादिककी नाईं जड बाह्यस्थित है, अंतर इनका अनुभव कैसे होता है, लोहेकी शलाकावत् यह भिन्न भिन्न हैं, इनका इकट्ठा होना कैसे हुआ है, परस्पर जो एक आत्मकरि अनुभव होता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, इत्यादिक इकट्ठी वृत्ति क्योंकरि हुई है? मैं सामान्य करिकै जानता ही हौं, परंतु विशेषकरि तुमसों पूँछता हौं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इंद्रियां अरु चित्त अरु घट पट आदिक पदार्थ हैं, सो निर्मल चेतनरूप आत्माते भिन्न नहीं, आत्मतत्त्व आकाशते भी सूक्ष्म स्वच्छ है. हे रामजी! जब चेतनतत्त्वते चेत्यता पुर्यष्टकाकी भावना फुरी है, तब आगे इंद्रियगणसहितहू देखती भयी, तब चित्तके आगे इंद्रियगण हुए हैं, इनकी घनताकरिकै चेतनतत्त्व पुर्यष्टका भावको प्राप्त हुआ है, तिसविषे सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिंबित हुए हैं पुर्यष्टकाविषे भासे हैं. राम उवाच-हे मुनीश्वर! अनंत जगत् जो रचे हैं अरु महाआदर्शविषे प्रतिबिंबित हैं, तिस पुर्यष्टकाका रूप क्या है अरु कैसे हुई है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आदि अंतत

रहित जो जगत्का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, सो निरामय है अरु प्रकाशरूप है, कल्पनाते रहित जो जगत्का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, कलनाते रहित शुद्ध चिन्मात्र अचेतन है, सो सब कलनाके सन्मुख हुआ तब तिसका नाम जीव कहा, सो जीव देहको चेतता भया, जब अहंभाव फुरा, तब अहंकार हुआ, जब मनन करने लगा, तब मनन हुआ, जब निश्चय करने लगा, तब बुद्धि हुई अरु परमात्माके देखनेवाली इन्द्रियोंकी भावना हुई, तब इन्द्रियां भयीं जब देहकी भावना करने लगा, तब देह हुई, घटपटकी भावना हुई तब घटपट हुए, इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गयी, तैसे ही पदार्थ होते गये. हे रामजी ! यह स्वभाव जिसका है, तिसको पुर्यष्टका कहते हैं, स्वरूपते विपर्ययरूप जो दृश्यकी ओर भावना भयी है अरु कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दुःख आदिककी भावनाकलना अभिमान जो चित्तकलाविषे हुआ इसकरि तिसको जीव कहते हैं, जैसी जैसी भावनाका आकार हुआ तैसी तैसी वासना करत भया, जैसे जलकरि सिंचा हुआ बीज टास पत्र फूल फल भावको प्राप्त होता है, तैसे वासनाकरि सिंचा हुआ स्वरूपके प्रमादकरि महाभ्रमजालविषे गिरता है, ऐसे जानता है कि, मैं मनुष्य देह सहित हौं, अथवा देवता हौं स्थावर हौं, इत्यादिक देहको पायकरि देहसाथ मिला हुआ जानता है. ऐसे नहीं जानता कि, मैं चिदात्मा हौं, देहसाथ मिला हुआ परिच्छिन्न तुच्छरूप आपको देखता है, इस मिथ्या ज्ञानकरिकै डूबता है, देहविषे अभिमानकरिकै वासनाके वश हुआ चिरपर्यंत अधः ऊर्ध्व मध्यविषे यह जीव भ्रमता है, जैसे समुद्रविषे आया हुआ काष्ठ तरंगकरि उछलता है, अधः ऊर्ध्वको जाता है, जैसे घटीयंत्रके टिंड अधः ऊर्ध्वको जाते हैं, तैसे जीव वासनाके वशते अधः ऊर्ध्वको भ्रमता है अरु जब विचार अभ्यासकरिकै आत्मबोधको प्राप्त होता है, तब संसारबंधनते मुक्त होता है, आदिअंतते रहित जो आत्मपद है, तिसको प्राप्त होता है, बहुतकाल योनिको भोगिकै आत्मज्ञानके वशते परमपदको प्राप्त होता है. हे रामजी ! स्वरूपते गिरे हुए जीव इस प्रकार भ्रमते हैं अरु शरीरको पाते हैं, अब यह सुन कि, इंद्रियां मृतक हुए विषयको किस निमित्त ग्रहण नहीं करतीं ?

हे रामजी ! जब शुद्ध तत्त्वविषे चित्तकलना फुरती है, तब वह जीवरूप होती है, बहुरि मनसहित षट् इंद्रियोंको लेकारि देहरूपी गृहविषे स्थित होती हैं, तब बाह्य विषयको ग्रहण करती हैं, मन सहित षट्इंद्रियके संबंधकारि विषयका ग्रहण होता है, इनते रहित विषयको कदाचित नहीं ग्रहण करती,इस प्रकार इनविषे स्थित होकारि जीवकला विषयको ग्रहण करती है, यद्यपि इंद्रियां भिन्न भिन्न हैं, तौ भी इनको एकताकारि लेती हैं, इनका इकट्ठा होना अहंकाररूपी तागेकारि होता है, देह इंद्रियां माणिक्यकी नाई हैं, इनको इकट्ठा कारिकै जीव कहता है, मैं देखता हौं, मैं सूँघता हौं, मैं सुनता हौं, मैं बोलता हौं, इत्यादिक इनके अभिमानकारिकै विषयको ग्रहण करता है. हे रामजी ! देह, इंद्रियां, मन आदिक जड हैं, परंतु आत्माकी सत्ता पाइकारि अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, जबलग पुर्यष्टका देहविषे होती है, तबलग इंद्रियां विषयको ग्रहण करती हैं, जब पुर्यष्टका देहसों निकसि जाती है, तब इंद्रियां विषयको नहीं ग्रहण करतीं. हे रामजी ! यह जो प्रत्यक्ष नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा, त्वचा, भासती हैं, सो यह इंद्रियां नहीं, इंद्रियां सूक्ष्म तन्मात्रा हैं, यह तिनके रहनेके स्थान हैं, जैसे गृहविषे झरोखे होते हैं, तैसे यह स्थान हैं अरु जीवका रूप सुन. हे रामजी ! आत्मतत्त्व सब ठौर पूर्ण है, परंतु तिसका प्रतिबिंब तहां भासता है, जहां निर्मल ठौर होती है. जैसे जल निर्मलविषे प्रतिबिंब होता है अरु जैसे दो कुण्डे होवैं; एक जलकारि पूर्ण होवै, दूसरा जलते रहित होवै, तब सूर्यका प्रकाश दोनोंविषे तुल्य होता है, परंतु जिसविषे जल है, प्रतिबिंब तहां ही होता है, जलके डोलनेकारि प्रतिबिंब भी हलता दृष्टि आता है, जहां जल नहीं तहां प्रतिबिंब भी नहीं, तैसे जहां सात्त्विक अंश अंतःकरण होता है, तहां आत्माका प्रतिबिंब जीव भी होता है, सो जबलग शरीरविषे होता है, तबलग शरीर चेतन भासता है, जब वह जीवकला पुर्यष्टकारूप शरीरको त्यागि जाती है, तब शरीर जड भासता है, जैसे कुण्डेते जल निकसि जावै, तब कुण्ड सूर्यके प्रतिबिंबते हीन भासता है, तैसे अंतःकरण अरु तन्मात्रा पुर्यष्टकाविषे

आत्माका प्रतिबिंब होता है, जब पुर्यष्टका शरीरको त्यागि जाती है, तब शरीर जड़ भासता है. हे रामजी ! जैसे झरोखे आगे कोऊ पदार्थ राखिये तब झरोखेको पदार्थका ज्ञान नहीं होता, जब उसका स्वामी आनि देखता है, तब पदार्थको ग्रहण करता है, तैसे इंद्रियोंके स्थानविषे सूक्ष्म तन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होती है, तब विषयको ग्रहण करती है, जब तन्मात्रा नहीं होती, तब इंद्रियां नहीं ग्रहण कर सकतीं. हे रामजी ! प्रत्यक्ष देख, जो कोऊ कथाका श्रोता पुरुष कथाविषे बैठा होता है अरु चित्त उसका अपर ठौर निकस जाता है, तब प्रत्यक्ष बैठा है, परंतु सुनता कछु नहीं. काहेते कि, श्रवण इंद्रिय मनके साथ गयी है, जैसे जब पुर्यष्टका निकसि जाती है, तब मृतक होता है, इंद्रियां विषयको ग्रहण नहीं करतीं. हे रामजी ! अहंममसे आदि लेकरि जो दृश्य सो भी है, स्वर्गके आदिविषे आत्मरूपी समुद्रते तरंगवत् फुरी है, तिसकरि आगे दृश्य कलना हुई है, सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, यह सब असतरूप है, वास्तवते कछु नहीं, ऐसे जानिकरि असंग विचरु, संसारके सुखदुःख हर्षशोक रागद्वेषते रहित होकरि विचरु, तब तू मायाको तरि जावैगा.

इति श्रीयोवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेऽक्षसंवेदनविचारवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमः सर्गः ५१.

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! वास्तवते इंद्रियादिक गण कछु उपजे नहीं, जैसे आदि कमलजन्य ब्रह्माकी उत्पत्ति मैं तुझको कही है, सो सब तुझने सुनी है, जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है, तैसे अपर भी उपजे हैं. हे रामजी ! जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी जैसी भावना करता गया है, तैसे तैसे भासने लगा है, बहुरि तिसकी सत्ता पायकरि अपने अपने विषयको ग्रहण करने लगे हैं अरु वास्तवतें इंद्रियां भी कछु वस्तु नहीं, सब आत्माके आभासकरि फुरतीं हैं, इंद्रियां

अरु इंद्रियके अर्थ यह संवेदनते उपजे हैं, जैसे उपजे हैं, तैसे तुझको कहे हैं. हे रामजी ! शुद्ध संवित् सत्तामात्रविषे जो अहम् उल्लेख हुआ है, सो संवेदन हुई है, वही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टकाभावको प्राप्त होकरि बुद्धि मन अरु पंचतन्मात्राको उपजायकरि जीवकला आप ही तिनविषे प्रवेशकरि स्थित भयी है, तिसको पुर्यष्टका कहते हैं, परंतु यह उपजी भी स्पंदविषे है; आत्माविषे उपजना कछु नहीं, सो आत्मा न एक है, न अनेक हैं, परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है अरु वेदना भी तिसविषे अनन्यरूप है. हे रामजी ! तिसविषे न कोऊ द्वैतकलना है, न कछु मन शक्ति है, केवल शांतसत्ता है, तिसको परमात्मा कहते हैं, सो मनसहित षट्इंद्रियोंते अतीत है, अचेतन चिन्मात्र है, तिसते जीव उत्पन्न हुआ है, यह भी उपदेशके निमित्त कहता हौं, वास्तवते कछु उपजा नहीं, केवल भ्रममात्र है, जहां जीव उपजा है, तहां तिसको अहं-भाव विपर्यय हुआ है, यही अविद्या है, सो उपदेशकरि उपदेशको पाये लीन हो जाती है, जैसे निर्मलकरि जलकी मलिनता लीन हो जाती है, तैसे गुरु अरु शास्त्र उपदेशको पायकरि अविद्या लीन हो जाती है, तब भ्रमरूप आकार शांत हो जाते हैं, ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे परमाणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तैसे आत्माके आगे आकाश स्थूल है. हे रामजी ! आत्माके आगे जो स्थूलता भासती है, सो भ्रममात्र है, जो बडे उदार आरंभ भासते हैं, सो असत् हैं, तब अपर पदार्थकी क्या बात है ? हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु नहीं पाया जाता. काहेते कि, जो वस्तु अस-म्यक् ज्ञानकरिकै भासती है, सो सम्यक् ज्ञानकरि नहीं पायी जाती, जेते कछु जगज्जाल भासते हैं, सो सब मायामात्र हैं, अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे मृगतृष्णाका जल तनक पान किया नहीं जाता, तैसे जगत्के पदार्थकरि कछु परमार्थ सिद्ध नहीं होता, सब अज्ञानकरिकै भासते हैं. हे रामजी ! जो वस्तु सम्यक् ज्ञानकरि पाइये सो सत् जानिये, जो सम्यक् ज्ञानकरि न रहै, सो भ्रममात्र जानिये यह जीव पुर्य-ष्टका अविद्धक भ्रम है, असत् ही सत् हो भासता है. जब गुरु अरु

शास्त्रोंका विचार होता है. तब जगद्भ्रम मिटि जाता है अरु पुर्यष्टका-विषे स्थित होकरि जैसी भावना करता है, तैसी सिद्ध होती है, जैसे बालक अपने परछाईविषे वैताल कल्पता है; तैसे जीवकला अपने आपविषे देश काल तत्त्व आदिक कल्पती है, भावनाके अनुसार तिसको भासते हैं, जैसे बीजते पत्र टास फूल फलादिक विस्तार होता है, तैसे तन्मात्राते अपर भूतजात सब अंतर बाहर देश काल क्रिया कर्म हुआ है, आदि जीव फुरिकरि जैसा संकल्प धारता भया है, तैसे हो भासा है, सो यह संवेदन भी आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे मिर्च अरु तीक्ष्णता अनन्यरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता अनन्यरूप है, तैसे आत्माविषे संवेदन अनन्यरूप है, तिस संवेदनने उपजिकरि निश्चय धारा कि,यह पदार्थ ऐसे हैं,यह ऐसे होवैं हो, तैसे ही स्थित हैं, अन्यथा कदाचित् नहीं होते, आदि जीव फुरिकारि जैसा निश्चय धारा है,तिसीका नाम नीति है अरु स्वरूपते सर्व आत्मसत्ता है,आत्मसत्ता ही रूप धारि-करि स्थित भयी है,जैसे एक ही गन्नेका रस शक्कर खंडादिक आकारको पाता है, जैसे एक मृत्तिका घट मठ टिंडादिक आकारको धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व ज्ञानको पाती है, जैसे एक ही जलका रस पत्र टास फूल फलादिक होकरि भासता है, तैसे एक ही आत्मसत्ता घट पट कंध आदिक आकार हो भासती है. हे रामजी ! जैसे आदि जीव निश्चय किया है, तैसे ही स्थित है; अन्यथा कदाचित् नहीं होता, परंतु जगत् कालविषे ऐसे है वास्तवते न बिंब है, न प्रतिबिंब है, यह द्वैत-विषे होते हैं, सो द्वैत कछु नहीं, केवल चिदानंद ब्रह्म आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, देहादिक भी सब चिन्मात्र हैं. हे रामजी ! जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्माका अकिंचनरूप है, जैसे जेवरी सर्प-रूप भासती है, तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है,जैसे स्वर्ण भूषण हो भासता है, तैसे आत्मा दृश्यरूप हो भासता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे दृश्य वास्तव नहीं, जैसे स्वप्न में पतन असत् ही सत् हो भासता है, तैसे जीवको देह अपर भासता है. हे रामजी ! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, परंतु फुरणेकरि अनेकरूप धारती

है. जैसे एक नटवा अनेक स्वांग धरता है, तैसे आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकारको धारती है, जैसे स्वप्नविषे एक ही अनेकरूपधारी चेष्टा करता है, तैसे जगत्‌विषे नानारूपको धारता है. हे रामजी ! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वका अपना आप है, अपने स्वरूपके प्रमादकरि आपकरि आपका जन्ममरण जानता है, सो जन्ममरण असत्‌रूप है, जैसे कोऊ पुरुष आपको स्वप्नविषे श्वानरूप देखै, तैसे यह आपको जन्मता मरता देखता है, जैसे जैसे इसको पूर्व भावना है, भ्रमकरिकै असत्‌को सत् जानता है, जैसे स्वप्नविषे वस्तुको अवस्तु अरु अवस्तुको वस्तु देखता है, तैसे जाग्रतविषे विपर्यय देखता है, जैसे जाग्रत्‌के ज्ञानते स्वप्न-भ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मा अधिष्ठानके ज्ञानते जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म किया होवै अरु तिसके पाछे सुकृत कर्म करै, तब वह आच्छादित हो जाता है, तैसे पूर्व संस्कार जब नीच वासना होती है अरु पाछे आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब पुरुष-प्रयत्न करिकै मलिन वासना नष्ट हो जाती है, जबलग वासना मलिन होती है, तबलग उपजता विनशता गोता खाता है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारबंधनते छूटता है, अन्यथा नहीं छूटता. हे रामजी ! चित्त वासनारूपी कलंककरि जीव आवरा है, देहरूपी मंदिरविषे बैठकरि अनेकभ्रमको देखता है, भ्रम-आदिक जीवको फुरा है, सो अपने स्वरूपको त्यागिकरि अनात्मभ्रमको देखता भया है जैसे बालक परछाईंविषे भूत कल्पै, तैसे कल्पिकरि जैसी भावना करी, तैसा भासने लगा, आदि जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित हुआ है, पुर्यष्टका कहिये बुद्धि मन अहंकार अरु तन्मात्रा इनका नाम पुर्यष्टका है अरु अंतवाहक देह है, चैतन्य आत्मा अमूर्त है, आकाश भी तिसके निकट स्थूल है, प्राण वायु गुच्छेके समान है, देह सुमेरुके समान है ऐसा सूक्ष्म जीव है, सुषुप्ति जडरूप अरु स्वप्नभ्रम दोनों अवस्थाविषे स्थावर जंगमरूपी जीव भटकते हैं, कबहूं सुषुप्तिविषे स्थित होते हैं, कबहूं स्वप्नविषे स्थित होते हैं, इस प्रकार दोनों अवस्थाविषे जीव भटकते हैं. हे रामजी ! सर्वका देह अंतवाहक है,

तिसी देहकरि चेष्टा करते हैं, कबहूं स्थावरविषे जाते हैं, तब वृक्ष पत्थरादिक योनिको पाते हैं, जब स्वप्नविषे होते हैं, तब जंगम योनिको पाते हैं, सो भी कर्मवासनाके अनुसार पाते हैं, जब तामसी वासना घन होती है तब कल्पवृक्ष चिंतामण्यादिक स्वरूपको प्राप्त होते हैं, जब केवल तामसी घन मोहरूप होती है तब अपर वृक्ष पत्थरादिक योनिको पाते हैं इसका नाम सुषुप्ति है, सो लयघन मोहरूप है अरु इसते इतर विक्षेपरूप स्वप्न अवस्था है, कबहूं तिसविषे होता है, कबहूं सुषुप्तिरूप स्थावर होता है. हे रामजी ! सुषुप्ति अवस्थाविषे वासना सुषुप्तिरूप होती है, सो बहुरि उगती है, इसकरिकै मोहरूप है अरु तिस सुषुप्तिते जब उतरता है, तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है, जब बोध होवै, तब जाग्रत् अवस्थाको पावै, सो जाग्रत् दो प्रकारकी है, सोई जाग्रत् है, जो लय अरु विक्षेपताते रहित चेतन अवस्था है, तिसते रहित अपर मनोराज्य सब स्वप्नरूप है, एक जीवन्मुक्ति जाग्रत् है, दूसरी विदेहमुक्ति है, जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है, विदेहमुक्ति तुरीयातीत है, यह अवस्था जीवको बोधकरि प्राप्त होती है अरु बोध पुरुषप्रयत्नकरि होता है, अन्यथा नहीं होता. हे रामजी ! जीवका फुरणा ज्ञानरूप है, जब दृश्यकी ओर लगता है, तब वहीरूप हो जाता है अरु जो सत्की ओर लगता है, तब सतरूप हो जाता है, जब दृश्यके सन्मुख होता है, तब दीर्घ भ्रमको देखता है, जीवके अंतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है, सो भी आत्मसत्ताते इतर कछु वस्तु नहीं, जैसे बटलोहीविषे दाणेवत् जल उछलता है, सो जलते इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे आत्माविना जीवके अंतर कछु अपर वस्तु नहीं, अपर सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है. हे रामजी ! जीवको स्वरूपके प्रमादकरिकै सृष्टि भासती है, जो सत्वत् हो गयी है, तिसकरि नाना प्रकारका विश्व भासता है अरु नाना प्रकारकी वासना फुरती है, तिसकरि बंधमान हुआ है, जब वासना क्षय होवै, तब मुक्तिरूप है. हे रामजी! घनवासना मोहरूपका नाम सुषुप्ति जड अवस्था है अरु क्षीण स्वप्नरूप है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब दृश्यविषे सद्बुद्धि होती है, तिसविषे प्रतीति होती है, तब नाना प्रकारकी

वासना उदय होती है अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है,तब संसारसत्यता नाश हो जाती है,बहुरि वासना नहीं फुरती. हे रामजी ! घनवासना तबलग फुरती है, जबलग दृश्यकी सद्बुद्धि होती है, जब जगत्का अत्यंत अभाव हुआ, तब वासना भी नहीं रहती, जैसे भूषण गालिकरि स्वर्ण किया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, जो अज्ञानकरि वस्तु उपजी है, सो ज्ञानकरि लीन हो जाती है, सो वासनाभ्रम अबोधकरि उपजा है, बोधते लीन हो जाती है. हे रामजी ! घनवासनाकरि सुषुप्ति जड अवस्था होती है अरु तनु वासनाकरि स्वप्न देखता है, घन वासना मोहकरि जीव स्थावर अवस्थाको प्राप्त होता है अरु मध्य वासनाकरि तिर्यक् योनि पशु पक्षी सर्पादिकको प्राप्त होता है अरु तनु वासनाकरि मनुष्यादिक शरीरको पाता है अरु नष्ट वासनाकरि मोक्षको पाता है. हे रामजी ! यह जगत् सब संकल्पकरि रचा है, जो बाह्य घट पट आदि देखता है अरु ग्रहण करता है, सो एक अंतर देहविषे स्थित होकरि वही बाह्य घट पट आदिक होकरि स्थित होता है, तिनको ग्रहण करता है, ग्राह्यग्राहकका संबंध देखता है, यह मैं ग्रहण किया है, यह मैं लिया है अरु जो ज्ञानवान् है, सो न ग्रहण करनेका अभिमान करता है, न कछु त्यागनेका अभिमान करता है, तिसको अंतर बाहर सब चिदाकाश भासता है, चेतनसत्ता यह चमत्कार है, तीनों जगत्रूप होकरि वही प्रकाशता है, रंचकमात्र भी कछु अन्य नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होकरि भासते हैं, परंतु जल ही जल है, जलते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जगत्रूप होकरि भासता है, अपर द्वैतवस्तु कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे यथार्थोपदेशवर्णनं नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

नारायणावतारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिस जीवको स्वप्नविषे संसार उदय होता है, सो कल्पनामात्र होता है, न सत् है न असत् है, जीवको एक फुरणेकरि भ्रम भासता है, तैसे यह जाग्रत् अवस्था भ्रममात्र है, स्वप्न अरु जाग्रत् एकरूप है, जैसे स्वप्नविषे जाग्रत्का एक क्षण भी दीर्घकाल होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जाग्रत् भी दीर्घकाल भ्रम हुआ है, सत्को असत् जानता है अरु असत्को सत् जानता है, जडको चेतन जानता है अरु चेतनको जड जानता है, विपर्यय ज्ञानकरिके इस प्रकार जानता है, जैसे स्वप्नविषे एक ही जीव अनेकताको प्राप्त होता है, तैसे जीव आदिक एकते अनेक होकरि भासता है, जैसे स्थाणुविषे चोरभ्रम भासता है, तैसे आत्माविषे तीनों जगद्भ्रम भासते हैं, जैसे सुषुप्तिते स्वप्नभ्रम उदय होता है, तैसे अद्वैततत्त्व आत्माविषे जगद्भ्रम होता है, आत्मा अनंत सर्वगत है, जीवका बीजरूप है, जैसा तिसके आश्रय फुरणा होता है, तैसा सिद्ध होकरि भासता है. हे रामजी! जिन पुरुषोंको स्वरूपकी स्थिति भयी है, सो सदा निःसंग होकरि विचरते हैं, जैसे पुंडरीकाक्ष विष्णुजी निःसंगता उपदेश करैगा, तिसको पायकरि अर्जुन मुक्त होकरि विचरैगा, तैसे हे महाबाहो! तुम भी विचरो. हे रामजी! पांडवका पुत्र अर्जुन नाम जैसे सुखसाथ जीवना व्यतीत करैगा, सर्व व्यवहारविषे भी सुखी स्वस्थ रहैगा, तैसे तू भी निःसंग होकरि विचरु. राम उवाच–हे ब्राह्मण! पांडवका पुत्र अर्जुन कब होवैगा अरु कैसे विष्णुजी तिसको निःसंग उपदेश करैगा? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! अस्ति तन्मात्र जो तत्त्व है, जिसविषे आत्मादि संज्ञा कल्पिकरि कही है, सो आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, आदि अंतते रहित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे निर्मल तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भ्रममात्र फुरता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण फुरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं,

तैसे आत्माविषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात फुरते हैं, इस संसारजालविषे भूतप्राणी भ्रमते हैं, जैसे पक्षी जालविषे भ्रमते हैं, तैसे जगतविषे जीव भ्रमते है, चंद्रमा सूर्य लोकपाल होकरि स्थित हैं, पंच भूतका कर्म तिनने रचा है, कि यह पुण्य ग्रहण करने योग्य है, यह पाप त्यागने योग्य है, पुण्यकरि स्वर्गादिक सुख प्राप्त होता है, पापकरि नरक प्राप्त होता है, यह मर्यादा लोकपालने स्थापन करी है, इस प्रकार संसाररूपी नदीविषे बहते हैं, कैसी संसाररूपी नदी वहती है, अविच्छिन्नरूप भासती है अरु नाशरूप क्षणक्षणविषे नष्ट होती है. जैसे नदीका वेग समान प्रवाहकरिकै वही भासता है, परंतु होता अपर है, क्षणक्षणविषे वह प्रथम जाता रहता है, तैसे संसार अपने कालविषे अविच्छिन्नरूप सत भासता है अरु आत्माकी अपेक्षाकरिकै नाशरूप है, क्षणक्षणविषे नष्ट होता है, तिस जगत्‌विषे वैवस्वत सूर्यका पुत्र यमराज लोकपाल बडा प्रतापवान् स्थित है, सो बड़ा तेजवान् है अरु सब जीवको मारता है, ऐसे नेमको धारिकरि प्रजाविषे स्थित है आदि प्रवाह इस प्रकार हुआ है, तिस प्रति प्रवाह कार्यके कर्मविषे स्थित है, जीवको मारना अरु दंड करना यही उसका नेम है अरु चित्तविषे पहाडकी नाईं स्थित है, सो यमराज चारों चारों युगनप्रति एक नेमको धारता है, कि किसी जीवको मारना नहीं, कबहूँ अष्टवर्ष, कबहूँ बारह वर्षका नेम धारता है, कबहूँ सप्तवर्ष, कबहूँ षोडशवर्षका नेम धारता है, तब उदासीनकी नाईं स्थित होता है, किसीको नहीं मारता, तब पृथ्वीविषे निरंध्रभूत हो जाता है, चलनेको मार्ग नहीं रहता, तब कई दुष्ट जीव होते हैं, जो जीवको दुःख देते हैं, तिसकरि पृथ्वी भारी होती है अरु दुःखी होती है, तिस पृथ्वीके भार उतारने निमित्त विष्णुजी अवतार धारिकरि दुष्ट जीवको नाश करता है अरु धर्ममार्गको दृढ़ करता है. हे रामजी! इस प्रकार नेमको धारणेहारे यमको अनंत युग अपने व्यवहारको करते व्यतीत हो गये हैं, भूत अरु जगत् अनेक हो गये हैं, इस सृष्टिका जो अब वैवस्वत यम है, सो आगे नेम करैगा, द्वादश

वर्षपर्यंत किसीको न मारैगा ऐसा नेम करैगा, तब जीव क्रूर कर्मोंको करने लगेंगे, पृथ्वी भूतोंसाथ निरंध्र हो जावैगी, जैसे वृक्षसाथ गुच्छे संघट्ट हो जाते हैं, तैसे पृथ्वी प्राणीसाथ संघट्ट हो जावैगी, तब पृथ्वी भारसाथ दुःखित होकरि विष्णुजीकी शरण जावैगी, जैसे चोरते डरिकरि स्त्री भर्ताकी शरण जावै, तैसे पृथ्वी विष्णुकी शरण जावैगी, तब विष्णु दो देहको धारिकरि पृथ्वीका भार उतारैगा अरु सन्मार्ग स्थापन करैगा अरु सब देवता अवतार धारिकरि साथ आवैंगे, नरोंविषे नायकभावको प्राप्त होवैगा, एक देहकरि वसुदेवके गृहविषे पुत्ररूप कृष्ण नाम होवैगा अरु दूसरि देहकरि पांडवके गृह अर्जुन नाम होवैगा, युधिष्ठिर नाम धर्मका पुत्र होवैगा, समुद्र जिसकी मेखला है, ऐसी जो पृथ्वी है, तिसका राज्य करैगा, पांडवका पुत्र धर्मका वेत्ता तिसके चाचेका पुत्र दुर्योधन नाम होवैगा, तिसका अरु भीमका बडा युद्ध होवैगा, दोनों ओर संग्रामकी लालसा होवैगी, अठारह अक्षौहिणी सैन्य इकट्ठा होवैगा, तिसविषे बड़ा भयानक युद्ध होवैगा, तिनके बलकरि हरि पृथ्वीका भार उतारैगा. हे रामजी! तिस सैन्यके युद्धविषे विष्णुका जो अर्जुन नाम देह होवैगा, सो गांडीव धनुष धारैगा, सो प्रकृत स्वभावविषे स्थित होवैगा; हर्ष-शोकादिक विकारसंयुक्त निर्धर्मा होवैगा, सो युद्धविषे अपने बांधव संबंधी-को देखकरि मूर्च्छित होवैगा, मोह कायरताकरि तिसके हाथते धनुष गिर पडैगा अरु आतुर होवैगा, तब बोध देहकरि तिसको हरि उपदेश करैगा, दोनों सैन्यके मध्यविषे जब अर्जुन मोहित होकरि गिरैगा, तब हरि कहैगा, हे राजसिंह अर्जुन! तू मनुष्यभावको क्यों प्राप्त हुआ है अरु मोहित क्यों हुआ है? इस कायरताका त्याग करु, तू परम प्रकाश आत्म-तत्त्व है, सर्वका आत्मा तू आनंद अविनाशी है, आदि अंत मध्यते रहित है, वृथा कायरताको प्राप्त क्यों हुआ है, सर्वव्यापी परम अंकुररूप है अरु निर्मल है, दुःखके स्पर्शते रहित है, नित्य शुद्ध निरामय है. हे अर्जुन! आत्मा न जन्मता है, न मरता है, होयकरि बहुरि कछु अपर

नहीं होता, काहेते जो अज है,नित्य है, निरंतर पुरातन है सर्वकी आदि है, तिसका शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे नारायणावतारवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

अर्जुनोपदेशवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! जो इस आत्माको हंता मानते हैं, कहैं हननक्रियाका कर्त्ता है अरु इस आत्माको हत होता मानते हैं, सो आत्माको नहीं जानते, न यह आत्मा मारता है, न मरता है, काहेते मारता मरता नहीं, जो अक्षयरूप है अरु निराकार आकाशते भी सूक्ष्म है,तिस आत्मा परमेश्वरको कौन किस प्रकार मारै ? हे अर्जुन! तू अहंकाररूप नहीं, इस अनात्म अभिमानरूपी मलका त्याग करु, तू जन्ममरणते रहित मुक्तिरूप है. जिस पुरुषको अनात्मविषे अहंभाव नहीं अरु बुद्धि जिसकी कर्तृत्वभोक्तृत्वविषे लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष सब विश्वको मारै तौ भी उनको नहीं मारता, न बंधमान होता है. हे अर्जुन ! जिसको जैसा दृढ निश्चय होता है, तैसा ही तिसको अनुभव होता है, ताते यह मैं मेरा जो मलिन संवित्‌निश्चय होता है, तिसका त्यागकरि स्वरूपविषे स्थित होउ, जो ऐसी भावनाविषे स्थित नहीं होते अरु आपको नष्ट होता मानते हैं, सो सुखदुःखकरिकै रागद्वेषविषे जलते हैं. हे अर्जुन ! अपने गुणोंके असंख्य कर्मोंविषे वर्तते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनते पांचों तत्त्वते आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी उपजे हैं, तिन भूतोंके अंश श्रवण त्वचा नेत्र जिह्वा नासिका विषयविषे स्थित हैं, वह अपने विषयको ग्रहण करते हैं, नेत्र रूपको ग्रहण करते हैं, त्वचा स्पर्शको, जिह्वा रसको, नासिका गंधको, श्रवण शब्दको ग्रहण करते हैं, तिसविषे अहंकारकरि जो मूढ हुआ है, सो आपको कर्त्ता मानता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, स्पर्श करता

हौं, स्वाद लेता हौं, गंध लेता हौं. हे अर्जुन! यह सब कर्म कलना-करिकै रचे हैं, सो इंद्रियकरि कर्म होते हैं, अहंभावकरि यह वृथा क्लेशका भागी होता है, बहुत मिलिकरि कर्म किया अरु तिसविषे एक ही अभिमानी होकरि दुःख पाता है, सो बडा आश्चर्य है, देह इंद्रियकरि कर्म होते हैं अरु अभिमानी होकरि सुखदुःखविषे रागद्वेष होकरि जीव जलता है, ताते इनका संग अभिमान त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ, मनकरि बुद्धिकरि केवल इंद्रियोंकरि योगी कर्म करता है अरु तिनविषे अभिमानवृत्ति नहीं करता, निःसंग होकरि करता है, तिसकी आत्मपदकी सिद्धताका कारण होते हैं. हे अर्जुन! इस जीवको अहंकार ही दुःखदायक है, अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, तिस अभिमानसहित जो कछु कर्म करता है, सो सब दुःखदायक होते हैं अरु जो अभिमानरूपी विषके चूर्णते रहित होकरि चेष्टा करता है, लेता है, देता है, सो दुःखका कारण नहीं होता, सदा सुखरूप है. हे अर्जुन! सुंदर शरीर होवै अरु विष्ठा मलसाथ मलिन किया होवै, तब तिसकी शोभा जाती रहती है, तैसे बुद्धिमान् भी होवै अरु शास्त्रका वेत्ता होवै, इत्यादिक गुणोंकरि संपन्न होवै अरु अनात्मविषे आत्माभिमान होवै, तिसकी शोभा जाती रहती है अरु जो निर्मम निरहंकार अरु सुखदुःखविषे सम है, ऐसा क्षमावान् है, सो शुभ कर्म करै, अथवा अशुभ करै, तिसको किसी कर्मका स्पर्श नहीं होता. हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान् होकरि कर्मको करौ, ताते हे पांडवपुत्र! यह युद्ध कर्म तेरा धर्म है, सो कर, अपना धर्म अति क्रूर भी होवै, परंतु कल्याण करता है अरु पराया धर्म उत्तम भी होवै, तौ भी दुःखदायक है, अपना धर्म अमृतकी नाईं अल्प भी सुखदायक है. हे अर्जुन! भावै तैसा कर्म करु, जब तेरेविषे अहंभाव न होवैगा, तब तुझको स्पर्श न करैगा, संग अभिमानको त्यागिकरि योगविषे स्थित होकरि कर्म करु, जो निःसंग पुरुष है, तिसको कोऊ कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसको करता हुआ बंधमान नहीं होता, ताते ब्रह्मरूप होकरि ब्रह्ममय कर्मको करु, तब शीघ्र ही ब्रह्मरूप हो जावैगा,

जो कछु आचार कर्म होवै, सो ब्रह्मविषे अर्पण करु. हे अर्जुन ! सर्व कर्म ईश्वरविषे समर्पण करु, सो ईश्वर आत्मा है, निर्मल कहिये निर्दुःख कहिये भावनाकरि भावित हुआ ईश्वर आत्मा होकरि पृथ्वीका भूषण होकरि विचरु, संन्यास योगयुक्त होकरि कर्मोंका करता मुक्तरूप होवैगा, सर्व संकल्पते संन्यास सम शांत होकरि विचरु. अर्जुन उवाच–हे भगवन् ! संगत्याग किसको कहते हैं अरु ब्रह्म-अर्पण किसको कहते हैं, ईश्वरार्पण किसको कहते हैं अरु संन्यास किसको कहते हैं अरु योग किसको कहते हैं ? उनको विभाग करिकै मोहके निवृत्ति अर्थ कहो. श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! प्रथम तू ब्रह्म सुन, कि किसको कहते हैं, जहां सर्व संकल्प शांत हैं एक घन-वेदना है, अपर कछु भावनाका उत्थान नहीं, अचेतन चिन्मात्र सत्ता है, तिसको परब्रह्म कहते हैं, ऐसे जानिकर तिसको पानेका उद्यम करना, जिस विचारसाथ तिसको पाइये तिसका नाम ज्ञान है अरु तिस-विषे स्थित होना तिसका नाम योग है अरु यह सर्व ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हौं, सर्व जगत् मैं ही हौं, ब्रह्मते इतर कछु भावना न करनी इसका नाम ब्रह्मार्पण है अरु जो नाना प्रकारका जगत भासता है, सो क्या है, अंतर भी शून्य बाहर भी शून्य जिसको शिलाकी उपमा है, ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है, सो न शून्य है, न शिलावत् है तिसके आश्रय स्पंदकलना फुरेकी नाईं कछु होकरि अन्यवत् भासती है, सो जगत्‌रूप होकरि स्थित भयी है, परंतु कैसी है आकाशकी नाईं शून्य है, तिसविषे जो विभागकलना हुई है, सो कोटि कोटि अंश जीवकला होती गयी है, एक ही अपृथक् अनेकभूत पृथक् पृथक् होकरि स्थित भयी है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे अनेकरूप होकरि स्थित होते हैं सो जल ही है; अपर कछु नहीं, एक ही जल अनेकरूप भासता है, तैसे एक ही वस्तुसत्ता घट पट आदिक आकार होकरि भासती है, संवित्‌सारमें आत्माविषे भेदकलना कछु नहीं अज्ञानकरिकै अनेक-रूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं अरु अनेकभावको एक देखना भी अज्ञान है अरु एकको अनेक देखना भी अज्ञान है, सो एक अनेक

देखना क्या है अरु अनेक एक देखना क्या है, जो एक आत्मा है तिसको अनेक नामरूप देखना, सो अज्ञान है अरु भिन्न भिन्न देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धयादिक अनेक हैं, तिनविषे अहंप्रतीतिकरि एकत्र भाव देखना सो भी अज्ञानकरि यह कलना हुई है अरु ज्ञानकरिकै नष्ट हो जाती है. हे अर्जुन! जेते कछु संकल्पजाल हैं, तिनका त्याग करना इसका नाम असंग संगते रहित कहते हैं अरु सब कलनाजालको ईश्वरसाथ इतर भाव नहीं करना, इस भावनाकरि द्वैतभाव गलित हो जावैगा, इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं. हे अर्जुन! जब ऐसी अभेदभावना होती है, तब आत्मबोध प्राप्त होता है अरु बोधकरि सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं, सर्व शब्दोंका एक ही शब्द भासता है अरु एक ही अर्थ सर्व शब्दोंविषे भासता है. हे अर्जुन! सर्व जगत् मैं हौं, मैं ही दिशा हौं, मैं ही आकाश हौं, मैं ही कर्म हौं, मैं ही काल हौं, द्वैत भी मैं ही हौं, अद्वैत भी मैं हौं, ऐसा जो सर्वात्मा मैं हौं, सो तू मेरेविषे मनको लगाये, मेरी भक्ति करु अरु मेरा ही भजन करु अरु मुझहीको नमस्कार करु, तब तू मुझहीको प्राप्त होवैगा. हे अर्जुन! मैं आत्मा हौं, तू मेरे ही परायण होहु. अर्जुन उवाच-हे देव! ऐसे तेरे दो रूप हैं, एक पररूप है, एक अपररूप है, तिन दोनों रूपविषे मैं किसका आश्रय करौं? जिसकरि मैं परमसिद्धांतको प्राप्त होऊं. श्रीभगवानुवाच-हे अनघ! एक समानरूप है अरु एक परमरूप है, यह जो शंखचक्रगदादिक संयुक्त हैं सो मेरा समानरूप है अरु परमरूप मेरा आदिअंतते रहित एक अनामय है, सो ब्रह्म आत्मा परमात्मा आदिक शब्दोंकरि कहाता है जबलग तू अप्रबोध है, अनात्मा देहादिकविषे तुझको आत्माभिमान है, तब लग मेरे चतुर्भुज आकारकी पूजापरायण होउ अरु कर्मोंको करु, जब प्रबोध होवैगा, तब मेरे परमरूपको प्राप्त होवैगा, आदि अंत मध्यते रहित मेरा रूप है, तिसको पायकरि बहुरि जन्ममरणविषे न आवैगा, जब तू शत्रुको नाश करता हुआ ज्ञानवान् भया, तब आत्माकरि आत्मासों मेरा पूजन करु, मैं सर्वका आत्मा हौं, यह मैं हौं, ऐसे जो मैं कहता हौं, सो आत्मतत्त्व बहुरि बहुरि

कहता हौं. हे अर्जुन ! मैं मानता हौं कि तू अब प्रबुद्ध हुआ है अरु आत्मपदविषे विश्रामवान् हुआ है अरु संकल्पकलनाते रहित मुक्त हुआ है, एक आत्मसत्ताविषे स्थित हुआ है ऐसे योगकरि सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माको देखैगा अरु सर्व भूत आत्माविषे स्थित देखैगा अरु सर्वत्रविषे तुझको समबुद्धि होवैगी, तब स्वरूपविषे तुझको दृढ़ स्थिति होवैगी. हे अर्जुन ! जो सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माको देखता है अरु एकत्वभावकरि भजन करता है, आत्माते इतर जिसको अपर भावना नहीं फुरती, ऐसे एकत्वभावविषे जो स्थित हैं, सो सर्व प्रकार वर्त्तमान भी हैं तौ भी बहुरि जन्म मरणविषे नहीं आते. हे अर्जुन ! जिसविषे सर्व शब्दोंका अर्थ है अरु सर्व शब्दोंविषे जो एक अर्थरूप है, ऐसी जो आत्मसत्ता है, सो न सत् है, न असत् है, सत् असत्ते जो रहित सत्ता है, सो आत्मसत्ता है, सो सर्व लोकके चित्त-विषे प्रकाशरूपकरिकै स्थित है, सो आत्मा है. हे भारत ! जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित होता है अरु जलविषे रस स्थित होता है, तैसे मैं सर्व लोकके अंतर तत्त्वरूप स्थित हौं, सर्व शरीरविषे जो चेतन है, तिस चेतनयुक्त जो सूक्ष्म अनुभवसत्ता है, सो मैं हौं, सर्वगत आत्मा स्थित हौं, जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित है, तैसे सर्व पदार्थके अंतर मैं आत्मा स्थित हौं, जैसे रत्नके अंतर बाहर प्रकाश होता है, तैसे मैं सर्व पदार्थके अंतर बाहर स्थित हौं, जैसे अनेक घटके अंतर बाहर एक ही आकाश स्थित है, तैसे मैं अनेक देहको अंतर बाहर अव्यक्तस्वरूप स्थित हौं. हे अर्जुन ! ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सर्व पदार्थविषे सत्ता समानकरिकै मैं स्थित हौं अरु नित्य अजन्मा हौं, मेरेविषे जो चित्त-संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मसत्ताकी नाईं होत भयी है अरु फुरणेकरिकै जगत्‌रूप हो भासता है, अहंता ममता आदिकको प्राप्त भयी है अरु आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु नहीं. हे अर्जुन ! आत्मा सबका साक्षीरूप है, तिसको जगत्‌का सुखदुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे दर्पण प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, परंतु सबविषे सम है, किसीकरि खेदवान् नहीं होता, तैसे सब पदार्थ अवस्था साक्षीभूत आत्मा है,

परंतु किसीको स्पर्श नहीं करता अरु शरीरके नाशविषे तिसका नाश नहीं होता, जो ऐसे देखता है, सो यथार्थ देखता है. हे अर्जुन! पृथ्वीविषे गंध मैं हौं अरु जलविषे रस मैं हौं, पवनविषे स्पर्श अरु स्पंदशक्ति मैं हौं, अग्निविषे प्रकाशशक्ति, आकाशविषे शब्दशक्ति मैं हौं, अपर तुझको क्या कहौं, कि यह मैं हौं, सर्वात्मा सर्वका आत्मा मैं हौं, मुझते इतर कछु नहीं. हे पांडव! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है, उत्पन्न अरु प्रलय होती दृष्टि आती है, सो मेरेविषे ऐसे है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, जैसे पहाड़ पत्थररूप हैं अरु वृक्ष काष्ठरूप हैं, तरंग जलरूप हैं, तैसे सर्व पदार्थविषे मैं आत्मरूप हौं, जो सर्व भूतोंको आत्माविषे देखता है, सो आत्माको अकर्त्ता देखता है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे नाना आकार यह आत्माविषे भासते हैं. हे अर्जुन! यह नाना प्रकारके पदार्थ ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मते भिन्न कछु नहीं, तब अपर क्या कहिये, भाव विकार क्या कहिये, जगत् द्वैत क्या कहिये, जो वही है, तब वृथा मोहित क्यों होता है? इस प्रकार बुद्धिमान् मुनिकरि समुझसों अंतर भावना निश्चित होकरि जीवन्मुक्त इस लोकविषे समरस चित्त विचरते हैं. हे अर्जुन! तिस पदको तू क्यों नहीं प्राप्त होता, जो पुरुष निर्मान अरु निर्मोह हुए हैं अरु अभिलाषादोष जिनका निवृत्त भया है, सर्व कामनाते रहित हुए हैं, सो अव्यय पदको प्राप्त हुए हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेऽर्जुनोपदेशवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ५४.

अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मप्रतिपादनम्।

श्रीभगवानुवाच- हे महाबाहो! बहुरि मेरे परमवचन सुन, मैं तेरी प्रसन्नताके निमित्त कहता हौं, जो तेरा हितकारी हौं, यह जो उष्ण शीत विषय हैं, सो इन्द्रियको स्पर्श होते हैं अरु आगमापायी हैं, आते

हैं, बहुरि निवृत्त हो जाते हैं, ताते अनित्य हैं, तिनको तू सहि रहु, आत्माको स्पर्श नहीं करते, तू तौ आत्मा है, एक है, आदि अंत मध्यते रहित है, निराकार अखंड पूर्ण है, तुझको शीत उष्ण सुखदुःख खंडित नहीं कर सकते, यह कलनाकारि रचे हुए हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषणका निवास है, तैसे आत्माविषे इनका असत् निवास है. हे भारत! जिसको इंद्रियोंके भोग स्पर्श भ्रमरूप चलायमान नहीं कर सकते अरु सुखदुःख जीवको सम हैं, तिस पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है. हे अर्जुन! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वरूप हैं अरु इंद्रियोंके स्पर्श असत्रूप हैं, सो असत्रूपविषे सत्रूप आत्माको मोह नहीं सकते, यह अल्पमात्र तुच्छ है, कछु वस्तु नहीं अरु बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है, तिसको इनका स्पर्श कैसे होवै, सत्को असत् स्पर्श नहीं करि सकता. जैसे जेवरीविषे सर्प आभास होता है, सो जेवरीको स्पर्श नहीं कर सकता अरु जैसे मूर्तिकी अग्नि कागजको जलाय नहीं सकती अरु जैसे स्वप्नके क्षोभ जाग्रत् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकते, तैसे इंद्रियां अरु तिनके विषय आत्माको स्पर्श नहीं कर सकते. हे अर्जुन! जो सत् है, सो असत् नहीं होता अरु जो असत् है सो सत् नहीं होता, सुखदुःखादिक असत्रूप हैं, कछु है नहीं अरु परमात्मा सत्रूप है, जगत्के सत्वस्तु घटादिक अरु आकाशके असत् फूलादिक तिन दोनोंके त्यागते पाछे जो निष्किंचन महासत्पद है, तिसविषे स्थित होउ. हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, इष्ट सुखकारि हर्षवान् नहीं होता, अनिष्ट दुःखकारि शोकवान् नहीं होता अरु चेतन पाषाणवत् शरीरविषे स्थित होता है. हे साधो! यह चित्त भी जड़ है अरु देह इंद्रियादिक भी जड़ हैं अरु आत्मा चेतन है, इनके साथ मिला हुआ आपको देह क्यों देखता है, चित्त अरु देह भी आपसमें भिन्न भिन्न हैं, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट नहीं होता इनके नष्ट हुए जो आपको नष्ट होता मानता है अरु इनके सुख दुःख साथ सुखी दुःखी होता है सो महामूर्ख है. हे अर्जुन! स्वरूपके प्रमादकरिकै

देहादिकविषे अहं प्रतीति करता है अरु कर्ता भोक्ता आपको मानता है, जब आत्माका बोध होता है, तब आपको अकर्ता अभोक्ता अद्वैत देखता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है अरु जेवरीके बोधकरि सर्पका अभाव होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि देह इंद्रियोंके सुख दुःख भासते हैं अरु आत्मज्ञानकरि सुखदुःखका अभाव हो जाता है. हे अर्जुन ! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है, न कोऊ जन्मता है, न मरता है, यह सत् उपदेश है, प्रबोधकरि ऐसे जानता है, हे अर्जुन ! ब्रह्मरूपी समुद्रविषे तू एक तरंग फुरा है, केताक काल रहिकै बहुरि तिसीविषे लीन हो जावैगा, ताते तेरा स्वरूप निरामय ब्रह्म है, सब जगत् ब्रह्मका स्पंद है, समय पायकरि दृष्टि आता है, ताते मान मद शोक सुख दुःख सब असत्रूप हैं, तू शांतिमान् होहु. हे अर्जुन ! प्रथम तौ तू ब्रह्ममय युद्ध करु, जेती कछु अक्षौहिणी सैन्य है, सो सब अनुभवकरि नाश कर, जो यह द्वैत कछु नहीं, एक ही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है, यह ब्रह्ममय युद्ध कर अरु सुख दुःख लाभ अलाभ अरु जय अजय ब्रह्मयुद्धविषे इनको एकता करु, जो कछु ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत जगत् भासता है, सो सब ब्रह्म ही है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ऐसे जानिकै लाभ अलाभविषे सम होकरि स्थित होउ, अपर चिंतवना कछु न करु. हे अर्जुन ! जड़ शरीरसाथ कर्म स्वाभाविक होते हैं, जैसे वायुका फुरणा स्वाभाविक होता है, तैसे शरीरकरि कर्म स्वाभाविक होते हैं. हे अर्जुन ! जो कछु कार्य करै अरु भोजन करै, जो कछु यजन करै, दान करै, सो आत्माहीविषे अर्पण कर अरु सदा आत्मसत्ताविषे स्थित रहु अरु सबको आत्मरूप देख. हे अर्जुन ! जो किसीके अंतर दृढ निश्चय होता है, सोई रूप उसको भासता है, जब तू इस प्रकार अभ्यास करैगा, तब ब्रह्मरूप हो जावैगा, इसविषे संशय कछु नहीं. हे अर्जुन ! कर्मोंविषे जो आत्माको अकर्ता देखता है अरु अकर्ता जो है, अकरणा अभिमान सहित तिसको करता देखता है, सो मनुष्यविषे बुद्धिमान् है अरु सम्पूर्ण कर्मोंका कर्त्ता भी है, कर्तव्य कछु न रहै यह अर्थ है. हे अर्जुन ! कर्मोंके फलकी इच्छा भी न होवै अरु कर्मोंविषे विरसता भी

न होवै, जो मैं न करौं, योगविषे स्थित होकरि कर्मको कर. हे धनञ्जय ! कर्तृत्व अभिमान अरु फलकी वांछाको त्यागिकरि कर्म करु; जो कर्मोंके फल अरु संगको त्यागिकरि नित्य तृप्त हुआ है, सो कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता, कार्य अकार्यको कर्ता भी नहीं करता. हे अर्जुन ! जिसने सर्व आरंभोंविषे कामनासंकल्पका त्याग किया है, ज्ञान अग्निकरि कर्म जलाये हैं, तिसको बुद्धिमान् पंडित कहते हैं, जो सम आत्माविषे स्थित है, सर्व अर्थविषे निस्पृह है, निर्द्वंद्व सत्तास्थित यथाप्राप्त वर्तता है, सो पृथ्वीका भूषण है, समुद्रकी नाईं अचल है अरु अपने आपविषे तृप्त है, जैसे समुद्रविषे अनिच्छित जल प्रवेश करता है, तैसे ज्ञानवान्‌विषे सुख प्रवेश करते हैं, सो शांतरूप सब कामनाते रहित है,

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेऽर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मप्रतिपादनवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

जीवतत्त्वनिर्णयवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच-हे अर्जुन ! तू आत्मा है, सो कैसा आत्मा है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, अविनाशी है अरु अजर है, अजर कहिये परिणामते रहित है. हे अर्जुन ! तू शोक मत कर, यह जो तुझको जगत् भासता है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, अज्ञान कहिये अपना प्रमाद अरु प्रमाद कहिये अनात्मविषे आत्माभिमान, इसका नाम अज्ञान है. हे अर्जुन ! यह जो संसाररूप तेरा देह है, इसविषे अभिमान मत कर, यह मिथ्या है, इसकरि दुःख होता है अरु तू असंग है, अविनाशी है, तेरा नाश कदाचित् नहीं होता. हे अर्जुन ! जो विनाशरूप है, तिसका होना कदाचित् नहीं अरु जो सत्य है, तिसका अभाव होना कदाचित् नहीं, तत्त्ववेत्ताने इन दोनोंका निर्णय किया है. हे अर्जुन ! तिसको तू अविनाशी जान, जिसकरि यह सर्व प्रकाशता है, तिसके विनाश करनेको कोई समर्थ नहीं. हे अर्जुन !

सो तू ऐसा है अरु यह आत्मा सर्वका अपना आप है, तिसका विनाश कैसे होवै ? अरु अज्ञानी मनुष्य तिसका विनाश होना मानते हैं. अर्जुन उवाच–हे भगवन् ! तुम कहते हो, आत्मा अविनाशी है अरु सबका अपना आप है, तब उसका क्यों करि नाश होता है ? श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! तू सत्य कहता है, परमार्थते किसीका नाश नहीं होता परंतु अज्ञानकरिकै उनका नाश होता है, तिनको मृत्यु ग्रासि लेता है. हे अर्जुन ! तू आत्मवेत्ता होउ, सो आत्मा एक है अरु अद्वैत है, जिसविषे एक कहना भी नहीं संभवता, तब द्वैत कहां होवै. अर्जुन उवाच–हे भगवन् ! तुम कहते हो आत्मा एक है, तब मृत्यु भी द्वितीय न भया अरु लोक मरते हैं, मरिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं, जब मृत्यु नहीं, तब लोक क्यों मरते हैं अरु पाप पुण्य क्यों भोगते हैं. श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! न कोऊ मरता है, न जन्मता है, यह स्वप्नकी नाईं मिथ्या कल्पना है; जैसे निद्रादोषकरि जन्म अरु मरण भासता है,तैसे संसारविषे यह जन्म मरण भासता है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, अज्ञान नाम फुरणेका है तिस फुरणेहीकरि नरक अरु स्वर्ग कल्पा है. हे अर्जुन ! जैसे यह जीव भोगता है, सो तू श्रवण कर. अपने स्वरूपके प्रमाद होनेकरि आगे संकल्पके शरीर रचे हैं, पुर्यष्टका कहिये सो क्या है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि अहंकार तिसविषे जीव प्रवेश करता है, तिससाथ मिलिकरि जैसी वासना करता है, तैसी ही आगे भोगता है,वासना तीन प्रकारकी है, एक सात्त्विकी, एक राजसी, एक तामसी है, जैसी वासना होती है, तैसा स्वर्ग नरक बनजाता है,सात्त्विकी वासनाते स्वर्ग बन जाता है, इतरते नरकादिक बन जाते हैं; स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र है, वास्तवते न कोऊ स्वर्ग है, न कोऊ नरक है, न कोऊ मरता है, न जन्मता है केवल एक आत्मा ही ज्योंका त्यों स्थित है, परंतु यह जगत्भास भ्रमकरिकै भासता है, अज्ञानकरिकै चिरकाल वासनाका अभ्यास किया है, तिसकरि भ्रमको देखता है. अर्जुन उवाच–हे जगत्के पति ! नरकस्वर्गादिक योनिको जगत्विषे यह जीव देखता है, तिस नाना प्रकारके देखनेविषे कारण कौन है ? श्रीभगवानुवाच–हे

अर्जुन ! अज्ञानकरिकै जो अनात्मविषे आत्माभिमान हुआ है, तिसकरि जगत्को सत् जानने लगा है, सत् जानिकरि वासना करने लगा है, बहुरि जैसे जैसे जगत्को सत् जानिकरि वासना करता है, तैसे जगत्भ्रमको देखता है; जब इसको आत्मविचार उपजता है, तब जगत्को स्वप्नकी नाई देखता है अरु वासना भी क्षय हो जाती है, जब वासना क्षय होती है, तब कल्याणको प्राप्त होता है. अर्जुन उवाच– हे भगवन् ! चिर अभ्यासकरि जो जो संसारभ्रम दृढ रहा है, सो किस प्रकार उपजता है अरु किस प्रकार लीन होवैगा ? श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! मूर्खता अज्ञानताकरिकै जो अनात्म देहादिकविषे आत्मभावना होती है, तिसकरि जगत्को सत् जानि वासना करता है, तिस वासनाके अनुसार जगद्भ्रमको देखता है, जब स्वरूपका अभ्यास करता है, तब वासना नष्ट हो जाती है. ताते हे अर्जुन ! तू स्वरूपका अभ्यास कर, अहं मम आदिक वासनाको त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु. हे अर्जुन ! यह देह वासनारूप है, जब वासना निवृत्त होवैगी, तब देह भी लीन हो जावैगा, जब देह लीन भया, तब देश काल क्रिया जन्म मरण भी न रहेंगे, यह अपने ही संकल्पकरि उठे हैं; भ्रमरूप हैं, तिनकी वासनाकरि वेष्टित हुआ जीव भटकता है, जब आत्मबोध होता है, तब वासनाते मुक्त होता है, निरालंब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्वको पाता है, तिसीको मोक्ष कहते हैं, जिसकी वासना क्षय हुई है. हे अर्जुन ! जब जीवको तत्त्वबोध होता है, तब वासनारूपी जालते मुक्त होता है, जो वासनाते मुक्त हुआ सो मुक्त हुआ जो पुरुष सर्व धर्मपरायण भी है अरु सर्वज्ञ है, शास्त्रोंका वेत्ता भी है, परंतु वासनाते मुक्त नहीं हुआ, सो सर्व ओरते बद्ध है, जैसे दृष्टिके दोषकरि निर्मल आकाशविषे तरुवरे मोरके पुच्छवत् भासते हैं, तैसे मूर्खको शुद्ध आत्माविषे वासनारूपी मल जगत् भासता है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बांधा होता है, तैसे वह बद्ध होता है, जिसके अंतर वासना है, सो बद्ध है अरु जिसके अंतर वासना नहीं, तिसको मोक्ष जान. हे अर्जुन ! जिसके अंतर जगत्की वासना है अरु बड़ी प्रभु-

तासंयुक्त दृष्टि आता है, तौ भी दरिद्री है अरु दुःखका भागी है अरु जिसकी वासना नष्ट भयी है अरु प्रभुताते रहित दृष्टि आता है, तौ भी बड़ा प्रभुतावान् है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेऽर्जुनोपदेशजीवतत्त्व-निर्णय वर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.
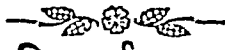
चित्तवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! इस प्रकार तू निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकरि विचर, तब तेरा अंतःकरण शीतल हो जावैगा अरु जरा-मरणते मुक्त निःसंग आकाशवत् होवैगा, इष्टअनिष्टको त्यागि वीतराग होकरि स्थित होवैगा. हे अर्जुन ! प्रवाह पतित जो कार्य आनि प्राप्त होवै तिसको कर, युद्धविषे कायरता मत कर, आत्मा अविनाशी है अरु देह नाशवंत है, देहके नाश हुए आत्मा नाश नहीं होता, हे अर्जुन ! जो जीवन्मुक्त पुरुष है सो रागद्वेषते रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यको करते हैं, तू भी जीवन्मुक्त स्वभाव होकरि विचर अरु यह मैं करौं यह न करौं इस ग्रहण त्यागके संकल्पको त्याग, इसकरि ज्ञानवान् बध्यमान नहीं होते अरु मूर्ख हैं, सो इसविषे बध्यमान होते हैं, जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सुषुप्तवत् स्थित होकरि प्रवाहपतित कार्यको करते हैं अरु प्रबुद्धकी नाईं वासनाते रहित हुए कार्य करते हैं, जैसे कच्छप अपने अंग खैंचिलेता है, तैसे ज्ञानवान् वासनाको संकुचित कर लेता है अरु आपको चिन्मात्ररूप जानता है अरु जगत् मेरेविषे मणकेकी नाईं परोया हुआ है अरु सब जगत् मेरे अंग हैं, जैसे अपने हाथ पसारै अरु खैंचै, जैसे समुद्रते तरंग उठते अरु लीन होते हैं, तैसे विश्व आत्माते उपजता अरु लीन होता है, भिन्न कछु नहीं, हे अर्जुन ! चंदोएके ऊपर नाना प्रकारके चित्र लिखे होते हैं, परंतु वह रंगवस्त्रते भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे मनरूपी चितेरेने जगत्

रचा है अरु अनउपजा होकरि भासता है, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है कि, एती पुतलियां निकसैंगी, सो आकाशरूपी पुतलियां तिसके मनविषे फुरती हैं, तैसे यह तीनों जगत् कालसंयुक्त चित्तविषे फुरते हैं, चितेरा भी मूर्तियां तब लिखता है जब भीत होती है. यह आश्चर्य है कि, आकाशविषे मन मूर्तियोंको कल्पता है, हे अर्जुन! यह मूर्तियां स्पष्ट भासती हैं, तौ भी आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे यह भी हैं, आकाश अरु कंधविषे भेद नहीं, परंतु आश्चर्य है, कि भेद भासता है, जैसे मनोराज्य स्वप्नपुरविषे जगत् मनके फुरणेकरि भासता है अरु अफुर हुए लय हो जाता है, सो मनोमात्र है, तैसे यह जगत् मनोमात्र है, आकाशते भी शून्यरूप है, जैसे स्वप्नपुर अरु मनोराज्यविषे एक क्षणमें बडे कालका अनुभव होता है, पूर्वरूपके विस्मरणकरि सत् हो भासता है, तैसे यह जगत् सत् हो भासता है, जबलग प्रमाद होता है, तबलग भासता है, जब इसक्रमकरिकै आत्माको देखता है, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, प्रगट देखता है, परंतु लीन हो जाता है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है, जैसे चितेरेके मनविषे चित्र फुरते हैं, सो आकाशरूप है, तैसे यह जगत् आकाशरूप है. हे अर्जुन! भाव अभाव वृत्तिको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु तब आकाशवत् निर्मल हो जावैगा, जैसे मेघकी प्रवृत्तिविषे भी आकाश निर्मल होता है अरु निवृत्तिविषे भी निर्मल होता है, तैसे तू पदार्थके भावअभावविषे निर्मल है जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं, जैसे चितेरेके मनविषे पुतलियां भासती हैं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है जैसे एक क्षणविषे मनके फुरणेकरि नाना प्रकारके पदार्थ भासि आते हैं. अफुर हुए लीन हो जाते हैं तैसे प्रमादकरिकै जगत् भासता है, आत्माके जाननेते लीन हो जाता है अरु आत्माविषे निर्वाणरूप है, आत्माविषे एक निमेषके फुरणेकरि प्रमादते वज्रसारकी नाईं दृढ हो भासता है अरु चित्तके फुरणेकरि यह सत् भासता है, सब जगत् आकाशरूप है, द्वैत कछु हुआ नहीं बडा आश्चर्य है कि आकाशपर मूर्तियां लिखी हैं

अरु नानारूप रमणीय होकरि भासती हैं अरु मनको मोहती हैं. हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि कछु है नहीं अरु नाना प्रकारके रंग भासते हैं आकाशरूपी नीला ताल है चंद्रमा तारे आदिक तिसविषे फूल खिले हैं अरु मेघरूपी तिनको पत्र लगे हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपदेशे चित्तवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः॥ ५६॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

अर्जुनविश्रान्तिवर्णनम्।

श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन! और आश्चर्य देख, चित्र भी तब होता है, जब प्रथम तिसका आधार भीत अथवा वस्त्र होता है अरु यहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं, अधारभूत कंध पाछे बनती है, प्रथम यह मूर्तियां चित्र बने हैं अरु पाछे भीत हुई है, यह आश्चर्य है. हे अर्जुन! यह मायाकी प्रधानता है, जो वास्तव आकाशरूप चितेरेने आकाशविषे आकाशरूप पुतली रची है, आकाशविषे आकाशरूप पुतलियां उपजी हैं अरु आकाशविषे लीन होती हैं, आकाशहीको भोजन करती हैं अरु आकाशहीको आकाश देखता है, आकाश ही यह सृष्टि है आकाश ही रूप आकाश आत्माविषे आकाशरूप स्थित है. हे अर्जुन! वास्तवते आत्मा ऐसे है तिस ऐसे अद्वैतरूप आत्माविषे जो उत्थान हुआ है, तिस उत्थानकरि उसको स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिसकरि आगे दृश्यभ्रमको देखता है अरु अनेक वासना होती हैं, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा हुआ भटकता है, वासनाकरि आवरा हुआ अहं त्वम् आदिक शब्दोंको जानने लगता है अरु नाना प्रकारके भ्रमको देखता है, तौ भी स्वरूप ज्योंका त्यों है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है अरु दर्पण ज्योंका त्यों रहता है; तैसे आत्माविषे जगत् प्रतिबिंबित होता है अरु आत्मा छेदभेदते रहित है, ब्रह्म ही ब्रह्मविषे स्थित है जब सर्व वही है तब छेद

भेद किसका हो, जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं सो जलरूप हैं, तैसे यह सब ब्रह्महीकरि पूर्ण है, तिसविषे द्वैत कछु नहीं, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे आत्मा स्थित है, तिसविषे वास-वासक कल्पना कोई नहीं, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि वासवासक भेद होता है, जब स्वरूपका ज्ञान होता है, तब वासना नष्ट हो जाती है. हे अर्जुन ! जो वासनाते मुक्त है सोई मुक्त है अरु वासनासाथ बांधा हुआ है, सोई बंध है, जो सर्व शास्त्रोंका वेत्ता भी है अरु सर्व धर्मोंकरि पूर्ण है, जब वासनाते मुक्त नहीं हुआ, तब बंध ही है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बाँधा होता है, तैसे वह वासनाकरि बाँधा हुआ है. हे अर्जुन ! जिसके अंतर वासनाका बीज रहा है अरु बाह्य दृष्टि नहीं आता सो बीज भी बड़े विस्तारको पावैगा, जैसे वटका बीज बडे विस्तारको पाता है, तैसे वह वासना विस्तारको पावैगी अरु जिस पुरुषने आत्माका अभ्यास किया है, तिसकरि ज्ञानरूपी अग्नि उपजाई है, उसकरि वासनारूपी बीज जलाया है, तिसको बहुरि संसारभ्रम उदय नहीं होता अरु वस्तुबुद्धिकरि पदार्थको ग्रहण नहीं करता अरु सुख दुःख आदि-कविषे नहीं डूबता, सदा निर्लेप रहता है, जैसे तुंबा जलके ऊपर ही रहता है,तैसे वह सुख दुःखके ऊपर रहता है.हे अर्जुन ! तू शांत आत्मा है, तेरा भ्रम अब दूर भया है अरु आत्मपदको तू प्राप्त भया है, मन मोह तेरा निर्वाण हो गया है, तू सम्यक्ज्ञानी हुआ है, व्यवहार अरु तूष्णीं तुझको तुल्य भयी है, शांतरूप निःशंक पदको प्राप्त भया है, यह मैं जानता हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे श्रीकृष्णसंवादेऽर्जुन-विश्रांतिवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः ५८.

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यद्गीतासमाप्तिवर्णनम्।

अर्जुन उवाच–हे अच्युत! मेरा मोह अब नष्ट भया है अरु आत्मस्मृतिको मैं प्राप्त भया हौं, तेरे प्रसादते मैं अब निःसंदेह होकरि स्थित भया हौं, अब जो कछु तुम कहौ सो मैं करौं. श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन! मनकी जो पांच वृत्ति हैं, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव, स्मृति जब यह पांचों हृदयसों निवृत्त हो जावैं, तब चित्त शांत होवै, तिसके पाछे जो शेष रहता है, चैत्यते रहित चेतन तिसको प्रत्यक् चेतन कहते हैं, सो वस्तुरूप है, सर्व उपाधिते रहित सर्व है अरु सर्वरूप है, जो तिस पदको प्राप्त हुआ है, तिसको आधि व्याधि आदिक दुःख बांधि नहीं सकते, जैसे जालते निकसिकरि पक्षी आकाशमार्गको उड़ता है, तैसे वह देह अभिमानते मुक्त होकरि आत्मपदको प्राप्त होता है, तिसको दुःख नहीं बाँध सकते. हे अर्जुन! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है, सो परम प्रकाशरूप शुद्ध है, संकल्प विकल्पते रहित है, इंद्रियके विषयमें नहीं आता, इंद्रियोंते अतीत है, जो पुरुष सर्वते अतीत पदको प्राप्त हुआ है, तिसको वासना नहीं स्पर्श कर सकती, तिसके प्राप्त हुए यह घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य हो जाते हैं, तहां तुच्छ वासनाका बल कछु नहीं चलता, जैसे अग्निसमूहके निकट बर्फ गलि जाती है, तिसकी शीतलता नहीं रहती, तैसे शुद्ध पदके साक्षात्कार हुए चित्तवृत्ति नष्ट हो जाती है अरु वासनाका भी अभाव हो जाता है. हे अर्जुन! वासना तबलग फुरती है, जबलग संसारको सत्य जानता है, जब आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब संसार अरु वासनाका अभाव हो जाता है, इस कारणते विरक्त पुरुषको सत्य जाननेते कछु वासना नहीं रहती, तबलग नाना प्रकारके आकार विकार संयुक्त विद्या फुरती है, जबलग शुद्ध आत्माको अपने आपकरि नहीं जाना, शुद्ध आत्माको प्राप्त हुए जगद्भ्रम सब नष्ट हो जाता है, आत्मतत्त्व स्वच्छ पदविषे स्थित होता है, आकाशवत् निर्मलभावको

प्राप्त होता है अरु अपने आपकरि सबको पूर्ण देखता है, सोई आत्मसत्ता सर्व आकाररूप है अरु सर्व आकाररूपते रहित है. हे अर्जुन ! जो शब्दते अतीत परम वस्तु है, तिसको किसकी उपमा दीजै, जो वासनारूपी विषूचिकाको त्यागिकरि अपने आत्मस्वभावविषे स्थित हुआ पृथ्वीमें विचरता है,सो त्रिलोकीका नाथ है.वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार त्रिलोकीका नाथ कहैगा, तब अर्जुन एक क्षण मौनविषे स्थित हो जावैगा तिसके उपरांत कहैगा. अर्जुन उवाच–हे भगवन् ! सब शोक मेरे नष्ट हो गये हैं, तुम्हारे वचनोंकरि बोध उदय हुआ है, जैसे सूर्यके उदय हुए कमल खिल आते हैं, तैसे तुम्हारे वचनोंकरि मेरा बोध खिल आया है, अब जो कछु तुम्हारी आज्ञा होवै सो मैं करौंगा. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार कहकर अर्जुन गांडीव धनुषको ग्रहण करैगा, भगवानको सारथी करिकै निःसंदेह निःशंक होकरि रणलीला करैगा, कैसा युद्ध करैगा, जो हस्ती घोडा मनुष्य मारैगा, लोहूके प्रवाह चलैंगे, तौ भी आत्मतत्त्वविषे स्थित रहैगा, स्वरूपते चलायमान न होवैगा, शूरोंको नष्टकरि देवैगा परंतु ज्योंका त्यों रहैगा, जैसे पवन मेघका अभावकरि देता है, तैसे योद्धोंका नाश करैगा, परंतु स्वरूपते चलायमान न होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यद्गीतासमाप्तिर्नामाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

प्रत्यगात्मबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसी दृष्टिको आश्रय करिकै निःसंग संन्यासी होहु, कैसी दृष्टि है, दुःखका नाश करती है, जो कछु कर्मचेष्टा होवै सो ब्रह्म अर्पण करु, जिसविषे यह सर्व है अरु जिसते यह सर्व है, ऐसी जो सत्ता है, तिसको तू परमात्मा जान, अनुभवरूप

आत्मा है, तिसकी भावनाकरि तिसीको प्राप्त होता है, इसविषे संशय नहीं, जो सत्ता संवेदन फुरणेते रहित है, चेतनते रहित जो चेतन प्रकाशता है, तिसीको तू परमपद जान, सो सबका परम द्रष्टारूप है अरु सबका प्रकाशक है, सो महाउत्तम परम गुरुका गुरु है, सो आत्म-रूप है, शून्यवादी जिसको शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, ब्रह्मवादी जिसको ब्रह्म कहते हैं, सो परमसाररूप है, सो शिवरूप है, शांतरूप अपने आपविषे स्थित है, सो आत्मा इस जगत्-रूपी मंदिरको प्रकाश करनेहारा दीपक है अरु जगतरूपी वृक्षका रस है अरु जगद्रूपी पशुका पालनेहारा गोपाल है अरु जीवभूतरूपी मोतीको एकत्र करनेहारा आत्मा तागा है अरु हृदय आकाशविषे स्थित है अरु भूतरूपी मिर्चविषे आत्मरूपी तीक्ष्णता है अरु सर्व पदार्थविषे पदार्थरूप सत्ता वही है, सत्यविषे सत्यता वही है, असत्यविषे असत्यता वही है; जगतरूपी गृहविषे पदार्थका प्रकाशनेहारा दीपक वही है, तिसकरि सब सिद्ध होते हैं अरु चन्द्रमा सूर्य तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं, तिनका प्रकाशक वही है, यह जड़ प्रकाश है, वह चेतन प्रकाश है, तिसकरि यह सिद्ध होते हैं, तिसीते सब प्रकाश प्रगट भये हैं, सो आत्मसंवित् अपने विचारकरि पाता है. हे रामजी! जेते कछु भावअभाव पदार्थ भासते हैं, सो असत् हैं, वास्तव कछु हुए नहीं, प्रमाद दोषकरिकै नानारूप भासते हैं, जब विचार उपजता है, तब यह नष्ट हो जाते हैं. हे रामजी! अहंभाव जिसके अंतर है, ऐसा जो जगज्जाल है सो मिथ्या भ्रमकरि भासता है, तिसको उपजा क्या कहिये अरु सत्य क्या करिये किसकी आस्था करिये, यह जगत् कछु वस्तु नहीं, आदि अंत मध्यकी कल्पनाते रहित जो देव है, सो ब्रह्मसत्ता-समान अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु बना नहीं, जब यह निश्चय तुझको दृढ़ होवैगा, तब तू व्यवहार भी कर्त्ता अंतरते निःसंग शांतरूप होवैगा. हे रामजी! जिस पुरुषकी तिस समान सत्ताविषे स्थिति भयी है, सो इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषते रहित अंतरते सदा शांतरूप रहता है, वह न उदय होता है, न अस्त होता है, सदा समता-

भावविषे स्थित रहता है, स्वस्थरूप अद्वैत तत्त्वविषे स्थित होता है, जगत्की ओरते सुषुप्तवत् हो जाता है, व्यवहार भी करता है, परंतु क्षोभवान् नहीं होता, दर्पणकी नाईं. जैसे मणि सब प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, परंतु तिसको अंतर संग नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलनाकलंकको नहीं प्राप्त होता, तिसका चित्त व्यवहारविषे भी सदा निर्मल रहता है, ज्ञानवान्को जगत् आत्माका चमत्कार भासता है, न एक है, न अनेक है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, चित्तविषे जो यह चेतनभाव भासता है, तिस चित्त फुरणेका नाम संसार है अरु फुरणेते रहित अफुरका नाम परमपद है. हे रामजी ! महाचेतनविषे जो निजका अभाव है कि, मैं आत्माको नहीं जानता, इसीका नाम चित्तस्पंद संसारका कारण है, जब यह भावनाक्षय होवै, तब चित्त अफुर होजावै. हे रामजी ! जहां निजभाव होता है, तहां पदार्थका अभाव होता है, सो निज सब ठौर अपने अर्थको सिद्ध करता है, परंतु आत्माविषे प्रवृत्त नहीं हो सकता, जब यह कहता है कि, मैं आत्माको नहीं जानता, तब भी आत्माका अभाव नहीं होता, अभावको जाननेवाला भी आत्मा ही है, जो आत्मतत्त्व न होवै तब अभाव क्यों न कहै, सो आत्मा परम शून्य है, परंतु कैसा शून्य है, जो अजडरूप परम चेतन है. हे रामजी ! सो निजका अर्थ तू आत्माविषे कर, जो आत्माको निजकी भावना नहीं होती. अर्थ यह कि, आत्माका अभाव न मानो अरु अनात्मविषे जो निजका भाव है, तिसका अभाव करु, अर्थ यह कि अनात्माको अभावरूप मान, जब इस प्रकार दृढ भावना करैगा, तब संसार भ्रम निवृत्त हो जावैगा, केवल आत्मभाव शेष रहैगा. हे रामजी ! चित्तके फुरणेका नाम संसार है, चित्तके फुरणेकरि संसारचक्र वर्त्तता है, माता मान मेय त्रिपुटीरूप चित्त ही होता है, जैसे स्वर्णते भूषण प्रगट होते हैं, तैसे चित्तकरि त्रिपुटी होती है अरु चित्तस्पंद भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्माका आभासरूप है, अज्ञानकरिकै चित्तस्पंद होता है, ज्ञानकरिकै लीन हो जाता है, जैसे स्वर्णके भूषणको गालेते भूषणबुद्धि नहीं रहती, तैसे चित्त अचल हुए चित्तसंज्ञा जाती

रहती है, जैसे भूषणके अभाव हुए स्वर्ण ही रहता है, तैसे बोधकरि चित्त जगतके लीन हुए शुद्ध चेतनसत्ता शेष रहती है, बहुरि भोगकी तृष्णा लीन हो जाती है, जब भोगभावना निवृत्त भयी तब ज्ञानका परम लक्षण सिद्ध होता है. हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष है, जिसने सत्स्वरूपको जाना है, तिसको भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे जो पुरुष अमृतपानकरि अघाय रहता है, तिसको खल आदिक तुच्छ भोजनकी इच्छा नहीं रहती, तैसे आत्मज्ञानकरि जो संतुष्ट भया है, तिसको विषयकी तृष्णा नहीं रहती, यह निश्चयकरि जान. जब चित्त फुरता है, तब जगत्भ्रम हो भासता है अरु सत्य जानिकरि भोगकी इच्छा होती है, जब बोध होता है, तब जगद्भ्रम लीन हो जाता है, बहुरि तृष्णा किसकी करै अरु जब इंद्रियके विषय आनि प्राप्त होवैं अरु हठकरि तिनको न भोगै, तब वह मूर्ख है, मानो शस्त्रकरि आकाशको छेदता है. हे रामजी ! मन जो वश होता है, सो गुरुशास्त्रोंकी युक्तिकरि होता है, उनकी युक्ति विना शुद्धता नहीं प्राप्त होती, जब कोऊ अपने अंगहीको काटै अरु तिसकरि चित्तको स्थिर किया चाहै, तो भी चित्त स्थिर नहीं होता अरु संसारभ्रम नहीं मिटता, जबलग चित्त कोटिविषे स्थित है, तबलग जगद्भ्रमको देखता है. जब गुरुशास्त्रोंकी युक्तिको ग्रहणकरिकै चित्तका अभाव करता है, तब चित्त नष्ट होता है, चित्त अचल हो जाता है, जैसे बालकको अंधकारविषे पिशाच भासता है अरु दीपक जलाये देखनेते अंधकार निवृत्त हुए पश्चात् पिशाचभ्रम नष्ट हो जाता है तब बालक निर्भय होता है, तैसे आत्मज्ञान युक्तिकरि अज्ञान निवृत्त होता है, असम्यक् बुद्धिकरिकै जगद्भ्रम हुआ है, सम्यक् बोधकरि निवृत्त हो जाता है, बहुरि जाना नहीं जाता कि, अज्ञानका जगत्भ्रम कहां गया. जैसे दीपकके निर्वाण हुए नहीं जानता कि, प्रकाश कहां गया, तैसे अज्ञान नष्ट हुए नहीं जानता कि, जगत् कहां गया, चित्तके फुरणेकरि बंध होता है अरु अफुरण हुए मोक्ष होता है, परंतु आत्माते भिन्न कछु नहीं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे न बंध है, न मोक्ष है. हे रामजी ! जब इसको मोक्षकी इच्छा होती है, तब भी इसकी

पूर्णताका क्षय होता है अरु निःसंवेदन हुए कल्याण होता है, जो अनाभास अजड़रूप परमपद है, सो चैतन्योन्मुखत्वते रहित है. हे रामजी ! बंध मोक्ष आदिक भी कलनाविषे होते हैं, जब कलनाते रहित बोध होता है, तब बंध मोक्ष दोनों नहीं रहते जबलग विचारकरि नहीं देखा, तबलग बंध अरु मोक्ष भासता है, विचार कियेते दोनोंका अभाव हो जाता है, जब अहं त्वम् इदम् आदिक भावनाका अभाव हुआ, तब कौन किसको बंध कहै अरु कौन किसको मोक्ष कहै, सब कलना चित्तके फुरणेकरि होती है, जब चित्तका फुरणा नष्ट होता है, तब सब कलनाका अभाव हो जाता है तब शांतिमान् होता है, अन्यथा नहीं होता, ताते चित्तको आत्मपदविषे लीन कर, जिनके आश्रय यह जगत् उपजता है अरु लीन होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसी अनुभवरूप प्रत्यक् आत्मप्रकाशविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे प्रत्यगात्मबोधवर्णनं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

विभूतियोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! परमतत्त्व जो परमात्मपद है, सो हमको सदा प्रत्यक्ष है, वस्तुरूप वही है, तिसते इतर कछु नहीं, यह प्रत्यक् आत्मा है, सर्व सत्ताका दर्पण है, सर्वसत्ता इसीते प्रकट होती है, जैसे बीजते वृक्षकी सत्ता प्रकट होती है, तैसे आत्माते जगत्सत्ता प्रकट होती है. हे रामजी ! मन बुद्धि चित्त अहंकार जड़ात्मक है, उनते रहित है सो परमपद है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक सब तिसविषे स्थित हैं, तिस सत्ताको पायकरि बड़ी ऊंची प्रभुताकरि शोभते हैं, जैसे चक्रवर्ती राजा निर्धनते ऊंचा शोभता है, तैसे यह सर्व लोकते ऊंचे शोभते हैं, तिस आत्माको जो प्राप्त होता है, सो मृत्युको नहीं प्राप्त होता अरु शोकवान् कदाचित् नहीं होता अरु क्षीण नहीं होता, एक क्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकरि आत्माको ज्योंका त्यों

जानता है, सो संसारकलनाको त्यागिकरि मुक्त होता है. राम उवाच-हे भगवन् ! मन बुद्धि चित्त अहंकारके अभाव हुए सत्तासामान्य शेष रहती है, सो तिसका भान कैसे होवै ? वसिष्ठ उवाच हे-रामजी ! जो सर्व देहोंविषे स्थित होकरि भोजन करता है, जलपान करता है, देखता सुनता बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है, सो आदिअंतते रहित संवित्सत्ता है, सर्वगत अपने आपविषे स्थित है अरु सर्व विश्व वहीरूप है; आकाशविषे आकाशरूप वही है, शब्दविषे शब्दरूप वही है, स्पर्शविषे स्पर्श, नासिकाविषे गंधरूप वही है, शून्यविषे शून्य, रूपविषे रूप, नेत्रोंविषे नेत्र वही है, पृथ्वीविषे पृथ्वी, जलविषे जल, तेजविषे तेज, वृक्षविषे रस वही है, मनविषे मन, बुद्धिविषे बुद्धि, अहंकारविषे अहंकाररूप वही है, अग्निविषे अग्नि, उष्णताविषे उष्णता, घटविषे घट, पटविषे पटरूप वही है, वटविषे वट, स्थावरविषे स्थावर, जंगमविषे जंगमरूप, चेतनविषे चेतन, जडविषे जडरूप वही है, कालविषे काल, नाशविषे नाश उत्पन्न होकरि स्थित होता है, बालविषे बालक, यौवनविषे यौवन, वृद्धविषे वृद्ध, मृत्युविषे मृत्यु होकरि वही परमेश्वर स्थित है. हे रामजी ! इस प्रकार सर्व पदार्थविषे अभिन्नरूप स्थित है; नानात्वदृष्टि भी आती है, परंतु अनाना है, भ्रमकरिकै नानात्व भासती है, जैसे परछाईंविषे भ्रमकरिकै वैताल भासता है, तैसे आत्माविषे नानात्व भासता है, सर्वविषे सर्व ठौर सर्व प्रकार सर्व आत्मा ही स्थित है ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमान है, तिसविषे स्थित होउ. वाल्मीकिरुवाच-इस प्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब दिन अस्त हुआ, सर्व सभाके लोक परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि दिनको अपने अपने आसनपर आनि बैठे.

इति श्रीयोग० निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विभूतियोगोपदेशो नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

जगत्स्वप्नविचारवर्णनम्।

राम उवाच हे-भगवन्! जैसे हमारे स्वप्नविषे पुर नगर मंडल होते हैं, तैसे ब्रह्मादिकने देवको ग्रहण किया है, उनको असत्‌में प्रतीति है हमको दृढ प्रतीति कैसे उपजती है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! प्रथम ब्रह्माको सर्ग असतवत् भासता है, वास्तव नहीं भासता सर्वगत चेतन संवित्‌को संसारके दर्शनकरि जब सम्यक् दर्शनका अभाव भया, स्वप्न-रूपविषे आपते अहं प्रतीति उपजी, तब दृढ होकरि देखने लगा, जैसे अपने स्वप्नविषे जगत दृढ़ भासता है, स्वप्न नहीं जानता, तैसे ब्रह्माका जगत् भी दृढ भासता है, स्वप्न नहीं भासता; जो स्वप्न पुरुषते उपजा है, सो स्वप्न है. हे रामजी! ऐसा जो सर्ग है सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे चेतनतत्त्वका आभास जगत् फुरते हैं, जैसे स्वप्नपुरविषे अवास्तव पदार्थ होते हैं, तैसे यह पदार्थ भी अवास्तव हैं, भ्रममात्र ही मनके संकल्पकारि भासते हैं. हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो इस जगत्‌विषे सिद्ध नहीं होता अरु अपरका अपर नहीं भासता अरु मर्यादाको नहीं त्यागता, काहेते कि, मनके संकल्पमात्र उपजे हैं, तू देख, जैसे जलविषे अग्नि स्थित है अथवा समुद्रविषे वडवाग्नि है, सो क्या विपर्यय है? इसी कारणते मैं कहता हौं, जो मनोमात्र हैं अरु देख जो आकाशविषे नगर वसते हैं, विमान प्रत्यक्ष चलते हैं अरु शिला जो है चिंतामणि आदिक, तिनते कमल उपजते हैं, जैसे हिमालय पर्वतविषे बर्फ उपजता है अरु सर्व ऋतुके फूल एक ही समय उपजते हैं, जैसे संकल्पवृक्षते पत्थर निकसि आते हैं, रत्नोंके गुच्छे जो लगते हैं, शिलाविषे जल निकसता है, तैसे चन्द्रकांतसों अमृत द्रवता है, एकनिमेषविषे घट पट हो जाते हैं अरु पट घट हो जाते हैं; स्वरूपके विस्मरण हुए सत्‌को असत् देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा देखता है, जल ऊर्ध्वको चलता देखता है, मेघ होकरि स्वर्गका चंदोआ होकरि गंगा बहती है, पत्थर उडते हैं, जैसे

पंखहूसहित पहाड़ उड़ते थे, चिंतामणि शिलारूपते सब पदार्थ उपजते हैं, इत्यादिक भ्रमकरि नानात्व विपर्ययरूप हुए फुरते हैं, ताते तू देख, जो मनोमात्र हैं, अपरका अपर हो जाते हैं. हे रामजी! यह इन्द्रजाल गन्धर्वनगर शंबर मायावत् है, असत् ही भ्रमकरिके सत् हो भासते हैं, ऐसे पदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं अरु असत् भी नहीं, मनविषे फुरते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगत्स्वप्न-
विचारो नामैक षष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

भिक्षुसंसारोदाहरणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, जो पुरुष इसको सत्य जानता है, सो महामूर्ख है अरु भ्रमविषे भ्रमको देखता है अरु महामोहको प्राप्त होता है, जैसे कोऊ मृग टोएविषे गिर पडता है, तब महादुःखी होता है, बहुरि उसते भी बड़े टोएविषे गिरता है, तब अतिदुःखको प्राप्त होता है, तैसे जो मूर्ख पुरुष है, सो आत्माके अज्ञानकरिके संसाररूपी टोएविषे गिरता है, तिसविषे अपर अपर भ्रमको देखता है, स्वप्नते स्वप्नांतरको देखता है, इसीते एक इतिहास कहता हौं. हे रामजी! तू श्रवण कर. एक सन्यासी था, सो मननशीलवान् था, योगका आठवाँ अंग समाधि है, तिसविषे स्थित था अरु हृदय उसका समाधि करते करते शुद्ध हुआ था, समाधिकरि दिनको व्यतीत करै जब समाधिते उतरै, तब आसन बनायकरि बहुरि समाधिविषे जुड़ै, इसी प्रकार जब बहुत काल व्यतीत भया तब एक समय समाधिते उतरे हुए यह चिंतना करने लगा, कि जैसे प्रकृत पुरुष विचरते हैं अरु चेष्टा करते हैं, तैसे मैं भी कछु चेष्टा रचौं, ऐसे विचार करिकै मनके संकल्पते विश्व कल्पि तिसविषे एक आप भी बना, तिसका नाम झीवट भया, मद्यपान करै अरु ब्राह्मणकी सेवा भी करै, तिस झीवट शरीरविषे वर्त्तने लगा, चेष्टा करते हुए सोय गया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे ब्राह्मणका

शरीर तिसको भान हुआ कि, मैं ब्राह्मण हौं, तब ब्राह्मणके शरीरविषे वेदका अध्ययन करने लगा, तब पाठ बहुत करै ऐसी चेष्टाकरि चिरकाल व्यतीत भया तब सोए हुए स्वप्न पाया, तहां आपको राजा देखत भया, कि मैं राजा हौं, बड़ी सेनासंयुक्त राजा होकरि विचरने लगा, केताक काल इसी प्रकार व्यतीत भया, तब सोए हुए बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपको चक्रवर्ती राजा देखत भया, कि मैं चक्रवर्ती राजा हौं तब चक्रवर्ती होकरि सारी पृथ्वीपर आज्ञा चलाने लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपको देवांगना देखत भया, कि मैं देवताकी स्त्री हौं तब देवताकी स्त्री होकरि देवताके साथ बागविषे विचरै, जैसे वल्ली वृक्षके साथ शोभा पाती है, तैसे देवताके साथ शोभा पाने लगा, इसी प्रकार कोई काल देवताके साथ व्यतीत भया, तब बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपको हरिणी देखता भया, कि मैं हरिणी हौं, हरिणी होकरि वनविषे विचरने लगा, कोई काल ऐसे व्यतीत भया, बहुरि स्वप्न पाया, तब आपको वल्ली देखता भया, कि मैं देवताके वनकी वल्ली हौं, जब ऐसे कोई काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपको भँवरी देखत भया, कि मैं भँवरी हौं भँवरी होकरि सुगंधिको ग्रहण करने लगा, तिसके अन्तर बहुरि स्वप्न पाया, तब देखत भया, कि मैं कमलिनी हौं, कमलिनी हुआ, तहां एक दिन हस्ती आयकरि वल्लीको खाय गया, जैसे कोई मूर्ख बालक भली वस्तुको तोड डारता है, तैसे मूर्ख हस्ती वल्लीको तोडकर खाय गया, तिसके उपरांत तिस वल्लीमें हस्तीका शरीर पाय बड़ा दुःख भी पाया, टोएविषे गिरा, केताक काल व्यतीत भया, तब फिर हस्तीका स्वप्न आया, बहुरि भँवरी होकरि कमलविषे विचरने लगा, केताक काल व्यतीत भया, तब बहुरि वल्ली हुआ, उस वल्लीके निकट एक हस्ती आया, हस्तीके पादकरि वह वल्ली चूर्ण भयी, तब उस वल्लीको एक हंसने खाया, वह वल्ली हंस भयी, हंस होकरि बड़े मानसरोवरविषे विचरने लगा, बहुरि हंसके मनविषे आया कि, ब्रह्माका हंस होउं, तब संकल्पकरिकै ब्रह्माका हंस बनि गया, जैसे जलका तरंग बनि जावै, तैसे वह ब्रह्माका हंस बनि गया,

तब ब्रह्माके उपदेशकारि हंसको आत्मज्ञान प्राप्त भया. हे रामजी! अज्ञानकारिकै ऐसे भ्रमको प्राप्त भया, सो ज्ञानकारिकै शांत भया, बहुरि विदेहमुक्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भिक्षुसंसारोदाहरणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.
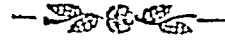
स्वप्नशतरुद्रीयवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! वह हंस सुमेरु पर्वतविषे उडा जाता था, बहुरि उसके मनविषे आया कि, मैं रुद्र होउं, तब सत्संकल्पकारिकै रुद्र हो गया, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब शीघ्र ही पड़ता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणके संकल्पकारि रुद्र भया, रुद्र कहिये जिसको अनुत्तर ज्ञान है, अनुत्तरज्ञान कहिये जिसने जाननेते अपर जानना कछु न रहै, सर्वते श्रेष्ठ ज्ञानसो रुद्रको अनुत्तर ज्ञान है, तिस अनुत्तर ज्ञानकारि शोभित रुद्र होकारि अपनी चेष्टा करत भया अरु अपने गुणको देखत भया, रुद्रके मनविषे विचार हुआ कि बड़ा आश्चर्य है, मैं अज्ञानकारिकै एते बडे भ्रमको प्राप्त हुआ था, ऐसी आश्चर्य माया, मैं तौ एक रूप पड़ा हौं अरु यह विश्व मेरा स्वरूप है, अपने जो मेरे शरीर हैं, तिनको जायकारि जगावौं, तब रुद्र उठ खड़ा हुआ, अपने स्थानोंको चला, प्रथम जो संन्यासीका शरीर था, तिसको आयकारि देखा, देखिकारि तिसको चित्तशक्तिसों जगाया; तब संन्यासीके शरीरविषे ज्ञान हुआ, जो सर्व मैं ही खड़ा हौं, परंतु संन्यासीने जाना कि, मेरे ताईं रुद्रने जगाया है, तब जानत भया कि, इतने शरीर मेरे और भी हैं, तब वहांते रुद्र अरु संन्यासी दोनों चले, झीवटके स्थानमें आये देखा कि, झीवट शवकी नाईं पड़ा है अरु मदिराके बासन पड़े हैं अरु चेतना वहां ही पडी भ्रमती है, नाना प्रकारके स्थानोंको देखती है, जैसे झरणेके छिद्रविषे कीडी भ्रमती है, तब झीवटको चित्तशक्तिकारि जगाया, वह उठ खडा हुआ, तिसको ऐसे

स्मरण हुआ कि, मुझको तौ इनने जगाया, तब झीवटके मनविषे विचार हुआ कि, इनते शरीर मेरे और हैं, तब रुद्र संन्यासी अरु झीवट तीनों चले, बहुरि इनने विचार किया कि, हम एते शरीर क्योंकरि पाये, जो आदि एक परमात्माविषे चेत्योन्मुखत्व करिकै मैं संन्यासी भया, बहुरि संन्यासीते झीवट हुआ; मद्यपान करने लगा, बहुरि ब्राह्मण हुआ, तहां वेदका पाठ करने लगा, तिस वेदके पाठ करनेके पुण्यकरि राजाका शरीर धारा, तिसके आगे जो बड़ा पुण्य प्राप्त भया चक्रवर्ती राजा हुआ, जब चक्रवर्ती राजाके शरीरविषे काम बहुत हुआ, तिसके होनेकरि देवताकी स्त्री भया, तब स्त्री शरीरमें बहुत प्रीति नेत्रोंविषे थी, तिसते हरिणी भया, बहुरि भँवरी भया, तिसते आगे वल्ली भया, इसते लेकरि जो शरीर धारे सो मैंने मिथ्या धारे हैं अरु अज्ञानकरिकै मैं बहुत काल भटकता रहा हौं, अनेक वर्ष अरु सहस्र ही युग व्यतीत हो गये हैं, संन्यासीते आदि रुद्रपर्यंत वासनाकरिकै जन्म पाये हैं, एक जन्म पायकरि भी ब्रह्माका हंस जाय हुआ, तहां ज्ञानकी प्राप्ति भयी, काहेते जो पूर्ण अभ्यास किया था, तिसकरि अकस्मात् सत्संग आनि प्राप्त भया, ऐसे विचार करते वहांते चले, तब चेतन आकाशविषे उडे, ब्राह्मण वेदपाठक करनेवालेकी सृष्टिविषे गये तब उसको देखा कि, सोया पड़ा है, चित्तशक्तिकरिकै उसको जगाया, तब रुद्र संन्यासी झीवट मद्यपान करनेवाला अरु ब्राह्मण चारों वहांते चले, चित्ताकाशविषे उडे राजाकी सृष्टिविषे गये, तब देखत भये कि, राजाकी सृष्टि चेष्टा करती है अरु राजा अपने मंदिरविषे शय्यापर सोया है अरु रानी भी साथ सोई है, सो राजाका देह स्वर्णकी नाई शोभायमान है, तैसा ही रानीका देह है, दोनों सोए पडे हैं, तिसपर सहेलियां चमर करती हैं, तब राजाको चित्तशक्तिकरि जगाया, तब राजा देखत भया कि, सर्व विश्व मेरा ही स्वरूप है अरु देखत भया कि एते शरीर मैंने अज्ञानकरिकै धारे हैं, आश्चर्य माया है, राजा स्वरूपविषे जागा, तब रुद्र संन्यासी झीवट मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण अरु राजा वहांते चले अरु इसतीते आदि लेकरि जो शरीर धारे थे सो जगाये, वह शरीर धारे थे

सो सब जगाये तिनविषे यही निश्चय भया कि, हम चिन्मात्ररूप हैं अरु आवरणते रहित हैं, आवरण कहिये अज्ञानका फुरणा तिसते रहित हैं. हे रामजी ! तब उनके शरीर देखनेविषे सब दृष्ट आवैं, परंतु चेष्टा सबकी एक जैसी अरु निश्चय भी एक जैसा उनका नाम सत् रुद्र भया, वह सत् रुद्र हु . ताते हे रामजी ! विश्व संपूर्णअज्ञानरूप फुरणेकरिकै होता है अरु ज्ञानकरिकै देखिये, तब कछु हुआ नहीं ऐसे ही उनकी संवेदन अरु निश्चय एक जैसा हुआ, एक देखै तौ सर्व ही मेरा रूप है, जब दूसरा देखै तब मेरा ही रूप है, इसी प्रकार सर्व ही देखत भये कि, सब अपना ही स्वरूप है, तिसविषे यह दृष्टांत है, जैसे समुद्रते तरंग होते हैं, आकार उनके भिन्न भिन्न होते हैं अरु स्वरूप उनका एक जैसा होता है, तैसे ज्ञानवान् सर्व विश्वको अपना ही स्वरूप देखते हैं अरु अज्ञानी उसको भिन्न भिन्न जानते हैं अरु आपको भिन्न जानते हैं, एकको दूसरा नहीं जानता, दूसरेको प्रथम नहीं जानता, सो क्या नहीं जानते, जो अपना स्वरूप है, तिसको नहीं जानते, जैसे पत्थरके वटे दो पडे होवैं, तब न आपको जानते हैं, न दूसरेको जानते हैं, कि मेरा स्वरूप क्या है, तैसे अज्ञानी न आपको जानते हैं, न अपरको अपना स्वरूप जानते हैं. हे रामजी ! यह विश्व अपना ही स्वरूप है अरु अज्ञानकरिकै भिन्न भासता है, अज्ञान कहिये जो चिन्मात्रविषे फुरणा, तिस फुरणेविषे संसार है अरु अफुरणेविषे आत्मा ही स्वरूप है. ताते हे रामजी ! फुरणेका त्याग करु, अपर कछु नहीं, जिस प्रकार शत्रु मरै तिस प्रकार मारिये यही यत्न करहु अरु मैं तेरे ताईं ऐसा उपाय कहता हौं, जिसविषे यत्न भी कछु नहीं अरु शत्रु भी मारा जावै, सो उपाय यही है कि; चिंतवना कछु न करिये, इसविषे यत्न कछु नहीं, सुगम उपाय है. हे रामजी ! यह चिंतवना ही दुःख है अरु चिंतवनाते रहित होना ही सुख है, आगे जो तेरी इच्छा होवै सो करु, इस चित्तके फुरणेकरि संसार है अरु निवृत्त होनेते स्वरूप ही है, जैसे पत्थरविषे पुतलियां पुरुष कलपता है, तब पत्थरते भिन्न पुतलियोंका अभाव है, तैसे चित्तने विश्व कल्पा है, जब चित्त निवृत्त होवै, तब विश्व अपना

स्वरूप है, अपर भिन्न कछु नहीं अरु चित्तसाथ जहां जावै, तहां तहां पंचभूत ही दृष्टि आते हैं, आत्मा दृष्टि नहीं आता अरु चित्तते रहित ज्ञानी जहां जावै तहां आत्मा ही दृष्टि आते हैं, जब चित्तकी वृत्ति बहिर्मुख होती है, तब संसार होता है, पंचभूत ही दृष्टि आते हैं अरु जब चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख होती है, तब ज्ञानरूप अपना आप ही भासता है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो अज्ञानरूप आत्मा विना सिद्ध नहीं होते, प्रथम आपको जानता है, तब पाछे अपर पदार्थ जानते हैं, इसीते ज्ञानवान् सर्व अपना आप जानता है. हे रामजी ! यह जेते कछु पदार्थ हैं, सो फुरणेकरि कल्पते हैं अरु जेते जीव हैं, तिनकी संवेदन भिन्न भिन्न है अरु संवेदनविषे अपनी अपनी सृष्टि है, जैसे कोऊ पुरुष सोता है, तिसको अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है अरु अपर तिसके पास बैठा होता है, उसको नहीं भासती, उसकी विश्व स्वप्नको नहीं जानती अरु जो ज्ञानी है, तिसको अपना आप ही भासता है, यह जगत् सब अपना रूप जानता है अरु ज्ञानी जिस ओर देखता है, तिस ओर तिसको पांचभौतिक दृष्टि आते हैं, जैसे पृथ्वीके खोदेते आकाश ही दृष्टि आता है, तैसे ज्ञानी चित्तसहित जहां देखता है, तहां पंचभूत ही आते हैं. दृष्टि ताते हे रामजी ! तू फुरणेते रहित होहु, फुरणे ही करिकै बंध है, अफुरणेकरिकै मोक्ष है, आगे जैसी तेरी इच्छा हो तैसा कर. हे रामजी ! जो अफुरणेकरिकै अस्त हो जावै, तिसके नामविषे कृपणता करनी क्या है अरु जो अफुरणेकरिकै प्राप्त होवै, तिसको प्राप्तरूप जान.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे स्वप्नशतरुद्रीयवर्णनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.
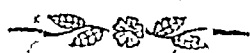
गणत्वप्राप्तिवर्णनम्

राम उवाच−हे मुनीश्वर ! यह जीवट ब्राह्मणते आदि लेकरि संन्यासीके रूप स्वप्नविषे हुए, तिसते उपरांत बहुरि क्या हुआ ? वसिष्ठ उवाच−हे रामजी !

ब्राह्मणते आदि जेते शरीर थे, सो रुद्रकरि जगाये हुए सुखी भये जब सब ही इकट्ठे भये, तब रुद्रने तिनको कहा. हे साधो! तुम अपने अपने स्थानको जाउ अरु कोऊ काल अपने कलत्रविषे भोग भोगहु, बहुरि तुम मेरे गण होकरि मुझको प्राप्त होहुगे, महाकल्पविषे हम सब ही विदेहमुक्त होवैंगे. हे रामजी! जब ऐसे रुद्रने कहा, तब सब अपने अपने स्थानोंको गये अरु रुद्रजी अंतर्धान हो गये, सो अब भी तारेका आकार धारे हुए कभी कभी मुझको आकाशविषे दृष्टि आते हैं. राम उवाच-हे भगवन्! तुमने कहा संन्यासीने झीवरते आदि सब शरीर धारे सो सत् कैसे हुए अरु तिनकी सृष्टि कैसे सत हुई सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आत्मा सबका अपना आप है, शुद्ध है अरु चेतन आकाश है अरु अनुभवरूप है, तिस अपने आपविषे जैसे देश काल वस्तुका निश्चय होता है, तैसे ही आगे बन जाता है, जैसे जैसे फुरता है, तैसे ही आगे हो जाता है, जिसका मन शुद्ध होता है, तिसका सत्संकल्प होता है, जैसा संकल्प करता है, तैसा ही होता है अरु जब तू कहै, संन्यासीका अंतःकरण शुद्ध था, तिसने नीच ऊँच जन्म कैसे पाये, नीच कहिये मद्यपान करनेवाला अरु भँवरी वल्लीते आदि लेकरि अरु ऊँच कहिये ब्राह्मण राजाते आदि लेकरि शुद्ध अंतःकरणविषे ऐसे जन्म न चाहा, तिसका उत्तर यह है कि, संवेदनाविषे जैसा फुरणा होता है, तैसा ही हो भासता है, जैसे एक पुरुषका अंतःकरण शुद्ध होवै, तिसको मनविषे फुरै कि, एक शरीर मेरा विद्याधर होवै अरु एक शरीर मेरा मेडता होवै, तिसके दोनों हो जाते हैं, भला भी अरु बुरा भी अरु जब तू कहै बुरा क्यों बना, भला ही बनता, तिसका उत्तर सुन, जैसे भले पंडितके घर पुत्र होवै अरु संस्कारकरिकै चोर हो जावै, संस्कार क्या जो वासना मलिन होवै, तब तिसको दुःख होता है, ताते हे रामजी! सर्व फुरणेहीकरि ऊँच नीच होते हैं, जब अभ्यास अरु परम योग होता है, तब शुद्ध होता है, अभ्यास कहिये मंत्र जाप अरु योग कहिये चित्तका स्थिर करना, इसकरिकै जैसी जैसी चिंतना होती है, तैसे ही सिद्धि होती है अरु अज्ञानीकी नहीं होती है,

जैसे वस्तु निकट पडी है, भावना नहीं तब दूर है, तैसे अज्ञानीकी भावना नहीं, तब न दूरवाली प्राप्त होती है, न निकटवाली प्राप्त होती है, क्यों नहीं सिद्ध होती, जो उसकी भावना दृढ नहीं अरु हृदय शुद्ध नहीं संकल्प भी तब सिद्ध होता है, जब हृदय शुद्ध होता है शुद्ध हृदयवाला जिसकी चिंतवना करता है, दूर है सो भी सिद्ध होता है अरु जो निकट है सो ही सिद्ध होता है अरु जब तू कहै सन्यासी तौ एक था, बहुत शरीर कैसे चेतन हुए तिसका उत्तर सुन, जो कोई योगीश्वर है अरु योगिनी देवियां हैं, तिनका संकल्प सत्य है, जैसा संकल्प फुरता है, तैसा ही होता है, ऐसे सत्संकल्पवाले अनेक मैं आगे देखे हैं, एक सहस्रबाहु अर्जुन राजा था, सो घरविषे बैठा हुआ शिरपर छत्र पडा झूलता है अरु चमर पडा होता है, तिसके मनविषे संकल्प हुआ कि, मैं मेघ होकरि बरसौं तिस संकल्प करणेकरि एक शरीर तौ राजाका रहा अरु एक शरीर मेघ होकरि बरसने लगा अरु विष्णु भगवान् एक शरीर करिकै क्षीरसमुद्र विषे शयन करता है अरु प्रजाकी रक्षानिमित्त अपर शरीर भी धारि लेता है अरु यज्ञदेवियां अपने स्थानोंविषे होती हैं, बडे ऐश्वर्यकरि देशोंविषे भी विचरती हैं अरु इन्द्र भी एक शरीरकरि स्वर्गविषे रहता है अरु अपर शरीरकरिकै जगत्‌विषे भी बैठा रहता है, इत्यादिक जो योगीश्वर हैं, तिनका जैसा संकल्प होता है, तैसी ही सिद्धि होती है अरु जो अज्ञानी मूर्ख हैं, तिनका मन बडे भ्रमको प्राप्त होता है, बडे मोहको प्राप्त होते हैं, मोहते आगे मोहकरि नीच गतिको प्राप्त होते हैं, जैसे बडे पर्वतके ऊपरते बटा गिरता है, सो नीचे स्थानको प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख आत्मपदते गिरनेकरिकै संसाररूपी टोयेविषे पडते हैं अरु बडे दुःखको प्राप्त होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे गणत्वप्राप्तिर्नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५.

विद्योत्तरविस्मयवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! तुमने कहा जो संसार स्वप्नमात्र है सो मैंने जाना है, जो अनन्त मोहरूपी विषमता है अरु आत्मचेतनरूप आनन्दके प्रमादकरिकै आपको जड दुःखी जानता है, बडा आश्चर्य है अरु हे भगवन्! यह जो तुमने संन्यासी कहा, तिस जैसा कोऊ अपर भी है, अथवा नहीं सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! संसाररूपी मढी है, तिसविषे मैं रात्रिके समय समाधि करिकै देखौंगा अरु दिनको तेरे ताईं जैसे होवैगा तैसे कहौंगा. वाल्मीकिरुवाच–हे राजा! ऐसे जब वसिष्ठजीने कहा, तब मध्याह्नका समय हुआ अरु नौबत नगारे बाजने लगे, बडा शब्द हुआ जैसे प्रलयकालका मेघ गर्जता है, तैसे शब्द होने लगा, तब वसिष्ठजीके चरणोंपर राजा अरु देवताओंने फूल चढाये, सबने बडी पूजा करी, जैसे बडा पवन चलता है अरु वेगकरिकै बाग वृक्षोंके फूल पृथ्वीपर गिर पडते हैं, तैसे बहुत फूलोंकी वर्षाकरि जब बहुत पूजा हो रही तब वसिष्ठजीको नमस्कार करिकै उठ खडे हुए, बहुरि आपविषे नमस्कारकरि बहुरि राजा दशरथते आदि लेकरि राजा अरु ऋषि सब उठे, जैसे मंदराचल पर्वतते सूर्य उदय होता है, तैसे वसिष्ठजीते आदि लेकरि ऋषि अरु राजा दशरथते आदि सब उठे, तब पृथ्वीके राजा अरु प्रजा पृथ्वीको चले आकाशके सिद्ध अरु देवता जो थे सो आकाशको चले, सब अपने २ कर्मविषे जाय लगे, जैसे शास्त्रोक्त व्यवहार है, तिसविषे स्थित भये अरु जब रात्रि हुई तब आप ही आप विचार करतभये कि वसिष्ठजीने कैसे ज्ञान उपदेश किया, तिस विचारविषे रात्रि एक क्षणकी नाईं व्यतीत भयी अरु वसिष्ठजीके मिलनेकी वांछाविषे रात्रि कल्पके समान बीती, तब सूर्यकी किरणैं उदय होनेसों आनि स्थित भये अरु राम लक्ष्मणजीते आदि लेकरि सब स्थित भये अरु सबने आपसविषे नमस्कार किये अरु अपने अपने आसन पर बैठ गये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विद्योत्तरविस्मयवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

भिक्षुसंसृतिवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच-शांतरूप होकरि स्थित भये, जैसे पवनते रहित कमल स्थित होते हैं, तैसे ही फुरणेते रहित शांतरूप स्थित भये, तब वसिष्ठजी अनुग्रह करिकै आप ही कहत भये. हे रामजी ! तेरी प्रीतिके निमित्त मैं संसाररूपी मढीका बहुत खोज किया, आकाश अरु पाताल सत द्वीप सब खोजे हैं परंतु ऐसा संन्यासी कोई दृष्टि न आया, जैसे अन्यका संकल्प नहीं भासता, जब रात्रिका पिछला प्रहर शेष रहा तब मैं बहुरि ढूंढिकरि उत्तर दिशाविषे चिन्माचीन नगरमें एक स्थान है, तहां एक मढी देखी, तिसके दरवाजे चढे हुए देखे, तिसविषे पके केशवाला संन्यासी बैठा है अरु बाहर उसके चेले बैठे हैं, वह दरवाजे खोलते नहीं कि, हमारे गुरुकी समाधि मत खुलि जावै, तिस स्थानविषे बैठा है, मानो दूसरा ब्रह्मा बैठा है अरु जिस देशविषे बैठा है, तिसके बैठे दिन इक्कीस भये हैं, समाधिविषे स्थित हुए अरु उसको समाधिविषे सहस्र वर्षका अनुभव भया है अरु बहुत जन्म भी पाये हैं, कैसे जन्म जो प्रत्यक्ष देखत भया अरु सृष्टि भी प्रत्यक्ष देखी, तिसविषे विचरा. हे रामजी ! इस जैसा एक अपर भी पूर्व कल्पविषे था, यह तीन ही थे, सो एकको बहुत देख रहा हौं, कोई दृष्टि नहीं आता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भिक्षुसंसृति-
वर्णनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

ब्रह्मैक्यप्रतिपादनम् ।

तब राजा दशरथने-कहा हे मुनीश्वर ! जब तुम आज्ञा करो, तब मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगर उत्तरवाले भेजौं, तहां जायकरि तिस संन्यासीको जगावौं, तब वसिष्ठजीने-कहा. हे राजन् ! वह संन्यासी अब ब्रह्माका हंस होकरि ब्रह्माके उपदेशसों जीवन्मुक्त हुआ है अरु जो

शरीर उसका है, सो अब मृतक हुआ है, इसविषे अब पुर्यष्टका जो जीव हैं सो नहीं तिसको क्या जगावना है अरु एक महीने पीछे उसका दरवाजा सो खोलेंगे, तब नगरके लोक देखेंगे, जो मृतक पडा है, ताते हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र ही है अरु जब तू कहै, एक जैसे क्योंकरि हुए तब सुन, जैसे यह मुनीश्वर ऋषि राजा अरु अपर जो संसारविषे लोक हैं सो कई बार एकजैसा शरीर धारते हैं अरु कई मध्य धारते हैं, कई कछु थोडा धारते हैं अरु कई विलक्षण धारते हैं, सो श्रवण कर, यह जो नारद है, सो इस जैसा अपर भी नारद होवैगा, तिसकी चेष्टा भी ऐसी होवैगी अरु शरीर भी ऐसा होवैगा अरु व्यासजी अरु शुकदेव भृगु अरु भृगुका पिता अरु जनक अरु करकरी अरु अत्रि ऋषीश्वर जैसा अब है अरु अत्रिकी स्त्री भी जैसी अब है ऐसा ही अत्रि अरु ऐसी ही स्त्री होवैगी, इनते आदि लेकरि बहुरि होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग एक जैसे भी होते हैं, घट अरु वट भी होते हैं. हे रामजी! तैसे यह संसार ब्रह्माते आदि लेकरि पातालपर्यंत सब मनका रचा हुआ है, सो सब मिथ्या है, जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है तब संसार देश काल होता है, जब अंतर्मुख होती है, तबलग आत्मपद प्राप्त होता है अरु जबलग बहिर्मुख होती है, तबलग दुःखको पाता है, अपना स्वरूप आनंद रूप है, तिसविषे चित्तकला जाती है कि, मैं सदा दुःखी हौं, देह अरु इंद्रियां साथ मिलिकरि दुःखी होता है. ताते हे रामजी! इस अज्ञानरूप फुरणेते तू रहित होउ, फुरणेकरि यह अवस्था प्राप्त होती है, जैसे चंद्रमा अमृतकरिकै पूर्ण है, तिसविषे चर्मदृष्टिकरिकै कलंकता भासती है, तैसे आत्मा अमृतरूपी चन्द्रमाविषे अज्ञानदृष्टिकरिकै जन्म मरण शोक दुःख भय कलंक देखता है, महाआश्चर्य माया है, जैसे चंद्रमा एक है, नेत्रदोषकरिकै बहुत भासते हैं, तैसे एक अद्वैत आत्माविषे विश्व नानात्व अज्ञानकरि भान होता है, यही माया है. हे रामजी! तू एकरूप आत्मा है, तिसविषे फुरणेते विश्व कल्पी है, ताते फुरणेते रहित होउ, फुरणेते रहित हुए विना आत्माका दर्शन नहीं होता; जैसे सूर्य उदय हुए भी बादलके

होते शुद्ध नहीं भासता, तैसे फुरणरूपी बादलते दूर हुए आत्मरूपी सूर्य शुद्ध भासता है अरु दृश्य दर्शन द्रष्टा फुरणेते कल्पे हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

महामौनयत्नोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस संसारका सार जो आत्मा है, तिसविषे सुषुप्तिकी नाईं मौन होउ. राम उवाच-हे भगवन् ! तीन मौन मैं जानता हौं, सो कौन हैं, एक वाणीमौन, चुपकरि रहना अरु एक इंद्रियकी मौन अरु एक कष्टमौन कष्टमौन कहिये जो हठकरिकै मनइंद्रियोंको वश करना, यह तीनों मौन मैं जानता हौं अरु सुषुप्तमौन तुम कहौ कि, क्या है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तीन मौन कष्ट तपस्वीके हैं अरु सुषुप्तमौन ज्ञानी जीवन्मुक्तका है अरु तीनों मौन अज्ञानी तपस्वीके बहुरि श्रवण कर, एक मौन वाणीका जो बोलना नहीं अरु एक मौन समाधि जो नेत्रोंको मूंदि लेना, देखना कछु नहीं, एक हठकरि स्थित होना, इंद्रियां अरु मनको स्थिर करना अरु एक मौन इंद्रियोंकी चेष्टाते रहित होना, यह तीनों मौन कष्ट तपस्वीकी हैं अरु सुषुप्तमौन ज्ञानीकी सुन, सुषुप्तमौन कहिये जो वाणीकरिकै अरु इंद्रियोंकरिकै चेष्टा भी होवै अरु आत्माते इतर अपर न भासै, यह उत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै कि, न मैं हौं, न जगत् है, ऐसे निश्चयविषे स्थित होना, यह महाउत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै कि, सर्व मैं ही हौं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होना, यह बड़ी उत्तम मौन है. हे रामजी ! विधिकरिकै भी आत्माकी सिद्धि होती है अरु निषेधकरिकै भी आत्माकी सिद्धि होती है, तिस आत्माविषे स्थित होना यह बड़ी मौन है. हे रामजी ! यह जो मैं सुषुप्त मौन कही है, सो क्या है, तू सुन, संसार द्वैतरूपके फुरणेते सुषुप्त होना अरु आत्माविषे जागना यही

सुषुप्तमौन है, द्वैतके फुरणेते रहित होना यही सुषुप्ति है अरु आत्माविषे जागना यही तेरे ताईं कहा है अरु ऐसे देखना कि, न मेरेविषे जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, इस निश्चयविषे स्थित होना यह तुरीयातीत सो पंचम मौन है, ऐसा जो तुरीयातीत पद है, सो अनादि है, अनंत है अरु जराते रहित है, शुद्ध है अरु निर्दोष है, इस निश्चयविषे स्थित होना, यह उत्तम मौन है. हे रामजी ! ज्ञानी इंद्रियोंके रोकनेकी इच्छा भी नहीं करता अरु न विचरनेकी इच्छा करता है, जैसे स्वाभाविक होती है, तिसीविषे स्थित होता है, यह परम मौन है अरु ज्ञानीको सुखकी इच्छा भी नहीं, दुःखका त्रास भी नहीं, हेयोपादेयते रहित होना यह परम मौन है. हे रामजी ! तुम रघुवंशकुलविषे चंद्रमा हौ अपने स्वभावविषे स्थित होना परम मौन है. हे रामजी ! संसारभ्रम मनके फुरणेकरिकै होता है, सो मिथ्या है वास्तव कछु नहीं, न शरीर सत्य है, न माया सत्य है. हे रामजी ! तेरा स्वरूप ओंकार है, ओंकारको अंगीकार करिकै स्थित होना, यह परम उत्तम मौन है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे महामौनयत्नोपदेशवर्णनं नामाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

प्राणमनःसंयोगविचारणम् ।

राम उवाच– हे भगवन् ! यह जो सौ रुद्र तुमने कहे सो रुद्र थे, अथवा रुद्रगण थे. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिसको रुद्र कहते हैं, तिसीको गण कहते हैं, यह सब ही रुद्र हैं. राम उवाच–हे भगवन् ! यह जो तुमने कहा, सब रुद्र हुए, सो यह तो एक चित्त थे सब क्योंकरि हुए जैसे दीपकते दीपक होता है क्या इसीभाँति हुए? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! एक सावरण है, एक निरावरण है, जहां शुद्ध अंतःकरण है सो निरावरण है अरु जहां मलिन अंतःकरण है, सो सावरण है, शुद्ध अंतःकरणविषे जैसा निश्चय होता है तैसा तत्काल आगे सिद्ध होता है अरु मलिन अंतःकर-

णका फुरणा सिद्ध नहीं होता; ताते शुद्ध जो निरावरण रुद्र है, सो आत्मा है अरु सर्वव्यापी है, जैसा उनका निश्चय होता है, सो सत्य है. राम उवाच—हे भगवन्! रुद्र सदाशिवकी चेष्टा तौ मलिन है जो रुंडोकी माला गलेविषे धारता है विभूति लगायी हुई है अरु श्मशानविषे विहरता है अरु स्त्रीबायें अंग रहती है, तिसको तुम कैसे कहते हो कि, शुद्ध अंतःकरण है. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! यह शुद्ध अशुद्ध अज्ञानीको कहते हैं, जो शुद्धविषे वर्त्तै अशुद्धविषे न वर्त्तै अरु जो ज्ञानी है, सो क्रियाको अपनेविषे नहीं देखता, तिसको शुद्ध अशुद्ध मलिनकरि राग द्वेष कछु नहीं होता, ऐसा जो सदाशिव है, तिसको न ग्रहण करना है, न त्याग करना है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, सो होवै, सो कैसी होती है, श्रवण करु आदि परमात्माविषे विष्णु भगवान्का फुरणा हुआ, जो चार भुजा धारै, संसारकी रक्षा करनी, शुद्ध चेष्टा राखनी अरु अवतार धारण, धर्मकी रक्षा करनी अरु पापीको मारणे यह आदि फुरणा हुआ है. हे रामजी! यह क्रिया स्वाभाविक ही जो आनि प्राप्त हुई है, इस क्रियाका इनको रागद्वेषकरिकै हेयोपादेय कछु नहीं अरु क्रियाका इनको अभिमान भी नहीं, जो हम करते हैं, इसीते क्रिया इनको बन्ध नहीं करती, ताते यह संसार फुरणेमात्र है, जब तू फुरणेते रहित होवैगा, तब तेरे ताईं त्रिपुटी न भासैगी, आत्माते इतर कछु भासैगा, ताते तू अज्ञानरूप फुरणेते रहित होहु, जब तुमको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब तू जानैगा कि, मेरे विषय फुर दृश्य अदृश्य कछु नहीं अरु आत्मपद है, जिसविषे एक कहना भी नहीं, तब द्वैत कहांते होवै? हे रामजी! दृश्य अदृश्य फुरणा अफुरणा अरु विद्या अविद्या, यह सब जतावनेके निमित्त कहते हैं अरु आत्माविषे कहना कछु नहीं, आत्मा एक है, जिसविषे द्वैतका अभाव है, जब चित्तपरिणाम बहिर्मुख होते हैं तब विश्वका भान होता है अरु जब चित्त है अंतर्मुख परिणाम पाता है तब अहंताममताका नाश होता है अरु चेतनमय शेष रहता है अरु जब अतिशय अंतर्मुख परिणाम पाता है, तब चेतन कहना भी नहीं रहता अरु जब इसते भी अतिशय परिणाम पाता है, तब नहीं कहना भी नहीं रहता. हे रामजी! ऐसा आत्मा तेरा अपना आप

स्वरूप है अरु शांत पद है जिसविषे वाणीकी गम नहीं जो ऐसा कहिये अरु तैसा कहिये ऐसा कहिये इंद्रियोंका विषय है अरु तैसा कहिये इंद्रियोंते पर है, जब तू अपनेविषे स्थित होवैगा, तब जानैगा कि, मेरेविषे अहं फुरणा कछु नहीं, आत्मरूपी सूर्यके साक्षात्कार हुएते दृश्यरूपी अंधकारका अभाव हो जावैगा काहेते कि, जो तेरा आत्मा अपना आप है, केवल शांतरूप है अरु निर्मल है, जैसे गम्भीर समुद्र वायुते रहित होता है, तैसे आत्मारूपी समुद्र संकल्परूपी वायुते रहित गम्भीर शुद्ध होता है अरु यह संसार चित्तका चमत्कार है, सो चित्त निरंश है, तिसविषे अंशांशी भाव नहीं; अद्वैत है. हे रामजी! जब ऐसे बोधविषे स्थित होवैगा, तब इस विश्वको भी आत्मरूप देखैगा अरु बोध विना देखैगा, तब विश्वका भान होवैगा. ताते हे रामजी! बोधविषे स्थित होहु. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! सदाशिवका आदि फुरणा हुआ है; जो त्रिनेत्र, अरु विश्वका संहार करणा अरु शिरकी माला धारणी अरु ब्रह्माके चार मुख अरु चारों वेद हाथविषे अरु संसारकी उत्पत्ति करणी ऐसे फुरणा हुआ है. हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र यह तीनों एकरूप हैं अरु चेष्टा इनकी स्वाभाविक यही बनी पडी है, न रागकरिकै अंगीकार किया है न द्वेषकरिकै त्याग करते हैं अरु यह संज्ञा भी लोकके देखनेमात्र हैं, अपने ज्ञानविषे कछु नहीं करते, जो बोधविषे ही जाग्रत् है, बोधविषे जाग्रत् क्या कहिये अरु कैसे होता है, सो श्रवण करु, एक सांख्य मार्गकरि होता है अरु एक योगमार्गकरि होता है; सांख्य कहिये तत्त्व अरु मिथ्याका विचारणा, तत्त्व कहिये मैं आत्मा हौं, सत् हौं अरु चेतन हौं अरु मिथ्या सर्व दृश्य जड असत् है, मेरेविषे अज्ञानकरि कल्पित है, मैं आत्मा अद्वैत हौं, मेरेविषे अज्ञान अरु दृश्य दोनों नहीं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होता, सो सांख्य विचार है अरु योग कहिये प्राणोंका स्थित करना, जब प्राण स्थित होते हैं, तब मन भी स्थित हो जाता है अरु जब मन स्थित हो जाता है, तब प्राण भी स्थित होते हैं, इनका परस्पर संबन्ध है. राम उवाच–हे भगवन्! जब प्राण स्थित हुए मुक्त होता है; तब मृतक पुरुषके प्राण नहीं रहते, निवृत्त हो जाते हैं, तब सब मुक्त

हुए चाहिये. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! प्रथम तौ वर्णाश्रम कहे कि, क्या है, यह जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी वासना करता है, बहुरि शरीरको त्यागिकरि आकाशविषे स्थित होता है, इसका नाम मरणा है, तिस वासनारूप प्राणकरिकै बहुरि इसको संसारभान होता है अरु जब प्राणकी वासनाक्षय होती है, तब मुक्त होता है, ज्ञानीकी वासना क्षय हो जाती है,तातें जन्ममरणसों रहित होता है जैसे भूना बीज बहुरि नहीं उगता,तैसे ज्ञानीको वासनाके अभावते जन्ममरण नहीं होता. हे रामजी! जन्ममरण दोनों मार्गकरि निवृत्त होता है अरु दोनोंका फल कहा है. हे रामजी! ज्ञानकरिकै चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है अरु योगकरिकै प्राणवायु स्थित होता है, तब वासना क्षय हो जाती है, जब स्वरूपकी प्राप्ति होती है तब संसारके पदार्थका अभाव हो जाता है. जैसे रसायनकरि तांबा सोना भया, तब तांबाभाव नहीं रहता, तैसे विश्वरूपी तांबेकी संज्ञा नहीं रहती, जैसे तांबाभाव जाता रहता है तैसे ज्ञानकरि जब चित्त सत्यरूप हुआ फिरि संसारी नहीं होता अरु आत्माविषे न बंध है, न मुक्त है, एक परमात्मा अद्वैत है, तब बंध कहां अरु मुक्त कहां. बंध अरु मुक्त चित्तके कल्पे हुए हैं अरु चित्त शांत करनेका जो उपाय है, सो कहा है, जिसकरि शांत होता है, इसीको मुक्त कहते हैं, अपर बंध मुक्त कोऊ नहीं. चित्तके उदय होनेका नाम बंध है, चित्तका शांत होना यही मुक्ति है. हे रामजी! जब मन अपने वश होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अथवा प्राण स्थित होते हैं, तब आत्मपद प्राप्त होता है अरु यह संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है, जब वासना निवृत्त होती है, तब आत्मपदविषे स्थिति होती है, जैसे मेघ जलसंयुक्त होते हैं तब गर्जते हैं अरु वर्षा करते हैं, जब वर्षाकरि रहित हैं, तब शांत हो जाते हैं, तैसे जब वासना क्षय होती है, तब शांत चित्त हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे बादल अरु कुहिड निवृत्त हो जाते हैं अरु शुद्ध निर्मल आकाश ही रहता है, तैसे वासनारूपी बादल अरु कुहिडके निवृत्त हुए आत्मा शुद्ध केवल चेतन ही भासता है, एक मुहूर्त भी चित्त

विना स्थित होवे, तब तेरे ताईं आत्मपदकी प्राप्ति होवे जबलग चित्तकी वासना क्षय नहीं होती, तबलग बड़े भ्रमको देखता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे प्राणमनःसंयोग-विचारणं नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

वेतालप्रथमप्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! संसार मृगतृष्णाके जलरूप है, असत् है, आभासमात्र पड़ा फुरता है, तिसपर एक आख्यान आगे हुआ है, सो कहता हूं तू श्रवण कर, मंदराचल पर्वत दक्षिणदिशाविषे है, तिसकी अटवी-विषे एक वैताल रहता था, महाभयानक तिसका आकार था अरु मनु-ष्यका आहार करता था, तिसके मनविषे विचार उपजा कि, किसी नगरको भोजन करौं अरु वैताल एक समय साधुका संग भी करता था, जो कछु वह साधु तिस वैतालको भोजन कराता था, तब साधुसंगके प्रसा-दकरि वैतालके मनविषे यह बुद्धि उपजी कि मेरी कौन गति होवैगी, मेरा आहार मनुष्य हो रहा है अरु मैं जो मनुष्यका भोजन करता हौं सो बड़ी हत्या है, ताते मैं एक वृत्ति करौं, कि जो मूर्ख अज्ञानी मनुष्य हैं, तिनका भोजन करौं अरु जो उत्तम पुरुष हैं, तिनका आहार न करौं. हे रामजी ! ऐसी वृत्ति तिस वैतालने की, यद्यपि क्षुधाकरि आतुर भी होवै अरु भले मनुष्य आय प्राप्त होवै तौ भी उनका आहार न करै, ऐसे होते एक समय क्षुधाकरि बहुत व्याकुल भया अरु रात्रिके समय घरते बाहर निकसा, तब उस नगरका राजा वीरयात्राको रात्रिके समय निकसा था, तिस राजाको देखिकरि वैतालने कहा. हे राजा ! तू मेरे ताईं अब आय प्राप्त हुआ है, मैं तुझको भोजन करता हौं, तू कहां जावैगा, तब राजाने कहा, हे रात्रिके विचरणेहारे वैताल ! जब तू मेरे निकट अन्यायकरि आवैगा, तब तेरा शीश सहस्र टुकडे होवैगा अरु तू गिरैगा, तब वैतालने कहा, हे राजा ! मैं

तुझते डरता नहीं, हे आत्महत्यारे! मैं तेरे ताईं भोजन करौंगा, भावै कैसा बली तू होवै, मैं डरता नहीं परंतु एक प्रतिज्ञा मेरी है, अज्ञानीको भोजन करता हौं अरु ज्ञानीको नहीं मारता जो तू ज्ञानी है, तो न मारौंगा, जो तू अज्ञानी है तो मारौंगा, जैसे बाज चिडीको मारता है, तैसे तुझको मारौंगा, जो तू ज्ञानी है तो मेरे प्रश्नका उत्तर दे, एक प्रश्न यह है कि, जिसविषे ब्रह्मांडरूपी अणु है सो सूर्य कौन है? अरु दूसरा प्रश्न यह है कि, जिस पवनविषे आकाशरूपी अणु उडते हैं सो पवन कौन है? अरु तीसरा प्रश्न यह है कि, केलेके वृक्षवत् है जिसविषे अपर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेके छीलेते अपर कछु नहीं निकसता, सो कौन वृक्ष है? अरु चौथा प्रश्न यह है कि, वह पुरुष कौन है? जो स्वप्नते स्वप्न बहुरि तिसविषे अपरस्वप्न देखता है अरु एक रहता है, परिणामको नहीं प्राप्त होता, इन प्रश्नोंका उत्तर कहु, जो प्रश्नका उत्तर न दिया तौ तेरे ताईं आहार करौंगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वेतालप्रथमप्रश्नोत्तरवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

वेतालप्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

राजोवाच—हे वैताल! इन प्रश्नोंका उत्तर सुन, ब्रह्मांडरूपी एक मिर्च बीज है अरु तिसविषे तीक्ष्णता आत्मा चेतन सतपद है अरु ऐसे मिर्च एक टास साथ कई सहस्र लगे हुए हैं अरु ऐसे टास एक वृक्षसाथ कई सहस्र लगे हुए हैं अरु ऐसे वृक्ष एक वनविषे कई सहस्र हैं अरु ऐसे कई सहस्र वन एक शिखरपर स्थित हैं अरु ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्वतपर स्थित हैं अरु ऐसे कई सहस्र पर्वत एक नगरविषे हैं अरु ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीपविषे हैं अरु ऐसे सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वीविषे हैं अरु ऐसे कई सहस्र पृथ्वी भव एक अंडविषे हैं अरु ऐसे कई सहस्र अंड एक समुद्रविषे लहरी हैं अरु ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुषके उदरविषे हैं अरु ऐसे

कई पुरुष एक पुरुषके गलेविषे माला परोई हुई हैं, ऐसे कई लाख कोटि सूर्यके अणु हैं, जिस सूर्यकारि सर्व प्रकाशमान हैं, सो सूर्य आत्मा है, जिसविषे अनंत सृष्टि स्थित हैं, हे वैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है, इदं करिकै तैसे सर्व सृष्टि जान जो यह सृष्टि सत्य है, तौ सब सृष्टि सत् जान जो यह सृष्टि स्वप्न है, तो सर्व सृष्टि स्वप्न जान अरु आत्मा ऐसा सूर्य है जिसते इतर अपर अणु भी कछु नहीं अरु सदा अपने आपविषे स्थित है, इसते अपर क्या पूछता है ऐसे आत्माविषे स्थित होउ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वैतालप्रश्नोत्तरवर्णनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

वेतालप्रश्नभेदवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो आत्मसत्तामात्र पद है जिस सत्तामात्र पदते कालसत्ता हुई है, तिसीते आकाशसत्ता हुई है, तिस ऐसे सत्पदते सर्व सत्ता प्रगट हुई है, सो सब संकल्पते उदय हुए हैं अरु संकलपके लय हुए सब लय हो जाता है अरु तैंने जो प्रश्न किया था, वह कौन सूर्य है, जिसते ब्रह्मांडरूपी अणु होते हैं, सो वह ब्रह्म सूर्य है, जिसते इतर अपर कछु नहीं अरु केलेका वृक्ष जो तैंने पूछा था, सो केलेकी नाईं विश्वके अंतर बाहिर आत्मा स्थित है, जैसे केलेके अंतर फोलेते शून्य आकाश ही निकसता है, तैसे विश्वके अंतर बाहिर आत्माते इतर अपर सार कछु नहीं निकसता, जो अद्वैत है तिसते इतर द्वैत कछु नहीं अरु वह पवन ब्रह्म है, जिस पवनविषे ब्रह्मांडके समूह उडते हैं अरु वह पुरुष स्वप्नते स्वप्न आगे अपर स्वप्न देखता है अरु एक अपने स्वतःविषे स्थित है, स्वप्न कहिये जो चित्तकला फुरती है, तब अनंत ब्रह्मांड भान होते हैं, तब भी इतर कछु हुआ नहीं एक ही रूप नटवत् रहता है, यह सब उसकी आज्ञासों वर्तते हैं अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है, स्थूलते स्थूल है अरु जिसविषे मन्दराचल पर्वत भी अणु है, ऐसा स्थूल है अरु जिसविषे वाणीकी गम नहीं,

अपने आपहीविषे स्थित है, इंद्रियोंते अगोचर इसकारि सूक्ष्मते सूक्ष्म है अरु पूर्णताकरिकै स्थूलते स्थूल है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वेतालप्रश्नभेद-वर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.
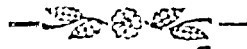
वेतालब्रह्मपदवर्णनम् ।

हे मूर्ख वैताल! तू आहार किसको करता है अरु क्षुधाकरि व्याकुल क्यों भया है, तू तौ आत्मा अद्वैतरूप है अरु आनन्दरूप है, तू अपने स्वतः-विषे स्थित होउ, जब ऐसे प्रश्नका उत्तर देकरि राजाने उपदेश किया, तब वैताल वहांते चला कि, एकांत स्थानविषे स्थित होऊं, ऐसे झूठ संसार मृगतृष्णाके जलविषे मेरे ताईं क्या प्रयोजन है तब एकांत स्थानविषे जायकरि स्थित हुआ अरु ध्यान लगाय बैठा, ध्यान कहिये कि, एक धाराप्रवाहक प्रवाह स्थित हुआ, धाराप्रवाहकप्रवाह कहिये आत्माका अभ्यास दृढ किया आत्माते इतर कछु फुरै नहीं, एक रस स्थित हुआ ऐसे ध्यानविषे स्थित होकारि वैताल सत् आत्मपदको प्राप्त हुआ. हे रामजी ! यह राजा अरु वैतालका आख्यान तुझको श्रवण कराया सो आत्मा कैसा है, जिसविषे ब्रह्मांड अणुकी नाईं स्थित है ताते निर्विकल्प आत्माविषे स्थित होउ अरु इंद्रियोंको बाहिरते संकोच करि स्थित करु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे राजवैतालसंवादे वेतालब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.
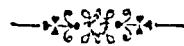
भगीरथोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! एक आख्यान आगे हुआ है, सो श्रवण करु. एक भगीरथ नाम राजा था, उसकी मूढता गयी है अरु स्वस्थ चित्त होकारि आत्मपदविषे स्थित हुआ, अपने प्रतिप्रवाहविषे विचरा है अरु

अपने पुरुषार्थकारि स्वर्गलोकते गंगा मध्यलोकविषे ले आया है, तैसे तू विचरु, सो कैसा था. जो अर्थी कोई आता था, तिसका अर्थ पूर्ण करता था, जिस पदार्थका कोई संकल्पकरि आवै, सो राजा उसका पूर्ण करै अरु जो राजासों मित्र भाव करे, तिसको चंद्रमारूप होवै, जैसे चंद्रमाको देखकर चंद्रमणि अमृतको द्रवता है, तैसे मित्रभावको राजा था अरु जो राजासों शत्रुभाव है, तिसको नाश करनेहारा था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नाश हो जाता है, तैसे ही शत्रुको नाश करनेहारा था, जैसे अग्नितै अनेक चिणगारे उठते हैं, तैसे शत्रुको शस्त्रोंकी भी वर्षा करता था अरु प्रतिप्रवाहविषे स्थित रहता था, भले बुरे सुखदुःखविषे एकसमान रहता था. राम उवाच–हे भगवन्! ऐसा जो भगीरथ था, तिसके मनविषे क्या आई जो गंगाको ले आया. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! एक समय अपने नगरको देखता भया कि सब लोक भले मार्गको त्यागिकारि बुरे मार्ग पापकर्मविषे लगे हैं अरु लोक मूर्ख हुए हैं तब लोकके उपकारनिमित्त तप करने लगा ब्रह्मा रुद्र अरु यज्ञ ऋषि तिनका तपकरिकै आराधन किया अरु गंगाके लावनेनिमित्त मंत्र जपने लगा, सो गंगा कैसी है, जिसका एक प्रवाह स्वर्गविषे चलता है अरु एक प्रवाह पातालविषे चलता है अरु एक प्रवाह राजा भगीरथने मध्यलोकविषे चलाया है अरु भगीरथ राजाने गंगाको लाकर समुद्रपर भी उपकार किया है, कैसा समुद्र जो अगस्त्य मुनिकारि सुखाया है तिस गंगाके आनेकरि समुद्रका दारिद्र्य भी निवृत्त हुआ, ऐसा जो राजा है, तिसके मनविषे विचार उपजा, संसारको देखिकारि कहने लगा कि एक ही बारंबार करना यह बडी मूर्खता है नित्य वही भोगना, वही खाना, इत्यादिक कर्म बहुरि करने अरु जिस कर्म कियेते पाछे सुख निकसै, तिसके करनेका कछु दूषण नहीं, ऐसे वैराग्य करिकै विचार उपजा कि, संसार क्या है, सो राजा यौवन अवस्थामें था, जैसे मरुस्थलविषे कमल उपजना आश्चर्य है, तैसे यौवन अवस्थाविषे विचार उपजना आश्चर्य है. हे रामजी! जब राजाको ऐसे विचार उपजा तब घरते निकसा अरु त्रितल ऋषीश्वर जो गुरु था, तिसके निकट जायकरि प्रश्न करत

भया. राजोवाच–हे भगवन्! वह कौन सुख है, जिसके पायेते जरा-मृत्युके दुःख निवृत्त होते हैं अरु यह संसारके सुख अंतरते शून्य हैं, इनके परिणामविषे दुःख है. त्रितलऋषिरुवाच– हे राजा! जानने योग्य एक ज्ञेय है, जिसके जानेते शांत पद प्राप्त होता है, सो आत्मज्ञान है, सो आत्मसुख कैसा है, न उदय होता है, न अस्त होता है, ज्योंका त्यों अपने आपविषे है. हे राजा! यह जरा मृत्यु तबलग भासता है जबलग अज्ञान है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवैगा तब अज्ञानरूपी अंधकार निवृत्त हो जावैगा, केवल शांत पदविषे स्थित होवैगा अरु आत्मानंद सर्वज्ञ है, जिसके जानेते चित्तजड़ग्रंथी टूटि जाती है, चित्तजड़ग्रंथी कहिये अनात्म देहइंद्रियादिकविषे आत्माभिमान करना, सो निवृत्त हो जाता है अरु सब कर्म भी निवृत्त होते हैं, संशय सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध स्वरूपको पायकरि ज्ञानी स्थित होते हैं, सो सत्ता सर्व है, सर्वगत नित्य स्थित है, उदय अस्तते रहित है. राजोवाच–हे भगवन्! ऐसे मैं जानता हौं, जो आत्मा चिन्मात्र सत्ता है अरु देहादिक मिथ्या है अरु आत्मा सर्वज्ञ है अरु शांतरूप है, निर्मल अच्युतरूप है, ऐसे जानता भी हौं, परंतु शांति मेरे ताईं नहीं प्राप्त भयी, जो आत्मा चिन्मात्र मेरे ताईं नहीं भासता अरु स्थिति नहीं भयी, सो कृपाकरि कहौ, जो मैं स्थित होऊँ. ऋषिरुवाच– हे राजा! ज्ञान तेरे ताईं कहता हौं, जिसके जानेते बहुरि दुःख कोई न रहैगा, तिस ज्ञानकरि ज्ञेयविषे तेरे ताईं निष्ठा होवैगी, तब तू सर्वात्मरूप होकरि स्थित होवैगा, जीवभाव तेरा नष्ट हो जावैगा. श्लोक–"असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यं च समचित्तत्व मिष्टानिष्टोपपत्तिषु" आसक्त न होवैगा अरु अनभिष्वंग होवैगा, आसक्त न होना कहिये देहइंद्रियादिकविषे आत्माभिमान न करना इनको आप न जानना अरु अनभिष्वंग कहिये पुत्र स्त्री कुटुंबके दुःखकरि आपको दुःखी न जानना अरु नित्य ही समचित्त रहना, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे एकरस रहना अरु चित्तको आत्मपदविषे जोडना, आत्माते इतर चित्तकी वृत्ति न जावै अरु एकान्त देशविषे स्थित होना अरु

अज्ञानीका संग न करना अरु ब्रह्मविद्याका सदा विचार करना, तत्त्वज्ञानके दर्शननिमित्त यह तेरे ताईं ज्ञानके लक्षण कहे हैं अरु इसते विपरीत है, सो अज्ञान है. हे राजा ! यह ज्ञेय जानने योग्य है, इसके जानेते केवल शांतपदको प्राप्त होवैगा अरु देहका अहंकार भी निवृत्त होवैगा. हे राजा ! पहिले अहं होता है, तब पाछे मम होती है, ताते तू अहं ममका त्याग करु, जब अहंममका त्याग करैगा तब आत्मपद अहंप्रत्ययकरि भासैगा, सो आत्मा सर्वज्ञ है अरु सर्व भी आप है, स्वतः प्रकाश है अरु आनंदरूप है, कैसा आनंदरूप है, जो संसारके आनंदते रहित है, जब ऐसे गुरुने कहा तब राजा बोलत भया. राजोवाच-हे भगवन् ! यह अहंकार तौ चिरकालका देहविषे रहता है अरु अभिमानी है, जैसे पर्वतपर चिरकालका वृक्ष स्थित होता है अरु तिसका नाम प्रसिद्ध होता है, तैसे ही अहंकार चिरकालका देहविषे अभिमानी है, तिसका त्याग कैसे करौं सो कहौ. ऋषिरुवाच-हे राजा ! अहंकार पुरुषप्रयत्नकरिकै निवृत्त होता है, सो श्रवण कर; प्रथम भोगविषे दोषदृष्टि करनी, भोगकी वासना न करनी अरु वारंवार अपने स्वरूपकी भावना करनी, विचार करना, इस करिकै जीव अहंकार तेरा निवृत्त हो जावैगा. हे राजा ! जब तेरा अहंकार निवृत्त होवैगा, तब तेरे ताईं सर्वात्मा ही भासैगा अरु दुःखते रहित शांतरूप स्वप्रकाश होवैगा. हे राजन् ! यह लज्जारूप फांसी जबलग निवृत्त नहीं होती, तबलग आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, लज्जा कहिये मैं हौं अरु मेरा है तृष्णा अरु शोक दुःख अरु भला कहावनेकी इच्छा इत्यादिक जो मोहके स्थान हैं, सो लज्जा है, ताते तू अहं ममते रहित होउ अरु तेरे शत्रु जो तेरा राज्य लेनेकी इच्छा करते हैं तिनको अपना राज्य दे अरु क्षोभते रहित होकरि पुत्र स्त्री बांधव इनके मोहते रहित होउ अरु मेरे मोहते भी रहित होउ अरु राज्यका त्याग करिकै एकांत देशविषे स्थित होउ अरु तिन शत्रुके घरते भिक्षा माँग, जो तेरे ताईं भला कहनेकी इच्छा न रहै, ताते उठि खडा होउ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भगीरथोपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५.

भगीरथोपाख्यानम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार जब त्रितल ऋषीश्वरने उपदेश किया, तब राजा उठि खडा हुआ, घरको गमन किया, गुरुका उपदेश हृदयविषे धारिकारि अपने राज्यविषे आनि स्थित हुआ अरु राज्य करने लगा, मनविषे विचार भी करै, जब केताक काल बीता तब राजाने अग्निष्टोम यज्ञका आरंभ किया, अग्निष्टोम यज्ञ कहिये धनका त्याग करना, सो राजा धनका त्याग करने लगा, त्रयदिनविषे धनका त्याग किया, हस्ती घोडे रथ भूषण वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य था, सो लोकको दिया, ब्राह्मणों अरु अर्थी अरु पुत्र स्त्रीको अरु अपने जो शत्रु थे तिनको पृथ्वीका राज्य दिया, जब इस प्रकार राज्य दिया तब राजा जो थे शत्रु तिनने देखा कि अब राजा भगीरथविषे पराक्रम कछु नहीं रहा, तब उन शत्रुओंने आयकरि इसका देश लिया, हवेली पर आनि स्थित हुए, जेते राजाके स्थान थे सो रोक लिये, राजा धोती अंगोछा साथ रहि गया, अपर सब शत्रुओंने लिया, तब राजा वहांते निकसा. हे रामजी ! इस प्रकार जब राजा निकसा, तब वनको गया, वनते अपर वनविषे विचरता रहै अरु शांतपद आत्माविषे स्थित हुआ; अनिच्छित विचरै, जब केताक काल व्यतीत भया तब राजा भगीरथ अपने देश-विषे आया, जो राजाके शत्रु थे तिनके गृहते भिक्षा माँगने लगा, तब शत्रु अरु लोगोंने देख बहुत पूजा करी अरु कहा. हे भगवन् ! तुम राज्यको ग्रहण करौ, तब राज्य ग्रहण न किया जैसे पृथ्वीपर पडा तृण तुच्छ बुद्धिकरिकै नहीं ग्रहण करता, तैसे राज्यका ग्रहण न किया, केताक काल वहां रहिकारि बहुरि चला, तब त्रितल ऋषि जो अपना गुरु था अनिच्छित तहां गया, तब गुरुने भी आत्मतत्त्वकरिकै ग्रहण किया अरु शिष्यने भी गुरुको आत्मतत्त्वकरिकै ग्रहण किया, गुरु अरु शिष्यकी भावनाते दोनों रहित हुए, फुरै कछु नहीं केताक काल एक स्थानविषे रहे बहुरि वनविषे इकट्ठे विचरने लगे अरु शांत आत्मपदविषे दोनों स्थित

रहे अरु राग द्वेषते रहित केवल एकरस स्थित रहे, तिनको न देह त्यागनेकी इच्छा, न देह रखनेकी इच्छा अनिच्छा प्रारब्धविषे स्थित रहैं तब स्वर्गलोकके जो सिद्ध थे, तिनने आनि पूजा करी अरु बडे ऐश्वर्य पदार्थ चढाये अरु बहुत अप्सरा आईं, जेते ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे, सो आनि स्थित हुए, तिनको उनने तुच्छ जाना, जो आत्मसुख कारि तृप्त थे अरु केवल आकाशवत् निर्मल थे, कलंकतारूपी मलते रहित प्रकाशरूप अरु समन्वित रहैं. हे रामजी ! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुआ है, तैसे तुम भी स्थित होओ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भगीरथोपाख्यानं नाम पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

भगीरथोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! केताक काल बीता, तब भगीरथ वहांते चला, एक देशका राजा मृतक हुआ था, तिसकी जो लक्ष्मी थी, सो राजाकी याचना करती थी, तिस कालमें अनिच्छित राजा भगीरथ भिक्षा माँगता आया, तब उस राजाके मंत्रीने राजा भगीरथको देखा, तब क्या देखा कि, जेते कछु गुण राजाविषे होते हैं तैसे ही इसविषे हैं, तब राजा भागीरथको कहा. हे भगवन् ! तुम इस राज्यको अंगीकार करौ. काहेते कि, तुमको अनिच्छित आय प्राप्त हुआ है, तब राजाने राज्यका ग्रहण किया अरु न कछु भला जाना, न बुरा, ऐसे ग्रहण किया, तब राजा हस्तिपर आरूढ हुआ अरु सैन्यकरि शोभत भया, देश अरु स्थान सैन्यकरि पूर्ण भये हैं, जैसे मेघकरि ताल पूर्ण होते हैं, तैसे ही देश अरु स्थान सैन्यकरि पूर्ण करत भया, जब नगारे अरु साज बाजने लगे तब राजा गृहविषे गया, सब महलमें स्त्रियां आय विद्यमान भयीं, तब वह देश जो राजा भगीरथका पहिला था, तिस देशते लोक आये तब मंत्री अरु प्रजाने आनिकरि कहा. हे भगवन् ! जिन शत्रुओंको तुमने राज्य

दिया था, तिनको मृत्युने भोगिकारि लिया है, जैसे मच्छी कोमल मांस ग्रासि लेती है, तैसे उनको मृत्युने ग्रास लिया है, ताते तुम राज्य करौ, यद्यपि तुमको इच्छा नहीं तौ भी राज्य करौ काहेते कि, जो वस्तु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसका त्याग करना श्रेष्ठ नहीं, ताते तुम राज्य करौ, तब राजाने उस राज्यका भी अंगीकार किया अरु राज्य करने लगा, जब पिछला वृत्तांत राजाने श्रवण किया कि, मेरे पितर कपिल मुनिके शापते भस्म हुए हैं अरु कूपविषे पडे हैं तब राजाने चिंतवना करी कि, मैं तिनका उद्धार करौं, तब राजा अपने मंत्रीको राज्य देकारि एकला वनको चला अरु विचार किया कि, तप करौं, तब राजा एक स्थानविषे स्थित होकारि तप करने लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु जगत् ऋषिका गंगाके लावनेनिमित्त आराधन किया, सहस्र वर्ष पर्यंत तप किया, तब गंगा मध्यमंडलविषे आयी, सो कैसी गंगा है,जो विष्णु भगवान्के चरणोंते प्रगट भयी है, तिस गंगाके प्रवाहको पितरोंके उद्धारनिमित्त राजा ले आया,बहुरि राजा भगीरथ समचित्त अरु शांत पदविषे स्थित होकारि विचरने लगा, जिसविषे न कोई क्षोभ है, न भय है, न कोई इच्छा है, केवल शांत आत्मपद है, तिसविषे स्थित भया है; जैसे पवनते रहित समुद्र अचल होता है, तैसे ही संकल्पविकल्पते रहित होकारि स्थित भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

शिखिध्वजचूडालाप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो भगीरथकी दृष्टि तेरे ताईं कही है, तिसको आश्रय कारिकै विचरौ, कैसी यह दृष्टि है कि, सर्व दुःखका नाश करती है अरु एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत भया है, ऐसा ही शिखिध्वज राजा होत भया. राम उवाच–हे भगवन् ! वह शिखिध्वज कौन था अरु किस प्रकार चेष्टा करत भया ? सो कृपा करिकै

कह्यो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! राजा शिखिध्वज आगे था अरु बहुरि भी होवैगा, सप्त मन्वंतर व्यतीत भये थे अरु चौकडी चतुर द्वापरयुगकी थी, तिस कालविषे हुआ था सो कैसा राजा था कि, संपूर्ण पृथ्वीका तिलक था अरु जैसे शूरवीर हैं, तिनते उत्तम था अरु जेता ऐश्वर्य है, तिसकरि संपन्न था अरु तिसविषे बंधमान न होत भया अरु जेते भोग हैं, तिनके भोगनेको समर्थ था अरु बडे ओजकरि संपन्न था, उदार अरु धैर्यवान् था, किसीपर जोर जुलुम न करता था समचित्त अरु शांतपदविषे स्थित था, संपूर्ण दुःखते रहित अरु जो कोई अर्थी होवै, तिसका अर्थ पूर्ण कर्त्ता ऐसा था अरु बहुरि भी होवैगा. राम उवाच-हे भगवन्! ऐसा जो ज्ञानवान् राजा था सो बहुरि जन्म किस निमित्त पावैगा ज्ञानी तौ बहुरि नहीं जन्म पाता, वह कैसे पावैगा? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे एक समुद्रविषे कई तरंग समान उठते हैं, कई अर्ध सम, कई विलक्षण भावकरि फुरते हैं, तैसे आत्मसमुद्रविषे कई आकार एक जैसे फुरते हैं, कई अर्धभावकरि फुरते हैं, कई विलक्षणभाव फुरते हैं, जो समान फुरते हैं, तिनकी चेष्टा अरु आकार एक जैसे दृष्टि आते हैं, ताते जाना जाता है कि, वही हैं, तैसे शिखिध्वजकी आगे ऐसी प्रतिमा होवैगी. हे रामजी! इस सर्गविषे सप्त मन्वंतर व्यतीत भये अरु चतुर चौकडी द्वापर युगकी बीती, तब जंबूद्वीप मालवदेशविषे श्रीमान् शिखिध्वज राजा होत भया, परंतु उस जैसा शिखिध्वज अपर होवैगा, वह न होवैगा जब षोडश वर्षकी आयुष्यमें मैं राजकुमार था तब एक समय राजा शिकारको निकसा अरु वसंतऋतुका समय था, तब राजा अपने बागमें जाय स्थित भया, तहां फूलोंके आश्चर्यदायक स्थान बने हुए थे, तहां कमलनियां मानो स्त्रियां हैं अरु धूडके कणके तिनके भूषण हैं अरु पुष्प तिनके समीप वृक्ष हैं, इसी प्रकार भँवरीभँवरेकी सुन्दर लीला देखत भया, तब राजाको चिंतवना भयी मेरे ताईं स्त्री प्राप्त होवै, तब मैं चेष्टा करौं अरु अधिक चिंतना भयी कि, कब मेरे ताईं स्त्री प्राप्त होवैं अरु कब फूलकी शय्यापर शयन करौंगा, इत्यादिक जो भोगकी वृत्ति है सो राजा चिंतना करने लगा, तब मंत्रीने देखा कि हमारे राजाको

मन स्त्रीपर है, ऐसे होइ जो राजाका विवाह करिये, सो मंत्री राजाके त्रिकालु ज्ञा रखत थे, शरीरकी अवस्था जानते थे, इसीसे जानत भये, तब एक राजा था, तिसकी कन्या बहुत सुन्दर अरु वरप्राप्ति चाहती थी, तिस राजाकी पुत्री साथ राजा शिखिध्वजको शास्त्रकी विधिसहित विवाह किया, तब राजा बहुत प्रसन्न होकरि अपने गृहविषे आया अरु तिस स्त्रीका नाम चूडाला था अरु बहुत सुन्दर थी, तिसविषे राजाका हेतु बहुत हुआ अरु स्त्रीका हेतु राजाविषे बहुत हुआ जो कछु राजाके मनविषे चिंतवना होवै, सो रानी आगे सिद्ध करि देवै, इस प्रकार परस्पर प्रीति आपसविषे बढ़ी, जैसी भँवरे अरु भँवरीकी प्रीति आपसविषे होती है, तब एक समय राजा मंत्रियोंको राज्य देकरि वनको गया; वनविषे नाना प्रकारकी चेष्टा करत भया अरु वनविषे विचरै, जैसे सदाशिव अरु पार्वती, जैसे विष्णु भगवान् अरु लक्ष्मी विचरैं, तैसे राजा अरु रानी विचरने लगे, बहुरि योगकला सीखने लगे, तब रानी राजाको योगकला शिखावै, संपूर्ण कलाकरि संपन्न हुए, परंतु चूडालाकी बुद्धि राजाकी बुद्धिते तीक्ष्ण शीघ्र ही जानि लेवै अरु राजाको शिखावै इसी प्रकार बहुत चेष्टा करै अरु विचारै.

इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे शिखिध्वजचूडालाप्राप्तिर्नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

चूडालाप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसी प्रकार राजा अरु रानीने अनंत भोग भोगे, जैसे छिद्रकरि कुंभते शनैः शनैः जल निकसता है, तैसे शनैः शनैः यौवनके गये वृद्ध अवस्था आय प्राप्त भयी, तब राजा अरु रानीको वैराग्यका कणका आनि उत्पन्न भया, तब वैराग्य करिकै यह विचारणे लगे कि, यह संसार मिथ्या अरु विनाशी है, एक जैसा नहीं रहता अरु यह विषयभोग भी मिथ्या है, जो एता काल हम भोगते रहे तब तृष्णा

पूर्ण न भयी, बर्धती गयी. हे रामजी ! इस प्रकार राजा अरु रानी वैराग्य-करिकै विचारत भये कि, यह भोग मिथ्या है अरु हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत हो गयी है, जैसे बिजलीका चमत्कार क्षणमात्र होकरि बीति जाता है, तैसे यौवन व्यतीत हो गया अरु मृत्यु निकट आया, जैसे नदीका वेग तलेको चला जाता है, तैसे आयुर्बल व्यतीत हो जाता है, जैसे हाथके ऊपर जल पाया वहिर जाता है, तैसे यौवन अवस्था निवृत्त हो गयी है अरु यह शरीर कैसा है, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे उपजिकरि लीन हो जाते हैं, तैसे ही शरीर क्षणभंगुर है अरु जहां चित्त जाता है, तहां दुःख भी इसके साथ चले जाते हैं, निवृत्त नहीं होते, जैसे मांसके टुकडे पाछे ईल पक्षी चला जाता है, तैसे जहां अज्ञान है, तहाँ दुःख भी पाछे जाते हैं अरु यह शरीर भी निवृत्त हो जाता है, जैसे आंबका पका फल वृक्ष साथ नहीं रहता, गिरि पडता है, तैसे शरीर भी नष्ट हो जाता है, जो शरीर अवश्य गिरता है, तिसका आसंग करना क्या है, जैसे सूखा पान वृक्षते गिर पड़ता है, तैसे यह शरीर गिर पडता है, ताते हम ऐसा कछु करै, जो संसाररूपी विषूचिका निवृत्त होवै, सो संसाररूपी विषूचिका ब्रह्मविद्याके मंत्रकरि निवृत्त होती है, ब्रह्मविद्याकरि ज्ञान उपजता है अरु आत्मज्ञानकरि सर्व दुःख निवृत्त हो जाते हैं, इसते अपर उपाय कोई नहीं, ताते आत्मज्ञानके निमित्त हम संतपास जावैं. हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै राजा अरु चूडाला संत जो हैं आत्मज्ञानी तिनके पास चलैं अरु आत्मज्ञानकी वार्त्ता करैं आत्मज्ञानविषे तिनका चित्त अरु भावना आपसमें विचार अरु चर्चा करनी, आत्मपरायण होकरि संतपास गये, सो कैसे संत हैं, जो संसारसमुद्रते तरावणेवाले हैं अरु आत्मवेत्ता हैं, तिनपास जायकरि पूजा करत भये अरु उनसों प्रश्न किया, तब राजा अरु रानी उनसों ब्रह्मविद्या श्रवण करने लगे, आत्मा शुद्ध है अरु आनंदरूप है, जिसके पायेते दुःख निवृत्त हो जाते हैं, चेतन हैं अरु एक हैं इस प्रकार सुनते भये. हे रामजी ! तब रानी चूडाला विचारविषे लगी, जब राजाकी कोऊ टहल करै, परंतु उसके चित्तकी वृत्ति विचारविषे रहै, सो विचार यह कि, मैं क्या हौं

अरु यह संसार क्या है अरु संसारकी उत्पत्ति किसते है ? ऐसे विचार-करि जानने लगी कि, यह पंचतत्त्वका शरीर है, सो भी मैं नहीं, काहेते कि शरीर जड है अरु यह कर्म इंद्रियां भी जड हैं, जैसा शरीर है, तैसे शरीरके अंग हैं, यह जो चेष्टा करते हैं, सो ज्ञानइंद्रियांकरिकै करते हैं; सो ज्ञानइंद्रियां भी मैं नहीं, काहेते कि यह भी जड है, मनकरि मनकी चेष्टा होती है, सो मन भी जड है तिसविषे संकल्प विकल्प चेतना है, सो बुद्धिकरि है अरु बुद्धि भी जड है, जो तिसविषे निश्चय चेतना है, सो अहंकारकरिकै होता है अरु अहंकार भी जड है, जो तिसविषे अहं चेतनाकरिकै होती है, सो चेतनता भी जीवकरिकै होती है, सो जीव भी मैं नहीं काहेते कि, यह जीवत्व फुरनरूप है अरु मेरा स्वरूप अफुर है, सदा उदयरूप है अरु सन्मात्र है, बडा कल्याण है, जो चिरकालकरिकै मैं अपने स्वरूपको पाया है, सो कैसा पद है, अवि-नाशी है, अनंत है अरु आत्मा है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे मैं निर्मल हौं अरु विगतज्वर हौं, रागद्वेषरूपी तापते रहित हौं अरु चिन्मात्र पद हौं अरु अहं त्वंते रहित हौं, मेरेविषे फुरणा कोई नहीं, इसीते शांतरूप हौं, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल पर्व-तते रहित शांतरूप है, तैसे चित्तते रहित अचल हौं अरु अद्वैत हौं, कदाचित्, स्वरूपते परिणामको नहीं प्राप्त भया. ऐसा जो तन्मात्र पद है, तिसकी ब्रह्मवेत्ताने संज्ञा कही है कि ब्रह्म है, चेतन है अरु पर-मात्मा है, इत्यादिक नाम आचार्यने रक्खे हैं अरु यह आत्मा ही मन बुद्धि आदिक अरु दृश्य संसाररूप होकरि पसरा है अरु स्वरूपते अच्युत है, गिरा कदाचित् नहीं अरु फुरणेकरिकै आकार भासते हैं, तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे बड़ा पर्वत होता है, तिसके पत्थर वटे होते हैं, तौ भी पर्वतते इतर कछु नहीं, तैसे यह दृश्य आत्माते इतर कछु नहीं अरु यह आकार कैसे हैं, जैसे गंधर्वनगर नाना आकार हो भासता है, तैसे यह संसार है, ज्ञानवान्को एक रस है अरु अज्ञा-नीको भेदभावना है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने कलपता है, हस्ती घोड़ा राजा प्रजाते आदि लेकरि नाम रखता है अरु जिसको मृत्ति-

काका ज्ञान है, तिसको मृत्तिका ही भासती है, इतर कछु नहीं भासता, तैसे अज्ञानकरिकै नाना रंग भासते हैं, अब मैं जाना है, एक रस हौं. हे रामजी ! इस प्रकार चूडाला आपको जानती भयी, कि मैं सन्मात्र हौं अरु अच्छेद हौं, अदाह हौं, स्वच्छ हौं अरु अक्षर हौं, निर्मल हौं, मेरेविषे अहं त्वम् एक अरु द्वैत कोई शब्द नहीं अरु जन्म मृत्यु भी कोई नहीं, यह संसार चित्तकरि भासता है अरु आत्मा स्वरूप है, देवता यक्ष अरु राक्षस स्थावर जंगम आदिक सर्व आत्मरूप हैं, जैसे तरंग बुद्बुदा समुद्रसों भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं, दृश्य द्रष्टा दर्शन यह भी आत्माकी सत्ताकरि चेतन हैं, इनको आपते सत्ता कछु नहीं अरु मेरेविषे अहंका उत्थान कदाचित् नहीं, अपने आपविषे स्थित हौं, अब इसी पदको आश्रय करिकै चिरकाल इस संसारविषे विचरौंगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालाप्रबोधो नामाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

चूडालात्मलाभवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार चूडाला विचार करत भयी सो कैसी चूडाला है, कि तृष्णा निवृत्त भयी है जिसकी, दुःख भय अरु भोगवासना सब निवृत्त भयी है, केवल शांत आत्मपदको पायकरि शोभत भयी है, जो पाने योग्य पद है, तिसको पायकरि जानत भयी, कि एता काल मैं अपने स्वरूपते गिरी रही हौं, अब मेरे ताईं शांति हुई है अरु दुःख सब मिटि गये हैं, अब मेरे ताईं ग्रहण त्याग कछु नहीं. हे रामजी ! अपने आत्मस्वभावविषे स्थित भयी अरु एकांत बैठिकरि समाधिविषे लगी, जैसे वृद्ध गौ पर्वतकी कंदराको पायकरि बहुत तृणघासकरि प्रसन्न होती है, तैसे अपने आनंदरूपको पायकरि चूडाला स्थित भयी. हे रामजी ! ऐसे आनंदको प्राप्त भयी, जिसको वाणीकरि नहीं

कह सकता, तब राजा शिखिध्वज आय रानीको देखिकरि आश्चर्यको प्राप्त भया अरु कहा—हे अंगना! अब तू बहुरि यौवन अवस्थाको प्राप्त भयी है, तेरे ताईं कोऊ बडा आनंद प्राप्त भया है, कदाचित तैंने अमृतका सार पान किया है, ताते अमर भयी है, अथवा तेरे ताईं किसी योगेश्वरने कलाको प्राप्त करी है, अथवा त्रिलोकीका ऐश्वर्य तुझको प्राप्त भया है. हे अंगना! तेरे ताईं कौन वस्तु प्राप्त भयी है, तेरे चित्तकी वृत्ति मैं ऐसे जानता हौं कि, अमृतका सार तैंने पान किया है अरु त्रिलोकीके राज्यते भी तैंने कोई अधिक पदार्थ पाया है. तू बडे आनंदको प्राप्त भयी है, तिस आनंदका आदि अंत कोई नहीं देख पडता अरु तेरेविषे भोगवासना भी नहीं दीखती, शांत हो गयी है, जैसे शरत्काल आकाश निर्मल होता है. तैसे तेरेविषे निर्मलता दीखती है अरु तेरे श्वेत बाल भी बडे सुंदर दृष्टि आते हैं, सो कहहु तेरे ताईं क्या वस्तु प्राप्त भयी है? चूडालावाच—हे राजन्! यह जो कछु देखता है, सो किंचित है अरु इसते जो रहित निष्किंचन पद है, तिसको मैं पायी हौं, तिसका आकार निष्किंचित है अरु दूसरेका अभाव है, तिसीको पायकरि मैं श्रीमान् भयी हौं अरु जेते कछु भोग हैं, तिनते रहित अभोगको भोगा है, तिस भोगकरि तृप्त हौं, अभोग कहिये आत्मज्ञान, तिसको मैं पाया है, आत्माविषे विश्राम है, सदा शांतरूप श्रीमान् हौं. हे राजन्! जेते यह राजभोग सुख हैं, तिनको त्यागिकरि परमसुखको भोगती हौं रागद्वेषते रहित होकरि मैं कैसी हौं, जो मैं नहीं अरु मैं ही स्थित हौं अरु जेता कछु नेत्रोंकरि दीखता है अरु इंद्रियोंकरि जानता है अरु मनकरि चिंतवना करता है, सो सब स्वप्नवत् मिथ्या है अरु मैं तहां स्थित भयी हौं जहां इंद्रियां अरु मनकी गम नहीं अरु अहंकारका उत्थान भी जिसविषे नहीं तिस पदको मैं पायी हौं, जो सर्वका आधार है अरु सर्वका आत्मा है अरु सर्व जो अमृत है, तिसका सार अमृत मैं पान किया है, ताते मेरा नाश कदाचित् नहीं अरु भय भी कदाचित् नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालात्मलाभवर्णनं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

पंचकविलासवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार रानीने जब कहा, तब राजा शिखिध्वज तिसके वचनोंको न जानत भया, हाँसी करी अरु कहा-हे मूर्ख स्त्री! यह तू क्या कहती है, कि प्रत्यक्ष वस्तुको झूठ कहती है अरु कहती है, मैं नहीं देखती अरु जो असत् है, दीखता नहीं तिसको सत्य कहती है, मैं देखती हौं, यह वचन तेरे कौन मानैगा, इन वचनों-वाला शोभा नहीं पाता अरु कहती है कि, ऐश्वर्यको त्यागिकारि श्रीमान् भयी हौं, निष्किंचनको पायकरि इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता अरु कहती है, इन भोगोंका त्याग किया है अरु इनते जो रहित अभोग है, तिसको मैं भोगती हौं, ताते तू मूर्ख है अरु कहती है मैं कछु नहीं, बहुरि कहती है, मैं ईश्वर हौं, इसते महामूर्ख दृष्टि आती है अरु जब इसीविषे तेरा चित्त प्रसन्न है, तब त्यों विचरु परंतु यह बात सुनिकरि सत कोऊ न मानैगा, जैसे तेरी इच्छा है, तैसे विचर, परंतु तेरे ताईं यह शोभा नहीं. हे रामजी! ऐसे कहिकरि राजा उठि खड़ा हुआ, मध्याह्नका समय था, स्नानके निमित्त गया, तब राणी मनविषे बहुत शोकवान् भयी अरु विचार किया कि बडा कष्ट है, राजाने आत्मपदविषे स्थिति न पायी अरु मेरे वचनोंको जानत न भया, रानी ऐसे मनविषे धारिकरि अपने आचार-विषे प्रवर्त्तने लगी, बहुरि अपना निश्चय राजाको न दिखाया, जैसे अज्ञान कालविषे चेष्टा करती थी, तैसे ही ज्ञानको [illegible]रि चेष्टा करने लगी तब एक समय रानीके मनविषे आया, कि मैं प्राणोंको ऊपर चढाऊं अरु ऊर्ध्वको लावौं, उदान अरु अपानको अपने वश करौं, किस निमित्त कि आकाशको भी उडौं, अधःको भी गमन करौं, ऐसे चिंतवना-करिकै रानी योगविषे स्थित भयी; प्राणायाम करने लगी. राम उवाच-हे भगवन्! यह संसार संकल्पते उत्पन्न भया है, स्थावरजंगमरूप संसारवृक्ष है अरु संकल्प इसका बीज है, तब वह प्राणायाम पवन है, जिसकरि आकाशको उडते हैं अरु फिरि तलेको आते हैं अरु अज्ञानी

पुरुष यत्नकरिकै सिद्ध करते हैं अरु ज्ञानवान् कैसे लीलाकरि विचरते हैं? इसका उत्तर कहो . वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! तीन प्रकारकी सिद्धि होती है, सो श्रवण करु, एक तौ उपादेय है, कि यह वस्तु मेरे ताईं प्राप्त होवै, तिसनिमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं अरु एक जो यह दुःख मेरा निवृत्त होवै, मैं सुखी होऊं महाअज्ञानीको यह चिंता रहती है अरु एक यह है कि मैं कर्म करता हौं, तिसका फल मेरे ताईं सिद्धि होवै, यह भी अज्ञानी है, काहेते कि आपको करता मानता है अरु ज्ञानवान् इनते उल्लंघित वर्तता है, कदाचित् ज्ञानवान् इसविषे वर्तता है, तौ भी तिसके निश्चय-विषे यह है कि न मैं कर्ता हौं न भोगता हौं अरु योगकरिकै इस प्रकार सिद्ध होते हैं, जो देश काल वस्तु क्रिया तिनके अधीन हो जाते हैं, क्रिया कहिये मुखविषे गुटका राखना तिसकरि जहां चाहै तिसी ठौर-विषे जाय प्राप्त होवै अरु अंजन नेत्रोंविषे पाना, तिसको देखा चाहै, तिसको लेवै अरु खड्ग हाथविषे धारिकरि संपूर्ण पृथ्वीको वश-करि लेना, यह तौ क्रिया पदार्थ हैं अरु देश यह कि सर्व पर्वत हैं, तिनविषे केती पीठ हैं अरु बडा उत्तम है अरु जिस प्रकार यह सिद्ध होते हैं, सो श्रवण कर, एक कुंडलिनी शक्ति है; आधार चक्रविषे नाभिके तले सर्पिणीकी नाई तिसविषे कुंडल है, कुंडलको मारि बैठी है अरु वासना ही तिसविषे विष है अरु जेती नाडी हैं, तिनकी समष्टि नहीं है, तिस कुंडलिनीविषे जब मनन होता है तब मन होकारि प्रगट होता है अरु निश्चय होता है, तब बुद्धि प्रगट होती है, जब अहंभाव होता है, तब अहंकार प्रगट होता है, जब स्मरण होता है, तब चित्त प्रगट होता है अरु जब तिसविषे स्पर्शकी इच्छा होती है, तब पवन प्रगट होता है, इसी प्रकार पंचतन्मात्रा अरु चारों अंतःकरण प्रगट होते हैं अरु जेती नाडी हैं, सो सर्व कुंडलनीते प्रगट होती हैं अरु आत्माका प्रगट होना भी तिसीते जानता हौं. राम उवाच–हे भगवन् ! आत्माका प्रगटहै तिसते कैसे जाना जाता है, आत्मा तौ देश काल वस्तुके परि-च्छेदते रहित है, सर्व देश, सर्व काल, सर्व वस्तुकरि पूर्ण है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे देख पडता है अरु धूप सर्व ठौर देख पडता है, तैसे ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है अरु प्रगट

सात्त्विक गुणविषे देख पडता है, जेती कछु नाडी अरु इंद्रियां हैं, तिनका उदय होना कुंडलिनी शक्तिसों है अरु जब यह जीव कुंडलिनी शक्तिविषे स्थित होकरि पवनको स्थिर करता है, तब जेती कछु अंतर प्राणवायु है, सो सर्व इसके वश होता है, जैसे सर्व सेना राजाके वश होती है, तिसी प्रकार सर्व इंद्रियां इसके वश होती हैं अरु जो इसके वश प्राणवायु नहीं होती, तौ इसको आधि व्याधि रोग उपजते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालात्मलाभे पंचकविलासो नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१.

अग्नीषोमविचारवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होती है? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! आधि नाम है मनकी पीडाका अरु व्याधि नाम है देहके दुःखका, आधि तब होती है जब इसको संकल्प होता है, कि यह सुख मेरे ताईं प्राप्त होवै अरु वह वस्तु इसको नहीं प्राप्त होती, तब चिंताकरिकै दुःख पाता है अरु व्याधि तब होती है, जब वात पित्त कफका विकार शरीरविषे होता है अरु दुःख पाता है, जब मन अरु शरीरका दुःख इकट्ठा होता है, तब आधि व्याधि दुःख इकट्ठे होते हैं, जब भिन्न भिन्न होते हैं, तब दुःख भिन्न भिन्न होते हैं, अज्ञानीको अरु ज्ञानवान्को न आधि होती है, न व्याधि होती है अरु यह योगकी कला मैं विस्तारकरि नहीं कही, काहेते कि पूर्वके ज्ञानक्रमका प्रसंग रहा जाता है अरु जेती कला है, तिन सर्वको मैं जानता हौं, परंतु यह कला ज्ञानमार्गको रोकनेहारी है, इसीते विस्तारकरिकै नहीं कहता अरु वासना चार प्रकारकी है, सो श्रवण कर, एक वासना सुषुप्ति है, अरु एक वासना स्वप्न है अरु एक वासना जाग्रत् है अरु एक क्षीण वासना है; स्थावर योनिको सुषुप्त वासना है, सो आगे फुरैगी अरु तिर्यक् योनिको स्वप्न वासना है, जो उनको वासनाका ज्ञान भी नहीं अरु जंगम जो है मनुष्य अरु देवता आदिक तिनको जाग्रत् वासना है.

जो वासनाविषे लगे हैं, यह तीन वासना अज्ञानीको है अरु क्षीण वासना ज्ञानीकी है, जो वासनाकी सत्यता नष्ट भयी है, तिसको वासना कोऊ नहीं रहती, जब इस प्रकार वासना निवृत्त भयी, तब आगे संसार भी नहीं रहता अरु जब कुंडलनीशक्तिते वासना फुरती है, तब पंच तन्मात्राद्वारा संसार भान होता है, संसाररूपी वृक्षका बीज वासना ही है, दशों दिशा संसारवृक्षके पत्र हैं अरु शुभ अशुभ कर्म तिसके फूल हैं अरु स्थावर जंगम तिसके फल हैं, जैसी जैसी वासना पुर्यष्टकासाथ मिलिकरि जीव करता है, तैसा ही आगे फल होता है. हे रामजी! ताते वासनाका त्याग कर, वासना ही संसाररूपी वृक्षका बीज है, यही पुरुषप्रयत्न है, सो निर्वासनिक होना; तब विश्व कदाचित् न भासैगा, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकाररूपी रात्रि नहीं रहती, तैसे ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हुए संसाररूपी अंधकार निवृत्त हो जाता है. हे रामजी! आधि व्याधि बडे रोग हैं, सो मनकरि होते हैं. राम उवाच–हे भगवन्! आधि रोग तौ मनकरि होता है अरु व्याधि तौ शरीरका रोग है; मन-करि कैसे होता है? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! व्याधि दो-प्रकारकी है, एक लघु है, एक दीर्घ है. लघु कहिये कि, शरीरको कोई दुःख आनि प्राप्त होवै, सो पुण्यकरि अथवा स्नानकरि अथवा जपकरि निवृत्त हो जावै, यह लघु कही है अरु दीर्घ व्याधि सो कहिये, जो जन्म मरणका रोग है, सो बडा रोग है, मनके शांत हुए विना निवृत्त नहीं होता, इसते आधि व्याधि दोऊ मनकरि होते हैं. राम उवाच–हे हे भगवन्! व्याधि मनकरि कैसे होती है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब चित्त शांत होता है, तब रोग कोऊ नहीं रहता अरु जबलग चित्त शांत नहीं होता, तबलग आधि व्याधि होती है, सो श्रवण कर कि, कैसे होती है, जो कछु बाहर अग्निकरि परिपक्व होता है तिसको पुरुष भोजन करते हैं, तब अंतर कुंडलिनी जो है, पुर्यष्टकासाथ मिली हुई जीवकला अरु प्राणोंकी समष्टिता, सो उदानपवन ऊर्ध्वमुख हो फुरती है अरु अपानपवन तिसते अधःको फुरता है, उदान अरु अपानका आपसविषे विरोध है, तिनके क्षोभते अग्नि उठता है, सो हृदय

कमलविषे आनि स्थित होता है, तब बहिर अग्निका पका भोजन हृद-यकी अग्नितें बहुरि पक्क होता है अरु सर्व नाड़ी अपने अपने भाग रसको ले जाते हैं, तब वीर्यवाली नाडी वीर्यकरिकै राखत है अरु रुधि-रवाली नाडी रुधिरकरि राखत है अरु जब राग अरु द्वेषकरिकै चित्त कुंडलनी शक्तिविषे क्षोभ होता है, तब नाडी अपने स्थानोंको छोड देती हैं, अन्न भी अंतर पक्क नहीं होता, तिस कच्चे रसकरि रोग उठते हैं, जैसे राजाको क्षोभ होता है, तब सैन्यको भी क्षोभ होता है अरु जब राजाको शांति होती है, तब सैन्यको भी शांति होती है, तैसे ही जब मनविषे क्षोभ होता है, तब रोग होते हैं अरु जब मनविषे शांति होती है, तब नाडी अपने अपने स्थानोंविषे स्थित होते हैं, रोग कोई नहीं होता. ताते हे रामजी ! आधि व्याधि तब होते हैं, जब पुरुषका चित्त निर्वासन नहीं होता, जब चित्त शांत होता है, तब रोग कोई नहीं रहता, ताते निर्वासनपदविषे स्थित होहु, तब रामजीने कहा, हे भगवन् ! पीछे तुमने कहा, कि मंत्रोंकरि भी रोग निवृत्त होता है, सो कैसे निवृत्त होता है ? यह कहौ. तब वसिष्ठजीने कहा, हे रामजी ! प्रथम पुरुषको श्रद्धा होती है, कि इस मंत्रकरि रोग निवृत्त होवैगा अरु पुण्यक्रिया जो दान आदिक हैं अरु संतजनकी संगति होत है अरु 'य र ल व' आदिक जो अक्षर हैं, इनके जपकरिकै अरु जेते कछु जप अरु मंत्र हैं, सो इन अक्षरोंकरि सिद्ध होते हैं, जब इनको भावना सहित जप करता है तब व्याधि रोग निवृत्त हो जाता है अरु योगे-श्वरका क्रम जो है, अणु स्थूल सो श्रवण कर, जब वह प्राण अरु अपान कुंडलिनी शक्तिविषे स्थित होते हैं अरु इनको वश करिकै योगी गंभीर होते हैं, जैसे मसक विषे पवन होवै, इसी प्रकार पवनको स्थित करिकै कुंडलिनी सुषुम्नाविषे प्रवेश करती है, तब ब्रह्मरंध्रविषे जाय स्थित होती है, एक मुहूर्त्तपर्यंत तहां स्थित होवै, तब आकाशविषे सिद्धिको देखत है, जिस प्रकार क्रम है, तैसे तुझको कहता हौं. हे रामजी ! सुषुम्नाके अंतर जो ब्रह्मरंध्र है, पूरककरि तिसविषे कुंडलिनी शक्ति जब जाय स्थित होती है, तहां अथवा रेचक प्राणवायुके प्रयोगते द्वादश अंगुलपर्यंत

मुखसों बाह्य अथवा अंतर ऊर्ध्वभूत मुहूर्त्त एक लगे स्थित होती है, तब आकाशविषे सिद्धोंका दर्शन होता है. राम उवाच--हे ब्राह्मण! जब ब्रह्मरंध्र में जीवकला जाय स्थित होती है, तब तहां सिद्धोंका दर्शन कैसे होता है, दर्शन तो नेत्रोंकरि होता है, सो नेत्र आदिक इंद्रियां वहां कोई नहीं होतीं, नेत्रों विना दर्शन कैसे होता है? वसिष्ठ उवाच–हे महाबाहु रामजी! भूचर जो हैं, पृथ्वीविषे विचरनेवाले, इंद्रियगण, तिनको नभश्चर जो हैं, आकाशविषे विचरनेवाले, तिनका दर्शन नहीं होता, परंतु दिव्य दृष्टिकरि दृष्टि आते हैं,चर्मदृष्टि साथ नहीं दृष्टि आते, विज्ञानके निकट जो निर्मलबुद्धि नेत्र होते हैं, तिनसाथ दर्शन होता है, जैसे स्वप्नविषे चर्मनेत्रों विना भी सर्व पदार्थ दृष्टि आते हैं, तैसे सिद्धोंका दर्शन होता है, परंतु एती विशेषता है कि स्वप्नके पदार्थ जाग्रत्‌विषे नहीं भासते अर्थ सिद्धि नहीं होते अरु सिद्धोंके समागमकी चेष्टा जाग्रत्‌विषे भी स्थिर-प्रतीत होती है, मुखके बाह्य जो द्वादश अंगुलपर्यंत अपानका स्थान है, जो रेचक प्राणायामका अभ्यास होता है अरु चिरपर्यंत प्राण स्थिरभूत होता है, तब और पुरियां अरु दिशाके स्थानमें प्राप्त होनेको सामर्थ्य होता है. राम उवाच–हे ब्राह्मण! जो पदार्थ चंचलरूप हैं, तिनका स्थिर होना कैसे होता है, वक्ता जो गुरु है सो कृपाकरि कहते हैं, दुष्टप्रश्न जो तर्करूप हैं, तिसकरिकै भी खेदवान् नहीं होते. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसी जैसी वस्तु हैं, तैसी तिसकी शक्ति स्वाभाविक होती है, यह आदि जगत्‌के फुरणे करि नीति भयी है, तैसे अबलग आत्माविषे स्वभाव शक्तिका फुरणा होता है, यह जो अविद्या है सो असत्‌रूप है, जो कहूँ वस्तुरूप होकरि भी भासती है, सो जैसे वसंतऋतुविषे भी शरत्कालके फूल दृष्टि आते हैं अरु वसंतऋतुके शरत्कालविषे भासते हैं अरु यह भी एक नीति है कि, इसकरिकै यह द्रव्यकी शक्ति ऐसे हो जावै, परंतु स्वरूपते सब ब्रह्मरूप है और द्वैत नानात्व कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, व्यवहारके निमित्त नानात्वकी कल्पना हुई है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं. राम उवाच–हे भगवन्! सूक्ष्म रंध्रते स्थूलरूप कैसे निकस जाती है,

अरु अणु सूक्ष्मरूप होकारि बहुरि स्थूलभावको कैसे प्राप्त होती है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जैसे आरेसे काष्ठ कटता है अरु उसके दो टुकडे हुए तिनको शीघ्र ही घर्षण करिये, तब तिनसों स्वाभाविक अग्नि प्रगट होता है, तैसे उदरविषे मांसमय जो मल है, तिसके मध्य हृदयकमल है, तिसविषे सूर्य अरु चंद्रमाकी स्थिति है, तिस कमलके अंतर दो कमल हैं, एक अधः दूसरा ऊर्ध्व, सो अधः चंद्रमाकी स्थिति है अरु ऊर्ध्व सूर्यकी स्थिति है, तिसके मध्यविषे कुंडलिनी लक्ष्मी स्थित है, जैसे पद्मराग मणिका डब्बा होवै, जैसे मोतियोंका भंडार होवै, तैसे उसका महा उज्ज्वलरूप है, जैसे आवर्त्त फेनके मिलनेते शल शल शब्द प्रगट होता है, तैसे उसते शब्द निकसता है, जैसे डंडसाथ हलायेते सर्पिणी शब्द करती है, तैसे उस कुंडलिनीसों प्रणवशब्द उदय होता है. हे रामजी ! आकाश अरु पृथ्वी जो है, ऊर्ध्व अरु अधःरूप दो कमल तिनके मध्यविषे कुंडलिनीशक्ति स्पंदरूपिणी स्थित है, जीवकला पुर्यष्टक अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्यकी नाईं हृदयरूप कमलकी भ्रमरी है, सो सबनका अधिष्ठान आदि शक्ति है,हृदयकमलविषे विराजमान है, तिस हृदय आकाशविषे कुंडलिनीशक्तिसों स्वाभाविक वायु निकसती है, सो कोमल मृदुरूप है, वही पवन निकसिकारि दो रूप होता है, एक प्राण अरु दूसरा अपान, सो अन्योन्य मिलिकारि स्फुरणरूप होता है, जैसे वृक्षके पत्र हलते हैं, तिसकारि शीघ्र ही अग्नि प्रगट होता है अरु बांसोंके घर्षणेते अग्नि प्रगट होता है, तैसे प्राण अपानते अग्नि प्रगट होकारि आकाशविषे उदय होती है, तब सर्व ओरते प्रकाश होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सर्व ओरते भुवन प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व ओरते प्रकाश होता है, सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार है, हृदयकमलका स्वर्णरूप भ्रमरा है, तिसके चिंतवनते योगी तद्गत होते हैं,सो प्रकाश ज्ञानरूप है, तिस तेजसाथ योगकी वृत्ति तद्गत होती है, अर्थ यह एकत्वभावको प्राप्त होती है, तब लक्ष योजनपर्यंत जो पदार्थ होवैं तिनका ज्ञान हो आता है प्रत्यक्ष दृष्टि पडे आते हैं, तिस अग्निका हृदयरूपी तालस्थान है, जैसे बडवाग्नि समुद्रविषे रहता है अरु जल ही ताके ईंधन हैं, जो जलको दग्ध करता है, तैसे हृदयरूपी

तालविषे तिसका निवास है अरु रस शीतलता जल ... को प्रचावत है, तिस हृदयकमलते जो अपानरूप शीतल वायु उदय होता है, तिसका नाम चंद्रमा है अरु प्राणरूप उष्ण पवन उदय होता है, सो सूर्यरूप है, सोई उष्ण अरु शीतल सूर्य चंद्रमा नामकरि देहमें स्थित हैं, आदिप्राणवायु सूर्यते अपानरूप चंद्रमाते सूर्यरूप होकरि स्थित होता है, सूर्य उष्ण अरु चंद्रमा शीतल है, इन दोनोंकरि जगत् हुआ है, विद्या अविद्या सत्य असत्यरूप जगत् दोनोंकरि युक्त है, सत्चित् प्रकाश विद्या उत्तरायण सूर्य अग्नि आदिक नामसों बुद्धिमान् निर्मलभाव कहते हैं अरु असत् जड अविद्या तम दक्षिणायन आदिक मार्ग यह चंद्रमारूप मलिन भाव कहते हैं. राम उवाच−हे भगवन्! अग्नि सूर्यरूप जो प्राणवायु है, तिसते शीतल जलरूप चंद्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है अरु अपानजल चंद्रमा रूपते सूर्य कैसे उत्पन्न होता है? वसिष्ठ उवाच−हे रामजी! सूर्य चंद्रमा जो हैं, अग्नि सोम सो परस्पर कार्यकारणरूप हैं, जैसे बीजते अंकुर अरु अंकुरते वृक्ष अरु वृक्षते बीज होता है, जैसे दिनसों रात्रि अरु रात्रिसों दिन होता है, छायासों धूप अरु धूपसों छाया होती है, तैसे सूर्य चंद्रमा परस्पर कार्यकारण होते हैं, कबहूँ इनकी इकट्ठी भी उपलब्धि होती है, जैसे सूर्यके उदय हुए धूप अरु छाया दोनों इकट्ठे आते हैं अरु कार्यकारण भी दो प्रकारका है, एक कार्य सत्यरूप परिमाणकरिकै होता है, एक विनाशरूप परिणामकरिकै होता है, एकते जो दूसरा होता है, जैसे बीज नष्ट हो गया तिसते अंकुर होता है, सो विनाशरूप परिणाम होता है अरु जैसे मृत्तिकाते घट उपजता है, सो सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कारणकार्यके भावाभावविषे भी इंद्रियों प्रत्यक्ष पाइये, तिसकरि नाम सत्यरूप परिणाम है अरु जो कार्यविषे इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता; दिनविषे रात्रि अरु रात्रिविषे दिनकी नाईं सो विनाशरूप परिणाम कहाता है, जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, तैसे अभाव भी प्रमाण है ताते एक विनाशभाव भी कारणरूप है, जो कहते हैं, अपना संवित्‌विषे कर्तव्य नहीं बनता, इत्यादिक युक्तिवादी कहते हैं सो इस अर्थकी अवज्ञा करते हैं, अपने अनुभवको नहीं जानते

है, अनुभवकी युक्ति उनको नहीं आती, यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रगट होता है अरु शीतलता प्रमाण है, जैसे अग्निके अभावते शीतलताके अभावविषे उष्णता पायी जाती है, दिनके अभावविषे रात्रि, छायाके अभावविषे धूप इत्यादिकका नाम अभाव प्रमाण कारण है अरु अग्निते धूम निकसता है, सो मेघ जाय होता है, इस प्रकार सत्त्वरूप प्रमाणकरि सोम जो है चंद्रमा, तिसका कारण अग्नि होता है अरु अग्नि नाश होकरि शीतलभावको प्राप्त होता है, तब इसका नाम विनाश प्रमाणकरि अग्नि सोम चंद्रमाका कारण होता है, सप्त समुद्रोंका जल पान करिकै वडवाग्नि धूमको उद्गीर्ण करता है, सो धूम मेघको प्राप्त होकरि अत्यर्थ जलका कारण होता है अरु सूर्य जो सो विनाशके अर्थ चंद्रमाको पान करता है, अमावास्यापर्यंत वारंवार भक्षण करता है, बहुरि शुक्लपक्षविषे उद्गीर्ण रूप है, जैसे सारस पक्षी भेकको भक्षण करिकै उद्गीर्ण कर डारता है. हे रामजी! अमृतके समान शीतल जो अपानवायु चंद्रमारूप है, सो मुखके अग्निविषे रहता है, वह जलकणका रूप जब शरीरविषे जाता है, तब वह जलका अणु अपानरूप सूर्यरूप प्राणी फुरणेको प्राप्त होता है, इस प्रकार सत्यरूप परिणामसों जल अग्निका कणका होता है अरु जब जलका नाश हो जाता है, तब वह उष्णभाव अग्निको प्राप्त होता है, इनका नाम विनाशपरिणाम है, इस प्रकार जल अग्निका कारण कहाता है, अग्निके नाश हुए चंद्रमा उत्पन्न होता है, इनका नाम विनाशपरिणाम है अरु चंद्रमाके अभाव हुए अग्निका होना होता है, इसका नाम भी विनाशपरिणाम है, जैसे तमके अभावते प्रकाश उदय होता है अरु प्रकाशके अभावते तम होता है, दिनके अभावते रात्रि अरु रात्रिके अभावते दिन होता है, इसके मध्यविषे जो विलक्षणरूप है, सो बुद्धिमानोंकरि भी नहीं पाया जाता, तम अरु प्रकाश दोनों रूपोंकरि युक्त है, इनके मध्यविषे जो संधि है, सो आत्मरूप है, तिसविषे स्थित होउ, चेतन अरु जड़ दोनों रूपोंकरिकै भूत फुरण होते हैं, जैसे दिन अरु रात्रि तम अरु प्रकाशकरिकै पृथ्वीविषे चेष्टा करते हैं, चेतन अरु जड़रूप सूर्य अरु चंद्रमा दोनों रूपकरिकै

शुक्ल हैं, निर्मलरूप जो प्रकाश चिद्रूप है, तिसका नाम सूर्य है अरु जडात्मक तम रूप है सो चंद्रमाका शरीर है, जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्माका दर्शन होता है, तब संसारका दुःखरूप जो तम है सो नष्ट होता है. जैसे बाह्य आकाशविषे सूर्य उदय हुएते श्याम रात्रिका तम नष्ट हो जाता है अरु जड चंद्रमारूप जो देह है, जब तिसको देखता है, तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता, असत्यकी नाईं हो जाता है अरु चेतनकी ओर देखता है, तब देह नहीं भासता, केवल लक्षविषे दूसरेकी उपलब्धि नहीं होती, केवल चेतनपदको प्राप्त हुएते द्वैतते रहित निर्वाणभाव होता है अरु जडभावको प्राप्त हुए चेतन नहीं भासता, ताते संसारके दर्शनका कारण दोनों हैं, सूर्यचेतनकरि चंद्रमाजडकी उपलब्धि होती है अरु जड चंद्रमाकरि सूर्यचैतन्यकी उपलब्धि होती है, जैसे दीपक अग्निका अंधकार विना प्रकाश नहीं होता, तैसे इन दोनों विना आत्माकी उपलब्धि नहीं होती अरु प्रकाश विना केवल जडकी उपलब्धि भी नहीं होती, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब कंधेके ऊपर प्रकाशता है सो कंध प्रकाशकरि भासता है अरु प्रकाश कंधकरि भासता है, तैसे चित्त फुरता है, तब चेतनको जगत् भासता है अरु फुरणा जगत्करि होता है, फुरणेते रहित अचेत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है. ताते हे रामजी ! जगत्को अग्नि अरु सोम जानो, देहदेहिविषे संबंध है, परंतु जिसका अतिशय होवै तिसका जय होता है, प्राण अग्नि उष्णरूप है अरु अपान शीतल चंद्रमारूप है, प्रकाश अरु छायारूप है, इनको जानना सुखका मार्ग है. हे रामजी ! जब बाह्यसों शीतलरूप अपान अंतरको आता है, तब उष्णरूप प्राणविषे जाय स्थित होता है अरु जो हृदयस्थानसों निकसकरि प्राण उष्णरूप बाह्यको द्वादश अंगुलपर्यंत जाता है, तब अपान जो है चंद्रमाका मंडल तिसको प्राप्त होता है, सो अपान प्राणरूप होकरि उदय होता है अरु प्राण अपानरूप होकरि उदय होता है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, तैसे इनका परस्पर आपसमें प्रतिबिंब पडता है, जहां षोडश कला चंद्रमाको सूर्य ग्रास लेता है, तिस मध्यभावविषे स्थित होउ, जब अपान प्राणोंके

स्थानविषे आनि स्थित होता है अरु प्राणरूप होकरि हृदय नहीं भया सो शांतिरूप भाव है, तिसविषे स्थित होउ अरु प्राण निकसिकरि मुखसों द्वादश अंगुलपर्यंत जब बाह्य स्थित होता है अरु जबलग अपान भावको प्राप्त होकरि उदय नहीं भया, वह जो मध्यभाव है, तिसीविषे स्थित होउ अरु मेष आदिक जो द्वादश राशि हैं, तिस एकको त्यागिकरि दूसरी राशिको संक्रांति नहीं प्राप्त भयी, तिसका नाम संक्रांति है, तिनके मध्यविषे जो संधि, तिसका नाम पुण्यकाल है, सो पुण्यसमय अंतर अरु बाह्य प्राण अपानकी संधिके समयमें तृणवत् है अरु तिन सक्रांतिविषे जो विषुवती संक्रांति वैशाखकी है, जो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रांति त्रयोदश दिन होती है अरु अस्तकी संक्रांति त्रयोदश दिन इनका नाम विषुवती है, जहां दिन अरु रात्रि सम होते हैं, दक्षिणायन अरु उत्तरायणकी जो संधि होती है, इनके अंतर अरु बाह्य भेदको जाने, तब जन्मते रहित परमबोधको प्राप्त होवै. हे रामजी ! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरोंका है; सो क्रमकरि मुक्त होते हैं अरु दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालोंका है; तिसकरि बहुरि संसारभागी होते हैं; तिनके मध्यविषे जो संधि है, तिसविषे स्थित हुएते परमपदको प्राप्त होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने अग्नीषोमविचारवर्णनं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

अणिमादिलाभवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह सर्व कला योगकी विस्तारकरिकै कही है अरु उत्तम प्रभाव तामें वर्णन भया है अरु प्रयोजन यही है, जो निर्वाणपदमें स्थित होवे, आत्मा ब्रह्मकी एकता होवै, जो बहुरि जन्मादिकोंका दुःख न होवै, ब्रह्म चित् सत् आनंद स्वभावमात्र है जो एकवार तामें तद्भाव जो है, एकत्वभावसो होता है, तब सदैव वही भाव रहता है अरु धनी शक्तिका होता है, अविद्या नाश हो जाती है, इस

प्रकार वही चूडाला रानी योगके अभ्यास अरु ज्ञानके अभ्याससों पूर्ण होत भयी तब सर्व शक्तियों संयुक्त होइकरि अरु अणिमा आदि सिद्धिकी प्राप्ति होत भयी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने अणिमादिलाभवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

किराटोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! वह चूडाला तब मध्यआकाशको उड़ी एक दिशामें राजा शयनकर रहा था अरु तासें अवकाश पाया अरु मध्य आकाशके बहुत स्थानोंमें विचरत भयी अरु मध्य देवलोकके कालीरूप अरु अविद्युत् विलोचन अति चंचल धारिके गमन करत भयी अरु मध्यदिशाको जाती भयी अरु मध्य देवलोक अरु मध्य दैत्योंके अरु मध्य राक्षसोंके अरु मध्य विद्याधरोंके अरु मध्य सिद्धोंके अरु मध्य सूर्यलोकके अरु मध्य चंद्रमालोकके मध्य तारामंडलके, मध्य मेघमंडलके अरु मध्य इंद्रलोकके, गमन करत भयी, तहां कौतुक देखकर बहुरि अधोलोकमें आई अरु मध्य समुद्रके प्रवेश करिकै बहुरि मध्य अग्निके प्रवेश करत भयी अरु मध्य पवनके पवनरूप होत भयी अरु मध्यनागलोकके कन्याविषे क्रीडा करत भयी मध्य वनोंके, मध्य पर्वतोंके अरु मध्य भूतोंके अरु मध्य अप्सराओंके अरु मध्य त्रिलोकीके विरचती भयी, लीलाकरिकै एक क्षणमें तिसी स्थान आवत भयी, जहां राजा शयन कर रहा था समीप राजाके शयनकरि रही; जैसे भँवरी भँवरा कमलिनीके मध्य शयन करते हैं अरु राजा तिसको न जानत भया, कि रानी गयी थी अथवा न गयी थी, बहुरि रात्रि व्यतीत भयी, प्रातःकाल हुआ अरु राजा स्नानशाला में जायकरि स्नान करत भया अरु प्रवाह कर्म वेदोक्त हैं, सो करत भया अरु रानी भी प्रवाहकर्म करत भयी अरु राजाको शनैः शनैः तत्त्वका उपदेश किया, जैसे पिता पुत्रको मिष्ट वाणीकरि उपदेश करता

है अरु पंडितोंको कहत भयी कि, राजाको तुम भी उपदेश करो, कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम है अरु दीर्घ रोग है, दुःखका कारण है, सो आत्मज्ञान औषधते नाश होता है, अपर इसका औषध कोई नहीं, इसी प्रकार आप भी राजाको पउदेश करै अरु पंडित भी उपदेश करैं परंतु राजा तिस ज्ञानको पावत न भया अरु विक्षेपता विषे रहा, उत्तमपदमें विश्राम पावत न भया, जो अपना आप है अरु केवल चित्तरूप प्रत्यक्ष आत्मा है. राम उवाच-हे महामुनिजी! वह रानी तौ सर्वशक्तिसंपन्न भयी थी, योगकलाविषे भी अतिचतुर अरु ज्ञानकलाविषे भी तद्रूप भयी थी अरु राजा भी अति मूढ न था, तिसको उसका उपदेश दृढ क्यों न होत भया अरु रानी भी तिसको प्रीतिकरि उपदेश करती थी, वह कारण क्या था? जो अपने पदविषे स्थिति पावत न भया. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे अच्छिद्र मोतीविषे तागा प्रवेश नहीं करता, तैसे चूडालाका उपदेश राजाको न वेधत भया, सो जबलग आप विचार न करै अरु तिसविषे दृढ अभ्यास न होवे, तबलग ब्रह्मा उपदेश करैं तब भी तिसको न वेधे. काहेते कि, आत्मा आप ही करि जाना जाता है अरु इंद्रियका विषय नहीं, जो अधिष्ठानरूप है अरु स्वभावमात्र है अरु आप ही आपको देखता है अरु किसी मन इंद्रियका विषय नहीं अरु सर्वका आपना आप है. राम उवाच-हे भगवन्! जब अपने आपकरि देखता है, तब गुरु अरु शास्त्र उपदेश किस निमित्त करते हैं? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! गुरु अरु शास्त्र जताय देते हैं कि, तेरा स्वरूप आत्मा है, परंतु इंद्रकरिकै नहीं दिखावते अरु विचारनेत्रसों आपको आप ही देखता है, विचारते रहित तिसको नहीं देख सकता, जैसे किसी पुरुषको चंद्रमा कोऊ सचक्षु दिखावता है कि, अमुक स्थानमें देख उदय है, जब वह सचक्षु होता है, तौ देखता है अरु मंददृष्टि होता है, तब नहीं देखता, तैसे गुरु अरु शास्त्र आत्माका रूप वर्णन करते हैं अरु लखावते हैं, जब वह विचार नेत्रसों देखता है, तब कहता है कि, मैं देखा अरु अपरको दिखानेको योग्य होता है. हे रामजी! आत्मा किसी इंद्रियका विषय नहीं, जो अपना आप सूक्ष्मरूप

है अरु इंद्रिय कल्पित हैं अरु जो तू कहै कि, तुम भी उपदेश इंद्रिय-करि करते हौ; तौ सर्व इंद्रियोंका विस्मरण करु, जो मूल अपना तुझे भासै अरु अभाववृत्ति इंद्रियां किसीको तेरा अभाव न होवैगा. हे रामजी! इसीपर एक इतिहास कांतका है, सो श्रवण करु एक कांत था, उनके पास धन और अनाज भी बहुत था; परंतु कृपण था, किसीको देता कछु न था अरु अपर धनकी तृष्णा करता रहै कि किस प्रकार चिंतामणि मेरे ताईं प्राप्त होवै, सदा यही वांछा करै, इसी वांछाकारि एक समय घरते बाहर निकसा अरु पृथ्वीकी ओर देखता जावै, तब एक स्थान था, तहां घास अरु भूस पडा था, तिसविषे एक कौडी दृष्टि पडी तब कौडीको उठाय लिया, बहुरि देखने लगा कि, कछु अपर भी निकसै तब दूसरी कौडी निकसी, इस प्रकार ढूँढ़ते हुए दिन व्यतीत भये तब चार कौडी निकसी, बहुरि अष्ट निकसी जब ढूँढते २ त्रय दिन और व्यतीत भये, तब चिंतामणि चंद्रमाकी नाईं प्रगट देखा तब मणि लेकरि अपने घर आया अरु बडे हर्षको प्राप्त भया. हे रामजी! तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकरि तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मिका पाना, सो कौडियोंका खोजना है अरु आत्मा चिंतामणिरूप है, परंतु जैसे कौडियांके खोजते चिंतामणि विना खोजे न पायी, तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकरि आत्मपद पाता है, गुरुशास्त्रों विना नहीं पाता, धनकरि तपकरि कर्मकरि आत्मा नहीं पाता, केवल अपने आपकरि पाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने किराटोपाख्यानवर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

शिखिध्वजप्रव्रज्यावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! राजा शिखिध्वज चूडालाके पासते उठि करि स्नानको गया तब राजाके मनविषे वैराग्य उपजा कि यह संसार मिथ्या है, बहुत भोग हम भोगे हैं, तौ भी हृदयको

शांति न भयी अरु इन भोगोंका परिणाम दुःखदायक है, जब मनविषे ऐसा विचार उपजा, तब राजाने गौ, पृथ्वी, स्वर्ण, मंदिर अरु अपर सामग्री बहुत दान करी, जेते कछु ऐश्वर्यके पदार्थ हैं, सो दान किये, ब्राह्मणोंको दिये अपर गरीब अतिथिको दिया, जैसे जैसे किसीका अधिकार देखा, तैसे दिया अरु रानीने भी ब्राह्मणों व मंत्रियोंको कहा कि, राजाको तुम यही उपदेश किया करो, कि यह भोग मिथ्या है, इनविषे सुख कछु नहीं अरु आत्मसुख बडा सुख है, जिसके पायेतें जन्ममृत्युसों मुक्त होता है, इसी प्रकार राजा ब्राह्मणोंते श्रवण करे अरु अपने मनविषे भी वैराग्य उपजा था, तब राजा कहत भया कि इस संसारदुःखते मैं रहित होऊं, इस संसारमें बड़ा दुःख है, इसविषे सदा जन्म मरण है, तब राजाके मनविषे हुआ कि, मैं तीर्थोंको जाऊं अरु स्नान करौं बहुरि राजा तीर्थोंको चला तब स्नान भी करे, दान भी करे इस प्रकार देवता अरु तीर्थों अरु सिद्धोंके दर्शन किये, स्नानकरि बहुरि गृहको आया, तब आयकरि रात्रिके समय रानीके साथ शयन किया अरु रानीको कहा कि, हे अंगना। अब मैं वनको तप करनेके निमित्त जाता हौं यह सब भोग मेरे ताईं दुःखदायक भासते हैं अरु राज्य भी वनकी नाईं उजाड भासता है ताते मैं तपके निमित्त वनको जाता हौं अरु यह भोग बहुत काल पर्यंत हम भोगते रहे तौ भी इनविषे सुख दृष्टि न आया ताते मेरे ताईं अटकावना नहीं, मैं वनको जाता हौं, तब रानीने कहा-हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वनको जाता है, अब तौ हम राज्य भोगें, जैसे वसन्तविषे फूल शोभा पाते हैं अरु शरत्कालविषे नहीं शोभते, तैसे हम भी वृद्ध होवैंगे तब वनको जावैंगे अरु वनहीविषे शोभा पावैंगे, जैसे वनके फूल श्वेत होवें तैसे हमारे केश श्वेत होवैंगे तब शोभा पावैंगे अब तौ राज्य करौं. हे रामजी! इस प्रकार जब रानीने कहा तब राजाका चित्त वैराग्यहीविषे रहा, रानीका कहना चित्तविषे न लावता भया. जो तीर्थोंके स्नान अरु दानकरि राज्यसुखते राजाको वैराग्य उपजा परंतु शांति न पाई जैसे चंद्रमा विना कमलिनी शांति नहीं पाती तैसे ज्ञान विना राजाको शांति न प्राप्त भयी परंतु वैराग्यकरिकै कहने लगा-हे रानी! अब मेरे ताईं

अटकावना नहीं अब राज्य मुझको फीका लगा है मैं वनको जाता हौं जो ठहराव मेरा यहां नहीं होता जो तू कहै हम यहां तेरी टहल करते थे पाछे कौन करैगा तब पृथ्वी ही हमारी टहल करैगी अरु वनकी वीथियां ही स्त्रियां होवैंगी अरु मृगके बालक ही पुत्र हैं, आकाश हमारे वस्त्र हैं, फूलके गुच्छे भूषण हैं ऐसे राजाने कहा तब आगे रात्रिका समय हुआ अरु राजा वहांते चला तब वहांते रानी अरु नगरते सैन्य भी पाछे चला. बडी भयानक रात्रिविषे चले कोटके बीच ही जाय स्थित भये तब राजा अरु रानी सोये जैसे भँवरा भँवरी सोवते हैं सैन्य अरु सहेलियां सब सोय गये कर्मनिद्रा करि जड हो गये, जैसे पत्थरकी शिला जड़ होती है जब अर्धरात्रि व्यतीत भई तब राजा जागा अरु देखा कि सब सोय गये हैं तब शय्याते उठा रानीके वस्त्र एक ओर करिकै हाथविषे खड्ग लेकरि निकसा, जैसे क्षीरसमुद्रते विष्णु भगवान् लक्ष्मीसों उठता है तैसे उठा अरु सब लोक लाँघता जब कोटके दरवाजेपर आया तब अर्ध मनुष्य जागे थे अरु अर्ध सोये थे उनने राजाको देखा तब राजाने कहा-हे द्वारपालो! तुम यहां ही बैठे रहौ मैं एकला ही वीरयात्राको जाता हौं तब राजा तीक्ष्ण वेगकरि चला गया अरु बाहर निकसिकरि कहा—हे राजलक्ष्मी! तुझको नमस्कार है अब मैं वनको चला हौं तब एक वनविषे आया जहां सिंह अरु सर्प अपर भयानक जीव हैं तिनके शब्द सुनता आगे चला गया तिसते आगे अपर बेला आया तिसको भी लंघ गया जब आठ प्रहर राजा चला गया तब एक ठौर जाय स्थित भया जब सूर्य उदय हुआ तब राजाने स्नान करिकै संध्यादिक कर्म किये अरु वृक्षके फल लेकरि भोजन किये बहुरि आगे चला कि कोई पाछेते आयकरि मेरे ताईं अटकावै नहीं इस निमित्त तीक्ष्ण चला, बडे पहाड़ अरु नदियां बेलें राजा उलंघिकरि द्वादश दिनपर्यंत चला गया जब मंदराचल पर्वतके निकट गया तब एक वनविषे जाय स्थित भया अरु स्नान करिकै कछु भोजन किया अरु पत्र लेकरि झुपडी बनाई. मेघकी रक्षा अरु छायाके निमित्त तहां स्थित भया अरु बासन भी बनाये तिनविषे फूल फल राखे जब प्रातःकाल होवै तब स्नान करिकै प्रहरपर्यंत जाप करै हुरि देवताओंके पूजन-

निमित्त फूल चुनै अरु स्नान करिकै द्वितीय प्रहर ऐसे व्यतीत करै जब तीसरा प्रहर होवै तब फल भोजन करै चौथा प्रहर बहुरि संध्या जाप करै; इसी प्रकार दिन अरु रात्रि व्यतीत करै,कछुक काल रात्रिको शयन करै अपर जापविषे व्यतीत करै इसी प्रकार कालको व्यतीत करै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज-प्रव्रज्यावर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

सुखविचारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी!राजाकी तौ यह अवस्था भयी अब रानीकी अवस्था श्रवण करु. जब अर्धरात्रिते पाछेरानी जगी तब क्या देखै कि राजा यहां नहीं ,वनको गया है अरु शय्या खाली पडी है तब राणीने सहेलियोंको जगाया अरु कहने लगी बडा कष्ट है,राजा वनको निकस गया है अरु बडे भयानक वनविषे जावैगा ऐसे कहकर मनविषे विचार किया कि राजाको देखना चाहिये तब योगविषे स्थित होकरि आकाशको उडी आकाशकी नाईं देहको अंतर्धान करिकै जैसे योगेश्वरी भवानी उडती है,तैसे उडी अरु आकाशविषे स्थित होकरि देखा कि राजा चला जाता है तब रानीके मनविषे आया कि इसका मार्ग रोकौं बहुरि एक क्षणमात्र स्थित होकरि भविष्यत्को विचारने लगी कि राजा अरु मेरा संयोग नीतिविषे कैसे रचा है तब देखत भयी कि राजा अरु मेरा मिलाप होनेविषे बहुत काल शेष है अरु अवश्य मिलाप होगा, मुझे उसको उपदेशकरि जगावना है परंतु केतेक काल उपरांत. अभी इसके कषाय परिपक्व नहीं ताते अब राजाका मार्ग नहीं रोकना तब रानी बहुरि अपने घर आयी अरु शय्यापर शयन किया अरु बडी प्रसन्नताको प्राप्त भयी जब रात्रि व्यतीत भयी तब मंत्रीसे कहने लगी कि राजा एक तीर्थ पर्सणे गया है दर्शन करिकै बहुरि आवैगा ऐसे मंत्री अरु प्रजाको कहा बहुरि मंत्रीको आज्ञा करी कि तुम अपने कार्यविषे बर्तौ तब मंत्री अपनी चेष्टाविषे बर्तने लगे इसी प्रकार रानीने

अष्ट वर्षपर्यंत राज्य किया अरु प्रजाको सुख दिया,जैसे बागवान् कमलोंकी क्यारीको सुखसे पालता है तैसे रानीने प्रजाको सुख दिया अरु वहां राजाको अष्ट वर्ष तप करते व्यतीत भये अरु राजाके अंग दुर्बल हो गये अरु वहां राणीने राज्य किया,जैसे भँवरा अपर ठौर होवै तैसे इनको और और ठौरविषे व्यतीत भया तब राणीने विचार किया कि राजा अब मेरे वचनोंका अधिकारी भया है अंतःकरण राजाका तपकरिकै शुद्ध हुआ है अब राजाको देखिये. तब रानी उडी आकाशको गयी अरु नंदनवन इंद्रका है सो देखा.वहांके जो दिव्य पवन हैं तिनका स्पर्श हुआ तब रानी के चित्तविषे आया कि मेरे ताईं भर्ता कब मिलैगा बहुरि कहने लगी कि बडा आश्चर्य है, मैं तौ सत्पदको प्राप्त भयी थी तो भी मेरा मन चलायमान भया है ताते इतर जीवकी क्या कहनी है तब वहांते चली आगे कमल-फूल देखे देखिकरि कहने लगी कि मेरे ताईं यह भर्ता कब मिलैगा जिसकरि भर्ताको पाऊं, मैं कामातुर भयी हौं बहुरि मनको कहने लगी-हे दुष्ट मन ! तू तौ सत्पदको प्राप्त भया था तेरा भर्ता आत्मा है अब तू मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा काहेको करता है बहुरि कहने लगी जबलग देह है तबलग देहके स्वभाव भी साथ रहते हैं जो मेरे ताईं यह अवस्था प्राप्त भयी है तौ भी मन चलायमान होता है ताते इतर जीवकी क्या वार्ता करनी है तब राणी मेघके स्थानोंको लंघ अरु महाबिजलीके स्थान लंघे बडे पर्वत अरु नदियोंको लंघी समुद्र भयानक स्थानोंको लंघी अरु मंदराचल पर्वतके पावन वनविषे आनि स्थित भयी अरु कहने लगी कि मेरा भर्ता कहां है बहुरि समाधिविषे स्थित होकरि देखा कि अमुक स्थानमें बैठा है तपकरिकै महादुर्बल अंग हो गये हैं अरु ऐसे स्थानविषे प्राप्त भया है जहां अपर जीवकी गम नहीं अरु महावैतालकी नाईं रात्रिको चला आया है ताते अज्ञान महादुष्ट है जो ऐसा राजा तपको लगा है स्वरूपके प्रमादकरिकै जड है अब ऐसे होवै जो किसी प्रकार अपने स्वरूपको प्राप्त होवै परंतु मेरे इस शरीरकरिकै ज्ञान इसको न उपजैगा. काहेते कि राजाको प्रथम यह अभिमान होवैगा कि मेरी स्त्री है अरु बहुरि कहैगा मैंने इसहीके निमित्त राज्य छोडा है, बहुरि मेरे ताईं दुःख देनेको

आयी है ताते अपर शरीर ब्रह्मचारीका धारों ऐसे विचार कारिके शीघ्र ही ब्रह्मचारीका शरीर धारत भयी, जैसे जलका तरंग एक स्वरूपको छोडता है अरु अपर हो जाता है तैसे महासुंदर शरीरको धारिकरि एक बिंठ पृथ्वीते ऊपर चलने लगी अरु हाथविषे रुद्राक्षकी माला अरु कमण्डलुको धारे अरु मृगछालाको धारे अरु मस्तकपर विभूति लगायी, जैसे सदाशिवके मस्तकपर चंद्रमा विराजता है तैसे सुंदर विभूतिको लगाया अरु श्वेत ही यज्ञोपवीतको पाया ऐसा चिह्न धारिकरि चली तब राजा देखि करि आगेते उठि खडा हुआ अरु नमस्कार किया, फूल चरणोंपर चढाये अरु अपने स्थानपर बैठाया अरु कहने लगा-हे देवपुत्र ! आज मेरे बडे भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन भया. हे देवपुत्र ! तुम्हारा आना कैसे हुआ ? देवपुत्र उवाच-हे राजन् ! हम बडे बडे पर्वत देखते आये हैं अरु तीर्थ करते आये हैं परंतु जैसी भावना तेरेविषे देखी है तैसी किसीविषे नहीं देखी. हे राजन् ! तुमने बडा तप किया है अरु तू इंद्रियजित दृष्टि आता है अरु मैं जानता हौं कि तेरा तप खड्गकी धारा जैसा तीक्ष्ण है ताते तू धन्य है, तेरे ताईं नमस्कार है. परंतु हे राजन् ! आत्मयोगके निमित्त भी कछु तप किया है अथवा नहीं किया सो कहु. तब राजाने जो फूलकी माला देवपूजनके निमित्त रक्खी थी सो देवपुत्रके गलेमें डाली अरु पूजा करी बहुरि कहा-हे देवपुत्र ! तुम सारिखेका दर्शन दुर्लभ है अरु अतिथिका पूजन देवताते भी अधिक है. हे देवपुत्र ! तेरे अंग बहुत सुंदर दृष्टि आते हैं, ऐसे ही मेरी स्त्रीके अंग थे, नखशिखपर्यंत तेरे वही अंग दृष्टि आते हैं परंतु तू तौ तपस्वी है तेरी मूर्ति शांतिके लिये हुई है, मैं कैसे कहौं कि वही है. ताते हे देवपुत्र ! कहो कि, तू किसका पुत्र है अरु यहां किस निमित्त आया है अरु आगे कहां जावैगा यह संशय मेरा निवृत्त करौ तब देवपुत्रने कहा-हे राजन् ! एक समय नारदमुनि सुमेरु पर्वतकी कंदराविषे आया था सो महासुंदर कंदरा है जहां आश्चर्यके वृक्ष अरु मंजरियां फूलफलसाथ सब पूर्ण हैं, ब्राह्मणोंकी कुटी तहां बनी हुई हैं तिस स्थानको देखिकरि ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि समाधि लगाय बैठा अरु

गंगाका प्रवाह चलता है जहां सिद्धोंकी गम है और जीवोंकी गम नहीं तब केताक काल समाधिविषे स्थित रहा जब समाधिते उतरा तब भूषणका शब्द हुआ तब नारदजीके मनविषे महाआश्चर्य हुआ कि, यहां तौ आनेकी गम किसीकी नहीं, यह भूषणोंका शब्द कहांते आया तब उठि करि देखने लगा कि गंगाका प्रवाह चला आता है तहां उर्वशी आदिक अप्सरा स्नान करती हैं वस्त्रोंको उतारे हुए महासुंदर हैं जब उनको देखा तब नारदजीका विवेक आवरण भया अरु वीर्य चला तिसके पास सुंदर वल्ली थी तिसके पत्रपर जाय स्थित भया चंद्रमाकी नाईं उज्ज्वल इस प्रकार सुनकरि शिखिध्वज कहत भया—हे देवपुत्र ! ऐसा ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि सर्वज्ञ अरु बडा मनशील तिसका वीर्य किस निमित्त चला ? तब देवपुत्रने कहा-हे राजन् ! जबलग शरीर है तबलग अज्ञानीका अरु ज्ञानीका भी शरीरस्वभाव निवृत्त नहीं होता परंतु एक भेद है जब ज्ञानवान्को दुःख आय प्राप्त होता है तब दुःख नहीं मानता अरु जब सुख आय प्राप्त होता है तब सुख नहीं मानता, हर्षवान् नहीं होता अरु जब अज्ञानीको दुःखसुख आय प्राप्त होता है तब हर्षशोक करता है. जैसे श्वेत वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्र ही चढि जाता है तैसे अज्ञानीको सुखदुःखका रंग शीघ्र ही चढि जाता है अरु जैसे मोमके वस्त्रको जलका स्पर्श नहीं होता है, तैसे ही ज्ञानवान्को सुखदुःखका स्पर्श नहीं होता अरु जिसके अंतःकरणरूपी वस्त्रको ज्ञानरूपी मोम नहीं चढा तिसके दुःख सुखरूपी जल स्पर्शकरि जाता है अरु ज्ञानवान् मोमवत है उसके अंतःकरणको दुःखसुख नहीं होता अज्ञानीको होता है जो दुःखकी नाडी भिन्न हैं अरु सुखकी नाडी भिन्न हैं जब सुखकी नाडीविषे स्थित होता है तब दुःख कोऊ नहीं देखता जब दुःखकी नाडीविषे स्थित होता है तब सुख नहीं देखता, अज्ञानीको कोऊ दुःखका कोऊ सुखका स्थान है अरु ज्ञानीको एक आभासमात्र दिखाई देता है, बंधमान नहीं होता. जबलग इसको ज्ञानका संबंध है तबलग दुःख निवृत्त नहीं होता तब राजाने कहा वीर्य जो गिरता है सो वीर्य कैसे निवृत्त होता है ? तब देवपुत्रने कहा—हे राजन् ! जब इसका चित्त बासनाकरिकै क्षोभवान् होता है

तब नाडी भी क्षोभ करती हैं अरु अपने स्थानोंको त्यागने लगती हैं तब वीर्यवाली नाडीते स्वाभाविक ही वीर्य नीचेको चला आता है, बहुरि राजाने कहा-हे देवपुत्र! स्वाभाविक क्या कहिये? देवपुत्रने कहा हे राजन्! आदि परमात्मशुद्ध चेतनविषे जो फुरणा हुइ है तिस क्षण-मात्र शक्तिके उत्थानकरि आगे प्रपंच बनि गया है तिसविषे आदि नीति हुई है कि यह घट है यह पट है यह अग्नि है इसविषे उष्णता है यह जल है इसविषे शीतलता है, तैसे ही नीति है जो वीर्य ऊपरते नीचेको आता है जैसे पर्वतते पत्थर गिरता है सो नीचेको चला आता है तैसे वीर्य भी नीचेको आता है तब राजाने प्रश्न किया-हे देवपुत्र! इसको दुःख कैसे होता है अरु सुख कैसे होता है अरु दुःखसुखका अभाव कैसे होता है? तब देवपुत्रने कहा-हे राजन्! जब यह जीव कुंडलिनी शक्ति-विषे स्थित होता है अरु दृश्य जो हैं चार अंतःकरण अरु इंद्रियां देह तिनविषे अभिमान करिक दुःखी सुखी होता है, इनके दुःखसाथ दुःखी होता है अरु इनके सुखसाथ सुखी होता है जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब होता है तैसा तैसा दुःखसुख भासता है जैसे शुद्ध मणिविषे प्रतिबिंब पडता है सो अज्ञानकरिकै भासता है, ज्ञानकरिकै इनका अभाव हो जाता है अरु जब तिसको ज्ञानरूपका आवरणकरिकै आगे पटल होता है, तब प्रतिबिंब नहीं पडता ज्ञान कहिये जो देहादिकके अभिमानते रहित होना जो न देहादिक हैं अरु न मैं इनकरि कछु करता हौं जब ऐसे निश्चय होवै तब दुःखसुखका भान नहीं होता काहेतें कि संसारका दुःखसुख इसकी भावनाविषे होता है जब वासनाते रहित हुआ तब दुःखसुख भी सब नष्ट हो जाते हैं जैसे जब वृक्ष ही जलि जाता है तब पत्र फूल फल कहां रहैं तैसे अज्ञानरूप वासनाते दग्ध हुए दुःखसुख कहां रहैं?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने सुखविचार-योगोपदेशो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६.
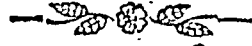
कुंभजजननवर्णनम् ।

बहुरि राजाने कहा—हे भगवन ! तुम्हारे वचन श्रवण करते हुए मैं तृप्त नहीं होता, जैसे मेघका शब्द सुनेते मोर तृप्त नहीं होता ताते कहो कि तुम्हारी उत्पत्ति कैसे भयी तब देवपुत्रने कहा. हे राजन् ! जो कोऊ प्रश्न करता है तब बडे तिसका निरादर नहीं करते ताते तू जो पूछता है सो मैं कहता हौं. हे राजर्षि ! वह वीर्य था सो नारदमुनिने एक मटकीविषे पायाअरु वह कैसी मटकी थी स्वर्णवत् जिसका उज्ज्वल चमत्कार तिसविषे वीर्यपायकरि तिसके ऊपर दूधपाया अरु मटकीको पूर्ण किया अरु वीर्यको एक कोणकी ओर किया बहुरि मंत्रोंका उच्चार किया अरु आहुति किये भले प्रकार पूजन किया जब एक मास व्यतीत भया तब मटकीते बालक प्रगट हुआ सो कैसा बालक जैसा चंद्रमा क्षीर-समुद्रते निकसा है तिस बालकको लेकरि नारद आकाशको उडता भया तब नारद उसको जो पिता है ब्रह्माजी तिसके पास ले आया अरु आयकरि नमस्कार किया तब बालकको पितामहने गोदविषे बैठाया अरु आशीर्वाद किया कि तू सर्वज्ञ होवैगा अरु शीघ्र ही अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा अरु कुंभते जो उपजा बालक है, तिसका नाम भी कुंभ राखा सो कुंभ सर्वज्ञ मैं हौं नारदजीका पुत्र अरु ब्रह्माजीका पौत्र हौं,सरस्वती मेरी माता है गायत्री मेरी मौसी है मेरे ताईं सर्वज्ञान है तब राजाने कहा—हे देवपुत्र ! तुम सर्वज्ञ दृष्टि आते हौ तुम्हारे वचनोंकरि मैं जानता हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने कुंभजजननवर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.
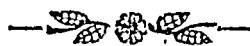
शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

तब देवपुत्रने कहा—हे राजन् ! जो तुम पूँछा सो मैंने कहा अब कहु कि तू कौन है अरु यहाँ क्या कर्म करता है अरु यहाँ किसनिमित्त आया

है तब राजाने कहा हे देवपुत्र ! आज मेरे बडे भाग्य उदय हुए हैं जो तुम्हारा दर्शन भया है तुम्हारा दर्शन बडे भाग्यसों प्राप्त होता है यज्ञ अरु तपते तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है तब देवपुत्रने कहा–हे राजन् ! अपना वृत्तांत कहु कि, तू कौन है ? राजाने कहा–हे देवपुत्र ! मैं राजा हौं अरु शिखिध्वज मेरा नाम है अरु राज्यका मैंने त्याग किया है जो मेरे ताईं संसार दुःख दायक भासा तिसके भयकरि त्याग किया वारंवार जन्म अरु मृत्यु संसारविषे दृष्टि आता है ताते राज्यका त्यागकरि यहाँ तप करने लगा हौं तुम त्रिकालज्ञ हौ अरु जानते हौ तथापि तुम्हारे पूछनेकरि कछु कहा चहिये मैं त्रिकाल संध्या करता हौं अरु जाप करता हौं तौ भी मेरे ताईं शांति नहीं प्राप्त भयी ताते जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं सो उपाय कहौ. हे देवपुत्र ! मैं तीर्थ बहुत फिरा हौं बहुत देश स्थान फिरा हौं अब इस वन विषे आनि बैठा हौं तौ भी मेरे ताईं शांति नहीं प्राप्ति भयी ताते जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं अरु शांति प्राप्त होवै सो कहौ, तब देवपुत्रने कहा. हे राजर्षि ! तैंने राज्यका त्याग किया अरु बहुरि तपरूपी टोयेविषे आय पडा है यह तैंने क्या किया है, जैसे पृथ्वीका क्रम बहुरि पृथ्वीविषे रहता है तैसे तू एक टोयेको त्यागिकरि बहुरि दूसरे टोयेविषे आइ पडा है अरु जिस निमित्त राज्य त्याग किया तिसको न जानत भया अरु यहाँ आयकरि एक लाठी अरु मृगछाला अरु फूल राखे इनकरि तौ शांति नहीं प्राप्त होती ताते अपने स्वरूपविषे जाग, जब स्वरूपविषे जागैगा तब दुःख सब निवृत्त होवैंगे इसीपर एक समय ब्रह्माजीसों मैंने प्रश्न किया था कि, हे पितामहजी ! कर्म श्रेष्ठ है अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है दोनोंविषे क्या श्रेष्ठ है ? जो मुझको कर्तव्य है, सो कहो, तब पितामहने कहा, ज्ञानके पायेते दुःख कोई नहीं रहता, सर्व आनंदका आनंद ज्ञान है, तिसते आगे आनंद कोई नहीं अरु अज्ञानीको कर्म श्रेष्ठ हैं क्यों कि जो पापकर्म करैंगे, तो नरकको प्राप्त होवैंगे ताते तप दान करनेते स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती तौ भी अज्ञानीको श्रेष्ठ है कि नरक भोगनेते स्वर्ग विशेष है, जैसे कंबलते पटका वस्त्र श्रेष्ठ है परंतु पटका न पाइये तब कंबल भी भला है तैसे ज्ञानपटकी नाईं

है अरु तप कर्म कंबलकी नाईं है कर्मकरि शांति नहीं प्राप्त होती. ताते हे राजन् ! तू काहेको इस टोयेविषे पडा है आगे राज्यवासी था अब वनवासी भया ताते यह क्या किया है जो अज्ञानविषे पड रहा है मूर्खताके वश पडा है जबलग तेरे ताईं क्रियाभान होता है कि मैं यह करौं तबलग प्रमाद है इसकरि दुःख निवृत्त न होवैंगे ताते निर्वासनिक होकरि अपने स्वरूपविषे जाग, निर्वासनिक होना ही मुक्ति है अरु वासनासहित ही बंधन है, पुरुषप्रयत्न यही है कि निर्वासनिक होना, जबलग वासना सहित है तबलग अज्ञानी है जब निर्वासनिक होवै तब ज्ञेयरूप हैं निर्वासनिक कहिये सदा ज्ञेयकी भावना करनी अरु ज्ञेय कहिये आत्मस्वरूप तिसको जानिकरि बहुरि इच्छा कोई न रहै केवल चिन्मात्रपदविषे स्थित होना, इसीका नाम ज्ञेय है जो जानने योग्य है सो जाना तब अपर वासना नहीं रहती केवल स्वच्छ आप ही होता हैं. हे राजन् ! तुझे अपने स्वरूपको जानना था तू अपर जंजालविषे किस निमित्त पडा है आत्मज्ञान विना अपर अनेक यत्न करै तौ शांति न प्राप्त होवैगी, जैसे पवनते रहित वृक्ष शांतरूप होता है जब पवन होता है तब क्षोभको प्राप्त होता है, तैसे जब वासना निवृत्त होवैगी तब शांत पद प्राप्त होवैगा अरु क्षोभ कोई न रहैगा जब ऐसे देवपुत्रने कहा तब राजा कहत भया—हे भगवन् ! तुम मेरे पिता हौ अरु तुम ही गुरु हो अरु तुम ही कृतार्थ करनेहारे हौ, मैं वासना करिकै बडा दुःख पाया है, जैसे किसी वृक्षके पत्र टास फूल फल सूख जावैं अरु एकका ठूंठ रहिजावै तैसे ज्ञान विना मैं भी ठूँठसा हो रहा हौं ताते कृपाकरि मेरे ताईं शांतिको प्राप्त करौ, तब देवपुत्रने कहा—हे राजन् ! तैने त्याग करिकै संतका संग करना था अरु यह प्रश्न करना था कि, हे भगवन् ! बंध क्या है अरु मोक्ष क्या है अरु मैं क्या हौं यह संसार क्या है अरु संसारकी उत्पत्ति किसकरि होती है अरु लीन कैसे होता है तैने यह क्या किया है ? जो संत विना वनका ठूंठ आयकरि सेवन किया है अब तू संतजनको प्राप्त होकरि निर्वासनिक होउ ऐसे ब्रह्मादिकने भी कहा है कि जब निर्वासनिक होता है तब सुखी होता

है बहुरि राजाने कहा-हे भगवन् ! तुम ही संत हौ अरु तुम ही मेरे गुरु हौ अरु तुम ही मेरे पिता हौ जिस प्रकार मेरे ताईं शांति प्राप्त होवै सो कहौ, तब कुंभने कहा-हे राजन् ! मैं तेरे ताईं उपदेश करता हौं तू हृदयविषे धारि लेहु अरु जो तू हृदयविषे धारै नहीं तौ मेरे कहनेकारि क्या होता है, जैसे टासपर कौआ होवै अरु शब्द भी श्रवण करै तो भी अपने कौए स्वभावको नहीं छोडता तैसे जो तू भी कौएकी नाईं होवै तौ मेरे कहनेका क्या प्रयोजन है अरु जैसे तोंते पक्षीको जो कहता है सो ग्रहण करता है ताते तोते पक्षीकी नाईं होउ. तब शिखिध्वजने कहा-हे भगवन् ! जो तुम आज्ञा करौगा सो मैं करौंगा. जैसे शास्त्रवेदके कहे कर्म करता हौं तैसे ही तुम्हारा कहना करौंगा यह मेरा नियम है,जो तुम आज्ञा करौ सो मैं करौंगा,तब देवपुत्रने कहा-हे राजन् ! प्रथम तौ तू ऐसे निश्चय कर कि मेरा कल्याण इन वचनोसों होवैगा अरु ऐसे जान कि, जो पिता पुत्रको कहता है, शुभ ही कहता है, तैसे मैं जो तेरे ताईं कहौंगा सो शुभ ही कहौंगा अरु तेरा कल्याण होवैगा, ताते निश्चय जान कि,इन वचनोंकारि मेरा कल्याण होवैगा,ताते एक आख्यान आगे व्यतीत भया है सो श्रवण करु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधवर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

चिंतामणिवृत्तांतवर्णनम् ।

चूडालोवाच- एक पंडित था सो धन अरु गुणकारि संपन्न था अरु सर्वदा चिंतामणि पानेकी इच्छा करता था, जैसे शास्त्रकारि उपाय कहे तैसे ही उपाय करता था जब केताक काल व्यतीत भया तब जैसे चंद्रमाका प्रकाश होता है तैसे प्रकाशवान् चिंतामणि आय प्राप्त भया ऐसे निकट जाना कि हाथकारि उठाइ लीजै, जैसे उदयाचल पर्वतके निकट चंद्रमा उदय होता है तैसे चिंतामणि निकट आय

प्राप्त भया तब पंडितके मनविषे विचार हुआ कि यह चिंतामणि है अथवा कछु और है जो चिंतामणि होवै तौ उठाइ लेउँ जो चिंतामणि न होवै तौ किसनिमित्त पकडौं, बहुरि कहै पकड लेता हौं मणि ही होवैगा तब मणि न होवै क्या पकड़ौं यह मणि नहीं काहेते कि मणि बडे यत्नकरि प्राप्त होता है मेरे ताईं सुखेन क्या प्राप्त होना है इसते जाना जाता है कि चिंतामणि नहीं जो सुखेन प्राप्त होता होवै तौ सब लोक धनी हो जावैं परंतु सुखेन नहीं पाता ताते यह चिंतामणि नहीं जब ऐसे संकल्पविकल्पकरि पंडित विचार करने लगा अरु इसीकरि तिसका चित्त आवरण भया तब मणि छपन हो गया काहेते जो सिद्धि है तिनका मान आदर न करिये तौ उलटा शाप देती हैं जिस वस्तुका आवाहन करता है तिसका पूजन न करिये तौ त्याग जाती है अरु शाप देती है जब वह चिंतामणि अंतर्धान हो गयी तब वह बडे दुःखको प्राप्त भया कि चिंतामणि मेरे पासते निवृत्त हो गयी अरु बहुरि यत्न करने लगा जब बहुरि उपाय किया तब काचकी मणि किसीने हांसीकरि तिसके आगे डारिदई सो तिसके पास आय पडी उसको देखत भया, देखिकरि कहने लगा कि यह चिंतामणि है तब उसको उठाय लीनी लेकरि अपने घर आया अबोधके वशते उसको चिंतामणि जानत भया जैसे मोहकरि असत्‌को सत् जानता है अरु रज्जुको सर्प जानता है अरु जैसे दो चंद्रमा अरु शत्रुको मित्र अरु विषको अमृतरूप जानता है तैसे वह काचको चिंतामणि जानत भया अरु जेता कछु अपना धन था सो लुटाय दिया अरु कुटुम्बका त्याग किया कहने लगा कि मेरे ताईं चिंतामणि प्राप्त भयी है अब कुटुम्बसाथ क्या प्रयोजन है अरु घरते निकसिकरि वनको गया वनविषे जाय बड़े दुःखको प्राप्त भया कि, काचकी मणिसाथ कछु प्रयोजन सिद्ध न हुआ. तैसे हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु होवै तिसको मूर्ख त्यागते हैं तिसका माहात्म्य नहीं जानते अरु नहीं पाते.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चिंतामणिवृत्तांतवर्णनं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९.

हस्त्याख्यानवर्णनम्।

देवपुत्र उवाच-हे राजन्! इसीपर एक अपर आख्यान कहता हौं सो श्रवण करु मंदराचल पर्वतके वनविषे एक हस्ती रहता था सो सर्व हस्तीका राजा था कैसा था सो मानो मंदराचल पर्वत है जिसको अगस्त्य मुनिने रोका था, ऐसा जो मंदराचल पर्वत है तिसविषे रहता था अरु जिसके बड़े दंत हैं इंद्रके वज्रकी नाईं तीक्ष्ण हैं बडा बलवान् अरु प्रकाशवान् जैसे प्रलयकालकी वडवाग्नि होती है ऐसा प्रकाशवान् अरु बलवान् ऐसा जो सुमेरु पर्वत उसको दंतसाथ उठावै तिस हस्तीको महावनते बल छल करिकै बांधा, जैसे बलि राजाको विष्णु भगवान्ने बांधा तैसे लोहकी संकरसो हस्तिको पाय अरु आप महावत जो निकट वृक्ष था तिसपर चढि बैठा किस निमित्त बैठा था कि कूदकरि हस्तीके ऊपर चढि बैठों अरु हस्ती संकरकारि महाकष्टको प्राप्त भया कैसे दुःखको प्राप्त भया जो वाणीकरि कहा नहीं जाता जब ऐसा दुःख पाया तब हस्तीकेमनविषे विचार उपजा कि अब मैं बलसाथ संकर न तोडौंगा तौ कब छूटौंगा तिस संकरको बलकरिकै तोडि दिया अरु वृक्षपर जो महावत बैठा था सो गिरा सो हस्तीके चरणों आगे आय पड़ा अरु भयको प्राप्त भया जैसे फल पवनकरि गिर पड़ता है तैसे महावत भयकरि गिरपड़ा जब इस प्रकार महावत गिरा तब हस्तीने विचार किया कि यह मृतक समान है ताते मुयेको क्या मारना है? यद्यपि मेरा शत्रु है तौ भी मैं नहीं मारता, इसके मारणेकरि मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होता है ताते मैं नहीं मारता. हे राजन्! जब ऐसे दयाकरि हस्तीने महावतको न मारा जो पशुयोनिविषे भी दया मुख्य है तब महावतको छांडिकरि हस्ती वनविषे चला जैसे पाणी बंधको तोडकरि वेगसाथ चलता है तैसे संकरको तोडिकरि हस्ती वनको गया, जैसे स्वर्गके द्वारे तोडकरि दैत्य जाय प्रवेश करते हैं तैसे संकरको तोडिकरि हस्ती वनविषे जाय प्रवेश किया अरु हस्तीको गया देखि महावत जो पड़ा था सो उठ बैठा अरु अपने स्वभावविषे स्थित

भया बहुरि हस्तीके पाछे चला अरु हस्तीको खोजि लिया,जैसे चंद्रमाको राहु खोजि लेता है तैसे वनविषे हस्तीको खोजि लिया देखाकी वृक्षके तले सोया पडा है,जैसे संग्रामको सूरमा जीतिकरि निश्चित होता है तैसे हस्तिको निश्चित सोया पड़ा देखा जो संकरको तोडिकरि आय सोया है तब महावतने विचार किया कि इसको वश करिये अरु यही उपाय करत भया कि बेलेके चउफेर खाई करी जैसे ब्रह्माने विश्वको उत्पन्न करिकै पृथ्वीके चउफेर समुद्र चक्र किया है तैसे बेलेके चउफेर खाईका चक्रकरि लिया अरु खाईके ऊपर कछु तृण घास पाया, जैसे शरत्कालके आकाशविषे बादल देखने मात्र होता है तैसे तृण घास खाई ऊपर देखने मात्र दृष्टि आवे अरु बीच खाई करी तब एक समय हस्ती उठिकरि चला अरु खाईके बीच गिर पड़ा जब गिरपडा तब महावत हस्तीके निकट आया अरु संकरोंसाथ बांधा, जैसे दैत्य छलकरिकै देवताओंको वश करते हैं जैसे अगस्त्यमुनिने छलकरिकै मंदराचलको रोंकि छोडा था तैसे हस्तीको महावतने वश किया अरु हस्ती गिर पडा जैसे सूखे समुद्रविषे पर्वत गिर पडता है तैसे खाईविषे हस्ती गिर पडा अरु दुःखको प्राप्त हुआ जो अबतक वनविषे पडा दुःख पाता है. काहेते कि भविष्यका विचार न किया अज्ञानीको भविष्यका विचार नहीं इसीते दुःख पाता है वर्तमानकालविषे विचार नहीं करता कि आगे क्या होना है इसीते अज्ञानी हस्ती दुःखको प्राप्त भया. हे राजन्! यह जो आख्यान तेरे ताईं मैंने श्रवण कराये हैं एक मणिका एक हस्तीका तिनको जब तू समझैगा तब आगे मैं उपदेश करौंगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे हस्त्याख्यान वर्णनं नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०.

चिन्तामणिसाधकवृत्तान्तवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब देवपुत्रने ऐसे कहा तब राजा कहत भया. हे देवपुत्र! यह दो आख्यान तुमने कहे हैं सो तुम जानते हौ

मैं तौ कछु नहीं समझा ताते खोलिकरि तुम हीं कहो, तब देवपुत्रने कहा– हे राजन् ! तू शास्त्रके अर्थविषे तौ बहुत चतुर है सब अर्थका ज्ञाता है परंतु स्वरूपविषे तेरे ताईं स्थित नहीं जैसे आकाशविषे पर्वत नहीं ठहरता ताते जो वचन मैं कहता हौं सो बुद्धिकरि ग्रहण करु कि हस्ती क्या है अरु चिंतामणि क्या है प्रथम जो सर्व त्याग तैंने किया था सो चिंतामणि थी तिसके निकट तू प्राप्त होकरि सुखी भया जो तिसको तू अपने पास राखता तौ सब दुःख निवृत्त हो जाते सो मणिको तैंने निरादर किया कि तिसको त्यागा अरु कांचकी मणि तपक्रियाको प्राप्त भया सो दरिद्र ही रहा. हे राजन् ! सर्वत्यागरूपी चिंतामणि थी अरु यह क्रियाको आरंभ कांचकी मणि है सो तैंने ग्रहण करी तिसते दारिद्र्यकी निवृत्ति नहीं होती दुःख ही रहता है त्यागरूपी चिंतामणिका आवाहन था अरु क्रियारंभ तिसका अनादर है. हे राजन् ! सर्व त्याग तैंने नहीं किया, किया भी था परंतु कछुक रहता था तिसके रहनेते बहुरि विस्तारको प्राप्त भया, जैसे बडा बादल वायुकरि क्षीण होता है अरु सूक्ष्म रहि जाता है अरु पवनके रहेते बहुरि विस्तारको पाता है अरु सूर्यको छिपाय लेता है सो बादल क्या है अरु सूर्य क्या है अरु थोडा रहना क्या है सो सुन. स्त्रियां अरु कुटुम्बते आदि त्याग किया अरु अहंकार इनविषे करना सो बड़ा बादल है अरु वैराग्यरूपी पवनकरि राज्य अरु कुटुम्बका अहंकाररूपी बड़ा बादल निवृत्त हुआ अरु देहादिकविषे जो अहंकार रहा सो सूक्ष्म बादल रहा सो बहुरि वृद्ध होगया जो अनात्म अभिमान करिकै क्रियाका आरंभ किया इसकरिकै आत्मारूपी सूर्य जो अपना आप है सो अहंकाररूपी बादलकरि आच्छाद्या गया, ज्ञानरूपी चिंतामणि अज्ञानरूपी कांचकी मणिकरिकै जैसे छपन भयी जब ज्ञानकरिकै आत्माको जानैगा तब आत्मा प्रकाशैगा अन्यथा न भासैगा जैसे कोऊ पुरुष घोडेपर चढ़िकै दौड़ता है, तिसकी वृत्ति घोडेविषे होती है तैसे जिस पुरुषका आत्माविषे दृढ निश्चय होता है तिसको आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता है. हे राजन् ! आत्माका पाना सुगम है, जो सुख नहीं पाता है अरु बडे आनंदकी

प्राप्ति होती है अरु तपादिक क्रिया जो हैं तिसको कष्टकरि सिद्धि होती है अरु स्वरूपसुखकी प्राप्ति नहीं होती. हे राजन्! मैं जानता हौं तू मूर्ख नहीं शास्त्रोंका ज्ञाता है अरु बहुत चतुर है, तथापि तेरे ताईं स्वरूपविषे स्थिति नहीं जैसे आकाशविषे पत्थर नहीं ठहरता ताते मैं उपदेश करता हौं तिसको ग्रहण करु तेरे दुःख निवृत्त हो जावैंगे अरु पाछे जो राज्यका त्याग आया है जैसे ब्रह्माकी रात्रिविषे संसारका अभाव हो जाता है तैसे त्याग किया था. हे राजन्! यह सर्वते श्रेष्ठ ज्ञान कहा है अरु कहता हौं तैने जो तपक्रियाका आरंभ किया है अरु तिसका जो फल जाना है तिस ज्ञानते श्रेष्ठ ज्ञान कहा है अरु कहता हौं जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा. हे राजन्! चिंतामणिका तात्पर्य संपूर्ण तेरे ताईं कहा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चिंतामणिसाधकवृत्तान्तविवरणं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१.
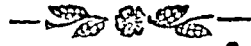
हस्तिकाख्यानतात्पर्यवर्णनम्।

देवपुत्र उवाच—हे राजन्! अब हस्तीका वृत्तांत जो आश्चर्यरूप है सो श्रवण करु. जिसके समुझनेकरि अज्ञान निवृत्त हो जावैगा मंदराचलका हस्ती सो तू है अरु महावत तेरे ताईं अज्ञानता है इस अज्ञानरूपी महावतने तेरेको बांधा है अरु हस्ती जो संकलसे बांधा था सो आशारूपी संकलोंकरि बांधा था अरु संकलते भी तू अधिक बांधा है कि संकल तौ घटते भी हैं अरु आशारूपी फांसी घटती नहीं दिन दिन बढती जाती है. हे राजन्! आशारूपी फांसीकरिकै तू महादुःखी है अरु जो हस्तीके बड़े दंत थे जिसकरि संकलोंको तोडा था सो तेरे दंत विवेक अरु वैराग्य हैं तैने विचार किया मैं बलकरिकै छूटौं अरु राज्य कुटुम्ब पृथ्वीका त्याग करि आया अरु फांसीको काटा तब आशारूपी रस्से काटे अज्ञानरूपी महावत भयको प्राप्त भया अरु तेरे चरणोंके

तले आय पड़ा, जैसे वृक्षके ऊपर वैताल रहता है अरु कोऊ वृक्षको काटने आता है तब वैताल भयको प्राप्त होता है तैसे ही तैने वैराग्य अरु विवेकरूपी दंतनकरिकै आशाके फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिरा अरु तैने एक घाव लगाया परंतु मारि न डारा तब महावत तुझते भागि गया, जैसे वृक्षपर वैताल रहता है वृक्षको कोऊ काटने लगता है तब वैताल भागि जाता है. हे राजन्! तैसे वृक्षको तैने वैराग्यरूपी शस्त्रकरिकै काटा तब अज्ञानरूपी वैताल भागा अरु मूर्खताकरिकै तिसको तैने न मारा तिसको छांडिकरि तू वनविषे गया जब तू वनविषे आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पाछे चला आया आयकरि तेरे चौफेर खाई करी जो तपादिक क्रियाका आरंभ किया तिस खाईविषे तू गिर पडा अरु महादुःखको प्राप्त भया तब तेरेको संकलसे बहुरि बांधा अरु देखने लगा कि अबतक दुःख पाता है अब तू कैसी खाईविषे गिरा है जो अनात्माभिमानकरिकै यहां तपादिक क्रियाका आरंभ किया है जो मैं कहता हौं ऐसी खाईविषे तू पडा है. हे राजन्! तू जानिकरि खाईविषे नहीं पडा खाईके ऊपर घास तृण पडा था छलकरिकै तू गिर पडा है सो छल अरु तृण कौन हैं तू श्रवण करु. प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुको न मारा अरु संकलोंके भयकरिकै तू भागा जो वन मेरा कल्याण करैगा संत अरु शास्त्रके वचनोंको न जाना जो तेरे दुःखको निवृत्त करैं अरु उन वचनरूपी खाईपर तृणादिक था मूर्खताकरिकै तू गिरा, जैसे बलिराजा पातालविषे छलकरिकै बाँधा हुआ है तैसे भविष्यका विचार किया नहीं जो अज्ञानशत्रु रहा हुआ मेरा नाश करैगा तिस विचार विना तू बहुरि दुःखी हुआ सर्व त्याग तौ किया परंतु ऐसे न जाना कि मैं अक्रिय हौं यह क्रियाका आरंभ काहेको करता हौं इसीते तू बहुरि फांसीसे बांधा है. हे राजन्! जो पुरुष इस फांसीते मुक्त भया सो मुक्त है अरु जिसका चित्त अनात्म अभिमानकरि बांधा है कि यह मेरेको प्राप्त होवै तिसकरि दुःखको पाता है जिस पुरुषने वैराग्यविवेकरूपी दंतोंकरि आशारूपी जंजीरको नहीं काटा सो कदाचित् सुख नहीं पाता विवेकते वैराग्य उत्पन्न होता है अरु वैराग्यते विवेक होता

है विवेक कहिये सत्यको जानना अरु असत् देहादिकको असत्य जानना जब ऐसे जाना तब असत्की ओर भावना नहीं जाती सो वैराग्य हुआ अरु वैराग्यते विवेक उपजता है विवेकते वैराग्य उपजता है इन विवेक अरु वैराग्यरूपी दंतकरि आशारूपी संकलको तोड़. हे राजन्! यह हस्तीका वृत्तांत जो तुझको कहा है इसके विचार कियेते तेरा मोह निवृत्त हो जावैगा. हे राजन्! हस्ती बडा बली था अरु महावत छोटा बली था तिस अज्ञानरूपी महावतको मूर्खताकरिकै न मारा तिसकरिकै दुःख पाता है ताते तू वैराग्यविवेकरूपी दंतकरि आशारूपी फांसीको तोड तब सब दुःख मिटि जावैंगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे हस्तिकाख्यानतात्पर्यविवरणं नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.

शिखिध्वजसर्वत्यागवर्णनम् ।

देवपुत्र उवाच—हे राजन्! ऐसी जो तेरी स्त्री चूडाला ब्रह्मवेत्ता थी अरु सर्वज्ञान श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्मस्वरूप अरु सत्यवादी तिसने तेरे ताईं उपदेश किया अरु तैंने तिसके वचनोंका निरादर किस निमित्त किया मैं तौ सर्व जानता हौं जो त्रिकालज्ञ हौं तौ भी तू अपने मुखते कहु कि तिसका उपदेश अंगीकार क्यों न किया? एक तौ यह मूर्खता करी कि उपदेश न अंगीकार किया अरु दूसरी यह मूर्खता है कि सर्व त्याग न करिकै बहुरि वन अंगीकार किया जो त्याग करता तौ सर्व दुःख मिटि जाते, जब ऐसे देवपुत्रने कहा, तब राजा कहत भया—हे देवपुत्र! मैं तौ सर्व त्याग किया है, स्त्री पृथ्वी मंदिर हस्ती इत्यादिक जो ऐश्वर्य अरु कुटुम्ब हैं सो सर्व त्याग किया है तुम कैसे कहते हौ कि, त्याग नहीं किया तब देवपुत्रने कहा—हे राजन्! तैंने क्या त्यागा है राज्यविषे तेरा क्या था जैसे ऐश्वर्य आगे था तैसे अब भी है अरु स्त्रियां भी जैसे अपर मनुष्य थे तैसे स्त्रियां थी तिनविषे तेरा क्या था जो

त्याग किया पृथ्वी मंदिर अरु हस्ती जैसे आगे थे तैसे अब भी हैं तिनविषे तेरा क्या था जो त्याग किया है. हे राजन् ! सर्व त्याग तैंने अब भी नहीं किया जो तेरा होवै तिसका तू त्याग कर जो निर्दुःख पदको प्राप्त होवै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रने कहा तब शूरवीर जो इंद्रियजित राजा था सो मनविषे विचारत भया कि यह वन मेरा है अरु वृक्ष फूल फल मेरे हैं इनका त्याग करौं अरु कहत भया-हे देवपुत्र ! वन अरु वृक्ष फूल फल टासे जो मेरे थे तिनका मैंने त्याग किया क्यों अब तौ सर्व त्याग हुआ ? तब देवपुत्रने कहा-हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं भया जो वन अरु वृक्ष फूल फल तुझते आगे भी थे इनविषे तेरा क्या है जो तेरा है तिसको त्याग तब सुखी होवै. हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रने कहा तब राजा मनविषे विचारत भया कि, मेरी जलपानकी बावली है अरु मेरे बगीचे हैं इनका त्याग करौं जो सर्व त्याग सिद्ध होवै अरु कहा-हे भगवन्! मेरी यह बावली अरु बगीचे हैं तिनका त्याग किया क्यों अब तौ मेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ ? तब देवपुत्रने कहा-हे राजन् ! सर्व त्याग अब भी नहीं भया जो तेरा है तिसको त्यागैगा तब शांत पदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रने कहा तब राजा विचारने लगा कि अब मेरी मृगछाला अरु कुटी है तिसका त्याग करौं अरु कहा-हे देवपुत्र ! मेरे पास एक मृगछाला अरु एक कुटी है तिसका त्याग किया क्यों अब सर्व त्यागी भया ? तब देवपुत्रने कहा-हे राजन् ! मृगछालाविषे तेरा क्या है यह तौ मृगकी त्वचा है अरु कुटीविषे तेरा क्या है कुटी तौ माटी अरु शिलाकी हैं इसकरि तो सर्व त्याग सिद्ध नहीं होता जो कछु तेरा है तिसको त्यागै तब सर्व त्याग होवै अरु तू सर्व दुःखते रहित होवै. हे रामजी ! जब ऐसे कुंभने कहा तब राजाने मनविषे विचार किया कि अब मेरा एक कमंडलु है अरु एक माला है एक लाठी है इसका त्याग करौं ऐसे विचार करि राजा शांतिके लिये बोलत भया-हे देवपुत्र ! मेरी लाठी अरु कमंडलु अरु एक माला है तिसका भी त्याग

किया क्यों अब मैं सर्वत्यागी भया ? तब देवपुत्रने कहा—हे राजन् ! कमंडलुविषे तेरा क्या है कमंडलु तौ वनका तुम्बा है तिसविषे तेरा कछु नहीं अरु लाठी भी वनके बाँसकी है अरु माला भी काष्ठकी है तिनविषे तेरा क्या है जो कछु तेरा है तिसका त्याग कर जब तिसका त्याग करैगा तब दुःखते रहित होवैगा. हे रामजी ! जब इस प्रकार कुंभने कहा तब राजा शिखिध्वज मनविषे विचारत भया-कि, अब मेरा क्या रहता है तब देखा कि एक आसन रहता है अरु बासन हैं जिस-विषे फूल फल राखते हैं अब इनका त्याग करौं तब राजाने—कहा— हे भगवन् ! आसन अरु बासन यह मेरे पास रहते हैं इनका भी त्याग किया क्यों अब तौ सर्व त्यागी भया ? तब कुंभने कहा—हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं भया आसन तौ भेडकी ऊनका है अरु बासन मृत्तिकाके हैं इनविषे तेरा कछु नहीं जो कछु तेरा है तिसका त्याग कर जो सर्व त्याग होवै अरु दुःख निवृत्त हो जावै. हे रामजी ! जब इस प्रकार कुंभने कहा तब राजा उठि खडा हुआ अरु वनकी लकड़ी इकट्ठी करी अरु अग्नि लगाई जब बडी अग्नि लगी तब लाठीको हाथविषे लेकरि कहने लगा—हे लाठी ! मैं तेरेसाथ बहुत देशोंका पर्य-टन किया है परंतु मेरे साथ उपकार कछु न किया अब मैं कुंभ मुनिकी कृपाते तरौंगा तेरेको नमस्कार है ऐसे कहकरि लाठीको अग्निविषे डारि दिया बहुरि मृगछालाको हाथविषे लेकरि कहा—हे मृगकी त्वचा ! बहुत काल मैं तेरे ऊपर आसन किया है परंतु तुझने उपकार कछु न किया, अब कुंभ मुनिकी कृपासों मैं तरौंगा तेरे ताईं नमस्कार है ऐसे कहिकरि मृगछालाको अग्निविषे डारि दीनी, बहुरि कमंडलुको लेकरि कहने लगा—हे कमंडलु ! धन्य है मैं तेरे ताईं धारा अरु तुझने मेरे जलको धारा तैंने मुझसे गुण कोप नहीं किया तौ भी कमंडलुकी जैसे प्रवृत्ति त्यागनी है तैसे निवृत्तिकी कल्पना भी त्यागनी है ताते तेरेको नमस्कार है तुम जावहु ऐसे कहकरि कमंडलु भी अग्निविषे जलाय दिया. बहुरि मालाको हाथविषे लेकरि कहने लगा—हे माला ! तेरे मणके जो मैं फेरे हैं सो मानो अपने मैंने जन्म

गिने हैं तेरे संबंधकरि जाप किया है अरु दिशा विदिशा गया हौं अब तेरेको नमस्कार है ऐसे कहिकरि मालाको भी अग्निविषे डारि दीनी इसी प्रकार फल फूल कुटी आसन सब जलाय दिये बड़ी अग्नि जागी अरु बड़ा प्रकाश भया जैसे सुमेरु पर्वतके पास सूर्य चढे अरु मणिका भी चमत्कार होवै तौ बड़ा प्रकाश होता है तैसे बड़ी अग्नि लगी अरु राजाने संपूर्ण सामग्रीका त्याग किया, जैसे पके फलको वृक्ष त्यागता है, जैसे पवन चलनेते ठहरता है तब धूडते रहित होता है तैसे राजा सर्व सामग्रीको त्यागि निर्विघ्न हुआ अरु सर्व सामग्री अग्निविषे डारी अरु अग्निरूप होत भयी जैसे नदियां समुद्रविषे जाय समुद्ररूप होती हैं तैसे सब सामग्री अग्निरूप होत भयी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज-सर्वत्यागवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

चित्तत्यागवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब संपूर्ण सामग्री जलाई अरु भस्म हो गयी जैसे सदाशिवके गणने दक्षप्रजापतिके यज्ञको स्वाहा करि दिया था, तैसे जेती कछु सामग्री थी सो सब स्वाहा हो गयी अरु वन बड़ा प्रज्वलित भया जेते कछु वृक्षके रहनेवाले पक्षी थे सो भाजि गये अरु मृग पशु कई आहार करते कई जुगली करते थे सब भाजि गये, जैसे पुरको आग लगेते पुरवासी भाजि जावैं तैसे भाजि गये तब राजा मनविषे विचारत भया कि कुंभकी कृपाते मैं बडे आनंदको प्राप्त भया, अब दुःख मेरे मिटि गये हैं जेती कछु वस्तु मनके संकल्पकरि रची थी जो मेरी हैं सो जलाय दी तिसका न मेरे ताईं हर्ष है न शोक है जेते कछु दुःख होते हैं सो ममत्वकरि होते हैं सो मेरा ममत्व अब किसीसे नहीं रहता ताते दुःख भी कोई नहीं अब मैं ज्ञानवान् भया हौं, अब मेरी जय है अब निर्मल भया हौं अरु सर्व त्याग किया है ऐसे विचार करिकै

राजा उठि खड़ा हुआ हाथ जोड कहत भया-हे देवपुत्र ! क्यों अब मैं सर्व त्याग किया है जो आकाश ही मेरे वस्त्र हैं अरु पृथ्वी मेरी शय्या है जब राजाने ऐसे कहा, तब कुंभमुनिने कहा-हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं किया जो तेरा है तिसका त्याग करु तब दुःख तेरे निवृत्त हो जावें बहुरि राजाने कहा-हे भगवन् ! अब तौ अपर मेरेपास कछु नहीं रहा नंगा होकरि तुम्हारे आगे खड़ा हौं अब एक इंद्रियोंका धारणहारा रक्त मांसका देह है जो कहौ तौ इसका भी त्याग करौं पर्वतके ऊपर जायकरि डारि देऊँ ऐसे कहिकरि राजा पर्वतको दौडा कि देहको डारि देऊं, तब कुंभ मुनिने कहा-हे राजा ! ऐसे पुण्यदेहको क्यों त्यागता है ? इसके त्यागेते सर्व त्याग नहीं होता जिसके त्यागनेते सर्व त्याग होवे तिसका त्याग करु इस देहविषे क्या दूषण है ? जैसे वृक्षसाथ फूल फल होते हैं, जब वायु चलता है तब फूल फल गिरते हैं सो फूल फल गिरनेका कारण वायु है, वृक्षविषे दूषण कछु नहीं, तैसे देहविषे दूषण कछु नहीं जो देहका पालनेहारा अभिमान है तिसका त्याग करु जो सर्व त्यागसिद्धि होवै अरु देह तौ गुण है जो कछु इसको देता है सोई लेता है आपते बोलता नहीं जड़ है इसके त्यागते क्या सिद्ध होता है, जैसे पवनकरि वृक्ष हिलता है अरु भूकंपकरि पर्वत कँपते हैं तैसे देह आप कछु नहीं करता अपरकी प्रेरी चेष्टा करता है जैसे पवनकरि समुद्रविषे तरंग होते हैं अरु तृणको जहां जल ले जाता है तहां चले जाते हैं, तैसे देह आपते कछु नहीं करता इसका जो प्रेरणेवाला है तिसकरि चेष्टा करता है ताते देहके प्रेरणेवालेका त्याग करु जो सुखी होवै. हे राजा ! जिसकरि सर्व है अरु जिसविषे सर्व शब्द है अरु जो सर्व ओरते त्यागने योग्य है तिसका त्याग कर कि तेरे सर्व दुःख मिटि जावैं तब राजाने कहा-हे भगवन् ! वह कौन है जो सर्व है अरु जिसविषे सर्व शब्द है अरु जो सर्व ओरते त्यागने योग्य है. हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ ! जिसके त्यागेते जरा मृत्यु नष्ट हो जावै सो कहो, तब कुंभने कहा-हे राजा ! जिसका नाम चित्त है अरु प्राण है अरु देह है ऐसा जो चित्त है तिसका त्याग कर अरु बाहर जो नाना प्रकारके आकार दृष्टि आते हैं सो चित्तहीकरि दृष्टि आते हैं ताते चित्तका त्याग करु. हे राजा ! जैसे सर्प खुदविषे बैठा

होवै तौ खुदका षण कछु नहीं, विष सर्पविषे है जिसकरि डसता है तिसके नाश करनेका उपाय करु अरु सर्व शब्द भी इस चित्तविषे है अरु आत्मा है जो मात्रपद है जिसविषे न एक कहना है न द्वैत कहना है अरु सर्व ओरते इसी चित्तका त्याग करना योग्य है जब इस चित्तका त्याग करैगा तब त्यागरूपी अमृतकरि अमर हो जावैगा अरु मृत्युते रहित होवैगा अरु जो चित्तका त्याग न करैगा तौ बहुरि देहको धारैगा अरु दुःख भोगैगा अरु जैसे एक क्षेत्रते अनेक दाने उत्पन्न होते हैं अरु जब क्षेत्र ही जलि जाता है तब अन्न नहीं उपजता, तैसे यह जो देह है अरु जरा मृत्यु दुःख संसार इनका बीज चित्त है, जैसे अनेकका कारण क्षेत्र है तैसे दुःख संसारका कारण चित्त है. ताते हे राजा। चित्तका त्याग करु जब इसका त्याग करैगा तब सुखी होवैगा. हे राजा। जिसने सर्व त्याग किया है सो सुखी हुआ है जैसे आकाश सर्व पदार्थते रहित है किसीका स्पर्श नहीं करता अरु सर्वते बड़ा है अरु सुखरूप है अरु सर्व पदार्थ नष्ट हो जाते हैं तौ भी ज्योंका त्यों रहता है जो आकाश सर्व त्याग किया है. हे राजा। तू भी सर्वत्यागी होउ राज्य अरु देह अरु कुटुंब गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं सो सर्व चित्तने कल्पे हैं अरु जो एकका त्याग नहीं होता तौ कछु नहीं त्यागा जब चित्तका त्याग करै तब सर्व त्याग होवै. हे राजा। यह धर्म अरु वैराग्य अरु ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पे हुए हैं जब चित्त पुण्य-क्रियासों लगता है तब पुण्य ही प्राप्त होता है जब पापक्रियासों लगता है तब पाप ही प्राप्त होता है अधर्म अरु अवैराग्य अरु दारिद्र्य होता है जब पुण्य का फल उदय होता है तब सुख प्राप्त होता है अरु जब पापका फल उदय होता है तब दुःख प्राप्त होता है ताते जन्ममृत्यु दुःख नहीं मिटते. जब चित्तका त्याग होता है तब सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं. हे राजा। जो कोऊ पुरुष किसी वस्तुको नहीं चाहता जो मैं नहीं लेता तब तिसकी पूजा बहुत होती है अरु कोऊ कहता है कि मैं इस वस्तुको लेऊँ मेरेको यह देवै तब उसको देता कोई नहीं ताते सर्व त्याग करु जो सुखी होवै अरु सर्व त्याग कियेते सब तू ही होवैगा सर्वात्मा होवैगा अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपनेविषे देखैगा,जैसे मालाके मणकेविषे तागा होता है अरु मणके

भी सूत्रके आधार होते हैं तिनविषे अपर कछु नहीं होता तैसे देखैगा कि सर्व मैं ही हौं अरु एकरस हौं मेरेहीविषे ब्रह्मांड स्थित है अरु मैं ही हौं तुझते इतर कछु नहीं. हे राजा ! जिसने सर्व त्याग किया है सो सुखी है अरु समुद्रकी नाईं स्थित है उसको दुःख कोई नहीं ताते तू चित्तका त्याग करु जो राज्यदोष मिटि जावै अरु इस चित्तके एते नाम हैं चित्त मन अहंकार जीव अरु माया यह सर्व चित्तहीके नाम हैं. हे राजन् ! त्यागने अरु अपरकी भिक्षा लेनेते तौ चित्त वश नहीं होता चित्त तब ही वश होता है जब पुरुष निर्वासनिक होता है जबलग चित्त फुरता है तबलग सर्व त्याग नहीं होता जब यही फुरना निवृत्त होता है तब चित्तका त्याग होता है अरु चित्तको त्यागिकरि भी त्यागके अभिमानते रहित होना ऐसा शून्य पाछे जब तू रहैगा तब सर्वात्मा होवैगा, जब चित्तको त्यागैगा तब तिसपदको प्राप्त होवैगा कि जेते ऐश्वर्यसुख हैं तिनका आश्रय है अरु जेते दुःख हैं तिसका नाश करनेहारा है अरु जिसके जानेते किसी पदार्थकी इच्छा न रहैगी काहेते न रहैगी कि सर्व आनंदके धारनेहारा तेरा स्वरूप है बहुरि इच्छा किसकी रहै, जैसे आकाशके आश्रय देवलोकते आदि सर्व विश्व रहता है अरु आकाशकी इच्छा कछु नहीं, जो इच्छा नहीं करता तौ भी सर्व आकाशहीविषे है, अरु सर्वका धारणेहारा है. हे राजन् ! जब तू भी इच्छा किसीकी न करैगा तब निर्वासनिक होकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा अरु जानैगा कि सर्वका आत्मा मैंही हौं सर्वको धारि रहा हौं अरु भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं, जैसे समुद्रके आश्रय तरंग हैं तैसे मेरे आश्रय काल है अरु चित्तका संबंध तेरे ताईं प्रमादकरिकै है अरु प्रमाद यही है कि चिन्मात्र पदविषे चित्त होकरि फुरता है अरु चित्त कैसा है कि जड भी है अरु चेतन भी है इसीका नाम चिज्जडग्रंथि है जब यह ग्रंथि खुल जावैगी तब अपने आपको वासुदेव रूप जानैगा जब निर्वासनिक होवैगा तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है तैसे चित्तविषे संसार है जैसे बीजके जलनेते वृक्ष भी जल जाता है तैसे वासनाके दग्ध हुएते संसार भी दग्ध होता है. हे राजा ! जैसे एक

डब्बेविषे रत्न होते हैं तौ रत्नोंके नाश हुए डब्बा नाश नहीं होता अरु डब्बेके नष्ट हुए रत्न नष्ट होते हैं सो डब्बा क्या है अरु रत्न क्या हैं श्रवण करु. डब्बा चित्त है अरु रत्न देह है ताते चित्त नष्ट होनेका उपाय करहु,जब चित्त नष्ट होवैगा तब देहते रहित होवैगा देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट हो जाता है जब चित्तरूपी धूडते रहित होवैगा तब केवल शुद्ध आकाश होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने चित्तत्यागवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४.
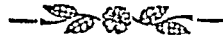
राजविश्रांतिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार कुम्भने कहा कि चित्तका त्यागना ही सर्व त्याग है तब शिखिध्वज ने कहा-हे भगवन् ! मैं चित्तको स्थित कैसे करौं संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूड है अरु संसार रूपी वृक्षका चित्तरूपी बानर है जो कबहूँ स्थित नहीं होता, ताते ऐसे चित्तको मैं कैसे स्थित करौं ? तब कुंभने कहा-हे राजन् ! चित्तका रोकना तौ सुगम है नेत्रोंके खोलने अरु मूंदने-विषे भी कछु यत्न है परंतु चित्तके रोकनेविषे कछु यत्न नहीं परन्तु सुगम किसको है जो दीर्घ दर्शी है अरु अज्ञानीको चित्तका रोकना कठिन है, जैसे चण्डालको पृथ्वीका राजा होना कठिन है अरु जैसे तृणको सुमेरु होना कठिन है तैसे अज्ञानीको चित्तका रोकना कठिन है. राजोवाच-हे देवपुत्र ! चित्तका तोडना कठिन है तौ भी टूटि जाता है परन्तु मनका रोकना अति कठिन है, जैसे बडे मच्छको बालक रोक नहीं सकता तैसे मैं चित्त को रोक नहीं सकता. हे देवपुत्र ! तुम कहते हो कि मनका रोकना सुगम है अरु मुझको ऐसे कठिन भासता है जैसे मूर्ति लिखी हुई अंधपुरुषको नेत्रोंसे नहीं दृष्टि आती तौ वे हाथ-विषे कैसे लेवै तैसे तिनको वश करना मेरे ताईं कठिन भासता है प्रथम

चित्तका रूप मेरे ताईं कहौ कि क्या है. कुम्भ उवाच–हे राजन्! इस चित्तका रूपवासना है जब वासना नष्ट होवै तब चित्त नष्ट हो जावै ताते चित्तका बीज तू नष्ट कर, तब चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट होवै न कोऊ टास रहै न कोऊ फूल फल रहै अरु जब टासको काटेगा तब बहुरि होवैगा टासके काटनेते वृक्ष नष्ट नहीं होता बहुरि कई टास होते जब बीजको नष्ट करै तब वृक्ष भी नष्ट हो जावै. राजोवाच–हे भगवन्! संसाररूपी सुगंधि है तिसका चित्तरूपी फूल है अरु संसाररूपी तंतु है तिसका चित्तरूपी भीह है अरु देहरूपी तृण है तिसके उठावने उडावनेवाला चित्तरूपी पवन है अरु जरा मृत्यु अध्यात्मक अधिभूतक तेल हैं तिनका यह तिल है जिसते तैल उपजता है अरु संसाररूपी अँधेरी है तिसका यह चित्तरूपी आकाश है जो आकाशविषे कई अँधेरियां होती हैं अरु हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भँवरा है तिसका बीज भी कहौ अरु टास भी कहौ जो क्या है अरु टासका काटना क्या है अरु वृक्ष क्या है अरु फूल फल क्या हैं सो कृपाकरि कहौ. कुंभ उवाच–हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ निर्मल है तिसविषे अहंभाव बीज है इसीको अहंकार कहते हैं अरु इसीको चित्त कहते हैं इसीको मन कहते हैं अरु इसीको जड़ कहते हैं इसीको मिथ्या कहते हैं तिस अहंविषे जो संवेदन है सोई देह इंद्रियां हो पसरी हैं तिसविषे जो निश्चय है सो बुद्धि है तिस बुद्धिविषे जो निश्चय है यह मैं हौं यह संसार है सोई जीव अहंकार है अहंकार इस वृक्षका बीज है अरु वासना इस चित्तरूपी वृक्षके टास हैं अरु सुखदुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं. हे राजन्! इसका जो काटना है सो सुन, एकांत बैठिकरि चिंतवनाते रहित होना एक आश्रयको त्यागिकरि दूसरेका अंगीकार करना इस प्रकार स्थित होना कि मैं ऐसा त्यागी हौं इसका चिंतवना यही टासको काटना है. हे राजन्! इस टासके काटेते वृक्ष नष्ट नहीं होता काहेते जो ऐसा होकरि स्थित होना जो मैं हौं अरु वासना त्याग करै कछु फुरै नहीं जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है तब चित्तरूपी वृक्ष नष्ट हो जाता है, काहेते

कि इसका बीज अहं है जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्ष भी नष्ट हो जाता है, ताते चित्तका बीज तू नष्ट कर. राजोवाच–हे देवपुत्र ! तुम्हारा निश्चय मैंने यहां जाना है कि चित्तके त्यागते चित्तका बीज नष्ट करना श्रेष्ठ है. हे भगवन् ! एता काल में टास काटत रहा हौं, इसीते दुःख मेरे नष्ट नहीं भये अरु तुमने कहा कि अहं ही दुःखदायी है सो अहंका उत्पन्न होना कैसे होता है ? कुंभ उवाच–हे राजन् ! शुद्ध चेतनविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंका फुरणा कि मैं हौं सो दृश्यरूप हुआ है मिथ्या संवेदनकरिकै हुआ है, जैसे शांत समुद्रविषे पवनकरिकै लहरी तरंग होते हैं तैसे शुद्ध आत्माविषे अहं फुरणा है तिसकरिकै संसार हुआ है ताते अहंभावको नष्ट करु जो शांतपदविषे स्थित होवै जो दुःखदायक वस्तु है तिसको नष्ट करै सो शांत होवै. राजोवाच–हे भगवन् ! वह कौन वस्तु है ? जो जलावने योग्य है अरु वह कौन अग्नि है ? जिसविषे जलती है. कुम्भ उवाच–हे त्यागवान्‌विषे श्रेष्ठ राजा ! तेरा जो अपना स्वरूप है तिसका विचार कर कि मैं क्या हौं यह संसार क्या है इसका दृढ विचार करना सोई अग्नि है अरु मिथ्या अनात्मा जो देह इंद्रियादिकविषे अहंभाव है तिसको वास्तवरूप विचार अग्निकरि जलावहु जब विचार अग्निकरिकै अहंकार बीजको जलावैगा तब केवल चिन्मात्र होवैगा. हे राजा ! मेरे उपदेशकरिकै तू आपको क्या जानता भया है ? सो मेरे ताईं कहौ, तब राजाने कहा मैं राजा भी नहीं अरु पृथ्वी भी मैं नहीं अरु पर्वत भी मैं नहीं अरु आकाश भी मैं नहीं अरु दशों दिशा भी मैं नहीं अरु मैं रुधिरमांसकी देह भीनहीं अरु कर्मइंद्रियां ज्ञानइंद्रियां भी नहीं अरु मन बुद्धि भी मैं नहीं अरु मैं अहंकार भी नहीं इनते रहित शुद्ध आत्मा हौं. परंतु हे भगवन् ! अहंरूपी कलंकता मेरे ताईं कहांते लगी है तिस कलंकके दूर करणेको मैं समर्थ नहीं, तब कुम्भने कहा. हे राजा ! इसी अहंका त्याग करु कि मैं त्याग किया है यह फुरणा भी न फुरै शून्य हो रहु जब इसका त्याग करैगा तब चेतन आकाश होवैगा. हे राजा ! तू अपने स्वरूपविषे जानिकरि देख कि कौन है, तब राजाने कहा–हे भगवन् ! मैं यह जानता हौं कि

मेरा स्वरूप आत्मा है सो सर्वका आत्मा है अरु मैं आनंदरूप हौं सर्व मेरा प्रकाश है परंतु यह नहीं जानता कि अहं भावकलना कहांते लगी है इसके नाश करनेको मैं समर्थ नहीं अरु यह मैं जाना कि संसारका बीज चित्त है अरु चित्तका बीज अहंकार है तुम्हारी कृपाते मैं जाना है कि, मेरा स्वरूप आत्मा है अहं त्वं मेरेविषे कोई नहीं तुम भी इस अहंरूप कलंकताको दूरकरि रहे हौ मेरेते दूर नहीं होता बहुरि बहुरि आय फुरता है कि मैं शिखिध्वज हौं इस अहंकारिकै मैं संसारी हौं इसके नाश करणेका उपाय तुम कहौ. कुंभ उवाच–हे राजन् ! कारण विना कार्य नहीं होता अरु जो कारण विना कार्य भासै तो जानिये कि भ्रममात्र है अरु मिथ्या है अरु जिसका कारण पाइये सो जानिये कि सत्य है ताते तू कह इस अहंकारका कारण क्या है तब मैं उत्तर कहौंगा. राजोवाच–हे भगवन् ! अहंकारका कारण शुद्ध आत्मा है शुद्ध आत्माविषे जो जानना हुआ है जानन मात्रविषे जाननेका उत्थान हुआ है जो दृश्यकी ओर लगा है सो जानना संवेदन ही अहंका कारण है. कुंभ उवाच–हे राजन् ! इस जाननेका कारण क्या है ? प्रथम तू यह कहु पाछे दूर करणेका उपाय मैं कहौंगा. हे राजन् ! जिसका कारण सत् होता है तो कार्य भी सत् होता है अरु जो कारण झूठ होता है तौ कार्य भी झूठ होता है, जैसे भ्रम दृष्टिकरिकै दूसरा चंद्रमा आकाशविषे देखता है सो कारण तिसका भ्रम है ताते इस जानने संवेदनका कारण कहु कि क्या है, जो जानना संवेदन द्रष्टा अरु दृश्यरूप होकरि स्थित भयी है अरु दृश्यद्रष्टृरूप होकरि स्थित भयी है. राजोवाच–हे देवपुत्र ! जाननेका कारण देहादिक दृश्य हैं काहेते कि जानना तब होता है जब जानने योग्य वस्तु आगे होती है जो आगे वस्तु नहीं होती है तौ तिसका जानना भी नहीं होता ताते जाननेका कारण देहादिक हुए. कुंभ उवाच–हे राजन् ! यह देहादिक मिथ्या हैं भ्रमकरिकै हुए हैं इनका कारण तो कोई नहीं. राजोवाच–हे देवपुत्र ! देहका कारण तो प्रत्यक्ष है खाता पीता है अरु पिताते इसकी उत्पत्ति भयी है अरु प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्टि आता है तुम कैसे कहते हौ कि कारण

विना है अरु मिथ्या है. कुंभ उवाच-हे राजन्! पिताका कारण कौन है पिता भी मिथ्या है जैसे स्वप्नविषे पिता अरु पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं ताते कछु पिताका कारण क्या है? राजोवाच-हे भगवन्! पुत्रका कारण पिता अरु पिताका कारण पितामह है इसी प्रकार परंपराकरिकै सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष जाना जाता है कि सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजीते भयी है. कुंभ उवाच-हे राजन्! ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत सर्व सृष्टि संकल्पकी रची है अरु देह भी भ्रमकरिकै भासता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है जैसे सीपीविषे रूपा भासता है तैसे आत्माविषे देह भासता है, जैसे आकाशविषे दो चंद्रमा भ्रमकरिकै देखते हैं तैसे आत्माविषे यह संसार भ्रमकरिकै भासता है अरु जो तू कहै क्रिया कैसे दृष्टि आते हैं तौ सुन. जैसे कोऊ कहै वंध्याके पुत्रको भूषण पहिराये हैं जो वंध्याके पुत्र ही नहीं तौ भूषण किसने पहिरे सो भ्रमकरिकै भासता है, जैसे स्वप्नविषे सब क्रिया होती हैं सो भ्रममात्र हैं तैसे यह संसार तेरे भ्रमविषे है जब भ्रम निवृत्त होवैगा तब केवल आत्मा ही भासैगा. हे राजन्! जैसे तू अपना देह जानता है तैसे ब्रह्माका भी जान, ब्रह्माका कारण कौन है ताते इस भ्रमते जाग जो तेरा भ्रम नष्ट हो जावै. राजोवाच-हे भगवन्! मैं जागा हौं अब मेरा भ्रम नष्ट भया है अरु मैंने यह संसार मिथ्या जाना है कि केवल संकल्पमात्र है जो कछु दृश्य है सो मिथ्या है अरु एक आत्मा ही मेरे निश्चयविषे सत्य भया है. हे भगवन्! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्म है अरु अद्वैत है, अविनाशी है अरु सर्वात्मा है ब्रह्माका कारण यह हुआ. कुंभ उवाच-हे राजन्! कारण अरु कार्य द्वैतविषे होते हैं सो असत् हैं जो तिस कारणका देशते भी अंत होता है वस्तुते भी अरु कालते भी अंत हो जाता है अरु परिणामी होता है जो वस्तु परिणामी होवै सो मिथ्या है. हे राजन्! आत्मा अद्वैत है जिसविषे न एक कहना है न द्वैत कहना है न भोगता है न भोग है न कर्म है अद्वैत है जो स्वरूपते परिणामको नहीं प्राप्त भया अरु सर्वात्मा है जो सर्व देश है अरु सर्वकाल भी है जो सर्व वस्तुविषे पूर्ण है अरु अद्वैत है, जो अद्वैत

है तो कारण कार्य किसका होवै कारणकार्यका संबंध द्वैतविषे होता है अरु परिणामी होता है अरु जिसविषे देशकालका अंत है सो आत्मा अद्वैत है तिसविषे न कोऊ देश है न काल है न कोऊ वस्तु है चिन्मात्रपद है. हे राजन् ! मैं जानता हौं कि तू जाग्रत् होवैगा भ्रम तेरा नष्ट हो जाता है जैसे बर्फकी पुतली सूर्यकी किरणोंसों क्षीण हो जाती है तैसे तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुएते तू आत्मा ही होवैगा तू अपने प्रत्यक् चेतनस्वरूपविषे स्थित होहु अरु देख कि ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्माका किंचन है परमात्मा ही ऐसे होकरि स्थित भया है अरु जो दृष्टि पडता है तिस सर्वका अपना आप आत्मा है. जो जागै तौ जानै जागे विना नहीं जानता. राजोवाच–हे भगवन् ! तुम्हारी कृपाते मैं जागा हौं अरु जानता हौं कि मेरा स्वरूप आत्मा है अरु मैं निर्मल हौं अब मेरा मुझको नमस्कार है एक मैं ही हौं मेरेते इतर कछु नहीं अरु आपको जाना है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने राजविश्रांतिवर्णनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ९५.
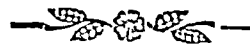
शिखिध्वजविश्रांतिवर्णनम् ।

राजोवाच–हे भगवन् ! तुम कैसे कहते हौ कि, ब्रह्माका कारण कोई नहीं आत्मा ऐसा ईश्वर है जो अनंत है अरु अच्युत अव्यक्त अरु अद्वैत है परमाणुका विषय नहीं अरु परमब्रह्म है सोई ब्रह्माका कारण है. कुंभ उवाच–हे राजन् ! तू ही कहता है कि आत्मा अनंत है जो अनंत है तिसको देशकाल वस्तुका परिच्छेद नहीं सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पूर्ण है सो कारण किसका होवै, कारण तब होवै जब प्रथम द्वैत होवै सो आत्मा अद्वैत है अरु कारण तिसको कहते हैं जो कार्यते पूर्व होवै अरु पाछे भी वही होवै, जैसे घटके आदि मृत्तिका है अंत भी मृत्तिका होती है तिसको कारण कहते हैं सो आत्माविषे न आदि है

न अंत है आत्मा अनंत है अरु कारण तब होता है जब परिणाम होता है परिणाम नहीं होता है सो आत्मा अच्युत है अपने स्वरूपते कदाचित् नहीं गिरा अरु भोक्ता भी द्वैतविषे होता है सो आत्मा अद्वैत है भोग भोक्ता दोनों नहीं अरु आत्माविषे कर्म भी नहीं कि आत्माते आदि कौन है, जिसकरि आत्मा सिद्ध होवै अरु किसीका कार्य भी नहीं काहेते कि जो कार्य होता है सो इंद्रियोंका विषय होता है सो आत्मा अव्यक्त है अरु जो कार्य होता है तिसका कारण भी होता है सो आत्मा सर्वकी आदि है तिसका कारण कौन होवै जो सर्वात्मा है अरु स्वच्छ है आकाशवत् निर्मल तेरा स्वरूप है. राजोवाच-हे भगवन्! बडा आश्चर्य है मैंने जाना है कि जो आत्मा अद्वैत है सो न किसीका कारण है न कार्य है अरु अनुभवरूप है सो मैं हौं अरु निर्मल हौं विद्या अविद्याके कार्यते रहित हौं अरु निर्वाण पद हौं अरु निर्विकल्प हौं मेरेविषे फुरणा कोई नहीं बहुरि कैसा हौं जो मैं नहीं अरु मैं ही हौं ऐसा जो सर्वात्मा हौं मेरा मुझको नमस्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजविश्रांतिवर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६.

शिखिध्वजबोधवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! राजा शिखिध्वज कुंभमुनिको प्रबोध हुआ ऐसे वचन कहिकरि केवल निर्वाणपदविषे स्थित भया जब निर्विकल्प फुरणेते एक मुहूर्तपर्यंत स्थित रहा, जैसे दीपक वायुते रहित स्थित होता है तब कुंभने जगायकरि कहा. हे राजन्! तेरा समाधिसाथ क्या है अरु उत्थान क्या है तू तौ केवल आत्ममात्र है अरु मैं जानता हौं कि तू परमज्ञानकरि शोभत भया है, जैसे डब्बेविषे रत्न होता है तिसका प्रकाश बाहिर दृढ नहीं आता अरु जब डब्बेसों निकासिकरि देखिये तब बड़ा प्रकाश होता है तैसे अविद्यारूपी डब्बेसों तू निकसा है अरु

परमज्ञानकरिकै शोभत भया है. हे राजन् ! तेरेविषे न कोई क्षोभ है न कोई उपाधि है संसारके रागद्वेषते तू रहित भया है शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरु तेरे ताईं उपाधि कोई न लगैगी. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार कुंभ मुनिने कहा तब राजा शांतरूप हो गया अरु कहा–हे भगवन् ! जो कछु तुमने आज्ञा करी सो सर्व भले प्रकार मैंने जाना है अब एक प्रश्न और है तिसका उत्तर कृपा करि कहौ, जो मैं दृढ स्थित होऊँ. हे भगवन् ! आत्मा तौ एक है अरु शुद्ध है केवल आकाशरूप है चेतनमात्र है तिसविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी कहाँते उपजी है सो कहौ. कुंभ उवाच–हे राजन् ! जो कछु स्थावर जंगम संसार है सो महाप्रलयपर्यंत है जब महाप्रलय होता है तब केवल आत्मा ही शेष रहता है अरु स्वच्छ निर्मल होता है तहां न तेज होता है न अंधकार होता है केवल अपने आप स्वभावविषे स्थित होता है अरु जेता कछु आनंद है तिसका अधिष्ठान आत्मा है अरु सत् असत्ते रहित है सत् कहिये जिसको बुद्धि इदं करि कहते हैं अरु असत् कहिये जिसको नहीं कहते हैं तिस सत् असत् ते रहित अरु सर्व लक्ष्मीकरि संयुक्त जो अपना स्वभावमात्र है जिसविषे उपाधि कोऊ नहीं अरु सर्वदा प्रकाशवान् है अरु सर्वदा उदयरूप है तिस परमात्माका यह संसार चमत्कार है, जैसे रत्नका चमत्कार लाट होती है तैसे ब्रह्मका चमत्कार यह संसार है ताते ब्रह्मरूप है इतर कछु नहीं हुआ केवल ब्रह्मरूप है अरु ब्रह्मते इतर करिकै है सो मिथ्या ही भ्रम जानना, जो कछु आकार भासते हैं सो असत् हैं. हे राजन् ! जो सब आकार मिथ्या हैं तौ तेरी संवेदन भी मिथ्या है आत्माविषे अहं त्वंका उत्थान कोई नहीं केवल ज्ञानमात्र है अरु केवल सत्रूप है अरु आनंदरूप है अरु अविद्या तमते रहित प्रकाशरूप है अरु प्राणोंकरि नहीं जाना जाता जो इंद्रियोंका विषय नहीं अरु मनकी चिंतवनाते रहित है. काहेते कि सर्वका द्रष्टा है अरु सर्वका अपना आप अनुभवरूप है. हे राजन् ! तिसविषे स्थित होहु बहुरि आत्मा कैसा है कि बडेते बडा है अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है स्थूलते स्थूल है जिसविषे आकाश भी किसी ओर अणु जैसा पाता है अरु ब्रह्मांड भी तिसविषे तृणसमान पाते हैं अरु अपने आपकरि पूर्ण

है अरु अपने आपकरि पूर्ण है अरु किंचित् भी तिसते उत्पन्न कहीं नहीं भया अरु नाना प्रकार करिकै स्थित भया है फुरणेकरिकै जगत् भासता है, फुरणेके निवृत्त हुए केवल शुद्ध आत्मा है. राजोवाच−हे भगवन् । तुम कहते हौ कि संसार फुरणेमात्र है अरु आत्मा शुद्ध शांतिरूप है अरु निर्विकल्प है तो तिसविषे संवेदन फुरणा कहांते आया है। कुंभ उवाच−हे राजन्! फुरणा भी आत्माका चमत्कार है जैसे पवनविषे सस्पंद फुरणा शक्ति भी है अरु निस्पंद ठहरना शक्ति भी है जब फुरता है तब स्पर्श चलना प्रगट होता है जब ठहर जाता है तब प्रगट नहीं होता, तैसे संवेदन जब फुरता है तब नाना प्रकार होते हैं अरु जगत् भासता है जब फुरणा मिट जाता है, तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है. हे राजन् । आत्मा सत्तामात्र है अरु संसार भी सन्मात्र आत्मा ही है जो सम्यक् दृष्टिकरि देखिये तौ आत्मा ही भासता है अरु असम्यक् दृष्टिकरिकै दुःखदायक जगत् भासता है,जिसके मनविषे संसारभावना है तिसको दुःखदायक भासता है अरु जिसके हृदयविषे आत्मभावना होती है तिसको आत्मा ही भासता है अरु सुखरूप होता है काहेते कि आत्मा नाम अपने आपका है जिसने जगत्को अपना आप जाना तिसको दुःख कहां होवै ? हे राजन्!यह संसार भावनामात्र है जैसी भवना होती है, तैसे ही भासता है जिसकी भावना विषविषे अमृतकी होती है तो विष भी अमृत हो जाता है अरु जिसकी भावना अमृतविषे विषकी होती है तब अमृत भी विष हो जाता है काहेते कि संसार भावनामात्र है जैसी भावना दृढ करता है यद्यपि आगे वह वस्तु न होवै तौ भी हो जाती है,ताते संसार भावनामात्र मिथ्या है ज्ञानवान्को दुःख कदाचित् नहीं देता अरु अज्ञानीको सुख कदाचित् नहीं देता. हे राजन् । अहंता अरु संवेदन चित्त अरु चैत्य यह भी आत्माकी संज्ञा है, जैसे आकाश कहिये शून्य कहिये नभ कहिये यह सर्व संज्ञा आकाशकी ही हैं, तैसे सर्व संज्ञा आत्माकी हैं आत्माते इतर कछु नहीं, अहं त्वं सर्व आत्माके आश्रय हैं जैसे भूषण स्वर्णके आश्रय होते हैं परंतु स्वर्ण परिणामकरि भूषण होता है जो पूर्वरूपको त्यागता है आत्मा तैसे भी नहीं केवल एकरस है अरु

अपने आपविषे स्थित है कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त भया यह संवेदन आत्माका चमत्कार है अरु सत असत्ते आत्मा परे है. जेता कछु दृश्य है सो आत्माविषे नहीं चित्तकरिकै रचा है इसीते परे है. हे राजन्! सो कारण कार्य किसका होवै कारण कार्य तब होता है जब दृश्य होता है सो आत्मा किसीका विषय नहीं कारण कार्य किसीका होवै अरु विश्वका आदि भी आत्मा है अंत भी आत्मा है अरु मध्यविषे भी आत्मा ही है जो कछु अपर भासता है सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे घर मंडल पुर दृष्टि आते हैं तिसकी आदि भी आकाश है अंत भी आकाश है अरु मध्य भी आकाश है जो घर मंडल पुर भासते सो मिथ्या हैं. जैसे अग्नि नाना प्रकार दृष्टि आता है सो मिथ्या आकार है एक अग्नि ही है, तैसे सर्वकी आदि मध्य अंत एक आत्मा ही सार है. हे राजन्! जैसे जलविषे भी देश काल होता है. काहेते कि दृश्य है सो इंद्रियोंका विषय है यह तरंग अमुक स्थानते उठा है अरु अमुकस्थानविषे जाय लीन भया तौ स्थान देश हुआ अरु उपजिकरि एता काल रहा सो काल हुआ अरु जिसको इंद्रिय विषयकरि न सकैं तिसविषे देश काल कैसे होवै? राजोवाच—हे भगवन्! मैंने भले प्रकार जाना है कि आत्मा चिन्मात्र है ज्ञानइंद्रियां कर्म इंद्रियोंते परे हैं अरु देश काल इंद्रियां मनकरि जानता है कि अमुक देश है अमुक काल है जहां इंद्रियां अरु मन ही न होवै तहां देश काल कहां है? कुंभ उवाच—हे राजन्! जो तैंने ऐसे जाना तौ तू जाना है आत्माविषे देश काल कोई नहीं यह मन इंद्रियोंकरि जाना जाता है कि यह देश है अरु यह काल है जो इनते रहित होकरि देखै तो आत्मा ही भासै अरु जो इनसहित काल देखै तौ संसार ही दृष्टि आवैगा. हे राजन्! इनते रहित होकरि देख जो संसार तेरेविषे कछु न रहै जो अमुक प्रश्न किया अब अमुक प्रश्न करौं. संसार तबलग होता है जबलग इनका संयोग अपने साथ होता है. हे राजन्! ब्रह्मकरि ब्रह्मको देखै अरु पूर्णको देखै जो तू भी पूर्ण होवै जब पूर्ण होवैगा तब सर्व ओर आपको जानैगा अरु सर्व संज्ञा तेरी ही होवैगी अरु निर्वाच्य पदको प्राप्त होवैगा

जहाँ इंद्रियोंकी गम नहीं केवल आकाशरूप है. जैसे आकाश अपनी शून्यताकरि पूर्ण है, तैसे तू अपने चेतन स्वभावकरि आप पूर्ण होवैगा जब मनसहित षट् इंद्रियोंते रहित होकरि देखैगा अपने आपको बहुरि इनसहित देखैगा तौ भी तेरे ताईं चेतन आत्मा ही भासैगा संसारका शब्द अर्थ तेरे हृदयते उठि जावैगा शब्द यह जो संसार है अरु तिसको सत् जानना यह अर्थ है सो भावना निवृत्त हो जावैगी केवल आकाशरूप आत्मा ही भासैगा अरु संसार संवेदनमात्र है संवेदन कहिये चित्तशक्तिका चमत्कार है यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकरि स्थित भयी है अरु संसारको देखने लगी है जब अंतर्मुख होती है तब आत्मा ही दृष्टि आता है, आत्मा सदा एकरस है जब बहिर्मुख होती है तब संसार दृष्ट आता है. जैसी यह भावना करता है तैसे ही आगे दृष्टि आता है जब संसारकी भावना होती है तब संसार ही भासता है जब आत्माकी भावना होती है तब आत्मा ही भासता, है आत्मा सदा एकरस है अरु असंसारी है. ताते हे राजन्! तू आत्माकी भावना करु जो तेरे ताईं आत्मा ही भासै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधनं नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७.

शिखिध्वजप्रथमबोधवर्णनम्।

कुंभ उवाच–हे राजन्! यह संसार जो तेरे ताईं भासता है सो आत्माविषे नहीं केवल शुद्ध आत्माविषे जो अहम्‌का उत्थान है सोई संसार है सो अहंका चमत्कार न सत् है न असत् है, न अंतर है न बाहर है, न शून्य है न अशून्य है केवल अपने आपविषे स्थित है अरु संसारका प्रध्वंसाभाव भी नहीं प्रध्वंसाभाव कहिये जो पहिले होवै पाछे नाश हो जावै सो संसारका उदय अरु अस्त होना आत्माविषे नहीं केवल अपने आपविषे स्थित है तिसते इतर कछु नहीं यह कहना भी आत्मा-

विषे नहीं जो केवल अपने आपविषे स्वाभाविक स्थित है तिसविषे वाणीकी गम नहीं वाणी, तिसको कहते हैं जहां दूसरा होता है तहां दूसरा न होवै तहां वाणी क्या कहै यह कहना भी तेरे उपदेश निमित्त कहा है आत्माविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति नहीं. हे राजा ! ऐसा आत्माका कारण कार्य किसका होवै आत्मा शुद्ध है निर्विकार है अरु प्रमाणोंते रहित है जो किसी लक्षणकारि प्रमाण किया नहीं जाता सो आकार होकारि स्थित भया है अरु शांतरूप है. हे राजा ! ऐसा आत्मा है. कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है जब प्रथम परिणामको प्राप्त होता है अरु क्षोभ को प्राप्त होता है, सो आत्मा शांतरूप है अरु कारण तब होवै जब क्रियाकरिकै कार्यको उत्पन्न करै सो आत्मा अक्रिय है क्रियाते रहित है अरु कारणको कार्यते जानना है सो आत्मा चिह्नते रहित है अरु प्रमाणोंका विषय नहीं ताते कारण कार्य आत्मा किसीका नहीं अरु आत्माको कारण कार्य मानना मेरे तांई आश्चर्य आता है. हे राजन् ! जो वस्तु उपजती है सो नष्ट भी होती है अरु जो नष्ट होती है सो उपजती भी है सो आत्मा सर्वकी आदि है अरु अजन्मा है अरु निर्विकार है तिसविषे स्थित होउ जो तेरा संसार निवृत्त हो जावै. यह संसार अज्ञानकरिकै भासता है जब तू स्वरूपविषे स्थित होकारि देखैगा तब संसार न भासैगा अरु ऐसे भी न भासैगा कि संसार आगे था अब निवृत्त हुआ है एक रस आत्मा ही भासैगा, केवल शून्य आकाश हो जावैगा शून्य कहिये संसारते रहित हो जावैगा स्वरूप चेतन नाना करिकै भी वही है अरु एक भी वही है शून्य है अरु शून्यते रहित है द्वैत रूप भी वही है अद्वैतरूप भी वही है ऐसा भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज-प्रथमबोधो नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८.

शिखिध्वजबोधवर्णनम्।

कुम्भ उवाच-हे राजा! जो कछु देखता है सो चेतन घन है तिस- विषे अहं त्वं शब्द कोई नहीं अरु अहं त्वं शब्द प्रमादकरि होते हैं जब आत्माविषे स्थित होकरि देखैगा तब आत्माते इतर कछु न भासैगा तौ अहं त्वं शब्द कहां भासै? हे राजन्! यह नाना प्रकारकी संज्ञा चित्तते कल्पी हैं जब चित्तते रहित होवैगा तब नाना अरु एक संज्ञा कोई न रहैगी. हे राजन्! सर्व ब्रह्म है यह वाक्य वेदका सार है, जब इस वाक्यविषे दृढ भावना बुद्धि होवैगी तब एकरस आत्मा ही दृष्टि आवैगा अरु चित्त नष्ट होजावैगा जब चित्त नष्ट हुआ तब केवल महा- शुद्ध आकाशकी नाईं स्थित होवैगा, निर्दुःखपदको प्राप्त होवैगा जो पद सर्वकी आदि है अरु सर्वदा मुक्तरूप है. राजोवाच-हे भगवन्! तुमने कहा कि चित्तके नष्ट हुएते दुःख कोई न रहैगा सो चित्तके नाशका उपाय तुमने कहा है परंतु मैं दृढकरि नहीं समझा ताते मेरे दृढ होनेके निमित्त कृपा करिकै बहुरि कहौ, कि चित्त कैसे नष्ट होता है? कुंभ उवाच- हे राजन्! यह चित्त न किसी कलका है अरु न किसीको है न यह देखता है चित्त है ही नहीं तौ मैं तेरे तांई क्या कहौं अरु जो चित्त तुझको दृष्टि आता है तौ तू आत्मा ही जान आत्माते इतर वस्तु कछु नहीं. हे राजन्! महासर्गके आदि अरु अंत सृष्टि कोई नहीं केवल आत्मा है अरु यह कहना भी आत्माविषे नहीं, मैं तेरे जतावनेके निमित्त कही है अरु मध्य जो कछु दृष्टि आता है सो अज्ञानीकी दृष्टिविषे है आत्माविषे सृष्टि कोई नहीं आत्मा किसीका उपादान कारण अरु निमित्त कारण नहीं काहेते कि अच्युत है परिणामको नहीं प्राप्त भया अरु उपादान भी परिणामकरि होता है, आत्मा शुद्ध है अरु निराकार है आकाश- रूप है सो कारण कार्य किसका होवै अरु चित्त भी वासनारूप है वासना तब होती है जब वास होती है वास कहिये वासना करनेयोग्य

जो आगे सृष्टि भी नहीं तो वासना किसकी फुरै अरु चित्तविषे संसारकी स्थिति कैसे होवै ताते चित्त कछु नहीं.यह विश्व आत्माका चमत्कार है अरु सृष्टि आत्माविषे कोई नहीं निरालंब केवल अपने आपविषे स्थित है. हे राजन्! संसार भी नहीं भया अरु चित्त भी नहीं भया तौ अहं त्वम् आदिक शब्द भी आत्माविषे कोई नहीं यह शब्द तब होते हैं जब चित्त होता है अरु चित्त तबलग है जबलग वासना है जब निर्वासनिक पदको प्राप्त भया तब कल्पना कोई नहीं रहती. हे राजन्! यह संसार महाप्रलयविषे नष्ट हो जावैगा सत् असत् संसार कछु न रहैगा एक आत्मा ही शेष रहैगा जो निराकार अरु शुद्ध है जबलग महाप्रलय नहीं भया तब-लग संसार है सो महाप्रलय क्या है श्रवण करु.एक क्षण आत्माका साक्षा-त्कार होना तिसकरि सृष्टिका शेष भी न रहैगा सो ज्ञान ही महाप्रलय है अरु अब जो दृष्टि आता है सो मिथ्या है यह क्रिया भी मिथ्या है अरु इसका भान होना भी मिथ्या है. जसे स्वप्नकी क्रिया भी मिथ्या है तिसका भान होना भी मिथ्या है तैसे जाग्रत संसार स्वप्नमात्र है कारण विना ही भासता है जो कारण विना है सो मिथ्या है इसका कारण अज्ञान ही है, जो अपना न जानना जब आपको जाना तब अपना आप ही भासैगा जैसे स्वप्नविषे अपने न जाननेकारि भिन्न आकार भासते हैं. जब जागा तब अपना आप ही जानता है कि, मैं ही था. हे राजन्! मेरे ताईं तौ एक आत्मा ही दृष्टि आता है आत्मा ही है आत्माते इतर संसार कोई नहीं अरु इस संसारको स्थित मानना मूर्खता है सदा चलरूप है वेद शास्त्र अरु लोक भी कहता है कि संसार मिथ्या है अरु आप भी जानता है जो नष्ट हो जाता है दृष्टि आता है तिसविषे आस्था करनी मूर्खता है, आत्मा-विषे संसार नाना अनाना कोऊ नहीं आत्मा सर्वदा अपने आपविषे स्थित है शुद्ध है अरु अच्युत ज्योंका त्यों है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखि-ध्वजबोधो नामाष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

एकोनशततमः सर्गः ९९.

शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

शिखिध्वज उवाच-हे भगवन् ! अब मेरा मोह नष्ट भया है अरु अपना आप मैंने जाना है. तुम्हारी कृपाते मेरा संसार निवृत्त भया है शोक समुद्रको अब तरा हौं अरु शांत पदको प्राप्त भया हौं अहं त्वं शब्द मेरेविषे कोऊ नहीं निर्वाणपदको प्राप्त भया हौं अच्युत हौं चिन्मात्र हौं केवल हौं अरु शून्य हौं. कुंभ उवाच-हे राजन् ! आत्मा शुद्ध आकाशकी नाईं निर्मल है आकाशते भी सो अति निर्मल है तिसविषे अहंमल है सो अहं मोहते उपजी है मोह कहिये अविचार, जब विचार होता है तब अहंको नहीं पाता यह विश्व संवेदनविषे है संवेदन सर्वके आदि होकारि स्थित भयी है जब संवेदन अंतर्मुख होती है तब सर्व विश्व लीन हो जाती है संवेदनहीविषे बंध अरु मुक्ति है जब बहिर्मुख होती है तब बंध है, जब अंतर्मुख होती है तब मोक्ष है जिसने मन अरु इंद्रियोंते रहित होकारि अपना आप देखा है तिसको ज्योंका त्यों दृष्टि आता है अरु जो मोहसंयुक्त देखता है तिसको विपर्यय भासता है, जैसे सम्यक् दृष्टिकरिकै भूषणविषे स्वर्ण भासता है जब भूषणके आकार जाते हैं तब भी स्वर्ण ही है अरु मूर्खको सोनेके विषे भूषण दृष्टि आते हैं. चिरकालके अध्यासकरिकै जो बुद्धि इनविषे फुरती है तौ भी प्रारब्धके वेगपर्यंत चेष्टा होती है तब चेष्टाविषे भी आत्मा ही दृष्टि आता है ताते केवल आत्माहीका किंचन होता है, जैसे सोनेविषे भूषण अरु आकाशविषे नीलता अरु वायुविषे स्पंदता है तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे आकाशविषे नीलता देखनेमात्र है वास्तव कछु नहीं तैसे आत्माविषे सृष्टि वास्तव कछु नहीं भ्रांतिमात्र ही है जब भ्रांति निवृत्त होवैगी तब जगत्का शब्द अर्थ सर्वओरते शांत होवैगा अरु शब्द अर्थकी भावनाते जो चेष्टा होती है तिसते जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती है तब दुःख कोऊ नहीं होता इसीको मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं, जब ऐसा निश्चय निर्वाणपदका हुआ तब शांतरूप शून्यपदको पायकरि स्थित होता है. हे राजन् ! अहंका

उत्थान होना यही बंधन है अरु अहंका निर्वाण होना यही मुक्ति है अरु अहंके होनेकारि संसार दुःख है, जबलग अहम्का उत्थान है तबलग संसार है अरु जबलग संसार है तबलग अहम्का उत्थान है जब संसारकी सत्ता जाती रहै तब अहम् फुरना भी नष्ट हो जावैगा जब फुरणा नष्ट भया तब अहं भी नष्ट हो जावैगा जब अहं नष्ट भया तब केवल शुद्ध आत्मा ही शेष रहैगा अरु अनामय एक ही एक निर्दुःख ही भान होवैगा, अहं ब्रह्मका उत्थान भी शांत हो जावैगा अरु चेतन मात्र ही रहैगा. हे राजन् ! जिसको सर्व ब्रह्मकी बुद्धि भयी है तिसको संसारकी बुद्धि नहीं अरु जिसको संसार बुद्धि है तिसको ब्रह्मबुद्धि नहीं जैसी जैसी भावना दृढ होती है तैसा ही आगे भासता है, जिसको ब्रह्म भावना दृढ़ होती है सो ब्रह्मरूप हो जाता है अरु जिसको जगत्की भावना दृढ़ होती है तिसको जगत् भासता है. हे राजन् ! तू अब जागा है अरु ब्रह्मस्वरूप हुआ है जो शुद्ध निर्मल है अरु प्रत्यक् है जो किसी शब्द अरु लक्षणका विषय नहीं अरु इंद्रियोंका विषय नहीं. हे राजन् ! ऐसा आत्मा कारण कार्य जिसका होवै जो केवल अद्वैत है अरु विश्व आत्माका चमत्कार है. जैसे समुद्रविषे नाना प्रकारके तरंग पवनकारि उपजते हैं तो भी समुद्रते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे नाना प्रकारकी विश्व संवेदन फुरणेक- रिके उपजती है तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं फुरणेमात्र है, जैसे स्तंभेविषे मनोराज्यकारि कोऊ पुरुष पूतलियां कल्पता है अरु नाना प्रकारकी चेष्टा करता है इनकी चेष्टा तबलग है जबलग संकल्प है जब संकल्प निवृत्त हुआ तब शून्य स्तंभ ही रहता है जैसा आगे भी शून्य था अरु तिसकी संवेदनविषे सृष्टि थी तैसे यह संसार संकल्पमात्र है जब संकल्प अंतर्मुख भया तब संसारकी सत्ता जाती रहती है. हे राजन् ! संसारसत्ता जाती तब है जो आगे ही असत् है अरु जो वस्तु सत् होती है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता ताते केवल संवेदन कल्पी है. जैसे एक शिलाविषे पुरुष पुतलियां कल्पता है तो शिलाविषे तौ पुतली कोऊ नहीं ज्योंकी त्यों शिला ही है, तैसे फुरणेकारिकै आकार

दृष्टि आते हैं जब चित्त फुरणेते रहित होवैगा तब आत्माको अपना आप जानैगा अरु अशब्द पदको प्राप्त होवैगा जो शांतिपद है अरु शुद्ध आकाशरूप है. हे राजन्! सर्व शब्द अरु सर्व अर्थकी अभावना यह ब्रह्म अर्थ है जहां कोऊ कल्पना नहीं जब सम्यक् दृष्टि होती है तब शेष आत्मा ही भासता है अरु यह भावना भी उठ जाती है जो यह संसार है यह ब्रह्म है, केवल ज्ञेयमात्र ही होय रहता है कैसा ज्ञेयमात्र ही है जो शिलाकी नाईं ज्ञान है ऐसा शेष रहता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधवर्णनं नामैकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः १००.

परमार्थोपदेशवर्णनम्।

राजोवाच-हे भगवन्! जैसे तुम कहते हो सो सत्य है अरु मैं ऐसे जानता हौं कि संसार आत्माका कार्य है अरु आत्मा कारण है जो आत्माका कार्य हुआ तौ आत्मस्वरूप हुआ आत्माते इतर नहीं. कुम्भ उवाच-हे राजन्! आत्मा चेतनमात्र है कारण कार्य किसीका नहीं जो आत्मा अप्रत्यक् है अरु अक्रिय है अच्युत है निरस है जो अशब्द पद है सो कारण कार्य किसका होवै अरु कारणको कार्यद्वारा जानता है अरु आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं जो अप्रत्यक् है अरूप है अरु कारण तब होता है जो क्रिया होती है न किसीका कारण कार्य है न कर्म है केवल ज्योंका त्यों अपने आपविषे स्थित है चेतनमात्र है शिवरूप है शुद्ध है यह विश्व भी चेतनमात्र है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है तैसे आत्माविषे विश्व आत्मरूपकरि स्थित है ऐसे विश्व चेतनमात्र है तिसविषे असम्यक्दर्शी अज्ञानकरि नानाप्रकार कल्पता है अज्ञान कहिये वस्तुका न जानना जो वस्तु परमात्मा है तिसके प्रमादकरिकै वासनारूप चित्तसों विश्वको कल्पता है सो विश्व शब्दमात्र है अर्थ कछु नहीं. जैसे दूसरा चंद्रमा आकाशविषे, जैसे तरंग समुद्रविषे,

जैसे जल मृगतृष्णाविषे, जैसे वैताल परछाईंविषे, तैसे असम्यक्दृष्टि आत्माविषे विश्व कल्पता है अरु सम्यक्दर्शी ऐसे जानता है कि आत्मा शुद्ध है अजन्मा है अविनाशी है परम निरंजन है. हे राजन् ! जब तू सम्यक् दृष्टिकरि देखैगा तब संसारका प्रध्वंसाभाव भी न देखैगा काहेते कि चित्तका कल्पा हुआ है अरु चित्त अज्ञानकरिकै उपजा है स्वरूपविषे न चित्त है न अज्ञान है न संसार है, केवल अद्वैतमात्र है तहाँ एक कहाँ अरु अद्वैत कहाँ केवल मात्र पद है जब अज्ञान नष्ट हुआ तब अहं त्वं (चित्त फुरणा) सब नष्ट हो जावैगा बहुरि भ्रम दृष्ट न आवैगा. हे राजन् ! आत्मा ते इतर जो कछु भासता है सो अज्ञानकरिकै है विचार किये ते नहीं रहता. राजोवाच–हे भगवन् ! अज्ञान क्या है अरु नाश कैसे होवे सो कहौ. कुम्भ उवाच–हे राजन् ! एक ज्ञान है अरु एक अज्ञान है ज्ञान यह कि पदार्थ को प्रत्यक्ष जानना अरु अज्ञान यह कि पदार्थको न जानना अरु एक ज्ञान भी अज्ञान है सो श्रवण करु, मृगतृष्णाका जल देखकर आस्था करणी जो है अरु जेवरीविषे सर्प सीपीविषे रूपा देखना अरु तिसको सत्य जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है काहे ते कि सम्यक्दर्शी होकरि नहीं देखता यह दृष्टांत है अरु दार्ष्टांत यह है जो शुद्ध आत्मा निराकार अच्युत है तिसविषे मैं हौं अरु मेरा अमुक वर्णाश्रम है अरु नाना प्रकार विश्व जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है अरु मूर्खता है. हे राजन् ! न कोऊ जन्मता है न कोऊ मृत होता है ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है तिसविषे जन्म मरण आदिक विकार देखना ऐसा जो ज्ञान है सो अज्ञान है. हे राजन् ! जैसे कोऊ ब्राह्मण होवै अरु ऊँची बाहुकरि कहै मैं शूद्र हौं मेरे ताईं वेदका अधिकार नहीं अरु जैसे कोऊ पुरुष कहै मैं मुआ हौं तिसको मैं जानता हौं तैसे आपको कछु वर्णाश्रमका अभिमान लेकरि कहना सो मूर्खता है काहे ते कि असम्यक्दर्शन है जब ज्यों का त्यों जानै तब दुःखी न होवै. हे राजन् ! ऐसा ज्ञान जो सम्यक्दर्शनकरि नष्ट हो जावै सो अज्ञान है. जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल बुद्धि होती है किरणके ज्ञानते जलका ज्ञान नष्ट होजाता है सो जलका जानना अज्ञान था, जैसे

जेवरीविषे सर्प जानना सो सर्पका ज्ञान जेवरीके ज्ञानते नष्ट हो जाता है यह अज्ञान है सम्यक्‌दर्शनकरिकै नष्ट होता है जब ऐसा सम्यक्‌दर्शी होवैगा तब आध्यात्मिक ताप निवृत्त हो जावैगा अरु शुद्ध होवैगा जो आत्मा है अज है अरु शांत रूप है सत् असत् सर्व आत्मा है तिसते इतर कछु नहीं अरु प्रकाशरूप है सो ऐसा तू है. हे राजन्! अज्ञान भी अपर कोऊ नहीं इस चित्तके उदय होने का नाम अज्ञान है अज्ञानका कारण चित्त है अरु जो पदार्थ चित्तकरिकै उदय हुआ है सो नष्ट भी चित्तकरिके होता है ताते तू चित्तकरिके चित्तको नाश कर जैसे अग्नि पवनकरिकै उपजता है अरु पवन ही करि शांत होता है तैसे चित्तकरि चित्तको नष्ट करु. हे राजन्! न तू है न मैं हौं न इन्द्रिय है न संसार है न यह जगत् है केवल शुद्ध आत्मा है. हे राजन्! जो चित्त ही नहीं तौ चित्त का कार्य विश्व कहां होवै यह अज्ञानीको भासता है जो चित्त है अरु विश्व है केवल अपने आपविषे आत्मा स्थित है. हे राजन्! चित्तका उदय होना अज्ञानते है जब अज्ञान नष्ट हुआ तब चित्त अरु अहं त्वं सब नष्ट हो जाते हैं. हे राजन्! तू शुद्ध आत्मा है एक है अरु प्रकाश रूप है अच्युत है अरु निरन्तर है अरु देह इंद्रियादिक रूप होकरि भी तू ही स्थित भया है इच्छा अनिच्छा भी तू ही है, जैसे चन्द्रमाकी किरणैं चन्द्रमाते भिन्न नहीं तैसे तू है अरु निर्विकल्प है कछु फुरणा तेरे-विषे नहीं तू केवल ज्योंका त्यों स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने परमार्थोपदेशो नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः १०१.

शिखिध्वजबोधवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब ऐसे कुम्भ मुनिने कहा तब शिखि-ध्वज श्रवण करिकै शांतिको प्राप्त भया नेत्र मूँदिकै सब अंगकी चेष्टाते रहित हुआ जैसे शिलाऊपर पुतली लिखी होवै तैसे स्थित हुआ. एक

मुहूर्त पर्यंत निर्विकल्प स्थित रहा अ बहुरि उठा तब कुम्भने कहा. हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है तिस निर्विकल्प शिलाविषे तैने शयन किया अरु ज्ञेय जो जानने योग्य है सो तैने क्या जाना है तेरा अज्ञान अब नष्ट भया अथवा नहीं भया अरु शांतिको प्राप्त भया अथवा नहीं भया सो कहु. राजोवाच—हे भगवन्! तुम्हारी कृपाते मैं उत्तम पदको प्राप्त भया हौं. हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताके संगते जो अमृत पाता है सो क्षीरसमुद्रते भी नहीं पाता अरु देवताविषे भी नहीं पावता तुम्हारी कृपाते मैं ऐसे अमृतको पाया है जिसका आदि अंत कोऊ नहीं, अनंत है अरु अमृतसार है अब मेरे दुःख सर्व नष्ट हो गये हैं अब मैं जागा हौं अरु अपने आपको जाना है मैं आत्मा हौं मेरे साथ चित्त कोऊ नहीं मैं केवल अपने आपविषे स्थित हौं, अब इच्छा मेरे ताईं कोऊ नहीं अपने स्वभावको पाया है अरु सर्वके आदिपदको प्राप्त भया हौं जिसविषे क्षोभ कोऊ नहीं ऐसे निर्विकल्प पदको प्राप्त हुआ हौं. हे भगवन्! ऐसा मेरा अपना आप है जिसकरि सर्व प्रकाशते हैं तिसके जाने विना कोटि जन्म पाये थे अब दुःख मेरे नाश भये हैं तुम्हारी कृपाते एक क्षणविषे जाना है आगे श्रवण भी करता सो कारण कौन था जो आगे न जाना अरु अब जाना है. कुंभ उवाच—हे राजन्! तेरे कषाय अब परिपक्व हुए हैं, जैसे फल परिपक्व होता है तब यत्न विना वृक्षते गिर पड़ता है, तैसे तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है अब अज्ञान तेरा नष्ट हो गया है, जब अंतःकरण मलिन होता है तब संतके वचन नहीं लगते अरु जब अंतःकरण शुद्ध होता है तब संतके वचन लगते हैं जैसे कोमल भिड़को बाण लगै तब शीघ्र ही वेधा जाता है तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे शीघ्र ही उपदेश प्रवेश करता है. हे राजन्! अब भोगकी तेरी वासना नष्ट भयी है अरु स्वरूप जाननेकी इच्छा भयी है ताते तू जागा है. हे राजन्! मैं उपदेश तब किया है जब तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है अरु प्रतिबिंब भी तहां पडता है जहां निर्मल ठौर होती है. जैसे श्वेत वस्त्रके ऊपर केसरका रंग शीघ्र ही चढि जाता है अरु रंग भी उज्ज्वल होता

है तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे संतके वचन शीघ्र ही प्रवेश करते हैं अरु शोभा पाते हैं. हे राजन्! जबलग अंतःकरण मलिन होता है भावे जेता उपदेश करिये तोऊ स्थित नहीं होता जब भोगते वैराग्य होता है तब वासना कोई नहीं रहती केवल आत्मपदकी इच्छा होती है तब स्वरूपका साक्षात्कार होता है. हे राजन्! अब तेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ है अरु अज्ञान नष्ट भया है जो अपर उपाधि कोई नहीं, चित्तकी बडी उपाधि है जब चित्त नष्ट हुआ तब दुःख कोई नहीं रहता अब तू सुखेन विचरु तुझको दुःख कोई नहीं शोक अरु भय कोई नहीं तू शांतिपदको प्राप्त भया है. राजोवाच–हे भगवन्! अज्ञानीको चित्तका सम्बन्ध है अरु ज्ञानवान्को चित्तका संबंध नहीं होता, जो स्वरूपविषे स्थित है तौ चित्त विना जीवन्मुक्ति क्रियाविषे कैसे वर्तता है? कुंभ उवाच– हे राजन्! तू सत्य कहता है कि ज्ञानीको चित्तका संबंध नहीं जैसे पत्थरकी शिलाविषे अंकुरी नहीं होती तैसे ज्ञानीका चित्तका संबंध नहीं होता. हे राजन्! चित्त वासनारूप है सो वासना जन्ममरणका कारण है अरु जीवन्मुक्तकी वासना नहीं रहती ज्ञानवान्का चित्त सत्य पदको प्राप्त है अरु अज्ञानी चित्तविषे बंधमान है तिसकरिकै जन्मता भी है अरु मरता भी है अरु जो ज्ञानीका चित्त शांतिविषे स्थित है तिसको न बंध है न मोक्ष है प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है अरु सर्वात्मा ही देखता है, यद्यपि इंद्रियोंकरि चेष्टा भी करता है तौ भी सर्व ब्रह्म ही देखता है अरु क्रिया करणेविषे अभिमानते रहित होता है जो मैं करता हौं अरु भोगता हौं अरु अज्ञानी आपको करता मानता है तिसको संसार सत्य भासता है सत्य जानकरि संकल्प विकल्प करता है अरु ज्ञानवान्को संसारकी सत्यता नहीं भासती आपको अकर्ता अभोक्ता देखता है अरु अभिलाषतें रहित चेष्टा करता है. हे राजन्! संसारको सत्य जानना अरु अपनेविषे क्रिया देखनी तबलग होती है जबलग चित्तका संबंध होता है जब चित्त ही नष्ट हो गया तब संसार अरु फुरणा कहां रहै? हे राजन्! अब चित्तका तैने त्याग किया है ताते सर्वत्यागी भया है अरु आगे सर्व त्याग न किया था जिससे अज्ञान नष्ट

न भया था अब अहंभाव तेरा दूर भया है जो अज्ञानका कार्य था जब अज्ञान नष्ट भया तब अहंभाव न रहा अहंके त्याग करनेते सर्वत्याग सिद्ध हुआ अरु आगे तैंने राज्यका त्याग किया था सो राज्यविषे तेरा कछु न था बहुरि तमका त्याग किया बहुरि वनते आदि सर्व सामग्रीका त्याग किया, अब तिसका त्याग किया जो त्यागने योग्य अहंभाव है ताते सर्व त्याग भया अरु जो कछु जानने योग्य है सो जाना है अरु शांतपदको प्राप्त भया है. हे राजन्। तू आत्मा है सर्व दुःखते रहित है, जैसे मंदराचल पर्वतते रहित क्षीरसमुद्र शांतपदको प्राप्त भया है तैसे तू अज्ञानते रहित शांतपदको प्राप्त भया है अब तू जागा है अरु चित्तका त्याग किया है ताते सर्व आत्मा अद्वैत भया है. हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं तब तिनकी संज्ञा नाना प्रकारकी होती है कि अमृत विष अरु सुख दुःख अरु धर्म अधर्म यह होते हैं, जब एकाएकी अक्षर होता है, तब सर्वका आत्मा है तैसे दूसरा अज्ञान नष्ट भया है अरु सत्यपदको प्राप्त भया है अरु शुद्ध निर्मल है. हे राजन्। जो ज्ञानवान् है सम्यक् दृष्टिकरिकै तिस चित्तका त्याग किया है बहुरि तिसको दुःख कोऊ नहीं होता सो तू तिस पदको प्राप्त भया है जिसविषे दुःख कोऊ नहीं अरु तिस पदको प्राप्त भया है जहां स्वर्गादिक सुख तुच्छ हैं स्वर्गविषे भी क्षय अतिशय होता है अतिशय कहिये जो बडे पुण्यवाला आपसों ऊँचा देखता है तब चाहता है कि, मैं भी इसी जैसा होऊं अरु क्षय कहिये मत इन सुखसों गिरौं दोनों प्रकार दुःख होता है सो पुण्य पाप दोनोंका तैंने त्याग किया है ताते तू सर्व त्यागी है अरु अज्ञानी जो पापी जीव हैं तिनको स्वर्ग भी भला है,जैसे स्वर्णका पात्र न पाइये तौ पीतलका भी भला है तैसे स्वर्णका पात्र जो ज्ञान है जबलग प्राप्त न होवै तबलग पीतलका पात्र जों स्वर्गादिक हैं सो नरकते भले हैं अरु तुम सारखेको कछु नहीं जो आत्माविषे सर्व पदार्थकी पूर्णता है अरु सर्वकी उत्पत्ति आत्माते है. हे राजन् ! वर्णाश्रमविषे क्या अवस्था करणी है जहांते इनकी उत्पत्ति है अरु जहां लीन होते हैं अरु मध्यविषे जिसके अज्ञानते दृष्टि आते हैं तिसविषे स्थित होइये

जिसके ज्ञानते सर्व लीन हो जाते हैं. हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं तिनविषे स्थित मत होहु जिसविषे उत्पन्न अरु लीन होते हैं तिसविषे स्थित होहु अरु तपादिक क्रियाकारि क्या सिद्ध होता है जिसकरि तपादिक सिद्ध होते हैं तिसविषे स्थित होहु, बूँदविषे क्या स्थित होना है जिस मेघते बूँद उत्पन्न होता है तिसविषे स्थित होइये. हे राजन्! जैसे स्त्री होवै अरु भर्ताते कोऊ पदार्थ चाहै अरु आप न कहै तैसे तपादिक क्रियाकारि क्या सिद्ध होता है? जो तिनकरि आत्मपदकी इच्छा करे तौ इनकरि प्राप्त नहीं होता अपने आपकरि पाता है. हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आप है तिसकारि सर्व सिद्ध होता है जो वस्तु पाछे त्याग करणी होवै तिसको ज्ञानवान् प्रथम ही अंगीकार नहीं करता अरु जेता कछु तपादिक धंधा है तिनको चित्तकारि क्या रचता है अपने आपको देख जो अनुभवरूप है अरु सर्वदा निरंतर अपने आपविषे स्थित है, जब तू अपने आपकरि आपको देखैगा तब तपादिक क्रियाको दूर करिकै शोभा पावैगा. जैसे बादलके दूर भये चंद्रमा प्रकाशवान् शोभा पाता है तैसे तू भी भोगकी चपलताको त्यागिकारि शोभा पावैगा. जब इंद्रियोंको जीतैगा अरु किसी पदार्थविषे आसक्त न होवैगा अरु सर्व वासनाका त्याग करैगा तब ज्ञानवान् होवैगा अरु जिसने सर्व वासनाका त्याग किया है तिसको विष्णु जानना जो सब राज्यका स्वामी है, जिसने मन जीता है सो चेष्टाविषे भी ज्योंका त्यों रहता है अरु समाधिविषे भी ज्योंका त्यों है. जैसे पवन चलने अरु ठहरनेविषे तुल्य है तैसे ज्ञानवान्को कहूं खेद नहीं होता. राजोवाच—हे सर्व संशयके छेदनहारे! स्पंद अरु निस्पंदविषे ज्ञानी ज्योंका त्यों कैसे रहता है? सो कृपाकरि कहौ. कुंभ उवाच—हे राजन्! चेतन आकाश है सो आकाशते भी निर्मल है जब तिसका साक्षात्कार हुआ तब जहां देखै तहां चेतन हो भासता है, जैसे समुद्रके जाननेते तरंग बुद्बुदे सर्व जल ही भासता है तैसे चित्त विना आत्माके देखे हुए फुरणेविषे भी आत्मा ही दृष्टि आता है अरु जिसने आत्माको नहीं जाना तिसको नाना प्रकारका जगत् ही भासता है, जैसे जलके जानने

बिना तरंग बुद्बुदे भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं अरु जलके जाननेते तरंग भी जलमय भासते हैं. हे राजन् ! सम्यक्दर्शीको जगत् आत्मस्वरूप है असम्यक्दर्शीको जगत् है ताते तू सम्यक्दर्शी होकरि देख कि जगत् भी आत्मरूप है अरु सम्यक्दर्शन जैसे प्राप्त होता है सो श्रवण करु. संतका संग करना अरु सच्छास्त्रका विचार करना जब दृढ भावना करिये तब केते कालते स्वरूपका साक्षात्कार होता है, कालकी अपेक्षा दृढ विचारके निमित्त कही है जब दृढ विचार होता है तब साक्षात्कार होता है जब स्वरूपका साक्षात्कार हुआ तब स्पंद निस्पंदविषे एक समान होता है. हे राजन् ! जिसके समीप साखी होवै सो साखीके निमित्त पर्वत क्यों खोजै अरु दौडै, तैसे तेरे घरविषे ब्रह्मवेत्ता चूडाला थी तिसका त्यागकरि तैंने वनविषे आय तपका आरंभ किया ताते बड़ा कष्ट पाया परंतु अब तू जागा है अरु दुःख तेरे नष्ट भये हैं अब तू शांतिपदको प्राप्त भया है, जैसे जेवरीके न जाननेकारि सर्प भासता है अरु भले प्रकार जाननेते जेवरी ही भासती है तैसे जिसने भले प्रकार निस्पंद होकरि अपना आप देखा है तिसको फुरणेविषे भी आत्मा ही भासता है जब मनकी चपलता मिटती है तब तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, जिस पदको वाणी विषयकरि नहीं सकती. हे राजन् ! तू भी तिसी पदको प्राप्त भया है जो मन अरु वाणीते रहित है अरु तुरीयातीत पद है जहां क्षोभ कोऊ नहीं, शांतिपद है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधवर्णनं नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः १०२.

शिखिध्वजसमाधानवर्णन

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब राजाको कुम्भमुनिने ऐसे उपदेश किया तिसके उपरांत कहा–हे राजन् ! अब हम स्वर्गको ब्रह्माजीके पास जाते हैं वहां देवतोंकी सभाविषे नारदमुनि आया है जो मेरे ताईं

न देखेगा तो क्रोध करैगा. हे राजन् ! जो कल्याणकृत पुरुष हैं सो बड़ेकी प्रसन्नता लेते हैं ताते मैं जाता हौं अरु जो तेरे तांई उपदेश किया है तिसको भले प्रकार विचारना अरु सर्व शास्त्रोंका सार यही है कि संपूर्ण वासनाका त्याग करना किसीविषे चित्तको बंधमान नहीं करना मेरे आवनेपर्यंत स्वरूपविषे स्थित रहना अपर किसी चेष्टाविषे नहीं लगना अरु स्वरूपको भले प्रकार जानिकरि भावै तैसे विचरहु. ऐसे कहिकरि कुम्भमुनि उठ खड़ा हुआ तब राजाने अर्घ्य अरु फूल चढ़ावनेके निमित्त हाथविषे लिये सो जल फूल हाथविषे रहे और कुम्भमुनि अंतर्धान हो गया, जब राजा कुम्भमुनिको अपने आगे न देखत भया तब विचार करने लगा देखो ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती कि नारदमुनि कहां था अरु तिसका पुत्र कुम्भमुनि कहां अरु मैं राजा शिखिध्वज कहां नीतिहीने कुम्भमुनिका रूप धारिकरि मुझको आय जगाया है अरु कुंभ बडा मुनि दृष्टि आया जिसने मेरेको उपदेश करि जगाया है अब मैं अज्ञानरूपी गर्तसों निकसा हौं अरु स्वरूपको प्राप्त भया हौं संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं अरु निर्दुःख पदविषे स्थित भया हौं अरु अज्ञान निद्राते जागा हौं बड़ा आश्चर्य है. हे रामजी ! ऐसे कहिकरि राजा शिखिध्वजने संपूर्ण इंद्रियां अरु प्राण मन स्थित किया अरु चेष्टाते रहित भया जैसे शिलाके ऊपर पुतली लिखी होती हैं जैसे पर्वतका शिखर स्थित होता है तैसे स्थित भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजसमाधानवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः १०३.
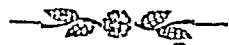
कुम्भपुनरागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! वहां चूडाला कुम्भरूप शरीरका त्याग करि अरु चूडालाका सुन्दररूप धारिकरि उडी आकाशको लंघिकरि अपने नगरविषे आवत भयी अरु अंतःपुरमें जहां स्त्री रहती थी तहां प्रवेश किया अरु

मन्त्रीको आज्ञा करी कि तुम अपने २ स्थानविषे स्थित होउ अरु रानी राजाके स्थानविषे स्थित भयी भले प्रकार प्रजाकी खबर लीनी तीन दिन रहिकरि बहुरि उडी जहां राजा वनविषे था तहां आय प्राप्त भयी अरु कुम्भका रूप धारि करि देखा कि राजा समाधिविषे स्थित है देखिकरि बहुत प्रसन्न भयी. हे रामजी ! ऐसे प्रसन्न होकरि चूडाला विचारत भयी बड़ा सुखकार्य हुआ जो राजाने स्वरूपविषे स्थिति पायी अरु शांतिको प्राप्त भया बहुरि विचार किया कि इसको जगावौं तब सिंहकी नाईं गर्जी अरु बड़ा शब्द किया तिस शब्दकरिकै जेते वनके पशु पक्षी थे सो सर्व भयको प्राप्त भये परंतु राजा न जागा बहुरि हाथ करिकै हिलावती भयी तौ भी राजा न जागा जैसे मेघके शब्दकरि पर्वतका शिखर चलायमान नहीं होता तैसे राजा चला-यमान न भया काष्ठ अरु पाषाणकी नाईं स्थित रहा तब रानीने विचार किया कि राजा शरीरको त्यागि न देवै तौ भला अरु जो राजाने शरीरका त्याग किया होवै तौ मैं भी त्यागौंगी. हे रामजी ! चूडा-लाने शरीर न त्यागा परंतु आरंभ करने लगी कि राजा अरु मैं इकट्ठा शरीर त्यागें है बहुरि विचार करने लगी कि इसकी भविष्यत् क्या होनी है तब राजाके नेत्रपर हाथ लगाया अरु देहसाथ देहका स्पर्श किया तब देखा कि प्राण राजाके शरीरविषे हैं अरु भविष्यत्का भी विचार किया कि इसका सत्त्व शेष रहता है जीवन्मुक्त होकरि राज्यमें विचरना है. राम उवाच–हे भगवन् ! तुमने कहा कि राजा काष्ठ अरु पाषाणकी नाईं स्थित भया बहुरि कहा कि हाथ लगायकरि देखा कि इसविषे प्राण हैं जीवता है तौ कुंभने क्योंकरि जाना यह मुझको संशय है सो दूर करौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिस शरीरविषे पुर्यष्टका होती है तिसविषे हरियावलता होती है. हे रामजी ! अज्ञानीका चित्त रहता है अरु ज्ञानीका सत्त्व रहता है जो प्रारब्धवेग करिकै फुरता है अरु ब्रह्माकार वृत्ति होती है अरु अज्ञानीका चित्त फुरणेकरिकै बहुरि शरीर पाता है अरु ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे एक समान रहता है अरु अज्ञानी एक समान नहीं रहता इष्टविषे प्रसन्न अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे

शोकवान् होता है. हे रामजी! ज्ञानी जब शरीरको त्यागता है तब ब्रह्मसमुद्रविषे स्थित होता है अरु जबलग सत्त्व शेष है तबलग फुरता है अरु अज्ञानी शरीरको त्यागता है तब तिसविषे सूक्ष्म संसार होता है. जैसे बीजविषे वृक्ष फूल फल सूक्ष्मता करिकै स्थित होते हैं सो काल पायकरि बहुरि निकसता है तिसी प्रकार राजाका सत्त्व शेष रहा था तिस करिकै बहुरि फुरैगा. तब कुंभरूप चूडालाने विचार किया कि इसके अंतर प्रवेश करिकै जगावौं जो मैं न जगावौंगी तौ भी नीतिकरिकै इसको जानना है तातें मैं ही जगावौं ऐसे विचार करिकै अपने शरीरका त्याग किया चेतनाविषे स्थित होकरि अरु फुरणेको लेकरि उस-विषे जाय प्रवेश किया प्रवेश करि उसकी जो चेतनता सत्त्व शेष था उसको छोड़त भई. बड़ा क्षोभ किया जब राजा वहांते हिला तब आप निकस आयी अरु अपने शरीरविषे प्रवेश किया जैसे पखेरू आकाशविषे उड़ता है बहुरि आलयविषे आय प्रवेश करता है तैसे अपने शरीरविषे आनि स्थित भयी अरु सामवेदका महासुंदर स्वरसाथ गायन करने लगी तब राजाने श्रवण किया अरु जानत भया कि कोऊ सामवेद गाता है ऐसे श्रवण करि जागा अरु देखा कि कुंभमुनि बैठा है देखकर बहुत प्रसन्न भया तब फूल जल चढाया-अरु कहा हे भगवन्! मेरे बडे भाग्य हैं देखकरि बहुत प्रसन्न भया जो तुम्हारा दर्शन हुआ.हे भगवन्! कुलरूपी जो कुलाचलपर्वत है तिसविषे जो देहरूपी वृक्ष है सो अब फूला है तुमने हमको पावन किया है. हे भगवन्! किसीकी समर्थता नहीं जो तुम सारखेके चित्तविषे प्रवेश करे जिसविषे सर्वदा आत्माका निवास है तिस चित्तविषे मेरी स्मृति हुई है जो दर्शन किया है तातें मेरे बड़े भाग्य हैं. हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंकरि तुमने प्रथम मेरे ताईं पवित्र किया था अरु अब जो चित्त किया है सो मेरे ताईं पावन किया है. कुंभ उवाच-हे राजन्! तेरे दर्शन करिकै मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हौं अरु तुम्हारी जैसी प्रीति मैं आगे किसीकी नहीं देखी. हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्गते आया हौं स्वर्गके सुख मेरे ताईं भले न लगैं अरु तू मेरे ताईं बहुत प्रीतम है इसी निमित्त मैं आया हौं अब स्वर्गविषे

भी नहीं जाता तेरे ही पास रहौंगा. राजोवाच–हे भगवन् ! जिसके ऊपर तुमसारखेकी कृपा होती है तिसको स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते तो तुम सारखेकी बात क्या कहनी है यह वन है यह झुपडी है इसविषे विश्राम करो मेरे बडे भाग्य हैं जो तुम्हारा चित्त यहां रहनेका भया है. कुंभ उवाच–हे राजन् ! अब तेरे ताईं शांति प्राप्त भई है अरु संकल्पबीज नष्ट भया है जैसे नदीके किनारे पर वल्ली होती है अरु जलके प्रवाहकारि मूलसमेत गिरती है तैसे तेरा संकल्पबीज नष्ट भया है अब तू यथाप्राप्तिविषे संतुष्ट हुआ है कि नहीं हुआ हेयोपादेयते रहित हुआ है कि नहीं हुआ अरु जो पानेयोग्य पद है सो पाया है कि नहीं पाया अपना अनुभव कहु. राजोवाच–हे भगवन् ! तुम्हारी कृपाते सर्वसों श्रेष्ठ पद मैं पाया हौं जहां संसारसीमाका अंत है अरु अब मेरे ताईं उपदेशका अधिकार नहीं रहा जो संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं हेयोपादेयते रहित हौं इसकारि सुखी विचरता हौं अरु जो कछु जानने योग्य था सो मैंने जाना है अब दुःख मेरे विषे कोऊ नहीं सर्व ठौर मैं तृप्त हौंअनीतिप्राप्तरूप हौं अरु आत्मा हौं निर्मल हौं अरु अपने स्वभाव विषे स्थित हौं अरु सर्वात्मा हौं निर्विकल्प हौं मेरे विषे फुरणा कोऊ नहीं मैं शांत रूप हौं अरु चिरपर्यंत सुखी हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्यानेकुम्भ-पुनरागमनवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमः सर्गः १०४.
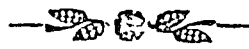
जीवन्मुक्तव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार राजा अरु कुंभका तीन मुहूर्त संवाद हुआ तिसते उपरांत दोनों उठ खडे हुए अरु चले निकट एक तालाव था जहां बहुत कमलिनी थीं तहां आय कारि दोनों स्नान करत भये अरु गायत्री संध्या करी पूजा करिकै बहुरि वहांते चले वन कुंजों विषे आये तब कुंभने कहा चलिये राजाने कहा भली बात है

चलिये. तब चले बहुत नगर देश ग्राम अरु तीर्थ देखे अरु नाना प्रकारके वन विषे विचरे जो फूल फल संयुक्त थे तिन विषे विचरे अरु मरुस्थल विषे विचरे. हे रामजी ! ऐसे राजसी सात्विकी तामसी स्थानों विषे विचरे तीर्थादिक सात्विकी स्थान हैं अरु सुन्दर वन आदिक राजसी स्थान हैं अरु मरुस्थल आदिक तामसी स्थान हैं तिन विषे विचरें तो भी हर्ष शोकको न प्राप्त भये समता विषे रहे. हे रामजी ! कुंभका प्रयोजन फिरनेका यह था कि राजा शुभ अशुभ स्थानोंको देख करि हर्ष शोक करैगा अथवा न करैगा तौ भी राजा हर्ष शोकको न प्राप्त भया बहुरि बडे पर्वतकी कंदरा देखी अरु वन कुंज बडे कष्टके स्थान देखे अरु एक वन विषे जाय स्थित भये केतेक काल विषे राजा अरु कुंभ एक जैसे हो गये इकट्ठे ही स्नान करैं अरु एक जैसी मूर्तियां अरु एक जैसे जाप जपैं एक जैसी पूजा करैं अरु एक जैसे दोनों शुद्ध भये जो उपकारकी अपेक्षा बिना उपकारी भये किसी ठौर माटी शरीरको लगावैं किसी ठौर चन्दनका लेप करैं किसी ठौर शरीरको भस्म लगावैं किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरैं किसी ठौर केलेके पत्र ऊपर सोवैं किसी ठौर फूलकी शय्या पर सोवैं किसी ठौर क्रूर स्थानों विषे शयन करैं. हे रामजी ! ऐसे शुभ अशुभ ठौर विषे भी दोनों ज्यों के त्यों रहैं जो हर्ष शोक को न प्राप्त भये केवल सत्त्व शुद्ध विषे स्थित रहैं आत्मा बिना अपर कछु न फुरा एक वन विषे जाय स्थित भये तब रानीके मन विषे विचार हुआ कि यह मेरा भर्ता है मैं इसको भोगो हमारी अवस्था है जो भले कुलकी स्त्री हैं सो भर्ताको प्रसन्न रखती हैं अरु राजाका शरीर भी देवता जैसा हुआ है अरु स्थान भी शुभ है जब लग शरीर है तब लग शरीरके स्वभाव भी साथ हैं अरु बहुरि विचार किया कि राजा की परीक्षा भी करौं कि क्या कहैगा तब कुम्भने कहा हे राजन् ! अब हम स्वर्गको जाते हैं जो चैत्र शुद्ध एकमको ब्रह्माजीने सृष्टि उत्पन्न करी है इसी दिन वर्षके वर्ष उत्सव होता है अरु नारद मुनि भी आवैगा ताते हम जाते हैं अरु आज ही फिरि आवैंगे मेरे आने पर्यंत तुम ध्यान विषे रहना अरु ध्यानते उतरौ तब फूलको देखना ऐसे कहि

कारि फूलोंकी मंजरी राजाको दीनी अरु राजाने भी कुम्भको फूल की मंजरी दीनी जैसे नन्दन वन विषे स्त्री भर्ताके हाथ देवै अरु भर्ता स्त्रीके हाथ देवै तैसे दोनों परस्पर देते भये बहुरि कुम्भ आकाशको उडा अरु पाछे राजा देखता रहा जैसे मेघको मोर देखता है तैसे राजा देखता रहा जेतेपर्यंत राजाकी दृष्टि पडती थी तब लग कुम्भका शरीर रक्खा जब दृष्टि सों आकाश विषे अगोचर भया तब फूल की माला जो गले विषे थी सो तोड कारि राजाके ऊपर डारि दीनी अरु चूडालाका शरीर धारि आकाशको लंघिकारि अपना अन्तःपुर जो था स्त्रीका स्थान तहां आय प्राप्त भयी अरु राजाके स्थानपर बैठिकारि मन्त्रीको बुलाया अपने अपने स्थानों- विषे स्थित किये अरु प्रजाकी खबर लीनी बहुरि उडी सूर्यके किरणोंकेमार्ग मेघमण्डलको लांघती आई जहां राजाका स्थान था तहां आयकारि देखा कि राजा बिछुरेकारि शोकवान् है अरु कुम्भ भी दिलगीर जैसा राजाके आगे आय स्थित भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने जीव- न्मुक्तव्यवहारवर्णनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः १०५.

कुम्भस्त्रीत्वलासवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! तब राजाने कहा—हे भगवन् ! शोक तुम्हारे ताईं कैसे प्राप्त भया है ऐसा कष्ट मार्ग विषे तुम्हारे ताईं कौन हुआ है अरु सर्व दुःखका नष्ट करनेहारा ज्ञान है जो तुम सारखे ज्ञानवान्को शोक होवै तौ अपरकी क्या बात कहनी है ? हे मुनी! तुम्हारे ताईं दुःखका कारण कोऊ नहीं तुम क्यों शोकवान् होते हौ अरु तुम्हारे ताईं कौन अनिष्ट प्राप्त भया है तब कुंभने कहा हे राजन् ! मेरे ताईं एक दुःख है सो कहता हौं जो मित्र पूछे तौ सत् कहना चाहिये अरु दुःख भी जो होता है जैसे मेघ जड अरु श्याम भी होता है अरु उसका सज्जन नष्ट है क्षेत्र अरु पृथ्वी तिस ऊपर वर्षा करता है तिसकी जड़ता अरु

श्यामता नष्ट होती है ताते मैं तेरे ताईं कहता हौं. हे राजन् ! जब स्वर्ग-विषे सभा स्थित थी तब मैं नारदके पास था जब सभा उठी तब नारदमुनि भी उठा अरु मुझको कहा जहां तेरी इच्छा होवै तहां जाहु अरु मैं भी जाता हौं काहेते कि नारद एक ही ठौरविषे नहीं ठहरता विश्वविषे सैर करता फिरता है इसीते मेरे तांई कहा कि तू भी जाहु तब मैं आकाशते चला एक ठौर सूर्यसाथ मिलाप हुआ बहुरि आगेको चला मेघके मार्ग तीक्ष्ण वेगकरि चला आया हौं जैसे नदी पर्वतते तीक्ष्ण वेगकरि आती है तैसे मैं तीक्ष्ण वेगकरि चला आता था तब दुर्वासा ऋषीश्वर उड़ता आता है महामेघकी नाईं श्याम वस्त्र पहिरे हुए अरु भूषणसंयुक्त जैसे बिजलीका चमत्कार होता है तैसे भूषणोंका चमत्कार देखकरि मैं दंडवत् करिके कहा–हे मुनीश्वर ! तुम क्या रूप धारा है, जो स्त्रीकी नाईं भासता है. तब दुर्वासाने मेरे ताईं कहा हे ब्रह्मपौत्र ! तू कैसा वचन कहता है ऐसा वचन मुनीश्वर प्रति कहना उचित नहीं हम क्षेत्र हैं जैसा बीज क्षेत्रविषे बोइये तैसा उगता है ताते मेरे ताईं स्त्री तैंने कहा है तू भी स्त्री होवैगा अरु रात्रिको तेरे अंग सब स्त्रीके होवैंगे. हे मुनीश्वर ! जो कल्याणकृत ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको नम्रता होती है जैसे फलसंयुक्त वृक्ष नम्र होता है तैसे ज्ञानी [illegible]ी नम्र होता है ऐसा वचन तेरे ताईं कहना न चाहिये. हे राजन् ! ऐसे श्रवण करिकै मैं तेरे पास चला आया हौं अरु मेरे ताईं लज्जा आती है कि स्त्रीका शरीर धारे देवतोंविषे कैसे विचरौंगा यही मुझको शोक है. तब राजाने कहा क्या हुआ जो दुर्वासाने कहा अरु स्त्रीका शरीर भया तुम तौ शरीर नहीं आत्मा निर्लेप है किसी साथ लेप नहीं. हे मुनीश्वर ! तुम अपनी समताविषे स्थित रहते हौ अरु ज्ञानवान् पुरुषको हेयोपादेय किसीका नहीं रहता अपनी समताविषे स्थित रहता है तब कुंभने कहा हे राजन् ! तू सत्य कहता है मेरे ताईं क्या दुःख है जो शरीरका प्रारब्ध है सो होता है तिससाथ हमारा क्या प्रयोजन है यह ईश्वरकी नीति है जबलग शरीर होता है तबलग शरीरके स्वभाव भी रहते हैं अरु शरीरका स्वभाव त्याग करना भी

मूर्खता है जिस स्थानविषे ज्ञानकी प्राप्ति होवै तिसी चेष्टाविषे विचरिये अरु यह भी मूर्खता है कि इंद्रियोंको रोकना अरु मनकरि विषयकी चिंतना करनी ताते इंद्रियां अरु देहकी चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं परंतु तिसविषे बंधमान नहीं होते इंद्रियां विषयविषे वर्तती हैं आदि नीति ईश्वरकी इसी प्रकार है. हे राजन्! नीतिका त्याग किसीते किया नहीं जाता ताते नीतिका त्याग क्यों करिये ? यह नीति है कि जबलग शरीर है तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं जैसे जबलग तिल है तबलग तेल भी होता है तैसे जबलग शरीर है तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो देह इंद्रियोंकरि चेष्टा भी करते हैं परंतु बंधायमान नहीं होते हैं अरु अज्ञानी बंधायमान होते हैं अरु चेष्टा ज्ञानी करते हैं अज्ञानी भी करते जैसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि ज्ञानवान् हैं सर्व चेष्टा भी करते हैं परंतु बंधायमान किसीकरि नहीं होते. हे राजन्! तैसे जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै अरु जिसको शास्त्र प्रमाण करै तिसके भोगनेविषे दूषण कछु नहीं. राजोवाच- हे भगवन्! ज्ञानवान्को दूषण कछु नहीं जो सत्ता समानविषे स्थित है तिसकरिके दूषण कछु नहीं होता अरु अज्ञानी शरीरके दुःख अपने विषे देखता है तिसकरि दुःखी होता है अरु ज्ञानवान् शरीरके दुःख अपनेविषे नहीं देखता. हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ तब राजा अरु कुम्भ दोनोंने सायंकालविषे संध्या करी अरु जाप किया जब रात्रि हुई तब तारागण निकसे अरु सूर्यमुखी कमलोंके मुख मुँद गये तब कुम्भने कहा-हे राजन्! देख कि मेरे शिरके बाल बढते जाते हैं अरु वस्त्र भी गिटपर्यंत हो गये हैं अरु स्तन भी स्त्रीकी नाईं भये हैं इत्यादिक वस्त्र भूषण जेती कछु चेष्टा है सो स्त्रीकी हुई तब राजाको भी शोक प्राप्त भया अरु महासुंदर स्त्री लक्ष्मीकी नाईं चूडाला हो गयी तिसको देखिकरि राजाको एक मुहूर्त्त शोक रहा तिसते उपरांत सावधान हुआ अरु कहत भया हे मुनी! क्या हुआ जो शरीर स्त्रीका हुआ तुम तौ शरीर नहीं तुम आत्मा हौ ताते शोक क्यों करिये तुम अपनी सत्ता समानविषे स्थित होहु तब रात्रि हुई अरु रानीने महासुंदर

रूप धारे फूलोंकी शय्या बिछाई तिसपर दोनों इकट्ठे सोये. हे रामजी! ऐसे रात्रि व्यतीत भयी कोऊ फुरणा न फुरा सत्ता समानविषे दोनों स्थित रहे अरु मुखते कछु न बोले सोइ गये जब प्रातःकाल हुआ तब बहुरि कुंभका शरीर धारा स्नान किया अरु गायत्रीते आदि जो कर्म हैं सो किये इसी प्रकार रात्रिको स्त्री बनि जावें अरु दिनको कुंभ पुरुषका शरीर धारे जब कछु काल ऐसे व्यतीत भया तब वहांते चले अरु सुमेरु पर्वत ऊपर गये मंदराचल अरु अस्ताचलते आदि सर्व सुखस्थानोंको देखते भये. हे रामजी! एक दृष्टिको लिये रहैं न कोऊ हर्षवान् हुए न शोकवान् हुए ज्योंके त्यों रहैं जैसे पवनकरि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे ही शुभ अशुभ स्थानोंविषे समान रहैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने कुम्भस्त्रीत्वलाभवर्णनं नाम पंचाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमः सर्गः १०६.

विवाहलीलावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार विचरते विचरते मंदराचलकी कंदराविषे जाय स्थित भये तब कुंभरूप चूडाला राजाको परीक्षाके निमित्त कहत भयी. हे राजन्! मैं रात्रिको स्त्री होती हौं, तब मेरे ताईं भर्त्ताके भोगनेकी इच्छा होती है काहेते कि ईश्वरकी नीति ऐसे ही हैं कि स्त्रीको अवश्यमेव पुरुष चाहता है अरु जो उत्तम कुलका पुरुष होता है तिसको पिता कन्या विवाह करिकै देता है अथवा जिसको स्त्री चाहै तिसको आप देखि लेवै. ताते हे राजन्! मेरे ताईं तुझते अधिक कोऊ नहीं दृष्टि आता तू ही मेरा भर्त्ता है अरु मैं तेरी स्त्री हौं तू अपनी भार्या जानिकरि जो कछु स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं सो किया कर मेरी अवस्था भी यौवन है अरु तू भी सुंदर है ज्ञानवान् अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग नहीं करते यद्यपि तुझको इच्छा न होवै तौ भी ईश्वरकी नीति इसी प्रकार है तिसको उल्लंघनेकरि क्या सिद्ध होता है जो अपने

स्वरूप सत्ताविषे स्थित है तिसको ग्रहण त्यागकी कछु इच्छा नहीं परंतु जो नीति है सो करी चाहिये. राजोवाच-हे साधो ! जो तेरी इच्छा है सो करिये मुझको तौ तीनों जगत् आकाशरूप भासते हैं प्राप्त होनेकरि मेरे ताईं सुख कछु नहीं अप्राप्तिविषे दुःख नहीं न कोऊ मेरे हर्ष है न शोक है जो तेरी इच्छा होय सो करिये. कुंभ उवाच-हे राजन् ! आज ही पूर्णमासीका भला दिन है अरु यह मैंने आगे लग्न भी गिनि छोड़ा है तातें मंदराचल पर्वतकी कंदराविषे बैठिकरि विवाह करिये अब सामग्री इकट्ठी करिये. तब राजा अरु कुंभ दोनों उठे जो कछु सामग्री शास्त्रकी है सो इकट्ठी करी अरु दोनोंने गंगापर स्नान किया अरु बेहली पूजन करि अरु वस्त्र फूल फलतें आदिलेकरि जो विवाहकी सामग्री है सो कल्पवृक्षसों लीनी बहुरि फलको भोजन किया तब सूर्य अस्त भया दोनों संध्या उपासना करी बहुरि राजाको दिव्य वस्त्र भूषण पहिराये अरु शिरपर मुकुट पहिराया बहुरि कुंभका शरीर त्याग किया अरु स्त्रीका शरीर होत भया तब स्त्रीने कहा हे राजन् ! अब तू मेरे ताईं भूषण पहिराय तब राजाने संपूर्ण भूषण फूल अरु वस्त्र पहिराये अरु पार्वतीकी नाईं सुंदर बनाई तब चूडालाने कहा. हे राजन् ! मैं अब तेरी स्त्री हौं अरु नाम मेरा मदनिका है अरु तू मेरा भर्त्ता है कामदेवतें भी तू सुंदर भासता है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इसी प्रकार चूडालाने बहुत कछु कहा तौ भी राजाका चित्त हर्षको न प्राप्त भया अरु वैराग्यकरि शोकवान् भी न भया ज्योंका त्यों रहा तिसतें उपरांत विवाहका आरंभ किया चंदोआ आदि अरु वस्त्र कल्पवृक्षतें लिये अरु पास स्वर्णके कलश राखे देवतोंका पूजन किया इत्यादिक जो शास्त्रकी विधि थी सो संपूर्ण करी लांवा लिया अरु मंगल किया. बहुरि संकल्प यह दिया जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे ताईं दीनी अरु राजाने भी संकल्प किया कि संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे ताईं दीनी जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा अरु रानीने फूलोंकी शय्या बिछायी शयन करिकै आपसविषे चर्चा ही करते रहे अरु मैथुन कछु न किया जब प्रातःकाल हुआ तब स्त्रीका शरीर त्यागिकरि कुम्भका शरीर धारा अरु स्नान

किया, संध्यादिक कर्म किये. हे रामजी! इसी प्रकार एक मासपर्यंत मंदराचल पर्वतविषे रहे जो रात्रिको स्त्रीका शरीर अरु दिनको कुम्भका शरीर करैं जब तीसरा दिन होवै तब राजाको शयन करायके राज्यकी शुद्ध आय लेवै बहुरि राजाके पास जाय शयन करै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने विवाहलीलावर्णनं नाम षडधिकशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः १०७.

मायाशक्रागमनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब वहांसों चले अस्ताचल पर्वतविषे रहे उदयाचल अरु सुमेरु कैलास पर्वत इत्यादिक जो पर्वत अरु कंदरा वनोंविषे रहे कहूँ एक मास कहूँ दश मास कहूँ पांच दिन कहूँ सप्त दिन रहे जब एक वनविषे आये तब रानीने विचार किया कि एते स्थान राजाको दिखाये हैं तौ भी इसका चित्त किसीविषे बंधमान नहीं भया ताते अब अपरपरीक्षा लेउँ ऐसे विचारकरि अपनी माया पसारी तब इंद्र तेंतीस कोटि देवता संयुक्त किन्नर गंधर्व सिद्ध अरु अप्सरा आगे नृत्य करती आये हैं. अपर भी जो कछु इंद्रकी सामग्री है तिससंयुक्त इंद्रको देखकर राजा उठा बहुत प्रीतिसंयुक्त इन्द्रकी पूजा करी अरु कहा हे त्रैलोक्यके पति! तुम्हारा आना इस वनविषे कैसे हुआ है? सो कहौ. तब इन्द्रने कहा हे राजन्! जैसे पक्षी होता है अरु ऊर्ध्वको उड़ता है तिसकी पेठी तागा होता है तिसकरि उडता हुआ भी नीचे आता है तैसे हम ऊर्ध्वके वासी तेरा गुणरूपी जो तागा है तप अरु शुभ लक्षण तिसको श्रवण करिकै हम स्वर्गते खैंचे चले आये हैं इस वनविषे इस प्रकार हमारा आना हुआ है. ताते हे राजन्! तू स्वर्गको चल अरु स्वर्गविषे स्थित होकरि दिव्य भोगको भोगहु ऐरावत हस्ती है तिसपर आरूढ होहु अथवा यह उच्चैःश्रवा घोड़ा है जो क्षीरसमुद्रके मथनते निकसा है इसपर आरूढ होकरि चल अरु सिद्धि भी हैं एक तौ

यह सिद्धि है जिसपर पाउँ राखिये तौ जहां चाहिये तहां पहुँचावै अरु एक खड्गसिद्धि है खड्ग हाथमें धारिकारि जहां इच्छा हो तहां चला जावै एक गुटिका है जो मुखमें राखिकारि जहां इच्छा हो तहां इच्छाचारी चला जाइये इसते लेकारि अष्टसिद्धि भी विद्यमान हैं जो इच्छा होय सो लेहु अरु स्वर्गविषे चलौ. हे राजन् ! तुम तत्त्ववेत्ता हौ तुमको ग्रहण त्याग करना कछु नहीं रहा परंतु जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै तिसका त्याग करना योग्य नहीं ताते स्वर्गविषे चलौ. राजोवाच—हे देवराज ! जाना तहां होता है जहां आगे नहीं होता अरु जहां आगे होवै तहां कैसे जाइये ? हे देवराज ! हमको सर्व स्वर्ग ही दृष्टि आता है जो वहां स्वर्ग होवै यहां न होवै तौ जाइये भी परंतु जहां हम बैठे हैं तहां ही स्वर्ग भासता है तातें हम कहां जावैं हमको तीनों लोक स्वर्ग दृष्टि आते हैं अरु सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है हम तिसी-विषे स्थित हैं हमारे ताईं सर्वथा स्वर्ग भासता है हम सदा तृप्त आनंद रूप हैं ताते हम कहां जावैं ? इन्द्र उवाच—हे राजन् ! जो विदित वेद्यपूर्ण बोध है सो भी यथाप्राप्त भोगको सेवते हैं तुम क्यों नहीं सेवते ऐसे जब इन्द्रने कहा तब राजा त्योंही कहिकारि चुपकर गया बहुरि इन्द्रने कहा भला जो तुम नहीं आते तौ हम जाते हैं तेरा अरु कुम्भका कल्याण होवै. हे रामजी ! ऐसे कहिकारि इन्द्र उठ खडा हुआ अरु चला जब लग दृष्टि आता था तबलग देवता भी साथ दृष्टि आते थे बहुरि दृष्टि अगोचर भये, तब अंतर्धान हो गये. जैसे समुद्रते तरंग उठिकारि बहुरि लीन हो जाता है अरु नहीं जाना जाता कि कहां गया तैसे इन्द्र अन्तर्धान हो गया सो इन्द्र कुंभरूप चूडालाके संकल्पते उठा था जब संकल्प लीन भया तब अन्तर्धान हो गया तब चूडालाने देखा कि ऐसे ऐश्वर्य अरु सिद्धि अरु अप्सराके प्राप्त भये भी राजाका चित्त समताविषे रहा. अरु किसी पदार्थविषे बंधमान न हुआ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने मायाशक्रागमनवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८.

मायापंजरवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब चूडाला इन्द्रका छलकरि रही तब विचार किया कि ऐसा चारित्र राजाके मोहने निमित्त किया तौ भी राजा किसीविषे बंधायमान न भया ज्योंका त्योंही रहा बडा कल्याण हुआ जो राजा सत्ता सामान्यविषे स्थित रहा तातें बडा आनन्द हुआ अब अपर चरित्र करिये जो क्रोध होवै जिसविषे बडा खेद होवै ऐसा विचार करि राजाकी परीक्षाके निमित्त चरित्र किया जब सायंकालका समय हुआ तब गंगाके किनारे राजा संध्या करने लगा अरु कुंभ वनविषे रहा तब वनविषे संकल्पका मंदिर रचा जैसे देवताकी रचना होती है तैसे मंदिरके पास फूलोंकी बाडी पायी अरु कल्पवृक्षतें आदि नानाप्रकारके फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे ऐसे वनके स्थानविषे एक संकल्पकी शय्या रची अरु एक संकल्पका महासुंदर पुरुष रचा तिस साथ सोये रही अंग सों अंग लगायकरि अरु गलेविषे फूलोंकी माला डारी अरु कामचेष्टा करने लगी तब राजा संध्या करि उठा अरु रानीको देखने लगा दृष्टि न आयी ढूंढते ढूंढते तिस मंदिरके निकट आया तब क्या देखे कि कामी पुरुषके साथ मदनिका सोयी हुई है अरु कामचेष्टा करते हैं तब राजाने कहा भले आरामसाथ सोये पडे हैं सोते रहो इनके आनंदविषे विघ्न क्यों करिये. हे रामजी! इस प्रकार राजाने अपनी स्त्रीको देखी तौ भी शोकवान् न हुआ अरु क्रोध भी न किया ज्योंका त्यों शांतपदविषे स्थित रहा क्षोभको न प्राप्त भया अरु मंदिरके बाहिर निकसे तहां एक स्वर्णकी शिला पडी थी तिस ऊपर बैठ रहा अरु समाधिविषे स्थित भया परंतु उन्मीलित लोचन तब दो घडी उपरांत मदनिका कामी पुरुषको त्यागिकरि बाहर आयी अरु राजाके निकट आयकरि अंगोंको नग्न किया बहुरि वस्त्रों-साथ ढांप जैसे अपर स्त्रियां कामकरि व्याकुल होती हैं तैसे चूडालाको देखिकरि राजाने कहा हे मदनिका! तू ऐसे सुखको त्यागकरि क्यों आयी है तू तौ बडे आनंदकरि मग्न थी अब तहां ही फिरि जाहु मेरे ताईं तौ

हर्ष शोक कछु नहीं मैं ज्योंका त्यों हौं परंतु तेरी अरु कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी है परस्पर प्रीति जगतविषे नहीं होती अरु तुम्हारी देखी है ताते तू उसको सुख देहु वह तेरे ताईं सुख देवै अब जाहु तब मदनिका लज्जासों शिरको नीचे करिके बोली हे भगवन्! तुम क्षमा करौ मेरे ऊपर क्रोध न करौ मुझते अवज्ञा बडी हुई है परंतु मैं जानकारि नहीं करी जैसा वृत्तांत है सो श्रवण करौ जब तुम संध्या करने लगे तब मैं वनविषे आयी थी तहां एक कामी पुरुषका मिलाप भया मैं निर्बल थी वह बली था तिसने मेरेको पकड लिया अरु जो पतिव्रता स्त्रीकी मर्यादा है सो भी मैं करी कि उसपर क्रोध किया अरु निरादर किया अरु पुकार भी करी यह तीनों पतिव्रताकी मर्यादा हैं सो मैं करी अरु तुम दूर थे वह बली था मेरे ताईं पकड़ लिया अरु गोदविषे बैठाय जो कछु उसकी भावना थी सो करी.हे भगवन्!मुझ विषे दूषण कछु नहीं ताते तुम क्षमा करौ क्रोध न करौ.राजोवाच-हे मदनिका! मेरे ताईं क्रोध कदाचित् नहीं होता आत्मा ही दृष्टि आता है तौ क्रोध किसपर करौं मेरे ताईं न कछु ग्रहण है न कछु त्याग करना है तथापि यह कर्म साधुओंकरि निंदित है ताते अब तेरा त्याग किया है सुखसे विचरौंगा अरु जो हमारा गुरु कुंभ है सो हमारे पास ही है वह अरु हम सदा निरागरूप हैं अरु तू तौ दुर्वासाके शापते उपजी है तेरे साथ हमारा क्या प्रयोजन है तू अब उसीके पास जा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने माया-पञ्जरवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवोत्तरशततमः सर्गः १०९.
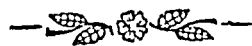
चूडालाप्राकट्यवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तब मदनिका नाम जो चूडाला है तिसने विचार किया बड़ा आश्चर्य हुआ जो राजा आत्मपदविषे प्राप्त भया ऐसे सिद्धि अरु ऐश्वर्य दिखाये अरु क्रूर स्थान भी दिखाये तौ

भी राजा शुभ अशुभविषे ज्योंका त्यों रहा ताते बड़ा कल्याण हुआ जो राजाको शांति प्राप्त भयी अरु रागद्वेषते रहित भया अब पूर्वला रूप चूडालाका है सो दिखावौं अरु संपूर्ण वृत्तांत राजाको बतावौं ऐसे विचार करि मदनिका शरीरते चूडालारूप होकरि प्रगट भयी भूषणों अरु वस्त्रोंकरि तब सहित राजा देखिकरि महा आश्चर्यको प्राप्त भया अरु ध्यानविषे स्थित हुआ अरु देखा कि यह चूडाला कहांते आयी है बहुरि पूछा-हे देवि। तू कहांते आयी है तेरे ताईं देखिकरि मैं आश्चर्यको प्राप्त भया हौं कि तू ऐसी मेरी स्त्री चूडाला थी अरु तू यहां किसनिमित्त आयी है अरु कबकी आयी है. चूडालोवाच-हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चूडाला हौं अरु तू मेरा स्वामी है. हे राजन्! कुंभते आदि अरु यह चूडाला शरीरपर्यंत सर्व चरित्र तेरे जगावनेके निमित्त मैं ही किये हैं तू ध्यानविषे स्थित होकरि देख कि यह चरित्र किसने किये हैं अरु मैं अब पूर्वका शरीर चूडालाका धारा है. हे रामजी! जब ऐसे चूडालाने कहा तब राजा ध्यानविषे स्थित होकरि देखने लगा एक मुहूर्तपर्यंत सब वृत्तांत देखि लिया तिसते उपरांत राजाने आश्चर्यको प्राप्त होकरि नेत्र खोले अरु रानीके गलेसाथ कंठ लगायकरि मिला अरु दोनों हर्षको प्राप्त भये जो सहस्र वर्षपर्यंत शेषनाग उस सुखको वर्णन करे तौ भी न कहि सकैगा ऐसे सत्ता समानविषे स्थित हुए अरु शांतिको प्राप्त भये जिसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं-राजा अरु रानी युगल कंठ लगाय मिले थे तिसते अंगोंविषे उष्णता उपजी तब शनैः शनैः करि खोला हर्षमान होकरि राजाके रोमावली खड़े हो आये अरु नेत्रते जल चलने लगा ऐसी अवस्थासाथ राजा बोला-हे देवि। मेरे ऊपर तैंने बड़ा अनुग्रह किया है तेरी स्तुति करनेको मैं समर्थ नहीं कैसे स्तुति करौं जेते कछु संसारके पदार्थ हैं सो सब मायामय हैं अरु मिथ्या हैं अरु तैंने मेरे ताईं सत्पदको प्राप्त किया है ताते मैं तेरी उपमा क्या करौं? हे देवि! मैंने जाना है जो जब मैं राज्यका त्याग किया है अरु इस चूडालाके शरीरपर्यंत सब तेरे चरित्र हैं अरु मेरे वास्ते बडे कष्ट तैंने सहन किये हैं अरु बडे यत्न

किये हैं आना अरु जाना शरीरका स्वांग धारना अरु उड़ना इत्यादिक बडा तैंने कष्ट पाया है अरु बडे यत्नकरि मेरे ताईं संसारसमुद्रते पार किया है अरु बडा उपकार किया है तू धन्य है अरु जेती कछु देवियां हैं तिनसों तैने श्रेष्ठ कार्य किया है ताते तू सबते अधिक है सो कौन देवियां हैं जिनते तू अधिक है अरुंधती अरु ब्रह्माणी अरु इंद्राणी अरु पार्वती सरस्वती इत्यादिक देवियोंको तैंने तिरस्कार किया है. हे देवि ! जो श्रेष्ठ कुलकी कन्या है अरु पतिव्रता है सो जिस पुरुषको प्राप्त होती है तिसका सर्व कार्य सिद्ध होता है सो कौन कौन श्रेष्ठ स्त्रियां हैं श्रवण कर. बुद्धि अरु शांति अरु दया अरु शक्ति अरु कोमलता मैत्री इत्यादिक जो शुभ लक्षण हैं सो पतिव्रता स्त्रीकरि प्राप्त होते हैं. हे देवि ! मैं तेरे प्रसादकरि शांतपदको प्राप्त भया हौं अब मेरे ताईं क्षोभ कोऊ नहीं ऐसा पद शास्त्रोंकरि भी नहीं पाता अरु तपकरि नहीं पाता जो पतिव्रता स्त्रीकरि पाता है. चूडालोवाच–हे राजन् ! तू काहेको मेरी स्तुति करता है मैं तौ अपना कार्य किया है. हे राजन् ! जब तू राज्यका त्याग करि वनविषे आया तब तू मोहको साथ ही लिये आया मोह कहिये अज्ञान तिस अज्ञानकरि नीच स्थानविषे पडा जैसे कोऊ गंगाजलको त्यागकरि चीकडके जलका अंगीकार करे तैसे तैंने आत्मज्ञान अक्रिय पदका त्यागकरि तपका अंगीकार किया. हे राजन् ! मैंने देखा कि तू चीकड़विषे गिरा है ताते मैं तेरे निकासनेनिमित्त एते यत्न किये हैं. हे राजन् ! मैं अपना कार्य किया है. राजोवाच–हे देवि ! मेरा यही आशीर्वाद है कि जो कोऊ पतिव्रता स्त्री होवै सो सब ऐसे ही कार्य करै जैसे तुमने किया है जो पतिव्रता स्त्रीते कार्य होता है सो अपरते नहीं होता. हे देवि ! जेती अरुंधतीते आदि पतिव्रता स्त्रियां हैं तिनते तू प्रथम गिनी जायगी अरु मैं जानता हौं ब्रह्माजीने तेरे ताईं कोधकरि इसनिमित्त उपजाई है कि अरुंधतीते आदि जो देवियां हैं तिन्होंने आपसविषे गर्व किया होवैगा तिस गर्वको सुनिकरि तिनके गर्व निवारणेनिमित्त तुझको अधिक उत्पन्न किया है. ताते हे देवि ! तू धन्य है जो तैंने मेरे ऊपर बडा उपकार किया है. हे देवि ! तू

बहुरि मेरे अंग लाग जो तैंने बडा उपकार मेरे साथ किया है. हे रामजी! ऐसे कहकर राजाने रानीको बहुरि गले लगायी जैसे नोल अरु नोली मिलैं अरु मूर्तिकी नाईं लिखी है ऐसे भासैं. चूडालोवाच–हे भगवन्! एक तौ मेरे ताईं यह कहु, जो ज्ञानरूप आत्माके एक अंशविषे जगत् लीन हो जाता है ऐसा जो तू है सो आपको अब क्या जानता है अरु अब तू कहां स्थित है अरु राज्य तेरे ताईं कछु दिखायी देता है अथवा नहीं देता अब तेरे ताईं क्या इच्छा है? शिखिध्वज उवाच–हे देवी! जो स्वरूप तैंने ज्ञानकरिकै निश्चय किया है सोई मैं आपको जानता हौं अरु शांतरूप हौं इच्छा अनिच्छा मेरे ताईं कोई नहीं रही केवल शांतरूप हौं. हे देवी! जिस पदकी अपेक्षाकरिकै ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी मूर्तियां भी शोकसंयुक्त भासती हैं तिस पदको मैं प्राप्त भया हौं जहां उत्थान कोऊ नहीं अरु निष्किंचित है जिसविषे किंचित् मात्र भी जगत् नहीं अरु मैं जो था सोई भया हौं इसते इतर क्या कहौं? हे देवि! तैंने संसारसमुद्रते मेरे ताईं पार किया है ताते तू मेरा गुरु है ऐसे कहिकरि चूडालाके चरणोंपर राजा गिर पड़ा अरु कहा अज्ञान मेरे ताईं कदाचित् स्पर्श न करैगा जैसे तांबा पारसके संगकरि स्वर्ण हुआ बहुरि तांबा नहीं होता तैसे मैं मोहरूपी चीकडते तेरे संगकरि निकसा हौं बहुरि कदाचित न गिरौंगा अरु अब इस जगत्के सुखदुःखकरि न तुष्ट होता हौं ज्योंका त्यों स्थित हौं रागद्वेषको उठानेवाला जो चित्त है सो मेरा नष्ट हो गया है अब मैं प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित हौं जैसे जलविषे सूर्यका प्रतिबिंब पड़ता है अरु जलके नष्ट हुए प्रतिबिंब भी सूर्यरूप होता है तैसे मेरा चित्त भी आत्मरूप भया है अब मैं निर्वाणपदको प्राप्त भया हौं अरु सर्वते अतीत भया हौं अरु सर्वविषे स्थित हौं जैसे आकाश सर्व पदार्थविषे स्थित है अरु सर्व पदार्थते अतीत है तैसे मैं भी हौं, अहं त्वम् आदिक शब्द मेरे नष्ट भये हैं अरु शांतिको प्राप्त भया हौं अब मेरेविषे ऐसा तैसा शब्द कोऊ नहीं मैं अद्वैत हौं अरु चिन्मात्र हौं न सूक्ष्म हौं न स्थूल हौं. चूडालोवाच–हे राजन्! जो तू ऐसे स्थित

हुआ है तौ तू अब क्या करैगा अब तेरे ताईं क्या इच्छा है? राजोवाच-हे देवी! न मेरे कछु अंगीकार करनेकी इच्छा है न त्याग करनेकी इच्छा है जो कछु तू कहैगी सो करौंगा तेरे कहनेका अंगीकार करौंगा जैसे मणि प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तैसे मैं तेरे वचनको ग्रहण करौंगा. चूडालोवाच-हे प्राणपति! हृदयके प्रीतम राजा! अब तू विष्णु हुआ है अरु भला कार्य हुआ जो तेरी इच्छा नष्ट भयी है. हे राजन्! अब तू अरु मैं मोहते रहित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरैं अखेद जीवन्मुक्त हुए अपने प्रकृत आचारको हम क्यों त्यागैं? हे राजन्! जो अपने आचारको त्यागैंगे तौ अपर किसीको ग्रहण करैंगे ताते हम अपने ही आचारविषे विचरैं अरु भोग मोक्ष दोनोंको भोगे हैं. हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत भया अरु संध्याकालकी संध्या राजा करत भया बहुरि शय्याका आरंभ किया तिसऊपर दोनों शयन करत भये अरु रात्रिको परस्पर चर्चा ही करते रहे एक क्षणकी नाईं रात्रिको व्यतीत करी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने चूडालाप्राकटचवर्णनं नाम नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ११०.

चूडालाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब ऐसे रात्रि बीती अरु सूर्यकी किरणें पसरीं अरु सूर्यमुखी कमल खिल आये, तब राजाने स्नानका आरंभ किया चूडालाने मनमें संकल्प करिकै रत्नोंकी मटकी रची अरु हाथ पर धारी तिस विषे गंगा आदिक तीर्थोंका जल पाया अरु राजाको स्नान कराया शुद्ध किया अरु संध्यादिक सब कर्म किये तब चूडालाने कहा. हे राजन्! मोहको नाश करिकै सुखेन ही अपने राज्य कार्यको करैं अरु आनंद साथ भोग भोगैं. राजोवाच-हे देवि! जो सुख भोगनेकी तेरे ताईं इच्छा है तौ स्वर्गविषे भी हमारा राज्य है अरु सिद्धविषे भी हमारा है

ताते स्वर्ग ही विषे विचरैं. चूडालोवाच–हे राजन्! हमको न सुख भोगने की इच्छा है न त्यागनेकी इच्छा है हम ज्योंके त्यों हैं. हे राजन्! इच्छा अनिच्छा तब होती है जब आगे कछु पदार्थ भासता है हमको तौ केवल आकाश आत्मा दृष्टि आता है स्वर्ग कहां अरु नरक कहां हम सर्वदा एक रस स्थित हैं. हे राजन्! यद्यपि हमको कछु नहीं तौ भी जबलग शरीरका प्रारब्ध है तबलग शरीर रहता है तौ चेष्टा भी हुई चहिये अपर चेष्टा करनेसे अपने प्राकृतिक आचारको क्यों न करिये जो रागद्वेषते रहित होकरि अपने राज्यको भोगैं ताते अब उठ अष्टवसुके तेजको धारि कारि राज्य करनेको सावधान होहु. हे रामजी! जब ऐसे चूडालाने कहा तब राजा कहत भया ऐसे ही होवै अरु अष्टवसुके तेजसंयुक्त होत भया जब ऐसा तेज राजाको प्राप्त भया तब कहा. हे देवि! तू मेरी पटरानी है अरु मैं तेरा भर्ता हौं तो भी एक तू है एक मैं हौं अपर कोऊ नहीं अरु राज्य तब होता है जब सेना भी होवै ताते तू सेना रच तब चूडाला संपूर्ण सेनाको रचती भयी हस्ती घोडे रथ नौबत नगारे निशान इत्यादिक जो राज्यकी सामग्री है सो रची है अरु प्रत्यक्ष आगे आनि स्थित भयी नौबत नगारे तुरियां सहनाई बाजने लगे जो कछु राज्यकी सामग्री है सो अपने अपने स्थान विषे स्थित भयी राजाके शिर ऊपर छत्र फिरने लगा अरु बैरख खडी हुई तब राजा अरु रानी हस्ती पर आरूढ होकरि चले मंदराचल पर्वतके ऊपर आगे पाछे सब सेना भयी अरु राजा जिस जिस ठौर तप करत भया था सो रानीको दिखावता जावै कि इस स्थान-विषे मैं एताकाल रहा हौं इसविषे एता काल रहा हौं जब राज्यका त्याग किया था ऐसे दिखाता जावै अरु तीक्ष्णवेगकरि चले तब आगे जो मंत्री अरु पुर-वासी अपर नगरवासी थे सो राजाको लेने आये अरु बडे आदरसंयुक्त पूजन किया अरु अपने मंदिरविषे आनि स्थित भये अष्ट दिन पर्यंत राजाको मिलने निमित्त लोकपाल मंडलेश्वर आते रहे तिसते उपरांत राजा सिंहासन पर आय बैठा अरु राज्य करने लगा एक समदृष्टिको लिये दशसहस्र वर्ष पर्यंत राज्य किया चूडालासंयुक्त जीवन्मुक्त होकरि विचरत भये बहुरि विदेहमुक्त भये. हे रामजी! दशसहस्र वर्ष पर्यंत राजा अरु चूडालाने राज्य

किया अरु सत्ता समानविषे स्थित रहे किसी पदार्थविषे रागवान् न भये अरु द्वेष भी न किया ज्योंके त्यों शांत पदविषे स्थित रहे जेती कछु राज्य की चेष्टा हैं सो करते रहे परंतु अन्तःकरणकरि किसी विषे बन्धमान न भये केवल आत्मपदविषे अचल रहे बहुरि राजा अरु चूडाला विदेहमुक्ति को प्राप्त भये जैसे आपको जानते थे तिसी केवल परमाकाश अक्षोभ पदविषे जाय स्थित भये जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होता है तैसे प्रारब्ध वेग के क्षय हुए निर्वाण पदविषे प्राप्त भये. हे रामजी ! जैसे शिखिध्वज अरु चूडाला जीवन्मुक्त होकरि भोगको भोगते विचरे हैं तैसे तुम भी रागद्वेषते रहित होकरि विचरौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे शिखिध्वजचूडालाख्यान-समाप्तिवर्णनं नाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः १११.
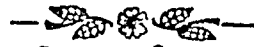
कचप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! शिखिध्वजका वृत्तांत मैं संपूर्ण तुझको कहा ऐसी दृष्टिको आश्रय करौ कैसी दृष्टि है जो पापका नाश करती है तिस दृष्टिका आश्रय करि जिस मार्ग शिखिध्वज तत्पदको प्राप्त भया है अरु जीवन्मुक्त होकरि राज्यका व्यवहार किया है तैसे तुम भी तत्पदका आश्रय करौ अरु तिसीमें परायण होउ आत्मपदको पायकरि भोग मोक्ष दोनोंको भोगौ अरु किसी प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच भी बोधवान् हुआ है. राम उवाच–हे भगवन् ! जिस प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच बोधवान् हुआ है सो प्रकार सब ही संक्षेपते मुख्यकरि मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसा कच था जो बालक अवस्था अज्ञात है तिसको त्यागिकरि पद पदार्थको जानने लगे जब ऐसा हुआ तब पिता बृहस्पतिसों प्रश्न किया कि हे पिता ! इस संसारपिंजरते मैं कैसे निकसों ? जेता संसार है सो जीवितकरि बांधा हुआ है जीवित कहिये अनात्म देहादिकोंविषे मिथ्या

अभिमान करना इसीकरि बांधा हुआ है जो अहं त्वं मानता है तिस संसारते मुक्त कैसे होउँ ? बृहस्पतिरुवाच-हे तात ! इस अनर्थरूप संसारते तब मुक्त होता है जब सर्व त्याग करता है सर्व त्याग किये विना मुक्ति नहीं होती ताते तू सर्व त्याग करु जो मुक्ति होवै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार बृहस्पतिने कहा तब कच ऐसे पावन वचनोंको श्रवण करि ऐश्वर्यका त्याग करि वनको गया वनविषे जायकरि एक कंदरामें स्थित भया तप करने लगा. हे रामजी ! बृहस्पतिका पुत्र कच तिसके जानेकरि उसको खेद कछु न भया जो ज्ञानवान् पुरुषको संयोगवियोगविषे समभाव रहता है हर्षशोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होता ज्योंका त्यों रहता है जब अष्ट वर्षपर्यंत तप किया तब बृहस्पति आया अरु देखा कि कच एक कंदराविषे बैठा है तहां कचके पास आनि स्थित भया अरु कचने पिताका पूजन गुरुकी नाईं किया अरु बृहस्पतिने कचको कंठ लगाया तब दुःखकरि गद्गद वाणीसहित कचने प्रश्न किया. हे पिता ! अष्ट वर्ष बीते हैं, जो मैं सर्व त्याग किया है तौ भी शांतिको नहीं प्राप्त भया जिसकरि मेरे ताईं शांति प्राप्त होवै सो कहौ. तब बृहस्पतिने कहा-हे तात ! सर्व त्याग करु जो तेरे ताईं शांति होवै ऐसे कहिकरि बृहस्पति उठ खड़ा हुआ अरु आकाशको चला गया. हे रामजी ! जब ऐसे बृहस्पति कहिकरि चला गया तब कच आसन अरु मृगछाला अरु वनको त्यागिकरि आगे वनको चला एक कंदराविषे जायकरि स्थित भया तब तीन वर्ष वहाँ व्यतीत भये बहुरि बृहस्पति आय प्राप्त भया. देखा कि कच स्थित है तब कचने भली प्रकार गुरुकी नाईं पूजन किया अरु बृहस्पतिने कचको कंठ लगाया तब कचने कहा. हे पिता ! अबलग मेरे ताईं शांति नहीं प्राप्त भयी अरु मैं सर्व त्याग भी किया कि अपने पास कछु नहीं राखा ताते जिसकरि मेरा कल्याण होवै सोई कहौ तब बृहस्पतिने कहा- हे तात ! अब भी सर्व त्याग नहीं किया ताते सर्व पद चित्तका नाम है जब चित्तका त्याग करैगा तब सर्व त्याग होवैगा ताते चित्तका त्याग करु. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! ऐसे कहिकरि बृहस्पति आकाशको चला गया तब कच विचारने लगा कि

पिताने सर्वपद चित्तको कहा है सो चित्त क्या है प्रथम वनके पदार्थोंको देखिकरि विचारत भया कि यह चित्त है तब देखा कि यह भिन्न भिन्न हैं ताते यह चित्त नहीं अरु नेत्र भी चित्त नहीं जो नेत्र श्रवण नहीं श्रवण नेत्रहूते भिन्न हैं अरु श्रवण भी चित्त नहीं इसी प्रकार सर्व इंद्रियाँ चित्त नहीं जो एकविषे दूसरेका अभाव है ताते चित्त या है जिसको जानकरि त्याग करौं बहुरि विचार किया कि पिताके पास स्वर्गविषे जाऊँ. हे रामजी ! ऐसे विचारकरि उठि खडा हुआ दिगंबर आकार आकाशको चला जब पिताके पास जाय प्राप्त भया तब पिताका पूजन किया अरु कहा, हे तेंतीस कोटि देवतोंके गुरु ! चित्तका रूप क्या है तिसका रूप कहौ कि मैं तिसको त्याग करौं बृहस्पतिरुवाच-हे पुत्र ! चित्त अहंकारका नाम है सो अज्ञानते उपजा है अरु आत्मज्ञान करिकै इसका नाश होता है जसे रसडीके अज्ञानते सर्प भासता है अरु रसडीके जाननेते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है तातै अहंभावका त्याग कर अरु स्वरूपविषे स्थित होहु. कच उवाच-हे पिता ! अहंभावका त्याग कसे करौं अहं तौ मैं हौं बहुरि अपना त्याग करिकै स्थित कैसे होऊं इसका त्याग करना महाकठिन है. बृहस्पतिरुवाच-हे तात ! अहंकारका त्याग करना तौ महासुगम है फूलके मिलनेविषे भी कछु यत्न है अरु नेत्रोंके खोलने अरु मिटनेविषे भी कछु यत्न है परंतु अहंकारके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं. हे पुत्र ! अहंकार वस्तु कछु नहीं भ्रमकरिकै उठा है जैसे मूर्ख बालक अपने परछाईंविषे बैताल कल्पता है अरु जेवरीविषे सर्प भासता है अरु मरुस्थलविषे जल कल्पता है अरु आशाविषे भ्रमकरि दो चंद्रमा भासते हैं तैसे परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमादकरि उपजा है अरु आत्मा शुद्ध है आकाशते भी निर्मल है अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित सत्ता समान चिन्मात्र है तिसविषे स्थित होहु. जो तेरा स्वरूप है अरु तू आत्मा है तेरेविषे अहंकार कदाचित् नहीं. हे साधो ! आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे स्थित है तिसविषे अहंभाव ऐसे है जैसे धूड समुद्रविषे कदाचित नहीं तैसे तिसविषे अहंकार कदाचित् नहीं. कैसा है आत्मा

जिसविषे न एक कहना है न दो कहना है केवल अपने आपविषे स्थित है अरु जो आकार दृष्टि आते हैं सो चित्तके फुरणेकरिकै हैं, चित्तके नष्ट हुए आत्मा ही शेष रहता है, ताते अपने स्वरूपविषे स्थित होहु जो तेरा दुःख नष्ट हो जावै अरु जो कछु यह दृष्टि आता है तिसविषे भी आत्मा है जैसे पत्र फूल फल सर्व बीजते उत्पन्न होते हैं तैसे सब आत्माका चमत्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निवाणप्रकरणे पूर्वार्धे कचप्रबोधवर्णनं नामैकादशोत्तरशततमः सर्गः॥ १११ ॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ११२.

मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार बृहस्पतिने उत्तम उपदेश किया तब कच श्रवण करिकै स्वरूपविषे स्थित भया. योग जो है आत्मा अरु परिच्छिन्न अहंकारकी एकता तिसको प्राप्त भया अरु आत्मस्वरूप हुआ अरु जीवन्मुक्त होकरि विचरत भया. हे रामजी ! जैसे कच जीवन्मुक्त होकरि विचरा है निरहंकार हुआ तैसे तू भी निराश होकरि विचरु केवल अद्वैत पदको प्राप्त होहु जो निर्मल अरु शुद्ध है जिसविषे एक अरु दो कहना नहीं तू तिस पदविषे स्थित होहु तेरेविषे दुःख कोई नहीं. तू आत्मा है अरु तेरेविषे अहंकार नहीं. तू ग्रहण त्याग किसका करै जो पदार्थ होवै नहीं तिसका ग्रहण त्याग क्या कहिये. हे रामजी ! जैसे आकाशके वनविषे फूल हैं नहीं तिसका ग्रहण क्या अरु त्याग क्या ? तैसे आत्माविषे अहंकार नहीं जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो अहंकारका ग्रहण त्याग नहीं करते अरु मूर्खको एक आत्माविषे नाना आकार भासते हैं किसीका शोक करना कहूं हर्ष करना अरु तू कैसे दुःखका नाश चाहता है दुःख तेरेविषे है नहीं तू कैसे नाश करनेको समर्थ हुआ है ? अरु जेते कछु आकार भासते हैं सो मिथ्या हैं तिनविषे जो अधिष्ठान है सो सत् है अरु मूर्ख मिथ्या करिकै सत्की रक्षा

करते हैं जो मेरे दुःख नाश होवें. राम उवाच–हे भगवन्! तुम्हारे प्रसादकरिकै मैं तृप्त हुआ हौं तुम्हारे वचनरूपी अमृतकरि अघाया हौं जैसे पपैया एक बूँदको चाहता है अरु कृपाकरिकै मेघ तिसपर वर्षा करता है अरु अघाय रहता है तैसे मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त हुआ था अरु तुम्हारे दर्शनकी इच्छा बूँदकी नाईं करता था अरु तुमने कृपा करिकै ज्ञानरूपी अमृतकी वर्षा करी तिस वर्षा करिकै मैं अघाय रहा हौं, अब मैं शांतपदको प्राप्त हुआ हौं, तीनों ताप मेरे मिटि गये हैं कोऊ फुरणा मेरेविषे नहीं रहा अरु तुम्हारे अमृत वचनोंको श्रवण करता तृप्त नहीं होता जैसे चकोर चंद्रमाको देखिकरि किरणोंते तृप्त नहीं होता तैसे तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं तृप्त नहीं होता; तातें प्रश्न करता हौं तिसका उत्तर कृपा करि कहौ. हे भगवन्! मिथ्या क्या है अरु सत क्या है जिसकी रक्षा करते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इसके ऊपर एक आख्यान है सो कहता हौं जिसके सुननेते हांसी आवे. एक आकाशविषे शून्य वन है तिसविषे एक मूर्ख बालक है जो आप मिथ्या है अरु सत्यके राखनेकी इच्छा करता है कि मैं इसकी रक्षा करौंगा अधिष्ठान जो सत्य है तिसको नहीं जानता अरु मूर्खता करिकै दुःख पाता है क्या जानता है सो श्रवण करु. यह आकाश है मैं भी आकाश हौं मेरा आकाश है मैं आकाशकी रक्षा करौंगा ऐसे विचार करि एक गृह बनाया गृहविषे जो आकाश है तिसकी रक्षा करौंगा जो इसका नाश न होवे इस निमित्त गृह बनाया. हे रामजी! ऐसे विचार करिकै गृहकी बनावट बहुत करी जब किसी ठौरते टूटै तब बहुरि बनाय लेवै जब केता काल इस प्रकार व्यतीत भया तब कालकरि गृह गिरपड़ा तब रुदन करने लगा हाय हाय मेरा आकाश नष्ट हो गया जैसे एक ऋतु व्यतीत होवै अरु दूसरा आवै तैसे कालकरि गृह गिरि गया. तिसते उपरांत एक कुँआ बनाया अरु कहने लगा कि यह आकाश न जावैगा जो इसकी भले प्रकार रक्षा करौंगा. हे रामजी! इस प्रकार कुँएको बना करि सुख माना जब केताक काल बीता तब जैसे सूखा पात वृक्षते गिरता है तैसे कुँआ भी गिर पडा तब बडे शोकको प्राप्त भया कि

मेरा आकाश गिर पडा नष्ट हो गया मैं क्या करौंगा ! ऐसे शोकसंयुक्त केताक काल बीता तब एक कुटी बनायी जैसे अनाज राखनेके निमित्त बनाते हैं तैसे बनायकरि कहने लगा कि अब मेरा आकाश कहाँ जावैगा मैं अब इसकी भले प्रकार रक्षा करौंगा ऐसी कुटी करिकै बहुत सुख माना जब केताक काल व्यतीत भया तब वह कुटी भी तूटि पड़ी, जो उपजी वस्तुका विनाश होता अवश्य है बहुरि रुदन करने लगा कि मेरा आकाश नष्ट हो गया जब केताक काल शोकसंयुक्त बीता तब एक घट बनाया अरु घटाकाशकी रक्षा करने लगा तब केतेक कालकरि घट भी नष्ट हो गया बहुरि एक कुंड बनाया अरु कुंडाकाशकी रक्षा करने लगा केताक कालकरि कुंड भी नष्ट हो गया तब शोकवान् हुआ बहुरि एक हवेली बनायी अरु कहने लगा अब मेरा आकाश कहाँ जावैगा मैं उसकी भले प्रकार रक्षा करौंगा अरु बडे हर्षको प्राप्त हुआ जब केताक काल व्यतीत भया तब वह हवेली भी गिर पड़ी बहुरि दुःखको प्राप्त भया कि हाय हाय ! मेरा आकाश नष्ट हो गया मेरे ताईं बड़ा कष्ट आनि प्राप्त भया है. हे रामजी ! इसी प्रकार आत्मज्ञानविना अरु आकाशके जानने विना मूर्ख बालक दुःख पाता रहा जो आपको भी यथार्थ जानता अरु आकाशको भी ज्योंका त्यों जानता तौ यह कष्ट काहेको पाता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ११३.

मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन् ! मिथ्यापुरुष कौन था अरु जिसकी रक्षा करता था सो आकाश क्या था अरु जो गृह कूप आदिक बनावता था सो क्या था ? यह प्रगट करि कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मिथ्यापुरुष जो संवेदन फुरणेते उपजा अहंकार है अरु आकाश

चिदाकाश है तिसते उपजा बहुरि जानता है कि मैं आकाशकी रक्षा करौं अरु आकाश गृहघटादिक जो कहा सो देह है तिसविषे जो आत्मा अधिष्ठान है तिस आत्माकी रक्षा करनेकी इच्छा मूर्खता करिकै करता है आपको नहीं जानता कि मेरा स्वरूप क्या है तिस अपने स्वरूपको न जानने करि दुःख पाता है. आप है मिथ्या अरु मिथ्या होकरि आगे आकाशको कल्पिकरि राखनेकी इच्छा करता है जो देहकरिकै देहीके राखनेकी इच्छा करता है कि मैं जीता रहौं अरु देह तौ कालकरि उपजा है बहुरि देहके नष्ट होने करि शोकवान् होता है अरु अपने वास्तव स्वरूप वस्तुको नहीं जानता तिसका नाश कदाचित् नहीं होता. ऐसे विचारते रहित क्लेश पाता है. हे रामजी ! जिसविषे भ्रम उपजता है तिसका अधिष्ठान सत्ता नहीं होता सर्वका अपना आप आत्मा है सो कदाचित् नाश नहीं होता तिसविषे मूर्खताकरिकै अहंरूप संसारको कल्पता है अरु एते इसके नाम हैं अहंकार मन जीव बुद्धि चित्त माया प्रकृति दृश्य यह सर्व इसके नाम हैं सो मिथ्या हैं अरु इसका अत्यंत अभाव है अनहोता उदय हुआ है जो मैं हौं क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण आश्रम अरु मनुष्य देवता दैत्य इत्यादिक कल्पना करता है. हे रामजी ! यह कदाचित् हुआ नहीं अरु न होवैगा न किसी काल न किसीको है अविचार सिद्ध है विचार कियेते कछु नहीं जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प कल्पता है अरु जाननेते नष्ट हो जाता है तैसे स्वरूपके प्रमादकरि अहंकार उदय हुआ है सो तेरा स्वरूप कैसा है श्रवण करु आत्मा है अरु प्रकाशरूप है निर्मल है जो विद्या अविद्याके कार्यते रहित चेतनमात्र है अरु निर्विकल्प है ज्योंका त्यों स्थित है अद्वैत है अरु प्राणको कदाचित् नहीं प्राप्त होता आत्मतत्त्वमात्र है तिसविषे संसार कैसे होवै अरु अहंकार कैसे होवै सम्यक्दर्शीको आत्माते इतर नहीं भासता अरु असम्यक्दर्शीको संसार भासता है पदार्थको सत् जानता है अरु संसारको वास्तव जानता है जो अपने वास्तव स्वरूपको नहीं जानता है कि मैं कौन हौं जाननेते अहंकार नष्ट हो जाता है अरु जेती कछु आपदा हैं तिनकी खानि अहंकार है सर्व ताप अहंकारते

उत्पन्न होते हैं इसके नष्ट हुए अपने स्वरूपविषे स्थित होता है अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है इतर नहीं जैसे समुद्रविषे पवनकरि नानाप्रकारके तरंग भासते हैं अरु स्वर्णविषे नाना प्रकारके भूषण भासते हैं, सो वही रूप हैं भिन्न कछु नहीं तैसे आत्माते विश्व भिन्न कछु नहीं अरु स्वर्ण भी परिणामकरि भूषण होता है अरु समुद्र भी परिणामकरि तरंग होता है अरु आत्मा अच्युत है परिणामको नहीं प्राप्त भया ताते समुद्र अरु स्वर्णते विलक्षण है आत्माविषे संवेदनकरि चमत्कारमात्र विश्व है सो आत्मामात्र स्वरूप है सो न कदाचित् जन्मा है न मृत्युको प्राप्त होता है न किसीकालविषे न किसीसो मृतक है ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है अरु जन्म मृत्यु तब होवै जब दूसरा होवै आत्मा तौ अद्वैत है जिसविषे एक कहना भी नहीं तौ दूसरा कहां होवै ताते प्रत्यक् आत्मा अपना अनुभवरूप है तिसविषे स्थित होहु तब दुःख ताप सब नष्ट हो जावैं सो आत्मा शुद्ध है अरु निराकार है. हे रामजी ! जो निराकार शुद्ध है सो किसकरि ग्रहण करिये अरु रक्षा कैसे करिये कौन समर्थ है जो रक्षा करै ? जैसे घटके नष्ट हुए घटाकाश नष्ट नहीं होता तैसे देहके नष्ट हुए देही आत्माका नाश नहीं होता आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है अरु जन्ममरण पुर्यष्टका करिकै भासते हैं जब पुर्यष्टका देहते निकस जाती है तब मृतक भासता है जब पुर्यष्टका संयुक्त है तब जीवत भासता है अरु आत्मा सूक्ष्मते सूक्ष्म है अरु स्थूलते स्थूल है तिसका ग्रहण कैसे होवै अरु रक्षा कैसे करिये अरु स्थूल भी उपदेश जतावनेके निमित्त कहता है आत्मा वाचाते अगोचर है अरु भाव अभावरूप संसारते रहित है सर्वका अनुभवरूप है तिसविषे स्थित होकरि अहंकारका त्याग कर अपने स्वरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ११४.

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह संसार आत्मरूप है जैसे इसकी उत्पत्ति भयी है सो सुन. शुद्ध आत्मा निर्विकल्पविषे विवर्त्त चेतनलक्षण मनकरि स्थित भया है अरु आगे तिसने जगत् कल्पना करी है सो मन कैसा है जैसे समुद्रविषे तरंग अरु स्वर्णविषे भूषण, जेवरीविषे सर्प सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास तैसे आत्माविषे विवर्त्त मन है सो आत्माते इतर कछु नहीं जिसको तरंगका ज्ञान है तिसको समुद्रबुद्धि नहीं होती अरु तरंगको अपर जानता है जिसको भूषणका ज्ञान है सो स्वर्णको नहीं जानता अरु सर्पके ज्ञानकरि जेवरीको नहीं जानता अरु जलके ज्ञानकरि किरणोंको नहीं जानता तैसे नाना प्रकार विश्वके ज्ञानकरि परमात्माको नहीं जानता जैसे जिस पुरुषने समुद्रको जाना है जो जल है तिसको तरंग बुद्बुदे भी जल ही भासते हैं भिन्न कछु नहीं भासता सो पुरुष निर्विकल्प है अरु जिसको जेवरीका ज्ञान हुआ तिसको सर्पबुद्धि नहीं होती सो पुरुष निर्विकल्प है अरु जिसको स्वर्णका ज्ञान हुआ है तिसको भूषणबुद्धि नहीं होती ऐसा पुरुष है सो निर्विकल्प है जिसको किरणोंका ज्ञान हुआ है तिसको जलबुद्धि नहीं होती तैसे जिस पुरुषको निर्विकल्प आत्माका ज्ञान हुआ है तिसको संसारभावना नहीं होती तिसको ब्रह्म ही भासता है ऐसा जो मुनीश्वर है सो ज्ञानवान् है. हे रामजी! मन भी आत्माते इतर कछु नहीं. आदि जो परमात्माते मन होकरि फुरा है सो अहं त्वम् आदि कहोकरि फुरा मात्रपदविषे जो अहंभाव होना सो उत्थान है बहिर्मुख होनेकरि अपने निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूपका प्रमाद हुआ है तिस प्रमाद होनेकरि आगे विश्व हुआ है अरु मन भी कैसा है जो कदाचित् उदय नहीं भया अरु आत्मस्वरूप है सो उदय हुएकी नाईं भासता है मन अरु संसार सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं जो दूसरी वस्तु होवैं तो सत् असत् कहिये आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यों स्थित है तिसका विवर्त मन होकरि फुरा है सोई मन

कीट है सोई मन ब्रह्मा है बहुरि ब्रह्माने मनोराज्य करिकै स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी हैं सो न सत्य है न असत्य है. हे रामजी! सर्व प्रपंच मनने कल्पा है तिसीने नानाप्रकारके विचार रचे हैं मन बुद्धि चित्त अहंकार जीव सब मनके नाम हैं जब मन नष्ट हो जावै तब न संसार है न कोऊ विकार है अरु जबलग मन दृश्य साथ मिलिकारि कहै कि मैं संसारका अंत लेउँ तौ कदाचित् अंत न आवैगा काहेते जो संसरना ही संसार है संसरने संयुक्त संसारका अंत कहां आवै अंत लेनेवाला बनकर आगे फुरिकारि देखता है तौ अंत कहांते आवै जैसे कोऊ पुरुष दौडता जावै अरु कहै मैं अपनी परछाईंका अत लेउँ जो कहांलग जाती है. हे रामजी! जबलग पुरुष चला जावै तबलग परछाईंका अंत नहीं आता अरु जब ठहर जावै तब परछाईंका अंत होजाता है तैसे जबलग फुरणा है तबलग संसारका अंत नहीं आता जब फुरणा नष्ट हो जावै तब संसारका भी अंत होवै आत्मा ही दृष्टि आवै अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावै अरु जो फुरने संयुक्त देखैगा तौ संसार ही भासैगा. हे रामजी! जिस पदार्थको यह देखता है सो पदार्थ पूर्व कोऊ नहीं चित्तके फुरणेकारि उदय होता है जब चित्त फुरा किया पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ अरु फुरणेते रहित होकारि देखै तौ पदार्थ कोऊ नहीं भासता केवल शांतपद है. हे रामजी! यह जो नाना प्रकारकी कल्पना है तिसते रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदविषे अहंकारका त्याग कारि स्थित होहु अहंकार जो है नामरूपदेह वर्णाश्रमविषे मायाकारि कल्पित जब तिसते रहित होकारि देखैगा तब केवल सच्चिदानंद आत्मपदशेष रहैगा. जब तिस पदको अपना आप जानैगा तब तू ही सर्वात्मा होकारि विचरैगा. दुःख तेरे ताईं कोऊ नहीं रहैगा. हे रामजी! मन ही संसार है मन ही ब्रह्मा है अरु मन ही कीट है मन ही सुमेरु है मन ही तृण है मन ही सर्व विश्वरूप होकारि स्थित भया है सो मन कैसा है जो आत्माते इतर मन कछु नहीं. जैसे फलही विषे संपूर्ण वृक्ष है तैसे मन आत्मस्वरूप है आत्माते इतर मन कछु वस्तु नहीं ऐसे जानिकारि आत्मस्वरूप होवैगा यह जो संज्ञा है बंध अरु मोक्ष तिसका त्याग करु न बंधकी वांछा करु न मोक्षकी इच्छा करु इस कल्पनाते रहित होहु अरु ऐसे न

होवै जो मुक्त हौं अरु यह अपर बंध हैं केवल सत्तासमान आत्मपद विषे स्थित होहु यही भावना कर जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं ऐसा जो पुरुष है तिसका चित्त भाव नहीं रहता सर्व आत्मा तिसको भासता है जैसे जिस पुरुषने सूर्यको जाना है तिसको किरणैं भी सूर्य ही दृष्टि आती हैं तैसे जिसको आत्माका साक्षात्कार हुआ है तिसको जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थयोगोपदेशवर्णनं नाम चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ११५.

महाकर्त्राद्युपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! महाकर्ता होहु अरु महाभोक्ता अरु त्यागी होहु सर्व शंकाको त्यागिकरि निरंतर धैर्य धारिकरि स्थित होहु. राम उवाच—हे भगवन्! महाकर्ता क्या कहिये महाभोक्ता अरु महात्यागी क्या कहिये सो कृपा करिके कहौ. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! तेरे प्रश्नऊपर एक आख्यान है सो श्रवण करु. एक समय सुमेरुपर्वतकी उत्तर दिशाके शिखरते सदाशिवजी आय प्राप्त भया सो कैसा है सदाशिव चंद्रमाको मस्तकविषे धारे है अरु गुणसंयुक्त अरु गौरी वाम अंगविषे धारे है. सुमेरुपर्वतके शिखरपर आनि स्थित भया तब भृंगीगण जो है सदाशिवका तिसने हाथ जोडकरि प्रश्न किया कैसा है. भृंगीगण महातेजवान् अरु आत्मजिज्ञासा जिसको उपजी है तिसने प्रश्न किया कि हे भगवन्! देवके देव! यह संसार मिथ्या भ्रम है तिसविषे मैं सत्यपदार्थ कोऊ नहीं देखता सदा चलरूप भासता है अरु जो सत्पदार्थ है तिसको मैं नहीं जानता मेरे ताप नष्ट नहीं भये मैं शांतिको नहीं प्राप्त भया ताते आपको दुःखी देखता हौं जिसकरि शांति प्राप्त होवै सो कृपाकरि कहौ अरु खेदते रहित होकरि चेष्टाविषे विचरौ सो खेदते रहित तब होता है जब कोऊ आसरा होता है अरु जेता कछु संसार है सो मिथ्या है मैं किसका

आसरा करौं ताते सोई मेरे ताईं कहौ जिसको आश्रय किये दुःख मेरे नष्ट होवैं ईश्वर उवाच—हे भृंगी ! तू महाकर्ता होहु अरु महाभोक्ता होहु अरु महात्यागी होहु सर्व शंकाको त्यागिकरि निरंतर धैर्यका आश्रय करिकै तेरे दुःख नष्ट होवैंगे. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! ऐसा जो है भृंगीगण जिसको सदाशिवने पुत्रकरि रक्खा है तिसने श्रवण करिकै प्रश्न किया. हे परमेश्वर ! महाकर्ता क्या कहिये महाभोक्ता महात्यागी क्या कहिये ? सो कृपाकरि ज्योंका त्यों मेरे ताईं कहौ. ईश्वर उवाच—हे पुत्र ! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है तिसका आश्रय करिकै विचरु जो दुःखते रहित होवै अरु इन तीनों वृत्तिकरि दुःख तेरे नष्ट हो जावैंगे जो कछु शुभ क्रिया आय प्राप्त होवै तिसको शंका त्यागके करै ऐसा पुरुष महाकर्ता है धर्म अधर्मक्रिया अनिच्छित आनि प्राप्त होवै तिसको रागद्वेषते रहित होकरि करै ऐसा पुरुष महाकर्ता है जो पुरुष मौनी निरहंकार निर्मान है मत्सरते रहित होकरि ऐसा पुरुष महाकर्ता है अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग न करै अरु जो नहीं प्राप्त हुआ तिसकी वांछा न करै ऐसा पुरुष महाकर्ता है अरु पुण्य पाप क्रिया जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै तिसको अहंकारते रहित होकरि करै पुण्यक्रिया करनेते आपको पुण्यवान् नहीं मानता अरु पाप कियेते पापी नहीं मानता सदा आपको अकर्ता जानता है ऐसा पुरुष महाकर्ता है अरु जो सर्वविषे विगतस्नेह है सत्यवत् स्थित है निरिच्छ वर्तता है कार्यविषे सो महाकर्ता है जो दुःखके प्राप्त हुएते शोक नहीं करता अरु सुखके प्राप्त हुएते हर्षवान् नहीं होता स्वाभाविक चित्तसमताको देखता है कदाचित् विषमताको प्राप्त नहीं होता जो सुखकी भिन्न भिन्न विषमता है तिसते रहित है सो पुरुष महाकर्ता है अरु जिस पुरुषने सुखदुःखका त्याग किया है जो सुखदुःखकी भावना नहीं फुरती यही त्याग है जो अपर कछु नहीं फुरता है ऐसा पुरुष महाकर्ता है. हे भृंगी ! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तुको रागद्वेषते रहित होकरि भोगता है सो महाभोक्ता है अरु जो बडा कष्ट आय प्राप्त होवै तिसविषे दोष नहीं रहता अरु बडे सुखकी प्राप्तिविषे हर्षवान् नहीं होता सो पुरुष महाभोक्ता है अरु जो

बड़े राज्यके सुख भोगनेविषे आपको सुखी नहीं मानता राज्यके अभाव होने अरु भिक्षा मांगनेविषे आपको दुःखी नहीं मानता सदा स्वरूपविषे स्थित है सो महाभोक्ता है अरु जो मान अहंकार अरु चिंतनाते रहित है केवल समताविषे स्थित है सो महाभोक्ता है अरु जो कोऊ कछु देवै तौ आपको लेनेवाला नहीं मानता अरु शुभ क्रियाविषे भोक्ता हुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता सो पुरुष महाभोक्ता है अरु जो मीठा खाटा तीक्ष्ण सलोना कटु यह रस प्राप्त होते हैं तिनके भोगनेविषे समचित्त रहता है अरु सम जानता है सो महाभोक्ता है जो रसवान् पदार्थ प्राप्त हुएते हर्षवान् नहीं होता अरु विरसके प्राप्त हुएते दोषवान् नहीं होता ज्योंका त्यों रहता है जैसा आय प्राप्त होवै भला बुरा तिसको दुःखते रहित होकरि भोगता है ऐसा पुरुष जो है सो महाभोक्ता है अरु जेती कछु क्रिया हैं शुभ अशुभ भाव अभाव तिसके सुखदुःखते चलायमान नहीं होता सो पुरुष महाभोक्ता है अरु जिसको मृत्युका भय नहीं अरु जीनेकी आस्था नहीं उदय अस्तविषे समान है सो महाभोक्ता है बडे सुखप्राप्तिविषे हर्षवान् नहीं होता अरु दुःखकी प्राप्तिविषे शोकवान् नहीं होता ज्योंका त्यों रहता है सो महाभोक्ता है जो कछु अनिच्छित आय प्राप्त होवै तिसको कर्ता हुआ अहंकारते रहित है सो पुरुष महाभोक्ता है जो पुरुष शत्रु मित्र सुहृदविषे समबुद्धि रहता है विषमताको कदाचित् नहीं प्राप्त होता सो पुरुष महाभोक्ता है जेता कछु शुभ अशुभ दुःख सुख आय प्राप्त होवै तिसको धारि लेता है कदाचित् विषमताको नहीं प्राप्त होता जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्राप्त होती हैं तिनको धारिकरि सम रहता है तैसे ज्ञानवान् शुभअशुभको धारिकरि सम रहता है जो संसार अरु देह इंद्रियां अरु अहंकारकी सत्ताको त्यागिकरि स्थित हुआ है अरु जानता है न मैं देह हौं न मेरा देह है इनका साक्षी हौं इस वृत्तिको धार रहै सो महात्यागी है अरु रागद्वेषते रहित होकरि जो सर्व चेष्टा करता है सो महात्यागी है अरु शुभ अशुभ प्राप्त हुएको अहंकारते रहित होकरि करता है सो महात्यागी है अरु जो मन इंद्रियां देहकरि इच्छाते रहित

हुआ सर्व चेष्टा भी करता है सो महात्यागी है अरु जो पुरुष समचित्त इंद्रियजित है अरु जो क्षमावान् है सो महात्यागी है. हे रामजी ! जिस पुरुषने धर्म अधर्मकी देह संसारकी सद मान मनन इत्यादिक कल्पनाका त्याग किया है सो महात्यागी है. हे रामजी ! इस प्रकार भृंगीगणको सदाशिवने उपदेश किया सो कैसा सदाशिव है खप्परको हाथविषे धारे अरु व्याघ्रांबरको लिये हुए मस्तकविषे चंद्रमाको धारे तिसने सुमेरुके शिखरपर उपदेश किया. हे रामजी ! तू भी इसी वृत्तिको धारिकरि विचरु तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैंगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे महाकर्त्राद्युपदेशवर्णनं नाम पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशोत्तरशततमः सर्गः ११६.

कलनानिषेधवर्णनम् ।

राम उवाच–हे मुनीश्वर ! जो तुमने उपदेश किया सो मैंने जाना है अरु तुमने आगे उपशम प्रकरणविषे उपदेश किया था कि आत्मा अनंत है अरु शुद्ध है तब मैंने प्रश्न किया था जो आत्मा अनंत है अरु शुद्ध है तौ यह कलना कैसे उपजी है जैसे समुद्र निर्मल है तिसविषे धूड कैसे होवै बहुरि तुमने कहा इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांतकालविषे कहैंगे सो मैं अब सिद्धांतका पात्र हौं. मेरे ताईं कहौ जैसे स्त्री भर्तासों प्रश्न करती है अरु भर्ता कृपा करिकै उपदेश करता है तैसे मैं तुम्हारी शरण हौं कृपा करिकै मुझको उत्तर कहौ जो आशा अरु तृष्णाके फांस मेरे टूटे हैं अरु आशारूपी जालते निकसा हौं अरु संशयरूपी धूड मेरे हृदयविषे उठी है तिसको वचनरूपी वर्षाकरि शांत करौ अरु संशयरूपी मेरे हृदयविषे अंधकार है वचनरूपी कीडाकरि तुम निवृत्त करौ तुम्हारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता. हे भगवन् ! अपने विचार ज्ञानकरि यह गुरुके उपदेश किये विना नहीं शोभता. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो पुरुष शांतिमान् अरु क्षमावान् अरु जितेंद्रिय है

अरु मनकी क्रिया संकल्पविकल्पको जीता है सो सिद्धांतका पात्र है. हे रामजी ! तू जब सिद्धांतका पात्र है ताते उपदेश करता हौं अरु जो पुरुष रागद्वेषसहित क्रियाविषे स्थित है अरु इंद्रियोंके सुखकरि जिसको आराम है सो सिद्धांतके वाक्य अहं ब्रह्म अस्मि सर्व ब्रह्म तिनको श्रवणकरि भोग- विषे स्थित होता है अरु अधोगतिको पाता है काहेते कि उसको निश्चय नहीं होता हृदय तिसका मलिन है ताते इंद्रियोंके सुखकरि आपको सुखी मानता है इसी नीच स्थानोंको प्राप्त होता है अरु जो पुरुष क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुआ है तिसको अहं ब्रह्म अस्मि सर्व ब्रह्मके श्रवणकरि शीघ्र ही भावनाते आत्मपदकी प्राप्ति होती है अरु तुमसारखे जो पुरुष हैं क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुए हैं तिनको स्वरूपकी प्राप्ति सुगम होती है अरु जिसका अंतःकरण मलिन है तिनको प्राप्त होना कठिन है. जैसे भूना बीज कलरकी पृथ्वीविषे बोइये तब उसकी अंगुरी नहीं होती तैसे इंद्रियारामी पुरुषको आत्माकी प्राप्ति नहीं होती अरु तुमसारखे जिनका हृदय शुद्ध है तिनको ज्ञानकी प्राप्ति होती है अरु इन वचनोंको पायकरि शोभते हैं जैसे वर्षाकालविषे धान पृथ्वीमें शोभा पाते हैं वर्षा करिकै तैसे सिद्धांत वचनोंको पायकरि ज्ञानरूपी दीपकसों प्रकाशते हैं अरु जो ज्ञान- वान् पुरुष ऊंची बाँहोंकरि कहते हैं अरु सर्वशास्त्र भी कहते हैं सो सर्व शास्त्रोंके सिद्धांतको अरु तिनके दृष्टांतको मैं जानता हौं ताते सर्व सिद्धांतोंका सार कहता हौं तू श्रवण कर कि तेरा स्वरूप है तिसको जानेगा. हे रामजी ! जिसको अभ्यास करिकै एक क्षण भी साक्षा- त्कार हुआ है सो बहुरि गर्भविषे नहीं आता अरु सत् असत्‌विषे भेद कछु नहीं उसके संवेदनविषे भेद है जैसे जाग्रत्‌का सूर्य अरु स्वप्नका सूर्य प्रकाश दोनोंका समान है जाग्रत्‌विषे जाग्रत सूर्यका प्रकाश अर्थां- कार होता है अरु स्वप्नविषे स्वप्नका सूर्य अर्थाकार होता है प्रकाश दोनोंका सम है अरु संवित् भिन्न है स्वप्नको मिथ्या जानता है अरु जाग्र- त्‌को सत्य जानता है संवेदनते भेद हुआ स्वरूपते भेद कछु न हुआ जैसे एक बड़ा पर्वत मन करिकै रचिये तौ संकल्पकरि देखता है अरु एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्षकरि देखता है तौ संवित् करिकै भेद हुआ स्वरूप

दोनोंका तुल्य है जैसे समुद्रविषे तरंग हैं स्वरूपविषे जलतरंगोंका भेद कछु नहीं जिसको जलका ज्ञान नहीं सो तरंग ही जानता है ताते संवित विषे भेद है तैसे स्वरूपविषे सत् असत् तुल्य हैं वास्तव कछु नहीं, केवल शांतरूप आत्मा है अरु शब्द अर्थ संवेदनविषे है शब्द कहिये नाम अर्थ कहिये नामी सो संवेदन फुरणेकरिकै है जब फुरणा नष्ट हो जावै तब सर्व अर्थ भी आत्मा है ऐसे भासैगा जगत्‌की सत्ता तबलग है जबलग आत्माका प्रमाद है अरु प्रमाद तबलग है जबलग अहंभाव है जब अहं-भाव नष्ट हो जावै तब केवल आत्मा शेष रहै सो आत्मा शुद्ध है विद्या अविद्याके कार्यते रहित है कदाचित् स्पर्श नहीं किया. हे रामजी ! अविद्याकी दो शक्ति हैं एक आवरण एक विक्षेप आवरण कहिये आत्माका न जानना विक्षेप कहिये अपर कछु जानना सो आत्मा सदा ज्ञानरूप है तिसको आवरण कदाचित् नहीं.आत्मा अद्वैत है तिसते इतर कछु नहीं बना इसीते आत्मा शुद्ध है केवल ज्ञानमात्र है. हे रामजी ! तिसविषे कलनारूपी धूड़ कहां होवै जो आत्ममात्र है चिन्मात्र जिसविषे अहंकार उत्थान नहीं है केवल निर्वाणपद है, जहां एक अरु द्वैत कहना भी नहीं केवल अपने आपविषे स्थित है. राम उवाच–हे भगवन् ! जो सर्व ब्रह्म है तो मन बुद्धि आदिक यह कौन हैं ? जिसकरि तुम यह शास्त्र उपदेश करते हौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द यह हैं परमार्थते कल्पना है नहीं यह मन बुद्धि आदिक कछु वस्तु नहीं ब्रह्म सत्ता ही अपने आपविषे स्थित है जैसे तरंग जलते इतर कछु वस्तु नहीं तैसे मनादिक हैं आत्मतत्त्व कैसा है नित्य है शुद्ध है सन्मात्र है, नाहीं की नाईं स्थित है. हे रामजी ! ऐसे आत्माविषे संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे होवै ? आत्मा ब्रह्म है जिसते इतर कछु नहीं सर्व अधिष्ठान है अरु अविनाशी है देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है इसीते ब्रह्म है. हे रामजी ! ऐसा जो अपना आप आत्मा है तिस-विषे स्थित होहु अरु यह जगत् जो दृष्टि आता है तौ सर्व चिदा-काश है इतर कछु नहीं जैसे स्वप्नविषे विश्व देखता है सो अनुभवमात्र है जैसे जाग्रत् विश्व आत्मरूप है ऐसा जो तेरा शुद्ध अरु नित्य उदित

अविनाशी रूप है तिसविषे जब स्थित होवैगा तब कलना जो तेरे ताईं भासती है सो नष्ट हो जावैगी. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! संसारका बीज अहंकार है जब अहंभाव होता है तब संसार होता है सो अहंकार कछु वस्तु नहीं भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है जैसे मूर्ख बालक परछाईंविषे पिशाच कलपता है सो पिशाच कछु वस्तु नहीं उसके भ्रमविषे होता है तैसे अहंकार कछु वस्तु नहीं स्वरूपके भ्रमविषे होता है. हे रामजी ! जो वास्तव कछु वस्तु न होवै तिसके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं, तेरेविषे अहंकार वास्तव नहीं तू केवल शांतरूप चेतनमात्र है तिसविषे अहंभाव होना उपाधि है तिसते सुमेरु पर्वत आदिक जगत् बनि जाता है सो संवेदनरूप है चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रयते फुरता है अरु विश्व कलपता है जैसे जेवरीके आश्रयते सर्प फुरता है तैसे चेतनके आश्रय विश्व अरु चित्त फुरते हैं सो आत्माते इतर नहीं अरु अहंकार हुएकी नाईं हुआ है जो मैं हौं ऐसा जो अहंभाव है सो दुःखकी खाण है सर्व आपदा अहंकारते होती हैं जब अहंकार नष्ट होवैगा तब सर्व दुःख नष्ट होवैंगे. हे रामजी ! जैसे सूर्यके आगे बादल होते हैं तौ प्रकाश नहीं होता जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाशवान् भासता है अरु सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसे आत्मारूपी सूर्यको अहंकाररूपी बादलका आवरण हुआ. अहंकार कहिये किसी मायाके गुणसाथ मिलिकरि कछु आपको मानना जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होवैगा तब आत्मारूपी सूर्यका प्रकाश होवैगा अरु ज्ञानवान्‌रूपी कमल तिस प्रकाशको पायकरि बड़े आनंदको प्राप्त होते हैं. हे रामजी ! ताते अहंकारके नाशका उपाय करौ जो तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावैं वह कवन पदार्थ है ? जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता जो अहंकारके नाशका उपाय करिये तौ नष्ट हो जाता है जिस प्रकार अहंकार नष्ट होवै सो श्रवण करु, सच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है तिसका वारंवार अभ्यास करि संतके संग जो कथा परस्पर चर्चा करनी तिसकरि अहंकार नष्ट हो जाता है जैसे पाणी भरणेकी जेवरीकरि पत्थरकी शिलाको घाँसि पड़

जाती है तैसे ब्रह्मविद्याका अभ्यासकरि अहंकार नष्ट होता है अरु शिलाके घसणेविषे कछु यत्न है अहंकारके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं. हे रामजी! सदा अनुभवरूप आत्मा है, तिसका विचार करौ कि, मैं कवन हौं अरु इंद्रियां क्या हैं गुण क्या है अरु संसार क्या है जो ऐसे विचारकरि इनका साक्षीभूत होहु कि मेरेविषे अहं त्वं कोऊ नहीं फुरैगी इसकरि अहंकारका नाश करौ अरु तू शुद्ध है मेरा भी आशीर्वाद है. जो तू सुखी होवै जब अहंकार नष्ट होवैगा तब कलना कोऊ नहीं फुरैगी केवल सुषुप्तिकी नाईं स्थित होवैगा. राम उवाच– हे भगवन्! जो अहंकार तुम्हारा नष्ट हुआ है तौ प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे देखते हैं अरु जो अहंकार नहीं तौ सर्व शास्त्र ब्रह्मविद्या कहांते उपजे हैं अरु उपदेश कैसे होता है? उपदेशविषे चारों सिद्ध होते हैं अंतःकरण जो प्रथम उपदेश करनेकी इच्छा होती है तब अहंकार सिद्ध होता है अरु जब स्मरण होता है जो उपदेश करौं तब चित्त भी चेत्यकरि सिद्ध होता है बहुरि यह उपदेश करिये यह नहीं करिये ऐसे संकल्प किये मनकी सिद्धता होती है बहुरि निश्चय किया यह उपदेश करिये तब बुद्धिकी सिद्धता होती है ताते चारों अंतःकरण सिद्ध होते हैं तुम कैसे कहते हौ जो अहंकार नष्ट हो जाता है अरु सर्व चेष्टा होती हैं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! आत्मस्वरूपविषे अहंकार आदिक अंतःकरण अरु इंद्रियां कल्पित हैं वास्तव कछु नहीं अरु शास्ता शास्त्र उपदेश भी कल्पना हैं आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है तिसविषे संवेदन करिकै अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं तिसके निवृत्त करणेको प्रवर्तते हैं जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तब भय करि दुःख पाता है जब किसीने कहा कि यह जेवरी है तू भय मत कर इसको भले प्रकार देख यह सर्प नहीं तिसके उपदेश करि वह भले प्रकार देखता है तब भय शोक तिसका निवृत्त हो जाता है जो भ्रमकरिकै उसको सर्पभान हुआ था सो भी मिथ्या है अरु उसको उपदेश करना जेवरीका सो भी मिथ्या है. काहेते कि जेवरी तो आगे सिद्ध है उपदेशकरि सिद्ध नहीं होती तैसे जेवरीकी नाईं आत्मा है तिसका निवृत्त जो चेतन लक्षण तिसको अहंभाव है तिस अहंकारके निवृत्त करनेको शास्त्र हुए हैं जो आत्मा-

रूपी जवरीके प्रमादकरि अहंकाररूपी सर्प फुरा है तिसके निवृत्त करनेको शास्त्रके उपदेश हुए हैं आत्माको जताय देते हैं. जब भले प्रकार जेवरीकी नाईं आत्माको जाना तब सर्पकी नाईं जो परिच्छिन्न अहंकार है सो नष्ट हो जाता है जैसे नेत्रविषे मैल होता है अरु अंजनके पावनेकरि नष्ट हो जाता है तब ज्योंका त्यों निर्मल नेत्र होते हैं तैसे अज्ञानरूपी जो मैल है सो गुरु शास्त्रके उपदेशरूपी सुरमेकरि नष्ट हो जाता है वास्तव न कोऊ अहंकार है न शास्त्र है काहेते जो आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है परंतु तौ भी गुरुशास्त्र करि जाना जाता है. हे रामजी ! ज्ञानवान्के साथ चारों अंतःकरण अरु इंद्रियां भी दृष्टि आते हैं सो तिनविषे सत्यता नहीं होती जैसे भूना बीज दृष्टि आता है परंतु उगनेकी सत्यता नहीं राखता जैसे जला वस्त्र होता है सो देखनेमात्र है सत्यता उसविषे कछु नहीं तैसे ज्ञानवान्को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता तिसकरि कष्ट नहीं पाता जैसे सूर्यकी किरणोंकरि मरुस्थलविषे जलाभास होता है तिसको देखिकरि जलपान करणेनिमित्त मृग दौडता है अरु दुःखी होता है तैसे दृश्यरूपी मरुस्थलविषे पदार्थरूपी जलाभास है तिसको देखकर अज्ञानरूपी मृग दौड़ते हैं अरु दुःख पाते हैं जब ज्ञानरूपी वर्षाकरि आत्मारूपी जल चढा तब चित्तरूपी मृग कहां दौडैं ? जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है अरु अनुभवरूपी जल चढता है तब चित्तरूपी मृग तिसविषे यत्नरूपी जो फुरणा था सो नष्ट हो जाता है. हे रामजी ! अहंकार अविचारते सिद्ध है विचारते क्षीण हो जाता है जैसे बर्फकी पुतली सूर्यकी किरणोंकरि क्षीण होती है जब अधिक तेज होता है तब जलरूप हो जाती है बर्फकी संज्ञा नहीं रहती तैसे अहंकाररूपी बर्फ विचाररूपी किरणोंकरि क्षीण हो जाता है जब दृढ विचार होता है तब अहंकारसंज्ञाहू नष्ट हो जाती है केवल आत्मा हो रहता है. राम उवाच—हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन् ! जिसका अहंकार नष्ट हुआ है तिसका लक्षण क्या है ? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो या संसार है तिसविषे पदार्थकी भावनाकरि नहीं गिरता अरु क्षमा शांति आदिक शुभ गुण तिसको

स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं जैसे समुद्रविषे नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होती हैं अरु क्रोध भी तिसका नष्ट हो जाता है देखने-मात्र भासता है तौ भी अर्थाकार नहीं होता जो विषमताकरिकै भिन्न भावना अंतरते नहीं फुरती केवल सत्तासमानविषे स्थित होता है जैसे शरत्कालका मेघ गर्जता है अरु वर्षाते रहित होता है तैसे इंद्रियोंकी चेष्टा अभिमानते रहित होकरि करता है जैसे वर्षा ऋतुके जानेकरि कुहिड नहीं रहती तैसे अभिमान चेष्टा तिसकी नष्ट हो जाती है अरु लोभ भी तिसके मनते जाता रहता है जैसे वनको अग्नि लगती है अरु पक्षी तिस वनको त्याग जाते हैं तैसे लोभरूपी मृग तिसको त्याग जाते हैं तिसके मनविषे कामना कोऊ नहीं रहती जैसे दिनविषे उलूक पिशाच नहीं विचरते जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है तहाँ संपूर्ण कामनारूपी तम नष्ट हो जाता है शांतरूप आत्माविषे स्थित रहता है जैसे पैंदोई दो पोटको ज्येष्ठ आषाढकी धूपविषे उठावता है अरु गरमी होती है थकता भी है तिसको डारिकरि वृक्षके नीचे सुखसों स्थित होता है, तैसे वासनारूपी पोट है अज्ञानरूपी धूप है तिसकरि दुःखी होता है ज्ञानरूपी बलकरि वासनारूपी पोटको डारिकै सुखसों स्थित होता है. हे रामजी ! भोगभावना तिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है बहुरि दुःख नहीं देती जैसे गरुडको देखकरि सर्प भागता है बहुरि निकट नहीं आता तैसे ज्ञानरूपी गरुडको देखिकरि भोगरूपी सर्प भागते हैं बहुरि निकट नहीं आते, आत्मपदको पायकरि शांतिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होते हैं भाव अभाव पदार्थ तिसको स्पर्श नहीं करते संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है सो ज्ञान समुझने मात्र है कछु यत्न नहीं संतपास जायकरि प्रश्न करना मैं कौन हौं, जगत् क्या है, परमात्मा क्या है अरु भोग क्या है ? इनको तरिकरि कैसे परमपदको प्राप्त होवै ? बहुरि जो ज्ञानवान् उपदेश करै तिसके अभ्यासकरि आत्मपदको प्राप्त होवैंगे अन्यथा न होवैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे कलनानिषेधवर्णनं नाम षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ११७.

इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिसप्रकार तुम्हारा बडा इक्ष्वाकु नामक राजा जीवन्मुक्त होकरि विचरा है तैसे तुम भी विचरौ तुम भी तिस कुलते उपजे हौ. हे रामजी ! इक्ष्वाकुराजा सूर्यवंशी होत भया है सो मनुका पुत्र अरु सूर्यका पौत्र सब राजाते श्रेष्ठ था जैसे पितरोंका राजा धर्म है अरु बर्फकी नाईं तिसका शीतल स्वभाव था जैसे सूर्यको देखिकरि मणिते तेज प्रगट होता है तैसे तिसको देखिकरि शत्रु तपाय-मान होवै ऐसा परंतप था. साधु अरु मित्र प्रजाको रमणीय भासे तिसको देखिकारि सब शांतिवान् होवै जैसे चंद्रमाको देखिकरि चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसे उसको देखिकरि प्रसन्न होवै अरु पापरूपी वृक्षोंके काटनेहारा कुहाडा अरु मित्रका सुखदायक जैसे मोरोंका मेघ सुखदायक है अरु सुंदर ऐसा जिसको देखिकरि लक्ष्मी स्थित हो-रही है दरिद्री कदाचित् न होवै तिसके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूरिरही थी, जैसे चंद्रमाकी चांदनीकरि रात्रि पूर्ण होती है ऐसा राजा भली प्रकार प्रजाकी पालना करत भया. एककाल तिसके मनविषे विचार उपजा कि जरा मरण आदिक संसारविषे बडा क्षोभ है इस संसारदुःखके तरणेका उपाय कौन है ऐसे विचारता था कि एक समय शंभु मुनि ब्रह्मलोकते आय तिसका भली प्रकार पूजन किया अरु कहत भया इक्ष्वाकुरुवाच–हे भगवन्! तुम्हारी कृपाका जो पराक्रम है सो मेरे हृदयविषे बैठिकरि प्रश्न करनेको प्रेरता है ताते मैं प्रश्न करता हौं. हे भगवन् ! मेरे हृदयविषे संसार फुरता है जैसे समुद्रको वडवाग्नि जलाता है तैसे मुझको संसार जलाता है ताते सोई उपाय कहौ जिसकरि मुझको शांति प्राप्त होवे. हे भगवन् ! यह संसार कहांते उपजा है अरु दृश्यका स्वरूप क्या है अरु कैसे निवृत्त होता है? जैसे जालसों पक्षी निकसि जाता है तैसे जन्म

मरण संसार महाजाल है तिसते निकसनेका उपाय मुझको कहौ जैसे वरुण सब स्थान समुद्रके जानता है तैसे तुम जगत्के सब व्यवहारको जानते हौ अरु संशयरूपी वृक्षके काटनेहारे तुम कुहाडे हौ अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्ता तुम सूर्य हौ तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं शांतिको प्राप्त होऊँगा. मनुरुवाच-हे साधो! मैं चिरकालपर्यंत जगत्विषे विचरता रहता हौं परंतु ऐसा प्रश्न किसीने नहीं किया तुझने परमसार प्रश्न किया है सर्व अनर्थके नाश करनेहारा प्रश्न है तेरी बुद्धि विवेककरि विकासमान हुई दृष्टि आती है. हे राजन्! जो कछु जगत् तुझको भासता है सो सब असत् है जैसे जेवरीविषे सर्प जैसे गंधर्वनगर जैसे मरुस्थलविषे जल जैसे सीपीविषे रूपा जैसे आकाशविषे नीलता दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है तैसे यह जगत् असत्यरूप है जैसे जलविषे चक्रतरंग असत्रूप हैं तैसे जगत् असत्रूप है अरु जो मन सहित षट् इंद्रियोंते अतीत है अरु शून्यभी नहीं सो सत् अविनाशी आत्मा कहाता है सो निर्मल परमब्रह्म सर्व ओरते पूर्ण अनंत है तिसविषे जगत् कल्पित है. हे राजन्! जैसे सर्व वृक्षोंविषे एक ही रस व्यापक है तैसे सर्व पदार्थोंविषे एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है जैसे समुद्र अचलविषे द्रवताकरिकै तरंग फुरते हैं तैसे परमात्माविषे जगत् फुरते हैं तिस महादर्पणविषे सर्ववस्तुजात प्रतिबिंब होते हैं जैसे समुद्रविषे कोऊ तरंगरूप कोऊ बुद्बुदे चक्रादिक होते हैं तैसे आत्माविषे जीवादिक आभास होते हैं प्रथम फुरणरूप होतेहैं पाछे कारणरूप होते हैं सो चित्तशक्ति अपने संकल्पते भूतादिक देह रचिकर तिसविषे स्वरूपकेप्रमादकरि आत्माभिमान करता है जैसे पुराणको अपनी क्रिया अपने बंधनके निमित्त होती है तैसे इसको अपना संकल्प अपने बंधनका कारण होता है. हे राजन्! जीवकलाको स्वरूपका अज्ञान हुआ है सो जैसे बालकको अपनी परछाईं यक्षरूप होकरि भय देती हैं तैसे यह नानाप्रकारके आरंभको प्राप्त हुआ है अकारण ही ब्रह्मशक्ति फुरणे करिकै कारण भावको प्राप्त हुआ है तिसकरि बंध अरु मोक्ष भासते हैं वास्तवते न बन्ध है न मोक्ष है निरामय ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है तिसविषे एक

अरु अनेक कहना कछु नहीं ताते बंधमोक्षकी कल्पनाको त्यागिकारि अपने स्वभावविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम सप्तदशोत्तरतमः सर्गः ॥११७॥

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ११८.

इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशवर्णनम् ।

मनुरुवाच—हे राजन्! जैसे द्रवताकरिकै जल ही तरंग भावको प्राप्त होता है तैसे चिन्मात्र ही संकल्पके फुरणेकारि जीव होता है सो जीव संसारविषे कर्मोंके वशते भ्रमता हुआ आपको कर्ता देखता है अरु सर्वात्मा परब्रह्म कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता जैसे सूर्यकरि सब चेष्टा होती है अरु सूर्य अकर्ता है तैसे आत्माकी शक्तिकारि जगत् चेष्टा करता है जैसे चुम्बक पत्थरके निकट लोहा चेष्टा करता है तैसे आत्माकी चेतनताकारि सब देहादिक चेष्टा करता है अरु आत्मा सदा अकर्ता है. जैसे जलबिषे तरंग फुरते हैं तैसे आत्माविषे देहादिक फुरते हैं जैसे स्वर्णविषे भूषणकल्पना होती है तैसे आत्माविषे मोहकरि दुःख सुख कल्पते हैं आत्माविषे कल्पना कछु नहीं शुद्ध आत्माविषे मूढने सुखदुःखकी कल्पना करी है अरु जो ज्ञानवान् हैं तिनको मन चित्त सुख दुःख सब आकाशरूप हैं वह देहते रहित केवल चिदाकाशभावको प्राप्त होते हैं जरामरणको नहीं प्राप्त होते सब कार्यको करते दृष्ट आते हैं अरु अंतरते सदा अकर्तारूप हैं जैसे जल अरु दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब पडता है परंतु स्पर्श नहीं करता तैसे ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्श नहीं करती शरीरके व्यवहारविषे भी सदा वह निर्मलभाव है. हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूप है परंतु भ्रमकरिकै चंचल भासता है जैसे जलकी चञ्चलताकरिकै पर्वतका प्रतिबिंब भी चञ्चल होता है तैसे देहादिककरि आत्मा चलता भासता है सो आत्मा नित्य शुद्ध अपने आपविषे स्थित है जैसे घटके नाश हुए घटत्वनाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुए आत्माका

नाश नहीं होता जैसे शुद्ध मणिविषे नाना प्रकारके प्रतिबिंब होते हैं तिनकरि रंजित नहीं होती तैसे आत्माविषे मन इंद्रियां देह दृष्टि आते हैं सो स्पर्श नहीं करते जैसे मिष्ट पदार्थविषे मिठाई एक ही व्यापी है तैसे सब पदार्थविषे एक आत्मसत्ता व्यापी है. हे राजन् ! आत्मा सदा अचलरूप है परंतु अज्ञानकरिकै चलरूप भासता है जैसे दौडते हुए बालकको सूर्य दौडता भासता है तैसे आत्मा देहके संगते अज्ञानकरि विकारवान् भासता है जैसे प्रतिबिंबका विकार आदर्शको नहीं स्पर्श करता तैसे देहका विकार आत्माको स्पर्श नहीं करता जैसे अग्निविषे स्वर्ण डारिये तब मैल दग्ध हो जाता है स्वर्णका नाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता सो आत्मा नित्य शुद्ध अवाक् अचिंत्यरूप है. हे राजन् ! चिंतवणेविषे नहीं आता परंतु चेतन वृत्तिकरि देखता है जैसे राहु अदृष्ट है परंतु चंद्रमाके संयोगकरि दृष्टि आता है तैसे आत्मा अदृष्ट है परंतु चेतनवृत्तिकरि जाना जाता है जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है तैसे निर्मल बुद्धिविषे आत्मा साक्षात् भासता है सो संकल्पते रहित अपने आपविषे स्थित है जब बुद्धि निर्मल होती है तब अपने आपविषे तिसको पाती है. हे राजन् ! शास्त्रोंकरि परमेश्वर नहीं पाया जाता अरु गुरुकरि भी नहीं पाया जाता जबलग अपनी बुद्धि निर्मल न होवै जब अपनी बुद्धि सत्पदविषे निर्मल होवै तब अपने आपकरि देखता है सो बुद्धि कैसे निर्मल होती है जब संसारकी सत्यता हृदयते दूर होवै अरु आत्माका अभ्यास होवै तब बुद्धि निर्मल होती है. हे राजन् ! सर्व भाव अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं सो असत् हैं केवल भ्रममात्र हैं तिनकी अवस्थाका त्याग करु जैसे कोऊ मार्गमें चलता है अरु मार्गविषे अनेक मिलते हैं परंतु तिनविषे रागद्वेष कछु नहीं होता तैसे देह इंद्रियांसाथ स्नेहते रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित हैं तिसीविषे देहादिक इन्द्रजालकी नाईं मिथ्या हैं तिनकी भावना दूरते त्यागिकरि नित्य आत्मा शीतल चित्तविषे स्थित होहु. हे राजन् ! अपना मित्र आपही है अरु शत्रु भी अपना आप ही है काहेते कि आत्माविषे अपरकी ठौर नहीं आत्माविषे आत्माका भाव है अपर

द्वैत कछु नहीं इस कारणते अपना आप ही शत्रु है आप ही अपना मित्र है जो दृश्य पदार्थका अनात्मधर्मविषयोंकी ओरसों खैंचिकारि चित्त को अपने आपविषे स्थित करता है सो अपना आप ही मित्र है अरु जो अनात्मधर्मविषे पदार्थकी ओर चित्तको लगाता है सो अपना आप ही शत्रु है अरु वास्तवते जेता कछु दृश्यजाल है सो भी आत्मारूप है आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं जैसे समुद्र जलते इतर कछु वस्तु नहीं जल ही जल है तैसे आत्माते इतर जगत् कछु वस्तु नहीं सबविषे अनुस्यूत एक आत्मसत्ता ही स्थित है जैसे अनेक घटके जलविषे एक ही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिंब होता है तैसे अनेक देहोंविषे एक ही आत्मा व्यापि रहा है सो न अस्त होता है न उदय होता है सदा एक रस अविनाशी पुरुष ज्योंका त्यों स्थित है तिसविषे अहंभावना करिकै संसार भासता है जैसे सीपी विषे रूपेकी बुद्धि होती है तैसे आत्माविषे अहंबुद्धि संसारका कारण है इस बुद्धिकारि सर्व दुःखका भागी होता है जैसे वर्षाकालकारि सब नदियां समुद्रविषे आय प्रवेश करती हैं तैसे अनात्म अभिमान करिकै सब आपदा आनि प्राप्त होती हैं वास्तवते चिन्मात्र अरु जीवविषे रंचक भी भेद नहीं एक ही रूप है ऐसी जो बुद्धि है सो बंधनते मुक्तिका कारण है आत्मा सर्वविषे अनुस्यूत व्यापा है,जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वठौरविषे होता है परंतु जहां शुद्ध जल है तहां भासता है तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है परंतु शुद्ध बुद्धिविषे भासता है जैसे तरंग बुद्बुदेविषे जल ही व्याप रहा है तैसे आत्मा अविनाशी दृश्य कलनाते रहित सर्वत्र व्यापा है जैसे स्वर्णविषे भूषण नहीं तैसे आत्माविषे जगत्का अभाव है. हे राजन् ! यह संसार आत्माविषे नहीं केवल आत्मा ही है जो एक वस्तु पात्रकी नाईं होती है तिसविषे दूसरी वस्तु होती है आत्मा तो अद्वैत है दूसरी वस्तु संसार कहां होवै अरु स्वर्णविषे भूषण जैसे चित्तकारि कल्पित हैं वास्तव कछु नहीं. तैसे आत्माविषे संसार अज्ञानकारि कल्पित है वास्तव कछु नहीं केवल चिदाकाश है जैसे नदियां अरु समुद्र नाममात्र हैं सो जल ही है तैसे केवल चिदाकाशविषे विश्व नाममात्र है अरु जेते आकार भासते हैं तिनका काल भक्षण करता है जैसे नदियोंको समुद्र भक्षण

करिकै अघाता नहीं तैसे पदार्थ समूहको काल भक्षण करता अघाता नहीं. हे राजन्! ऐसे पदार्थविषे अभिलाषा करनी क्या है कई कोटि सृष्टि तपती होती हैं तिनको काल भक्षण अबलग करता है कोऊ पदार्थ कालते मुक्त नहीं होता जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे कई उपजते हैं अरु नष्ट हो जाते हैं, तातें तू कालते अतीत पदकी भावना करु जो कालको भी भक्षण करै कैसे भावना करिये अरु कैसे भक्षण करिये सो श्रवण करु जैसे मंदराचलने अगस्त्यमुनिके आनेकी भावना करी है तैसे तू अपने स्वरूपकी भावना करु तब कालको भक्षण करैगा. जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रका भक्षण किया था तैसे आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्रको भक्षण करैगा. हे राजन्! जन्ममरणादिक जो विकार हैं सो भ्रमकरिकै हैं आत्माके प्रमादकरि भासते हैं जब आत्माको निश्चयकरि जानैगा तब विकार कोऊ न भासैगा काहेते कि अज्ञानकरि रचे हैं आकाशविषे कोऊ नहीं जैसे जेवरीविषे भ्रमसंयुक्त सर्प भासता है सो तबलग है जबलग जेवरीको नहीं जाना जब जेवरीको जानै तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है तैसे जन्म मरणआदिक विकार आत्माविषे तबलग भासते हैं जबलग आत्माको नहीं जाना जब आत्माको जानैगा तब सर्वविकार नष्ट हो जावैंगे. हे राजन्! ऐसा आत्मा विकारते रहित तेरा स्वरूप है तिसकी भावना करु जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं अरु आत्मपदको कहूँ खोजने नहीं जाना अरु किसी वस्तुको जायकरि ग्रहण नहीं करना कि यह आत्मा है अरु किसी कालकी अपेक्षा भी नहीं कि इसकालकरि पावैगा आत्मा तेरा अपना स्वरूप है अरु सर्वदा अनुभवरूप है तुझते इतर कछु वस्तु नहीं तू आपको ज्योंका त्यों जान आत्माके न जाननेकरि आपको दुःखी जानता है कि मैं मरौं दरिद्री हौं मैं दास हौं इत्यादिक दुःखे तबलग होते हैं जबलग आत्माको नहीं जाना जब आत्माको जानैगा तब आनंदरूप हो जावैगा जैसे किसी स्त्रीके गोदविषे पुत्रहोवै अरु स्वप्नविषे देखत भयी कि बालक मेरे पास नहीं तब बड़े दुःखको प्राप्त भयी अरु रुदन करने लगी जब स्वप्नते जागै तब देखै कि बालक मेरे गोदविषे है अरु एता दुःख मैं भ्रमकरिकै

पाया है बड़े आनंदको प्राप्त भयी अरु दुःख शोक नष्ट हो गया ? हे राजन् ! तिसी प्रकार आत्मा तेरा अपना आप है अरु सदा अनुभवरूप है तिसके प्रमादकरि तू आपको दुःखी जानता है जब अज्ञानरूपी निद्राते तू जागैगा तब आपको जानैगा अरु दुःख शोक तेरे नष्ट हो जावैंगे सो अज्ञानरूपी निद्रा क्या है श्रवण करु देह इंद्रियादिक जो दृश्य है तिनसाथ मिलिकरि आपको जानना कि मैं हौं यह अज्ञाननिद्रा है इसते रहित होकरि देख जो आनंदको प्राप्त होवे अरु जेते यह पदार्थ भासते हैं सो मिथ्या हैं जैसे बालक मृत्तिकाविषे राजा अरु सैन्य अरु हस्ती घोड़ा कल्पता है सो न कोऊ राजा है न सैन्य है न कोऊ हस्ती घोड़ा है एक मृत्तिका ही है तैसे चित्तरूपी बालकने आत्मरूपी मृत्तिकाविषे राजा अरु सैन्य आदिक संपूर्ण विश्व कल्पी है सो मिथ्या है. हे राजन् ! एक उपाय तेरेको कहता हौं सो करु जो दुःख तेरे नष्ट हो जावैं एक वस्तुका त्याग करु सो कौन है अहं अभिलाषसहित जो फुरना है तिसका त्याग करि जहां इच्छा है तहां विचरु, तेरेको दुःखका स्पर्श न होवैगा संकल्प ही उपाधि है अपर उपाधि कोऊ नहीं जैसे मणि तृणकरि आच्छादित होती है जब तृण दूर करिये तब मणि प्रगट हो आती है तैसे आत्मरूपी मणि वासनारूपी तृणकरि आच्छादित है जब वासनारूपी तृण दूर करिये तब आत्मरूपी मणि प्रगट हो आवै. हे राजन् ! जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिते रहित जो आत्मपद है जब तिसको प्राप्त होवैगा तब जानैगा कि मैं मुक्त हौं सो तेरा स्वरूप है तिस पदविषे स्थित होहु जो केवल आत्मरूप है अ अजन्मा है नित्य है अरु चेतनमात्र है सर्वका अपना आप है तिसके प्रमादकरि दुःख होता है जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने बनाते हैं हस्ती घोडा नाम कल्पते हैं अभिमान करते हैं कि मेरे हैं अरु तिनके नाश होनेकरि दुःखी होते हैं तैसे अज्ञानी जो है बालकरूप सो स्वरूपके प्रमादकरि अभिमान करता है यह मेरे हैं मैं इनका हौं तिनके नाश होनेकरि दुःखी होता है ऐसे नहीं जानता कि सत्का नाश नहीं होता असत्के नाश होनेकरि सत्का नाश मानता है जैसे घटके नाश होनेकरि घटाकाश नाश मानिये तैसे मूर्खताकरिकै दुःख पाता है. हे राजन् !

तू आपको आत्मा जान अरु आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रोंने कल्पी है जतानेके निमित्त नहीं तौ आत्मा अनिर्वाच्य पद है जिसविषे वाणीकी गम नहीं अरु इनहींकरि जानता है काहेते कि मनवाणीविषे भी आत्मसत्ता है तिसीकरि आत्मादिक संज्ञा सिद्ध होती हैं जैसे जेते कछु स्वप्नके पदार्थ हैं तिनविषे अनुभवसत्ता है तिसीकरि पदार्थ सिद्ध होते हैं तैसे जेती कछु अर्थसंज्ञा हैं सो सब आत्माकरि सिद्ध होती हैं ऐसा जो तेरा स्वरूप है तिसविषे स्थित होहु जो तेरे जरा मृतादिक दुःख नष्ट हो जावैं. हे राजन् ! जब निस्पंद हो करि देखैगा तब स्पंदविषे भी वही भासैगा स्पंद निस्पंद तुल्य होकरि भासैंगे जो समाधिविषे होवैगा अथवा ऐसे ही चेष्टा करैगा तौ भी तुल्य होवैगी न समाधिविषे शांति भासैगी न चेष्टाविषे दुःख भासैगा दोनोंविषे एकरस रहेगा विषमता कछु न भासैगी. हे राजन् ! जो कछु प्रकृत आचार आय प्राप्त होवै देना अथवा लेना यज्ञ दान आदिक क्रिया है तिसको मर्यादासहित अरु शास्त्रकी विधिसंयुक्त करु अरु निश्चय आत्मा स्वरूपविषे होवै जैसे नट स्वांगको धारि संपूर्ण चेष्टा करता है अरु निश्चय तिसविषे नटत्वहीको राखता है तैसे तुम सर्व चेष्टा करौ तिसके अभिमान अरु संकल्पते रहित होहु ग्रहण अथवा त्याग जो कछु स्वाभाविक आय प्राप्त होवै तिसविषे ज्योंके त्यों रहौ जब निर्विकल्प होकरि अपने स्वरूपको देखैगा तब उत्थान कालविषे भी तेरे ताईं आत्मा ही भासैगा जैसे जलके जान्नेते तरंग फेन बुद्बुदा सर्व जल ही भासते हैं तैसे जब तू आत्माको जानैगा तब तुझको संसार भी आत्मरूप भासैगा अरु जो आत्माको नहीं जानता तिसको जगत् ही दृष्टि आता है तिसकरि दुःख पाता है तातें तू अंतर्मुख होहु संकल्पको त्यागिकरि परम निर्वाण अच्युतपदविषे स्थित होहु

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नामाष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यत्तरशततमः सर्गः ११९.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम्।

मनुरुवाच-हे राजन्! यह जो संकल्प पुरुष है सो संकल्पकरिकै आप बँधता है अरु आप ही मुक्त होता है जब संकल्पकरि दृश्यकी भावना करता है तब जन्म मृत्युको पाता है अरु दुःखी होता है. आप ही संकल्प करता है आप ही दुःख बंधनको प्राप्त होता है जैसे घुराण कीट आप ही गुफा बनाती है अरु आप ही तिसको मूँदकरि फँसती है तैसे अपने संकल्पकरि आप ही दुःख पाता है. अरु जब संकल्पको अंतर्मुख करता है तब मुक्त होता है अरु मुक्ति ही मानता है ताते हे राजन्! संकल्पको त्यागिकरि आत्मा जो सर्वका अपना आप है तिसकी भावना करु जो तू सुखी होवै. हे राजन्! आत्माके प्रमादकरि देह आस्थाकी भावना हुई है तिसकरि दुःख पाता है ताते आत्मस्वरूपकी भावना करु कि तू आत्मा है चिद्रूप है. महाआश्चर्यमाया है जिसने संसारको मोह लिया है आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है अरु अंग अंग व्यापी है तिसको नहीं जानते यही आश्चर्य है. हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप है तिसविषे स्थित होहु अरु संसार आत्माके प्रमादकरि फुरणेते हुआ है सो सत् भी नहीं अरु असत् भी नहीं. जो आत्माते भिन्न करि देखिये तौ मिथ्या है ताते सत् नहीं अरु आत्मा विना दूसरा है नहीं सर्वात्मा है ताते असत् भी नहीं तू आत्माकी भावना करु जो कछु पदार्थ भासते हैं सो आत्माते भिन्न न जान सर्वात्मा ही है जो आत्मा विना अपर भावना है तिसका त्याग करु. हे राजन्! जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं सो जलते इतर नहीं जल ही ऐसे भासता है तैसे जगत् जो दृष्टि आता है सो आत्मा है ऐसे भासता है जैसे सूर्य अरु किरणोंविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं आत्मा ही जगत्रूप है अरु भिन्न भिन्न जो आकार भासते हैं सो चित्तशक्तिकरिकै हैं इतर नहीं आत्मसत्ता है जैसे लोहा तप्त हुआ वस्त्रादिकको जलाता है सो लोहेकी अपनी सत्ता नहीं अग्निकी है

तैसे चेतनकी सत्ता जगत्‌रूप होकरि स्थित भयी है अरु आत्मा सदा केवलरूप है जिसविषे प्रकाश अरु तम दोनों नहीं न सत् है न असत् है न कोऊ देश है न काल है न कोऊ पदार्थ है केवल चेतन मात्र गुणातीत है न कोऊ गुण है न माया है केवल शांतरूप आत्मा है. हे राजन्! न शास्त्रोंकरि पाता है न गुरुके वचनकरि पाता है न तपकरि पाता है केवल अपने आपकरि जाना जाता है शास्त्रादिक लखाय देते हैं परंतु इदंकरि नहीं जनाते जो द्रष्टा पुरुष अपने आपकरि जानता है जैसे सूर्यकी ज्योति नेत्रविषे है सोई सूर्यको देखती है तैसे आत्मा ही आत्माको देखता है अंतर्मुख होकरि संकल्पते रहित हुआ अपने आपको देखता है जब संकल्प बहिर्मुख होता है तब वही दृढ़ होकरि स्थित होता है बहुरि तिसकी भावना होती है जब संकल्परूप जगत् दृढ़ताकरि स्थित होता है तब दुःखदायी होता है. हे राजन्! अपर दुःखदायी तिसका कोऊ नहीं अपने ही संकल्पकरिकै असम्यक्‌दर्शी दुःखी होता है अरु सम्यक्‌दर्शीको जगत् दृष्टि भी आता है तौ भी दुःखदायी नहीं होता जैसे जेवरीविषे सर्पकी भावना होती है तब भयको प्राप्त होता है जब जेवरीके जाननेते सर्पभावना दूर भयी तब भय भी जाता रहता है तैसे जिस पुरुषको संसारकी भावना होती है सो दुःखदायी है ताते आत्माकी भावना करु जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावें. हे राजन्! तू सर्वदा आनंदरूप है अरु अद्वैत है तेरेविषे कल्पना कोऊ नहीं तू आत्मस्वरूप है अरु आत्मा षट्‌विकारते रहित है विकार मिथ्या देहके हैं आत्मा शुद्ध है आत्माके प्रमादकरिकै विकार भासते हैं जब तू आत्माको जानैगा तब विकार कोऊ न दृष्टि आवैगा काहेते कि आत्मा अद्वैत है. राजोवाच–हे भगवन्! तुम कहते हो आत्मा अद्वैत है जो इस प्रकार है तौ पर्वत आदिक विश्व कैसे भान होता है, पत्थररूप महाबडे आकार बनिकै कहांते उपजे हैं, इसका रूप क्या है? सो कृपा करिकै कहौ. मुनिरुवाच–हे राजन्! आत्माविषे संसार कोऊ नहीं सदा शांतरूप है अरु निराकार है तिसविषे स्पंद निस्पंद दोनों शक्ति हैं जब निस्पंदशक्ति होती है तब केवल

अद्वैत भासता है जब स्पंदशक्ति फुरती है तब जगत्‌के नाना प्रकारके आकार भासते हैं वास्तवते आत्मा ही है इतर कछु नहीं जैसे समुद्रविषे तरंग कछु अपर नहीं वहीरूप हैं पवनके संयोगते फुरते हैं तौ भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं तैसे फुरणशक्तिकरि अहंकार भिन्न भिन्न भासते हैं वास्तवते आत्मस्वरूप हैं इतर कछु नहीं, जैसे वटका बीज होता है अरु तिसविषे पत्र टास फूल फल अनेक दृष्टि आते हैं, तैसे आत्मसत्ताके नानाप्रकारके आकार धारे यद्यपि दृष्टि आते हैं तौ भी बना कछु नहीं केवल आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यों स्थित है अरु सूक्ष्मते भी अतिसूक्ष्म है अरु पवत आदिक जो विश्व भासता है सो आत्माका चमत्कार है जैसे स्वप्नविषे पर्वत वृक्षादिक नाना-प्रकारके आकार भान होते हैं तौ भी अनुभवरूप हैं तिसते इतर कछु नहीं तैसे जाग्रत् विश्व भी आत्मा अनुभवरूप है आत्माते इतर कछु नहीं. इक्ष्वाकुरुवाच–हे भगवन् ! जो आत्मा सूक्ष्म है तौ पर्वतादिक स्थूल असत्‌रूप सत् होकरि कैसे भासता है सो कृपा करिकै कहौ. मुनिरुवाच–हे राजन् ! आत्मा अनंतशक्ति है सो शक्ति आत्माते भिन्न नहीं वहीरूप है जसे सूर्यकी किरणें सूर्यते भिन्न नहीं तैसे आत्माकी शक्ति आत्माते भिन्न नहीं जैसे पवनविषे दो शक्ति हैं स्पंद अरु निस्पंद सो वहीरूप हैं. स्पंदशक्तिकरि प्रगट भासता है अरु निस्पंदकरि प्रगट नहीं भासता तैसे आत्माविषे स्पंद निस्पंद दो शक्ति हैं जब स्पंदशक्ति फुरती है तब अहंभाव प्रगट होता है जब अहंभाव हुआ तब चित्त उदय होता है अहं ही चित्त है जब चित्त हुआ तब आकाशकी भावनाते आकाश बन जाता है जब स्पर्शकी भावना हुई तब पवन उत्पन्न होता है जब रूपकी भावना करी तब अग्नि बन गयी जब रसकी भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ इसी प्रकार चित्तकी कल्पनाकरि तत्त्व उपजे हैं जब चारों तत्त्वका समष्टि भया तब एक अंड हुआ जब दृढ संकल्प किया तब स्वयम्भू मनु हुआ जब अंड फुले तब तीन लोक हुए स्वर्ग मध्य अरु पाताल सो तीनों लोक तीनों गुण राजस सात्त्विक तामस हुए बहुरि पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ सर्व

हुए. हे राजन् ! केवल संकल्पमात्र ही सब हुए हैं जब स्पंदशक्ति फुरती है तब इस प्रकार आत्माविषे भासते हैं परंतु बना कछु नहीं जैसे समुद्रविषे फेन बुदबुदे फुरते हैं सो जलरूप हैं जलते इतर कछु नहीं तैसे आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं अरु आदिमनु जो स्वयम्भू है तिसने संकल्पकरि आगे मन कल्पे हैं त्रिगुणमय सृष्टि इस प्रकार उत्पन्न होती है सो केवल संकल्पमात्र है जबलग चित्त है तबलग विश्व है. जब चित्त फुरनेते रहित हुआ तब निस्पंदशक्ति होती है जब निस्पंद हुई तब बहुरि जगत् नहीं दिखाई देता. हे राजन् ! यह विश्व मनके फुरणेविषे है अरु सत्यकी नाईं स्थित हुआ है सो श्रवण करु. सत् जो है सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाता है सो नहीं भासता अरु जो असत् है सो सत्यकी नाईं भासता है, सत् कैसे असत्की नाईं हुआ है अरु असत् कैसे सत्की नाईं हुआ है सो सुन. सत् जो है सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाता है सो नहीं भासता अरु असत् जो है परिच्छिन्नरूप देश काल वस्तु परिच्छेदसंयुक्त है सो सत्की नाईं हुआ है जहां देखिये तहां दृश्य ही गुणमय संसार भान होता है महाआश्चर्यरूप माया है जिसने सत्यको असत्यकी नाईं किया है अरु असत्को सत्की नाईं स्थित किया है सो चित्तके संबंधकरि संसार भासता है आत्माविषे संसार कोऊ नहीं. जब चित्तको स्थित करि देखैगा तब तेरे ताईं संसार न भासैगा जैसे गंभीर जल होता है तौ चलता नहीं भासता कि कहां जाता है तैसे गंभीर जो आत्मा है तिसविषे संसार नहीं जनाता कि कहां फुरता है अरु संसार भी आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं आत्मास्वरूप ही है जैसे अग्निके चिणगारे अग्निते भिन्न नहीं अरु जलके तरंग जलते भिन्न नहीं अरु मणिका प्रकाश मणिते भिन्न नहीं तैसे आत्माते संसार भिन्न नहीं केवल आत्मस्वरूप है ऐसे आत्माको जानिकरि शांतिवान् होहु जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, केवल शांत पद आत्मा है सो तेरा अपना आप है अपने स्वरूपको भूलिकै दुःखी हुआ है जब आत्माको जानैगा तब संसार भी आत्मस्वरूप भासैगा काहेते कि आत्मस्वरूप है आत्माते इतर वस्तु कछु नहीं ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है तिस-

विषे स्थित होहु. हे राजन्! यह सर्व जगत् चिदाकाशरूप है यही भावना दृढ करु ऐसी भावना जिसकी दृढ है अरु सब इच्छा शांत हो गयी हैं तिस पुरुषको दुःख कोऊ नहीं लगता उसने निरिच्छारूपी कवच पहिरा है. हे राजन्! अहं अर्थते रहित जो पुरुष है सर्व जिसको शून्य हो गया है निरालंबका आसरा किया है सो पुरुष मुक्तिरूप है. मनुरुवाच—हे राजन्! यह संसार आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं जैसे जल अरु तरंग भिन्न नहीं जैसे सूर्य अरु किरण भिन्न नहीं जैसे अग्नि अरु चिणगारे भिन्न नहीं तैसे आत्मा अरु संसार भिन्न नहीं आत्मास्वरूप ही है जैसे इंद्रियोंके विषय इंद्रियोंविषे रहते हैं तैसे आत्माविषे संसार है जैसे पवनविषे स्पंद निस्पंद शक्ति हैं सो पवनते भिन्न नहीं तैसे आत्माते भिन्न नहीं आत्मस्वरूप है. हे राजन्! विषयकी सत्यताको त्यागिकारि केवल आत्माकी भावना करु जो तेरे संशय मिटि जावें तू आत्मस्वरूप है अरु निर्गुण है तुझको गुणोंका स्पर्श नहीं होता तू सर्वते परे है जैसे आकाशविषे धूड अरु धुवाँ अरु मेघ बादल विकार भासते हैं आकाशको लेप कछु नहीं करते केवल आकाश अद्वैतरूप है तैसे ज्ञानवान् पुरुष जिसको आत्मज्ञान भया है तिसको सुख दुःख राजस तामस सात्त्विक गुण लेप नहीं करते तिनविषे दृष्टि भी आते हैं लोक दृश्य करि तौ भी अपनेविषे नहीं देखते जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग जलरूप होते हैं जैसे शुद्ध मणिविषे नील पीत आदिक प्रतिबिंब पडते हैं सो देखनेमात्र हैं मणिको स्पर्श नहीं करते तैसे जिस पुरुषके हृदयते वासना मल दूर भयी है तिसके शरीरको संबंधकारिकै राजस सात्त्विक तामस गुणोंके कार्य सुख दुःख देखनेमात्र होते हैं परंतु स्पर्श नहीं करते केवल सत्तासमान पदका निश्चय तिसविषे होता है अपर रंग उसको स्पर्श नहीं करता जैसे आकाशको धूडका लेप नहीं होता तैसे आत्माको गुणोंका संबंध नहीं होता जो पुरुष ऐसे जानता है तिसको ज्ञानी कहते हैं जब निस्पंद होता है तब आत्मा होता है जब स्पंद होता है तब संसारी होता है जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासती हैं जब चित्त फुरनेते रहित हुआ तब संसारका अत्यंत अभाव होता है प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता

जो पूर्व सृष्टि थी अब लीन होगयी है संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है ताते हे राजन्! वासनाको त्याग चित्तको स्थिर करु यह वासना ही मल है जब वासनाका त्याग हुआ तब केवल आकाशकी नाईं आपको स्वच्छ जानैगा सो आत्मा वाणीका विषय नहीं केवल आत्मत्वमात्र है अरु अपने आपविषे स्थित है सर्वदा उदयरूप है अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है भिन्न वस्तु कछु नहीं जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं तैसे आत्माते विश्व भिन्न नहीं आत्मरूप है द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी है सो अज्ञानकरिकै भासती है आत्मा सर्वदा एकरूप है अरु त्रिपुटीते रहित है फुरणेकरिकै आत्मा ही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित हुआ है जैसे स्वप्नविषे एक अनुभवरूप होता है अरु चेतनताकरिकै काल विषमता-रूप हो भासता है सो दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, तैसे आत्मा ही त्रिपुटीरूप भासता है ताते चित्तको स्थिर करि देख आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं अरु फुरणेविषे संसार है जब फुरणा मिटि गया तब संसार भी मिटि जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसंवादे सर्वब्रह्म-प्रतिपादनं नामैकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

विंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२०.

सप्तभूमिकाविभागवर्णनम्।

मनुरुवाच–सो फुरणा कैसे मिटता है अरु स्वरूपकी प्राप्ति कैसे होती है सो श्रवण करु सप्त भूमिका कहता हौं जब प्रथम जिज्ञासु होता है तब चाहता है जो संतजनका संग करना अरु ब्रह्म विद्या शास्त्रको देखना अरु श्रवण करना सो प्रथम भूमिका है भूमिका कहिये चित्तके ठहरावणेकी ठौर बहुरि जब संतोंके संग अरु शास्त्रोंकरि बुद्धि बढी तब संतों अरु शास्त्रोंके कहनेको विचारत भया कि मैं कवन हौं अरु संसार क्या है सो यह दूसरी भूमिका है तिसके उपरांत विचारा कि मैं आत्मा हौं अरु संसार मिथ्या है मेरेविषे संसार कोऊ नहीं ऐसी भावना वारंवार करनी सो

तीसरी भूमिका है जब आत्मभावकी दृढताते आत्माका साक्षात्कार हुआ तब बासना संपूर्ण मिटि जाती हैं जब स्वरूपते उतरिकरि देखता है तब संसार भासता है परंतु स्वप्नकी नाईं जानता है ताते वासना नहीं फुरती ऐसे जो अवलोकन हैं सो चतुर्थ भूमिका है जब अवलोकन हुआ तब आनंद प्रगट होता है ऐसे महा आनंदका प्रगट होना अरु जब आनंद प्रगट हुआ अरु तिसविषे स्थित होना अपने बलते सुषुप्तवत् इसका नाम पंचम भूमिका है अरु तुरीयापद छठी भूमिका है चित्तके दृढ़ताका नाम तुरिया है जब तुरियातीत पदको प्राप्त होता है तब परम निर्वाण होता है, तिसको सप्तम भूमिका कहते हैं तिस परमनिर्वाण-पदकी जीवन्मुक्तिको गम नहीं. काहेते कि तुरियातीत पद है तिसको वाणीकरि कहि नहीं सकता प्रथम तीन भूमिका जो कहीहैं सो जाग्रत् अवस्था है तिसविषे श्रवण मनन निदिध्यासन करता है अरु संसारकी सत्ता भी दूर नहीं होती इसीते जाग्रत् अवस्था कही है अरु चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है संसारकी सत्ता नहीं होती अरु पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है काहेते जो आनंदघनविषे स्थित होता है अरु छठी भूमिका तुरीयापद है जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है केवल ब्रह्म ही प्रकाशता है अरु निर्वाणपदविषे चित्तका लय हो जाता है सो तुरीयापदविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं अरु सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है सो परमनिर्वाण पद है तुरीयाविषे ब्रह्माकारवृत्ति रहती है अरु ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है जहां वाणीकी गम नहीं तहां चित्त नष्ट हो जाता है केवल आत्मत्वमात्र है जहाँ चेतनतामात्र है तहां अपना अहंभाव होना भी नहीं शांत अरु परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है सो तेरा स्वरूप है सर्व विश्व वहीरूप है इतर कछु नहीं जैसे स्वर्ण ही भूषण है अरु स्वर्णविषे भूषण कल्पता है अरु भूषण भी परिणामकरि होता है आत्मा सदा अच्युतरूप है कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त भया केवल एकरस है तिसविषे चित्त फुरणेते विश्व कल्पी है विकारसंयुक्त भासता है तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, केवल अपने आपविषे स्थित है. हे राजन् ! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप हैं, तिसविषे स्थित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे निरहं-

कार हुआ विचरु अरु अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्यागकरि केवल आत्मरूप हो रहु.मनुरुवाच-हे राजन्! सर्व चिदाकाशसत्ता आदि मध्य अंतते रहित अनाभास ज्योंका त्यों स्थित है अरु आगे भी वही स्थित रहैगा तिसविषे नऊर्ध्व है न अधः है न तम है न प्रकाश है न तिसते इतर है सर्व की सत्ता है सो चिन्मात्र परमसारहैसो आप ही संकल्पकरि चेतनता भया तब जगत् हुआ अरु क्योंकरि हुआ क्या रूप है सो श्रवण कर. हे राजन्! यह विश्व आत्माते भिन्न कछु नहीं आत्मस्वरूप ही है जैसे जलविषे तरंग हैं अरु मिर्चविषे तीक्ष्णता है खांडविषे मधुरता है अग्निविषे उष्णता है अरु बर्फविषे शीतलता है सूर्यविषे प्रकाश है तैसे आत्माविषे विश्व है सो आत्मस्वरूप है जैसे आकाशविषे शून्यता है जैसे वायु विषे स्पंद है तैसे आत्माविषे विश्व है सो आत्मस्वरूप है इतर कछु नहीं. हे राजन्! जो आत्मस्वरूप है तौ शोक अरु मोह किसका करता है अभिमानते रहित होकरि विचरु जैसे नीतिका प्रवाह आनि प्राप्त होवै तिसविषे विचरु जैसी काष्ठकी पुतली यंत्रीके तागेकरि अनिच्छित चेष्टा करती है तैसे नीतिरूपी तागेसों अभिमानते रहित होकरि विचरु कि न मैं कछु करता हौं न करावता हौं किसीविषे राग द्वेष न करना. जैसे शिला ऊपर मूर्ति लिखी होती है तिसको न किसीका राग है न द्वेष है तैसे शिलाकी मूर्तिकी नाईं विचरु आत्माते इतर कछु फुरै नहीं ऐसा निरहंकार होहु, भावै व्यवहारी गृहस्थ होहु, भावै संन्यासी होहु, भावै देहधारी, भावै देहत्यागी होहु, भावै विक्षेपी होहु, भावै ध्यानी होहु तेरे ताईं दुःख कोऊ न होवैगा ज्योंका त्यों ही रहैगा फुरणा ही संसार है फुरणेते रहित असंसार है जब फुरता है तब संसारी होता है जब फुरणा मिटि जावै तब केवल आकाशरूप भासता है. हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है आत्मा अपने आपविषे स्थित है जो सर्वात्मा ही है तोशोक अरु मोह किसका करि? हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है अरु विश्व आत्माका चमत्कार है अरु नाना विकार जन्ममरणते आदि जो भासते हैं सोआत्मा के अज्ञानकरिकै भासते हैं जब आत्माका ज्ञान हुआ तब आत्मरूप ही एकरस विषमता कछु न भासैगी जैसे जलके न जाननेकरि तरंग

बुद्बुदेका ज्ञान होता है जब जलको जाना तब तरंग बुद्बुदेकी विषमता कछु नहीं सर्व जलरूप है तैसे आत्माके अज्ञानकरि विकार भासते हैं जब आत्माका ज्ञान हुआ तब एकरस सर्वात्मा ही भासता है अरु संवेदनकरिकै आकार भासते हैं संवेदन कहिये अहंकारवासनाका संबंध अहंकार चित्त दोनों पर्याय हैं. हे राजन्! अहंकारसाथ इसका होना दुःखदायी है केवल चिन्मात्रविषे अहंभाव मिथ्या है जबलग संवेदन दृश्यकी ओर फ़ुरती है तबलग दृश्यका अंत नहीं आता अरु नानाप्रकारके विकार भासते हैं जब संवेदन आत्माधिष्ठानकी ओर आता है तब आत्मा शुद्ध अपना आप होकरि भासता है अरु संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है आभासके आश्रय विश्व कल्पी है अरु आत्मा ज्योंका त्यों है फ़ुरणेविषे भी अफ़ुरणेविषे भी परंतु फ़ुरणेविषे विषमता भासती है अफ़ुरणे-विषे ज्योंका त्यों भासता है जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है जब जेवरीका ज्ञान भया तब सर्पकी विषमता जाती रहती है जेवरी ज्योंकी त्यों भासती है सो सर्प भासने कालविषे भी जेवरी ज्योंकी त्यों थी जेवरीविषे कछु हुआ नहीं जानने न जाननेविषे एक समान है तैसे आत्मा भी फ़ुरणेकालविषे जगत् भासता है फ़ुरणेके निवृत्त हुए आत्मा ही भासता है आत्मा दोनों कालविषे एक समान है जैसे सूर्यके किरणैं सूर्यते भिन्न नहीं अरु अग्निते उष्णता भिन्न नहीं तैसे आत्माते विश्व भिन्न नहीं आत्मा ही स्वरूप है. हे राजन्! अहंकारको त्यागिकरि सत्ता समान अपने स्वरूपविषे स्थित होहु तब तेरे सर्व दुःख निवृत्त हो जावैं एक कवच तेरे ताईं कहता हौं तिसको धारिकरि विचरु यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी वर्षा होवै तौ भी छेदको न प्राप्त होवै सो श्रवण करु जो कछु देखता सुनता है सो सर्व ब्रह्म जान, वारंवार यही भावना करु जो ब्रह्मते इतर कछु न भासै जब ऐसी भावना दृढ करै तब शस्त्र कोऊ छेद न सकैगा यह ब्रह्मभावना ही कवच है जब इसको तू धारैगा तब सुखी होवैगा. वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार वसिष्ठजीने रामजीको मनु अरु इक्ष्वाकुका संवाद सुनाया तब सायंकाल हुआ सूर्य अस्त भया अरु संपूर्ण सभा स्नानको उठे वसिष्ठजी भी उठे बहुरि सूर्यकी किरणों साथ आय प्राप्त भये.

मनुरुवाच-हे राजन्! जिसका कारण ही मिथ्या है तौ तिसका कार्य कैसे सत् होवै यह आभास जो संवेदन है सो विश्वका कारण है जो आभास मिथ्या है तौ विश्व कैसे सत्य होवै जो विश्व ही असत् है तौ भय किसका करता है अरु शोक किसका करता है हे राजन्! न कोऊ जन्मता है न कोऊ मरता है न सुख है न दुःख है ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है तिसविषे संवेदन विश्व कल्पी है ताते संवेदन त्याग करु कि न मैं हौं न यह है जब तेरे ताईं ऐसा निश्चय दृढ होवैगा तब पाछे आत्मा ही शेष रहैगा अरु अहंकार निवृत्त हो जावैगा काहेते कि आत्माके अज्ञानते हुआ है आत्मज्ञानते नष्ट हो जाता है.हे राजन्! जो वस्तु भ्रमकरिकै सिद्ध होवै अरु सत् दृष्टि आवै तिसको विचारिये, जो विचार कियेते रहै तौ सत्य जानिये अरु आत्मा जानिये अरु जो विचार कियेते नष्ट हो जावै तिसको मिथ्या जानिये जैसे हीरा भी श्वेत है अरु बर्फका मणका भी श्वेत होता है एक समान दोनों भासते हैं तिनकी परीक्षाके लिये सूर्यके सन्मुख दोनों राखिये जो धूपकरि गलि जावै सो झूठा जानिये अरु ज्योंका त्यों रहै तिसको सत् जानिये तैसे विचाररूपी सूर्यके सन्मुख करिये तौ अहंकार बर्फकी नाईं नष्ट हो जाता है काहेते कि अहंकार अनात्म अभिमानविषे होता है सो तुच्छ है सर्वव्यापी नहीं अरु इन्द्रियोंकी क्रिया अपनेविषे मानता है जो परधर्म अपनेविषे कल्पता है सो तुच्छ है अरु आपको भिन्न जानता है आपते अपर पदार्थ भिन्न जानता है ताते विचार कियेते बर्फके हीरेकी नाईं मिथ्या होता है अविचार सिद्ध है जब विचार किया तब नष्ट हो जाता है अरु आत्मा सर्वका साक्षी ज्योंका त्यों रहता है. अहंकारका भी अरु इन्द्रियोंका भी साक्षी है अरु सर्वव्यापी है. हे राजन्! जो सत् वस्तु है तिसकी भावना करु अरु सम्यक्‌दर्शी होहु सम्यक्‌दर्शीको दुःख कोऊ नहीं जैसे जेवरी मार्गविषे पडी है तिसको जेवरी जानिये तौ दुःख कोऊ नहीं अरु जो सर्प जानिये तौ भयमान होता है ताते सम्यक्‌दर्शी होहु असम्यक्‌दर्शी मत होहु. हे राजन्! जो कछु दृश्य पदार्थ हैं सो सुखदायी नहीं दुःखदायी हैं जबलग इनका संयोग है तबलग सुख भासता है जब वियोग हुआ तब दुःखको प्राप्त करते हैं

ताते तू उदासीन होहु किसी दृश्य पदार्थको सुखदायी न जान अरु दुःखदायी भी न जान सुख अरु दुःख दोनों मिथ्या हैं इन विषे आस्था मत करु अहंकारते रहित जो तेरा स्वरूप है तिसविषे स्थित होहु जब अहंकार नष्ट होवैगा तब आपको जन्म मरण विकारोंते रहित आत्मा जानैगा कि मैं निरहंकार हौं अरु ब्रह्म हौं चिन्मात्र हौं ऐसे अहंभावते रहित होना अपना होना भी न रहैगा केवल चिन्मात्र रहैगा आनंदरूप होवैगा अरु शांतरूप रागद्वेषके क्षोभते रहित होवैगा जब ऐसा आपको जाना तब शोक किसका करैगा ? हे राजन् ! इस दृश्यको त्यागिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु अरु इस मेरे उपदेशको विचार कि मैं सत्य कहता हौं अथवा असत्य कहता हौं अरु विचारते जो संसार सत्य होवै तौ संसारकी भावना करु अरु जो आत्मा सत्य होवै तौ आत्माकी भावना करु. हे राजन् ! तू सम्यक्दर्शी होहु सत्को सत जान अरु असत्को असत जान अरु जो असम्यक्दर्शी है सो सत्को असत्य मानता है अरु असत्यको सत्य मानता है असत् वस्तु तौ स्थिर नहीं रहती ऐसे न जाननेकारि अज्ञानी दुःख पावता है जैसे कोऊ पुरुष कुटीको रचिकारि चिंतवने लगा कि आकाशकी मैं रक्षा करी है जब कुटी नष्ट भयी तब शोक करता है कि आकाश नष्ट हो गया काहेते कि आकाशको कुटीके आश्रय जानता था तैसे अज्ञानी पुरुष आत्माको देहके आश्रय जानकारि देहके नष्ट हुए आत्माका नाश मानता है अरु दुःखी होता है जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं सो भूषणोंके नष्ट हुए मूर्ख स्वर्णको नष्ट मानता है तैसे अज्ञानी देहके नष्ट हुए आपको नष्ट जानता है अरु जिसको स्वर्णका ज्ञान है सो भूषणोंके नाशते भी स्वर्णको देखता है अरु भूषण संज्ञाकल्पित जानता है तैसे जो ज्ञानवान् है सो आत्माको अविनाशी जानता है अरु देह इंद्रियोंको असत जानता है. हे राजन् ! तू देह इंद्रियोंके अभिमानते रहित होहु जब अभिमानते रहित इंद्रियोंकी चेष्टा करैगा तब शुभ अशुभ क्रिया बांधि न सकैगी अरु जो अभिमान सहित करैगा तब शुभ अशुभ फलको भोगैगा. हे राजन् ! जो मूर्ख अज्ञानी है सो ऐसी क्रियाका आरंभ करता है जिसका कल्पपर्यंत

नाश न होवै अरु देह इंद्रियोंके अभिमानका प्रतिबिंब आपविषे मानते हैं मैं कर्ता हौं भोक्ता हौं ऐसे माननेकरि अनेक जन्म पाते हैं तिनके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता अरु जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं सो आपको देह इंद्रियां गुणते रहित जानते हैं, तिनके कर्म संचित अरु क्रियमाण नष्ट हो जाते हैं संचित कर्म वृक्षकी नाईं हैं अरु क्रियमाण फूल फलकी नाईं हैं जैसे रुईसों लपेटकरि अग्निको लगायेते वृक्ष फूल फल सूखे तृणवत् दग्ध होते हैं तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि संचित अरु क्रियमाण कर्म दग्ध हो जाते हैं ताते हे राजन्! जो कछु चेष्टा फुरणे वासनाते रहित होकरि करैगा तिसविषे बंधन कोऊ नहीं. जैसे बालकके अंग स्वाभाविक भली बुरी प्रकार हिलते हैं परंतु उसके हृदयविषे अभिमान फुरता नहीं ताते उसको बंधन नहीं करता तैसे तू भी इच्छाते रहित होकरि चेष्टा करु तब तेरे ताईं बंधन कोऊ न होवैगा यद्यपि सब चेष्टा तेरेविषे भासैगी तौ भी वासनाते रहित होवैगा बहुरि अपर जन्म न पावैगा जैसे भूना बीज देखनेमात्र होता है अरु उगता नहीं तैसे तेरेविषे सर्व क्रिया दृष्टि आवैंगी परंतु जन्मका कारण न होवैगा पुण्यक्रियाका फल सुख न भोगैगा अरु पाप क्रियाकरि दुःख न भोगैगा तेरे ताईं पापपुण्यका स्पर्श न होवैगा जैसे जलविषे कमल स्थित होता है अरु जल तिसको स्पर्श नहीं करता तैसे पापपुण्यका स्पर्श तेरे ताईं न होवैगा ताते अभिलाषते रहित होकरि जो कछु अपना प्रकृत आचार है सो करु. हे राजन्! जैसे आकाशविषे जलसाथ पूर्ण मेघ भासते हैं परंतु आकाशको लेप नहीं करते तैसे तुझको कोऊ क्रिया बंधन न करैगी जैसे जो विषको खानेवाला है तिसको विष नहीं मारि सकता, तैसे ज्ञानीको क्रिया नहीं बाँधि सकती, ज्ञानवान् क्रिया करनेविषे भी आपको अकर्ता जानता है अरु अज्ञानी न करनेविषे भी अभिमानकरि कर्ता होता है जो देह इंद्रियोंके न करते आपको कर्ता मानता है अरु जो देह इंद्रियोंकरि करता है तिसके अभिमानते रहित है सो करणेविषे भी अकर्ता है अरु जो पुरुष कर्मते इंद्रियोंका संयम करि बैठता है अरु मनविषे विषयके भोगकी तृष्णा राखता है अंतःकरण जिसका रागद्वेष-

कारि मूढ है बड़ी क्रियाको उठावता है अरु दुःखी होता है सो मिथ्या-
चारी है जो पुरुष मनकारि इंद्रियोंके रागद्वेषते रहित है अरु कर्म इंद्रि-
योंकरि चेष्टा करता है सो विशेष है अपने जाणेविषे कछु नहीं करता
मोक्षको पाता है. हे राजन्! अज्ञानरूप वासनाते रहित होकरि विचरु
ऐसे होकारि विचरैगा तब आपको ज्योंका त्यों आत्मा जानैगा अरु सदा
उदयरूप सर्वका प्रकाशक आपको जानैगा जन्ममरण बंधमुक्त विकारते
रहित ज्योंका त्यों आत्मा भासैगा. हे राजन्! तिस पदको पायकारि
शांतिमान् होवैगा अरु अपर सर्व कला अभ्यास विशेष विना नष्ट होती हैं
जैसे रस विना वृक्ष होता है यद्यपि फैलाववाला होता है तौ भी उगता नहीं
अरु ज्ञानकला अभ्यास विना नहीं उपजी है उपजती हुई नाश नहीं होती
जैसे धान बोते हैं अरु दिन दिन प्रति बढने लगते हैं. तैसे ज्ञानकला प्राप्त
हुई दिन दिन प्रति बढती है. हे राजन्! ज्ञान उपजे हुए ऐसे जानता है
कि मैं न मरता हौं न जन्मता हौं निरहंकार निष्किंचनरूप हौं सर्वका
प्रकाशक हौं अजर हौं अमर हौं.हे राजन्!ऐसी ज्ञानकलाको पायकारि मोह-
को नहीं प्राप्त होता जैसे दूधते दही हुआ बहुरि दूध नहीं होता तैसे ज्ञान
प्राप्त हुए मोहको नहीं प्राप्त होता जैसे दूधको मथिकारि घृत काढ़ि लिया,
बहुरि नहीं मिलता तैसे जिसको ज्ञानकला उदय हुए बहुरि मोहका स्पर्श
नहीं होता.हे राजन्!पुरुष प्रयत्न यही है कि अपने स्वरूपविषे स्थित होना
अरु अपर उपायका त्याग करना जिस पुरुषको आत्माकी भावना हुई
है सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त भया है अरु जिसको संसारकी भावना
है सो संसारी जरा मृत्यु दुःखको प्राप्त होता है.मनुरुवाच–हे राजन्!बड़ा
आश्चर्य है जो शुद्ध आत्मा चिन्मात्रविषे मायाकरिकै नाना प्रकारके देह
इंद्रियां दृश्य भास आयी हैं. हे राजन्! दृश्यका कारण अज्ञान है जिस
आत्माके अज्ञानकारि दृश्य भासता है तिसीकेज्ञानकरि लीन हो जाता है
ताते इस संवेदनको त्यागिकारि आत्माकी भावना करु यह मैं हौं यह मेरे
हैं सो मिथ्या ही फुरते हैं.हे राजन्!प्रथम जो कारणरूपते एक जीव उपजा
है तिस आदि जीवते अनेक जीवगण होते भये हैं जैसे अग्निके चिणगारे
निकसते हैं तैसे तिस जीवने आगे अनेकरूप धारेहैं कोऊ गंधर्व कोऊ विद्या-

घर कोऊ मनुष्य कोऊ राक्षस इत्यादिक बहुरि जैसे जैसे संकल्प होते गये हैं तैसे रूप होते गये वास्तवते क्या है जैसे जलविषे तरंग स्वरूपके प्रमादकारि अनेकभावको प्राप्त होते हैं अपने संकल्प आपहीको बंधनरूप होते गये हैं ताते संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है. हे राजन्! इस भावनाको त्यागिकारि आत्मपदकी शरणको प्राप्त होहु जो आत्मा अनंत है कोऊ विश्वभान अपर प्रकारकी होती है जैसे समुद्र सम है तिसविषे कोऊ आवर्त्त उठते हैं कोऊ बुद्बुदे उठते हैं सो जलते भिन्न नहीं तैसे आत्माविषे अनेक प्रकारकी विश्व फुरती है सो आत्माते भिन्न कछु नहीं आत्मस्वरूप ही है ताते आत्माकी भावना करु कहूँ ब्रह्म सत् संकल्प होकरि फुरता है तहां जानता है मैं ब्रह्म हौं अरु शुद्धरूप हौं सदा मुक्त हौं मैं इस संसारसमुद्रके पारको प्राप्त भया हौं अरु जहां चेतनताशक्ति है तहां आपको जीता मानता है अरु दुःखी भी जानता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सप्तभूमिकाविभागवर्णनं नाम विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२१.
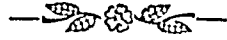
जीवबन्धमुक्तिवर्णनम्।

मनुरुवाच–हे राजन्! सो अब जीवका लक्षण श्रवण करु. अंतःकरण साथ मिलिकारि भोगको वासना करनी अरु सदा विषयकी तृष्णा करनी सो जीवात्मा कहिये अरु जहां वासना क्षय हुई है अरु शुद्ध आत्माविषे आत्मप्रत्यय है तहां जीवसंज्ञा नष्ट हो जाती है केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है. हे राजन्! जब चेतन अंतःकरणसाथ मिलिकारि बहिर्मुख फुरता है तब संसारी हुआ जरामरणकरिकै दुःखी होता है जहां चेतनशक्ति अंतर्मुख होती है तब जन्ममरणकी भावनाको त्यागि कारि स्वरूपकी भावना करता है सर्वदुःखकी निवृत्ति होती है जब इसकी भावना स्वरूपकी ओर लगती है तब दुःख कोऊ नहीं रहता जब स्वरूपका प्रमाद भया तब दुःख पाता है जब स्वरूपका ज्ञान हुआ तब आनंद रूप मुक्त होता है.

हे राजन्! संसाररूपी कूपकी टिंड नहीं होना जब टिंड रस्सीसाथ बंधता है कबहूँ ऊर्ध्वको जाता है कबहूँ अधःको जाता है जब रस्सी टूटि पड़ती है तब न ऊर्ध्वको जाता है न अधःको जाता है दुःख पाता है सो कूप क्या है अरु अधः क्या है ऊर्ध्व क्या है सो श्रवण करु. हे राजन्! संसाररूपी कूप है स्वर्गलोक ऊर्ध्व अरु पाताल नरक अधः है पुण्यकर्मकारि स्वर्गको जाता है पापकर्मकारि नरकको जाता है सो आशारूपी रसडीसाथ बांधा हुआ जन्ममरणरूपी चक्रविषे फिरता है स्वर्गनरकके फेरनेका कारण आशा है जब आशा निवृत्त होती है तब न कोऊ नरक है न स्वर्ग है जबलग देहविषे अभिमान है तबलग नीचते नीचगतिको प्राप्त होता है जैसे पत्थरकी शिला समुद्रविषे डारिये तौ नीचेते नीचे चली जाती है तैसे नीच स्थानोंको देखिकरि देहाभिमानी नीचेको चला जाता है अरु जब इंद्रियादिकका अभिमान त्याग किया तब जैसे क्षीरसमुद्रते निकसिकरि चन्द्रमा ऊर्ध्वते ऊर्ध्वको चला जाता है तैसे ऊर्ध्वको जाता है. हे राजन्! जब आत्माकी भावना करैगा तब आत्मा ही होवैगा ताते आशारूपी फांसी तोड़िकरि शांतपदको प्राप्त होहु. आत्मा चिंतामणिकी नाईं है जैसी भावना करिये तैसी सिद्धि होवै जब तू आत्मभावना करैगा तब संपूर्ण विश्व अपनेविषे देखैगा जैसे पर्वत शिला पत्थर सर्व अपनेविषे देखता है तैसे तू सर्व आत्माविषे जानैगा. हे राजन्! जेती कछु दृष्टि हैं सो सर्व आत्माके आश्रय हैं शास्त्र अरु शास्त्रदृष्टि सब आत्माके आश्रय हैं राजा आत्माके आश्रय हैं सो सर्व सत्य है आत्मा चिंतामणि कल्पवृक्ष है जैसी कोऊ भावना करता है तैसी सिद्धि होती है. हे राजन्! फुरणेविषे यह दृष्टि सर्व सत्य है जब फुरणा नष्ट भया तब न कोऊ शास्त्र है न कोऊ दृष्टि है केवल अद्वैत आत्मा है तब निषेध किसका करिये अरु अंगीकार किसका करिये जो पुरुष अहंकारते रहित हुआ है सो सर्व शास्त्रदृष्टिऊपर विराजता है सर्व आत्मा होता है जैन उसीको जिन कहते हैं कालवाले उसीको काल कहते हैं सर्व आश्रय आत्मा है जो पुरुष देहाभिमानी है सो मूर्ख है स्वरूपके अज्ञानकारि अधः ऊर्ध्व लोकको गमन आगमन करताहै अरु

पशु पक्षी स्थावर जंगम योनिको पाता है अरु आशारूपी फांसीसाथ बांधा हुआ दुःखको प्राप्त होता है अरु जो पुरुष सम्यक्दर्शी हैं शुद्ध चेष्टा जिसकी है तिसको विकार कोऊ दृष्टि नहीं आता है आकाशकी नाईं सदा निर्मल भासता है अरु संपूर्ण विश्व तिसको आत्मस्वरूप भासता है अरु जेती कछु चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इंद्रादिक करते हैं तिसका कर्ता भी आपको जानता है तिसको सर्व दुःखका अंत होता है दुःखते रहित आत्म-पदको प्राप्त होता है अरु सर्व सुखकी सीमा तिसको प्राप्त होती हैं. हे राजन्! जब ऐसे सुखको तू प्राप्त होवैगा तब तृष्णा तेरे ताईं कोऊ न रहैगी जैसे नदी तबलग चलती है जबलग समुद्रको नहीं प्राप्त भयी जब समुद्रको प्राप्त भयी तब चलनेते रहित होती है तैसे जब तू आत्मपदको प्राप्त होवैगा तब इच्छा तेरे ताईं कोऊ न रहैगी. हे राजन्! तू अहं-कारका त्याग कर अथवा ऐसे जान कि सर्व मैं ही हौं अरु जरा मरण आदिक दुःख तबलग हैं जबलग आत्मबोध नहीं प्राप्त भया जब आत्म बोध भया तब दुःख कोऊ नहीं रहता अरु दोनों ही दुःखभारी हैं जन्म अरु मृत्युसों मिटि जाते हैं. इंद्रके वज्रसमान भी दुःख होवै तौ भी ज्ञानवान्को स्पर्श नहीं करता. हे राजन्! जैसे बूटा होता है जब तिसको फल पडता है तब सूखकरि गिरता है तिसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है तब मन बुद्धि अहंकार बूटेकी नाईं गिर पड़ते हैं जबलग मनकी चपलता है तबलग दुःख पाता है जब मनकी चपलता निवृत्त भयी तब क्षोभ कोऊ नहीं रहता शांतपदको प्राप्त होता है अरु शांति तब होती है जब प्रकृतिका वियोग होता है अरु प्रकृतिके संयो-गते संसारी होता है अरु दुःख पाता है ताते प्रकृति कहिये अहंकार तिसका त्याग करु अहंकारते रहित होकरि चेष्टा करु जब तू अहंकार-रहित हुआ तब तिस पदको प्राप्त होवैगा जो न जड है न चेतन है न शून्य है न अशून्य है न केवल है न अकेवल है न आत्मा कहिये न अनात्मा कहिये न एक कहिये न दो कहिये जेते कछु नाम हैं सो प्रतियोगीसाथ मिले हुए हैं प्रतियोगी हुआ सो द्वैत हुआ अरु आत्मा अद्वैतमात्र है जिसविषे वाणीकी गम नहीं जो अवाच्य पद है तिसको

कैसे कहिये जेती कछु नामसंज्ञा है सो उपदेशमात्र है आत्मा अनिर्वाच्य पद है ताते संकल्पका त्याग करु अरु आत्माकी भावना करु जब आत्मभावना करैगा तब केवल आत्मा ही प्रकाशैगा जैसे फूलका अंग सुगंधते रहित कोऊ नहीं तैसे आत्माते इतर कछु नहीं. हे राजन् ! जब अहंकारका त्याग करैगा तब अपने आपकरि शोभायमान होवैगा आकाशकी नाई निर्मल आत्माविषे स्थित होवैगा अहंकारको त्यागिकरि तिस पदको प्राप्त होवैगा. जहां शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थ नहीं प्राप्त होते अरु संपूर्ण इंद्रियोंके रस तहां लीन हो जाते हैं अरु सर्व दुःख तहां नष्ट हो जाते हैं केवल मोक्षपदको प्राप्त होवैगा. हे राजन् ! मोक्ष किसी देशविषे नहीं जो तहां जायकरि पावैगा अरु मोक्ष किसी कालविषे नहीं जो अमुक काल आवैगा तब मुक्त होवैगा अरु मोक्ष कोऊ पदार्थ नहीं जो तिसको ग्रहण करैगा. हे राजन् ! प्रकृत जो है अहंकार तिसीते मोक्ष होना है जब अहंकारका तू त्याग करै तब ही मोक्ष है जब इस अनात्म अभिमानको त्यागैगा तब अपनेआपकरि शोभायमान होवैगा जैसे धूम्रते रहित अग्नि प्रकाशमान होता है तैसे अहंकारते रहित तू प्रकाशैगा जैसे बडे पर्वतके ऊपर तालाब निर्मल अरु गम्भीर शोभता है तैसे तू शोभैगा. हे राजन् ! तू अपने स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जीवबन्धमुक्तिवर्णनं नाम एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२२.
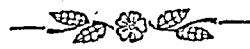
मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिवर्णनम् ।

मनुरुवाच–हे राजन् ! तू आत्मारामी होहु अरु सिद्ध होहु रागद्वेषते रहित नित्य अंतर्मुख होहु. हे राजन् ! जब तू आत्मारामी हुआ तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावैगी अरु अंतर शीतल सोम चन्द्रमा पूर्णवत् हो जावैगा ऐसा होकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरु अरु किसी फलकी वांछा न करु जो पुरुष वांछाते रहित होकरि कर्म करता

है सो सदा अकर्त्ता है अरु महा शोभा पाता है. हे राजन् ! ऐसी अवस्थाविषे स्थित होकरि भोजन आवे तिसका भक्षण करु अरु जो अनिच्छित वस्त्र आवै तिसको पहिरु जहां नींद आवै तहां शयन करु अरु रागद्वेषते रहित होहु जब तू ऐसा होवैगा तब तू शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थते उल्लंघित वर्तैगा जो ऐसा पुरुष है सो परमरसको पायकरि मतवाला होता है तिसको संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती. हे राजन् ! ज्ञानवान् काशीविषे देह त्यागै अथवा चंडालके गृहविषे जहां त्यागै तहां मुक्ति है वह सदा आत्मस्वरूपविषे स्थित है अरु वर्त्तमान कालविषे देहको नहीं त्यागता. काहेते कि जिस कालविषे उसको ज्ञान हुआ है तिसी कालविषे देहका अभाव भया है ज्ञानकरि देह दग्ध हो जाता है. हे राजन् ! ज्ञानवान् सदा मुक्तिरूप है न किसीकी स्तुति करता है न निंदा करता है. काहेते कि चित्तकी कलना तिसकी मिटि गयी है. यद्यपि रागद्वेष ज्ञानवान्विषे दृष्टि भी आता है अरु हँसता रोता भी दृष्टि आता है परंतु अंतःकरण अपने जाननेकरि न राग है न द्वेष है न हँसता है न रोता है ज्योंका त्यों है जैसे आकाश शून्यरूप है अरु मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं परंतु आकाशको लेप नहीं करते तैसे ज्ञानवान्को कोई क्रिया बंधन नहीं करती अज्ञानी जानते हैं कि ज्ञानवान् क्रिया करता है. हे राजन् ! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करनेको योग्य है अरु पूजने योग्य है जिस स्थानमें ज्ञानवान् बैठता है तिस स्थानको भी नमस्कार है जिससाथ बोलता है तिसको भी नमस्कार है जिस ऊपर ज्ञानवान् दृष्टि करता है तिसको भी नमस्कार है सो सबका आश्रयभूत है. हे राजन् ! जैसा ज्ञानवान्की दृष्टिते आनंद मिलता है सो तपकरिकै नहीं मिलता दानकरि नहीं मिलता अरु यज्ञ कर्मोंकरि भी नहीं मिलता, ऐसी दृष्टि किसीकरि नहीं पाती जैसी संतकी दृष्टि है ऐसे आनंदको पाता है जिस पदको वाणीकी गम नहीं अरु जो पुरुष संतकी दृष्टिको पायकरि कैसा होता है जिसते लोक दुःख नहीं पाते अरु लोकते वह दुःख नहीं पाता न किसीका भय करता है न किसीका हर्ष करता है. हे राजन् ! सिद्धि पानेका सुख अल्प है, क्या है जो

उडनेकी सिद्धि पाई तौ पक्षी अनेक उडते फिरते हैं इसकरि आत्मज्ञान तौ नहीं पाता अरु आत्मज्ञान विना शांति नहीं होती जब आत्मज्ञान प्राप्त हुआ तब जरा मृत्यु आदिक दुःखते मुक्त होता है दुःख इसविषे कोऊ नहीं रहता जैसे सिंह पिंजरेते छुटा बहुरि पिंजरेते बंधनविषे नहीं पड़ता तैसे वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेविषे नहीं फँसता. हे राजन्! ताते तू आत्माकी भावना कर जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं अज्ञानकरिकै तेरे ताईं दुःख भासते हैं अज्ञानते रहित तू सदा आनंदरूप है आत्मा अनुभवरूप है तिस अनुभवरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु, जब तू आत्माविषे स्थित होवैगा तब चेष्टा तेरेविषे दृष्ट भी आवैगी परंतु स्पर्श न करैगी जैसी शुद्ध मणिके निकट जैसा रंग राखिये श्वेत रक्त पीत श्याम तिसके प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तौ भी रंग कोऊ स्पर्श नहीं करता उसविषे कल्पित जैसे भासते हैं तैसे तू प्रकृत आचारको अंगीकार करता हुआ तेरे तांई पाप पुण्यका स्पर्श न होवैगा. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार मनु उपदेश करिकै तूष्णीं हो गया, तब राजाने भले प्रकार मनुका पूजन किया बहुरि मनु भी आकाशको उड़ि ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त भया अरु राजा इक्ष्वाकु राज्य करने लगा. हे रामजी ! जैसे राजा इक्ष्वाकुने जीवन्मुक्त होकरि राज्य किया है, तैसे तू भी इस दृष्टिको आश्रय करिकै विचरु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मन्विक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिवर्णनं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२३.

ज्ञानिलक्षणविचारवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! तुमने कहा जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञानको पायकरि राज्यचेष्टा करत भया है तैसे तू करु. तिसविषे मेरा प्रश्न है जो अपूर्व अतिशय होवै तिसका पाना विशेष है अरु जो पूर्व कईने पाया है तिसका पाना अपूर्व अतिशय नहीं ताते मेरे ताईं सो कहौ जो अपूर्व

अतिशय सर्वते विशेष है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! ज्ञानवान् सदा शांतरूप है अरु रागद्वेषते रहित है अरु अपूर्व अतिशयको पाता है जेता कछु अपर अतिशय है सो पूर्व अतिशय है अरु ज्ञानवान् अपूर्व अतिशयको पाता है सो ज्ञानीते अन्य कोऊ नहीं पाता आत्मज्ञानको ज्ञानी ही पाता है सो ज्ञान एक ही है. हे रामजी! जो दूसरा नहीं पाता तौ अपूर्व अतिशय क्यों हुआ? हे रामजी! अपूर्व अतिशयको पायकरि ज्ञानवान् प्रकृत आचार सर्व चेष्टा भी करता है तौ भी निश्चय सर्वदा आत्माविषे रखता है. राम उवाच-हे भगवन्! ज्ञानवान् ऐसा जो सर्व चेष्टा करता है अज्ञानीकी नाईं तौ उसको किन लक्षणोंकरि तत्त्ववेत्ता जानिये. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! एक स्वसंवेद लक्षण है अरु एक परसंवेद लक्षण है स्वसंवेद कहिये जो आप ही आपको जानता है अपर नहीं जानता परसंवेद कहिये जिसको अपर भी जानते हैं. हे रामजी! परसंवेदलक्षण है सो मैं कहौं हौं जो तप दान यज्ञ व्रत करने सो परसंवेद है अरु दुःखसुखकी प्राप्तिविषे धैर्यकरि रहना सो समान साधुके लक्षण हैं अरु महाकर्त्ता महाभोक्ता महात्यागी क्षमा दया यह लक्षण साधुके हैं ज्ञानवान्के नहीं अरु जेती कछु अणिमाते आदि सिद्धि हैं उड़ना छुपि जावना यह भी समान लक्षण हैं परंतु यह स्वाभाविक तिसविषे आनि फुरते हैं सो अपरकरि भी जाने जाते हैं अरु जो ज्ञानीके लक्षण हैं सो स्वसंवेद्य है अपर कोऊ इसतें इतर उसके शिरविषे सींग नहीं जो तिसकरि जानिये जैसे अपर व्यवहार हैं तैसे सिद्धि ज्ञानीको समान है यह भी ज्ञानवान्का लक्षण नहीं अरु पुण्यपापादिक क्रिया परसंवेदन हैं सो मायाके कल्पे हैं ज्ञानीके नहीं जेते कछु लक्षण देखनेविषे आवैंगे सो मिथ्या हैं मायाके कल्पे हैं अरु स्वसंवेद्य हैं-ज्ञानीका लक्षण जो सर्वदा आत्माविषे स्थित है अरु अपने आपकरि संतुष्ट है न किसीका हर्ष है न शोक है अरु देहके जीवित मृत्युविषे समान है अरु काम क्रोध लोभ मोह सर्वको जानता है इसका लक्षण इंद्रियोंका विषय नहीं. काहेते कि अनिर्वाच्यपदको प्राप्त भया है. हे रामजी! जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसका चित्त स्वाभाविक

विषयते विरस होता है अरु इंद्रियजित् होता है भोगकी इच्छा तिसकी निवृत्त हो जाती है स्वाभाविक ही तिसके विषय निवृत्त होते हैं.

इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ज्ञानिलक्षणविचारवर्णनं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२४.

कर्माकर्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मायाजालका काटना महाकठिन है यह आदिकलना जीवको भयी है जो कोऊ इसविषे सत्यबुद्धि करता है सो पखेरूकी नाईं जालविषे फँसा हुआ निकस नहीं सकता है, तैसे अनात्म अभिमानते निकस नहीं सकता है. हे रामजी ! बहुरि मेरे वचन सुन. जो मेरे वचन तुझको प्रियतम लगते हैं जैसे मेघका शब्द मोरको प्रियतम लगता है अरु मैं भी तेरे हितके निमित्त कहना हौं उपदेश करता हौं अरु ऐसा गुरु रघुकुलका कोऊ नहीं हुआ जो शिष्यका संशय निवृत्त करै. हे रामजी ! मेरा शिष्य भी ऐसा कोऊ नहीं हुआ जो मेरे उपदेशकरि न जागा होवै सब जागे हुए हैं इसनिमित्त मैं तप ध्यान आदिकको भी त्यागिकरि तेरे ताईं जगावौंगा. तातें मैं तुझको उपदेश करता हौं श्रवण करु. हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो अहंभाव हुआ है जो कछु अहंकारकरि भासता है सो मिथ्या है इसविषे सत्य कछु नहीं अरु जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है सो सत्य है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता अरु जो जो वस्तु फुरणेकरि उपजी हैं सो सर्व नाशवंत हैं यह बात बालक भी जानते हैं जो सत्य है सो असत्य नहीं होता अरु जो वस्तु असत्य है सो सत्य नहीं होती जैसे रेतते घृत निकसना असत्य है कदाचित् नहीं निकसता जैसे दर्दुरको निकास चूर्ण भी करिये एक दर्दुरके लाख कणका करिये अथवा शिलाऊपर घसाइये जब तिस ऊपर वर्षा हुई तब सर्व कणके दर्दुर हो जाते हैं. हे रामजी ! सो दर्दुर तब उत्पन्न हुए जब उनविषे

सत्यता थी ताते सत्यका नाश कदाचित् नहीं होता अरु असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता. हे रामजी ! सत्य जो ब्रह्म है तिसकी भावना कर जो ब्रह्मकी भावना करता है सो ब्रह्म ही होता है, जैसे घृत विषे घृत एक हो जाता है अरु दूधविषे दूध मिलता है जलविषे जल मिलि जाता है तैसे यह जीव भावना करिकै चिद्घन ब्रह्मसाथ एक हो जाता है जीवसंज्ञा इसकी निवृत्त हो जाती है जैसे अमृतके पान कियेते अमर होता है तैसे ब्रह्मकी भावना करणेते ब्रह्म होता है अरु जो अनात्माकी भावना करता है तौ पराधीन होकरि दुःख पाता है जैसे विषके पान कियेते अवश्य मरता है तैसे अनात्माकी भावनाते अवश्य दुःख पाता है तिसका नाश होता है ताते आत्मभाव करु. हे रामजी ! जो वस्तु संकल्पकरि उदय होती है तिसका रहना भी थोड़ा काल होता है जो चल वस्तु है सो अवश्य नाश होती है यह दृश्य आत्माविषे भ्रमकरिकै सिद्ध है जैसे मृगतृष्णाका जल अरु सीपीविषे रूपा भ्रमकरिकै सिद्ध है अरु आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि सिद्ध है वास्तव नहीं तैसे अहंकार देह इंद्रियोंकरि सुख भासता है सो सब मिथ्या है ताते दृश्यकी भावना त्यागिकरि अपने अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु जब आत्माविषे स्थित होवैगा तब मोहको प्राप्त न होवैगा जैसे पारसके स्पर्शकरि तांबा स्वर्ण हुआ बहुरि तांबा नहीं होता तैसे तू जब आत्मपदको जानैगा तब बहुरि मोहको प्राप्त न होवैगा कि मैं हौं यह मेरा है अहं त्वं भाव तेरा निवृत्त हो जावैगा यह भावना न रहैगी. राम उवाच–हे भगवन् ! मच्छर अरु जुँआदिक जो प्रस्वेदते उत्पन्न होते हैं सो सब कर्म करिकै उत्पन्न होते हैं देवता मनुष्यादिक जो उत्पन्न होते हैं सो कर्मोंकरि यह सब उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मों बिना भी कछु होते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! आदि परआत्माते जब उत्पत्ति भयी है सो चार प्रकारके जीव हैं एक कर्मोंकरि उत्पन्न हुए हैं एक कर्मों बिना हुए हैं एक आगे होने हैं एक अब भी उत्पन्न होते हैं. राम उवाच–हे संशयरूपी हृदयके अंधकार निवृत्त करणेहारे सूर्य ! अरु संशयरूपी बादलोंके निवृत्तिके पवन ! कृपा क-

रिके कहो जो कर्मोंविना कैसे उत्पन्न होते हैं अरु कर्मोंकरि कैसे उत्पन्न होते हैं कैसे कैसे हुए हैं कैसे होते हैं अरु कैसे आगे होने हैं ? सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! आत्मा चिदाकाश है अपने आपविषे स्थित है जैसे अग्नि अपनी उष्णताविषे स्थित है तैसे आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है अनंत है अरु अविनाशी है तिसविषे फुरणाशक्ति स्वाभाविक स्थित है जैसे पवनविषे स्पंदशक्ति स्वाभाविक है जैसे फूलविषे सुगंध स्वाभाविक रहती है तैसे आत्माविषे फुरणाशक्ति है. हे रामजी ! फुरणाशक्ति जैसे आद्य फुरी है तिस शब्दकी अपेक्षाकरि तब आकाश हुआ जब स्पर्शकी अपेक्षा करी तब पवन प्रगट भया इसी प्रकार पंचतन्मात्रा हो आयीं सो शुद्ध संवित्विषे जो आदि फुरणा हुआ प्रथम अंतवाहक शरीर हुए तिनका निश्चय आत्माविषे रहा कि हम आत्मा हैं संपूर्ण विश्व हमारा संकल्प है. हे रामजी ! कई इस प्रकार उत्पन्न होकरि अंतवाहकते बहुरि विदेहमुक्तिको प्राप्त भये जैसे जलसों बर्फ होकरि सूर्यके तेजते शीघ्र ही जल हो जाती है तैसे शीघ्र ही विदेहमुक्त हुए अरु कई अंतवाहक शरीरविषे स्थित भये उनका निश्चय आत्माविषे रहा अरु कई अंतवाहकते अधिभूतक हो गये जबलग अंतवाहकविषे स्मरण रहा तबलग अंतवाहक रहे जब स्वरूपका प्रमाद भया अरु संकल्पकरि जो भूत रचे थे तिनविषे दृढ़ निश्चय भया अरु जानत भये कि यह हम हैं तब अधिभूतक हो गये जैसे ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करने लगे उसके निश्चयविषे हो जावैं कि मेरा यही कर्म है अरु जैसे शीतलकरिकै जलते बर्फ हो जाती है तैसे संवित्विषे दृढ संकल्प हुआ तब आपको अधिभूतक जानत भया. हे रामजी ! आदि परमात्माते जो फुरे हैं सो कर्म विना उत्पन्न हुए हैं तिनका कर्म कोऊ नहीं जो अंतवाहकविषे रहें तिनकी ईश्वरसंज्ञा भयी बहुरि उनके संकल्पकरि जीव उपजे तिनका कारण ईश्वर हुआ अरु आगे जीवकलनाकरि उनका फुरणा कर्म हुए आगे जैसे कर्म करते हैं संकल्पकरि तैसे शरीर धारते हैं. हे रामजी ! आत्माते जो जीव उपजे हैं सो आदि अकारण होते हैं जो आज उपजे हैं तौ भी अरु चिर-

काल उपजे हैं तौ भी वह पाछे कारणभावको कर्मके वशते प्राप्त हुए हैं. हे रामजी ! जो आदि फुरणा हुआ है अरु स्वरूपविषे जिनका दृढ निश्चय रहा तिनकी संज्ञा पुण्य है अरु जो स्वरूपको विस्मरण करि अधिभूतकविषे निश्चय करत भये तिनकी धन संज्ञा है. हे रामजी ! पुण्यते धन होना सुगम है अरु धनते पुण्य होना कठिन है कोऊ भाग्यवान् पुरुष होता है जो यत्न करिकै धनते पुण्यवान् होता है जैसे पर्वतते पत्थर गिरना सुगम है तैसे पुण्यते धन होना सुगम है अरु जैसे पत्थरको पर्वतपर चढावना कठिन है तैसे धनते पुण्य होना कठिन है कई चिरकाल धनविषे वहते हैं कई यत्नकरि शीघ्र ही पुण्यवान् होते हैं. हे रामजी ! जो सदा अंतवाहक रहते हैं तिनकी संज्ञा ईश्वर है अरु अंतवाहकको त्यागिकरि अधिभूतक होते हैं सो जीव कहाते हैं अरु परतंत्र हैं जैसे कर्म करते हैं तैसे आगे शरीर धारते हैं अरु जो धनते पुण्य होते हैं सो ज्ञानवान् हैं तिनको बहुरि जन्म नहीं होता अब भी जो उत्पन्न होते हैं सो प्रथम कर्म विना होते हैं जब अपने स्वरूपते गिरते हैं तब जैसा संकल्प करते हैं संकल्प ही कर्म है तैसे आगे शरीर धारते हैं. हे रामजी ! यह विश्व संकल्पमात्र है ताते संकल्पका त्याग करौ इस दृश्यकी आस्था न करु. हे रामजी ! खाना पीना चेष्टा करौ परंतु तिसविषे अहंभाव न होवै अहंकार अज्ञानकरि सिद्ध हुआ है सो दृश्य मिथ्या है अहंभावके होनेकरि दुःखी होता है ताते अहंकारते रहित चेष्टा करौ. हे रामजी ! बंध अरु मोक्षका लक्षण श्रवण करु ग्राह्य ग्राहक जो है विषय अरु इंद्रियोंका संयोग तिनके इष्टविषे राग करना अनिष्टविषे द्वेष करना यही बंधन है जैसे जालविषे पक्षी बंधायमान होता है अरु ग्राह्य ग्राहक इंद्रियां अरु विषयका संबंध तिनके इष्ट अनिष्ट होता है जिसविषे इंद्रियोंका संयोग होता है तिसविषे समबुद्धि रहै इनके धर्म अपनेविषे न देखै इनके जाननेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है तिसीविषे साक्षीरूप होकरि स्थित रहै इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है सो सदा मुक्तरूप है इसते इतर है सो मूर्ख जीव बंध है तुम इस ग्राह्य ग्राहक संबंधविषे सावधान रहौ

इनका संबंध धन है इनते रहित होना मुक्त है अरु राग द्वेष करनेवाला मन है इस मनका त्याग करो मन ही दुःखदायी है जैसे कुंभारका चक्र फिरता है तिसते बासन उत्पन्न होते हैं तैसे मनरूप चक्रते पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं मनके फुरणेकरि संसार सत्य होता है जब फुरणा निवृत्त हुआ तब दुःख कोऊ न रहैगा. हे रामजी ! फुरणे अफुरणेविषे समान होवैगा तब रागद्वेषते रहित होकरि विचरैगा यह होवै यह न होवै इसते रहित होकरि चेष्टा कर अभिलाषपूर्वक संसारविषे न फुरै. हे रामजी ! पूर्व जो ज्ञानवान् हुए हैं तिनको बीतीकी चिंतवना नहीं अरु आगे होनेकी आशा नहीं वर्तमानकालविषे शास्त्रानुसार रागद्वेषते रहित चेष्टा करणी ताते तू भी संकल्पको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत किसी पदार्थविषे राग हुआ तौ बंधन है अरु मेरा यही आशीर्वाद है जो ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत करि तेरी रुचि मत होवै अपने आपहीविषे रुचि होवै. हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है इसविषे पदार्थ कोऊ सत् नहीं सर्व मनके रचे हुए हैं ताते मनको स्थिर करौ जैसे धोबी साबू मिलायके वस्त्रका मैल दूर करता है तैसे मनकरि मनको स्थिर करौ जब मनको स्वरूपविषे स्थित करैगा तब मन अपने संकल्पको आप ही नाश करैगा जैसे कोऊ दुष्ट पुरुष धनकरि वृद्ध होता है तब भाई आदिकको नाश करनेका उपाय करता है तैसे मन जब आत्मपदविषे स्थित होता है तब अपने संकल्पको नाश करता है जब मन तेरा स्वरूपविषे स्थित हुआ तब तू अमन होवैगा अरु दुःख तेरे सब नष्ट हो जावैंगे अरु मनके नाश विना सुख कोऊ नहीं. हे रामजी ! यह मन ऐसा दुष्ट है कि जिसते उपजता है तिसीके नाशनिमित्त होता है जैसे बांसते अग्नि उपजता है बहुरि तिसीको जलाता है तैसे आत्माते उपजिकरि यह मन आत्माहीको तुच्छ करता है जैसे राजाका टहलुआ राजाकी सत्ता पायकरि राजाको मारिकरि आप राजा होता है तैसे मन आत्माकी सत्ता पायकरि तिसको आच्छादि आप ही कर्त्ता भोक्ता हो बैठा है ताते मनको मनहीकरि नाश कर जैसे लोहा तपायकरि लोहेको काटता है तैसे मनसाथ मनहीको शुद्ध

करु. हे रामजी ! वृक्ष वल्ली फूल फल पशु पक्षी देवता यक्ष नाग जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं सो प्रथम कर्मोंविना उत्पन्न हुए हैं अरु पाछे जब स्वरूपते गिरे अरु घनपदको प्राप्त हुए तब शरीर कर्मोंकरि होते हैं अरु कर्मोंका बीज अहंकार है अहंकारविषे शरीर है जैसे बीजविषे वृक्ष होता है समय पायकरि फूल फल प्रगट होते हैं तैसे अहंकारते शरीर प्रगट होते हैं जब अहंकार नष्ट हुआ तब शरीर कोऊ नहीं, केवल आत्मपद है अहंकार है नहीं अरु प्रत्यक्ष दिखायी देता है अरु आत्मा अच्युत है गिरेकी नाईं भासता है निरालंब है अरु आलंबकी नाईं दृष्टि आता है आत्मा निराकार है अरु आकारसहित भासता है निराभास है अरु आभाससहित दिखायी देता है ताते केवल चिन्मात्र आत्माविषे स्थित होहु यह सब चिन्मात्रहीरूप है. हे रामजी ! जब ऐसी भावना होती है तब चित्त अचित्त हो जाता है जब चित्त अचित्त हुआ तब जगत्कलना मिटि जाती है केवल आत्मतत्त्व ही भासता है.

इति श्रीयोवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे कर्माकर्मविचारवर्णनं नाम चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

पचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२५.

तुरीयापदविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस जीवके तीन स्वरूप हैं एक स्वरूप शुद्धात्मा है चिदानंद ब्रह्म जिसकरि सर्व प्रकाशते हैं अरु दूसरा अंतवाहक पुण्यनाम है आत्माके प्रमादकरिकै हुआ है जो मात्रपदते उत्थान हुआ है तौ भी प्रमाद नहीं जो आत्माका स्मरण रहा है जब आत्माका स्मरण भूला तब तीसरा अधिभूतक हुआ पंचतत्त्वको अपना आप जानने लगा है. हे रामजी ! यह तीन स्वरूप जीवके हैं आत्माके प्रमादकरि जीवसंज्ञा पाता है अरु दुःखी होता है अरु परतंत्र हुआ है ताते पंचभूतक अरु अंतवाहकको त्यागकरि वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! यह जो दो शरीर हैं स्थूल अरु सूक्ष्म सो विचारकरि

नष्ट हो जाते हैं अरु तीसरा जो स्वस्वरूप है सो सत्य है तू तिसविषे स्थित होहु. राम उवाच-हे भगवन्! यह तीन रूप जो तुमने जीवके कहे तिनके मध्यविषे नाशरूप कौन है अरु सतरूप कौन है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! हाथ पांवकरि जो देह संयुक्त है भोग साथ बलगत करी हुई सो देह स्थूलरूप है अरु जीव अपने ही संकल्पकरिकै सदा पसार रचता है अपर चित्तरूपी देह इस फुरणे रूपसों अन्तवाहक है सो सदा प्राणवायुके रथ ऊपर स्थित रहता है देह होवै भावै न होवै. हे रामजी! यह दोनों शरीर उपजते भी अरु नष्ट भी होते हैं अरु आदिअंतते रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं सो जीवका परमरूप जान तुरीयापद है उसीते जाग्रदादिक उपजते हैं अरु लीन होते हैं. राम उवाच-हे भगवन्! मैं तीनोंको जानता हौं एक जाग्रत् है निद्राते रहित जिसविषे इंद्रियां अरु चार अंतःकरण अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं अरु दूसरा स्वप्न है तहां भी विषयको जाग्रत्की नाई संकल्प कर विषय विना ग्रहण करते हैं अरु तीसरा तहां इंद्रिय अपने विषयते रहित होती है अरु जडता आती है भासता कछु नहीं शिलाकी नाई जडता तमोगुण आता है सो सुषुप्ति है यह तीनोंको मैं जानता हौं तुरीया अरु तुरीयातीत सो कृपा करि तुम कहौ कि किसको कहते हैं? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! अपना होना अन-होना दोनोंको त्यागिकरि पाछे केवल तुरीयापद रहता है सो शांतपद है अरु निर्मल है. हे रामजी! तुरीया जाग्रत् नहीं काहेते जो जाग्रत संकल्पजाल है इंद्रियोंकरिकै रागद्वेष होता है अरु तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं काहेते कि स्वप्न भ्रमरूप होता है जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है सो अपरका अपर संकल्प होता है अरु तुरीया सुषुप्ति भी नहीं काहेते जो अत्यंत जडता है अरु तुरीया चेतनरूप है उदा-सीन है अरु शुद्ध है जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिते रहित है जीवन्मुक्त तुरी-यापदविषे स्थित रहता है. हे रामजी! जो तुरीयापदविषे स्थित है तिसको यह स्थित भी है जगत्सों भी शांतरूप हो जाता है अरु अज्ञानीको वज्रसारवत् दृढ है अरु ज्ञानी सदा शांतरूप है जो तीनों

अवस्थाका साक्षी है न उनके राग है न द्वेष है उदासीनकी नाईं है अरु तुरीयातीत पदको वाणीकी गम नहीं जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है तब उसी पदको प्राप्त होता है जहां बाणीकी गम नहीं जबलग जीवन्मुक्त है तबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है अरु रागद्वेषते रहित होता है इंद्रियां भी अपने विषयविषे स्वाभाविक वर्तती हैं परंतु रागद्वेषते रहित होकरि अरु जिस पुरुषको रागद्वेष उत्पन्न होते हैं सो तुरीयापदको नहीं प्राप्त भया अरु चित्तसहित है अरु जिस पुरुषको रागद्वेष उत्पन्न नहीं होते तिसका चित्त सत्पदको प्राप्त भया है जिसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है तिसको संसारकी सत्यता नहीं भासती स्वप्नवत् जगत्को देखता है ताते तू सत्पदविषे स्थित होकरि साक्षीरूप हो रहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे तुरीयापदविचार-वर्णनं नाम पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२६.
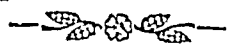
काष्ठमौनिवृत्तान्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! कर्ता कारण कर्म यह तीनों पडे होवें तू इनका साक्षी होहु इनका कर्तृत्व अभिमान तेरे ताईं मत होवे कि मैं यह कर्ता हौं अथवा इसका मैं त्याग किया है यह अभिमान भी नहीं करना तू उदासीनकी नाईं हो रहु अरु इसी प्रकार एक आख्यान कहता हौं सो श्रवण कर. तू आगे भी प्रबुद्ध है तौ भी दृढ बोधके निमित्त सुन. हे रामजी ! एक वनविषे काष्ठमौनी था अरु एक वधिक मृगको बाण चलाता हुआ मृगके पाछे दौडता जाता था अरु आगे गये तौ मृग वधिककी दृष्टिते अगोचर हो गया वधिकने देखा कि एक तपस्वी बैठा है तिसीते पूछत भया. हे मुनीश्वर ! इहां एक मृग आया था सो किस ओरको गया तुमने देखा हो तौ मेरे ताईं कहो. काष्ठमौनिरुवाच-हे वधिक ! हमारे ताईं सुषि

कछु नहीं काहेते कि हम निरहंकार हैं हमारे साथ चित्त अहंकार दोनों नहीं ताते निरहंकार हैं अरु जो तू कहै इंद्रियोंकी चेष्टा कैसे होती है तौ सुन, जैसे सूर्यके आश्रय लोककी चेष्टा होती है अरु दीपक मणिके आश्रय चेष्टा होती है अरु सूर्य दीपक मणि प्रकाशके साक्षीभूत हैं तैसे हम इंद्रियोंके साक्षीभूत इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है हमारे तौ इनसाथ प्रयोजन कछु नहीं. हे वधिक ! अहंभाव करणेवाला अहंकार होता है जैसे तागेके आश्रय मणके होते हैं सो मणके भिन्न भिन्न होते हैं अरु तागा सर्वविषे एक होता है तब माला होती है जब तागा टूटि पडै तब मणके भिन्न भिन्न हो जाते हैं तैसे इंद्रियांरूपी मणके हैं अरु अहंकाररूपी तागा है तिस अहंकाररूपी तागेके टूटनेसों इंद्रियां भिन्न भिन्न हो गयी हैं जैसे राजाके नाश हुए सेना भिन्न भिन्न हो जाती है जैसे गोपालके नष्ट हुए गौआं भिन्न भिन्न हो जाती हैं अरु जैसे पिताके नष्ट हुए बालक व्याकुल हो जाते हैं तैसे अहंकार विना इंद्रियां व्याकुल होती हैं इनका अभिमान मेरे ताईं कछु नहीं इनका अभिमानी अहंकार था सो मेरा नष्ट हो गया है इंद्रियां अपने अपने विषयविषे विचरती हैं मुझको इनका न राग है न द्वेष है. हे साधो ! मेरे ताईं न जाग्रत् भासता है न स्वप्न न सुषुप्ति इन तीनोंते रहित हम तुरीयापदविषे स्थित हौं जिसविषे अहंत्वंका अभाव है जो अहं त्वं हमारा मिटि गया तौ हम साक्षी किसकी देवैं कि मृग बाँये गया कै दाहिने गया जो नेत्र इंद्रियां देखनेवाली हैं तिनको बोलनेकी शक्ति नहीं यह अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं एक इंद्रियको दूसरेकी शक्ति नहीं बहुरि तेरे ताईं कौन कहै इन सबका धारणेवाला अहंकार था जो सबको अपना आप जानता था मैं देखता हौं मैं बोलता हौं सो अहंकार हमारा नष्ट हो गया है जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होते हैं तैसे अहंकारके नष्ट होनेकरि हम स्वच्छ निर्मल शांत तुरीयापदविषे स्थित हैं अरु इंद्रियोंका जीव अहंकार मृतक हो गया है अरु इंद्रियां भी मृतक हो गयी हैं देखनेमात्र दृष्टि आती हैं जैसे भीतके ऊपर पुतलियां लिखी होवैं अरु

कार्य तिनके कछु न होवैं तैसे हमारी इंद्रियोंते कार्य कछु नहीं होता तौ तेरे ताईं कौन कहै ? वसिष्ठ उवाच–हे रामचंद्र ! जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा तब वधिक समुझिकरि अपनी इच्छाचारी उठि गया. हे रामजी ! तुरीयापद शांतरूप है जहां जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव है केवल अद्वैत पद है यह जो संज्ञा है ब्रह्म आत्मा चिदानंदते आदि लेकरि सो तुरीयापदविषे हैं अरु तुरीयातीत पदविषे शब्दकी गम नहीं अशब्दपद है विदेहमुक्त पुरुष तिसी पदको प्राप्त होता है अरु जीवन्मुक्त तुरीयापदको साक्षात् करिकै तुरीयावस्थाविषे विचरते हैं जहां जाग्रत् जो दीर्घ दुःख सुखका भान है सो नहीं अरु स्वप्न जो रागद्वेषको लिये अल्पकाल है सो भी नहीं अरु जडता तामस अवस्था भी नहीं इन तीनोंते रहित है सो तुरीयापद है अरु शांत जिसविषे क्षोभ कोऊ नहीं अरु यह जगत् तिसका आभास है जैसे समुद्रविषे तरंग वास्तव कछु नहीं जल ही है तैसे केवल तुरीयास्वरूप सत्ता समान तेरा स्वरूप है तिसविषे स्थित होहु अरु तिसविषे जो स्थित हुए हैं सो श्रवण करु. ब्रह्मा विष्णु रुद्र सिद्ध ज्ञानी इत्यादिक जो ज्ञानवान् हैं सो तिसी पदविषे स्थित हैं अरु काष्ठमौनि वधिकको उपदेश करनेवाला भी तुरीयापदविषे स्थित है विशेष कलना तिसकी निवृत्ति हुई थी जो भिन्न भिन्न नामरूपको देखनेवाली केवल सत्ता समानविषे स्थित था ताते कलनाको त्यागिकरि तुम भी तुरीयापदविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे काष्ठमौनिवृत्तांतवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२७.

अविद्यानाशरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह विश्व केवल आकाशरूप है आत्माते इतर कछु नहीं आत्माका चमत्कार है जैसे मेघविषे बिजलीका चमत्कार होता है तैसे यह विश्वरूप चित्तकला आत्माका चमत्कार है.

हे रामजी ! वास्तव ब्रह्म ही है इतर कछु नहीं. राम उवाच–हे भगवन् ! यह विश्व जो तुम ब्रह्मरूप कही मेघविषे बिजलीकी नाईं क्षणमें उप-जती है क्षणविषे लीन होती है सो मेघविषे बिजली दृष्टि आती है जहां मेघ होता है तहां बिजली भी होती है ताते मेघते बिजली उत्पन्न भयी तिसका कारण मेघ है. हे मुनीश्वर ! इस चित्तस्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्मते कैसे हुई है ? सो कृपा करिकै मुझको समुझाय कहौ, ब्रह्म ही इसका कारण हुआ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो वितंडक होकरि तर्क करता है सो कछु नहीं इस नाशबुद्धिको त्याग, यह तौ बालक भी जानते हैं जो बिजली क्षणभंगुररूप है सत्य कछु नहीं अपर तेरा क्या प्रयोजन है ? सो कहु यह तर्क कारण कार्य-रूपका कैसा करता है ? राम उवाच–हे भगवन् ! यह स्पंदकला सत्य है कि असत्य है इसका कारण कौन है ? जिसकरि यह फुरती है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! सर्व प्रकारकी सर्वात्मा ही स्थित है अपर चित्त अरु चित्तस्पंद यह भेदकल्पना वास्तव कछु नहीं ब्रह्म ही अपने स्वरूपविषे आप स्थित है अपर जो कछु उसते इतर भासता है सो भ्रम-करि भासता है जैसे भ्रमदृष्टिकरि आकाशविषे मोती भासते हैं जैसे नेत्र मुंदिकरि खुलते हैं तब तरुवरे आकार भासते हैं तैसे यह जगत् भ्रम-करिकै भासता है. हे रामजी ! हम इस संसारसमुद्रके पारको प्राप्त हुए हैं हमते आदि लेकरि जो ज्ञानवान् हैं सो तिनके यथार्थ वचन सुनि-करि हृदयविषे धारै तौ शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवै अरु जो मूर्खता करिकै मेरे वचनोंको न धारैगा कि यह क्या कहते हैं तब तेरा दुःख नष्ट न होवैगा वृक्ष तृण वल्ली आदिक योनिको पावैगा. हे रामजी ! आकाश अरु काल आदिक पदार्थ हैं सो सब कलनाकरि सिद्ध हुए हैं आत्माविषे कोऊ नहीं. हे रामजी ! वायुते रहित जो समुद्रका चमत्कार है तिस चमत्कारका कारण कौन है अरु दीपकका जो प्रकाश है अरु अग्निविषे उष्णता है तिस प्रकाश अरु उष्णताका कारण कौन है अरु वायु जो निस्पंद है जब वही स्पंद हुई स्पंदका कारण कौन है जैसे इनका कारण कोऊ नहीं जो वायुका रूप स्पंद

निस्पंद है अरु अग्निका रूप उष्णता है अरु दीपकका रूप प्रकाश है तैसे कलना भी आत्मस्वरूप है इतर कछु नहीं. हे रामजी ! यह कलना जो तुझको भासती है तिसको त्यागिकरि जब अपने आपको देखे तब संशय सब मिटि जावै, जैसे प्रलयकालका जल चढता है तब सर्व जलमय हो जाता है इतर कछु नहीं होता तैसे अपने स्वरूपको जब तू देखेगा तब तेरे ताईं सर्व आत्मा ही भासैगा आत्माते इतर कछु दृष्टि न आवैगा. हे रामजी ! आत्मा एकरस है सम्यक्‌दर्शनकरि ज्योंका त्यों भासैगा अरु असम्यक्‌दर्शनकरि अपरका अपर भासैगा जैसे जेवरी एक होती है तिसको यथार्थ न देखिये तौ सर्पभ्रम होता है अरु देखिकरि भयमान होता है जब ज्योंकी त्यों जेवरी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होता है तैसे आत्माके न जाननेते संसारी होता है अरु भयमान होता है आपको जन्मता मरता मानता है सर्व विकार देहके आत्माविषे जानता है. जब आत्माको जानता है तब सर्व भ्रम निवृत्त हो जाते हैं जैसे नेत्रकरि तारे देखता है जब नेत्र मूँदि लेवै तौ भी उनका आकार अंतःकरणविषे भासता है काहेते कि तिनकी सत्यता हृदयविषे होती है अरु जब हृदयते सत्यता उनकी उठि जावै तब बहुरि नहीं भासते तैसे संसार चित्तके भ्रमकरि हुआ है इसको मिथ्या जान. हे रामजी ! फुरणेविषे जो दृढ भावना हुई है सो सत्य होकरि संसार स्थित हुआ है जब चित्तका त्याग करैगा तब संसारकी सत्यता जाती रहैगी. राम उवाच-हे भगवन् ! तुमने कहा जो यह विश्व कल्पनामात्र है सो मैंने जाना कि इस प्रकार है कछु सत्य नहीं जैसे लवण राजा अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्र अरु शुक इनकी कलना फुरणेविषे दृढ भयी तब फुरणरूप विश्व सत्य होकरि स्थित भये अरु भासने लगे. हे भगवन् ! यह मैं जानता हौं कि विश्व फुरणेमात्र है जब फुरणा मिटि जाता है तिसके पाछे जो शांतिरूप शेष रहता है सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! अब तू सम्यक् बोधवान् हुआ है जो जानने योग्य है सो तैंने जाना है. हे रामजी ! यह अध्यात्मशास्त्रका सिद्धांत है जो अपर सब दृश्यका असंभव है एक चिद्घन ब्रह्म अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी !

आत्मा शुद्ध है अरु निर्मल है विद्या अविद्याते रहित है संसारका तिस-विषे अत्यंत अभाव है जेती कछु शुद्ध आदिक संज्ञा कहते हैं सो भी फुरणेविषे हैं आत्मा अनिर्वाच्य पद है सो शेष रहता है तीसरी संज्ञा शास्त्रकारोंने कही है सो श्रवण करु. एक शून्यवादी उसीको शून्य कहते हैं विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं कई उपासनावान् उसीको ईश्वर कहते हैं कई कहते हैं आत्मा सर्वका कारण है वही शेष रहता है अरु एक आत्माको सर्वशक्ति कहते हैं अरु एक कहते हैं आत्मा निःशक्त है साक्षी आत्माको अरु शक्तिको भिन्न मानते हैं. हे रामजी! जेते वाद हैं सो सर्व ही कलनाकरि हुए हैं कलनाको मानिकरि वाद उठावते हैं वास्तव वाद कोऊ नहीं आत्मा अनिर्वाच्य पद है अरु मेरा जो सिद्धांत है सो भी श्रवण करु. जेती कछु कलना है तिसते आत्मा अतीत है जैसे पवन स्पंदशक्तिकरि फुरता है निस्पंदकरि ठहरि जाता है जो स्पंद भी पवन है निस्पंद भी पवन है इतर कछु नहीं तैसे आत्मा फुरती है आत्माते इतर कछु नहीं अरु जो इतर प्रतीत होती है तिसको मिथ्या जानि त्याग अपने निर्विकार स्वरूपविषे स्थित होहु जब तू आत्मस्वरूपविषे स्थित होवैगा तब जेते कछु शास्त्रोंके भिन्न भिन्न मतवाद हैं सो कोई न रहैगे केवल अपना आप स्वच्छ आपही भासैगा. हे रामजी! तिस निर्विकल्प पदको पायकरि शांतिवान् हुए हैं अरु असत्की नाईं स्थित भये हैं जो द्वैतकलना तिनकी कछु नहीं फुरती. हे रामजी! आत्मा ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेशनिमित्त कहे हैं आत्मा शब्दते अतीत है अरु सर्व जगत् भी आत्मस्वरूप है अरु संसाररूप विकार आत्माविषे असम्यक्दर्शनकरि भासते हैं जैसे शून्य आकाशविषे तरुवरे मोतीवत् भासते हैंसो अविदित हैंतैसे आत्माविषे जगत् द्वैत अविदित भासता है ताते जगत् द्वैतकी भावना त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अविद्यानाशरूप-वर्णनं नाम सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२८.

जीवत्वाभावप्रतिपादनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! देह इंद्रियां अरु कलनाविषे सार वस्तु क्या है? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो कछु यह जगत् दृश्य है अहंत्वंते लेकरि सो सब चिन्मात्र है जैसे समुद्र जल ही मात्र है तैसे जगत् मनसहित षट् इंद्रियोंकरि जो कछु दृश्य भासते हैं सो भ्रममात्र है. हे रामजी! देह इंद्रियां सब मिथ्या हैं आत्माविषे कोऊ नहीं चित्तके कल्पे हुए हैं अरु चित्त ही इनको देखता है जैसे मरुस्थलविषे मृगको जलबुद्धि होती है देखिकरि जलके निमित्त दौडता है अरु दुःख पाता है तैसे चित्तरूपी मृग आत्मारूपी मरुस्थलविषे देह इंद्रियां विषयरूप जल कल्पिकरि दौडता है अरु दुःख पावता है सो देह इंद्रियांविषय भ्रमकरिकै भासते हैं जैसे मूर्ख बालक परछाईं विषे वैताल कल्पता है तैसे चित्तने देह इंद्रियादिक कल्पना करी है हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है तिसविषे चित्तने भ्रमकरिकै विकार आरोपण किये हैं तैसे भ्रांतदृष्टि करिकै आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं तैसे चित्तने देह इंद्रियां कल्पा हैं अरु चित्त भी आपते कछु नहीं आत्माकी सत्ता लेकरि चेष्टा करता है जैसे चुंबककी सत्ता लेकरि लोहा चेष्टा करता है तैसे निर्विकार आत्माकी सत्ता लेकरि चित्त नाना प्रकारके विकार कल्पता है ताते चित्तका त्याग कर जो विकारजाल तेरा मिटि जावै. हे रामजी! देह इंद्रियोंविषे सार क्या है सो सुन जेता कछु संसार है तिसविषे सार देह है जो सब देहके संबंधी हैं जब देह मिटि जावै तब संबंधी भी नहीं रहते अरु देहविषे सार इंद्रियां हैं अरु इंद्रियोंविषे सार प्राण हैं प्राणोंविषे सार मन है अरु मनका सार बुद्धि है बुद्धिका सार अहंकार है अरु अहंकारका सार जीव है जीवका सार चिदावली है चिदावली कहिये वासना संयुक्त चेतना जिसकरि इसका संबंध है अरु चिदावलीका सार चित्तते रहित शुद्ध चेतन है जिसविषे सर्व विकल्पकी लय है शुद्ध अरु निर्मल है चिन्मात्र

ब्रह्म आत्मा है जिसविषे उत्थान कोऊ नहीं. हे रामजी! चिदावलीपर्यंत सर्वको त्यागिकरि इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है तिसविषे स्थित होहु विश्वकलनामात्र है आत्माविषे कछु नहीं संकल्पकी दृढताकरिकै सत्की नाईं भासती है अरु आगे भी शुक्र अरु लवणराजा अरु इंद्रके पुत्रोंका वृत्तांत कहा है जो संकल्पकी भावनाते दृढ होकरि भासि आया था सो वास्तव कछु नहीं तैसे यह विश्व भी चित्तके फुरणेविषे स्थित है असम्यक् दृष्टिकरिकै अद्वैत आत्माविषे दृश्य भासता है जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है तैसे आत्माविषे अहंकार आदिक अज्ञानकरि दृश्य भासता है ताते इनको त्यागिकरि अपने वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी! एक गढ तेरे ताईं कहता हौं जिसविषे किसी शत्रुकी गम नहीं तिसविषे स्थित होहु हम भी तिसी गढविषे स्थित हैं जेते ज्ञानवान् हैं सो भी तिसीविषे स्थित होते हैं. हे रामजी! काम क्रोध लोभ अभिमानादिक विकार आत्माविषे नहीं होते जैसे रात्रिविषे दिन नहीं होता तैसे विकाररूपी दिन गढरूपी रात्रिविषे नहीं होता ताते अचिंत्यरूप गढ है जहां फुरणा कोऊ नहीं केवल शांतिरूप है तिसविषे अहंभाव त्यागिकरि स्थित होवै तब अहं त्वं भाव निवृत्त हो जावै जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है तब ज्ञानी फुरणे अफुरणेविषे स्वरूपको तुल्य देखता है संपूर्ण जगत् तिसको आत्मरूप भासता है ताते चिदावलीते आदि देहपर्यंत जो अनात्म है तिसको क्रमकरिकै त्याग प्रथम देहको त्याग बहुरि इंद्रियोंके अभिमानको त्याग तिसी क्रमकरि सर्वको त्यागिकै अपने वास्तवस्वरूपविषे स्थित हो .

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नाम अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १२९.

सारप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह संसार चेतनमात्र है आत्माते इतर कछु नहीं आत्मा ही विश्वरूप होकरि स्थित हुआ है जैसे सूर्यकी किरणोंमें ही जलाभास होता है तैसे आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है जैसे संकल्प अरु संकल्पकर्ता भिन्न नहीं जैसे आकाशही मोतीकी माला होकरि भासता है तैसे आत्मा ही दृश्यरूप होकरि भासता है जैसे बीज ही वृक्ष फूल फल होता है तैसे आत्मा ही दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है जैसे जलके तरंग जल ही हैं तैसे विश्व आत्मा ही है हे रामजी ! चिदावली भी आत्मा ही है जीव भी आत्मा ही है अहंकार बुद्धि प्राण इंद्रियां देह विश्व आकाश काल दिशा सर्व पदार्थ आत्मा ही हैं आत्माते इतर कछु नहीं ताते विश्वको अपना स्वरूप जान, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्य ही है तैसे तू जान सर्व मैं हौं जो ऐसे न जान सकै तौ ऐसे जान कि देह भी जड है इंद्रियोंकरि पालित है सो मैं नहीं अरु इंद्रियां भी मैं नहीं जो प्राण इंद्रियोंका सार है जो प्राण न होवै तौ इंद्रियां किसी कामकी नहीं अरु प्राण भी मैं नहीं प्राणका सार मन है जो मन मूर्च्छा होता है प्राण आते जाते भी हैं तौ भी किसी कामके नहीं अरु मन भी मैं नहीं जो मनके प्रेरणेवाली बुद्धि है जो निश्चय बुद्धि करती है मन भी तहां जाता है सो भी मैं नहीं जो बुद्धिका प्रेरक अहंकार है सो अहंकार भी मैं नहीं अहंकारका सार जीव है जीव विना अहंकार किसी कामका नहीं अरु जीव भी मैं नहीं जीवका सार चिदावली है चिदावली कहिये शुद्ध चिद्विषे चैतन्योन्मुखत्व होना जीव संज्ञाते प्रथम ईश्वरभाव चिदावली भी मैं नहीं जो चिदावलीका सार चिन्मात्र है सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है यह सर्व अनात्म भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं मैं केवल शांतरूप आत्मा हौं. हे रामजी ! तेरा वास्तव स्वरूप है सोई होहु तिसते इतर अनात्मविषे अहंप्रीतिका त्याग कर तू देहते रहित निर्विकार है तेरेविषे जन्म मृत्युआदि विकार कोऊ नहीं अरु शांतरूप

ज्योंका त्यों स्थित है तू कदाचित् स्वरूपते अपर नहीं हुआ तिसी स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सारप्रबोधवर्णनं नाम एकोनत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १२९ ॥

त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३०.

ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! आत्मा चिन्मात्रते सार अपर कछु नहीं तिसविषे स्थित होहु जो ताप मिटि जावै. हे रामजी ! सर्व आत्मा ही स्थित है जैसे बीज ही फल फूल होकरि स्थित होता है तैसे सर्व आत्मा ही स्थित है तो निषेध अरु त्याग किसका करिये ? वाल्मीकिरुवाच–हे शिष्य ! ऐसे वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिकै रामजी प्रसन्न हुआ जैसे कमल सूर्यको देखिकरि खिलि आता है तैसे रामजीकी बुद्धि वसिष्ठजीके वचनोंरूपी सूर्यकरि खिलि आयी अरु बोलत भया. राम उवाच–हे भगवन् सर्वधर्मज्ञ ! तुम्हारी कृपाते अब मैं जागा हौं अरु बड़ा आश्चर्य है जो आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है अरु अपना आप है तिसके प्रमादकरि मैं एता काल दुःख पाया है जो अहंताममतारूपी बड़ा बोझा शिरके ऊपर था तिसकरि मैं दुःखी था जैसे किसीके शिरके ऊपर पत्थरकी शिला होवै अरु ज्येष्ठ आषाढका सूर्य तपै अरु पैदल चलै तब दुःख पावै है अरु जो उसके शिरते कोऊ उतार लेवै बलसों छायाविषे बैठावै तौ बड़े सुखको प्राप्त होता है तैसे अज्ञानरूपी पैदे अरु धूप तिसविषे अहंताममतारूपी शिलाकरि दुःखी था तुम वचनरूपी बलकरि उतारि लिया है अरु आत्मारूपी वृक्षके छायाविषे विश्राम कराया है. हे भगवन् ! अब मेरे ताईं शांतपद प्राप्त हुआ है अरु तीनों ताप मिटि गये हैं अब जो सुमेरु पर्वतका भार आनि प्राप्त होवै तौ भी मेरे ताईं कष्ट कोऊ नहीं अब मेरे सर्व संशय निवृत्त हुए हैं जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल स्वच्छरूप होता है तैसे रागद्वेष-

रूपी द्वंद्व मेरा नष्ट भया है अब मैं अपने स्वभावविषे स्थित हुआ हौं परंतु एक प्रश्न है-उत्तर कृपा करि कहौ जो महापुरुष वारंवार प्रश्न करणेविषे खेद नहीं मानते. हे भगवन् ! तुम कहते हौ सर्व ब्रह्म ही है तौ शास्त्रका विधि निषेध उपदेश किसको है जो यह कर्म कर्तव्य है यह कर्म कर्तव्य नहीं सो यह उपदेश किसको है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! आत्माते इतर कछु नहीं विश्व भी तिसका चमत्कार है जैसे समुद्रविषे पवनकरिकै नाना प्रकारके तरंग फुरते हैं अरु जलते इतर कछु नहीं तैसे आत्मा चेतनमात्र है तिसते चैत्योन्मुखत्व अहंभावको लेकरि फुरा है तिसकरि देशकाल वस्तु बनि गये हैं अरु शास्त्र फुरे हैं बहुरि फुरणेते दो रूप धारे हैं एक विद्या एक अविद्या तिसविषे जो विद्यारूप जीव हुए हैं सो ईश्वर कहाते हैं अरु अविद्यारूप हुए हैं सो इतर जीव हैं जिनको अपने स्वरूपविषे अहंप्रत्यय वास्तवकी रही है सो ईश्वर हैं अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआ अरु संकल्पविकल्पविषे बहते हैं सो जीव दुःखी हैं. हे रामजी ! एती संज्ञा फुरणेविषे हुई हैं तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं जैसे एक ही रस फूल फल वृक्ष हुआ है रसते इतर कछु नहीं अरु आत्मा रसकी नाईं भी प्रमाणको नहीं प्राप्त भया फुरणेकरि ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है आत्माविषे कछु नहीं. हे रामजी ! जिसका संकल्प अधिभूतकविषे दृढ नहीं हुआ सो जीव शीघ्र ही आत्मपदको प्राप्त होता है तिसको आत्माका साक्षात्कार शीघ्र ही होता है अरु जिनका संस्कार अधिभूतकविषे दृढ हुआ है सो चिरकालकरि प्राप्त होते हैं आत्मपदकी प्राप्ति विना दुःख पाते हैं अरु जिसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है सो सुखी होते हैं. हे रामजी ! ज्ञानी अरु अज्ञानीके स्वरूपविषे भेद कछु नहीं सम्यक् अरु असम्यक् दर्शनका भेद है. हे रामजी ! विद्या भी दो प्रकारकी हैं एक ईश्वरवाद एक अनीश्वरवाद है. जो ईश्वरवादी हैं सो तुरत पदको प्राप्त होते हैं जो अनीश्वरवादी हैं तिनको जब ईश्वरकी भावना होती है तब शास्त्र गुरु करिके ईश्वरकी प्राप्ति होती है अरु ईश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं एक यह है जो अपर वासना त्यागिकरि ईश्वरपरायण होते हैं तौ शीघ्र ही ईश्वरको प्राप्त होते

हैं सो आत्मा ही ईश्वर है जो सर्वका अपना आप है अरु एक ईश्व-रको मानते हैं वासना संसारकी ओर होती है तौ चिरकालकरि प्राप्त होते हैं अरु अनीश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं एक कहते हैं जो कछु होवैगा तिनको होते होतेकी भावनाते शास्त्र गुरुकरि आत्मपदकी प्राप्ति प्राप्ति होवैगी अरु एक कहते हैं कछु नहीं तिनको चिरकालकरि जब आस्तिकभावना होवैगी तब आत्मपदको प्राप्त होवैंगे. हे रामजी ! तिनके निमित्त विधि अरु निषेध कही है कि इस शुभ कर्मको अंगी-कार करो अरु अशुभ कर्म त्यागो तिसकरि जब अंतःकरण शुद्ध होवैगा तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी इस निमित्त विधिनिषेध कही है जो विधिनिषेध शास्त्र न कहै तौ बडा छोटेको भोजन करि लेवै इस निमित्त शास्त्रका दंड है. हे रामजी ! स्वरूपते किसीको उपदेश नहीं भ्रम-विषे उपदेश है जिस पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है सो मोहविषे बहुरि नहीं डूबता जैसे जलविषे तूंबा नहीं डूबता तैसे ज्ञानवान् संसार अज्ञा-नविषे नहीं डूबता अरु जिसका चित्त वासनाकरि आवरा हुआ संस-रता है तिसको इस संसारते निकसना कठिन है जैसे उजाड़का कूआ होता है तिसविषे कोऊ गिरै तौ निकसना कठिन होता है तैसे चित्त साथ गिलिकरि संसारते निकसना कठिन होता है. हे रामजी ! इस चित्तको स्थिर कर जो दुःख तेरे मिटि जावैं अरु सत्ता समानपदको प्राप्त होवै. हे रामजी ! जिसको आत्माका साक्षात्कार हुआ है अरु अनात्माविषे अहंप्रत्यय निवृत्त भया है सो पुरुष जो कछु करता है तिसकरि बंधायमान नहीं होता सदा अकर्ता आपको देखता है अरु जिसकी अहंप्रत्यय अनात्मविषे है सो पुरुष करै तौ भी करता है अरु जो न करै तौ भी करता है. हे रामजी ! जो ज्ञानी शुभ कर्म करता है तौ शुभ कर्म करता हुआ स्वर्गको प्राप्त होता है अरु अशुभ कर्म करनेसो नरकको प्राप्त होता है अरु जो शुभ कर्मको त्यागता है तौ भी नरकको प्राप्त होता है काहेते कि अनात्मविषे आत्माभिमान है ताते बुद्धि इंद्रियोंको मनकरि निग्रह करु अरु कर्मेंद्रियोंकरि चेष्टा करु देखने सुनने सूँघनेते मैं तुझको वर्जन नहीं करता यही कहता हौं कि अना-

त्मविषे अभिमानको त्याग जब अनात्माभिमानको त्यागैगा तब शांतपदको प्राप्त होवैगा जहां तेरा चित्त फुरैगा तहां आत्मा ही भासैगा आत्माते इतर कछु न भासैगा ताते चित्तको त्याग. चित्त कहिये अहंभाव अहंभावको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु जैसे विश्वकी उत्पत्ति भयी है सो सुन शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपविषे चिदावलीरूप अहं तरंग फुरा है अरु तिस चिदावलीरूपी समुद्रविषे जीवरूपी तरंग उपजता है अरु जीवरूपी समुद्रविषे अहंकाररूपी तरंग भासा है अरु अहंकाररूपी समुद्रविषे बुद्धिरूपी तरंग उपजा है तिस बुद्धिरूपी समुद्रविषे चित्तरूपी तरंग भासा अरु चित्तरूपी समुद्रविषे संकल्परूपी तरंग उपजा है तिस संकल्परूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग उपजा है अरु जगत्‌रूपी समुद्रविषे देहरूपी तरंग भासा है तिसके संयोगते दृश्यका ज्ञान हुआ है कि यह पदार्थ है यह नहीं यह ऐसे है तिसविषे देश काल दिशा सर्व हुए हैं. हे रामजी ! संकल्पकरि हो गये हैं सो आत्माते इतर कछु नहीं केवल शांतरूप एक रस आत्मा है तिसविषे नाना प्रकारके आचार रचे हैं आत्माते इतर कछु नहीं जैसे स्वप्नकी सृष्टि नाना प्रकार हो भासती है सो अपना ही अनुभव होता है तैसे यह जगत् भी जान. आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है शुद्ध है परमनिर्वाण है सर्वदा अपने आपविषे स्थित है फुरणे करिकै नाना प्रकारकी कलना उदय भयी है. हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो चिदेव हुई है "चिदेव पंच भूतानि चिदेव भुवनत्रयम्" सो चिदेव संज्ञा भी संकल्पविषे हुई है आत्माविषे चिदेव संज्ञा भी नहीं आत्मा अनिर्वाच्य पद है तिसविषे वाणीकी गम नहीं शुद्ध शांत-रूप है तिसविषे चिदेव जो फुरी है तिस फुरणेविषे संसार हुएकी नाईं स्थित है जैसे एक ही बीजने वृक्ष फूल फल आदिक संज्ञा पायी है सो बीजते इतर कछु नहीं अरु आत्मा बीजकी नाईं भी परिणम्य नहीं संकल्पते ही नाना संज्ञा कल्पी हैं अरु जगत् स्थित हुआ है तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं जैसे वायु चलता है तौ भी वायु है ठह-रता है तौ भी वायु है तैसे आत्माविषे नानात्व कछु नहीं केवल शुद्ध

अद्वैत आत्मा है आत्मारूपी समुद्रविषे नाना प्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं. हे रामजी ! आकार भी आत्माते इतर कछु नहीं जो आत्माते इतर भासै सो मिथ्या जान मृगतृष्णाके जलकी नाईं जानकरि तिसकी भावना त्याग अरु स्वरूपकी भावना करु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३० ॥

एकत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३१.

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! मेरे वचनोंको धारि अरु हृदयविषे आस्तिक भावना करु कि यह सत्य कहते हैं अरु सर्वत्याग करु जब सर्व त्याग करैगा तब चित्त क्षीण हो जावैगा जब क्षीणचित्त हुआ तब शांति होवैगी. हे रामजी ! काष्ठमौन होकरि अन्तरते सर्व त्याग करु अरु बाह्य कर्मोंको करु अभिमानते रहित होकरि अन्तर्मुख होहु अंतर्मुख कहिये आत्माविषे स्थित होना जब आत्माविषे स्थित होवैगा तब विद्यमान दृश्य भी तेरे ताईं न भासैगा. काहेते कि सर्व आत्मा ही भासैगा अरु जो तेरे पास भेरीके शब्द होवैंगे तौ भी न भासैगा अरु जो सुगंधि लेवैगा तौ भी नहीं लीनी जो कछु क्रिया करैगा सो तेरे ताईं स्पर्श न करैगी आकाशकी नाईं सर्वते असंग रहैगा. हे रामजी ! कछु देखै सो स्वरूपते इतर न देखै अरु जो बोलै सो भी आत्माते इतर न फुरै अन्ध अरु गूंगेकी नाईं अरु पत्थरकी शिलावत् मौन हो रहु संकलपते रहित अरु चेष्टा तेरी यंत्रकी पुतलीवत् खडी होवैगी जैसे यंत्रकी पुतली तागेकी सत्ताकरि चेष्टा करती है तैसे नीति शक्तिकरि प्राणोंकी चेष्टा तेरी होवैगी स्वाभाविक जो कछु किया है सो अभिमानते रहित होकर स्थित होना अरु जो अभिमानसहित चेष्टा करता है सो मूर्ख असम्यक्‌दर्शी है अरु जो सम्यक्‌दर्शी है तिसको अनात्मविषे अभिमान नहीं होता. हे रामजी !

जिसको अनात्म अभिमान नहीं अरु चित्त जिसका लेपायमान नहीं होता सो सारी सृष्टि संहार करै अथवा उत्पत्ति करै तौ उसको बंधन कछु नहीं होता जो सर्व कर्म अभिलाषते रहित होकरि करता है. हे रामजी ! समाधिविषे स्थित होहु अरु जाग्रत्की नाईं सर्व कर्म करु तेरेविषे दृष्टि भी आवै तौ भी तिनते सुषुप्तिकी नाईं फुरणा कोऊ न फुरै अपने स्वरूपकी समाधि रहै अरु समाधि भी तब कहिये जो कोऊ दूसरा होवै जो इसविषे स्थित होइये इसका त्याग करिये. हे रामजी ! जहां एक शब्द अरु दो शब्द कहना भी नहीं अद्वितीयात्मा परमार्थ सत्ता है तिसविषे चित्तने नानाप्रकारके विकार कल्पे हैं ज्ञानीको एकरस भासता है अरु ज्ञानीको ज्ञानी जानता है जैसे सर्पके खोजको सर्प जानता है तैसे ज्ञानीको एकरस आत्मा ही भासता है सो ज्ञानी ही जानता है अरु मूर्खको संकल्पकरि नानाप्रकार जगत् भासता है ताते संकल्पको त्यागिकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरु जैसे उन्मत्तकी चेष्टा स्वाभाविक होती है जैसे बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है अंग हलते हैं तैसे अभिमानते रहित होकरि चेष्टा करु जैसे पत्थरकी शिला जड होती है तैसे दृश्यकी भावनाते रहित जो फुरै कछु नहीं जडकी नाईं जब ऐसा होवैगा तब शांतपदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! चित्तके संबंधकरि क्षोभ उत्पन्न होता है जैसे वसंतऋतुविषे फूल उत्पन्न होते हैं तैसे चित्तरूपी वसंतऋतुविषे दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं जब तू चित्तको शांत करैगा तब परमपदको प्राप्त होवैगा, सो पद कैसा है सूक्ष्मते सूक्ष्म है अरु स्थूलते स्थूल है ताते तू असंग होहु जब तू स्थूलते स्थूल होवैगा तब भी असंग रहैगा ऐसे पदको पायकरि काष्ठ पत्थरकी नाईं मौन होहु. हे रामजी ! दृश्य पदार्थको त्यागिकरि जो द्रष्टा है जाननेवाला तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी ! इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं तिनकी ओर तू भावना मत करु कि यह सुन्दररूप हैं इनकी प्राप्ति होवै भलेविषे प्राप्त होनेकी भावना तू मत करै इनके जाननेवाला जो आत्मा है तिसविषे स्थित होहु जो पुरुष द्रष्टाविषे स्थित होता है सो गोपदकी नाईं संसार-

समुद्रको लंघि जाता है. हे रामजी! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं तिनविषे अपनी अपनी सृष्टि है कैसी सृष्टि है जो संकल्पमात्र ही है अपने अपने संकल्पविषे स्थित है अरु सर्व संकल्प आत्माके आश्रय हैं जैसे सब पदार्थ आकाशविषे स्थित हैं तैसे सर्व संकल्पकी सृष्टि आत्माके आश्रय है अरु एकके संकल्पको दूसरा नहीं जानता सृष्टि अपनी अपनी है जैसे समुद्रविषे जेते बुद्बुदे हैं तिनको जलकरि एकता है अरु आकारकरि एकता नहीं तैसे स्वरूपकरि सबकी एकता है अरु संकल्पसृष्टि अपनी अपनी है अरु जो पुरुष ऐसे चिंतवता है कि मैं इसकी सृष्टिको जानौं तब जानता है. हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है जैसी कोऊ भावना करता है तैसी सिद्धि होती है जब ऐसी ही भावना करिके स्वरूपविषे जुडता है जो सब सृष्टि मेरे ताईं भासे तौ भावना-करिके भासि आती है अरु ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता काहेते कि आत्माते इतर कोऊ पदार्थ नहीं जानता अरु जानता है जो स्वरूपते सबकी एकता है अरु संकल्परूपकरि एकता नहीं होती जैसे तरंगोंकी एकता नहीं अरु जलकी एकता है अरु जो एक तरंग दूसरेके साथ मिलि जाता है तौ उसके साथ एकता होती है तैसे एकका संकल्प भावनाकरि दूसरेके साथ मिलता है ताते ज्ञानी जानता है संकल्परूप आकार नहीं मिलते अरु स्वरूपकरि सबकी एकता है अरु जिसकी भावना होती है कि मैं इसकी सृष्टिको देखौं तब उसके संकल्पसाथ अपना संकल्प मिलायकरि देखता है तब उसकी सृष्टिको जानता है जैसे दो मणि होवैं तिनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है जब दोनों इकट्ठी राखिये एक ही ठौरविषे तब दोनोंका प्रकाश भी इकट्ठा हो जाता है तैसे संकल्पकी एकता भावनाकरि होती है अरु ज्ञानीको प्रथम संकल्प हुआ होवै कि मैं उसकी सृष्टिको देखौं तौ संकल्पकरि देखता है अरु ज्ञानके उपजेते वांछा नहीं रहती. हे रामजी! इच्छा चित्तका धर्म है जब चित्त ही नष्ट हो गया तब इच्छा किसकी रहै जब स्वरूपका प्रमाद होता है तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता है कि यह मेरा आहार हुआ मैं इसका भोजन करौंगा. हे रामजी! जो

पुरुष चित्तकी ओर हुआ अरु स्वरूपकी भावना न भयी तब चित्तरूपी दैत्य जन्मरूपी मनविषे फिरता है अरु तिसका भोजन करता रहता है जो उसका पुरुषार्थ नाश करता है अरु आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न होने नहीं देता जैसे वृक्षको अग्नि लगै तब बहुरि उसविषे फल नहीं पडते तैसे पुरुषार्थरूपी वृक्षको भोगरूपी अग्नि लगी तब शुद्धबुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होता. हे रामजी! चित्त आत्माविषे जोड विषयकी ओर जाने न देवहु यह चित्त दुष्ट है जब इसको स्थिर करौगे तब परम अमृतकरि शोभायमान होहुगे, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शोभता है तैसे ब्रह्म लक्ष्मीकरि शोभौगे अरु परमनिर्वाण पदको प्राप्त होहुगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे निर्वाणवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३२.

भूमिकालक्षणविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! सप्तभूमिका ज्ञानकी हैं इनकरि ज्ञान उत्पन्न होता है. राम उवाच-हे भगवन्! जिस भूमिकाविषे जिज्ञासी प्राप्त होता है तिसका लक्षण क्या है यह सप्त भूमिका क्या हैं अरु प्राप्त कैसे होती हैं? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह सप्त भूमिका तुझको कहता हौं जिस प्रकार प्राप्त होती हैं अरु जिस प्रकार भूमिकाते ज्ञान प्राप्त होता है सो श्रवण करु. हे रामजी! जब बालक माताके गर्भविषे होता है अरु बाह्य निकसता है तब इसको दृढ सुषुप्ति जड अवस्था होती है जैसे ज्ञानीकी होती है परंतु बालकविषे संस्कार रहता है तिसकरि संस्कारकी सत्यता आगे होनी है जैसे बीजविषे अंकुर होता है तिसते आगे वृक्ष होना है तैसे बालककी भावी होनी है अरु ज्ञानीकी भावी नहीं होनी जैसे दग्धबीजविषे अंकुर नहीं होता तैसे ज्ञानीकी भावी नहीं होनी संसारते सुषुप्त है अरु स्वरूपविषे नहीं इसीते

आवी तिसविषे नहीं होनी. जब बालकको बाह्य निकसेते कोऊ काल व्यतीत होता है तब दृढ जडता निवृत्त होती है अरु सुषुप्ति रहती है केते कालते उपरान्त सुषुप्ति भी लय होती है अरु चेतनता होती है तब जानता है कि यह मैं हौं यह मेरे पिता माता हैं तब कुलवाले तिसको शिखावते हैं कि यह मीठा है यह कडुवा है यह तेरी माता है यह पिता है यह तेरा कुल है इसकरि पाप होता है इसकरि पुण्य होता है इसकरि स्वर्ग पाता है इसकरि नरक पाता है इस प्रकार यज्ञ होता है इस प्रकार तप होता है इस प्रकार दान करता है. हे रामजी ! इस प्रकार कुलके उपदेशकरि अरु शास्त्रके भयकरि धर्मविषे विचरता है अरु पापका त्याग करता है ऐसा जो शास्त्रानुसार विचरणेवाला पुरुष सो धर्मात्मा कहाता है सो धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकारके हैं एक प्रवृत्तिकी ओर हैं एक निवृत्तिकी ओर हैं जो प्रवृत्तिकी ओर हैं सो पुण्यकर्मोंकरि स्वर्गफल भोगते हैं वह मोक्षको उत्तम नहीं जानते इसते संसारविषे भ्रमते हैं जलके तृणवत् कभी चिरकालते इस क्रमविषे आयकरि मुक्त होते हैं अरु जो निवृत्तिकी ओर होता है तिसको विषयभोगते वैराग्य उपजता है अरु कहता है कि यह संसार मिथ्या है मैं इसको तरौं अरु तिस पदको प्राप्त होऊं जहां क्षय अरु अतिशय न होवै यह संसार सर्वदा चलरूप है अरु दुःखदाई है. हे रामजी ! तिस पुरुषको इस क्रम करिकै ज्ञानविज्ञान उत्पन्न होते हैं अरु जो पशुधर्मा मनुष्य हैं तिनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है पशुधर्मा कहिये जो शास्त्रके अर्थको नहीं जानते कि शुभ क्या है अरु अशुभ क्या है अपनी इच्छाविषे वर्तना अनुभवका ग्रहण करना विचारते रहित होना अरु मनुष्य भी दो प्रकारके हैं एक प्रवृत्तिका लक्षण एक निवृत्तिका लक्षण है प्रवृत्ति कहिये जिसको शास्त्र शुभ कहै तिसको ग्रहण करना अशुभका त्याग करना कामना धारिकै यज्ञादिक शुभ कर्म करणे फलके निमित्त जो स्वर्ग धन पुत्रादिक मेरे ताईं प्राप्त होवैंगे तिनकी प्रार्थना धारिकरि शुभ कर्म करणे इस प्रकार संसारसमुद्रविषे बहते हैं अरु चिरकालकरि निवृत्तिकी ओर

भी आते हैं तब स्वरूपको पाते हैं सो निवृत्ति क्या है जो निष्काम होकरि शुभ करणे तिनकरि अंतःकरण शुद्ध होता है तब तिसको वैराग्य उपजता है अरु कहाता है मेरे ताईं कर्मोंसाथ क्या है अरु फलोंकरि क्या है मैं किसी प्रकार आत्मपदको प्राप्त होऊं अरु संसारते कब मुक्त होऊंगा यह संसार मिथ्या है अरु भोगकरि मेरे ताईं क्या है यह भोग सर्प है. हे रामजी! इस प्रकार भोगकी निंदा करता है अरु उपरत होता है अरु शम दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं तिनविषे विचरता है अरु देश काल पदार्थको शुभ अशुभ विचारता है अरु मर्यादासाथ बोलता है अरु संतजनका संग करता है सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याको वारंवार विचारता है इस प्रकार उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है अरु संतजनका संग करता है जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला दिन दिनप्रति बढ़ती है तैसे इसकी बुद्धि बढती है अरु विषयते उपरत होती है तीर्थ ठाकुरद्वारे शुभ स्थान पूजता है अरु देह इंद्रियोंकरि संतकी टहल करता है अरु सर्वसाथ मित्रभाव दया सत्य कोमलताकरि विचरता है ऐसा वचन बोलता है जिसकरि सब कोऊ प्रसन्न होवैं अरु यथाशास्त्र होवैं अरु इतर किसीको नहीं कहना अरु अज्ञानीका संग त्यागना अरु स्वर्ग आदिक सुखकी भावना न करनी केवल आत्मपरायण होना, संत अरु शास्त्रोंकी दृढ भावना करनी तिनके अर्थोंविषे सुरति लगावनी अपर किसी ओर चित्त न लगाना जैसे कदर्य दरिद्री सर्वदा धनकी चिंतवना करता है तैसे वह सदा आत्माकी चिंतवना करता है जो पुरुष एते गुण संयुक्त है तिसको प्रथम भूमिका प्राप्त भयी है अरु पापरूपी सर्पको मोर समान सिरनीकरिकै नाश करता है, संतजन सच्छास्त्र अरु धर्मरूपी मेघको गर्दन ऊंची करि देखता है अरु प्रसन्न होता है इसका नाम शुभेच्छा है, तिसको बहुरि दूसरी भूमिका आय प्राप्त होती है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है, तैसे उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है, तिसके यह लक्षण हैं जो सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याको विचारना, अरु दृढ भावना लगावनी, तिस विचारका कवच गलेविषे पाता है, तिसकरि शस्त्रोंका घाउ कोऊ नहीं

लगता, जो इंद्रियांरूपी चोर हैं, इच्छारूपी तिनके हाथविषे बरछी है सो विचाररूपी कवच पहिरनेवालेको नहीं लगती. हे रामजी ! इंद्रियांरूपी सर्प हैं, तृष्णा तिनविषे विष है, तिसकरि मूर्खको मारती हैं अरु विचारवान् जो पुरुष है, सो इंद्रियोंके विषयको नाशकरि छोड़ता है, अरु सर्व ओरते उदासीन रहता है, दुर्जनकी संगतिका बल करिकै त्याग करता है, जैसे गधा तृणको त्यागता है, तैसे मूर्खकी संगति देहते लेकरि त्यागता है अरु सर्व इच्छाका त्याग किया है, परंतु एक इच्छा तिसविषे भी रहती है, सो दया सर्वपर करता है अरु संतोषवान् रहता है अरु निषेध गुण स्वाभाविक जाते रहते हैं दंभ गर्व मोह लोभ आदिक तिसके स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं जैसे सर्प कंचुकीको त्यागिकरि शोभायमान होता है, तैसे विचारवान् बाह्य इंद्रियोंको त्याग करिकै शोभता है अरु जो क्रोध भी तिसविषे दृष्टि आता है तौ क्षणमात्र होता है, हृदयविषे स्थित नहीं हो सकता है अरु खाना पीना लेना देना जो कछु क्रिया है, सो विचारपूर्वक करता है अरु सर्वदा शुद्ध मार्गविषे विचरता है, संतजनोंका संग करना अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ विचारने, बोधको बढावना, तप करना, तीर्थोंका स्नान करना इस प्रकार कालको व्यतीत करता है. हे रामजी ! यह दूसरी भूमिका है, जब तीसरी भूमिका आती है, तब श्रुति जो हैं वेद अरु स्मृति जो हैं, धर्मशास्त्र जिनके अर्थ हृदयविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भँवरा आनि स्थित होता है, तैसे तिस पुरुषके हृदयविषे शुभ गुण स्थित होते हैं, फूलोंकी शय्या भी सुखदाई नहीं भासती वन अरु कंदरा सुखदायक भासते हैं, जो वैराग्य तिसका दिन दिन बढ़ता जाता है अरु तलाव बावलियां नदियांविषे स्नान करना अरु शुभस्थानों विषे रहना, पत्थरकी शिलापर शयन करना अरु देहको तपकरि क्षीण करना अरु धारणाकरि चित्तको किसी ठौरविषे न लगावना, अरु आत्मभावना ध्यान करना अरु भोगते सर्वदा उपरांत होना भोगको अंतवंत विचारना, जो यह स्थिर नहीं रहतेअरु देहके अहंकारको उपाधि जानकरि त्यागता है रक्त मांस पुरीषादिकते पूर्ण जानकरि उस विषे

अहंकारको त्यागताहै अरु निंदा करता है सूखे तृणकी नाईं तुच्छ जानकरि त्यागता है जैसे तृण विष्ठाकरि संयुक्त होवै अरु तिसको त्यागता है तैसे देहके अहंकारको त्यागता है अरु कंदराविषे विचरना, फूल फलका आहार करना अरु संतजनोंकी टहल करनी इस प्रकार आयुर्बलको वितावता है, सदा असंग रहता है वह तीसरी भूमिका है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिका- लक्षणविचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३३.

तृतीयभूमिकाविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह ज्ञानका साधन है ब्रह्मविद्याको विचारना वारंवार इसके अर्थकी भावना करनी अरु पुण्य क्रियाविषे विचारना इसते इतर ज्ञान का साधन नहीं इसकरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है; जिस पुरुषको ऐसी भावना हुई है तिसको नाना प्रकारकी सुगंधि अगर चंदन चोएते आदि लेकरि अरु अप्सरा अनिच्छित आय प्राप्त होवै तब तिनका निरादर करता है अरु जो स्त्रीको देखता है तौ भी मातासमान जानता है अरु पराये धनको पत्थरबट्टेके समान देखिकरि वांछा नहीं करता है अरु सर्व भूतको देखिकरि दया ही करता है जैसे आपको सुखकरि प्रसन्न दुःखकरि अनिष्ट जानता है तैसे वह अपरको भी आप जानिकरि सुख देता है अरु दुःख किसीको नहीं देता इस प्रकार पुण्यक्रियाविषे विचरता है अरु सच्छास्त्रके अर्थका अभ्यास करता है सर्वदा असंग रहता है अरु असंगता भी दो प्रकारकी है. राम उवाच-हे भगवन्! असंग संगका लक्षण क्या है तिनका भेद तौ तुमको होवैगा. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! असंग दो प्रकारका है एक समान है एक विशेष है तिनका लक्षण श्रवण करु, प्रथम समान यह है जो वह कहता है मैं कछु नहीं करता न मैं किसीको देता हौं, न मेरे ताईं कोऊ देता है सर्व ईश्वरकी आज्ञा वर्त्तती है, जिसकी धन देनेकी

इच्छा होती है तिसको धन देता है, जिससों लेना होता है, तिससों लेता है, इसके अधीन कछु नहीं अरु जो कछु दान तप यज्ञादि करता है, सो ईश्वरार्पण करता है अपना अभिमान कछु नहीं करता अरु कहता है सब ईश्वरकी शक्तिकरि होता है, इस प्रकार निरभिमान होकरि धर्म चेष्टाविषे स्वाभाविक विचरता है अरु जो कछु इंद्रियोंके भोगकी संपदा है, तिसको आपदा जानता है, भोगको महा आपदारूप मानता है संपदा आपदारूप है, संयोग वियोगरूप है जेते पदार्थ हैं, सो सब संनिपातरूप हैं, विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, सबको नाशरूप जानता है, संयोगवियोगविषे दुःखदाई है; परस्त्रीको विषकी वल्ली समान रसतेरहित जानता है अरु सर्व पदार्थोंको परिणामी जानिकरि इच्छा किसीकी नहीं करता है अरु संपूर्ण विश्वका जो ईश्वर है, जिसको सुख देना है तिसको सुख देता है जिसको दुःख देना है तिसको दुःख देता है. इसके हाथ कछु नहीं, करने करानेवाले ईश्वर है, न मैं कर्त्ता हौं, न मैं भोक्ता हौं, न मैं वक्ता हौं, जो कछु होता है, सो सब ईश्वरकी सत्ता होकरि होता है, ऐसे निरभिमान होकरि पुण्यक्रियाको करता, सो समान असंग है, तिसके वचन सुनते श्रवणको अमृतकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार संतके मिलनेकरि भूमिकाते जिसकी बुद्धि बढ़ी है, अरु निरभिमान है, तिसके उपदेशविषे अनुभवकरि तबलग अभ्यास करै, जबलग हाथपर आँवलेकी नाईं आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष होवै अरु यह जो कहा था, ईश्वर सब कर्ता है, सो समान असंग है अरु विशेष असंगवाला कहाता है, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, केवल आकाशरूप आत्मा हौं न मेरेविषे करणा है न करावणा है, न कोऊ अपर है न मेरा है, केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हौं. हे रामजी! वह पुरुष न अंतर न बाहिर देखता है; न पदार्थ न अपदार्थ न जड़ न चेतन, न आकाश न पातालको देखता है न देशको न पृथ्वीको, न मेरेको न तेरेको देखता है, निर्वास अज अविनाशी सर्व शब्द अर्थोंते रहित केवल शून्य आकाशविषे स्थित है चित्तते रहित चेतनविषे जो प्रस्थित है तिसको असंग श्रेष्ठ कहते है, बाह्य उसकी चेष्टा दृष्ट भी आती है, तौ भी अन्तर पदा-

र्थकी भावनाका अभाव है जैसे जलविषे कमल दृष्टि भी आता है, परंतु ऊँचा ही रहता है, तैसे क्रियाविषे विचरता दृष्टिभी आता है परंतु असंग रहता है, कामना उसको कोऊ नहीं रहती कि यह होवै अरु यह न होवै, काहेते कि उसको संसारका अभाव निश्चय भया है, सर्व कलनाते रहित है, आत्माते इतर किसी पदार्थकी सत्ता नहीं फुरती सो श्रेष्ठ असंग कहाता है अरु करनेकरि उसका अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता अकरनेविषे प्रत्यवाय नहीं होता वह सर्वदा असंग है संसारविषे डूबता कदाचित् नहीं संसारसमुद्रके पारको प्राप्त हुआ है अरु अनात्मविषे आत्मभावना तिस पुरुषने त्यागी है, अहंभावका त्याग किया है, जेते पदार्थ हैं इष्ट अनिष्टरूप तिनके सुखदुःखकी वेदना नहीं फुरती सदा मौनरूप है ऐसा पत्थरसमान है सो श्रेष्ठ असंग कहाता है. हे रामजी। एक कमल है सो अज्ञानरूपी कीचसों निकसिकरि आत्मारूपी जलविषे विराजता है संसारकी अभावना उसका बीज है अरु तृष्णारूपी उस जलविषे मच्छियां हैं कमलके चौफेर फिरती हैं अरु कुकर्म दुःखरूपी तिससाथ कांटे हैं अज्ञानरूपी रात्रिकरि मुख मूँदि रहता है अरु विचाररूपी सूर्यके उदय हुएते खिलता है अरु शोभता है सुगंधि तिसविषे संतोष है सो हृदय बीच लगता है. फल तिसका असंग है तीसरी भूमिकाविषे यह ऊगता है. हे रामजी। संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंका विचारना सारको प्राप्त करता है इनकरिकै अमृत मोक्षको प्राप्त होता है बड़ा कष्ट है कि ऐसे स्वरूपको विस्मरण करिके जीव दुःखी होते हैं, इसका स्वरूप दुःखोंका नाश करता है जिसविषे दुःख कोऊ नहीं आनंदरूप है इन भूमिकाद्वारा प्राप्त होता है; बहुरि बंधमान नहीं होता. हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञानके निकटवर्ती है अरु विचारवान् इन भूमिकाविषे स्थित होकरि बुद्धिको बढावते हैं जब इस प्रकार बोधको बढ़ावता है अरु शास्त्रयुक्ति साथ रक्षा करता है तब क्रमकरिकै यह तीसरी भूमिकाको प्राप्त होता है तहां इसको असंगता प्राप्त होती है जैसे किसान खेतीकी रक्षा करता है बढ़ता है तैसे विचाररूपी जलकरि बुद्धिको बढ़ावता है जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है तब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है अरु अहंकार मोहादिक शत्रुते रक्षा

करता है. हे रामजी ! इस भूमिकाको प्राप्त होकरि यह ज्ञानवान् होता है सो यह भूमिका कर्मकरिके प्राप्त होती है अथवा बडे पुण्यकर्म किये होवैं तिसकरि आनि फुरती है अथवा अकस्मात् आनि फुरती है, जैसे नदीके तटपर कोऊ आय बैठा होवै, अरु नदीके वेगकरि बीच जाय पडै तैसे जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है तब फेरि बुद्धिको बढावता है, जब बुद्धिरूपी बल्ली बढती है तब ज्ञानरूपी फल लगता है, जब ज्ञान उपजा तब प्रत्यक्ष क्रिया तिसविषे दृष्टि भी आवै तौ भी इसका अभिमान नहीं रहता जैसे शुद्धमणि प्रतिबिंबको ग्रहण भी करती है परंतु रंग कोऊ नहीं चढता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे तृतीयभूमिकाविचार-वर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३४.

विश्ववासनारूपवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! तुमने भूमिका वर्णन करी तिसविषे मेरे ताईं यह संशय है कि जो भूमिकाते रहित हैं अरु प्रकृतिके सन्मुख हैं तिनको भी कदाचित् ज्ञान उपजैगा अथवा न उपजैगा अरु जिसने एक भूमिका पायी होवै अथवा दो भूमिका पायी होवैं अथवा तीसरी भूमिका पायी होवै और शरीर तिसका छूटि गया अरु आत्मपदका साक्षात्कार न भया अरु स्वर्गादिककी उसको कामना भी नहीं तब वह किस गतिको प्राप्त होता है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वे पुरुष जो विषयी हैं तिनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है वह वासनाकरिके घटीयंत्रकी नाईं फिरते हैं कबहूं स्वर्ग कबहूं पाताल जाते हैं अरु दुःख पाते हैं कदाचित् अकस्मात् काकतालीयन्यायकी नाईं उसको संतका संग अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण करना यह वासना आय फुरती है अरु जैसे मरुस्थलविषे वल्ली लगनी कठिन है तैसे जिस पुरुषको आत्माका प्रमाद है अरु भोगकी भावना है तिसको ज्ञान

प्राप्त होना कठिन है परंतु जब अकस्मात् संतके संगते तिसको वैराग्य उपजता है अरु बुद्धि उसकी निवृत्तिकी ओर आती है तब भूमिकाद्वारा ज्ञान तिसको प्राप्त होता है तब मुक्त होता है. हे रामजी ! यह भावना अकस्मात् उपजे बिना योनिविषे भ्रमता है अरु जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त भयी हैं अरु शरीर तिसका छूटि गया तब अपर जन्म पायकरि ज्ञानको प्राप्त होता है पिछला संस्कार जागि आता है अरु दिन दिन बढ़ता जाता है जैसे बीजते वृक्षका अंकुर होता है बहुरि टास फूल फलकरि बढ़ता जाता है तैसे उसको अभ्यासका संस्कार बढ़ता जाता है अरु ज्ञान प्राप्त होता है जैसे पहलवान् खेलता है अरु रात्रिको सोय जाता है बहुरि दिन हुए उठता है तब पहलवान्हीका अभ्यास आय फुरता है जैसे कोऊ मार्ग चलता२ सोय जावै अरु जागिकरि चलने लगै तैसे वह फेरि पूर्वके अभ्यासको लगता है. हे रामजी ! जिसको भावना होती है जो मेरे ताईं विशेषता प्राप्त होवै तिसकरि जन्मको पाता है ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत जिसको विशेष होनेकी कामना है सो जन्म पाता है अरु ज्ञानीको भोगको इच्छा अरु विशेष प्राप्ति होनेकी इच्छा नहीं होती जिनको भोगकी इच्छा होती है सो भोगकरि आपको विशेष जानते हैं अरु अनिष्टके निवृत्तिकी इच्छा करते हैं अरु ज्ञानीको वासना कोऊ नहीं होती कि यह विशेषता मेरे ताईं प्राप्त होवै इसीते बहुरि जन्म नहीं पाता जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसे वासनाते रहितज्ञानी जन्म नहीं पाता. हे रामजी ! जन्मका कारण वासना है जैसी जैसी वासना होती है तैसी २ अवस्थाको प्राप्त होता है सो नाना प्रकारकी वासना हैं जब शरीर छूटनेका समय आता है तब जो वासना दृढ होती है जिसका सर्वदा अभ्यास होता है अंतकालविषे वह सर्व वासना दिखायी देती हैं पाठकी अरु तपकी कर्मकी देवताकी इत्यादिक वासना आगे आनि स्थित होती हैं तिस समय सबको मर्दन करिकै वही भासती है. हे रामजी ! तिस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं सो भी नहीं भासते पांचों इंद्रियोंके विषय विद्यमान होवैं तौ भी नहीं भासते वही पदार्थ भासता है

जिसका दृढ अभ्यास किया होता है वासना तो अनेक होती हैं परंतु जैसी वासना दृढ़ होती है तिसीके अनुसार शरीर धारता है जब देह छूटता है तब मुहूर्तपर्यंत जड़ता रहती है सुषुप्तिकी नाईं तिसके उपरांत चेतनता होती है तब वासनाके अनुसार शरीरको देखता है अरु जानता है कि यह मेरा शरीर है मैं उत्पन्न हुआ हौं एक इसी प्रकार होते हैं अरु एक ऐसे होते हैं कि तहां तिसी क्षणविषे युगका अनुभव करते हैं बहुरि एक ऐसे होते हैं जो चिरकालपर्यंत जड़ रहते हैं चिर-कालते उनको चेतनता फुरती है तिसके अनुसार संसारभ्रमको देखते हैं अरु एक संस्कारवान् होते हैं तिनको शीघ्र ही एक क्षणते चेत-नता होती है अरु जानता है कि मैं उस ठौरते मुआ हौं अरु इस ठौर आय जन्मा हौं यह मेरी माता है यह मेरा पिता है यह मेरा कुल है, इस प्रकार एक मुहूर्तविषे जागिकरि देखता है अरु बड़े कुलको देखता है इसी प्रकार परलोकको देखता है अरु यमराजके दूतको देखता है अरु जानता है यह मेरे ताईं लिये जाते हैं अरु देखता है कि मेरे पुत्रोंने मेरे पिंड किये हैं तिसकरि मेरा शरीर हुआ है अरु मेरे ताईं दूत ले चले हैं तब आगे धर्मराजको देखता है तिसके निकट जाय खड़ा होता है अरु पुण्य पाप दोनों मूर्ति धारिकरि इसके आगे आनि स्थित होते हैं तब धर्मराज अंतर्यामीसों पूछता है कि इसने क्या कर्म किये हैं ? जो पुण्यवान् होताहै तौ स्वर्गभोग भोगायकरि बहुरि योनिविषे डारि देते हैं जो पापी होता है तौ नरकविषे डारि देते हैं इस प्रकार जन्मको धारता है सर्पकी योनिमें कहता है मैं सर्प हौं बलद वानर तीतर मच्छ बगला गर्दभ वल्ली वृक्ष इत्यादिक योनिको पाता है अरु जानता है मैं यही हौं अक-स्मात् काकतालीय योगकी नाईं कदाचित् मनुष्यशरीर पाता है अरु माताके गर्भविषे जानता है कि यहां मैं जन्म लिया है यह मेरी माता है मैं पिताके उत्पन्न भया हौं यह मेरा कुल है बहुरि बाहिर निकसता है बालक होता है अरु जानता है कि मैं बालक हौं बहुरि यौवन अवस्था होती है तब जानता है मैं ज्वान हौं बहुरि वृद्ध होता है तब जानता है मैं वृद्ध हौं इस प्रकार कालको बिताता है बहुरि मृत्युको पाता है अरु सर्प

तोता तीतर वानर मच्छ कच्छ वृक्ष पशु पक्षी देवता इत्यादिकोंके जन्म धारता है. हे रामजी! संसारविषे घटीयंत्रकी नाईं फिरता है कबहूँ ऊर्ध्वको कबहूं अधःको जाता है स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पाता है. हे रामजी! एता विस्तार जो तुमको कहा है सो बना कछु नहीं केवल अद्वैत आत्मा है चित्तके संयोगकरि एते भ्रमको देखता है वासनाद्वारा विमानोंको देखता है तहां आकाशमें जाता है जैसे पवन गंधको ले जाता है तैसे पुर्यष्टकको ले जाता है अरु शरीरको देखता है. हे रामजी! आत्माते इतर कछु नहीं परंतु चित्तके संयोगकरि एते भ्रमको देखता है ताते चित्तको स्थिर करौ तब भ्रम मिटि जावैगा अरु आत्मतत्त्वमात्र ही शेष रहैगा सो शुद्ध है अरु आनंदरूप है तिसविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३५.

सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! पूर्व तुझको प्रवृत्तिवालेका क्रम कहा है अब निवृत्तिका क्रम सुन. जिसको भूमिका प्राप्त भयी है अरु आत्मपद नहीं प्राप्त भया तिसके पाप तौ सर्व दग्ध होजाते हैं जब उसका शरीर छूटता है तब वासनाके अनुसार शून्याकार हुआ बहुरि अपने साथ शरीर देखता है बहुरि बडे परलोकको देखता है तहां स्वर्गके सुख भोगता है विमानपर चढता है लोकपालके पुरोंविषे विचरता है जहां मन्द मन्द पवन चलता है सुंदर वृक्षोंकी सुगंधि है पांचों इंद्रियोंके रमणीय विषय हैं तिन स्थानोंविषे विचरता है देवताविषे क्रीडा करता है भोगको भोगिकरि संसारविषे उपजता है बहुरि भूमिकाक्रमको प्राप्त होता है जैसे मार्ग चलता कोऊ सोय जावै जागिकरि बहुरि चलता है तैसे शरीर पाय-करि बहुरि भूमिकाके क्रमको प्राप्त होता है जैसी जैसी भावना दृढ होती है तैसे ही भासता है यह सब जगत् संकल्पमात्र है संकल्पके अनुसार ही

भासता है वासनाके अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है तहांते भोगकरि बहुरि संसारविषे आनि पड़ता है इसी प्रकार संकल्पकरि भट-कता है जब आत्माकी ओर आता है तब संसारभ्रम मिटि जाता है जबलग आत्माकी ओर नहीं आता तबलग अपने संकल्पकरि संसारको देखता है. जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि भासती है देवता दैत्य भूमिलोक स्वर्ग सब संकल्पके रचे हुए हैं जेता कछु संसार भासता है ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि सब जगत् मनोमात्र है मनके संकल्पते उदय हुआ है असत्‌रूप है, जैसे मनोराज्य गंधर्वनगर स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप है तैसे यह जगत् भ्रमरूप है सब जीवकी अपनी अपनी सृष्टि है परस्पर अदृष्ट है उसकी सृष्टि वह नहीं जानता कहूं उदय होती भासती है कहूं लय हो जाती है, जैसे सूर्य अपर देशको जाता है तैसे देहको त्यागिकरि परलो-कको जाता है अरु स्वरूपविषे आना जाना अहं त्वं कल्पना कोऊ नहीं केवल सत्तामात्र अपने आपविषे स्थित है जगत् भी वही है. हे रामजी ! यह विश्व आत्मस्वरूप है जैसे मणिका चमत्कार होता है तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है अरु जो कछु तेरे ताईं भासता है सो आत्मा ही है आत्माविना आभास नहीं होता जैसे इक्षुविषे मधुरता होती है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता होती है तैसे आत्माविषे विश्व है जो कछु देखता है श्रवण करता है जो स्पर्श करै सुगंध लेवै सो सर्व आत्मा ही जान अथवा जो इनके जाननेवाला है अनुभवरूप तिसविषे स्थित होहु इंद्रियां अरु विषयको त्यागिकरि अनुभवरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! यह विश्व संवित्‌रूप है अरु संवित् ही विश्वरूप है जब संवित् बहिर्मुख होकरि रस लेती है तब जाग्रत्‌को देखती है जब अंतर्मुख होकरि रस लेती है तब स्वप्न होता है जब शांत हो जाती है तब सुषुप्ति होती है संसारको सत्य जानिकरि जो रस लेती है तब जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति अवस्था होती है अरु जब संवित्‌ते रसकी सत्यता जानि रहै तब तुरीया पद होता है जो इसका जानना फुरता है, यह पदार्थ है यह नहीं, जब यह नष्ट होवै तब तुरीया पद है. हे रामजी ! यह विश्व

फुरनेमात्र है जब फुरना नष्ट होवै तब विश्व देखी नहीं जाती जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ जागेते मिथ्या होते हैं तैसे यह जगत् भी मिथ्या है अरु जीव जीव प्रति जो अपनी २ सृष्टि होती है तिसविषे आप भी कछु बनि पड़ता है ताते दुःखी होता है जब इस अहंकारको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होवै तब विश्व कहूँ नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३६.

विश्वाकाशैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह सृष्टिका स्वरूप संकल्पमात्र है अरु संकल्प भी आकाशरूप है आकाश अरु स्वर्गविषे कछु भेद नहीं जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं कैसी सृष्टि है जो अनेक पदार्थ हैं परंतु परस्पर रोकती नहीं अरु वास्तवते विश्व भी आत्माका चमत्कार है अरु आत्मरूप है जो आत्मरूप है तौ राग किसविषे करिये अरु द्वेष किसविषे करिये चेतन धातुविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं अरु यह आश्चर्य है जो आत्माते इतर हुआ कछु नहीं अरु भिन्न भिन्न संवेदन दृष्टि आती है अरु नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं. हे रामजी ! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है एक सृष्टि ऐसी है कि तिनका संकल्प एक दृष्टि आता है परंतु सृष्टि अपनी अपनी है अरु एक ऐसी है जो भिन्न भिन्न है परंतु समानताकरिकै एक ही दृष्टि आती है जैसे जलकी बूंदें इकट्ठी होती हैं जैसे धूड़के कणके भिन्न भिन्न होते हैं परंतु एक ही धूड़ भासती है जैसे नदीविषे नदी पड़ती है तौ एक ही जल हो जाता है तैसे समान अधिकरणकरिकै एक ही भासते हैं एक एकके साथ मिलते हैं अरु नहीं भी मिलते जैसे क्षीरसमुद्रविषे घृत डारिये तौ नहीं मिलता तैसे एक संकल्प ऐसे हैं जो अपरसाथ नहीं मिलते जैसे एक सूर्यका प्रकाश होवै अरु एक दीपकका प्रकाश होवै अरु एक मणिका प्रकाश होवै

तब वहाँ भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं अरु एक जैसे होते हैं तैसे कई सृष्टि एक ही भासती हैं अरु भिन्न भिन्न होती हैं अरु कई इकट्ठी होती हैं अरु भिन्न भिन्न दृष्टि आती हैं. हे रामजी ! एती सृष्टि जो मैंने तेरे ताईं कही है, सो सब अधिष्ठानविषे फुरणेकरिकै कई कोटि उत्पन्न होती हैं अरु कई कोटि लीन हो जाती हैं, सृष्टि जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे उपजिकरि लीन हो जाते हैं तैसे उत्पन्न अरु लीन होती है अधिष्ठान ज्योंका त्यों है काहेते कि तिसते इतर कछु नहीं अरु ब्रह्म आत्मा आदिक जो सर्व हैं सो भी फुरणेविषे हुए हैं जबलग शब्द अर्थकी भावना है तबलग भासते हैं, जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ कोऊ नहीं भासैगा केवल शुद्ध चेतनमात्र ही शेष रहैगा, बहुरि संसारका भाव किसी ठौर न होवैगा जैसे पवन जब-लग चलता है तबलग जानता है कि पवन है अरु गंध भी पवन-करिकै जानी जाती है सुगंध आई अथवा दुर्गंध आई अरु जब पवन चलनेते रहित होता है तब नहीं भासता अरु गंध भी नहीं भासता, तैसे जब फुरणा निवृत्त हुआ तब संसार अरु संसारका अर्थ दोनों नहीं भासते अरु फुरणेविषे जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपनी अपनी सृष्टि है तिस तिस सृष्टिविषे सत्ता समान ब्रह्म स्थित है अरु सर्वका अपना आप है द्वैतभावको कदाचित् नहीं प्राप्त भया. हे रामजी ! ताते ऐसे जान कि, आकाश भी आत्मा है पृथ्वी भी आत्मा है, जल भी आत्मा है, अग्नि आदिक सर्व पदार्थ आत्मा ही हैं, अथवा ऐसे जान कि, सर्व मिथ्या हैं इनका साक्षीभूत सत् ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है इतर कछु नहीं उसी ब्रह्मविषे अंशते अनेक सुमेरु अरु मंदराचल आदिक स्थित हैं, अरु अंशांशीभाव भी आत्माविषे स्थूलताके निमित्त कहे हैं, वास्तव नहीं, जतावने निमित्त कहे हैं, आत्मा एकरस है. हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो आत्मसत्ता विना होवै, जिसको सत्य जानता है सो भी आत्मा है अरु जिसको असत्य जानता है सो भी आत्मा है, आत्माविषे जैसे सत्यका फुरणा है तैसे असत्यका फुरणा है फुरणा दोनोंका तुल्य है, जैसे स्वप्नविषे एक सत्य जानता है, एक असत्य

जानता है तैसे जो इंद्रियोंके विषय होते हैं तिनको सत् जानता है, अरु आकाशके फूल ससेके शृंगको असत् कहता है सो सर्व अनुभव-करि फुरे हैं, ताते अनुभवरूप हैं अरु ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो आत्माविषे असत् नहीं जो कछु भासते हैं सो सर्व फुरणेविषे हुए हैं, सत्य क्या अरु असत्य क्या सब मिथ्या हैं, स्वप्नके सत् अरु असत्की नाईं है, जो अनुभवकरिकै सिद्ध है सो सर्व सत्य है अरु सत्य अनु-भवते इतर है सो सब असत्य है. हे रामजी! गुणातीत परमात्म-स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल विषे ज्ञानवान् पुरुष सम है अरु दशों दिशा आकाश जल अग्नि आदिक-पदार्थ तिसको सर्व आत्मा ही दृष्टि आता है आत्माते इतर कछु नहीं भासता सूर्य चंद्रमा तारे सर्व आत्मा हैं यह विश्व आकाशरूप है अरु शुद्ध निर्मल है आकाशविषे आकाश स्थित है, इतर कछु नहीं अरु जो तेरे ताईं इतर भासै सो मिथ्या जान, भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, सत कछु नहीं अरु जो परमार्थ करि देखै तौ सर्व आत्मा है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विश्वाकाशैकताप्रति-पादनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१३६॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३७.

विश्वविलयवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी! यह विश्व स्वप्नसमान है, जैसे स्वप्नकी सैन्य नाना प्रकार दीखती हैं शस्त्र चलते हैं इत्यादिक भासते हैं, अरु आत्माविषे इनका रूप देखना अरु मानना शब्द अर्थ कोऊ नहीं जगत्ते रहित है अरु जगतरूप भान होता है अहं त्वं मेरा तेरा जेता कछु भासता है सो सब स्वप्नवत् है भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, सर्वका अधि-ष्ठान है सो सत्य है, सर्व तिसीविषे कल्पित है अरु जो अनुभवकरि देखिये तौ सर्व आत्मस्वरूप है, इतर देखिये तौ कछु नहीं जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ सब अर्थाकार भासते हैं तौ भी मिथ्या हैं, तैसे यह विश्व भ्रमकरिकै

फुरता है उनकी अपेक्षाकरि वह तू है, उसकी अपेक्षाकरि वह यह है वास्तवते दोनों नहीं जो है सो आत्मा ही है. राम उवाच–हे भगवन् ! तुमने कहा जो त्वं आदिक अहंपर्यंत अरु अहं आदिक त्वं पर्यंत सर्व स्वप्नसैन्यकी नाईं मिथ्या है अरु अनुभवकरि देखिये तौ आत्मस्वरूप है,हम स्वप्नसैन्यविषे हैं,अथवा हमारा अहम् आत्मा है,सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो अनात्म देहादिकविषे अहंभावना करनी मैं हौं तौ स्वप्नसैन्यके तुल्य है अरु जो अधिष्ठान चिन्मात्रविषे दृश्यते अरु अहंकारते रहित अहंभावना करनी सो आत्मरूप है. हे रामजी ! तू आत्मरूप है अरु यह विश्व सत् भी नहीं असत् भी नहीं जो अधिष्ठानरूपकरि देखिये तो आत्मरूप है अरु जो अधिष्ठानते रहित देखिये तौ मिथ्या है सो अधिष्ठान शुद्ध है आनंदरूप है चित्तते रहित चिन्मात्र परम ब्रह्म है तिसविषे अज्ञानकरि दृश्य देखता है जैसे असम्यक्दृष्टिकरिकै सीपीविषे रूपा भासता है तैसे आत्माविषे अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं. हे रामजी ! दृश्य अविचारते सिद्ध है विचार कियेते कछु वस्तु नहीं होती जिसके आश्रय कल्पित हैं सो अधिष्ठान सत्य है जैसे सीपीके जानेते रूपेकी बुद्धि जाती रहती है तैसे आत्मविचारते विश्वबुद्धि जाती रहती है जैसे समुद्रविषे पवनकरि चक्र तरंग फुरते हैं अरु प्रत्यक्ष भासते हैं विचार कियेते चक्रविषे भी जलबुद्धि होती है तैसे आत्मरूपी समुद्रविषे मनके फुरणेकरि विश्वरूपी चक्र उठते हैं विचार कियेते तुझको मनके फुरणेविषे भी आत्मरूप भासैगा विश्वरूपी चक्र न भासैंगे भ्रम निवृत्त होजावैगा जो वस्तु फुरणेविषे उपजी है सो अफुरकरिकै निवृत्त हो जाती है यह विश्व अज्ञानकरि उपजा है अरु ज्ञानकरिकै लीन हो जावैगा तातें विश्व भ्रममात्र जान. राम उवाच– हे भगवन् ! तुमने कहा जो ब्रह्मा रुद्र आदि अरु उत्पत्ति संहार करनेपर्यंत सब विश्व भ्रममात्र है ऐसे जाननेकरि क्या सिद्ध होता है ? यह तौ प्रत्यक्ष दुःखदायक भासती हैं क्यों दीखती है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो कछु तू देखताहै सो सर्व आत्मरूप है इतर कछु नहीं सम्यग्दृष्टिकरिकै अरु असम्यग्दृष्टिकरिकै विश्व है तौ दृष्टिका भेद है सम्यग् असम्यग् देखनेका अधिष्ठान

ज्योंका त्यों है जैसे एक जेवरी पड़ी होवै अंधकारकी उपाधिकरि सर्प हो भासै अरु भयदायक होवै जो प्रकाशकरि देखिये तौ जेवरी ही भासती है तैसे जिसने आत्माको जाना है तिसको दृश्य भी आत्मरूप है अज्ञानीको विश्व भासता है अरु दुःख पाता है जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयमान होता है अपने न जाननेकरि दुःख पाता है. जो जानै तौ भय किस निमित्त पावै ? हे रामजी ! अपने ही संकल्पकरि आप बंधायमान होता है जैसे घुराणकीट अपने बैठनेका स्थान बनाती है और आप ही फँस मरती है तैसे अनात्मविषे अहंप्रतीतिकरिकै आप ही दुःख पाता है. हे रामजी ! आप ही संसारी होता है आप ही ब्रह्म होता है जब दृश्यकी ओर फुरता है तब संसारी होता है जब स्वरूपकी ओर आता है तब ब्रह्म आत्मा होता है ताते जो तेरी इच्छा होवै सो करु जो संसारी होनेकी इच्छा होवै तौ संसारी होउ अरु जो ब्रह्म होनेकी इच्छा होवै तौ ब्रह्म होउ अरु जो मेरेसों पूछै तौ दृश्य अहंकारको त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ विश्व भ्रममात्र है वास्तव कछु नहीं यही पुरुषार्थ है कि संकल्पके साथ संकल्पको काटै जब बाह्यते अंतर्मुख हुआ, तब ब्रह्म ही भासैगा दृश्यकी कल्पना मिटि जावैगी काहेते जो आगे भी नहीं. हे रामजी ! जो सत् वस्तु आत्मा है अनेक यत्न करिये तौ नाश नहीं होता अरु जो असत्य अनात्मा है तिसके निमित्त यत्न करिये तौ सत् नहीं होता जो सत् वस्तु है तिसका अभाव कदाचित् नहीं अरु जो असत् है तिसका भाव नहीं होता असत् वस्तु तबलग भासती है जबलग तिसको भले प्रकार नहीं जाना जब विचार करि देखिये तब नाश हो जाती है अविद्यक पदार्थ विद्याकरि नष्ट हो जाते हैं जैसे स्वप्नका सुमेरु पर्वत सत्य होवै तौ जाग्रत्विषे भी भासै ताते है नहीं जो जाग्रतते नष्ट हो जाता है तैसे यह संसार जो तुझको भासता है सो स्वरूपके ज्ञानते नष्ट हो जावैगा अरु जो हमते पूछै तौ हमको आत्माते इतर कछु नहीं भासता सर्व आत्मा ही है यह भी नहीं, जो यह जीव अज्ञानी है किसी प्रकार मोक्ष होवै न हमारे ताईं ज्ञानसाथ प्रयोजन है न मोक्ष होनेसाथ प्रयोजन है काहेते

कि हमको तो सर्व आत्मा ही भासता है. हे रामजी ! जबलग चेतन है तबलग मरता है अरु जन्म भी पाता है जब जड होता है तब शांतिको प्राप्त होता है अरु मुक्त होता है चेतन कहिये दृश्यकी ओ फ़ुरना इसीकरि जन्ममरणके बंधनमें आता है जब दृश्यके फ़ुरणेते जड़ हो जावै तब मुक्त होवै इसका होना ही दुःख है न होना मुक्ति है अहंकारका होना बंधन है, अहंकारका न होना मुक्ति है, ताते पुरुषप्रयत्न यही है कि अहंकारका त्याग करना अरु चेतन ब्रह्म घन अपने आप-विषे स्थित होना जिसको संसारकी सत् भावना है तिसको संसार ही है ब्रह्म नहीं अरु जिसको ब्रह्मभावना हुई है तिसको ब्रह्म ही भासता है. हे रामजी ! जो पाताल जावैं अथवा संपूर्ण पृथ्वी फिरैं दशो दिशा फिरैं आकाशविषे देवताके स्थान फिरैं तोऊ सुखको न पावैगा अरु आत्माका दर्शन न होवैगा काहेते कि अनात्माविषे अहंकार कियेते सुख नहीं अरु जो आत्मदर्शी होकरि देखैं तौ सर्व आत्मा ही भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विश्वविलयो नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३७ ॥

अष्टत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३८.

विश्वप्रमाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह संसार संकल्पमात्र है अरु तुच्छ है पर्वत नदियाँ देश काल सर्व भ्रमकरि सिद्ध हैं जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां देश काल भासते हैं निद्रादोषकरिकै अरु हुआ कछु नहीं तैसे अज्ञान निद्राकरि यह संसार भासता है. हे रामजी ! जागकरि देखैं तौ संसार है नहीं इसका तरणा महासुगम है अरु सुमेरु पर्वता-दिक जो भासते हैं सो कमलकी नाईं कोमल हैं जैसे कमलके मुँदनेविषे यत्न कछु नहीं तैसे यह कोमल निवृत्त होते हैं अरु आकार जो भासते हैं भूतप्राणी सो उनकी स्थूलदृष्टि है आकारको देख रहे हैं जैसे पवनका चलना जाना जाता है अरु जब चलनेते रहित होता है तब मूर्खकी गम नहीं, जो निराकारको जानै तैसे भूतप्राणी आकारको

जानते हैं इसविषे जो निराकार स्थित है तिसको नहीं जानते जैसे पवन चलता है तौ भी पवन है जो ठहरता है तौ भी पवन है तैसे विश्व फुरती है सो भी आत्मा है अफुरविषे भी वही है ताते विश्व भी आत्मारूप है इतर कछु नहीं जो सम्यग्दर्शी है तिसको फुरणे अफुरणेविषे आत्मा ही भासता है जैसे स्पंद निस्पंदरूप पवन ही है तैसे ज्ञानीको सर्वदा एकरस है अरु अज्ञानीको द्वैत भासता है जैसे वृक्षविषे पिशाचबुद्धि बालक करता है तैसे आत्माविषे जगत्बुद्धि अज्ञानी करता है जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे तरुवरे भासते हैं तैसे मनके फुरणेकरि जगत् भासता है. हे रामजी! जैसे वायुका रूप कदाचित् नहीं तैसे जगत्का रूप अत्यंत अभाव है जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है तैसे आत्माविषे जगत्का अभाव है. हे रामजी! सुमेरुपर्वत आकाश पाताल देवता यक्ष राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड इकट्ठेकरि विचाररूपी कांटेविषे पाये अरु पाछे अर्धराति पायी तौ भी पूरी नहीं होती काहेते जो है नहीं अविचारसिद्ध है स्वप्नके पर्वत जागे हुए चावल प्रमाण नहीं रहते काहेते जो है नहीं भ्रममात्र है. हे रामजी! इस संसारकी भावना मूर्ख करते हैं ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष हैं तिनको ऐसे जान जैसे लुहारकी खालोंते पवन निकसता है तैसे तिन पुरुषके श्वास वृथा आते जाते हैं जैसे आकाशविषे अँधेरी व्यर्थ उठती है तैसे तिन पुरुषका जीवना अरु चेष्टा सर्व व्यर्थ है अरु यह आत्मघाती हैं अपना आप नाश करते हैं उनकी चेष्टा दुःखके निमित्त है. हे रामजी! यह अपने अधीन है जो दृश्यकी ओर होता है तो संसार होता है अरु जो अंतर्मुख होता है तौ सर्व आत्मा ही होता है अरु यह संसार मिथ्या है न सत् कहिये न असत् कहिये भ्रममात्रकरि हुआ है पूर्वकाल भविष्यत्काल वर्तमानकालविषे बंध होता है अरु अग्नि शीतल होवै अरु आकाश पातालविषे होवे अरु पाताल आकाशविषे होता है अरु तारे पृथ्वीऊपर हैं पृथ्वी आकाशऊपर भी होती है अरु बादर विना मेघ वर्षा करता है ऐसे कौतुक मैं देखता हौं आकाशविषे हल फिरते देखता हौं. हे रामजी! इसविषे आश्चर्य कछु नहीं मनकरिके

सब कछु होता है जैसा मनोराज्य किया तैसा आगे स्थित होता है अरु सिद्ध होता है पर्वत पुरविषे भिक्षुककी नाई भिक्षा माँगते फिरते हैं अरु ब्रह्मांड उड़ते फिरते हैं बालूते तेल निकसता है अरु मृतक युद्ध करते हैं मृग गाते हैं अरु वन नृत्य करते हैं. हे रामजी ! मनोराज्यकरिकै सब कछु बनता है चंद्रमाकी किरणोंसाथ पर्वत भस्म होते भी मानते हैं इसविषे क्या आश्चर्य है तैसे यह संसार भी मनोराज्य है अरु तीव्र संवेग है ताते इसको सत् मानता है अरु आगे जो बालूते तैला- दिक कहे तिनको सत् नहीं जानता काहेते जो उसविषे मृदु हैं अरु दोनों तुल्य. हे रामजी ! जिनको सत् अरु असत् कहते हैं सो आत्माविषे दोनों नहीं अरु यह जो तेरे ताईं पदार्थ सत् भासते हैं तौ अग्नि आदिक शीतल भी सत्य हैं अरु जो मिथ्या भासते हैं तौ वह भी मिथ्या तीव्र अरु मृदु संवेगका भेद है तीव्र संवेग जब दूर हुआ तब सब मिथ्या मानते हैं जैसे स्वप्नते जागा तब स्वप्नको मिथ्या कहता है अरु जाग्रतको सत् कहता है दोनों मनोराज्य हैं. हे रामजी ! जेते कछु आकार दृष्टि आते हैं सो सब मिथ्या जान. न तू है न मैं हौं न यह जगत् है परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों है तिसविषे अहं त्वं का उत्थान कोऊ नहीं केवल शांतरूप है आकाशरूप अरु निरा- काशरूप है जिसविषे द्वैत कछु नहीं केवल अपने आपविषे स्थित है जैसे बालक मृत्तिकाके हस्ती घोड़े मनुष्य बनाता है अरु नाम कल्पता है. यह राजा है यह हस्ती है यह घोड़ा है सो मृत्तिकाते इतर कछु नहीं अरु बालकके मनविषे उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ होते हैं तैसे मनरूपी बालक नाना प्रकारकी संज्ञा कल्पता है अरु आत्माते इतर कछु नहीं ताते भय किसका करता है तू निर्भय होउ तेरा स्वरूप शुद्ध है अरु निर्भय है अविद्याके कारण कार्यते रहित है, तिसविषे स्थित होउ. यह संसार तेरे फुरणेविषे हुआ है आत्मा न सत्य कहिये न असत्य कहिये न जड़ कहिये न चेतन कहिये न प्रकाश है न तम है न शून्य है न अशून्य है अरु शास्त्रने जो विभाग कहे हैं यह जड हैं चेतन हैं सो इस जीवके जगाने

निमित्त कहे हैं आत्माविषे वास्तव संज्ञा कोऊ नहीं केवल आत्म-स्वमात्र है ताते दृश्यकी कलना त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ. ब्रह्माते आदि स्थावरपर्यंत सर्व कलनामात्र है इसविषे क्या आस्था करनी संसारके भाव दोनों तुल्य हैं फुरणा जैसा भावका है तैसा अभावका है स्वरूपविषे दोनोंकी तुल्यता है अरु व्यवहारकालविषे जैसा है तैसा ही है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विश्वप्रमाणवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३८॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १३९.

जाग्रत्–अभावप्रतिपादनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! भूमिकाका प्रसंग यहां चला था तिस-विषे जो सार तुमने कहा सो मैं जाना अब भूमिकाका विस्तार कहौ अरु योगीका शरीर जब छूटता है अरु स्वर्गके भोगको भोगकरि गिरता है तब फिरि उसकी क्या अवस्था होती है सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिस योगीको भोगकी वांछा होती है तब स्वर्गको प्राप्त होना है अरु भोगको भोगता है जब उसको अपर भी भोगनेकी इच्छा होती है तब पवित्र स्थान अरु धनवान्के गृहविषे आय जन्म लेता है मध्य मंडल मनुष्यलोकविषे प्राप्त होता है जो भोगकी वांछा तिनको अपर नहीं होती तौ ज्ञानवान्के गृहविषे जन्म लेता है केतेकाल उपरांत तिसको पिछला संस्कार आय फुरता है तिसका स्मरण करिके आत्माकी ओर आगे होता जाता है जैसे कोऊ पुरुष लिखता हुआ सोय जाता है जब जागता है तब उस लिखेको देखि-करि बहुरि आगे लिखता है तैसे वह योगी पूर्वके अभ्यासको पायकरि दिन दिन बढावता जाता है अरु अज्ञानका संग नहीं करता जो भोगके सन्मुख है अरु आत्ममार्गते बहिर्मुख है अरु जो चुगली करनेवाले तिनका संग नहीं करता सर्व अवगुण तिसको त्याग जाते हैं दंभ गर्व

अरु राग द्वेष भोगकी तृष्णा यह स्वाभाविक तिसके छूटि जाते हैं अरु शांतिको प्राप्त होता है कोमलता दयाते आदि शुभ गुण तिसको स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं. हे रामजी! इस निश्चयको पायकरि वर्ण आश्रमके धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्रके पारको निकट जाय प्राप्त होता है पार नहीं भया यह भेद है सो तीसरी भूमिका है बहुरि मोहको नहीं प्राप्त होता जैसे चंद्रमाकी किरणैं कदाचित् तप्तको नहीं प्राप्त होतीं तैसे तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गर्तविषे नहीं गिरता. हे रामजी! यह सप्त भूमिका ब्रह्मरूप हैं, एता ही भेद है जो तीन भूमिका जाग्रत् अवस्था हैं चतुर्थ स्वप्न अरु पंचम सुषुप्ति है षष्ठ तुरीया सप्तम तुरीयातीत है. हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाविषे संसारकी सत्यता भासती है ताते जाग्रत् कही है अरु अपर चारोंविषे संसारका अभाव है ताते जाग्रत्ते विलक्षण है जाग्रत्विषे घट पट आदिक सत् भासते हैं घट घट ही है पट पट ही है अन्यथा नहीं अपना अपना कार्य सिद्ध करते हैं ताते अपने कालविषे ज्योंके त्यों हैं इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं स्थावर जंगमको जानता है नामरूपकरि ग्रहण करता है अरु हृदयविषे रागद्वेष नहीं धरता जो विचारकरिकै तुच्छ जाने है सो संसारका अत्यंत अभाव नहीं जाना अरु ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता काहेते कि तिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया जब स्वरूपको जानै तब संसारका अत्यंत अभाव हो जावै इन तीनों भूमिका-करि संसारकी तुच्छता होती है नष्टता नहीं होती इनको पायकरि जब शरीर छूटता है तब अपर जन्मविषे उसको ज्ञान प्राप्त होता है अरु दिन दिनविषे ज्ञानपरायण होता है जब दृढबुद्धि हुई तब ज्ञान उपजा है जैसे बीजके प्रथम अंकुर होता है बहुरि टास फूल फल निकसते हैं तैसे प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है दूसरी अंकुर है तीसरी टास है चतुर्थ ज्ञानकी प्राप्ति होती है सो फल है प्रथम तीन भूमिकावाला धर्मात्मा होता है पुरुषोंविषे श्रेष्ठ है तिसका लक्षण यह जो निरहंकार अरु असंगी धीर होता है जिसकी बुद्धिते विषयकी तृष्णा निवृत्त भयी है अरु आत्मपदकी इच्छा है सो पुरुष श्रेष्ठ कहाता है अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र

विचरता है शास्त्रमार्गते उल्लंघित कदाचित् नहीं वर्तता शास्त्रमार्गकी मर्यादासाथ अपने प्रकृत आचारविषे विचरता सो पुरुष श्रेष्ठ है. राम उवाच–हे भगवन्! पाछ तुमने कहा कि जब वह पुरुष शरीर छोडता है तब एक मुहूर्तविषे उसको युग व्यतीत होता है जन्मते आदि मृत्युपर्यंत जैसी किसीको भावना होती है तैसा आगे भासता है सो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है? यह कहौ.वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह जगत् जो तीनों काल भासता है सो ब्रह्मस्वरूप है इतर कछु नहीं भासता समान ही है जैसे इक्षुविषे मधुरता है तैसे ब्रह्मविषे जगत् है जैसे तिलोंविषे तेल है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है तैसे आत्माविषे जगत् है जैसे तिलोंविषे तेल होता है तैसे ब्रह्मविषे जगत् कहूँ सत् कहूँ असत् कहूँ जड कहूँ चेतन कहूँ शुभ कहूँ अशुभ कहूँ नरक कहूँ मृतक कहूँ जीवित ब्रह्मा आदि काष्ठ-पर्यंत भाव अभावरूप होता है सो सत् असत्तें विलक्षण है आत्मसत्तातें सर्व सत्य है अरु भिन्नकरि देखिये तौ असत्य है. हे रामजी! जिनको सत्य असत्य जानता है जो पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासता है अरु आकाशके फूलादिक असत्य भासते हैं सो दोनों तुल्य हैं जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तौ आकाशके फूल भी सत् मानिये जैसे स्वप्नविषे कई पदार्थ सत् भासते हैं कई असत् भासते हैं तैसे जाग्रत्विषे भासते हैं फुरणा दोनोंका समान है जैसे सत्य पदार्थोंका फुरणा हुआ तैसा असत्का फुरणा हुआ फुरणेते रहित सत् असत् दोनोंका अभाव हो जाता है ताते यह विश्व भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है जैसे जलविषे पवनकरिकै चक्र आवर्त उठते हैं तैसे आत्माविषे फुरणे करिकै संसार भासता है इसकी भावना त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु अरु पाछे तुमने प्रश्न किया कि एक मुहूर्त-विषे युग कैसे भासता है तिसका उत्तर सुन जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है तौ एक क्षणविषे बड़ा काल बीता भासता है अपरका अपर भासता है आश्चर्य तौ कछु नहीं मोहते सब कछु उत्पन्न होता है भ्रम करिकै दृष्टि आता है. हे रामजी! पुरुष सोया है तो एक आप ही होता है तिसविषे नाना प्रकारका जगत् भ्रमकरिकै भासता है तैसे स्वरूपके प्रमाद करि कई भ्रम देखता है स्वरूपके जानने विना भ्रमका अंत नहीं होता ताते तू अपर प्रश्न

किस निमित्त करता है एक चित्तको स्थिर करि देख न कोऊ संसार भासैगा न कोऊ जन्म मृत्यु भासैगा न कोऊ बंध मोक्ष भासैगा केवल आत्मा ही भासैगा जब संकल्प फुरता है तब आपको बंध जानता है संकल्पते रहित मुक्त जानता है सो अविद्याकरि बंध जानता है विद्याकरि मुक्त जानता है अरु आत्मस्वरूप ज्योंका त्यों है न बंध है न मुक्त है न विद्या है न अविद्या है केवल शांतरूप है ताते सर्वदा सर्वप्रकार सर्व ओरते ब्रह्म ही है दूसरा कछु नहीं. हे रामजी ! जब स्वरूपकी भावना हुई तब संसारकी भावना जाती रहती है यह सर्व शब्द कलनाविषे हैं यह पदार्थ हैं यह नहीं आत्माविषे कोऊ नहीं जैसे पवन चलने ठहरनेविषे एक ही है तैसे विश्व चित्तका चमत्कार है ब्रह्मादि चींटीपर्यंत ब्रह्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है अरु आत्माहीके आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं फुरणेविषे सम हैं काहेते जो दूसरा कोऊ नहीं: हे रामजी ! जो ब्रह्मसत्ता ही है यह प्रश्न क्या है आकाश क्या है पृथ्वी क्या है मैं क्या हौं यह जगत् क्या है ? यह प्रश्न बनते ही नहीं एक मनको स्थिर करि देख जो ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत कछु भी पदार्थ भासै तौ प्रश्न करिये ताते यह पदार्थ भ्रमकरिकै भासते हैं जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है तैसे भ्रमकरिकै भासता है रूप अवलोक नमस्कार इनके शब्द कलनाविषे फुरे हैं रूप कहिये दृश्य अवलोक कहिये इंद्रियां नमस्कार कहिये मनका फुरणा सो सर्व मिथ्या है आत्माविषे कोऊ नहीं. हे रामजी ! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं सो भावनाविषे स्थित हुए हैं जैसी भावना करती है तैसे पदार्थ सिद्ध होता है अरु भासता है जब संसारकी भावना उठि जावै तब पदार्थ कोऊ न भासै. हे रामजी ! सुषुप्तिविषे भी इसका अभाव हो जाता है तौ तुरीयाविषे कैसे भान होवै जब स्वरूपते गिरता है तब इसको संसार भासता है अरु संसारविषे वासनाकरिकै घटीयंत्रकी नाईं फिरता है प्रमादकरिकै अबलग बहता जाता है प्रमाद कहिये स्वरूपते उतरिकरि आत्माविषे अभिमान करना जो मैं हौं सो अज्ञान है तिसकरिकै दुःख पाता है जब अज्ञान नष्ट होवै तब

संसारके शब्द अर्थका अभाव हो जावे अहंकारते संसार होता है संसारका बीज अहंकार है अहंकार कहिये अनात्माविषे आत्माभिमान करना. हे रामजी ! आत्मा शुद्ध है अहंके उत्थानते रहित है केवल शांतरूप है अरु विश्व भी वहीरूप है इसकी भावनाविषे दुःख है यह संवित्शक्ति आत्माके आश्रय फुरती है तैसे तेलकी बूंद जलविषे डारिये तौ चक्रकी नाईं फिरती है तैसे संवेदनशक्ति आत्माके आश्रित फुरती है अरु ब्रह्म एकस्वरूप है तिसका स्वभाव ऐसे है जैसे मोरका अंडा अरु तिसका वीर्य एकरूप है अपने स्वभावकरिकै वीर्य ही नाना प्रकारके रंगको धारता है तौ भी मोरते इतर कछु नहीं तैसे आत्माके संवेदन स्वभावकरिकै नाना प्रकारका विश्व भासता है परंतु आत्माते इतर कछु नहीं आत्मरूप है सम्यक्‌दर्शीको नाना प्रकारविषे एक आत्मा ही भासता है अरु अज्ञानीको नाना प्रकारका जगत् भासता है. हे रामजी ! ब्रह्मरूपी एक शिला है तिसविषे त्रिलोकी अनेक पुतलियां कल्पित हैं जैसे एक शिलाविषे खुरपी पुतलियां कल्पता है जो इसविषे एती पुतलियां हैं सो उसके चित्तविषे हैं जो शिलाविषे हुआ कछु नहीं तैसे आत्मरूपी शिलाविषे चित्तरूपी खुरपी नाना प्रकारके पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है सो सर्व आत्मरूप है ताते पदार्थकी भावना त्यागकरि आत्माविषे स्थित होहु अरु यह संसार भी अनिर्वाच्य है काहेते कि ब्रह्म ही है ब्रह्मते इतर कछु नहीं न कोऊ उपजता है न कोऊ विनशता है कदाचित् भी ज्योंका त्यों आत्मा ही स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगदभावप्रतिपादनवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३९ ॥

चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४०.

पिंडनिर्णयवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! इस संसारका बीज अहंकार हुआ इसका पिता अहंकार है तो मिथ्या संसार अविद्या जो विद्यमान भासता

है सो भ्रमरूप हुआ जो भ्रमरूप है तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति कहते हैं कि इसका शरीर पिंडकरिकै होता है जो पिंडकरि होता है तौ तुम कैसे भ्रम कहते हौ अरु जो ब्रह्म है तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति क्यों पिंडकरि कहते हैं? इस मेरे संशयको निवृत्त करौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मेरा कहना सत् है तैसे ही है अरु ब्रह्म विषे ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है अरु जगत्‌विषे जगत्‌का लक्षण भी वही है. हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है चित्तशक्ति फुरी है सो ब्रह्मरूप हुआ है तिसविषे पदार्थका मनोराज्य हुआ है यह आकाश है यह पवन आदि है यह कर्तव्य है यह अकर्तव्य है यह सत्य है यह झूठ है इत्यादिकरि जबलग मनोराज्य है तबलग सर्व मर्यादा ऐसे ही है बहुरि ब्रह्मविषे ऐसे हुआ जो जगत्‌की मर्यादाके निमित्त वेद कहता है कि यह पदार्थ शुभ है यह अशुभ है. हे रामजी! आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, मायारूप जगत्‌विषे मर्यादा है जो न होवै तौ अधः ऊर्ध्व नीच ऊंच कौन कहै यह मर्यादा भी वेदविषे नेति निश्चय हुआ है जो यह शुभ कर्म हैं इनके कियेते स्वर्गसुख भोगते हैं अरु यह अशुभ कर्म हैं इनके कियेते नरकदुःख भोगते हैं. हे रामजी! जैसे वेदविषे निश्चय किया है तैसे यह पुरुष अपनी वासनाके अनुसार भोगता है. हे रामजी! यह चित्‌शक्ति नेति होकरि ब्रह्मादिकविषे फुरी है परंतु उनको सदा स्वरूपविषे निश्चय है ताते वह बंधायमान नहीं होते अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्रने यह वेदमाला धारी है कि जैसा कोऊ कर्म करै तैसा फल देते हैं यह वेद सर्वकी नेति है. हे रामजी! जिन पुरुषोंको संसारकी सत्यता दृढ भयी है सो जैसा कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसे शरीरको धारते हैं इसविषे संशय नहीं जो शास्त्रमर्यादाते उल्लंघित वर्त्तते हैं अपनी इच्छाकरि सो शरीर त्यागिकरि कोऊ काल मूर्च्छित हो जाते हैं मुहूर्तविषे जागिकरि आत्मज्ञान विना बड़े नरकोंको चले जाते हैं अरु जिनको शून्यभावना भई है कि आगे नरक स्वर्ग कोऊ नहीं, लोक परलोकके भयको त्यागिकरि शास्त्रबाह्य वर्तते हैं तौ मरकर पत्थर वृक्षादिक जड योनिको पाते हैं. चिरकालते उनकी

वासना परिणमती है फेरि दुःखभागी होते हैं अरु जिनको आत्मभावना हुई है, संसारकी भावना निवृत्त भयी है तो शास्त्रविहित करैं अथवा अविहित करैं तिनको बंधन कोऊ नहीं. हे रामजी ! चित्तरूपी भूमि है इसविषे निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है तैसा ही कालकरि उगता है यह निःसंशय है तातें तुम आत्मभावनारूपी बीज बोवो और सर्व आत्मा है ऐसी भावना करहु तब सिद्ध ही आत्मा भासैगा अरु जिनको संसारका निश्चय हुआ है तिनको संसार है. हे रामजी ! जो पुरुष धर्मात्मा है तिसको उसी वासनाके अनुसार भासता है सो धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं एक सकामी एक निष्कामी जो धर्म करते हैं अरु पापरूपी कामनासहित हैं तौ स्वर्गभोग भोगिकारि बहुरि गिरते हैं अरु जो निष्काम हैं ईश्वरार्पण कर्म करते हैं तिनका अंतःकरण शुद्ध होता है बहुरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है यह भी संसारविषे मर्यादा है जैसा किसीको निश्चय होता है तैसा ही संसारको देखता है पिंडकरिकै भी शरीर होता है काहेते जो यह भी आदि नीतिविषे निश्चय हुआ है सो जैसे आदि नीतिविषे निश्चय हुआ है तैसे होता है. जो पवन है सो पवन ही है जो अग्नि है सो अग्नि ही है इसी प्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज्य हुआ है तैसे ही स्थित है. जैसे जल नीचेहीको जाता है ऊँचे नहीं जाता तैसे जो आदि किंचनविषे निश्चय हुआ है कल्पपर्यंत सोई है. हे रामजी ! जगत् व्यवहारविषे तौ ऐसे है. अरु परमार्थतें दूसरा कछु हुआ नहीं इस जीवने आकाशविषे मिथ्या देह रची है परमार्थतें केवल निराकार अद्वैत आत्मा है शरीर इसके साथ है नहीं तातें जगत कैसे होवै ?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे पिंडनिर्णयवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४० ॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४१.

बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तेरे प्रश्न ऊपर बृहस्पति अरु बलि राजाका एक इतिहास है सो श्रवण कर. जब दूसरे परार्धके छः कल्प व्यतीत हुए थे तिस दिनके युगविषे राजा बलि होत भया सो कैसा था पराक्रमी मूर्ति था तिस राजा बलिने सम्पूर्ण दैत्यों अरु राक्षसोंको जीतिकरि अपने वश किया अपनी आज्ञा तिनपर चलाई अरु राजा हुआ अरु इंद्रको भी जीतिकरि अपने वश किया पूर्ण ऐश्वर्य तिसका एक नगरकी नाईं ले लिया था देवता किंनरपर तिसकी आज्ञा चली अरु भूलोक भी लिया: सबको ले रहा तब धर्म आचारको ग्रहण किया जैसे धर्मात्माका आचार है सो ग्रहण किया एक समय सर्व सभा बैठी थी अरु यह कथा चली कि जन्म कैसे होता है अरु मृत्यु कैसे होता है तब राजा बलि बृहस्पति देवगुरुसों प्रश्न करत भया. हे ब्राह्मण ! यह पुरुष जब मृतक होता है तब शरीर तौ भस्म हो जाता है बहुरि कर्मोंके फल कैसे भोगता है अरु शरीरविना आता जाता कैसे है ? सो कहौ. बृहस्पतिरुवाच-हे राजन् ! इस जीवको देह है नहीं जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है अरु है नहीं तैसे इस साथ शरीर भासता है अरु है नहीं यह जीव न जन्मता है न मरता है न भस्म होता है न जलिके दुःखी होता है तत्त्वते तत्त्व यह सदा अच्युतरूप है, स्वरूपके प्रमादते आपको दुःखी जानता है कि मैं इनको भोगता हौं अरु जन्मा हौं एता काल हुआ है यह मेरी माता है यह पिता है मैं इनते उपजा हौं बहुरि आपको मृतक हुआ जानता है. हे राजन् ! भ्रमकरि ऐसे देखता है जैसे निद्रा भ्रमकरि स्वप्नविषे देखता है तैसे अज्ञानकरिकै यह जीव आपको मानता है, जब मृतक होता है तब जानता है कि मेरा शरीर पिंडकरि हुआ है अब मैं दुःख सुखको भोगौंगा जैसे स्वप्नविषे आकाश होता है तहां वासनाकरि अपने साथ शरीर देखता है अरु सुखदुःखको भोगता है तैसे मरिकरि अपने साथ

शरीर देखता है अरु दुःखसुखका भागी होता है अरु परमार्थते इसके साथ शरीर ही नहीं तौ जन्म मृत्यु कैसे होवै? स्वरूपते प्रमादकरि देह-धारीकी नाईं स्थित हुआ है तिस देहसाथ मिलिकरि जैसी जैसी भावना करता है तैसा ही फल भोगता है वासनाके अनुसार जैसी इसको भावना होती है तैसा आगे शरीर देखता है अरु पांच-भौतिक संसारको देखता है, इस प्रकार भ्रमता है अरु जन्मता मरता आपको देखता है जैसे समुद्रते तरंग उठता है अरु मिटि जाता है तैसे शरीर उपजता है अरु नष्ट होता है शरीरके संबंधकरि उपजता अरु विनशता भासता है यह आश्चर्य है जो आत्मा ज्योंका त्यों स्व-भावकरि स्थित है तिसविषे वासनाके अनुसार विश्वको देखता है. हे राजन्! विश्व इसके अंतर स्थित है भावनाके अनुसार आगे देखता है इस जीवविषे विश्व है अरु विश्वविषे जीव नहीं, जैसे तिलविषे तेल है अरु तेलविषे तिल नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित है भूषणविषे स्वर्ण कल्पित नहीं तैसे जीवविषे विश्व कल्पित है इसके आश्रय फुरती है सो विश्व सत् भी नहीं अरु असत् भी नहीं सत् इस कारण नहीं जो चलरूप है स्थित नहीं अरु असत् इसते नहीं जो विद्यमान भास-ती है ताते इसकी भावना त्याग यह दृश्य मिथ्या है इसका अनुभव मिथ्या है अरु इसको जाननेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है जैसे मरुस्थलविषे जल मिथ्या है तैसे आत्माविषे अहंकार जीव मिथ्या है. हे रामजी! जबलग शास्त्रके अर्थविषे चपलता है अरु स्थितिते रहित है तबलग संसारकी निवृत्ति नहीं होती जब दृश्यके फुरणे अरु अहंकारते जड़ हो जावै तब इसको आत्मपदकी प्राप्ति होवै जबलग दृश्यकी ओर फुरता है चेतन सावधान है तबलग संसारविषे भ्रमता है. हे राजन्! आत्मा न कहूँ जाता है न आता है न जन्मता है न मरता है जब चैत्य अरु चित्तका संबंध मिटि जावै तब आनंदरूप ही है. चैत्य कहिये दृश्य अरु चित्त कहिये अहंकार संवित्. जब दोनोंका संबंध आपसमें मिटि जावैगा तब शेष आत्मा ही रहैगा सो ब्रह्म है आत्मा है अरु शिवपद है. जिसविषे वाणीकी गम नहीं सोई शेष रहैगा सो

अनुभव निर्वाच्य पद है तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी ! जिस युक्ति-
करि इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त होवै सो युक्ति श्रेष्ठ है जबलग
इसको फुरणा उठता है कि यह भाव है यह अभाव है तबलग इसको
जीव कहते हैं जब भावअभावका फुरणा मिटि जावै तब जीवसंज्ञा भी
चलती रहै तब शिवपद आत्माको प्राप्त होवै तहां वाणीकी गम नहीं.
इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं
नाम एकचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४२.

बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इसप्रकार बृहस्पतिने बलि राजाको कहा
सो तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैं कहा है. हे रामजी ! जबलग इसके
हृदयविषे संसारकी सत्यता है तबलग जैसे कर्म करैगा तैसा शरीर
धारैगा. हे रामजी ! जिस वस्तुको चित्त देखता है तिसकी ओर अवश्य
जाता है तिसके देखनेका संस्कार इसके अंतर होता है, जिस पदार्थको
इसने सत् जाना है तिस पदार्थका संस्कार स्थित हो जाता है अरु समय-
करि वह संस्कार प्रगट होता है जैसे मोरके अंडेविषे शक्ति होती है जब
समय आया तब नाना प्रकारके रंग तिसविषे प्रगट भासते हैं तैसे चित्तका
संस्कार भी समय पायकरि जागता है. हे रामजी ! सो चित्त अज्ञानते
उपजा है बहुरि बृहस्पतिने कहा. हे राजन् ! बीज पृथ्वीपर उगता
है आकाशविषे नहीं उगता जैसा बीज पृथ्वीविषे बोता है तैसा ही फल
होता है सो यहां अहंरूप जो है अपना होना सो पृथ्वी है जैसी जैसी
भावनाकरि कर्म करता है तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होता है
बहुरि फल होता है जो उन कर्मोंके अनुसार धारता है अरु सुख दुःखको
भोगता है अरु ज्ञानवान् जो है सो आकाशरूप है सो आकाशविषे बीज
कैसे उपजै बीज भावनाकरि अज्ञानरूपी पृथिवीविषे उगता है. बलि-
रुवाच—हे देवगुरु ! जीव जीवता होवै अथवा मृतक होवै इसको जो
अनुभव होता है सो अपनी भावना भानेहीते होता है ताते यह मृतक

हुआ अरु इसकी पिंडादिकविषे भावना न हुई तौ फिर इसका शरीर कैसे होता है ? सुखदुःख भोगनेवाला जो हुआ तौ अकृत्रिम देह हुआ. बृहस्पतिरुवाच-हे राजन् ! पिंडदान आदिक क्रिया न होवै अरु इसके अंतर भावना है अरु तिस समय किसीने न किया तौ भी वह जो अंतर भावना है सोई कर्मरूप है उसीकरि भासि आता है अरु जो उसके अंतर भावना नहीं अरु किसी बांधवने इसके निमित्त पिंडदान किया तो भी उसको भासि आता है काहेते कि वह भी इसकी वासनाविषे स्पंद है. हे राजन् ! जो अज्ञानी जीव हैं जिनको अनात्मविषे आत्मबुद्धि है तिनके कर्म कहां गये हैं जो वह कर्म करते हैं सोई उनके चित्तरूपी भूमिविषे पडे उगते हैं उनके शरीरकी क्या संख्या है अनेक वासनारूपी ज्ञानविना स्वप्नवत् शरीर धारते हैं. बलिरुवाच-हे देवगुरु ! यह निश्चयकरि मैं जाना है कि जिसको निष्किंचनकी भावना होती है सो निष्किंचन पदको प्राप्त होता है अरु संसारकी ओरते शिलाकी नाईं हो जाता है जैसी इसकी भावना होती है तैसा स्वरूप हो जाता है तब संसारते पत्थरवत् होवै तब मुक्त होवै. बृहस्पतिरुवाच-हे राजन् ! निष्किंचनको जब जानता है तब संसारकी ओरते जड होता है, राग द्वेष संसारका नहीं फुरता इसीका नाम जड है अरु केवल सार पदविषे स्थित होता है जब गुण इसको चलाय नहीं सकै तब जानिये कि निष्किंचन पदको प्राप्त हुआ है सोई निःसंदेह मुक्ति है. हे राजन् ! जबलग संसारकी सत्यता चित्तविषे स्थित है तबलग इसको वासना है जबलग वासना है तबलग संसार है अरु संसारके अभावविना इसको शांति नहीं प्राप्त होती सो स्वरूपके प्रमादकरि चित्त हुआ है, चित्तते वासना हुई है अरु वासनाते संसार हुआ है ताते इस वासनाको त्यागिकरि कोऊ फुरणा न फुरै निष्किंचनमात्र हो जावै तब शांतभागी होवै. हे राजन् ! जिस युक्तिसाथ जिस क्रमसाथ यह निष्किंचनरूप होवै सोई करै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार सुरपुरविषे असुरनायकको सुरगुरुने कहा था सो मैं तेरे आगे पिंडदानादिकका क्रम कहा है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४२ ॥

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४३.

चित्तभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! भावे जीवता होवे भावे मृतक होवे जो कछु इसके चित्तसाथ स्पर्श हुआ होवैगा तिसका अनुभव अवश्य करैगा. जैसे मोरके अंडेविषे रस होता है वह समयकरि विस्तारको पाता है तैसे इसके अंतर जो वासनाका बीज है जो वह प्रगट नहीं भासता तौ भी समयकरि विस्तारवान् होता है जबलग चित्त है तबलग संसार है जब चित्त नष्ट होवे तब सब भ्रम मिटि जावे. हे रामजी ! सो चित्त भी असत् है तौ विश्व भी असत् है जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है तैसे आत्माविषे विश्व भ्रम है. हे रामजी ! हमको न चित्त भासता है न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हौं तू भी आकाशरूप है यह चित्त स्वरूपके प्रमादकरिकै उपजता है जैसे जहां काजल होता है तहां श्यामता होती है तैसे जहां चित्त होता है तहां वासना होती है जब ज्ञानरूपी अग्निकरि वासना दग्ध होवै तब चित्त सत्-पदको प्राप्त होता है अरु जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है. हे रामजी ! चित्तके उपशमका उपाय मुझते श्रवण करु तिसकरि चित्त निर्वाण हो जावैगा जो सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं तिनकरि चित्त नष्ट हो जावैगा तिनविषे तीन भूमिका तेरे ताईं कही हैं क्रमकरिकै अरु चार कहानी रही हैं. हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाविषे जिसको एक भी प्राप्त भयी है तिसविषे तिसको महापुरुष जान सो संसारते कैसा हो जाता है सो श्रवण करु. मान मोह तिसके निवृत्त हो जाते हैं अरु संगदोष तिसको नहीं लगता अरु उसविषे विचार स्थित होता है कामना सर्व नष्ट हो जाती हैं अरु राग द्वेष तिसको नहीं रहता सुखदुःखविषे सम रहता है ऐसा अमूढ पुरुष अव्ययपदको प्राप्त होता है जेते गुण तीसरी भूमिका-विषे प्राप्त हुए पाते हैं अरु चित्त नष्ट हो जाता है तब संसारको नहीं पाता जैसे दीपकसाथ देखिये तौ अंधकारको नहीं पाता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चित्तभावप्रतिपादनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४४.

पंचमभूमिकावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी । जब तीसरी भूमिका दृढ पूर्ण होती है अरु दृढ अभ्यासकरि चौथी उदय होती है तब अज्ञान नष्ट हो जाता है अरु सम्यक्ज्ञान चित्तविषे उदय होता है तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् शोभा पाता है अरु आदि अंतते रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वविषे योगीका चित्त स्थित होता है अरु सर्वको सम देखता है जिस योगीको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है तिसके नाना प्रकार भेदभाव निवृत्त हो जाते हैं अरु अभेद सर्व आत्मभाव उदय होता है जगत् तिसको स्वप्नकी नाईं भासता है अरु इंद्रियोंका व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है जैसे अर्ध सुषुप्ति जिसको होती है तिसकालविषे खाना पीना रसते रहित हो जाता है तैसे चतुर्थ भूमिकावालेका व्यवहार रसतें रहित होता है जैसे सूर्य अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है तैसे तिसको आत्माका प्रकाश उदय होता है अरु सर्व कल्पना तिसकी नाश हो जाती हैं न किसी पदार्थविषे राग रहता है न किसीविषे द्वेष रहता है संसारसमुद्रविषे डुबावनेवाले राग अरु द्वेष हैं इष्टपदार्थविषे राग होता है अनिष्टविषे द्वेष होता है सो रागद्वेष दोनोंका तिसको अभाव हो जाता है ताते संसारसमुद्रविषे गोते नहीं खाता तिसके चित्तको कोऊ मोहित नहीं कर सकता. हे रामजी । जबलग तृतीय भूमिका होती है तबलग उसको जाग्रत् अवस्था होती है चतुर्थ भूमिका प्राप्त भयी तब जगत् स्वप्नवत् हो जाता है सर्व जगत्को क्षणभंगुर नाशवन्त देखता है द्रष्टा दर्शन दृश्य भावनाका अभाव हो जाता है. राम उवाच-हे भगवन् । जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिका लक्षण मुझको ज्योंका त्यों कहौ. तुरीया अरु तुरीयातीत भी कहौ बडे जो हैं सो शिष्यको कहनेते खेदवान् नहीं होते. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी । जो तत्त्वका विस्मरण है अरु पदार्थकी भावना है नाशवन्त पदार्थको सत्की नाईं जानना सो जाग्रत् है जो पदार्थविषे भावअभावकी सत्यता

होती है अरु जगत्को मिथ्या भावनामात्र जानना सो स्वप्न कहते हैं जाग्रत् अरु स्वप्न जिसविषे लय हो जावै सो सुषुप्ति है जो ज्ञानभाव करिकै भेदकी शांति हो जावै जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव होवै ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है. हे रामजी ! अज्ञानी जीव संसारको वर्षाकालके मेघकी नाई देखते हैं जो तिनको दृढ होकरि भासता है अरु जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है सो शरत्कालके मेघकी नाई संसारको देखता है अरु जिसको पंचम भूमिका प्राप्त भयी है, सो शरत्कालके मेघ नष्ट हुएकी नाई देखता है; जैसे निर्मल आकाश होता है तैसे उसको निर्मल भासता है, सो तीनोंका वृत्तांत सुन, अज्ञानी जगत्को जाग्रत्की नाई देखता है अरु दृढ सत्यता जगत्की तिसको भासती है, तिसकरि राग द्वेष उपजता है अरु चतुर्थ भूमिकावाला ऐसे देखता है जैसे शरत्कालका मेघ वर्षाते रहित होता है अरु जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है तैसे तिसको सत्यता जगत्की नहीं भासती काहेते जो स्मृति तिसको स्वप्नकी होती है, स्वप्नवत् देखता है ताते उसको राग द्वेष नहीं उपजता है अरु पंचम भूमिकाप्राप्तिवाला जगत्को सुषुप्तिकी नाई देखता है जसे शरत्कालका मेघ नष्ट हुआ बहुरि नहीं दीखता तैसे उसको संसारका भान नहीं होता अरु चेष्टा उसकी स्वाभाविक पड़ी होती है जैसे कमल स्वाभाविक ही खुलता अरु मुँदि जाता है तैसे तिसको यत्न कछु नहीं चेष्टाविषे जैसा प्रतियोगी तिसको स्वाभाविक आय प्राप्त हुआ सो करता है, जैसे कमलके खुलनेका प्रतियोगी सूर्य हुआ तब खुलि गया अरु जब मुँदनेका प्रतियोगी रात्रि भई तब मुँदि जाता है, उसको खेद कछु नहीं तैसे तिस पुरुषकी अहंममताते रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है. हे रामजी ! अहंता ममतारूपी जाग्रतते वह पुरुष सुषुप्त हो जाता है अरु संपूर्ण भावरूप जो शब्द अरु अर्थ हैं तिनका तिसको अभाव हो जाता है, अशेष शेषको मनन नष्ट हो जाता, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, भला, बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थकी भावना तिसको नहीं रहती, द्वैतकलना नष्ट हो जाती है एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है तिसको संसार नहीं

भासता. हे रामजी! अहंतारूपी तिलते संसाररूपी तेल उपजता है अरु अहंतारूपी फूलते संसाररूपी गंध उपजती है, संसारका कारण अहंता है सो अहंता जिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है वह पुरुष इंद्रियोंके इष्टको पायकरि हर्षवान् नहीं होता अरु अनिष्टके प्राप्ति हुए द्वेष नहीं करता ऐसे आपको नहीं जानता कि मैं खडा हौं अरु यहां बैठा हौं अरु चलता हौं आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है न अंतर देखता है न बाहर देखता है, न आकाशको देखता है न पृथ्वीको देखता है सर्व ब्रह्म ही देखता है, तिसको इतर कछु नहीं भासता अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है अहंकारका भी साक्षी इंद्रियोंका भी साक्षी अरु विश्वका भी साक्षी है इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता जैसे ब्राह्मण चंडालसाथ स्पर्श नहीं करता अरु जैसे बीजते अंकुर होता है बहुरि अंकुरते टास होते हैं इसी प्रकार पदार्थ परिणामी है अरु आकाश तिनविषे ज्योंका त्यों रहता है. काहेते कि उनके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे वह पुरुष द्रष्टा दर्शन दृश्यते अतीत रहता है, जैसे मरुस्थलविषे जल असत् है तैसे उस पुरुषको त्रिपुटी असत्य है त्रिपुटी अहंता तिस पुरुषकी नष्ट भयी है, ताते भेदबुद्धि भी नहीं रहती तिसीते शांत है अरु निर्मल है, संसारते सुषुप्त है अरु चेतन घनता करिकै पूर्ण है सर्वदा शांतरूप है जिन नेत्रकरि संसार जानता है सो तिनते अंध हुआ है अर्थ यह जिस मनकरि फुरणा होता है तिस मनको नाश किया है अरु भय क्रोध अहंकार मोह तिस पुरुषविषे दीखते हैं तौ भी उसके हृदयविषे कछु स्पर्श नहीं करते जैसे पक्षी आकाशविषे आलणा भी करता है परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करि सकता तैसे उस पुरुषको विकार कोऊ स्पर्श नहीं करता. हे रामजी! तिस पुरुषके संपूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं, सर्वदा स्वरूपविषे स्थित है अरु शांतरूप है आत्माते इतर किसी सुखकी वांछा नहीं करता अरु सर्व संकल्प तिसके नष्ट हुए हैं अरु आत्माते इतर कछु नहीं भासता जाग्रत्की नाईं दृष्टि आता है अरु सर्वदा जाग्रतते सुषुप्त है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे पंचमभूमिकावर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४४ ॥

पंचचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४५

षष्ठभूमिकोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तीसरी भूमिकापर्यंत जाग्रत् है अरु चतुर्थ भूमिकाविषे जाग्रत् अवस्था स्वप्नवत् देखता है अरु पंचम भूमिकावाला संसारते सुषुप्त होता है अरु छठी भूमिकावाला तुरीयापद विषे स्थित होता है अरु सर्वदा अक्रिय है किसी क्रियाविषे बंधमान नहीं होता सर्वकाल आनंदरूप है अरु भिन्न होकरि आनंदको भोगता नहीं आप ही आनंद है केवल अपने आप स्वतः स्थित है अरु सर्वदा निर्वाण है. हे रामजी ! सर्व क्रियाविषे यथाशास्त्र विचरता दृष्टि आता है परंतु अंतरते शून्य है. उसको किसीसाथ स्पर्श नहीं जैसे आकाशविषे सर्व पदार्थ भासते हैं अरु आकाशका स्पर्श किसीसाथ नहीं तैसे ही सर्व क्रिया तिसविषे विद्यमान दृष्टि भी आती हैं तौ भी अंतरते किसीसाथ स्पर्श नहीं करता. काहेते कि जो क्रियाविषे बंधमान करणेहारा अहंकार था सो तिसका नष्ट हो गया है केवल शांतरूप है अहंका फुरणा चिन्मात्रविषेते निवृत्त भया है चिन्मात्रते उत्थान अहंभावका सोई अज्ञान है अरु दुःखदायी है जब अहंभावनिवृत्त भया तब कोऊ कर्म स्पर्श नहीं करता, यद्यपि विश्व तिसको दृष्टि भी आता है तौ भी वास्तवकरि नहीं देखता तिसको सर्व ब्रह्म ही भासता है खाता है अरु नहीं खाता है देता भी है अरु कदाचित् नहीं दिया लेता है तौ भी कदाचित् किसीते कछु नहीं लिया है चलता है परंतु कदाचित् नहीं चला. हे रामजी ! जेते कछु देश काल वस्तु पदार्थ हैं तिसको सर्वविषे आत्मभाव होता है यद्यपि प्रत्यक्ष चेष्टा उसविषे दीखती है तौ भी तिसके हृदयविषे कछु नहीं जैसे स्वप्नविषे खाता पीता लेता देता आपको भासता है अरु जागेते सर्वका अभाव हो जाता है तैसे जो पुरुष परमार्थ सत्ताविषे जागा है तिसको गुणकी क्रिया अपनेविषे कोऊ नहीं भासती अरु जो करता है तिसविषे अभिलाष नहीं तिसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है अपनेनिमित्त कर्तव्य कछु नहीं

ऐसे भगवान्‌ने भी कहा है अरु सर्व आत्मा ही देखता है आकाश पृथ्वी सूर्य ब्राह्मण हस्ती श्वान चंडाल आदिक सर्वविषे आत्मभाव देखता है अरु आकारको मृगतृष्णाके जलवत् देखता है जो अत्यंत अभाव है अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य भी उसको आकाशवत् भासते हैं अरु निर्मल आकाशवत् शांतरूप है अहंभावते रहित केवल चिन्मात्रविषे स्थित है, ग्रहण त्यागते अतीत अरु सर्व कलनाते रहित निर्वाणपद है केवल स्वच्छ निर्मल आकाशरूप स्थित है अहंमम आदिक चिद्ग्रंथि तिसकी भेदी है चिज्जड कहिये अनात्मविषे अहम् अभिमान सो तिसका नष्ट भया है; केवल शांतरूप हो रहता है जैसे क्षीरसमुद्रते मंदराचल पर्वत निकसा अरु शांतरूप हुआ तैसे रागद्वेषरूपी क्षोभ करनेवाले इसके अंतःकरणरूपी पवत निकस गया तब शांतरूप अक्षोभ हुआ परम शोभाकरि शोभता है जैसे विश्वकर्माने सूर्यका मंडल रचा है अरु प्रकाशकरिकै शोभा पाता है तैसे ज्ञानरूपी प्रकाशकरि प्रकाशता है जैसे चक्री फिरता फिरता रहि जाता है अरु शांतिको प्राप्त होता है तैसे अज्ञानकरि फिरता फिरता ठहरा हुआ तिसकरि सदा शांतिको प्राप्त भया है अरु अपने आपकरि प्रकाशता है जैसे पवनते रहित दीपक प्रकाशता है तैसे कलनारूपी पवनते रहित पुरुष अपने आपकरि प्रकाशता है अरु सर्वदा निर्मल है एकरस है जैसे घटके अंतर भी शून्य है अरु बाहर भी शून्य है तैसे देहके अंतर बाहर आत्मा है जैसे जलविषे घट राखिये तिसके अंतर बाहर जल होता है तैसे वह पुरुष अपने आपकरि अंतर बाहिर पूर्ण हो रहा है अरु एकरस है द्वैत कलनाको नहीं प्राप्त होता अरु तिस पदको पायकरि आनंदमान है जैसे कोऊ मारणेके निमित्त पकडा हुआ तिसकी रक्षा होवै तो बडे आनंदको प्राप्त होता है जैसे वह पुरुष आनंदको प्राप्त हुआ है जैसे कोऊ आधि व्याधिते छूटा आनंदको प्राप्त होता है तैसे वह ज्ञानवान् आनंदको प्राप्त हुआ है जैसे कोऊ पैंडेकरि थका हुआ शय्यापर आय विश्राम करै अरु आनंदको प्राप्त होता है तैसे ज्ञानवान्‌को आनंद है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि आनंदवान् होता है तैसे वह पुरुष अपने

आनंदकरि पुरम है, जसे काष्ठके जलेते स्वच्छ अग्नि धुएँते रहित प्रका- शती है तैसे ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुएँते रहित शोभता है. हे रामजी! जब संसारकी ओर देखता है तब अग्निकरि जलता हुआ आपते जुदा देखता है, ज्ञानरूपी पर्वतऊपर स्थित होकर जलता देखता है. हे रामजी ! यह जो कहा है संसारको जलता देखता है सो ऐसे भी नहीं फुरता कि; मैं ज्ञानी हौं यह संसार है स्वरूपकी अपेक्षाकरि यह कहा है जो संसार उसको दुःखदायी भासता है आनंदते रहित वह परमानंदको प्राप्त भया है; बहुरि कैसा है जो सत् असत्ते रहित अपना आप है तिसविषे स्थित है जैसे पर्वत अंतर बाहर अपने आपविषे स्थित है अरु एकरस है तैसे वह पुरुष एकरस है अरु संसारविषे जाग्रत् होकरि चेष्टा करता है अरु अंतर संसारकी भावनाते रहित है अरु तिस पदको वाणीकी गम नहीं परंतु कछु कहता हौं श्रवण कर. कई ब्रह्म कहते हैं कई चेतन कहते हैं आत्मा कहते हैं साक्षी कहते हैं अरु कालवाले उसीको काल कहते हैं ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं सांख्यवाले प्रकृति कहते हैं इत्यादिक जो संज्ञा हैं सो सर्व उसीके नाम हैं तिसते इतर नहीं तिस पदको संतजन जानते हैं. हे रामजी! ऐसे पदको पायके अपने आपकरि शोभता है जैसे मणिके अंतर बाहर प्रकाश होता है तैसे वह पुरुष अंतर बाहर शोभता है अपने स्वरूपकरि सदा पुरम रहता है जो पुरुष छठी भूमिकाविषे स्थित है तिसके यह लक्षण होते हैं संसारते सुषुप्त हो जाता है अरु स्वरूपविषे चेतन होता है जीवत्वभाव तिसका चलता रहता है; जीवत्व कहिये परिच्छिन्नता जैसे घटकी उपाधिकरि घटाकाश परिच्छिन्न भासता है जब घट भग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है तैसे अहंकाररूपी घटके भग्न हुए आत्मा ही भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे षष्ठभूमिकोपदेशवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४६.

सप्तमभूमिकालक्षणविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इसते अनंतर जब सप्तम भूमिका पुरुषको प्राप्त होती है तब आपको आत्मा ही जानता है अरु भूतका ज्ञान जाता रहता है केवल आत्मतत्त्वमात्र होता है, दृश्यका ज्ञान नहीं रहता अरु यह भी ज्ञान नहीं रहता कि, विश्व मेरे आश्रय फुरती है देहसहित होवै अथवा विदेह होवै उसको आत्माते उत्थान कदाचित् नहीं होता, जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है तैसे आत्मस्वरूपविषे स्थित है अरु चेष्टा भी स्वाभाविक होती है, जैसे बालक पींघडेविषे होता है, जिसके अंग स्वाभाविक हलते हैं तैसे उसकी चेष्टा खान पान आदिक स्वाभाविक होती है जैसे काष्ठकी पुतली तागेकरिकै चेष्टा करती है तैसे प्रारब्धवेगके तागेकरि उसकी चेष्टा पडी होती है, अपनी इच्छा उसको कछु नहीं रहती. हे रामजी! जैसी अवस्थाको सप्तम भूमिकावाला प्राप्त हुआ है सो आप ही जानता है, इतर कोऊ जान नहीं सकता, जिसका चित्त शान्त है अरु जिसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है, सो भी नहीं जान सकता, जिसको वह पद प्राप्त हुआ है सोई जानै. हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त सत्यपदको प्राप्त हुआ है, अरु तुरीयापदविषे स्थित है इसका चित्त निर्वाण हो गया है तुरीयातीत पदको प्राप्त भया है अरु विदेहमुक्त है तिसको अहंभावका उत्थान कदाचित् नहीं होता सत्रूप है अरु असत्की नाईं स्थित है. हे रामजी! वह पुरुष तिस पदको प्राप्त हुआ है जिसको वाणीकी गम नहीं परंतु कछु कहता हौं सो पद शुद्ध है अरु निर्मल है अद्वैत है अरु चेतन ब्रह्म है कालका भी काल भक्षण करनेहारा केवल चिन्मात्र है अरु ज्योंका त्यों अच्युत पद है तिस पदको पायकरि ऐसे होता है जैसे वज्रके ऊपर मूर्ति लिखि है तैसे उत्थानते रहित है अहंब्रह्मका उत्थान भी नहीं रहता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सप्तमभूमिकालक्षणविचारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः॥ १४६॥

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४७.

संसरणाभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह सप्त भूमिका तेरे ताईं कही है जो ज्ञानकी प्राप्ति इनहींकरि होती है अन्य साधनोंकरि ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी ! पुरुष ज्ञानवान् हुआ तब जानिये जब तिसकी वृत्ति प्रथम भूमिकाविषे स्थित हुई है ताते तुम भूमिकाकी और चित्तरूप चरण राखौ तब तुमको स्वरूपकी प्राप्ति होवै. हे रामजी ! तीसरी भूमिकापर्यंत सर्व कामना निवृत्त होती हैं एक आत्मपदकी कामना रहती है जब तिस अवस्थाविषे शरीर छूटि जावै तब अपर जन्म पायकरि ज्ञानको प्राप्त होता है अरु जब चतुर्थ भूमिकाविषे प्राप्त हुए शरीर छूटै तब बहुरि जन्म नहीं पाता काहेते कि आत्मपदकी प्राप्ति हुई बहुरि कछु पानेको इच्छा नहीं रहती जन्मका कारण इच्छा है जब इच्छा कछु न रही तब जन्म भी न रहा जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त भयी है तिसको स्वरूपकी प्राप्ति भयी है बहुरि इच्छा कैसे होवै जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे उसका चित्तज्ञान अग्निकरिकै दग्ध हुआ है जो सत्पदको प्राप्त हुआ है इसीते जन्म नहीं लेता अरु मरता भी नहीं संसारको स्वप्नवत् देखता है अरु पंचम भूमिकावाला सुषुप्तकी नाईं होता है अरु छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीयापद है सप्तम तुरीयातीत अनिर्वाच्यपद है. हे रामजी ! मेरे एते कहनेका प्रयोजन यही है कि वासनाका त्याग करु अरु अचिंत्यपदको प्राप्त होहु सो वासना क्या है इसका अभिमान होना ही वासना है जब इसका अभिमान निवृत्त भया तब ही शांति हुई यह परिच्छिन्न अहंकार करता नहीं आत्माके अज्ञानते हुआ है अरु आत्मज्ञानते लीन हो जाता है. हे रामजी ! संसाररूपी एक नदी है तिसविषे आधिव्याधि उपाधि रोग तरंग हैं अरु रागद्वेषरूपी छोटे मत्स्य हैं अरु तृष्णारूपी बडे मत्स्य हैं तिसविषे तिसकरि जीव दुःख पाते हैं जैसे जल नीचेको चला जाता है तैसे मृत्युके मुखमें संसार चला जाता है अरु अज्ञान-

रूपी जल है. हे रामजी! तृष्णाकरि पुरुष बांधे हैं ताते तुम तृष्णारूपी संकलको काटौ हस्तीकी नाईं वैराग्य अभ्यासरूपी दंतकरि तृष्णारूपी जंजीर काटहु. हे रामजी! यह तृष्णारूपी सर्पिणी है विषयरूपी फूत्कारेकरि विचाररूपी वल्लीको जलाती है तिसकरि जीवरूपी कृपाण दुःख पाता है ताते वैराग्यरूपी अग्निकरि सर्पिणीको जलावहु. हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है जबलग तृष्णा है तबलग संतके वचन इसके हृदयविषे स्थित नहीं होते जैसे दर्पणके ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसे तृष्णावान्‌के हृदयविषे संतके वचन नहीं ठहरते सो तृष्णाके एते नाम हैं तृष्णा अभिलाषा इच्छा फुरणा संसारणा इत्यादिक सर्व इसीके नाम हैं सो इच्छारूपी मेघ है तिसने ज्ञानरूपी सूर्य आच्छादित किया है तिसकरि भासता नहीं जब विचाररूपी पवन चलै तब इच्छारूपी मेघ नष्ट हो जावै अरु आत्मरूपी सूर्यका साक्षात्कार होवै. हे रामजी! यह जीव आकाशका पक्षी है तिसका कर्मविषे इच्छारूपी तागा है तिसकरि उड़ि नहीं सकता अरु परमात्मपदको प्राप्त नहीं होता अरु इच्छाहीकरि दीन है जब इच्छा नष्ट होवै तब आत्मस्वरूप है ताते इच्छाका नाश करि आत्मपरायण होहु आत्मपरायण कहिये विषयसंसारते वैराग्य अरु आत्माभ्यास करौ. हे रामजी! यह जो मैं तेरे ताईं भूमिकाक्रम कहा है जब इसविषे आवै तब ज्ञानकी प्राप्ति होवै सो इनको तब प्राप्त होता है जो एक हस्तिनीको जीतता है एक वनविषे रहती है दो उसके पुत्र महामत्तरूप हैं वह अनेक जीवको मारिकरि अनर्थको प्राप्त करती है तिसके जीतेते सर्व जगत् जीता जाता है. राम उवाच-हे भगवन्! ऐसी हस्तिनी मत्तरूप सो कौन है अरु कहां रहती है कौन उसके दंत अरु पुत्र हैं कैसे वह मारती है अरु कैसे उसको रचा है अरु कौन वन है? यह सब मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इच्छारूपी हस्तिनी है शरीररूपी वन है मनरूपी गुफाविषे रहती है इंद्रियांरूपी बालक हैं संकल्पविकल्परूपी दंत हैं तिनसाथ छेदती है. हे रामजी! एक नदी है तिसका प्रवाह सदा चला जाता है तिसविषे दो मत्स्य रहते हैं जो नाश नहीं होते यह संसरणा ही नदी है अरु राग द्वेष तिसविषे मत्स्य रहते हैं

सो नाश नहीं होले. हे रामजी ! मत्स्य तब नाश होवैं जब संसरणरूपी जल नष्ट होवै. तिसके सुकृतदुष्कृतरूपी किनारे हैं चिंतारूपी ग्राह हैं कर्मरूपी लहरी हैं तिनविषे आया जीवरूपी तृण भटकता है हे रामजी ! तू तृष्णारूपी विषकी वल्लीको नाश करौ. तृष्णारूपी अंकुरका बढाना घटाना अपने अधीन है जो अंकुरको जल देइये तौ बढता जाता है अरु जो न देइये तौ जलि जाता है सो फुरणेरूपी जल देनेकरि तृष्णा-रूपी अंकुर बढ़ता जाता है अरु न देनेकरि जलि जाता है स्वरूपके अभ्यासकरि. हे रामजी ! तृष्णारूपी बड़ा मत्स्य है धैर्य आदिक मांसको भक्षण करनेवाला है तिसको वैराग्यरूपी कुंडा अरु अभ्यासरूपी वंसीकरि नाश करौ. हे रामजी !. इच्छाका नाम बंधन है, निरिच्छाका नाम मुक्ति है. हे रामजी ! एक सुगम उपाय कहता हौं जिसकरि तृष्णा नष्ट हो जावै सो निज अर्थकी भावना करु. जब निज अर्थकी भावना करोगे तब शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी अरु तेरी जय होवैगी. सर्वते उत्तम पदको प्राप्त होवैगा अरु वासना तेरी कोऊ न रहैगी शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी अरु संकल्प सर्व नष्ट हो जावैंगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संसरणाभावप्रतिपादन-वर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४८.
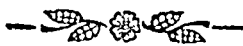
इच्छाचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच—हे भगवन् ! तुम कहते हौ निज अर्थकी भावना करु वासना नष्ट हो जावैगी अरु शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी सो वासना तौ चिरकालकी चित्तविषे स्थित है, एक ही वार कैसे नष्ट होवैगी ? अरु तुम कहते हौ वासनाके नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है जिसकी वासना नष्ट हुई तिसका शरीर कैसे रहैगा ? अरु वासना विना चेष्टा क्योंकरि होवैगी ? ताते जीवन्मुक्तपद कैसे बनै ? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! मेरे वचन प्रीतिसाथ सुन, कैसे वचन हैं श्रवणोंके भूषण हैं

जिनके सुननेते दरिद्र न रहैगा निज अर्थके धारणेते संशय नष्ट हो जावेंगे अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी सो निज अक्षरके तीन अर्थ हैं एक तौ अन्यके अर्थ है जो पांचभौतिक शरीरते तेरा स्वरूप अन्य विलक्षण है अरु दूसरा अर्थ यह जो विरुद्ध है शरीर जड़ है तमरूप है अरु तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण है तमते परे है. हे रामजी ! जब तैंने ऐसे धारा कि मैं आत्मा हौं अरु यह देहादिक अनात्मा है तब देह साथ मिलिकरि अभिलाषा कैसे रहैगी अर्थ यह कि न करैगा जबलग जाना नहीं तबलग अभिलाषा है अरु तीसरा अर्थ निजका यह जो अभाव है कि न मैं हौं न कोऊ जगत् है ऐसे जाना तब इच्छा किसकी रहैगी अर्थ यह कि न रहैगी अथवा जो तू आपको देहते विलक्षण आत्मा जानैगा तौ भी आविद्यक तमरूप शरीरकी अभिलाषा न रहैगी देह तमरूप है तू आदित्यवर्ण है आदित्यवर्ण कहिये जो तू प्रकाशरूप है तेरा अरु इसका संयोग कहां होवै जैसे सूर्यके मंडलविषे रात्रि नहीं दीखती तैसे जब तू आपको प्रकाशरूप जानैगा तब तमरूप संसार न देखैगा शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी अरु तेरेविषे चेष्टा कछु न होवैगी जैसे अर्ध निद्रावालेकी चेष्टा होती है अरु जानती भी नहीं तैसे चेष्टा होवैगी अरु बालककी नाईं तुझको अभिमान न होवैगा जैसे बालककी उन्मत्त चेष्टा होती है तैसे तेरी चेष्टा भी स्वाभा-विक होवैगी. हे रामजी ! जो तू इच्छा करै कि यह सुख होवै अरु यह दुःख न होवै तौ कदाचित् न होवैगा जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है परंतु ज्ञानवान्‌के हृदयते संसारकी सत्यता जाती रहती है अरु चेष्टा स्वाभाविक होती है इच्छा नहीं रहती. हे रामजी ! जैसे किसी पुरुषको मञ्जल पेंडा करना होता है पेंडा बड़ा होवै अरु पहुँचनेका समय थोड़ा होवै तौ वह पुरुष मार्गके स्थान देखता भी जाता है परंतु बंधमान किसीविषे नहीं होता तैसे चित्तको आत्मपदविषे लावहु कि किसीप्रकार पहुँचना है ऐसा शरीर पायकरि आत्मपद न पाइये तौ कब पाना है जो आत्मपदते विमुख है सो वृक्षादिक जन्मोंको पावैगा. ताते हे रामजी ! चित्त आत्मपदविषे राख अरु स्वाभाविक इच्छा

बिना चेष्टा होवै इच्छा ही दुःखदायक है जब इच्छा नष्ट हुई तब इसीको ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं जहां जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिका अभाव होवै सो तुरीयापद है. हे रामजी! यह जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइये सो तुरीयापद है जब संवेदन फुरणा अहंकारका अभाव हो जावै तब तुरीयापद प्राप्त होवै. हे रामजी! अहंकारका होना दुःखदायक है जब इसका नाश हुआ तब ही आनंद है आत्मपदते इतर जो मायाकी रचना है तिससाथ मिलिकरि आपको जानता है मैं हौं यही अनर्थ है ताते अहंकारका त्याग करौ. जिसको देखिकरि फुरता है तिसको निज अर्थकी भावनाकरि नाश करु जो आत्मपदते इतर भासता है सो मिथ्या जानौ यही निज अक्षरका अर्थ है जेता कछु संसार भासता है तिसको स्वप्नमात्र जानौ सत् जानकरि इसविषे इच्छा करनी यही अनर्थ है अरु मिथ्या जानकरि इच्छा न करनी यही कल्याण है. हे रामजी! मैं ऊँची बाहुकरि पुकारता हौं मेरे वचन सुनता कोऊ नहीं कि इच्छा ही संसारका कारण है अरु इच्छाते रहित होना परम कल्याण है. जब इच्छाते रहित हुआ तब शांतपदको प्राप्त होता है निरिच्छित हुए आत्मा भासता है जो आनंदरूप है, सम है, अद्वैत है तिसविषे जगत्का अभाव है. हे रामजी! मोहका वड़ा माहात्म्य है हृदयविषे जो आत्मरूपी चिंतामणि स्थित है तिसको मूर्ख विस्मरण करिकै अहंकाररूपी काचको ग्रहण करते हैं. हे रामजी! तुम निरभिमान होकरि चेष्टा करौ जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे अभिमान कछु नहीं अरु चेष्टा तिसकी होती है तैसे प्रारब्धवेगकरि तुम्हारी चेष्टा होवैगी यह अभिमान तुम न करौ कि ऐसे होवै अरु ऐसे न होवै जब ऐसा होवैगा तब शांतपदको प्राप्त होवैगा जहां वाणीकी गम नहीं ऐसे आनंदको प्राप्त होवैगा जबलग इंद्रियोंके अर्थकी तृष्णा है तबलग जन्ममृत्युके बंधनमें है ताते पुरुषप्रयत्न यही है जो तृष्णाका नाश करौ. कर्मके फलकी तृष्णा तेरे ताईं न होवै अरु कर्मके करनेविषे भी तेरे ताईं इच्छा न होवै इन दोनोंको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु अरु ऐसा भी निश्चय न होवै जो मैं त्याग किया है. हे रामजी! जिस पुरुषने कर्मका त्याग किया

है अरु अहंकारसाथ है तौ पुण्य अरु पाप तिसने सब कछु किया है अरु जिसविषे अहंभाव नहीं सो भावै तैसे कर्म करै तौ भी कछु नहीं किया सो बंधनको नहीं प्राप्त होता जो कर्मविषे आपको अकर्ता जानता है अरु अकरणविषे अभिमानसहित है. तिसको करता देखते हैं सो बंधवान् है. हे रामजी ! ऐसे आत्माको जानकरि अहंममका त्याग करौ ऐसे संवेदनके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं. स्मृति तिसकी होती है जिसका अनुभव होता है जिसका अनुभव न होवै तिसका त्याग करना सुगम है अनुभव कहिये प्रत्यक्ष देखना विश्व तेरे स्वरूपविषे है नहीं तौ अनुभव क्या होवै ? यह पदार्थ जो तेरे ताईं भासते हैं तिनके कारणको जान इसका कारण अनुभव है जो अनुभव ही इनका मिथ्या है तौ स्मृति सत् कैसे होवै ? जेवरीविषे सर्पका अनुभव हुआ बहुरि स्मरण किया जो वहां सर्प देखा था जो सर्पका अनुभव ही मिथ्या है बहुरि स्मरण सत् कैसे होवै ? ताते जो वस्तु मिथ्या है तिसके त्यागनेविषे क्या यत्न है जब प्रपंचको मिथ्या जाना तब तुमको कोऊ क्रिया बंधन न होवैगी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी अरु राग द्वेष चलता रहैगा जैसे शरत्कालकी वल्ली सूख जाती है अरु आकार उसका दृष्टि आता है तैसे तुम्हारा चित्त देखनेमें आवैगा अरु चित्तका धर्म जो राग-द्वेष है सो चलता रहैगा वह चित्त सत् पदको प्राप्त होवैगा जब सर्व विस्मरण होवैगा तिसको शिवपद कहते हैं सो परमपद है अरु ब्रह्म है शब्द अर्थते रहित केवल चिन्मात्र अद्वैत पद है अहंममका त्याग करिकै तिसविषे स्थित होहु अरु संसार इसीका नाम है जो अहं हौं अरु यह मेरा है इसको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! जबलग अहं मम यह संवेदन है तबलग दुःख नहीं मिटते जब यह संवेदन मिटै तब आनंद है आगे जो इच्छा है सो करौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इच्छाचिकित्सोपदेशवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४८ ॥

ऊनपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः १४९.

कर्मबीजदाहोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! आत्मा अद्वैत है जिसविषे एक दो कहना नहीं अपने आप स्वभावविषे स्थित है अंतःकरणचतुष्टय अरु बाह्य पदार्थ सर्व चेतनमात्र हैं इतर कछु नहीं. रूप इंद्रियां अरु मनका फुरणा देश काल सर्व आत्मारूप ही है जैसे बालक माटीकी सैन्य बनाता है अरु हस्ती घोड़े राजा प्रजा नाम कल्पता है सो सर्व माटी ही है इतर कछु नहीं तैसे अहं मम आदिक भी सर्व आत्मरूप हैं इतर कछु नहीं जैसे माटीविषे हस्ती घोड़ा आदिक नाम कल्पता है तैसे आत्माविषे जगत् जीव कल्पता है आत्माते इतर कछु नहीं इस अहंकारका त्याग करु आत्मपदते इतर कछु फुरै नहीं. हे रामजी ! रूप अवलोक नमस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिकाके नाम हैं मान मेय प्रमाण आदिक यह सब वहीरूप हुए तो किसकारि किसको संचित कहिये यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशते इतर कछु वस्तु नहीं इनको ऐसे जानकारि अफुरशिलावत् निःसंग होय रहहु. राम उवाच–हे भगवन् ! तुमने कहा कि अहं मम फुरणेका त्याग करु यह मिथ्या है अहं मम असत् है ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं इनकी सत्ता कछु नहीं अरु असंग होहु सो असंग निष्कर्मकारि होता है अथवा सकर्मकारि होता है; यह कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह तू ही कहु कि कर्म क्या है निष्कर्म क्या अरु इनका कारण कौन है अरु इनका नाश कैसे होवै अरु नाश होनेकारि सिद्धि क्या होवैगी ? जो तू जानता है तो कह. राम उवाच–हे भगवन् ! जैसे तुमने श्रवण किया है अरु समझा है सो मैं कहता हौं जो वस्तु नाश करनी होवै तिसको निश्चयकारि मूलते नाश करिये तब ही तिसका नाश होता है शाखा पत्र काटेते उसका नाश नहीं होता ताते इनका क्रम सुनो. यह संसाररूपी वनविषे देहरूपी वृक्ष है तिसका बीज कर्म है अरु पाणि पाद आदिक उसके पत्र हैं अरु रुधिर श्वास वासना इसविषे रस हैं अरु सुख दुःख इसके फूल हैं अरु

जाग्रत् कर्म वासनारूपी वसंतऋतु है तिसकरि प्रफुल्लित होते हैं अरु सुषुप्ति पापकर्मरूपी इसको शरत्काल है तिसकरि सूख जाता है ऐसा शरीररूपी वृक्ष है बहुरि कैसा है तरुणपवनरूपी कली है क्षणका क्षण सुंदर है जरारूपी फूल इसको हंसते हैं अरु रागद्वेषरूपी वानर क्षण क्षणविषे क्षोभते हैं जाग्रत्रूपी इसको वसंतऋतु है अरु सुषुप्तिरूपी हिम करती है अरु वासनारूपी रसकरि बढ़ता है अरु पुत्र कलत्र आदिक यह तृण घास हैं अरु इंद्रियोंके गढ़रूपी तिसका सुख है इनकरि शरीरकी चेष्टा होती है ज्ञानइंद्रियां इसके पंच स्तंभ हैं इनकरि वृक्ष धारा है अरु इच्छा इसविषे बेलें हैं जो अपने अपने विषयको चाहती हैं अरु बड़ा स्तंभ इसका मन है जो सर्वको धारता है अरु पंच प्राण इसके रस हैं प्रत्यक्ष अनुमान शब्द इनकरि सर्वको ग्रहण करता है आगे इनका बीज जीव है जीव कहिये चेत्योन्मुखत्व चेतन अरु जीवका बीज संवित् है जो ब्रह्मपदते उत्थान हुआ है तिस संवित्का बीज ब्रह्म है तिसके आगे कोऊ बीज नहीं. हे भगवन्! सबका मूल संवित्का फुरणा है जब इसका अभाव हुआ तब शेष आत्मा ही रहा है. हे भगवन् यह तौ मैं जानता हौं आगे कछु कृपा करि तुम कहौ. हे भगवन्! जबलग चित्तसाथ संबंध है तबलग संसारविषे जन्म मृत्यु पाता है जब चित्तते रहित हुआ तब परब्रह्म है सो शिवपद है अनिच्छित है शान्त है अनंत रूप है चिन्मात्रविषे जो अहंका उत्थान है सोई कर्मरूपी वृक्षका कारण है तबलग अनात्मासाथ मिलिकरि कहता है मैं हौं ऐसा जानता है सो संसारका कारण है यह तुम्हारे वचनकरि समुझा है सो प्रार्थना करी है आगे कछु कृपा करि तुम कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है, जबलग संवित है तबलग कर्मोंका बीज नाश नहीं होता अरु यह सब संज्ञा इसकी हैं. कर्मोंका बीज कहिये इच्छा कहिये तृष्णा कहिये अज्ञान कहिये चित्त कहिये इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं अपर क्या किसीविषे हेयोपादेय बुद्धि करै. हे रामजी! जबलग अज्ञान है तबलग इच्छा नाश नहीं होती अरु कर्म भी नाश नहीं होते नाश दोनोंका भेद नहीं होता परंतु भेद है अज्ञानीकों

भासता है जो इच्छा है यह कर्म है अरु ज्ञानवान्‌को सब ब्रह्म ही भासता है ताते सुखी रहता है अरु अज्ञानीको कर्मविषे कर्म भासता है ताते बंधमान होता है अरु इसीका नाम त्याग है जो कर्मते कर्मबुद्धि जावै अरु इसका नाम त्याग नहीं जो क्रियाका त्याग करना है. हे रामजी! बडी उपाधि अहंकार है जिसका अहंकार नष्ट हुआ है वह पुरुष कर्म करता है तौ भी उसने कबहूँ कछु नहीं किया अरु जो अहंकार सहित है वह पुरुष जो तूष्णीं हो बैठा है तौ भी सब कर्म करता है इस अहंके त्यागका नाम सर्वत्याग है अपर क्रियाके त्यागका नाम सर्वत्याग नहीं पुरुषप्रयत्न यही है जो सर्व कर्मोंका बीज अहंकारका त्यागना अरु परम शांतिको प्राप्त होना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे कर्मबीजदाहोपदेशो नाम ऊनपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४९ ॥

पंचाशदधिकशततमः सर्गः १५०.

अहंकारनाशविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस संवेदनका होना ही अनर्थ है जो आपको कछु जानता है जब यह निवृत्त होवै तब ही इसको आनंद है. हे रामजी! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकारते रहित स्वाभाविक होती है जैसे अर्धनिद्रित पुरुष होता है तैसे ज्ञानी अपने स्वरूपविषे घूर्म है जैसे हस्ती मदकारि उन्मत्त होता है तैसे ज्ञानवान् स्वयंब्रह्म लक्ष्मीकारि घूर्म है अरु ज्ञान ऐसा व्यसन है जैसा कामीको काम व्यसन होता है तैसे यह सुखरूपी स्त्रीको पायकारि घूर्म रहता है काहेते जो निरहंकार है सर्व दुःखका बीज अहंकार जब नष्ट हुआ तब आनंद भया. हे रामजी! संसाररूपी विषकी वल्ली है तिसका बीज अहंकार है जब अहंकार अभाव होवै तब संसारका अभाव होता है. हे रामजी! अहंकार दुःखका मूल है इस संवेदनका विस्मरण करना बड़ा कल्याण है जो कछु अनात्मसाथ मिलिकारि आपको

मानना यही अनर्थ है. राम उवाच–हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है तिसका होना नहीं होता अरु जो सत्य है तिसका अभाव नहीं होता, तुम कैसे कहते हौ कि अहं संवेदनका नाश करौ ए तौ सत्य भासती है संवेदन अवेदन कैसे होवै? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! तू सत्य कहता है जो वस्तु असत्य है तिसका होना नहीं अरु जो सत्‌ है तिसका नाश नहीं होता है. हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुझको भासता है सो इसका होना कदाचित् नहीं मिथ्या कल्पित है जैसे जेवरीविषे सर्प होता है तैसे आत्माविषे अहंकार है जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है तैसे आत्माविषे अहंकार शब्द अर्थ फुरता है यह शब्द अरु अर्थ मिथ्या है तिसका लक्षण यह जो मैं हौं सो कल्पित है आत्मा केवल शुद्धस्वरूप है तिसविषे अहं त्वंका शब्द अर्थ कोऊ नहीं यह अबोधकरि भासते हैं बोधकरि लीन हो जाते हैं अरु वेदनाका जो बोध है सो अनर्थका कारण है अबोधतम है जब यह निर्वाण होवै तब कर्मका बीज मूलते काटा है. हे रामजी! जो कर्मोंको त्यागिकरि एकांत जाय बैठता है जो मैं कर्म नहीं करता हौं ऐसे मानता है सो कहता ही है जो अहंकारसाथ है तौ फलको भोगता ही है काहेते जो अहंकारसहित मैं बहुरि करौंगा आत्मज्ञान विना अनात्मसाथ मिलिकरि आपको मानता है अरु जो पुरुष कर्मइंद्रियोंसाथ चेष्टा करता है अरु आत्माको लेप नहीं जानता है सो अकर्ता ही है तिसको करणेविषे कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता अकरणेकरि भी नहीं होता ऐसा पुरुष परमनिर्वाणपदको प्राप्त होता है जिसको वाणीकी गम नहीं. हे रामजी! इसविषे फुरणा कोऊ नहीं चमत्कार है चमत्कार कहिये हुआ कछु नहीं अरु भासता है जैसे बिल्लकी मज्जा होती है वह बिल्लते इतर कछु वस्तु नहीं तैसे जगत् है जैसे सोनेते भूषण भिन्न नहीं तैसे निजशब्दका अर्थ है सो यह भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबलग भासता है जबलग अहंवेदनाकार है. हे रामजी! आत्मपद सदा अपने आपविषे स्थित है जैसे पत्थर अपनी जडताविषे स्थित है तैसे आत्मा अपनी चेतनघनताविषे स्थित है तिसको मुनीश्वर चेतनसार

कहते हैं तिस अपने स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पाता है. हे रामजी ! जो पुरुष गृहविषे स्थित है अरु अहंकारते रहित है तिसको वनवासी जान सदा एकांत है अरु जो वनवासी है अरु अहंकार सहित है सो जनोंविषे स्थित है प्रथम एक गर्तविषे था तिसको त्यागिकरि दूसरी गर्तमें पडा है जो वेषधारी है अरु वनवास लिया है तिसको ईश्वर चाहै तौ निकसै नहीं तौ बडे कूपविषे पडा है. हे रामजी ! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है एक अंगका त्याग किया अरु दूसरेका अंगीकार किया ऐसा पुरुष आपको निष्कामी जानता है तिसको वह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है. हे रामजी ! निष्कर्म यह तब ही होता है जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है अन्यथा नहीं होता ताते कर्मको मूलते उखाडहु जैसे शूर दंडबल बुंटको मूलते काटता है तैसे काटहु अहं- वेदना ही मूल है तिसका मूल काटना है. हे रामजी ! पुरुषप्रयत्न इसीका नाम है जो अपने आपका नाश करना अरु आप ही रहना देहसाथ मिला हुआ आपको जानता है तिसका नाश करना अरु शिवपदको प्राप्त होना जो सर्वदा सतस्वरूप है अरु अद्वैत है तिसविषे स्थित होहु यह विश्व भी तिसका चमत्कार है जैसे बिष्ठविषे गरी होती है तिसके बहुत नाम राखते हैं सो बिष्ठते इतर कछु नहीं तैसे संसार आत्माते इतर कछु नहीं जैसे स्तंभविषे काष्ठते इतर कछु नहीं तैसे यह संसार है नानात्म जो भासता है सो भी चेतनघन आत्मा ही है अरु निज अक्षरका अर्थ जो तेरे ताईं कहा है सो भी वही है विधिनिषेध किसका करिये सर्व परमात्मतत्त्व है दूसरा किंचित् मात्र भी नहीं. हे रामजी ! ऐसे आत्माको जानकरि सुखेन विचरो स्वाभाविक चेष्टा होवैगी जैसे अर्धनिद्रितकी होती है अरु जैसे बालक पिंघुडेविषे होता है अंग उसके स्वाभाविक हलते हैं तैसे तुम्हारी चेष्टा होवैगी अपना अभिमान तुम न करो. हे रामजी ! जेते कछु भाव अभाव पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं सो आत्माके साक्षात्कार हुएते परमात्मतत्त्व ही भासैंगे जब अहंकार उत्थान निवृत्त होवैगा. हे रामजी ! एक अपर युक्ति सुन जिसकरि आत्मज्ञान होवै यह जो

अहं अहं क्षणक्षणविषे फुरती है सो जब फुरे तब ही तिस क्षणविषे जाने कि मैं नहीं. जब ऐसे दृढ हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाश हो जावैगा अरु आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होवैगा जब अहंकार नाश होवै तब आत्मा भासे ताते अहंकारके नाशका यत्न करु कि न मैं हौं न जगत् है. हे रामजी ! ज्ञान इसीका नाम है जो अहं मम न रहै तिसको मुनीश्वर परमब्रह्म कहते हैं अरु सम्यक् पद कहते हैं अरु जहां अहं मम है तहां अविद्यारूपी तम खडा है. हे रामजी ! अज्ञानीके हृदयविषे सर्व पदार्थका भाव स्थित है देश काल घर नगर मनुष्य पशु पक्षी आदिक त्रिगुण संसार तिसको भासता है जब इनका अभाव हो जावै तब शांत-पदकी प्राप्ति होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अहंकारनाशविचारो नाम पंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५० ॥

एकपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५१.

विद्याधरवैराग्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिसके मनते मैं मेरेका अभिमान गया है तिसको शांति विना सुख नहीं. हे रामजी ! प्रथम आप बनता है तब जगत् है जो आप होता न बनै तौ जगत् कहां होवै इसका होना ही अनर्थका कारण है जिस पुरुषने अहंकारका त्याग किया है सो सर्वत्यागी भया अरु जिसने अहंकारका त्याग नहीं किया तिसने कछु नहीं त्यागा अरु जिसने क्रियाका त्याग किया है अरु आपको सर्व-त्यागी मानता है सो मिथ्या है जैसे वृक्षके टास काटिए तौ फिरि उगता है नाश नहीं होता तैसे क्रियाके त्याग किये त्याग नहीं होता. त्यागने योग्य अहंकार जो नष्ट नहीं होता तौ क्रिया बहुरि उपजती है ताते अहंकारका त्याग करै तब सर्वत्यागी होवै इसका नाम महात्याग है तिसको स्वप्नविषे भी संसार न भासैगा जाग्रत्की क्या कहनी है तिसको संसारका भान कदाचित् नहीं होता. हे रामजी !

संसारका बीज अहंभाव है तिसकरि स्थावर जंगम जगत् भासता है जब इसका नाश हुआ तब जगद्भ्रम मिटि जाता है ताते इसके अभावकी भावना करु जब तेरे ताईं अहंभाव फुरै तब तू जान कि मैं नहीं जब इस प्रकार अहंका अभाव हुआ तब पाछे जो शेष रहैगा सो आत्मपद है. हे रामजी ! सब अनर्थका कारण अहंभाव है तिसीका त्याग करु. हे रामजी ! शस्त्रका प्रहार जीव सह लेता है अपर व्याधि रोगको सह लेता है इस अहंके त्यागनेविषे क्या कदर्थना है ? हे रामजी ! संसारका बीज अहंका सद्भाव है तिसका नाश करना संसारका मूलसंयुक्त नाश है ताते तिसके नाशका उपाय करौ जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है तिसको सब ठौर आकाशरूप है उसके हृदयविषे संसारकी सत्ता कछु नहीं फुरती यद्यपि गृहस्थविषे होवै तौ प्रपञ्च यह शून्य वनकी कटवी तिसको भासती है अरु जो अहंकारसहित है वनविषे जाय बैठे तौ भी जनके समूहविषे बैठा है काहेते कि तिसका अज्ञान नाश नहीं भया अरु जिसने मनसहित षट् इंद्रियोंको वश नहीं किया तिसको मेरी कथा श्रवणका अधिकार नहीं वह पशु है अरु जिस पुरुषने मनको जीता है अथवा जो जीतनेकी इच्छा करता है दिन दिन प्रति सो पुरुष हैं अरु जो इंद्रियोंकरि विश्रामी है काम क्रोध लोभ मोहकरि संपन्न है सो पशु है महाअंधतमको प्राप्त होता है. हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञानवान् है अरु इच्छा कर्मकी तिसविषे दृष्टि आती है तो भी इच्छा तिसकी अनिच्छा ही है अरु कर्म अकर्म ही है. जैसे भूना दाना बहुरि नहीं उगता अरु आकार तिसका भासता है तैसे ज्ञानवान्की चेष्टा दृष्टि आती है सो देखनेमात्र है उसके हृदयविषे कछु नहीं. हे रामजी ! पुरुष कर्मेंद्रियोंसाथ चेष्टा करता है अरु जगत्की सत्यता हृदयविषे नहीं तब बन्धन कोऊ नहीं होता अरु जो जगत्को सत्य जानिकरि थोड़ा कर्म करता है तौ भी पसर जाता है जैसे थोड़ा अग्नि जागकरि बहुत हो जाता है तैसे थोड़ा कर्म भी उसको जन्म मरण दुःख देता है अरु ज्ञानीको नहीं होता उसकी प्रारब्ध शेष है सो भी हृदयविषे नहीं मानता जानता है जो शरीरकी है आत्माकी नहीं सो भी वेग उतरता जाता है जैसे कुंभारका

चक्र होता है अरु चरण चलावनेते रह जाता है तौ शनैः शनैः वेग उतरता जाता है तैसे प्रारब्धवेग उसका उतरता जाता है बहुरि जन्म नहीं होता. काहेते कि तिसको अहंकाररूपी चरण नहीं लगता ताते अहंकारका नाश करु जब अहंकार नाश हुआ तब सर्वके आदि पदको प्राप्त होवैगा सो परम निर्वाणपद है तिसविषे तब वादल होते हैं निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है. हे रामजी! जब वर्षाकाल होता है जब शरत्काल आता है तब बादल चलते रहते हैं. हे रामजी! जबलग अज्ञानरूपी वर्षाकाल है तबलग अहंकार रूपी वर्षा है. जब विचाररूपी शरत्काल आवैगा तब अहंकाररूपी मेघ चलते रहैंगे अरु आत्मरूपी आकाश निर्मल भासैगा. हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श होता है तब मुखका प्रतिबिंब उज्ज्वल नहीं भासता. जब मैल निवृत्त होवै तब मुखका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासै तैसे अहंकाररूपी मैलकरि जीव आच्छादित है तिसकरि आत्मा नहीं भासता जब अहंकाररूपी मैल निवृत्त होवै तब आत्मा ज्योंका त्यों भासै जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग उठते हैं अरु सम्यक्दर्शीको सब जलमय दृष्टि आते हैं अरु भूषणविषे स्वर्ण ही भासता है तैसे नाना प्रकारके प्रपंच तिस समदर्शीको चेतनघन आत्मा ही दृष्टि आता है आत्माते इतर कछु नहीं देखता अपर ओरते पत्थरकी शिलावत् हो जाता है. काहेते जो अहंकार उसका नष्ट हो गया है अरु जो अहंकारसाथ है क्रियाका त्याग करता है अरु त्यागकरि आपको सुखी मानता है सो मूर्ख है जैसे कोऊ लकडी लेकरि आकाशको नाश किया चाहै तौ नहीं होता तैसे क्रियाके त्यागकरि दुःख नष्ट नहीं होता जब सम्पूर्ण संसार क्रियाका बीज अहंकार नाश होवै तब अक्रिय आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है जैसे तांबा अपने तांबाभावको त्यागता है तब स्वर्ण होता है तैसे जब जीव अपना जीवत्वभाव त्यागै तब आत्मा होता है अरु जैसे तेलकी बूँद जलविषे पडती है अरु पसारि जाती है नाना प्रकारके रंग जलविषे भासते हैं तैसे ब्रह्मरूपी जलविषे अहंकाररूपी तेलकी बूँद नाना प्रकारकी कलना दिखाई देती है आत्मा ब्रह्म निराकार निरंजन इत्यादिक नाम

भी अहंकारकरिकै शुद्धविषे कल्पे हैं सो अङ्कुर केवल सत्तामात्र हैं सत् अरु असत्की नाईं स्थित हैं. हे रामजी ! संसाररूपी मिर्चका बूटा है अरु संसाररूपी फूल हैं अहंतारूपी तिसविषे सुगंधि है. हे रामजी ! जब अहंता उदय हुई तब संसार उदय होता है अरु अहंताके नाश हुए संसार नाश हो जाता है क्षणविषे उदय होता है अरु क्षणविषे नाश होता है सो अहंताका होना ही उदय होनेका क्षण है अरु अहंताका लीन होना सो नाशका क्षण है. हे रामजी ! जैसे मृत्तिकाको जलका संयोग होता है तिसकरि घट बनता है तब मृत्तिका घटसंज्ञाको पाती है तैसे पुरुषको जब अहंकारका संग होता है तब संसारी होता है अरु जीवसंज्ञाको पाता है देश काल पृथ्वी पर्वत आदिक दृश्यको प्रत्यक्ष देखता है जब अहंता नाश होवै तब सुखी होता है जेता कछु नामरूप है अरु तिसका अर्थ है सो अहंताकरि भासता है जब अहंताको त्यागै तब शांतरूप आत्मा ही शेष रहैगा जैसे पवनते रहित दीपक प्रकाशता है तैसे अहंकाररूपी पवनते रहित अपने स्वभावविषे स्थित होता है आनंद अरु पदको प्राप्त होता है अरु अनादि पद अपनेको प्राप्त होता है अरु सर्वका अपना आप होता है देश काल वस्तु अपनेविषे देखता है. हे रामजी ! जबलग अहंताका नाश नहीं होता तबलग मेरे वचन हृदयविषे स्थित न होवैंगे. हे रामजी ! जिस पुरुषने अपना स्वभाव नहीं जाना तिसको ब्रह्म पाना कठिन है जैसे रेतविषे तेल निकसना कठिन है तैसे उसको ब्रह्मका पाना कठिन है अरु अपना स्वभाव जानना अति सुगम है जब अहंताका त्याग करै कि न मैं हौं न जगत् है जब कल्याण हुआ तब अहंताका नाश होता है तब भ्रम कोऊ नहीं रहता जैसे जेवरीके जाने सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है जबलग अहंता फुरती है तबलग उपदेश इसका नहीं लगता जैसे आरसीके ऊपर मोती नहीं ठहरता उसके हृदयविषे मेरे वचन नहीं ठहरते अरु जिसका हृदय शुद्ध है तिसको मेरे वचन लगते हैं जैसे तेलकी बूँद जलविषे विस्तारको पाती है तैसे उसको थोडा वचन भी बहुत हो लगता है. हे रामजी ! इस पर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो तू श्रवण करु मेरा अरु कागभुशुंडका

संवाद है. एक समय सुमेरु पर्वतके शिखरपर मैं गया था तहाँ भुशुंड बैठा था तिससों मैं प्रश्न किया कि हे अंग! ऐसा भी कोऊ पुरुष है जिसकी आयुर्बल बड़ी होवै अरु ज्ञानते शून्य रहा है जो उनको देखा होवै तौ कहौ. भुशुण्ड उवाच–हे भगवन्! एक विद्याधर देवता होत भया है तिसका बडा आयुर्बल था अरु विद्या बहुत अध्ययन करी थी सत्कर्मोंविषे विचरता था अरु भोग भी तिसने बडे भोगे थे अरु सत्कर्मोंको करै परंतु केवल सकाम चतुर्युगपर्यंत सकाम कर्म करता रहा जप तप नियम आदिक कर्म करत भया जब चतुर्थ युगका अंत हुआ तब उसको विचार आनि उपजा जेते भोग सुखरूप जानकरि भोगता था तिन भोगोंते उसको वैराग्य उपजत भया तब भोगको त्यागिकरि लोकालोक पर्वतपर गया तहां जायकरि विचारत भया कि यह संसार असाररूप है किसी प्रकार इसते छूटौं वारंवार जन्म है वारंवार मृत्यु है पदार्थ सत्य कोऊ नहीं किसका आश्रय करौं ऐसे विचार करिकै वह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरुपर्वतके ऊपर मेरे पास आय प्राप्त भया अरु शिर नीचा करि मेरे ताईं दंडवत् करै अरु मैं भी बहुत आदर किया तब हाथ जोडिकरि तिसने कहा. विद्याधर उवाच–हे भगवन्! एते कालपर्यंत विषयको भोगता रहा हौं परंतु शांति मेरे ताईं प्राप्त नहीं भयी तिसते मैं दुःखी रहा हौं तुम कृपा करि शांतिका उपाय कहौं. हे भगवन्! चित्ररथका जो बाग बना हुआ है तिसविषे सदाशिवजी रहता है अरु कल्पवृक्ष भी बहुत हैं तिसविषे मैं चिरकाल रहा हौं बहुरि विद्याधरके स्वर्गविषे रहा हौं अरु इंद्रके नंदनवनविषे रहा हौं अरु स्वर्गकी कंदराविषे रहा हौं अरु सुंदर अप्सरासाथ स्पर्श किया अरु विमान पर आरूढ बहुत रहा हौं. हे भगवन्! इत्यादिक बहु स्थान मैंने देखे हैं अरु तप भी बहुत किया है दान यज्ञ व्रत भी बहुत किया है अरु सहस्र वर्ष सुंदर रूप देखता रहा हौं जिनकी सुंदरता कहने विषे नहीं आती तौ भी नेत्रको तृप्ति नहीं भयी अरु बहुत सुगंधिकरि नासिकाको तृप्ति न भयी अरु रसनाकरि भोजन बहुत प्रकारके खाये हैं तौ भी शांति न भयी तृष्णा बढती गयी अरु श्रोत्रकरि शब्द राग बहुत प्रकार सुने हैं अरु त्वचाकरि

स्पर्श बहुत किये हैं तौ भी शांति न प्राप्त भयी. हे भगवन् ! मैं जिस ओर सुख जानिकरि प्रवेश करौं तिसी ओर दुःख प्राप्त होवै जैसे मृग क्षुधा निवारणेअर्थ घास खाने आता है अरु राग सुन मूर्च्छित हो जाता है अरु वधिक इसको पकड लेता है तब मृग दुःख पाता है, तैसे मैं सुख जानिकरि विषयको ग्रहण करता था अरु बड़े दुःखको प्राप्त भया. हे भगवन् ! मैं चिरकालतक दिव्य भोग भोगे हैं पांचों इंद्रिय छठे मनसहित कछु कहनेविषे नहीं आते ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध भोगे परंतु मेरे ताईं शांति न प्राप्त भयी अरु न इंद्रिय तृप्त भयीं जैसे घृतकरि अग्नि तृप्त नहीं होती तैसे दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है अरु अंतर पडी जलाती है जो पुरुष इन भोगके निमित्त यत्न करता है जो मैं इनकरि सुखी होऊंगा सो मूर्ख है तिसको धिक्कार है वह समुद्रविषे तरंगका आश्रय करता है अरु यह सुखरूप तबलग भासते हैं जबलग इंद्रियां अरु विषयका संयोग है जब इंद्रियोंते विषयका वियोग हुआ तब महादुःखको प्राप्त होता है. काहेते कि तृष्णा अंतर रहती है अरु भोग जाते रहते हैं. जो जो विषय भोगते हैं सोई दुःखदायक हो जाते हैं. हे भगवन् ! इसकरि मैं बहुत दुःख पाया है यद्यपि इंद्रियां कोमल हैं तौ भी सुमेरुकी नाईं कठिन हैं कोमल भासती हैं, परंतु ऐसे हैं, जैसे सर्पिणी कोमल होती है, खड्गकी धारा कोमल है स्पर्श किया मर जाता है बहुरि कैसी है जैसे बेडी जलविषे पवनकरि भ्रमती है तैसे अज्ञानरूपी नदीविषे पवनरूपी इंद्रियोंने मेरे ताईं दुःख दिया है. हे भगवन् ! ऐसे भी मैं देखे हैं जो सारा दिन माँगते रहे हैं अरु भोजन खानेके निमित्त इकट्ठा नहीं हुआ अरु एक ऐसे देखे हैं जो ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत सब भोगको एक दिनविषे भोगा है जिसको दिनविषे भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता जो सब विषय इंद्रियोंके इष्टरूप भोगता है तिन दोनोंको भस्म होते देखी भस्म दोनोंकी तुल्य हो जाती है विशेषता कछु नहीं इंद्रियोंके बंधनविषे वारंवार जन्मते अरु मरते हैं अज्ञानी शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होते अरु जो तुम कहौ तू तौ सुखी दृष्टि आता है तेरे ताईं क्या दुःख

है ? तौ हे भगवन्! यह दुःख देखनेमें नहीं आता जैसे चक्रवर्ती राजा होवै अरु शिरपर चमर झुलता है अरु अंतर अध्यात्मताप्रकरि तपता है जो मनविषे ज्वलन है तिसकरि जलता है अरु बाहरते सुखी दृष्टि आता है, तैसे देखनेमात्र मैं सुखी दृष्टि आता हौं अरु अंतर इंद्रियां मेरे ताईं जलाती हैं. हे भगवन्! ब्रह्माके लोकविषे मैं बडे सुखको देखे हैं परंतु तहां भी दुःखी रहा हौं काहेते कि क्षय अरु अतिशय तहां भी रहती है जिसकरि वह भी जलते हैं अरु इन इंद्रियोंका शस्त्रते भी कठिन घाव है सो घाव क्या है जो संसारकी विषमता नाना प्रकारकी दिखावती है सर्वदा राग द्वेष इनविषे रहता है तिसकरि मैं बहुत जलता रहा हौं ताते सोई उपाय मेरे ताईं कहौ तिसकरि मैं शांतिको प्राप्त होऊं अरु वह कौन सुख है ? जिसकरि बहुरि दुःखी न होवै अरु जिसका नाश नहीं आदि अंतते रहित है सो कहो तिसके पानेविषे कष्ट है तौ भी मैं यत्न करता हौं जो किसी प्रकार प्राप्त होवै. हे मुनीश्वर! इंद्रियोंने मेरे ताईं बडा कष्ट दिया है यह इंद्रियाँ कैसी हैं जो गुणरूपी वृक्षको अग्नि हैं शुभ गुणोंको जलाती हैं विचार धैर्य संतोष अरु शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाश करनेहारी हैं. हे भगवन्! इनने मेरे ताईं दुःख दिया है जैसे मृगका बच्चा सिंहके वश पडै तिसको मर्दन करता है तैसे इंद्रियां मेरे ताईं मर्दन किया है. हे भगवन्! जिस पुरुषने इंद्रियोंको वश किया है तिसका पूजन सर्व देवता करते हैं अरु दर्शनकी इच्छा करते हैं अरु जिसने मनको वश नहीं किया तिनको दीनकरि जानते हैं अरु जिस पुरुषने इंद्रियोंको वश किया है सो सुमेरु पर्वतकी नाईं अपनी गंभीरताविषे स्थित है अरु जिसने इंद्रियां वश नहीं किया सो तृणकी नाईं तुच्छ है अरु जिसको इंद्रियोंके अर्थविषे सदा तृष्णा रहती है सो पशु है तिसको मेरा धिक्कार है. हे मुनीश्वर! जो बडा महंत भी है अरु इंद्रिय उसके वश नहीं तौ वह महानीच है. हे मुनीश्वर! इंद्रियोंने मेरे ताईं बडा दुःख दिया है जैसे महाशून्य उजाडविषे पैंदोईको तस्कर लूटि लेते हैं तैसे इंद्रियोंने मेरे ताईं लूटि लिया है अरु इंद्रियांरूपी सर्पिणी है अरु तृष्णारूपी

विष है तिसकरि इनविषे सारी विश्व मोहित दीखती है कोऊ विरले इनते बचे होवैंगे यह इंद्रियां दुष्ट हैं अपने अपने विषयको लेती हैं अपरको देती नहीं तुच्छ अरु जड हैं अनहोतियोंने दुःखे दिया है जैसे बिजलीका चमत्कार होता है बहुरि छपन हो जाती हैं तैसे इंद्रियोंके सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं बहुरि छपन हो जाते हैं जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है तबलग सुख भासता है जब इनका वियोग हुआ तब दुःख उत्पन्न होता है काहेते जो तृष्णा रहती है. एक सेन्य है तिसविषे इंद्रियोंके भोग उन्मत्त हस्ती हैं तिसविषे तृष्णारूपी जंजीर हैं अरु इंद्रियांरूपी रथ हैं अरु नाना प्रकारके विषय तिसमें घोडे हैं अरु संकल्पविकल्परूपी खड्ग हैं तिसके धारनेहारा अहंकार है अरु यह जो क्रिया होती हैं अहंकारसहित सो शास्त्रोंके समूह हैं. हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने इस सेनाको नहीं जीती सो मोहरूपी अंधके कूपविषे गिरा है अरु कष्ट पाता है अरु जिसने जीती है सो परम सुखको प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर ! यह इंद्रियां कैसी हैं जो भोगकी इच्छारूपी खाईविषे अहंकाररूपी राजाको डार देती हैं अरु निकसना कठिन हो पडता है जिस पुरुषने इनको जीता है तिसकी त्रिलोकीविषे जय होती है अरु जिसने नहीं जीता सो महादीनताको प्राप्त होता है अरु जन्म जन्मांतरको पाता है इन इंद्रियोंविषे रजोगुण अरु तमोगुण रहता है तबलग दाहको देती हैं जबलग रज तम वृत्ति है यह भी मनकी वृत्ति है जब इनका अभाव होवे तब शांति प्राप्त होवै यह शोधि देखा है जो इंद्रियां तपकरि भी वश नहीं होती हैं न यज्ञकरि न व्रतकरि न तीर्थकरि वश होती हैं न किसी औषधकरि न किसी अपर उपायकरिके वश होती हैं एक संतके संगकरि निरवासी होवै तब वश होती हैं ताते मैं तुम्हारी शरण हौं मेरे ताईं आपदाके समुद्रते कृपा करिकै निकासौ जो मैं बूडता हौं अरु यह संसारसमुद्रविषे दीन हौं ताते तुम्हारी शरणको प्राप्त भया हौं तुम पार करौ अरु तुम्हारी महिमा संतने भी सुनी है तुम कृपा करौ. हे भगवन् ! जो कोऊ आयुर्बल पर्यंत विषयके दिव्यभोग भोगता रहै अरु इनते शांति चाहै तौ न प्राप्त

होवैगी बडे सुख सो दुःख समान हैं अरु आकाशविषे उडनेवाले भी हैं तौ भी इंद्रियोंको वश नहीं करि सकते ताते दीन दुःखी रहते हैं अरु ऐसा भी कोऊ पुरुष होवै जो फूलकी नाईं महामत्त हस्तीके दंतको चूर्ण करै तौ भी मानता हूँ परंतु इंद्रियोंको अंतर्मुख करना महाकठिन है. हे मुनीश्वर ! एता काल मैं जलता रहा हौं महाअध्यात्म तापविषे मैं दुःखी हौं तुम कृपा करि निकासहु मैं तुम्हारी शरण हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम एकपंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५१ ॥

द्विपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५२.

संसाररूपीवृक्षवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच—हे वसिष्ठजी ! जब इस प्रकार विद्याधरने मेरे आगे प्रार्थना करी तब मैंने कहा. हे अंग ! तू धन्य है अब तू जागा है जैसे कोऊ पुरुष अंधे कुएँविषे पड़ा होवै अरु तिसकी इच्छा हुई कि निकसौं तौ जानिये कि निकसैगा, ताते तू धन्य है. हे विद्याधर ! मैं उपदेश करता हौं सो तुम अंगीकार करियो अरु सत् जान जो मेरे वचनोंविषे संशय नहीं करना कि यह उपदेश ऐसे क्यों किया जो सबके सार वचन हैं सो तेरे ताईं कहता हौं अरु मैं जानता हौं कि तू शीघ्र ही अंगीकार करैगा जैसे उज्ज्वल आरसी यत्न विना प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तैसे मेरे वचन तेरे अंतर प्रवेश करैंगे जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है तिसको संत उपदेश करौ अथवा न करौ उनको सहज वचन ही उपदेश हो लगते हैं जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबको यत्नविना ग्रहण करता है तैसे मेरे वचनोंको तू धारि लेवैगा तब तेरे दुःख नाश हो जावैंगे अरु परमानंदको प्राप्त होवैगा जो अविनाशी सुख है अरु आदि अंतते रहित है अरु इंद्रियोंके सुख आगमापायी हैं सो दुःखके तुल्य हैं इनते रहित परम सुख है. हे विद्याधरविषे श्रेष्ठ ! जो कछु तेरे ताईं सुखरूप दृष्टि आवै तिसका त्याग करु, तब परम सुख तेरे ताईं

प्राप्त होवैगा अरु सर्व दुःखका मूल अहंभाव है जब अहंकार नाश हुआ तब शांति होवैगी संसारका बीज अहंकार है अरु संसार मृगतृष्णाके जलवत् है अनहोता भासता है, तबलग संसार नष्ट नहीं होता जबलग अहंतारूपी संसारका बीज है जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावै तब संसार भी निवृत्त हो जावै अरु संसाररूपी वृक्ष है सुमेरु आदिक पर्वत तिसके पत्र हैं तारागण तिसके कली फूल हैं अरु सप्त समुद्र तिसका रस है अरु जन्ममरण तिसके साथ वल्ली हैं अरु सुखदुःख तिसके फल हैं अरु आकाश दिशा पातालको धारिकै स्थित हुआ है अरु अहंकाररूपी पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है अहंकार तिसका बीज है अरु मिथ्या भ्रममात्र उत्पन्न हुआ है असत् अरु सत्की नाईं स्थित हुआ है ताते अहंकार बीजका नाश करौ निरहंकाररूपी अग्निकरि इसको जलावहु तब अत्यंत अभाव हो जावैगा यह भ्रम करिकै भयको देता है जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम भयको देता है ताते निरहंकाररूपी अग्निकरि इसका नाश करौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संसाररूपीवृक्षवर्णनं नाम द्विपंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५२ ॥

त्रिपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५३.

संसाराडंबरवर्णनम्।

भुशुंड उवाच–हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है सो श्रवण करु ब्रह्मविद्या शास्त्र तिसको श्रवण करना अरु आत्मविचार करना तिसकरि ज्ञान उपजता है तिस आत्मज्ञानरूपी अग्निकरि संसाररूपी वृक्षको जलावहु अरु आगे भी है नहीं अनहोता हृदय हुआ है मनके संकल्पकरि हुएकी नाईं स्थित है जैसे पत्थरविषे शिल्पी कल्पता है कि एती पुतलियाँ निकसैंगी सो हुई कछु नहीं तैसे मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियाँ कल्पता है जब मनका नाश करौगे तब संसारभ्रम मिटि जावैगा. आत्मविचार करिके परमपदको प्राप्त होहुगे अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासैगा ताते अहंताको त्यागि-

करि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु. हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजते उपजा है तिसको जब ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाइये तब फिरि यह जगत् नहीं उपजता जब इसको विचार करि देखिये तब अहं त्वंको नहीं पाता. हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या हैं इनके अभावकी भावना करु यही उत्तम ज्ञान है. हे साधो! जब गुरुके वचन सुनिकरि तिनके अनुसार इसने पुरुषार्थ किया तब यह परम ऊँचे पदको प्राप्त होता है इसकी जय होती है. हे विद्यारूपी कंदराके धारणेहारे पर्वत अरु विद्यारूपी पृथ्वीके धारणेहारे! यह संसाररूपी एक आडम्बर है तिसके सुमेरु जैसे कई थंबे हैं अरु रत्नोंकी पंक्तिसाथ जड़े हुए हैं अरु वन दिशा पहाड वृक्ष कंदरा वैताल देवता पाताल आकाश इत्यादिक जो ब्रह्मांड है सो तिसके ऊपर स्थित है अरु रात्रिदिन भूत प्राणी अरु इनके जो घर हैं सो चौपडके खाने हैं कोऊ जैसा कर्म करता है तिसके अनुसार दुःख सुख भोगता है सो खेलें हैं ऐसे ही संपूर्ण प्रपंच क्रियासंयुक्त दिखाई देता है सो भ्रमकरि सिद्ध है ताते मिथ्या है जैसे स्वप्नकी सृष्टि संकल्पकरि भासती है तैसे यह सृष्टि भी भ्रमकरि भासती है अज्ञानकरि रची हुई है आत्माके अज्ञानकरि भासती है सो आत्माके अज्ञानकरि लीन हो जाती है तब भी परमात्मतत्त्व ही है अरु जब सृष्टि होवैगी तब भी परमात्मतत्त्व ही होवैगा आगे भी वही था अरु जो कछु प्रपंच तेरे ताईं दृष्टि आता है सो शून्य आकाश ही है त्रिगुणमय प्रपंच गुणोंका रचाहुआ है अपने स्वरूपके प्रमादकरि स्थित भया है अरु आत्मज्ञानकरि शून्य हो जावैगा जब प्रपंच ही शून्य हुआ तब आत्मा अरु अनात्माका कहना भी न रहैगा पाछे जो शेष रहैगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है सो तेरा अपना आप है तिसविषे स्थित होहु अरु दृश्यका त्याग करु जो है नहीं न मैं हौं न जगत् है जब तू ऐसा होवैगा तब तेरी जय होवैगी आत्मपद सबते उत्तम है जब तू आत्मपदविषे स्थित हुआ तब तू सबते उत्तम हुआ अरु तेरी जय होवैगी ताते आत्मपदविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संसाराडंबरवर्णनं नाम नाम त्रिपंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५३ ॥

चतुष्पंचाशदधिकशततमः सर्गः १५४.

चित्तचमत्कारवर्णनम्।

भुशुण्ड उवाच–हे विद्याधर ! यह प्रपंच भी आत्माका चमत्कार है अरु आत्मा शुद्ध चेतन है जिसविषे जड अरु चेतन स्थित हैं अरु सबका अधिष्ठान है सो सत्तामात्र तेरा अपना आप है अहं त्वं शब्द अर्थते रहित है अरु आत्मतत्त्वमात्र है अरु सत्य स्वरूपकी असतकी नाईं स्थित है. हे विद्याधर ! तू इस जड अरु चेतनते अबोधमान होहु जब तू अबोध हुआ तब शांति चिद्धन होवैगा अरु यह जो जड़ चेतन हैं सो दोनों जड़ परमार्थ चेतन आगे इन दोनोंका अंतर रहता है यद्यपि अदृश्य है तौ भी उनके अंतर ही रहता है जैसे समुद्रके अंतर बडवाग्नि रहती है अरु इन जड़ चेतनका जो कारणरूप है सो वही है उत्पत्ति भी उसीते होती है अरु नाश भी वही करता है जैसे पवनकरि अग्नि उपजती है अरु पवनहीकरि लीन होती है. हे विद्याधर ! जब ऐसे जाना कि मैं चेतनरूप भी नहीं अरु जड़ भी नहीं जब ऐसी भावना हुई तब पाछे जो रहैगा सो तेरा स्वरूप है जब तेरे अंतर इन जड़ चेतन दोनोंका स्पर्श हुआ नहीं तब सर्वके अंतर जो चेतन है वह ब्रह्म तेरे ताईं भासैगा अरु विश्व भी आत्माविषे कछु हुई नहीं जैसे सूर्यकी किरणोंका चमत्कार जलाभास होता है तैसे शुद्ध चेतनका चमत्कार विश्व हो भासता है. हे अंग ! जैसे भीतके ऊपर पुतलियां लिखी होती हैं सो भीतते इतर कछु वस्तु नहीं चितेरेने पुतलियां लिखी हैं तैसे शून्य आकाशविषे चित्तरूपी चितेरेने विश्वरूपी पुतलियां कल्पी हैं सो आत्मरूपी भीतते इतर कछु नहीं जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं सो स्वर्णते इतर कछु नहीं तैसे आत्माविषे अज्ञानी विश्व देखते हैं सो आत्माते इतर कछु नहीं सब आत्मस्वरूपकी संज्ञा है जगत्का ब्रह्म आत्मा आकाश देश काल सब उसी तत्त्वकी संज्ञा हैं वही शुद्ध चेतन आकाश है जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है तिसी तत्त्वविषे स्थित होहु यह जगत् ऐसे है जैसे

दूरदृष्टिकरि आकाशविषे बादल हाथीकी शुंड भासते हैं तैसे यह जगत् है यह जो अहं त्वंरूप जगत् है सो अवोधकरिकै भासता है अरु बोधकरिकै लीन हो जाता है जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंकरि जल भासता है जैसे गंधर्वनगर है तैसे यह जगत् है ताते इसका त्याग करहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चित्तचमत्कारवर्णनं नाम चतुष्पंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५४ ॥

पंचपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५५.

सर्गोपसर्गोपदेशवर्णनम् ।

भुशुंड उवाच–हे विद्याधर ! यह जगत् स्थावर जंगम सब आत्माते उत्पन्न हुआ है आत्माहीविषे स्थित है अरु आत्मा ही विश्वविषे स्थित है जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेविषे स्थित है इतर कछु नहीं अरु आत्मा किसीका कारण नहीं काहेते जो अद्वैत है जिसविषे दूसरा फुरणा नहीं. हे अंग! जब तू तिस पद पानेकी इच्छा करता है तब तू ऐसे निश्चय करु कि न मैं हौं न यह जगत् है जब तू ऐसा हुआ तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है अरु सर्व वही परमात्मतत्त्व स्थित है अरु जगतका कर्ता संकल्प ही है काहेते कि संकल्पकरि उत्पन्न होता है बहुरि संकल्पहीकरि नाश होता है जैसे पवनकरि अग्नि उत्पन्न होती है अरु पवनहीकरि दीपक निर्वाण होता है तैसे जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है तब संसार उदय हो भासता है जब संकल्प अंतर्मुख होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है अरु प्रपंच लय हो जाता है ताते संसारकी नाना प्रकार संज्ञा फुरणेकरि होती है स्वरूपविषे कछु नहीं न सत्य है न असत्य है न स्वतः है न अन्य है यह सब कल्पनामात्र है सत् असत् अरु स्वतः अन्यका अभाव हुआ तहां अहं त्वं कहां पाइये है नहीं सो बालकके यक्षवत् भ्रममात्र है. हे साधो ! जहां अहं त्वं नष्ट हो गये तहां जो सत्ता है सो परमपद है अरु जहां

जगत् है तहां विचारकरि लीन हो जाता है अरु वास्तव पूछ तौ ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं नाममात्र दो हैं जैसे घट अरु कुंभ हैं परंतु भ्रमकरि नानात्व भासता है जैसे समुद्रविषे आवर्त्त तरंग उठते हैं सो जलते इतर कछु नहीं अरु पवनके संयोगते आकार भासते हैं तैसे आत्माविषे जगत् इतर कछु नहीं परंतु संकल्पके फुरणेकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है. हे अंग ! यह संकल्पके साथ मिलिकरि चित्तशक्ति जैसी भावना करता है तैसा रूप अपना देखता है स्वरूपते इतर कछु नहीं परंतु भावनाकरि अपरका अपर देखता है जैसे शुद्ध मणिके निकट कोऊ रंग राखिये तैसा रूप भासता है, अरु मणिविषे कछु रंग हुआ नहीं तैसे चित्तशक्तिविषे कछु हुआ नहीं अरु हुएकी नाईं स्थित है ताते अपने स्वरूपकी भावना करु अरु जड चेतनको छांडिकरि शुद्ध चेतनविषे स्थित होहु जब ऐसे जानिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा तब तेरे ताईं उत्थानविषे भी विश्व अपना स्वरूप भासैगा. हे विद्याधर ! यह जगत् भी आत्माते भासता है जैसे स्थिर समुद्रविषे तरंग फुरते हैं सो कारणरूप जलविना तौ नहीं तैसे ब्रह्म कारणरूप विना जगत् नहीं परंतु कैसे है ब्रह्मसत्ता जो अकर्तारूप है अद्वैत है अच्युत है इसीते कहा है जो अकर्ता है अरु जगत् अकारणरूप है जो जगत् अकारणरूप है तौ न उपजता है न नाश होता है मरुस्थलके जलवत् है इसीते कहा है कि जगत् कछु वस्तु नहीं केवल अज अच्युत शांतरूप आत्मतत्त्व ही अखंडित है स्थित है शिलाकोशवत् अचेत चिन्मात्र है जिसको चिन्मात्रकी अंतरभावना नहीं तिस मूर्खसे हमारा क्या है ? हे साधो ! परमार्थते कछु बना नहीं अरु जहां जहां यह मन है तहां २ अनेक जगत् हैं तृण सुमेरु आदिक जो हैं तिन सर्वविषे जगत् है जो विचारकरि देखिये तौ वहीरूप है अपर कछु नहीं जैसे स्वर्णके जानेते भूषण भी स्वर्ण भासते हैं तैसे केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है इतर कछु नहीं भिन्न २ संज्ञा भी वही है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सर्गोपसर्गोपदेशो नाम पंचपंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५५ ॥

षट्पंचाशदधिकशततमः सर्गः १५६.

यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच- हे विद्याधर ! जब यह आत्मपदको प्राप्त होता है तब इसकी अवस्था ऐसी होती है जो नग्न शरीर होवै अरु तिसपर बहुत शस्त्रोंकी वर्षा होवै तिसकरि दुःखी नहीं होता अरु सुन्दर अप्सरा कंठसे मिलैं तौ तिनकरि हर्षवान् नहीं होता दोनोंहीविषे तुल्य रहता है. हे विद्याधर ! तबलग यह पुरुष आत्मपदका अभ्यास करे जबलग संसारते सुषुप्तिकी नाईं नहीं होता अभ्यास ही करि आत्मपदको प्राप्त होवैगा जब आत्मपदकी प्राप्ति भयी तब पांचभौतिक शरीरके ज्वर स्पर्श न करैंगे यद्यपि शरीरविषे प्राप्ति भी होवै तौ भी तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते केवल शांतपदविषे स्थित रहता है विद्यमान भी लगते हैं तौ भी स्पर्श नहीं कर सकते जैसे जलविषे कमलको स्पर्श नहीं होता. हे देवपुत्र ! जबलग देहादिकविषे अध्यास है तबलग इसको दुःख सुख स्पर्श करते हैं आत्माके प्रमादकरि जब आत्माका साक्षात्कार हुआ तब सर्व प्रपंच भी आत्मरूप भासैगा. हे विद्याधर ! जैसे कोऊ पुरुष विषपान करता है तब उसको ज्वलनता अरु खांसी होती है यह अवस्था विषकी है सो विषते इतर कछु नहीं परंतु नाम संज्ञा हुई है न विष जन्मती है न मरती है अरु धूप खांसी उसविषे दृष्टि आयी है तैसे आत्मा न जन्मता है न मरता है अरु गुणोंके साथ मिलिकरि अवस्थाको प्राप्त हुआ दृष्टि आता है आत्मा जन्म मरणते रहित है अरु गुण व संकल्पके साथ मिलनेकरि जन्मता मरता भासता है अतःकरण अरु देह इंद्रियादिक भिन्न भिन्न भासते हैं. हे साधो ! यह जगत् भ्रमकरि भासता है जो ज्ञानवान् पुरुष है सो इस जगत्को अपने पुरुषार्थकरि गोपदकी नाईं लंघि जाता है अरु जो अज्ञानी हैं तिनको अल्प भी समुद्रसमान हो जाता है ताते आत्मपद पानेका यत्न करौ जिसके जाननेते संसारसमुद्र तुच्छ हो जावै सो आत्मतत्त्व कैसा है जो सर्वविषे अनुस्यूत व्यापा है अरु सर्वते अतीत

है बहुरि कैसा है जिसके जानेते अंतर शीतल हो जाता है सब ताप नष्ट हो जाते हैं. हे साधो ! फिरि तिसका त्याग करना अविद्या है अरु बड़ी मूर्खता है. हे साधो ! यह पदार्थजात सब ब्रह्मस्वरूप ही है जो ब्रह्मरूप ही हुए तौ मन अहंकार आदिक कलंक कैसा सब वही हैं किसीकरि किसीको कछु दुःखसुख नहीं. हे विद्याधर ! जब आत्मपदको जाना तब अंतःकरण भी ब्रह्मस्वरूप ही भासैंगे जो संकल्पकरि भिन्न भिन्न जानते हैं सो संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे ताते निःसंकल्प होकरि स्थित होहु कि न मैं हौं न यह जगत् है न इदं है इन शब्दों अरु अर्थोंते रहित होकरि स्थित होहु जो संशय सब मिटि जावै. हे विद्याधर ! जब तू ऐसे निरहंकार होवैगा अरु निःसंकल्प होवैगा तब उत्थानकालविषे भी सब आत्मा भासैगा बुद्धि बोध लज्जा लक्ष्मी स्मृति यश कीर्त्ति इत्यादिक जो शुभ अशुभ अवस्था है सो सर्व आत्मबुद्धि रहैंगी इनके प्राप्त हुए भी केवल परमार्थसत्ताते इतर न भासैगा जैसे अंधकारविषे सर्पके पैरका खोज नहीं भासता काहेते कि है नहीं तैसे तेरे ताईं सर्व अवस्था न भासैगी सर्व आत्मा ही भासैगा जेते कछु भावरूप पदार्थ स्थित हैं सो अभाव हो जावैंगे. हे अंग ! जिस पुरुषने विचार करि आत्मपद पानेका यत्न किया है सो पावैगा अरु जिसने कहा कि मैं मुक्त हो रहौंगा मेरे ताईं दया करैंगे जिस पुरुषने कदाचित् नहीं मुक्त होना आत्मस्वरूपविषे स्थित होनेको पुरुषप्रयत्न विना कदाचित् मुक्त न होवैगा आत्मस्वरूपविषे न कोऊ दुःख है न किसी गुणसाथ मिला हुआ सुख है केवल शांतरूप है किसीकरि किसीको कछु सुख दुःख नहीं न सुख है न दुःख है न कोऊ कर्त्ता है न भोक्ता है केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशवर्णनं नाम षट्पंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५६ ॥

सप्तपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५७.

इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगद्वर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच–हे विद्याधर ! जैसे कोऊ कलना करै कि आकाशविषे अपर आकाश स्थित है तौ मिथ्या प्रतीत है तैसे आत्माविषे जो अहंकार फुरणा है सो मिथ्या है जैसे आकाशविषे अपर आकाश कछु वस्तु नहीं परमार्थतत्त्व ऐसा सूक्ष्म है जिसविषे आकाश भी स्थूल है केवल आत्मत्वमात्र है अरु स्थूल ऐसा है जिसविषे सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं द्वैतते रहित चेतन केवल शांतरूप हैं गुण अरु तत्त्व क्षोभते रहित है. हे देवपुत्र ! अपना अनुभवरूप चंद्रमा है अरु अमृतके स्रवणेहारा है. हे अंग ! जेते कछु दृश्य पदार्थ भासते हैं सो हुए कछु नहीं हैं. हे अंग ! आत्मरूप अमृतकी भावना करु जो तू जन्ममृत्युके बंधनते मुक्त होवै जैसे आकाशविषे दूसरे आकाशकी कल्पना मिथ्या है तैसे निराकार चिदात्माविषे अहं मिथ्या है जैसे आकाश अपने आपविषे स्थित है तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है अहं त्वम् आदिकते रहित है जब अहंका उत्थान तिसविषे होता है तब जगत् विस्तार होता है जैसे जलविषे द्रवताकरि तरंग पसरते हैं तैसे अहंकारि जगत् पसरता है अरु जैसे वायु फुरणेते रहित हुई आकाशरूप हो जाती है तैसे संवित् उत्थान अहंते रहित हुई तब आत्मरूप हो जाती है जगद्भ्रम मिटि जाता है फुरणेकरि जगत् फुरि आया है वास्तव कछु नहीं ज्ञानवान्को आत्मा ही भासता है देश काल बुद्धि लज्जा लक्ष्मी स्मृति कीर्ति सब आकाशरूप हैं ब्रह्मरूपी चंद्रमाके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं जैसे बादलोंके संयोगकरि आकाश धूम्रभावको प्राप्त होता है तैसे प्रमादकरिकै संवित् दृश्यभावको प्राप्त होती है परंतु अपर कछु नहीं होती जैसे तरंगकरिकै जल अपर कछु नहीं होता जैसे काष्ठ छेदेते अपर कछु नहीं होता तैसे द्रष्टाते दृश्य भिन्न नहीं होता जैसे केलेके स्तंभविषे पत्र विना अपर कछु नहीं निकसता पत्र शून्यरूप है तैसे क्रूररूप जगत् भासता है परंतु आत्माते

भिन्न कछु नहीं शून्यरूप है शीश भुजा नेत्र चरण आदिक नाना प्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं परंतु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नाईं भासते हैं सब असाररूप हैं. हे विद्याधर ! चित्तविषे रागरूपी मलिनता है जब वैराग्यरूपी झाडूकारि झाडिये तब इसका चित्त निर्मल होवै जैसे कंधेके ऊपर चित्र लिखे होते हैं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है देवता मनुष्य नाग दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरेने मूर्ति लिखी हैं स्वरूपके विचारिकारि निवृत्त हो जाती हैं जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है तब भाव अभावरूप जगत् विस्तारको पाता है जैसे जलविषे तेलकी बूँद विस्तारको पाती है जैसे बांसते अग्नि निकसिकारि बांसको दग्ध करती है तैसे स्नेह इसते उपजिकारि उसीको खाते हैं आत्माविषे जो देश काल पदार्थ भासते हैं यही अविद्या है. पुरुषार्थकारि इसका अभाव करौ दो भाग साधुसंग अरु कथा श्रवणविषे व्यतीत करौ तृतीय भाग शास्त्रका विचार करौ चतुर्थ भाग आत्मज्ञानका आप ही अभ्यास करौ इस उपायकारि अविद्या नष्ट हो जावैगी अरु अशब्द अरूपपदकी प्राप्ति होवैगी. विद्याधर उवाच–हे मुनीश्वर ! चार भाग जो उपायकारि अशब्द पद प्राप्त होता है सो सब काल क्या है नाम अर्थके अभाव हुए शेष क्या रहता है ? भुशुण्ड उवाच– हे विद्याधर ! संसार समुद्रके तरणेको ज्ञानवान्का संग करना जो विकृत निर्वैर पुरुष हैं तिनकी भले प्रकार टहल करनी तिसकारि अर्ध भाग अविद्याका नष्ट होवैगा उनकी संगति करिकै अरु तीसरा भाग मनन करिकै चतुर्थ भाग अभ्यास करिकै नष्ट होवैगा अरु जो यह उपाय न करि सकै तौ यह युक्तिकारि जिसविषे चित्त अभिलाष करिकै असक्त होवै तिसीका त्याग करु एक भाग अविद्या इस प्रकार नष्ट होवैगी तीन भाग शनैः शनैः करि नष्ट होवैगी साधुसंग अरु सच्छास्त्रविचार अरु अपना यत्न होवै तब एक ही वार अविद्या नष्ट हो जावैगी यह समकाल कहिये अरु एकके सेवेते एकाएक भाग निवर्त होता है पाछे जो शेष रहता है तिसविषे नाम अर्थ सब असतरूप है अजर अनंत एकरूप है संकल्पके उपजेते पदार्थ भासते हैं संकल्पके लीन हुए

लीन हो जाते हैं. हे विद्याधर ! यह जगत् संकल्पकारि रचा है जैसे आकाशविषे सूर्य निराधार स्थित होता है तैसे देशकालकी अपेक्षाते रहित यह मननमात्र स्थित है तीनों जगत् मनके फुरणेकरिकै फुरि आते हैं मनके लय हुए लय हो जाते हैं जैसे स्वप्नके पदार्थ जागेते अभाव हो जाते हैं. हे विद्याधर ! ब्रह्मरूपी वनविषे एक कल्पवृक्ष है तिसकी अनेक शाखा हैं तिसकी एक शाखासाथ जगत्‌रूपी पुरलका फल है तिसविषे देवता दैत्य मनुष्य पशु आदिक मच्छर हैं वासनारूपी रसकरि पूर्ण मज्जा पहाड है पंचभूत मुखद्वारा तिसका खुला निकसनेका मार्ग है इत्यादिक सुंदर रचना बनी है तिसविषे त्रिलोकीका ईश्वर इंद्र एक होत भया गुरुके उपदेशकारि तिसका आवरण नष्ट हो गया बहुरि इंद्र अरु दैत्यका युद्ध होने लगा इंद्र अपनी सैन्यको ले चला तब इंद्रकी हीनता भयी इंद्र भागा दशों दिशाविषे भ्रमता रहा जहां जावै तहां दैत्य चले आवैं जैसे पापी परलोकविषे शोभा नहीं पाता तैसे इंद्र शांतिको न पाया तब अंतवाहकरूप करिकै सूर्यकी त्रसरेणुविषे प्रवेश करिगया जैसे कमलविषे भँवरा प्रवेश करै तैसे प्रवेश किया वहां युद्धका वृत्तांत इसको विस्मरण हो गया तब एक मंदिरविषे बैठा आपको देखत भया जैसे निद्राकरि स्वप्नसृष्टि भासि आवैं तहां रत्नमणिसाथ संवित् नगर देखा तिसविषे प्रवेश करत भया तहां पृथ्वी पहाड नदियां चंद्र सूर्य त्रिलोकी इसको भासने लगीं तिस जगत्‌का इंद्र आपको देखत भया जो दिव्य भोग ऐश्वर्यकरि संपन्न मैं इंद्र स्थित हौं सो इंद्र केतेक काल उपरांत शरीरको त्यागिकै निर्वाण हुआ जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण होता है तब कुंदनाम पुत्र उसका इंद्र हुआ राज्य करने लगा बहुरि तिसका एक पुत्र भया तब कुंद इन्द्र शरीरको त्यागिकरि परमपदको प्राप्त हुआ तिसका पुत्र राज्य करने लगा बहुरि तिसका पुत्र हुआ इसी प्रकार सहस्रों पुत्र होकारि राज्य करेत रहे उनके कुलविषे यह हमारा इंद्र राज्य करता है ताते यह जगत् संकल्पमात्र है तिस त्रसरेणुविषे यह सृष्टि है ताते इस जगत्‌को संकल्पमात्र जानकारि इसकी आस्था त्यागु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगद्वर्णनं नाम सप्तपंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५७ ॥

अष्टपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५८.

संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनम् ।

भुशुण्ड उवाच–हे विद्याधर ! बहुरि इनके कुलविषे एक इंद्र हुआ बड़ा श्रीमान् त्रिलोकीका राज्य करत भया बहुरि वह निर्वाण हुआ तिसके पुत्र रहा तिसको बृहस्पतिके वचनकरि ज्ञानरूप प्रतिमा उदय भयी तब यह विदितवेद होकरि स्थित भया अरु यथाप्राप्तविषे इंद्र होकरि राज्य करे दैत्योंको जीते तब एक कालविषे किसी कार्यके निमित्त मीडकी तंतुविषे प्रवेश किया तहां तिसको नाना प्रकारका जगत् भासने लगा तहां इसको अपनी इंद्रकी प्रतिमा भयी तब इच्छा उपजी कि मैं ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होऊं दृश्य पदार्थकी नाईं प्रत्यक्ष देखौं एकांत बैठकरि साधिविषे स्थित हुआ तिसको अंतर बाहिर ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ तिस प्रतिमाके उदय होनेकरि एक निश्चय भया कि सर्व ब्रह्म ही है अरु सर्व ओर पूजने योग्य है सर्व पूजते भी इसीको हैं अरु सर्व है अरु सर्व शब्दते रहित है रूप अवलोकनते रहित है अरु मननते भी रहित है केवल शुद्ध आत्मपद है अरु सर्व ओरते प्राणपद उसीके हैं सर्व शीश अरु मुख उसीके हैं अरु सर्व ओरते तिसीके श्रवण हैं अरु सर्व ओरते तिसीके नेत्र हैं अरु सर्वको आत्मत्वकरिकै स्थित हो रहा है सर्व इंद्रियां अरु सर्व विषयको प्रकाशता है अरु सर्व इंद्रियोंते रहित है अरु असक्त हुआ भी सर्वको धारि रहा है. निर्गुण है अरु इंद्रियांसाथ मिलिकरि गुणोंका भोक्ता है अरु सर्व भूतके अंतर बाहर व्याप रहा है अरु सूक्ष्म है ताते दुर्विज्ञेय है इंद्रियोंका विषय नहीं अरु अज्ञानीको ज्ञानकरिकै दूर है ,अरु ज्ञानीको ज्ञानकरिकै निकट है आत्मत्वकरिकै अरु अनंत है सर्वव्यापी है अरु केवल शांतरूप है जिसविषे दूसरा कोऊ नहीं घट पट कंध गाए आवा वरा नरा सबविषे वही तत्त्व भासता है पर्वत पृथ्वी चंद्र सूर्य देश काल वस्तु सर्व ब्रह्म ही है ब्रह्मते इतर कछु नहीं. हे विद्याधर ! इस प्रकार इंद्रको ज्ञान हुआ अरु जीवन्मुक्त भया जो कछु चेष्टा होवै सो सब

करै परंतु अंतःकरणविषे बंधमान न होवै जब केता काल बीता तब इंद्र निर्वाणपदको प्राप्त हुआ आकाश भी जिसविषे स्थूल है तिस पदको प्राप्त भया बहुरि इंद्रका एक पुत्र सो बडा शूरवीर था तिसने सर्व दैत्योंको जीता बहुरि देवताका अरु त्रिलोकीका राज्य करने लगा तिसको भी ज्ञान उत्पन्न भया सच्छास्त्र अरु गुरुके वचनकरि केता काल बीता तब वह भी निर्वाण हुआ उसका जो पुत्र रहा वह राज्य करने लगा इसी प्रकार कई इंद्र हुए अरु तिसविषे राज्य करत भये अरु नाना प्रकारके व्यवहारको देखते भये तब तिसके कुलविषे इसका कोऊ पुत्र था तिसको यह हमारी सृष्टि भासि आयी वह भी ब्रह्मध्यानी होत भया तब वह आयकरि इस त्रिलोकीका राज्य करने लगा अबलग विश्वका इंद्र वही है. हे विद्याधर ! इस प्रकार विश्वकी उत्पत्ति है सो संकल्पमात्र है सब मैं तेरे ताईं कही है उसको पहिली त्रसरेणुविषे सृष्टि भासी बहुरि तिस सृष्टिके एक भीडकी तंतुविषे उसको भासी बहुरि तिसविषें कर्म वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे उनको तुरत देखे अणुविषे अनेक अवस्था देखी. हे विद्याधर ! वास्तव कछु हुई नहीं जैसे आकाशविषे नीलता भासती है अरु है नहीं, तैसे यह विश्व है आत्माविषे विश्वका अत्यंत अभाव है यह विश्व अहंभावते उपजा है जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनती है जब अहंका अभाव हुआ तब विश्व कोऊ नहीं इस विश्वका बीज अहं है ताते तू ऐसी भावना करु, कि न मैं हौं, न जगत् है जब ऐसी भावना करी तब आत्मा ही शेष रहैगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है ज्योंका त्यों भासैगा. हे विद्याधर! इस मेरे उपदेशको अंगीकार करु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः ॥ १५८ ॥

ऊनषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १५९.
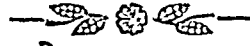
भुशुण्डविद्याधरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच-हे विद्याधर! जब अहंका उत्थान होता है तब आगे सृष्टि बनी भासती है जब अहंका अभाव हुआ तब विश्व कछु नहीं भासता केवल शुद्ध आत्मा ही भासता है. हे विद्याधर! इंद्रने कहा जो मैं हौं इसको सूर्यकी किरणोंके अणुविषे ऐसे अहं हुआ तब उसविषे देखा अरु कष्ट पाया जब उसको अहं न होता तब दुःखको न पाता दुःखरूपी वृक्षका अहंरूपी बीज है अरु आत्मविचारते अहंका नाश होता है जब अहंका नाश होता है तब आत्मपदका साक्षात्कार होता है अरु आत्मपदके साक्षात्कार हुए परिच्छिन्न अहंका नाश होता है. हे विद्याधर! आत्मरूपी एक पर्वत है तिस ऊपर आकाशरूपी वन है तिसविषे संसाररूपी वृक्ष लगे हैं वासनारूपी तिनविषे रस है अज्ञानरूपी भूमिते उत्पन्न हुआ है अरु नदियां समुद्र इसकी नाडी हैं अरु चंद्रमा तारे इसके फूल हैं वासनारूपी जलसाथ बढता है अरु अहंकाररूपी वृक्षका बीज है सुख दुःखरूपी इसके फल हैं रसविषे अनात्मपद है अरु टास इसका आकाश है अरु जड इसकी पाताल है तुम इस वृक्षको ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु अहंरूपी जो वृक्षका बीज है तिसका नाश करौ. हे विद्याधर! एक खाईं है तिसके जन्ममरणरूपी दोनों किनारे हैं अनात्मरूपी तिसविषे जल है अरु वासनारूपी तिसविषे तरंग हैं अरु विश्वरूपी तिसविषे बुद्बुदे होते भी हैं अरु मिटि भी जाते हैं अरु शरीररूपी तिसविषे झाग है अहंकाररूपी वायु है जब वायु हुई तब तरंग बुद्बुदे सब होते हैं जब वायु मिटि गयी तब केवल स्वच्छ निर्मल ही भासता है. हे विद्याधर! जो वायु हुई तो जलते इतर कछु न हुआ अरु जो न हुई तो भी जलते इतर कछु नहीं जल ही है तैसे अज्ञानके होते भी अरु निवृत्त हुए भी आत्मपद ज्योंका त्यों है परंतु सम्यक्दर्शनकरिकै आत्मपद भासता है अरु अज्ञानकरिकै जगत् भासता है सो अहंका होना ही अज्ञान है जब सो अहं हुआ तब मैं मम भी होता है अहं मम भी नाम संसा-

रक्खा है जब अहं मम मिटि गया तब जगत्का अभाव होता है अहंके होते दृश्य भासती है अरु दृश्यविषे अहं होती है ताते संवेदनको त्यागि करि निर्वाणपदको प्राप्त होहु. भुशुण्ड उवाच–हे वसिष्ठजी ! इस प्रकार जब मैंने विद्याधरको उपदेश किया तब समाधिविषे स्थित हुआ अरु परम निर्वाणपदको प्राप्त भया, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे उसका चित्त क्षोभते रहित शांतिको प्राप्त भया. हे ब्राह्मण ! उसका हृदय शुद्ध था मेरे वचनोंने शीघ्र ही उसके हृदयविषे प्रवेश किया जब समाधिस्थित भया तब मैं उसको बारंबार जगाय रहा परंतु न जागा जैसे कोऊ जलता जलता शीतल समुद्रविषे जाय बैठे अरु उससे कहिये तू निकस तो नहीं निकसता तैसे संसारतापकरि जो जलता था सो आत्मसमुद्रको प्राप्त हुआ तब अज्ञानरूपी संसारके प्रवाहको नहीं देखता. हे वसिष्ठजी ! जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है तिसको थोडे वचन भी बहुत हो लगते हैं जैसे तेलकी एक बूँद जलविषे पायी बडे विस्तारको पाती है तैसे जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है तिसको थोड़ा वचन भी बहुत होकरि लगता है अरु जिसका अंतःकरण मलीन होता है तिसको वचन नहीं लगता जैसे आरसी ऊपर मोती नहीं ठह-रता तैसे गुरु शास्त्रके वचन उसको नहीं लगते जब विषयते वैराग्य उपजै तब जानिये कि हृदय शुद्ध हुआ है. हे वसिष्ठजी ! जब मैंने विद्याधरको उपदेश किया तब वह शीघ्र ही आत्मपदको प्राप्त भया. काहेते कि उसका चित्त निर्मल था. हे मुनीश्वर ! जो तुमने मुझते पूँछा था सो कहा जो ज्ञानते रहित चिरकाल जीता देखा. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसे मैंने काकभुशुण्डिसे पूछा था सो मुझसों कहा अरु कहकरि तूष्णीं हो गया जैसे मेघ वर्षाकरि तूष्णीं होवै तैसे वह तूष्णीं भया अरु मैं नमस्कार करिके उठ आकाशमार्गते अपने घर आया. हे रामजी ! मेरे अरु कागभुशुण्डके संवादको अब एकादश चौकडी युग बीते हैं. हे रामजी ! कालका नियम नहीं जो थोरे कालकरि ज्ञान उपजता है अथवा बहुत काल करि उपजता है यह हृदयशुद्धिकी बात है जिसका हृदय शुद्ध होता है

तिसको गुरु शास्त्रोंका वचन शीघ्र ही लगता है जैसे जल नीचेको स्वाभाविक जाता है तैसे शुद्ध हृदयविषे उपदेश शीघ्र ही प्रवेश करता है. हे रामजी! एता उपदेश क्रमकरिकै तुझको किया है तिसका तात्पर्य यह कि फुरणेका त्याग करु कि ना मैं हौं न कोऊ जगत् है तब पाछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहैगा जो सर्वका अपना आप है तिसका साक्षात्कार तुझको होवैगा जैसे मलिन दर्पणविषे मुख नहीं दीखता तैसे आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलकरि आच्छादित है जब इसका त्याग करौ तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी अरु जगत् भी अपना आप भासैगा कि आत्माते इतर कछु नहीं काहेते कि इतर कछु नहीं केवल आत्मत्वमात्र है अरु अपर जो कछु भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत् जान अरु बंध्याके पुत्रवत् जान यह जगत् आत्माके प्रमादकरि भासता है जैसे आकाशमें नीलता भासती है अरु है नहीं तैसे जगत् प्रत्यक्ष भासता है अरु है नहीं जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या है जब आत्माका ज्ञान हुआ तब जगत्का अत्यंत अभाव होवैगा केवल आत्मत्व मात्र अपना आप भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डविद्याधरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम ऊनषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १५९ ॥

षष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६०.

अहंकारासत्ययोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! तू अहंवेदनाते रहित होहु संसाररूपी वृक्षका बीज अहं ही है वासना करिकै शुभ अशुभरूप कर्मका सुख दुःख फल है अरु वासनाहीकरि प्रफुल्लित होता है ताते अहंभावको निवृत्त करौ जब अहं फुरता है तब आगे जगत् भासता है जब अहंताते रहित होवैगा तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा सो अहंता आत्मबोधकरि नष्ट होती है आत्मबोधरूपी खंभाणीकरि उड़ाया अहंतारूपी पाषाण जानियेगा नहीं कि कहां गया अरु स्वर्ण पाषाण तुझको तुल्य हो जावैगा अरु

शरीररूपी पत्रके ऊपर अहंतारूपी अणु स्थित है जब बोधरूपी वायु चलैगी तब न जानियेगा कि कहां गया अरु शरीररूपी पत्रके ऊपर अहंतारूपी बर्फका कणका स्थित है बोधरूपी सूर्यके उदय हुए न जानियेगा कि कहां गया बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती भावै चीकडविषे गमन होवै भावै पहाड़विषे जाय रहै भावै घरहीविषे रहै भावै आकाशविषे उड़ै भावै जलविषे रहै भावै स्थलविषे रहै भावै स्थूल होवै भावै सूक्ष्म होवै भावै निराकार होवै भावै रूपांतरको प्राप्त होवै भावै भस्म होवै भावै मृतक हो जावै भावै दूर होवै अथवा निकट होवै जहां रहैगा तहां ही अहंता इसके साथ है. हे रामजी ! संसाररूपी वट है तिसका बीज अहंता है तिसते सब शाखा पसरती हैं सब अनर्थका कारण अहंता है जबलग अहंता है तबलग दुःख नहीं मिटता जब अहंभाव नष्ट होवै तब परम सिद्धताकी प्राप्ति होवैगी. हे रामजी ! जो कछु मैं उपदेश किया है तिसको भलेप्रकार विचारकरि तिसके अभ्यास करु तब संसाररूपी वृक्षका बीज जलिजावैगा अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अहंकारासत्ययोगोपदेशवर्णनं नामषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६० ॥

एकषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६१.

विराटात्मवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है भ्रमकरिकै उदय हुआ है आत्मस्वरूपविषे सृष्टि बसती हैं कई लीन होती हैं कई उत्पन्न होती हैं कई उडती हैं कहूँ जाकर इकट्ठी हो जाती हैं कहूँ भिन्न भिन्न उडती हैं सो मुझको प्रत्यक्ष भासती हैं वह उड़ती जाती हैं तुम भी देखौ अरु आकाशरूप हैं अरु आकाशहीसों मिलती हैं जैसे केलेका वृक्ष देखनेमात्र सुंदर होता है अरु तिसविषे सार कछु नहीं होता तैसे विश्व देखनेमात्र सुंदर है अरु आकाशरूप है बहुरि कैसा है जैसे जलविषे पहाड़का प्रतिबिंब पडता है अरु हलता भासता है तैसे यह जगत् है. राम उवाच-हे भगवन् ! तुम कहते हौ प्रत्यक्ष सृष्टि उड़ती मुझको भासती हैं तू भी

देख यह तौ मैं कछु नहीं समुझा क्या कहते हौ ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी। अनेक सृष्टि उडती हैं सो श्रवण करु पांचभौतिक शरीरविषे प्राण स्थित है अरु प्राणविषे चित्त स्थित है तिस चित्तविषे अपनी अपनी सृष्टि है जब यह पुरुष शरीरका त्याग करता है तब लिंगशरीर जो वासना अरु प्राणवायु है सो उडते हैं तिस लिंगशरीरविषे विश्व है वह सूक्ष्मदृष्टिकरि मुझको भासता है. हे रामजी ! आकाशकी जो वायु है जिसका रूप रंग कछु नहीं वही वायु प्राणोंसाथ मिलि मेरे ताईं प्रत्यक्ष दिखाई देती है इसीका नाम जीव है स्वरूपते न कोऊ आता है न जाता है परंतु लिंगशरीरके संयोगकरि आपको आता जाता देखता है अरु जन्मता मरता देखता है अपनी वासनाके अनुसार आत्माविषे विश्व देखता है अपर बना कछु नहीं यह वासनामात्र सृष्टि है जैसी वासना होती है तैसा विश्व भासता है. हे रामजी ! यह पुरुष आत्मस्वरूप है परंतु लिंगशरीरके मिलनेकरि इसका नाम जीव हुआ है अरु आपको परिच्छिन्न जानता है वास्तवते ब्रह्म-स्वरूप है देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित सो ब्रह्म है तिसके प्रमादकरि आपको कछु मानते हैं इसीका नाम लिंगशरीर है जैसे घटाकाश भी महाकाश है परंतु घटके खप्परकरि परिच्छिन्न हुआ है तैसे यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है अहंकारके संयोगकरिकै जीव परिच्छिन्न हुआ है जैसे घटको एक देशते उठाय देशांतरविषे ले जाय रक्खा तो क्या ले गया आकाश तो न कहूं गया है न आया है खप्परकरि आता जाता भासता है तैसे आत्मा अखंडरूप है परंतु प्राण चित्तकरि चलता भासता है जब अहंकाररूप चित्त नष्ट होवै तब अखंडरूप होवै जबलग अहंकाररूपी खप्पर नहीं फूटता तबलग जगद्भ्रम दीखता है अरु वासनाकरिकै भटकता फिरता है वासनाकरि सृष्टि अपने अपने चित्तविषे स्थित है जब शरीरका त्याग करता है तब आकाशविषे उड़ता है प्राणवायु उडिकरि जो आकाशविषे शून्यरूप वायु है तिसविषे जाय मिलती है तहां इसको अपनी वासनाके अनुसार सृष्टि भास आती है अपनी सृष्टिको लेकरि इस प्रकार उड़ते हैं जैसे वायु गंधको ले जाती है तैसे यह वासनारूप सृष्टिको ले जाते हैं सो उडते मेरे ताईं सूक्ष्म दृष्टि-

करिकै भासते हैं. हे रामजी ! स्थूलदृष्टिकारक लिंगशरीर नहीं भासता सूक्ष्म दृष्टिकरि देखता है जिस पुरुषको सूक्ष्मदृष्टि लिंगशरीर देखनेकी है अरु ज्ञानते रहित है सोऊ मेरे मतविषे मूर्ख पशु है. हे रामजी ! जब यह पुरुष वासनाका त्याग करता है वासना कहिये अहंकार जो मैं हौं इस होनेका त्याग करता है तब आगे विश्व नहीं दिखाई देता केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है उसके प्राण नहीं उडते तहां ही लीन हो जाते हैं काहेते कि उसका चित्त अचित्त हो जाता है इसकरि नहीं उडते जबलग अहंकारका संयोग है तबलग विश्व इसके चित्तविषे स्थित है जैसे बीजविषे वृक्ष स्थित होता है जैसे तिलोंविषे तेल स्थित होता है तैसे इसके हृदयविषे विश्व स्थित है जैसे मृत्तिकाविषे वासन बडे छोटे होवैं जैसे लोहेविषे सुई खड्ग होवै जैसे बीजविषे वृक्षभाव चेतन अथवा जड होवै. हे रामजी ! तैसे यह संकल्पकलनाविषे भेद है स्वरूपते कछु नहीं तैसे यह जगत् है. हे रामजी ! विश्व संकल्पमात्र है; काहेते कि दूसरी अवस्थाविषे नाश हो जाता है यह जाग्रत जो तुझको भासता है सब मिथ्या है जब स्वप्न आया. तब जाग्रत् नहीं रहती अरु जाग्रत् आयी तब यह स्वप्न नाश हो जाता है जब मृत्यु आती है तब सृष्टिका अत्यंत अभाव हो जाता है अरु देश काल पदार्थसहित वासनाके अनुसार अपर सृष्टि भासती है. हे रामजी ! यह विश्व कैसा है जैसे स्वप्ननगर होवै तैसा है, जैसे संकल्पपुर होवै तैसे यह सब संकल्प उड़ते फिरते हैं सृष्टि कई परस्पर मिलती हैं कई नहीं मिलतीं परंतु सब संकल्परूपी भ्रमकरिकै अपरका अपर भासता है. जैसे कोऊ पुरुष बड़ा होता है अरु छोटा भासता है अरु छोटेका बडा भासता है जैसे हस्तीके निकट अपर पशु तुच्छ भासते हैं अरु चींटीके निकट अपर बड़े भासते हैं तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको बडे पदार्थ देशकालसंयुक्त विश्व तुच्छ भासता है असत् जानता है अरु जो अज्ञानी है तिसको संकल्पसृष्टि बडी होकरि भासती है जैसे पहाड़ बडा भी होता है परंतु जिसकी दृष्टिते दूर है तिसको महालघु तुच्छ जैसा भासता है अरु चींटीके निकट तुच्छ मृत्तिकाकी

टेल राखी पहाडके समान है तैसे ज्ञानीकी दृष्टिते यह जगत् रहित है इसकरि बड़ा जगत् भी उसको तुच्छरूप भासता है अरु अज्ञानीको तुच्छरूप भी बड़ा भासता है. हे रामजी! यह विश्व भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है जैसे भ्रमकरिकै सीपीविषे रूपा भासता है अरु जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माके प्रमादकरि विश्व भासता है अरु आत्माते भिन्न कछु नहीं जैसे निद्रादोषकरिकै पुरुष अपने अंग भूलि जाते हैं अरु जागे हुए सब अंग अपने भासते हैं तैसे अविद्यारूपी निद्राकरिकै पुरुष सोया हुआ जब जागता है तब विश्व अपना आप दिखाई देता है जैसे स्वप्नते जागा हुआ स्वप्नकी विश्वको अपना आप ही देखता है तैसे यह विश्व अपना आप ही भासैगा. हे रामजी! जब यह पुरुष निद्रामें सोया होता है तब शुभ अशुभ विश्वविषे रागे द्वेष कछु नहीं होता अरु जागता है तब इष्टविषे राग होता है अनिष्टविषे द्वेष होता है सो जबलग इसको विश्वविषे हेयोपादेय बुद्धि है जो सर्वज्ञ है तौ भी मूर्ख है. हे रामजी! जब यह पुरुष जड़ हो जावै तब कल्याण होवै सो जड़ होना यही है कि दृश्यते रहित आत्माविषे स्थित होवै सो आत्मा चिन्मात्र है आत्माते इतर जो कछु करता है सत् अथवा असत् जानता है तबलग स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती जब संवित फुरणेते रहित होवै तब स्वरूपका साक्षात्कार होवै ताते फुरणेका त्याग करु अरु यह स्थावर जंगम जगत् जो तुझको भासता है सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है जब तू ऐसे निश्चय करैगा तब सब विवर्त्तका अभाव हो जावैगा आत्मपद ही शेष रहैगा. राम उवाच-हे भगवन्! यह जीव जो तुम कहा सो जीवका स्वरूप क्या है अरु जीव आकारको ग्रहण कैसे करता है अरु इसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है अरु इसके रहनेका स्थान कौन है? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! शुद्ध जो परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है तिसविषे चैत्योन्मुखत्व हुआ जो मैं हौं ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी अरु तिसको चित्तका संबंध हुआ जो चित्तका संयोग भया तिसका नाम जीव है सो जीव न सूक्ष्म है न स्थूल है न शून्य है न अशून्य है न थोड़ा है न

बहुत है केवल आत्मत्वमात्र है अरु शुद्ध है न अणुरूप है न स्थूल है अनंत चेतन आकाशरूप है तिसको जीवकरि कहते हैं स्थूलका स्थूल वही है सूक्ष्मका सूक्ष्म वही है अनुभव चेतन सर्वगतरूप सो जीव है तिसविषे वास्तव शब्द कोऊ नहीं जो कोऊ शब्द है सो प्रतियोगीसाथ मिलिकरि हुआ है अरु जीव अद्वैत है जो अद्वैत है तिसका प्रतियोगी कैसे होवै? यह जीवका स्वरूप है चैत्यके संयोग-करि जीव हुआ है अरु जीवका अधिष्ठान परमात्मतत्त्व है चेतनआकाश है निर्विकल्प है चैत्यते रहित शुद्ध चेतन है तिसविषे जो संवित् फुरी है तिसका नाम जीव है सो सूक्ष्मते सूक्ष्म है स्थूलते स्थूल है सर्वका बीज है इसीका नाम विराट् कहते हैं अरु शरीर तिसका मनोमय है आदि जो परमात्मतत्त्वते फुरा है अरु अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त भया अपर अवस्था कहिये परिच्छिन्नताको नहीं प्राप्त हुआ आपको सर्व आत्मा जानता है इसका नाम विराट् है प्रथम शरीर उसका मनोमात्र अरु शुद्ध प्रकाशरूप है रागद्वेषरूपी मलते रहित है अरु अनंत आत्मा है सर्व मन अरु कर्मों अरु देहोंका बीज है अरु सबविषे व्याप रहा है सब जीवका अधिष्ठाता है तिसीके संकल्प करि यह जीव रचे हैं पंच ज्ञानइंद्रियां अरु अहंकार मन अरु संकल्प इन आठोंके आकार धारे हैं अरु आप ही ग्रहण किये हैं परमार्थरूपको त्यागि फुरणेते जो आकार उत्पन्न हुए हैं तिसको ग्रहण किया इसका नाम पुर्यष्टका है बहुरि इन इंद्रियोंके छिद्र रचता भया स्थूलरूप रचिकरि तिनविषे आत्मप्रतीति करत भया जैसे पुरुष शयन करता है अरु जाग्रत् शरीरका त्याग कर स्वप्नशरीरका अंगीकार करता है तैसे शुद्ध चिन्मात्र निर्विकार अद्वैत स्वरूपको त्यागिकरि वासनामय शरीरका अंगीकार किया है अरु वास्तव स्वरूपका कछु त्याग नहीं किया स्वरूपते वह गिरा नहीं शुद्ध निर्विकल्प भावको त्यागिकरि विराट् भाव होत भया है इसीप्रकार आगे तिस पुरुषने चारों वेद ज्ञानकरिकै रचे अरु नीतिको निश्चय किया नीति कहिये कि यह पदार्थ ऐसे होवैं अरु एता काल रहैं यह रचना रची जो जो संकल्प करत भया सो सो

देश काल पदार्थ दिशा ब्रह्मांड सब आगे होत भये तिस पुरुषके एते नाम हैं ईश्वर विराट् आत्मा परमेश्वर इत्यादिक जीवके नाम हैं सो इस जीवका स्वरूप वासनारूप कछु झूठ नहीं वासनाके शरीर ग्रहण करनेकरि वासनारूप कहा है अरु वास्तवरूप शुद्ध है निर्विकार अद्वैत है कदाचित् स्वरूपते अन्य अवस्थाको नहीं प्राप्त भया सदा ज्ञानरूप है अद्वैत परमशुद्ध है तिसको अपने चेतन स्वभावकरि चैत्यका संयोग हुआ है तिसकरि कहा है जो इसका वपु वासनारूप है तिस आदि जीवते ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि देवता दैत्य आकाश मध्य पाताल त्रिलोकी उत्पन्न हुई है जैसे दीपकते दीपक होता है अरु जलते जल होता है तैसे सब विराट्स्वरूप हैं सो विराट् कैसा है महाआकाश जिसका उदर है अरु समुद्र तिसका रुधिर है अरु नदियां जिसकी नाडी हैं अरु दिशा जिसके वपु हैं अरु जिसके उदरविषे कई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वत सहित समाये रहते हैं अरु पवन जिसके सुण्ड हैं अरु उश्वास पवन जिसके प्राणवायु हैं मांस जिसका पृथ्वी है हस्त जिसके सुमेरु आदिक पर्वत हैं तारे जिसकी रोमावली हैं ऐसा विराट् है सहस्र जिसके शीश हैं अरु सहस्र मस्तक हैं सहस्र ही नेत्र अरु अनंत है अनादि है अरु चंद्रमा जिसकी कफ है जिसते अमृत स्रवता है भूत उपजते हैं अरु सूर्य पित्त है अरु सर्वको उत्पन्न करता है सर्व मन अरु सर्व कर्म अरु सर्व शरीरका बीज आदिविराट् है. हे रामजी ! इस चित्तके संबंधकरिकै तुच्छ हुआ है वास्तवते परमात्मस्वरूप है जैसे महाकाश घटके संयोगकरि घटाकाश होता है तैसे विराट् जो परमात्मा है तिसने फुरणेकरि सृष्टि रची है अरु तिसविषे अहंप्रत्यय करी है इसते तुच्छ हुआ है सो इसको मिथ्या भ्रम हुआ है जैसे स्वप्नविषे अपना मरना देखता है तैसे आपको दृश्य देखता है सो लघुता भी इसको आत्माकी अपेक्षाकरिकै है दृश्यविषे विराट् हैं अरु आत्माविषे इसका अनुभव है. हे रामजी ! इसी प्रकार इसने उपजिकरि सृष्टि रची है जैसे एक विराट् पुरुषने आदि निश्चय किया है तैसे ही अबलग है सो यह आप ही उपजा है अरु आप ही लीन हो जाता है. हे रामजी ! जिस

प्रकार विराट्की आत्माते उत्पत्ति हुई है तैसे ही सब जीवकी है यह सब विराट्रूप है परंतु जो स्वरूपते उपजिकरि दृश्यसाथ तद्रूप हुए अरु वास्तवस्वरूप जिनको भूलि गया सो जीव तुच्छरूप भये अरु स्वरूपसों फुरिकरि स्वरूपते न गिरे अरु आगे अपना ही संकल्परूप विश्व देख प्रमाद न हुआ तिसका नाम विराट् आत्मा है. हे रामजी ! जीव चेतनरूप है अरु निराकाररूप है इसको जो शरीरका संयोग हुआ है सो कलनाकरि हुआ है जब आपको दृश्य संयुक्त देखता है तब महा आपदाको प्राप्त होता है जब द्वैतते रहित निर्विकल्प होकरि देखै तब शुद्ध चेतनघन आत्मपदको प्राप्त होता है. हे रामजी ! यह विराट् कैसा है सबका उत्पन्नकर्ता है सो ऐसे कई विराट् आत्मपदते उदय हुए हैं अरु कई मिटि गये हैं अरु कई आये होवैंगे जैसे समुद्रते कई तरंग बुद्बुदे उठते हैं अरु लीन होते हैं तैसे आत्मारूपी समुद्रते कई उठते हैं कई लीन होते हैं कई उपजगे ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है सबके अंतर बाहिर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है ऐसा तेरा अपना आप अनुभवरूप है. हे रामजी ! इस संवेदनको त्यागिकरि देख वही परमात्मस्वरूप है यह जो कछु तुझको भासता है तिसको विचारिकरि त्याग जब तू इसका त्याग करैगा तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तेरा स्वरूप है सो प्रकाश तुझको भासैगा तिसके आगे चेतनता ही आवरणरूप है जैसे सूर्यके आगे बादलोंका आवरण होता है जबलग बादल होते हैं तबलग सूर्यका प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता जब बादल दूर होवैं, तब प्रकाश तुच्छ भासता है तैसे जब फुरणा निवृत्त होवैगा तब शुद्ध आत्मा ही प्रकाशैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विराटात्मवर्णनं नाम एकषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६२.

ज्ञानबन्धयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरणेकरिकै जीवसंज्ञाको प्राप्त हुआ है फुरणेविषे भी वही है अरु अपने स्वरूपको नहीं

जानता इसीते दुःख पाता है जैसे पवन चलता है तौ भी वहीरूप है जब ठहरता है तौ भी वही रूप है दोनोंविषे तुल्य है तैसे आत्मा सर्वदा एकरस है कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त भया अरु यह जीव प्रमादकरिकै दृश्यको कल्पता है दृश्यको आप जानता है इसीते दुःख पाता है अरु जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहै तौ दृश्यविषे भी अपना रूप भासै अरु जो निःसंकल्प होवै तौ भी विश्व अपना रूप भासै विश्व भी इसीका रूप है परंतु अविचारते भिन्न भिन्न भासती है जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेका रूप है परंतु निद्रादोषकरि नहीं जानता जब जागता है तब जानता है कि मैं ही था तैसे यह प्रपञ्च सब तेरा स्वरूप है तू अपने स्वरूप निरहंकार स्थित होकरि देख तौ बना कछु नहीं अरु जो आत्माते इतर परिच्छिन्न कछु तू बनैगा तौ प्रपंच विश्व भासैगा जो आत्मस्वरूपविषे स्थित होवै तौ अपनाआप भासैगा प्रपंचका अभाव हो जावैगा. हे रामजी ! शून्याशून्य जड चेतन किंचन निष्किंचन सत् असत् सब आत्मा ही पूर्ण है निषेध किसका करिये सब वहीरूप है. हे रामजी ! ऐसा अनुभवरूप है जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं अरु ऐसे आत्माको मूर्ख नहीं जानते जैसे जन्मका अंध मार्गको नहीं जानता तैसे अज्ञानी महाअंध जागती ज्योति आत्माको नहीं जानते जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुएको नहीं जानते तैसे वासनाकरि आवरे हुए आपको नहीं जान सकते जैसे जलविषे पक्षी आवरा होता है तैसे जीव आवरे हुए हैं इसीका नाम बंधन है जब वासनाका वियोग हुआ तब इसीका नाम मुक्ति है. हे रामजी ! विषमताकरिकै इसकी जीव संज्ञा हुई है जब सम हुआ तब ब्रह्म है सो ब्रह्म अहंकारको त्यागिकरि होता है जैसे खप्परके संयोगकरि घटाकाश कहाता है जब खप्पर टूटा तब महाकाश हो जाता है तैसे जब अहंकार नष्ट हुआ तब आत्मस्वरूप है. हे रामजी ! अज्ञानकरिकै एकदेशी जीव हुआ है जब परिच्छिन्नताका वियोग हुआ तब आत्मरूप है. हे रामजी ! अपना वास्तव स्वरूप जो निर्गुण है तिसविषे गुणका संयोग उपाधिकरिकै भासता है सो अनर्थरूप है जब निर्गुण अरु सगुणकी गाँठ टूटी

तब केवल अद्वैत तत्त्व अपना आप भासैगा सो कैसा स्वरूप है जो अनामय है दुःखते रहित है अरु सत् असत्ते पर है ज्ञानरूप आदि अंतते रहित है जिसके पायेते बहुरि पाना कछु नहीं रहता अरु जिसके जानेते अपर जानना कछु नहीं रहता ऐसा जो उत्तम पद है तिसको आत्मत्वकरिकै प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! यह जो ज्ञान तेरे ताईं कहा है तिसको आश्रय करिकै तुम ज्ञानवान् होना ज्ञानबंध नहीं होना ज्ञानबंधते अज्ञानी भला है काहेते कि अज्ञानी भी साधुसंग अरु सच्छास्त्र श्रवणकरि ज्ञानवान् होता है अरु ज्ञानबंध मुक्त नहीं होता जैसे रोगी होवै अरु कहै मुझको रोग कोऊ नहीं मैं अरोग हौं तब वैद्यका औषध नहीं खाता काहेते कि आपको अरोगी जानता है तैसे जो ज्ञानबंध है तिसतें संतका संग भी नहीं होता अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण भी नहीं होता ताते अंधतमको प्राप्त होता है. राम उवाच-हे भगवन् ! ज्ञानका लक्षण क्या है अरु ज्ञानबंधका लक्षण क्या है अरु ज्ञानबंधका फल क्या है ? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तिस पुरुषने आत्माके विशेषण शास्त्रोंते श्रवण किये हैं जो आत्मा नित्य है शुद्ध है अरु ज्ञानस्वरूप है अरु तीनों शरीरते भिन्न है ऐसे सुनकरि आपको मानता है अरु विषय भोगनेकी सदा तृष्णा रहती है जो किसी प्रकार इंद्रियोंके विषय मेरे ताईं प्राप्त होवैं ऐसा जो पुरुष है सो ज्ञानबंध है वह बोध शिल्पी है बहुरि कैसा है जो कर्मफलके विचारते रहित है भला बुरा विचारकरि नहीं करता तिसविषे विचारता है अरु मुखते शुभ अशुभ निरूपण करता है सो शास्त्र शिल्पी है अरु फलके अर्थ कर्म करता है एक एक ऐसे हैं जो शास्त्र उक्त आपको उत्तमकरि मानते हैं अरु शास्त्रोंके अर्थ बहुत प्रकार भी कहते हैं पढते भी हैं पढावते भी हैं अरु विषयसों बंधमान हैं सदा विषयकी चिंतवना करते हैं ऐसा पुरुष है सो ज्ञानबंध कहाता है तिस निमित्त अर्थशिल्पी कहता है चितेरा करनेको समर्थ है अरु धारणेको समर्थ नहीं. हे रामजी ! एक प्रवृत्तिमार्ग है एक निवृत्तिमार्ग है प्रवृत्ति संसारमार्ग है निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है अरु जिस पुरुषने निवृत्तिमार्ग धारा है अरु प्रवृत्तिमार्गविषे वर्त्तता है प्रवृत्ति कहिये

जो बहिर्मुख विषयकी ओर वर्तता है अरु इंद्रियोंके विषयकी वांछा करता है विषयते उपरांत नहीं होता तिनकरि तुष्टमान होता है अरु स्वरूपका अभ्यास नहीं करता ऐसा पुरुष ज्ञानबंध कहाता है. हे रामजी! श्रुति उक्त शुभ कर्म करता है हृदयविषे उनके फलको धारिकरि वह पुरुष ज्ञानके निकटवर्ती है तो भी ज्ञानबंध है अरु जिसको आत्माविषे प्रीति भी है विषयको चिंतवता है अरु आपको उत्तम मानता है सो ज्ञानबंध कहाता है अरु जो आत्मतत्त्वका निरूपण यथार्थ करता है अरु स्थिति नहीं वह ज्ञानाभास है ज्ञानका फल तिसको प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं अरु जिस पुरुषने सिद्धता पायी है अरु ऐश्वर्य पाया है तिसकरि आपको बड़ा जानता है अरु आत्मज्ञानते रहित है सो ज्ञानबंध कहाता है. हे रामजी! निदिध्यासकरिकै जो ज्ञानकी प्राप्ति होती है तिसकरि शांतिको प्रकाश होता है जबलग शांति नहीं प्राप्त होती तबलग आपको बडा न मानै. हे रामजी! बडा जो होता है सो ज्ञानकारि होता है जबलग ज्ञान नहीं उपजा तबलग आत्मपरायण होवै अभ्यास यत्न करै छांडि न देवै अरु चेष्टा भी शुभ करै शुभ व्यवहारकरि उपजीविका उत्पन्न करनी प्राणोंकी रक्षाके निमित्त अरु प्राणोंको ब्रह्मजिज्ञासाके अर्थ धारै अरु ब्रह्मजिज्ञासा इस निमित्त है जो संसारसमुद्र दुःखरूपते मुक्त होवै बहुरि संसारी न होवै यह इसी निमित्त आत्मपरायण होवै जब आत्मपरायण होवैगा तब दुःख सब मिटि जावैंगे जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है तैसे आत्मपदको प्राप्त हुए दुःख सब नष्ट हो जाता है तिस पदको प्राप्त होनेका उपाय यह है कि सच्छास्त्रोंते आत्माके विशेषण सुनै हैं तिनको समुझिकरि वारंवार अभ्यास करना अरु अनात्म दृश्यते उपरत होना तिनको मिथ्या जान वैराग्य करना इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ज्ञानबंधयोगो नाम द्विषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६३.
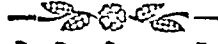
सुखेनयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिज्ञासी होकरि ज्ञाननिष्ठ होना जो कछु गुरुशास्त्रोंते आत्मविशेषण श्रवण किये हैं तिनविषे अहंप्रत्यय करके स्थित होना इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है. तिस ज्ञाननिष्ठाकरि परम उच्चपदको प्राप्त होता है. जो सबका अधिष्ठानपद है तिस पदको पाता है जब तिस पदविषे स्थित हुआ तब कर्मोंके फलका ज्ञान नहीं रहता काहेते कि शुभ कर्मोंविषे फलका राग नहीं रहता अरु अशुभ कर्मोंके फलविषे द्वेष नहीं रहता ऐसा जो पुरुष है सो ज्ञानी कहाता है शीतलचित्त रहता है अकृत्रिमशांतिको प्राप्त होता है किसी विषयके संबंध करिकै नहीं फसता अरु वासनाकी गाँठ टूटि जाती है ऐसा जो पुरुष है तिसको ज्ञानी कहते हैं. हे रामजी! बोध सोई है जिसके पायेते बहुरि जन्म न पावै जन्ममरणते रहित होवै तिसको ज्ञानी कहते हैं जब संसारते विमुख हुआ जो संसारकी सत्यता न भासै तब जानिये कि बहुरि जन्म न पावैगा काहेते जो संसारकी वासना नष्ट हो गयी. हे रामजी! जिसकरि ज्ञानीकी वासना नष्ट होती है सो श्रवण कर. यह जो संसार है तिसका कारण नहीं देखता जो पदार्थ कारणते उत्पन्न नहीं भया सो सत्य नहीं होता ताते संसार मिथ्या है जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तिसका कारण कोऊ नहीं भ्रमकरि सिद्ध हुआ है तैसे यह विश्व कारणविना दृष्टि आता है ताते मिथ्या है जो मिथ्या है तौ इसकी वासना कैसे होवै? हे रामजी! जो प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त होवै तिसविषे ज्ञानी विचरता है संकल्पते रहित होकारि अपना अभिमान कछु नहीं करता जो इस प्रकार होवै इस प्रकार न होवै अरु हृदयकरि आकाशकी नाईं संसारते न्यारा रहता है अरु फुरणेते शून्य है ऐसा जो पुरुष है सो पंडित कहाता है. हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है जब अचेतन होवै तब आत्मपदको प्राप्त होवै अचेतन कहिये संसारके फुरणेते रहित होवै जब जड़ हुआ तब आत्मा है जैसे आमका वृक्ष फलते रहित है तो भी नाम तिसका आम है परंतु निष्फल है तैसे यह

जीव आत्मस्वरूप है परंतु चित्तके संबंधकरि इसका नाम जीव है जब चित्तका त्याग करै तब आत्मा होवै जैसे आमको फल लगा तब शोभता है अरु सफल कहाता है तैसे जब यह जीव आत्मपदको प्राप्त होता है तब महाशोभाकरि विराजता है. हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फलकी स्तुति नहीं करता फल कहिये इंद्रियोंके विषय इष्टकी वांछा नहीं करता जैसे जिस पुरुषने अमृतपान किया होवे सो मद्यपान करनेकी इच्छा नहीं करता तैसे जिसको आत्मसुख प्राप्त भया है सो विषयके सुखकी वांछा नहीं करता अरु जो किसी पदार्थको पायकरि सुख मानते हैं सो मूढ हैं जैसे कोऊ पुरुष कहै वंध्याके पुत्रके कांधेपर आरूढ होकरि नदीके पार उतरता है ऐसा पुरुष महामूढ है काहेते कि जो वंध्याका पुत्र है नहीं तो तिसके कांधेपर कैसे आरूढ होवैगा तैसे जो पुरुष कहै संसारके किसी पदार्थको लेकरि मुक्त होऊँगा सो महामूढ है. हे रामजी ! ऐसा पुरुष ज्ञानते शून्य है तिसकी इंद्रिय स्थित नहीं होती अरु जो शास्त्रोंके अर्थ प्रगट भी करता है परमात्मज्ञानते रहित है तिसको इंद्रिय बलकरि गिराय देती हैं विषयविषे जैसे इल्ल पक्षी आकाशविषे उडता भी मांसको देखकरि पृथ्वीऊपर गिर पडता है तैसे अज्ञानी विषयको देखकर ऊर्ध्वते गिर पडता है ताते इन इंद्रियोंको मनसंयुक्त वश करो अरु युक्तिकरि तत्परायण होहु अन्तर्मुख होहु यह जो संवेदन फुरती है तिसका त्याग करौ जब फुरणा निवृत्त हुआ तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा जब परमात्माका साक्षात्कार हुआ तब रूप अवलोकन नमस्कार जो त्रिपुटी है तिसके सब अर्थकी भावना जाती रहैगी केवल आत्मतत्त्व ही प्रत्यक्ष भासैगा अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावैगा. हे रामजी ! संसारका आद्य परमात्मतत्त्व है अरु अंत भी वही है जैसे स्वर्ण गालिये तौ भी स्वर्ण है जो न गालिये तौ भी स्वर्ण है तैसे जब सृष्टिका अभाव होता है तौ भी शेष आत्मा ही रहता है अरु जब उपजी न थी तब भी आत्मा ही था अरु मध्य भी वही है परंतु सम्यक्दर्शीको भासता है अरु असम्यक्दर्शीको आत्मसत्ता नहीं भासती. हे रामजी ! विश्व आत्माका परिणाम नहीं चमत्कार है जैसे स्वर्ण लगता है तब

रेणी संज्ञा उसकी होती है अथवा शलाका कहाता है. यद्यपि भूषण तिसविषे हुए नहीं तौ भी चमत्कार उसका ऐसा ही होता है जो भूषण उसते उपजिकरि लय हो जाता है तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है बना कछु नहीं ज्योंका त्यों आतमसत्ता है तिसका चमत्कार विश्व होकरि स्थित हुआ है जैसे सूर्यकी किरणें जलाभास हो भासती हैं. हे रामजी ! जब तुम ऐसे जाना कि केवल आत्मसत्ता है तब वासना क्षय हो जावैगी अरु चेष्टा स्वाभाविक होवैगी जैसे वृक्षके पत्र पवनकरिकै हलते हैं तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्ध वेगकरिकै होवैगी. हे रामजी ! देखनेमात्र तुम्हारेविषे क्रिया होवैगी अरु अंतरते मनकरि शून्य भासैगी जैसे यंत्रीकी पुतली संवेदन विना तागेकरि चेष्टा करती है तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्धकरि स्वाभाविक होवैगी अरु तुझको अभिमान न होवैगा. जैसे कोऊ पुरुष दूधके निमित्त गूजर पास वासन ले गया तिसको दूध दोहने विषे कछुक विलंब हैं तब उसने कहा कि बासन यहां धरा है जो मैं गृहते कोई कार्य शीघ्र ही करि आऊँ जब वह गृहका कार्य करने लगा तब उसका मन दूधकी ओर रहा कि शीघ्र ही जाऊँ कहीं दुहुता न होवे गृहका कार्य किया परंतु मन उसका दूधकी ओर रहा तैसे तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेगकरि होवैगी परंतु मन आत्मतत्त्व-विषे रहैगा. जब अहंकारते रहित होवैगा जबलग अहंकार फुरता है तबलग प्रसन्न जीव है प्रसन्न कहिये तुच्छ है तिसको शरीरमात्रका ज्ञान होता है अंतःकरणविषे जो प्रतिबिंब है जीव तिसको नख शिखा पर्यंत शरीरका ज्ञान होता है अरु इसीविषे आत्म अभिमान होता है अपर ज्ञान नहीं होता ताते जीव है अरु विराट् जो आगे तुझको कहा है सो ईश्वर है, सर्व शरीर अरु अंतःकरणका ज्ञाता है अरु सर्व लिंग-शरीरका अभिमानी है सर्वका अपना आप जानता है ताते ईश्वर है. हे रामजी ! यद्यपि विश्वरूप है, तौ भी अहंकारकरिकै तुच्छसा भया है जैसे मेघते भिन्न हुआ एक बादल कहाता है अरु घटकरि घटाकाश कहाता है सो बादल भी मेघ है अरु घटाकाश भी महाकाश है तैसे अहं फुरणेकरि प्रसन्न हुआ है सो फुरणा दृश्यविषे हुआ है अरु दृश्य

फुरणेविषे हुई है जैसे फलविषे गंध है अरु तिलोंविषे तेल है तैसे फुरणेविषे दृश्य है. हे रामजी ! आत्माविषे बुद्धि आदिक फुरणा है जो मैं हौं ऐसे फुरता है तब आगे दृश्य होती है, जब अहंकार होता है तब आगे देह इंद्रियादिक विश्वको रचता है ताते फुरणेविषे दृश्य हुई अरु फुरणा दृश्यविषे हुआ जो देह इंद्रियां मन आदिक दृश्य हैं तिनविषे अहं प्रत्यय करिकै फुरणा हुआ इसी कारणते इसकी जीव-संज्ञा हुई है जब फुरणा नष्ट हो जावै तब आत्माका साक्षात्कार होवै अरु यह जन्म मरण आना जाना आदिक विकारसंयुक्त प्रपंच भासता है तौ भी मिथ्या है काहेते जो विचार कियेते कछु नहीं रहता जैसे केलेके स्तम्भविषे सार कछु नहीं तैसे विचार कियेते प्रपंचको नहीं पाता जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण आना जाना देखता है परंतु मिथ्या है तैसे जाग्रत् क्रिया भी सर्व मिथ्या है. हे रामजी ! जो परावरदर्शी है सो एती अवस्थाविषे निर्विकल्प है जन्मता भी है परंतु नहीं जन्मता सर्व क्रिया करता भी है परंतु नहीं करता. स्वप्नवत् है स्वरूपते कदाचित् कछु नहीं हुआ. हे रामजी ! ज्ञानी जाग्रत्‌विषे भी ऐसे ही देखता है जब यह आत्मपदविषे जागता है तब सर्व विकारका अभाव हो जाता है कोऊ विकार नहीं भासता. हे रामजी ! जो पुरुष इंद्रियोंके विषयकी चितवना करता रहता है सो बध है काहेते जो अभिलाष ही दुःखदायक है यद्यपि राजा है अरु अंतर अभिलाष है तौ दरिद्री जान अरु जो पुरुष छाजन भोजन शयन कष्टसाथ देखता है जो भोजन भिक्षाकरि होता है अथवा किसी अपर यत्नकरि होता है अरु छाजन भी निर्गुणसा पहिरता है अरु शयन करणेको स्थान भी जैसा कैसा होता है अरु ज्ञानकरि संपन्न है तौ उसको चक्रवर्ती जान. दोहा—

सात गांठ कौपीनकी, साध न माने शंक ॥ राम अमल माता फिरै, गिनै इंद्रको रंक ॥ १ ॥

हे रामजी ! तिसको चक्रवर्तीते भी अधिक जान, यद्यपि आरंभ क्रिया करता भी दृष्टि आता है अरु संकल्पते रहित है तौ कछु करता नहीं करना अकरना क्रियाका दोनों उसको तुल्य है काहेते कि निरभिमान है शुभ कर्म करनेते स्वर्ग नहीं भोगता अशुभ

भ्रम करि नरक नहीं भोगता तिसको दोनों एकसमान हैं. हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा समान है परंतु अज्ञानी अहंकारसहित करता है इसकरि दुःख पाता है ताते तुम अहंकारका त्याग करो अरु अपना स्वरूप जो है चैत्यते रहित चेतन तिसविषे स्थित होहु जो संशय सर्व मिटि जावैं अरु जेते कछु जीव तुमको भासते हैं सो सर्व संवित्-रूप हैं संवित् कहिये ज्ञानरूप हैं परंतु बहिर्मुख जो फुरते हैं तिसकरि भ्रमको प्राप्त हुए हैं जब अंतर्मुख होवै तब केवल शांतिरूप हैं जहाँ गुणों अरु तत्त्वोंका क्षोभ नहीं तिसको शांतपद कहते हैं. हे रामजी! जैसे विराट्का मन चंद्रमा है तैसे सर्व जीवका है अर्थ यह सब विरा-ट्रूप है परंतु प्रमादकरि वास्तव स्वरूप नहीं भासता. हे रामजी! यह जीव सम्पूर्ण देहविषे व्यापक है अरु भासता हृदयकोशविषे है जैसे गुलाबकी संपूर्ण बूटीविषे सुगंधि व्यापक है परंतु भासती फूलविषे ही है तैसे चेतनसत्ता सर्व शरीरविषे व्यापक है परंतु भासती हृदयविषे है जो त्रिकोण निर्मल चक्र है तहां ही अहंब्रह्मका उत्थान होता है तहांते वृत्ति पसारिकरि पंच इंद्रियोंके छिद्रते निकसि-करि विषयको ग्रहण करती है तिन इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे राग द्वेष मानता है. ताते हे रामजी! एता कष्ट प्रमादकरिकै है जब बोध होवै तब संसारभ्रम मिटि जावै. हे रामजी! वासनारूप जो संसार है तिसका बीज अहंभाव है प्रत्यक्ष संसारविषे फुरता है जब इसकी अचिंतवना होवै अरु स्वरूपविषे अहंप्रत्यय होवै तब संसारभ्रम मिटि जावै अरु अहंभावके शांत हुए ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है. हे रामजी! जो पदार्थ सत् है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु जो असत् है सो सत् नहीं होता यद्यपि होनेकी भावना करिये तौ भी उसका होना नहीं जैसे अग्निको जानिकरि स्पर्श करिये तौ भी जलावती है अरु अजानि स्पर्श करिये तौ भी जलावती है. काहेते कि सत् है अरु जैसे मृग जलकी भावना करि मरुस्थलविषे धावता है परंतु जल नहीं पाता. काहेते कि असत्य है. तैसे हे रामजी! अहंकार जो फुरता है सो असत्य है

भ्रमकरि सिद्ध है विचारकरि नष्ट हो जावैगा. हे रामजी ! यह अहंकारूपी कलंक उठा है जब निरहंकारकरि देखै तब मुक्तरूप है अरु जब अहंकारसंयुक्त है तब बंध है ताते निरहंकार होकरि परम निर्वाणको प्राप्त होहु यह मेरा सिद्धांत है परमभूमिका यही है जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे तुम ब्राह्मी लक्ष्मीकरि शोभहुगे. हे रामजी ! ज्ञानवान्का चित्त सत्पदको प्राप्त होता है ताते अहंकार नहीं रहता तिसके चित्तकी चेष्टा फलदायक नहीं होती. जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसे उसको जन्मफल नहीं होता अरु अज्ञानीका चित्त जन्ममरणका कारण होता है जैसे कच्चा बीज उगता है तैसे अज्ञानीकी चेष्टा जन्मफल देती है. हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं तिन सबते निराश हो रहु जो हृदयविषे अभिलाषा किसीकी न फुरै अरु न किसीका सद्भाव फुरै पाषाणकी नाईं तुम्हारा हृदय होवै. हे रामजी ! जिसका हृदय कोमल है स्नेहसंयुक्त सो अज्ञानी है अरु जिसका हृदय पाषाण समान है स्नेहते रहित सो ज्ञानी है ताते निर्मन निरहंकार होकरि स्थित होहु यह भोग मिथ्या है इनकी इच्छाविषे सुख नहीं. हे रामजी ! जब संसारते उपरांत होवैगा अरु अंतर्मुख आत्मपरायण होवैगा तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा अरु आत्मा भासैगा. जैसे वसंतऋतु आती है अरु वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं तब पुरातन पत्र त्यागि देते हैं अरु नूतन हो आते हैं तैसे जब तुम अंतर्मुख होहुगे तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा अरु विभुताको प्राप्त होहुगे तुच्छ जो अहंप्रत्यय सो जाती रहैगी परमनिर्वाणपद पावोगे ताते एक अहंकार संवेदनका त्याग करौ अपर यत्न कोऊ न करौ तुमको यही हमारा उपदेश है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सुखेन योगोपदेशो नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६४.

मंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो वासनारूप संसार है तिसको तुम तरि जाहु जैसे मंकीऋषि तरा है. राम उवाच–हे भगवन् ! मंकीऋषि किस प्रकार तरा है ? सो कृपा करि कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मंकीऋषिका वृत्तान्त श्रवण कर तिसने महा तीक्ष्ण तप किये थे एक समय तुम्हारा जो पितामह है राजा अज तिसने मेरा आवाहन किया मैं अपने गृहविषे आकाशमें था तब मैं राजा अजके निमित्त आकाशते उतरा मार्गविषे एक अटवी देखी तिसविषे मानो एकांत अनेक वनके समूह हैं सो मैंने महाभयानक शून्य देखे तहां न कोऊ मनुष्य दृष्टि आवै न कोऊ पशु दृष्टि आवै शून्य मानौ एकांत ब्रह्मस्थान है. केतेक योजनपर्यंत मरुस्थल ही दृष्टि आवै अरु मध्याह्नका समय था अति तीक्ष्ण धूप पडै. रेत रूरु पर्यंत तपी हुई तिसविषे मैं प्रवेश किया कई वृक्ष तहां दग्ध हुए दृष्टि आये. हे रामजी ! तिस शून्य स्थलविषे एक पेंडोई अति दुःखित आता मुझको दृष्टि आया तिसने यह वाक्य मुखते निकासा कि हाय हाय महाकष्ट पाया है ! जैसे किसीको दुष्ट जन दुःख देते हैं अरु दया नहीं करते तैसे मुझको धूप अरु पैंडेने जलाया है मैं अति दुःखको प्राप्त भया हौं. हे रामजी ! ऐसे वचन कहता हुआ मेरे पासते चला जावै केता मार्ग आगे गया तब एक धीवरका गांव तिसको दृष्टि पडा तहां गृह पांच अथवा सात थे तिसको देखिकारि शीघ्र चला कि यहां मुझको शांति प्राप्त होवैगी मैं जलपान करौं अरु छायातले बैठौंगा. हे रामजी ! तिसको देखिकारि मुझको दया उपजी तब मैं कहा कि हे मार्गके मित्र ! तू कहां धावता है जिनको सुखदायी जानि कारि तू धावता है सो तौ दुःखदायक हैं जैसे मृग मरुस्थलको नदी जानिकारि जलपानके निमित्त धावता है कि शांति पाऊँ सो अति दुःख पाता है तैसे जिस स्थानको तू सुखरूप जानता है सो दुःखरूप है. हे अङ्ग ! यह जो इस गांवके वासी हैं

तिनका संग कदाचित् नहीं करना इनका संग दुःखरूप है जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है तिसको दुःख नहीं होता अरु जो विचार बिना चेष्टा करता है सो दुःख पाता है, यह जो नगरवासी हैं सो आप जलते हैं तौ तुझको सुख कैसे देवैंगे. जसे कोऊ पुरुष अग्निकुंडविषे जला होवै तिसको कहिये तू मेरी ताप शांत करु तौ कहनेवाला मूढ होता है वह आप जलता है अपरकी ताप कैसे शांत करैगा ? तैसे वह आप इंद्रियोंके विषयकी तृष्णारूपी अग्निविषे जलते हैं सो तुझको शांत कैसे करैंगे ? हे मार्गके मित्र ! एते कष्ट होहिं तौ अंगीकार करिये परंतु अज्ञानीका संग न करिये सो कौन दुःख होहिं कि पृथ्वीके छिद्रविषे सर्प हो रहना अरु मरुस्थलका टुंटा मृग हो रहना अरु पाषाणकी शिलाविषे कीट हो रहना एते कष्ट अंगीकार करिये परंतु अज्ञानीका संग न करिये जिनको इंद्रियोंके सुखकी तृष्णा रहती है सो इंद्रियोंके सुख कैसे हैं, जो आपातरमणीय हैं अर्थ यह कि जबलग इंद्रियोंका विषयसाथ संयोग है तबलग सुख है जब वियोग हुआ तब दुःख होता है विषयीजनोंकी प्रीति भी विषवत् है अरु विचारवती बुद्धिरूपी कमलिनीके नाश करने हारी बर्फ है बहुरि इनकी संगति कैसी है जिनके वचनरूपी पवनकरि राख उडती पास बैठनेहारेको भी अंध कर डारती है ताते इन गावँवासी अज्ञानीका संग नहीं करना. बहुरि कैसे हैं विचारवती बुद्धिरूपी सूर्यके आवरण करनेहारे बादल हैं जैसे वल्लीऊपर अग्नि डारिये तौ जलाती है तैसे वैराग्यको ग्रहण करनेहारी बुद्धि है तिसके नाश करनेहारी इनकी संगति है ताते इनका संग नहीं करना. हे साधो ! तिसका संग कर जिसके संगकरि तेरा ताप मिटै इनके संगकरि शांति न पावैगा. हे रामजी ! इस प्रकार जब मैं कहा तब वह मेरे निकट आयकरि बोलता भया. मंकीऋषिरुवाच–हे भगवन् ! तुम कौन हौ अरु तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे वचन सुनकरि मै शांतिको प्राप्त भया हौं तुम शून्य जैसे दृष्टि आते हौ अरु सर्वकरिकै पूर्ण हौ अरु तुम्हारा दिव्य प्रकाश मुझको भासता है तुम आदि पुरुष विराट् हौ कि कवन हौ तुम सुंदर दृष्टि आते हौ. हे भगवन् ! जो सुंदर होता है तिसको

देखिकरि राग उपजता है अरु चित्त क्षोभको भी प्राप्त होता है अरु तुम ऐसे सुंदर हौ कि तुम्हारे दर्शनकरि मुझको शांति आती जाती है तुम दिव्य तेजको धारे हुए दृष्टि आते हौ जेते कछु तेजवान् हैं, देखने नहीं देते तिनको तिरस्कार करते हो. अर्थ यह कि, अपर सुन्दरता तुम्हारे समान किसीकी नहीं अरु तुम्हारा तेज हृदयको शांति उपजाता है शीतल प्रकाश है. हे भगवन्! तुम उन्मत्तवत् घूर्मसे दृष्टि आते हौ सो कैसी शांति लेकरि एकांतविषे स्थित हौ अरु अपने स्वरूप प्रकाशकी दया करते दृष्टि आते हौ अरु पृथ्वीपर स्थित भी दृष्टि आते हौ परंतु त्रिलोकीके ऊपर विराजमान भासते हौ अरु एकाकी दृष्टि आते हौ परंतु सर्वात्मा हौ अरु किंचित् अकिंचित् तुम ही हौ सर्व भाव पदार्थते शून्य दृष्टि आते हौ अरु सर्व पदार्थ तुम्हारी सत्ताकरि प्रकाशते हैं सर्व पदार्थके अधिष्ठान हौ तुम्हारे नेत्रोंके खोलनेकरि उत्पत्ति होती है अरु मुँदनेकरि लय हो जाती है ताते ईश्वर हौ अरु सकलंक दृष्टि आते हौ परंतु निष्कलंक हौ. अर्थ यह कि फुरणा तुम्हारेविषे दृष्टि आते हैं परंतु अंतरते शून्य हौ अरु किसी अमृतको पायकरि तुम आये हौ अरु बड़े ऐश्वर्यकरि संपन्न दृष्टि आते हौ. ताते हे भगवन्! तुम कौन हौ अरु जो मुझते पूछौ तू कौन है तौ मैं मांडव्यऋषिके कुलविषे हौं अरु मेरा नाम मंकी है मैं ब्राह्मण हौं, तीर्थयात्राके निमित्त निकसा था अरु सर्व दिशा भ्रमा हौं अति भयानक स्थानोंविषे जो तीर्थ हैं तहां भी गमन किया है परंतु शांति मुझको प्राप्त न भयी ऐसी शांति कहूँ न पायी जो इंद्रियोंकी जलनते रहित होइये अब मैं गृहको चला हौं. हे भगवन्! अब गृहते भी चित्त विरक्त भया है कि यह संसार ही मिथ्या है तौ गृह किसका है संसारविषे सुख कहूँ नहीं अरु यह प्राण ऐसे हैं जैसा दामिनीका चमत्कार होता है तैसे यह संसार नष्ट होता दृष्टि आता है शरीर उपजते भी हैं अरु मिटि भी जाते हैं दृष्टिमात्र हैं जैसे रात्रि आती है बहुरि नहीं जानते कि कहां गयी. हे भगवन्! इस संसारको असार जानकरि मैं उदासीन भया हौं. जो अनेक जन्म पाये हैं सो नष्ट हो गये हैं इसी प्रकार भ्रमता फिरा हौं, अब तुम्हारी शरणागत हौं अरु

जानता हौं कि तुमसों मेरा कल्याण होवैगा अरु तुम कल्याणरूप दृष्टि आते हौ ताते कृपा करि कहौ कि कौन हौ ? वसिष्ठ उवाच– हे मंकीऋषि ! मैं वसिष्ठ ब्राह्मण हौं अरु मेरा गृह आकाशविषे है मुझको राजा अजने स्मरण किया है तिसनिमित्त मैं इस मार्गसे गमन करता हौं अब तुम संशय मत करौ जो ज्ञानमार्गको पाया है. हे रामजी ! जब मैं ऐसे कहा तब वह मेरे चरणोंपर गिर पड़ा अरु नेत्रोंते जल चलने लगा जब महा आनंदको प्राप्त भया तब मैं कहा कि हे ऋषि ! तू संशय मत कर मैं तुझको अकृत्रिम शांतिको प्राप्त करिकै गमन करौंगा जो कछु पूछा चाहता है सो पूछ मैं तुझको उपदेश करौं अरु मैं जानता हौं तू कल्याण कृत है जो कछु मैं कहौंगा सो तू धारैगा अब तू कछु प्रश्न कर जो तेरे कषाय परिपक्क भये हैं. तू मेरे वचनोंका अधिकारी है तुझको मैं उपदेश करौंगा अब तू संसारके तटको आय प्राप्त भया है अब तुझको [illegible]नेका विलंब है जो वैराग्यकरि पूर्ण है सो संसारका तट वैराग्य है ताते संशय मत कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६४ ॥

पंचषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६५.

मंकीवैराग्ययोगवर्णनम् ।

मंकिरुवाच–हे भगवन् ! अब मैं जानता हौं कि मेरा कार्य सिद्ध हुआ है मुझको अज्ञानकरि मोह था तिसका नाश करनेको तुम समर्थ दृष्टि आते हौ, मेरे हृदयका तम नाश करनेको तुम सूर्य उदय भये हौ. हे भगवन् ! यह संसार असार है अरु लोककी बुद्धि विषयकी ओर ही धावती है जहां दुःख ही होना है जैसे जल नीचे स्थानको चला जाता है तैसे इनकी बुद्धि नीच स्थानोंविषे धावती है वही चाहती है. हे भगवन् ! जेते कछु भोग हैं तिनको मैं भोगा है परंतु शांति न पायी

उलटी तृष्णा बढती गयी जैसे तृष्णा लगे अरु खारा जलपान करिये तौ तृष्णा नहीं मिटती बढती जाती है तैसे विषयके भोगनेकरि शांति नहीं प्राप्त होती तृष्णा बढ़ती जाती है. हे मुनिराय! देह जर्जरीभाव हो जाती है अरु दंत गिरि पडते हैं अति क्षोभ होता है तो भी तृष्णा नहीं मिटती ताते अब मैं दुःखको चाहता हौं सुख कोऊ नहीं चाहता काहेते कि संसारके जेते सुख हैं तिनका परिणाम दुःख है जो प्रथम दुःख है तिसका परिणाम सुख है इसीते दुःख चाहता हौं संसारके सुख नहीं चाहता. हे भगवन्! अपनी वासना ही दुःखदायक है जैसे कुराण गुफा बनायकरि तिसविषे आप ही फँस मरती है तैसे अपनी वासनाकरि आप ही बंधमान होता है. हे मुनि! वह काल कब हुआ है जो अज्ञानरूपी हस्तीने मुझको वश किया है अरु तिसका नाश करनेहारा ज्ञानरूपी सिंह प्रगट होवैगा अरु कर्मरूपी तृणोंका नाशकर्ता विवेकरूपी वसंत कब प्रगटैगा अरु वासनारूपी अंधेरी रात्रिका नाशकर्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होवैगा? हे भगवन्! वैताल तबलग भासता है जबलग निशा है जब सूर्य उदय होवैगा तब निशा जाती रहैगी बहुरि वैताल न भासैगा सो अहंकाररूपी वैताल तबलग है जबलग अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं भयी. हे भगवन्! जब संतजनके उपदेशते आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रगटै तब अहंकाररूपी वैताल तहां नहीं विचरता, संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखना चांदनी रात्रिवत् है तिनकरि जब स्वरूपका साक्षात्कार होवै तब दिन हुआ, जबलग संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखना न होवै तबलग अँधेरी रात्रि है. हे भगवन्! जिसको सच्छास्त्रका श्रवण भी होवै बहुरि विषयकी ओर भी गिरै तौ बडा अभागी जानिये सो मैं हौं परंतु अब मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त भया हौं, मेरे हृदयरूपी आकाशविषे जो अज्ञानरूपी कुहिड है सो तुम्हारे वचनरूपी शरत्काल करिकै नष्ट हो जावैगी हृदय आकाश निर्मल होवैगा. हे भगवन्! मैं त्रिदंड साधे हैं दीर्घकालपर्यंत मनकरि भी वाणीकरि भी कायाकरि भी यह तीन तप किये हैं परंतु आत्मप्रकाश नहीं हुआ अब मैं तुम्हारी

शरणागत हुआ तरौंगा, ताते कृपा करिकै उपदेश करौ जो मेरे हृदयका तम दूर होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संकीवैराग्ययोगवर्णनं नाम पंचषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६६.
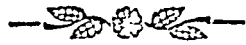
संकीऋषिप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे तात ! संवेदन भावना वासना कलना यह चारौं अनर्थके कारण हैं जब इनका अभाव हो जावै तब कल्याण होवै. शुद्ध चिन्मात्र पद प्रत्यक्ष चेतन अपने आपविषे जो अहंकार उत्थान है सो संवेदन है अरु भावना यह जो कछु बना बहुरि चेता अरु अपना आप चित्त स्मरण भया तब भ्रम मिटि जाता है अरु जो कछु बना है तिसकी भावना हुई. जो मैं यह हौं तब भावनाकरि संसार दृढ हुआ बहुरि तैसे ही वासना दृढ होती है अपने शरीरके अनुसार नाना प्रकारकी कलना होती है बहुरि संसारके संकल्पविकल्प उठते हैं. हे ब्राह्मण ! यह चतुर अनर्थके कारण हैं जब इनका अभाव हो जावै तब कल्याण होवै अरु जेते कछु शब्द अर्थ हैं तिनका अधिष्ठान प्रत्यक् चेतन है सर्व शब्द उसीके आश्रित हैं अरु सर्व वही है जब तू ऐसे जानैगा तब वासना क्षय हो जावैगी जब अहं संवेदन इसको फुरती है तब आगे संसार भासता है जैसे वसंतऋतु आती है तब वल्ली प्रफुल्लित होती हैं तैसे जब संवेदन फुरती है तब आगे संसार सिद्ध होता है जब संसार हुआ तब नाना प्रकारकी वासना फुरती हैं अरु संसार नहीं मिटता. हे अंग ! संसार इसका नाम है जो संसरता है जब संसरना मिटि जावै तब आत्मपद ही शेष रहै सो तेरा अपना आप है ताते इस फुरणेको त्यागिकरि अपने आपविषे स्थित होहु सर्व तेरा ही रूप है जबलग वासना फुरती है तबलग संसार दृढ हो जाता है जैसे वृक्षको जल दीजिये तब बढ़ता जाता है तैसे वासनारूपी जल देनेकरि संसाररूपी वृक्ष वृद्ध हो

जाता है ताते वासनाका नाश करौ कारण यह कि संवेदन फुरै. जब वृक्ष जलते रहित भया तब आप ही जलि जाता है. हे पुत्र आत्माविषे जगत् कछु हुआ नहीं केवल परमार्थसत्ता है जैसे जेवरीविषे सर्प कछु वस्तु नहीं जेवरीके अज्ञानते सर्प भासता है तैसे आत्माके अज्ञानते संसार भासता है. जब तू आत्मपदको जानैगा तब परमार्थसत्ता ही भासैगी जैसे बालक अपने परछायेविषे भूत कल्पिकरि भय पाता है जब विचारकरि देखा तब भूत कोऊ नहीं भय दूर हो जाता है तैसे आत्माके अज्ञानकरि संसारके राग द्वेष जलाते हैं अरु ज्ञानवान्को वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है केवल अद्वैत आत्मसत्ता ही भासती है जैसे स्वप्नते जागा स्वप्नका प्रपंच वासनासंयुक्त अभाव हो जाता है तैसे जब आत्माका साक्षात्कार हुआ तब वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है काहेते जो है नहीं. जैसे घटादिकविषे मृत्तिकाते इतर कछु नहीं तैसे सर्व प्रपंच चिन्मात्रस्वरूप है इतर कछु नहीं जेते कछु शब्द अर्थ हैं सर्व आत्मा ही है. हे मित्र! जो कछु आत्माते इतर भासता है तिसको भ्रममात्र जान जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो भ्रममात्र है तैसे विश्व असम्यक्दृष्टिकरिकै भासती है सम्यक्दृष्टिकरिकै सर्व प्रपंच आत्मस्वरूप है अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी बोधस्वरूप है बोध ही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित होता है जैसे स्वप्नविषे एक ही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है तैसे यह जाग्रतकी त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है. हे अंग! जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं सो सर्व आत्मस्वरूप हैं जो परमात्मस्वरूप न होवै तौ भासै नहीं. द्रष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है तिस स्वरूपके प्रमादकरि भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है तौ भी इतर कछु नहीं जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी अपने अनुभवकरि भासती है जो अनुभव न होवै तौ काहेते भासै तैसे यह त्रिपुटी अनुभव आत्माकरि भासती है ताते सर्व परमात्मस्वरूप है भिन्न कछु नहीं जो नहीं तौ है नहीं काहेते जो सर्वकी एकता परमार्थ स्वरूपविषे होती है. हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलि जाती है जैसे जलविषे जलकी बुंद डारिये तौ मिलि जाती है

काहेते जो एकरूप है तैसे बोधकरिकै सर्व पदार्थकी एकता भासती है काहेते जो द्वैतसत्ता है नहीं जैसे स्पंद निस्पंद दोनों पवन ही हैं जैसे जल अरु तरंग अभेदरूप हैं तैसे विश्व परमार्थस्वरूप है ताते ऐसे निश्चय करौ कि सर्व ब्रह्मस्वरूप है अथवा आपको उठाय देवहु जो मैं नहीं जब तू ही न हुआ तब विश्व कहांते होवै? हे मंकीऋषि ! प्रथम जो अहं होता है तौ पाछे ममत्व होता है जो अहं ही न रहैगा तौ ममत्व कहां रहैगा? इस अहंका होना ही बंधन है इसके अभावका नाम मुक्ति है. हे मित्र ! इस मुक्तिविषे क्या यत्न है यह तौ अपने आधीन है जो मैं नहीं जब अहंकारको निवृत्त किया तब शेष वही रहैगा जो सर्वका परमार्थरूप है तिसीको ब्रह्म कहते हैं. हे मुनीश्वर ! जब अहंकार फुरता है तब नाना प्रकारकी वासना होती है तिस वासनाके अनुसार अनेक जन्मको पाते हैं जो वर्णन किये नहीं जाते हैं जैसे पवनकरि तृण भटकते फिरते हैं तैसे वासनाकरिकै जीव भटकते फिरते हैं जब पर्वतते कंकर गिरता है तब चोटैं खाता नीचेको चला जाता है तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जन्मजन्मांतर पाते चले जाते हैं घटीयंत्रकी नाईं कबहूँ ऊर्ध्व कबहूं अधःको जाते हैं अपनी वासनाके अनुसार जैसे खेनु हाथकरि ताडन किया कबहूँ ऊर्ध्व कबहूँ अधःको जाता है. हे अंग ! इस संसारका बीज वासना है जब वासना निवृत्त होवै तब सर्वकी एकता हो जाती है जबलग संसारकी वासना दृढ है तबलग एकता नहीं होती. जैसे दूध अरु जल मिलता है उनका संयोग हो जाता है तैसे भी आत्मा अरु विश्वका संयोग नहीं आत्मा केवल अद्वैत है अरु सर्वका आपना आप है जैसे मृत्तिका ही घटादिकरूप हो भासती है तैसे आत्मसत्ता ही जगत्रूप हो भासती है ताते आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं. हे साधो ! आत्मा अरु दृश्यका संयोग कछु नहीं काष्ठ अरु लाखवत् अथवा घट अरु आकाशवत् संयोग कछु नहीं काहेते कि आत्मा अद्वैत है सर्व दृश्य बोधमात्र है. हे साधो ! जो जड है सो चेतन नहीं होता अरु चेतन जड नहीं होता ताते नकोऊ जड है न चेतन है चेतन आत्मा ही भावनाकरि जड दृश्य

हो भासता है तिसके बोधकरि एक अद्वैतरूप हो जाता है तौ जानता है कि सर्व वही है इतर कछु नहीं है. मित्र अज्ञानकरि नाना प्रकारकी विश्व भासती है जैसे मेघकी वर्षाकरि नाना प्रकारके बीज प्रफुल्लित हो आते हैं तैसे अहंरूपी बीजते संसाररूपी वृक्ष वासना सुखकरि प्रफुल्लित होता है जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो जावै तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा. हे अंग ! जैसे वानर चपलता करता है तैसे आत्मतत्त्वते विमुख अहंकाररूपी वानर वासनाकरि चपलता करता है जैसे खेनु हस्तते प्रहारकरि अधः ऊर्ध्वको उछलता है तैसे जीव वासनाके प्रहारकरि जन्मांतरविषे भटकता फिरता है कबहूँ स्वर्ग कबहूँ पाताल कबहूँ भूलोकविषे आता है स्थिर कदाचित् नहीं होता ताते वासनाका त्याग करौ अरु आत्मपदविषे स्थित होहु. हे तात ! यह संसार रात्रिका पेंडा है देखते नष्ट हो जाता है इसको देख इसविषे प्रीति करनी अरु सत् जानना यही अनर्थ है ताते संसारको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु चित्तकी वृत्ति जो संसरती है इसीका नाम संसार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मंकीऋषिप्रबोधवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिशततमः सर्गः ॥ १६६ ॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६७.

मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच- हे तात ! यह संसारका मार्ग गहन है इसविषे जीव भटकते हैं यह चेतनवृत्ति जो संसरती है यही संसार है. जब यह संसरना मिटै तब स्वच्छ अपना आप ही स्वरूप भासै चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बंधन है अपर बंधन कोऊ नहीं. हे साधो ! यह जगत् वासनाकरि बांधा है जैसे वसंतऋतुकरि रस पसरता है तैसे वासनाकरि जगत् पसरता है बड़ा आश्चर्य है जो मिथ्या वासनाकरि जीव भटकते फिरते हैं दुःखको भोगते हैं अरु वारंवार जन्म मृत्यु पाते हैं बडा आश्चर्य है जो वासना विषमरूप है इसते जीव वश

हुए अविद्यमान जगत्को भ्रमकारि सत् जानते हैं. हे साधो ! जो इस वासनारूप संसारको तर गये हैं सो धन्य हैं वह प्रत्यक्ष चंद्रमाकी नाईं हैं जैसे चंद्रमा अमृतरूप शीतल प्रकाशवान् प्रसन्न करता है तैसे ज्ञानी पुरुष हैं ताते तू धन्य है जिसको आत्मपदकी इच्छा हुई है. हे अंग ! यह संसार तृष्णाकारि जलता है जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है तिनको तू बिल्ला जान जैसे बिल्ला तृष्णाकारि चूहेको ग्रहण करता है तैसे यह जीव भी अपनी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं अरु इस मनुष्यशरीरविषे यही विशेषता है कि किसी प्रकार आत्मपदको प्राप्त होवै अरु जो नरदेह पायकारि भी आत्मपद पानेकी इच्छा न करै तौ पशुसमान है, जैसे पशु तैसे मनुष्य. हे मित्र ! मूढ़ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं जो प्राणोंके अंत-पर्यंत भी तृष्णा करते रहते हैं. हे अंग ! ब्रह्मलोकते आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु इंद्रियोंके विषय हैं तिनके भोगनेकारि शांति नहीं प्राप्त होती काहेते जो आपातरमणीय हैं इन विषे सुख कदाचित् नहीं जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको शांति ऐसी है जैसे चंद्रमाविषे है अरु सूर्यकी नाईं प्रकाशते हैं अरु विषयकी तृष्णा कदाचित् नहीं करते जैसे कोऊ पुरुष अमृत पानकारि तृप्त हुआ होवै तब वह फल खानेकी इच्छा नहीं करता तैसे जिस पुरुषको आनंद प्राप्त हुआ है सो विषय भोगनेकी इच्छा नहीं करता ताते इसी वासनाका त्याग करु अरु वासनाका बीज अहंकार है तिसको निवृत्त करु जो मैं नहीं काहेते जो तेरा होना ही अनर्थ है. हे साधो ! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदविषे जो कछु तू आपको प्रसन्न जानता है कि मैं ब्राह्मण हौं अथवा किसी प्रकृतिसाथ मिलिकरि आपको मानता है कि मैं यह हौं यही अनर्थ है. हे ऋषि ! तेरे नेत्रोंके खोलनेकारि संसार उत्पन्न होता है अरु नेत्रोंके मुन्दनेकारि नष्ट हो जाता है सो नेत्र क्या हैं, अहंकारका फुरणा इसीकारि आगे विश्व सिद्ध होती है ताते तेरा होना ही अनर्थ है. हे अंग ! जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र उदय होता है तैसे आत्माविषे अहंकार उदय हुआ है इसीके अभावते भय शांत होता है जब अहंकार हुआ तब आगे स्त्री कुटुंब धन होते हैं सो इसको बंधन हैं इनका चमत्कार ऐसे है जैसे

दामिनीका चमत्कार क्षणविषे उदय होकारि नष्ट हो जाता है ताते इन-विषे बंधमान नहीं होना. हे अंग ! जब तू कछु बना तब सब आपदा तुझे आय प्राप्त होवैंगी अरु जब तू अपना अभाव जानै तब पाछे आत्मपद ही शेष रहैगा सो परम शांतरूप है जिसकी अपेक्षाकारि चंद्रमा भी अग्निवत् जानता है सो परम शून्य है अरु सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है सो आकाशरूप है. हे मित्र ! इन मेरे वचनोंको धार जो मोह तेरा नष्ट हो जावै यह विश्व कछु हुई नहीं जसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है सो है नहीं तैसे विश्व नहीं आत्माके प्रमाद-कारि भासता है. हे ऋषि ! तू तिसीको जान जिसके अज्ञानकारि विश्व भासता है अरु जिसके ज्ञानकारि लय हो जाता है. हे मंकी ! शून्यमात्र जैसे आकाश है स्पंदमात्र जैसे पवन है जलमात्र जैसे तरंग है तैसे संवित् मात्र जगत् है तिस संवित् आकाशते जो इतर भासता है सो भ्रममात्र जान जैसे असम्यक्दृष्टिकारिकै जल पहाडरूप भासै तैसे असम्यक्दृष्टि कारि जगत् भासता है अरु सम्यक् अवलोकनकारि परमार्थसत्ता ही भासती है, जिसके अज्ञानकारि जो विश्व भासता है तिसको भी ज्ञानवान् ब्रह्मश-ब्दकारि कहते हैं तिस ब्रह्मपदका अहंकार ही व्यवधान है सो ज्ञानवान्का नष्ट भया है ताते सर्वका अधिष्ठान वही परमार्थस्वरूप एक देखते हैं तिसीविषे तू एकत्र होउ जैसे आकाश अनेक घटके संयोगकारि भिन्न भिन्न भासता है जो घटको फोडिये तौ सर्व एक ही हो जाता है तैसे अहंकाररूपी घटको फोडिये तौ सर्व पदार्थ एकत्र हो जाते हैं. हे अंग ! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्म पद है सो कैसा है अजन्मा है अच्युत है आनंद है शांतरूप है निर्विकल्प अद्वैत है सर्वका अधिष्ठान है तिसी-विषे स्थित होहु जो शिलावत् आत्मसत्ताते इतर कछु न फुरै ताते निर्बा-धबोध हो जावहु. हे मंकीऋषि ! यह जो पदार्थ भासते हैं दुःखके देने-हारे ऐसे जो शब्द अर्थ हैं सो आकाश फूल हैं ताते शोक मत करु जो सर्व परमार्थसत्ता ही है जैसे पुरुष निराकार है तिसकी भावनाकारि अंगका संयोग होता है तैसे विश्व भी इसकी भावनाकारि होता है जैसी जैसी संसारकी भावना दृढ होती है तैसा रूप आगे दृष्टि आता है जो

विश्व उपादानकरि हुआ नहीं तो आरंभ परिणामकरि बना कछु नहीं जैसे यह विना उपादान है तैसे श्रवण कर. हे मित्र ! शुद्ध परमात्माका जो पाना है सो साधन है अरु विश्व उपादान है सो शब्द है अरु आत्मा अद्वैत है सो इनका हेतु है अरु अचिंत्य है इसीते विश्व निरुपादान है स्वप्नवत्. जैसे स्वप्नसृष्टि निरुपादान होती है तैसे जाग्रत् सृष्टि भी है अरु उपादान मृत्तिकाकरि जैसे घट कार्य बनता है आत्मा विश्वका उपादान ऐसे भी नहीं काहेते जो मृत्तिका परिणामकरि घटाकार होती है अरु आत्मा अच्युत है जैसे भीत विना चित्र होवै सो हैही नहीं ताते यही विश्व आकाशविषे चित्र है जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारकी विश्व आधार भीत विना चित्र होता है तैसे यह विश्व भी आकाशविषे चित्र हुआ है इसीते आत्मा अकर्ता है अरु विश्व जो दृष्टि आता है सो निरुपादान है तिसका शोक क्या करिये अरु हर्ष क्या करिये यह प्रपंच सर्व आत्मरूप है प्रमादकरिकै नहीं जाना जाता. हे साधो ! संवेदनकरिकै जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासता है जैसे स्वप्नविषे जो कछु बनता है सो अपने स्वरूपते भिन्न देखता है अरु तिसविषे राग द्वेष भासते हैं अरु जागे हुए अपर कछु नहीं सब अपना ही अनुभव था तैसे जब संवेदन उठ गयी तब सब विश्व अपना आप हो जाता है यह अहंकार होना ही विश्व है जब अहंकार नाश होवै तब सर्व शब्द अर्थ जो मैं दुःखी हौं मैं सुखी हौं यह नरक है यह स्वर्ग है इत्यादिक सब परमार्थसत्ताविषे ही फुरते हैं सर्वका अधिष्ठान आत्मा है ताते सर्व आत्मस्वरूप है सो कैसा है दृश्यतें रहित द्रष्टा है ज्ञेयते रहित ज्ञाता है अरु निर्बोध बोध है इच्छाते रहित इच्छा है अद्वैत है अरु नानात्व भी वही है निराकार है आकार भी वही है अकिंचन है किंचन भी वही है अक्रिय है अरु सर्व क्रिया वही करता है ऐसे आत्मज्ञानको पायकरि आत्मवेत्ता विचरते हैं अरु जगत्का भान तिनको किंचित् भी नहीं जैसे स्वर्णके भूषण जलके तरंग होते हैं तैसे सर्व विश्व तिसको आत्मस्वरूप भासता है ऐसे जानिकरि सर्व चेष्टा करते हैं जैसे यन्त्रीकी पुतलीविषे संवेदन नहीं फुरती तैसे उनको जगत्सत्यता नहीं फुरती काहेते जो निरहंकार भये हैं. हे मंकी

ऋषि ! जैसे स्वर्णविषे भूषण बनि आये हैं तैसे आत्म विषे विश्व फुरि आता है सो अहंकार फुरा है ताते इसके अभावकी भावना करु निरहंकार होकरि चेष्टा करु, जैसे पिंघुडेविषे बालकके अंग स्वाभाविक हलते हैं तैसे ज्ञानीकी निर्वेदन चेष्टा होती है. हे ऋषि ! जब तू इस मेरे उपदेशको धारैगा तब सुखेन ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, यह विश्व भी आत्मस्वरूप ही भासैगा, जो कछु विश्व भासता है सो सब आत्मरूप ही है. हे रामजी ! जब मैंने इस प्रकार कहा तब मंकीऋषि परम निर्वाणपदको प्राप्त भया, परम समाधिविषे स्थित हो गया सौ वर्षपर्यंत समाधिस्थित रहा सो कैसी समाधि जो शिलावत् फुरै कछु नहीं. हे रामजी ! जैसे मंकीऋषि स्वरूपको प्राप्त भया है तैसे तुम भी स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६८.

सुखेनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कार है सर्व वही चिन्मात्रस्वरूप है. हे रामजी ! मेरा आशीर्वाद है, जो तुम चिन्मात्रस्वरूपको प्राप्त होहु जो तुम्हारा अपना आप है तिसको अपना आप जानो तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावैं. हे रामजी ! तुम निर्वाण शांत आत्मा होहु अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहौ अरु सत् हुआ असत्की नाईं स्थित होहु रागद्वेषका रंग तुमको स्फटिकमणिकी नाईं स्पर्श न करै. हे रामजी ! यह सर्व जगत् एक ही स्थित है अरु वास्तवते एकविषे कछु स्थित नहीं आदि अंतते रहित एक चिदाकाश अपने आपविषे स्थित है सो शरीरादिकके नाशविषे भी अखंडरूप है तिसका यह जगत् चमत्कार है उपज उपजकरि जलतरंगवत् लय हो जाता है. हे रामजी ! ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी भ्रांतिमात्र शुद्ध हुई है अरु वास्तवते द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्व वही रूप है तिसते इतर कछु नहीं सब आत्मस्वरूप है

अरु सदा एकरस है कदाचित् क्षोभको नहीं प्राप्त होता यद्यपि यह दशा होवै कि अमावास्याको चंद्रमा दृष्टि आवै अरु प्रलयकाल विना प्रलयकाल वायु चलै तौ भी आत्माको क्षोभ नहीं होता आत्मपद सदा ज्योंका त्यों है. हे रामजी! ऐसे आत्माके प्रमादकरि जीव दुःख पाते हैं जब आत्माका प्रमाद होता है तब इसको प्रत्यक्ष देह इंद्रिय अपनेविषे भासती है तौ भी है नहीं जैसे बालूसों तेल नहीं निकसता अरु आकाशविषे वन नहीं होता चंद्रमाके मंडलविषे तप्तता नहीं होती तैसे आत्माविषे देह इंद्रिय कदाचित् नहीं. हे रामजी! यह जीव सर्व आत्मारूप हैं ताते इनको देहइंद्रियोंका संबंध कछु नहीं परंतु इनकी क्रियाविषे जो अभिमान करता है इसीते बंधमान होता है. हे रामजी! जैसे बेडीपर पुरुष बैठता है तिसको भ्रांतिकारि नदीतटके वृक्ष चलते भासते हैं तैसे मनके भ्रमकरि आत्माविषे चित्त देह इंद्रियां भासते हैं अरु वास्तवते चित्त देह इंद्रियां कछु भिन्न वस्तु नहीं यह भी आत्मस्वरूप है तौ निषेध किसका करिये? हे रामजी! यह मन इंद्रियादिकको अपनी सत्ता कछु नहीं भ्रांतिकरिकै भासती है जैसे पर्वत ऊपर उज्ज्वल मेघ होता है तिसविषे वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है तैसे देहादिकविषे अहंबुद्धि निष्फल है. ताते हे रामजी! एक अखंड आत्मतत्त्व है अपर द्वैत कछु नहीं जब तैंने ऐसे धारा तब तू निरंजन स्वरूप है. हे रामजी! यह सर्व शरीर चित्तके फुरणेविषे स्थित है जैसे चित्तके फुरणेविषे शरीर है तैसे जीवविषे चित्त है तैसे परमात्माविषे जीव है. हे रामजी! इस प्रकार फुरणेमात्र दृश्य हुई तौ द्वैत तौ कछु न हुआ क्यों? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्य भ्रमको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी! ऐसे धारिकरि सुखेन विचरहु, जो कछु चेष्टा नेतिकरि आय प्राप्त होवै तिसको करौ परंतु अपना अभिमान न होवै जब अपना अहंभाव दूर भया तब स्पंद होवै अथवा निस्पंद होवै समाधिस्थित होवै अथवा राज्य करै स्थिति क्षोभ तुमको दोनों तुल्य हो जावैंगे जब अपनी अभिलाषा दूर भई तब जैसी चेष्टा आय प्राप्त होवै तैसी ही होवै वह

फुरणा भी अफुर है, जैसे जलके ज्ञानते तरंग बुद्बुदे जल ही भासता है तैसे तुमको स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होवेंगे, एक अद्वैत सत्ता ही भान होवेगी जैसे सम्यक्दर्शीको तरंग अरु सोमजल एक भासता है तैसे तुमको भी एक ही भासैगा, जीवन्मुक्त होहु अथवा विदेहमुक्त होहु समाधि होवै अथवा राज्य होवै तुमको दोनों तुल्य हैं. हे रघुकुल-आकाशके चंद्रमा रामजी! इसको अपनी अभिलाषा ही बंधन करती है जब अभिलाषा मिटी तब कर्म करौ अथवा न करौ बंधन कछु नहीं काहेते कि करनेविषे भी आत्माको अक्रिय देखता है अरु अकरनेविषे भी तैसे देखता है द्वैतभावना तिसकी निवृत्त हो जाती है ताते तिसको चित्त देह इंद्रियादिक सर्व पदार्थ आत्मरूप ही भासते हैं. हे रामजी! मैं जानता हौं कि तुम्हारे हृदयका मोह निवृत्त भया है अब तुम जागे हौ अरु जो कछु तुमको संशय रहा होवै तौ बहुरि प्रश्न करौ जो मैं उत्तर देऊं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे सुखेनयोगोपदेशो नामाष्टषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६८ ॥

ऊनसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १६९.

निराशयोगोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन्! एक संशय मुझको है तिसको तुम निवृत्त करौ एक कहते हैं कि बीजते अंकुर होता है अरु एक कहते हैं अंकुरते बीज होता है अरु एक कहते हैं जो कछु कर्त्ता है सो दैव ही करता है अरु एक कहते हैं कर्म करता है तब जन्म पाते हैं कर्महीकरि सब-कछु होता है अपर किसीके आधीन नहीं अरु एक कहते हैं जब देह होती है तब कर्म करते हैं एक कहते हैं कर्मोंते देह होती है एक कहते हैं देहते कर्म होते हैं यह अर्थ है एक पुरुषप्रयत्न मानते हैं सो जो जैसे है तैसे तुम कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! एक एक मैं तुझको क्या कहौं? कर्मते आदि देवपर्यंत अरु घटते आदि आकाशपर्यंत जेती

कछु क्रिया कर्मद्रव्य है सो यह विकल्पजाल सब भ्रांतिमात्र है केवल आत्मस्वरूप अपने आपविषे स्थित है द्वैत कछु हुआ नहीं. हे रामजी। जब संवेदन फुरती है तब सब कछु भासता है अरु निःसंवेदन हुए कछु नहीं, कर्म पुरुषप्रयत्न सब दैवसमेत आत्माके पर्याय हैं जैसे शीत श्वेत आदिक बर्फके पर्याय हैं तैसे यह सर्व आत्माके पर्याय हैं दैव पुरुष है अरु पुरुष दैव है कर्म देह है अरु देह कर्म है बीज अंकुर है अरु अंकुर बीज है दैव कर्म है अरु कर्म दैव है सो पुरुषप्रयत्न है जो इनविषे भेद मानते हैं सो पंडितविषे पशु हैं काहेते जो इनका बीज अहंकार है जब अहंकार हुआ तब सब कछु सिद्ध हुआ जैसे बीजते वृक्ष होता है फूल फल टास सर्व बीजते होते हैं अरु जो बीज ही न होवै तौ वृक्ष कैसे उपजै? हे रामजी। इनका बीज संवेदन है अहंकार संकल्प संवेदन तीनों पर्याय हैं जब फुरणा हुआ तब कर्म देह दैव सर्व सिद्ध होते हैं जब फुरणा मिटि गया तब कछु नहीं भासता इसीको ज्ञान अग्निकरि जलावहु जो फूल फल टास जलि जावैं. यह जो संवेदन फुरती है जो मैं ही हौं यही संसारका बीज है ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु जब अहंकार नष्ट भया तब द्वैत कछु न भासैगा. हे रामजी। यह जो प्रपंच भासता है तिसका बीज संवेदन है अरु संवेदनका बीज शुद्ध संवित्तत्त्व है तिसका बीज अपर कोऊ नहीं, दैव कर्म पुरुषप्रयत्न क्या है सो श्रवण करु, आदि जो स्पंद संवेदन फुरणा हुआ है तिसका नाम दैव है काहेते जो कर्मते आदि ही फुरता है बहुरि जो आगे क्रिया करती है सो कर्म हैं इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है अरु वह जो कर्मते आदि दैवरूप फुरा है सो क्या रूप है इसीका जो प्रकृति कर्म हुआ है तिसीका नाम दैवकरिके कहते हैं इन सर्वका बीज संवेदन है. हे रामजी ! जो स्वतः पुरुष चिन्मात्र पद एक ही था. जब तिसते विकारसंयुक्त उत्थान हुआ तब आगे प्रपंच भासने लगा बहुरि जब उत्थानका अभाव होवै तब प्रपंचका भी अभाव हो जावै. हे रामजी। जब यह कछु बनता है तब सर्व आपदा इसको प्राप्त होती हैं जैसे सुई वस्त्रविषे प्रवेश करती है तिसके पाछे तागा भी चला जाता है अरु जो सुई प्रवेश न करै तो तागा कहांते जावै तैसे जब अहंकार

प्रवेश करता है तब सब आपदा आती हैं जब अहंकार निवृत्त भया तब सब विश्व आनंदरूप अपना आप भासता है, ताते अहंकारका अभाव करौ काहेते जो विश्व भ्रांतिकरि सिद्ध है आगे कछु हुई नहीं सर्व आत्मस्वरूप है. हे रामजी! वासनामात्र विश्व है जब वासना नष्ट होवै तब परम कल्याण है जिस प्रकार इसकी वासना क्षय होवै सोई युक्ति श्रेष्ठ है जब युक्तिकरि वासना क्षय होवैगी तब चेष्टा भी होवैगी परंतु बहुरि जन्मको न देवैगी. हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य दृष्टि आती है परंतु ज्ञानीका संकल्प दग्धबीजवत् है बहुरि जन्मको नहीं देता अरु अज्ञानीका संकल्प कच्चे बीजवत् है बहुरि जन्म देता है अरु वास्तव देखिये तौ न कोऊ जन्म ही पाता है न कोऊ मृत होता केवल अपने आप भावविषे स्थित है भ्रांतिकरिकै भिन्न भिन्न भासते हैं स्वरूपते सर्व अपना ही आप है द्वैत कछु हुआ नहीं अरु जो भासता है सो मिथ्या है जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं होता तैसे प्रपंच सर्व मिथ्या है इसविषे सार कछु नहीं ताते इसकी वासना त्यागिकरि अपने आपविषे स्थित होहु. हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल होवै सोई यत्नकरि निर्मूल करौ तब शेष परमशिवपद ही रहैगा. हे रामजी! पुरुषप्रयत्नकरि जब निरहंकार होवहुगे तब वासना आप ही क्षय हो जावैगी. वासना क्षयका उपाय अपने पुरुष प्रयत्न विना कोऊ नहीं. ताते हे रामजी! पुरुषार्थकरिकै इसी एक देव परायण होहु कर्म देव आदिक वही पुरुष होकरि भासता है अरु कछु हुआ नहीं जैसे एक ही पुरुष देवनका स्वांग धारै. हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईषणाको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे निराशयोगोपदेशो नाम ऊनसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६९ ॥

सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७०.

भावनाप्रतिपादनोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ज्ञानवान्की बुद्धि निर्मल हो जाती है हृदयविषे शीतलता होती है चेतन रसकरि बुद्धि पूर्ण होती है दूसरा भान उठि जाता है ताते नित्य अंतर्मुखी होहु अरु वीतराग निर्वासी होहु चिन्मात्र निर्मल शांतरूप सर्व ब्रह्मकी भावना करु ब्रह्मपदको पायकरि नेतिके अनुसार चेष्टा कर जो हर्षका स्थान होवै तिसविषे हर्ष करु जो शोकका स्थान होवै तहां शोक करु जैसे अज्ञानी करते हैं तैसे करु अरु हृदयविषे आकाशकी नाईं रहु. हे रामजी ! जब इष्टकी प्राप्ति होवै तिससाथ स्पर्श करहु परंतु हृदयविषे तृष्णा न होवै जब युद्ध आय प्राप्त होवै तब शूरमा होकरि युद्ध करहु अरु जहां दीन होवै तहां दया करहु जो राज्य आय प्राप्त होवै तिसको भोगहु जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होवै तिसको भी भोगहु. हे रामजी ! सब चेष्टा अज्ञानीकी नाईं करहु अपने हृदयविषे सदा समता रहै इतर कछु फुरै नहीं रागद्वेषते रहित सदा निर्मल होहु जब तू ऐसे निश्चयको धारैगा तब तुझको खेद कछु न होवैगा. यद्यपि बड़ा दुःख इंद्रका वज्र पड़ै तौ भी तुझको स्पर्श न करैगा. हे रामजी ! तेरा रूप कैसा है जो शस्त्रकरि छेदा नहीं जाता अरु अग्निकरि जलता नहीं जलकरि गलता नहीं पवनकरि सूखता नहीं केवल निराकार अजर अमर है सर्वका अपना आप है. हे रामजी ! कष्ट तब होता है जब विलक्षण वस्तु होती है अग्नि तब जलाती है जब भिन्न काष्ठ आदिक वस्तु होती है अग्निको अग्नि तौ जलाती नहीं जलको जल तौ गालता नहीं ताते तू अपने आपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! संवित्‌रूप आलयवत् स्थिर स्थान है तिसविषे स्थित होहु जैसे पक्षी सर्व ओरते संकल्पको त्यागिकरि आलयविषे स्थित होता है तब सुख पाता है तैसे जब तू सर्व कलनाको त्यागिकरि अंतर्मुख संवितविषे स्थित होवैगा तब रागद्वेषरूपी धुंध कोऊ न रहैगा. हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र बडा प्रवाह है तिसते निकसना तब होवै जब आश्रय होवै सो आश्रय तुझको

कहता हौं अनुभवरूपी आत्माको आश्रयकरि संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होहु ताते विलंब न करहु अपने आपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! संसाररूपी वृक्षका अंत लिया चाहै तो नहीं पाता अरु मैं तुझको ऐसा उपाय कहता हौं जो सर्वका अंत कहिये सुगंधिको ग्रहण किये संसार-रूपी एक वृक्ष है तिसविषे चेतनमात्र सुगंधिता है सो तेरा अपना आप है तिसको ग्रहण करु जो सर्वका अधिष्ठान है जब तिसको ग्रहण किया तब सर्वको ग्रहण किया है, हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच तुमको भासता है सो सब आत्मरूप है तिसकी भावना करु अरु जाग्रत्विषे सुषुप्त होहु सुषुप्तविषे जाग्रत् होहु संसारकी सत्ता जो जाग्रत् है तिसकी ओरते सुषुप्त होहु सुषुप्त कहिये फुरणेते रहित होकरि तुरीयापदविषे स्थित होहु जहां गुणका क्षोभ कोऊ नहीं अरु निर्मल शांतिरूप है जहां एक अरु दोकी कलना कोऊ नहीं तिसविषे स्थित होहु. राम उवाच-हे भगवन् ! ऐसे जो शांतरूप तुरीयापदविषे स्थित होना तुमने कहा सो तुम्हारेविषे यह नहीं फुरता कि मैं वसिष्ठ हौं तिसका रूप क्या है जो अहं प्रतीति तुमको नहीं होती है.वाल्मीकिरुवाच-हे भरद्वाज!जब इस प्रकार रामजीने प्रश्न किया तब वसिष्ठजी तूष्णीं हो गये अरु सर्व सभा संशयके समुद्र-विषे मग्न भयी.तब रामजी बोले-हे भगवन्! तूष्णीं होना तुम्हारा अयोग्य है तुम साक्षात् विश्वगुरु हो ब्रह्मवेत्ता हो ऐसी कौन बात है जो तुमको न आवै अथवा मुझको समर्थ नहीं देखते सो कहौ जब ऐसे रामजीनें कहा तब वसिष्ठजी एक घड़ी उपरांत बोले. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! असमर्थताकरिकै मैं तूष्णीं नहीं भया परंतु जैसा तेरे प्रश्नका उत्तर है सोई दिखाया कि तेरे प्रश्नका तूष्णीं ही उत्तर है जो प्रश्न कर-नेवाला अज्ञानी होवै तौ उसको अज्ञान लेकरि उत्तर कहिये अरु जो तज्ज्ञ होवै तिसको ज्ञानकरि उत्तर दीजिये आगे तू अज्ञानी था सवि-कल्प उत्तर मैं देता था अब तू ज्ञानवान् है तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णीं ही है. हे रामजी ! जो कछु कहना है सो प्रतियोगी साथ मिला हुआ है प्रतियोगी विना शब्द मैं कैसे कहौं आगे तू सविकल्प शब्दका अधिकारी था अरु अब तुझको निर्विकल्पका उपदेश किया है. हे रामजी ! शब्द

चार प्रकारके हैं एक सूक्ष्म अर्थका दूसरा परमार्थका. एक अल्प है एक दीर्घ है सो तीन कलंक इनविषे रहते हैं एक संशय एक प्रतियोग एक भेद यह तीनों कलंक शब्दविषे रहते हैं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु रहते हैं तैसे शब्दविषे कलंक रहते हैं अरु जो पद मन अरु वाणीते अतीत है तौ कलंकित शब्द कैसे किसका ग्रहण करे ? हे रामजी ! काष्ठमौन तिसको कहते हैं, जहां न इंद्रियां फुरैं न मन फुरै कोऊ फुरणा न फुरै सो कहिये काष्ठमौन ऐसे पदको मैं वाणीकरि कैसे कहौं ? जेता कछु बोलना होता है सो सविकल्प होता है उस तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णीं है. राम उवाच–हे भगवन् ! तुम कहते हौ बोलना सविकल्प अरु प्रतियोगी सहित होता है जो कछु ब्रह्मविषे दूषण है तिसका निषेध करिकै कहौ मैं प्रतियोगीको न विचारौंगा. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मैं चिदाकाशस्वरूप हौं चैत्यते रहित चिन्मात्र हौं अरु शांतरूप हौं सम हौं सर्व कलनाते रहित केवल आत्मतत्त्वमात्र हौं अरु तू भी चिदाकाश है सर्व जगत् भी चिदाकाश है अरु अहं त्वं कोऊ नहीं कहना काहेते कि दूसरी सत्ता कोऊ नहीं सब चिदाकाश है. अहं संवेदनते रहित शुद्ध है जो सापेक्षिक अहं २ फुरती है अरु मोक्षकी भी इच्छा होवै तौ सिद्ध नहीं होती काहेते जो कछु आपको मानकरि फुरती है तौ एक अहंकारके कई अहंकार हो जाते हैं यह अहम् इसके गलेमें फांसी पड़ती है जब अहंताते रहित होवै तब आत्मपदको प्राप्त होवै. हे रामजी ! जब यह सबकी नाईं हो जावै कछु अपनी अहंता अभिमान न फुरै तब संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होवै अरु जब द्वैतसों मिलाहुआ जीता है तबलग जन्ममरणके बंधनमें है कदाचित् मुक्त नहीं होता, जैसे जन्मका अंध चित्रकी पुतलीको देखि नहीं सकता तैसे अहंतासंयुक्त मुक्तिको नहीं प्राप्त होता. जब अहंताका अभाव होवै तब कल्याण होवै स्वरूपके आगे अहंता ही आवरण है. हे रामजी ! जब यह चेतन हुआ फुरा तब इसको बंधन पड़ा अरु जब जड़ अफुर हो जावै तब कल्याण हुआ जब चैतन्योन्मुखत्व होता है तब इसका नाम पशु होता है पशुका शरीर पाया जब चैत्यते रहित शुद्ध चेतन प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होता है तब

मनुष्यजन्म सफल होता है, यह मनुष्यजन्म पाय जो कछु पावना था सो पाया. हे रामजी! जब मनुष्यजन्मको पायकरि न जानेगा तब अपर जन्मविषे जानना कहां है यह संसार चित्तके फुरणेकरि उत्पन्न हुआ है जब चित्त संकरणेते रहित होवै तब केवल केवलीभावस्वरूप भासै ज्ञानवान्‌की दृष्टिविषे अब भी कछु नहीं हुआ केवल आत्मस्वरूप ही भासता है फुरणा अफुरणा दोनों तिसको तुल्य दिखाई देते हैं अंतःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप हैं अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न भासते हैं इसीते चित्त आदिक जड़ हैं अरु मिथ्या हैं अरु आत्मस्वरूपकरिकै सब आत्मरूप हैं आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है ज्ञानीको सर्व आत्मा ही भासता है भावै कैसी चेष्टा करै वह लोक धन पुत्र सर्व ईषणाते रहित है न लोककी इच्छा करता है जो लोक मुझको कछु भला कहै अरु न पुत्र धन पानेकी इच्छा करता है केवल आत्म अनुभवरूपविषे स्थित है अरु सबको अपना आप जानता है. हे रामजी! जिस पदको वह प्राप्त होता है तिस पदको मेरी वाणी कह नहीं सकती अनिर्वाच्य पद है अरु जो पुरुष अहं ब्रह्म अस्मि कहता है कि जो मैं ब्रह्म हौं अरु यह जगत् है तब जानिये कि तिसको ज्ञान नहीं उपजा तिसको शास्त्रश्रवणका अधिकार है जैसे कोऊ कहै मेरे हाथविषे दीपक है अरु अंधकार भी मुझको दृष्टि आता है तब जानिये कि इसके हाथविषे दीपक नहीं तैसे जबलग जगत् भासता है तबलग ज्ञान उपजा नहीं इस जीवने निर्वाण हो जाना है जब प्रत्यक् चेतनविषे स्थित हुआ तब जड हो जावैगा संसारकी भास कछु न रहैगी ऐसी भी दृष्टि न रहैगी कि मैं सम्यक्‌दर्शी हौं केवल निर्वाण हो जावैगा. हे रामजी! अब भी निर्वाणपद है इतर हुआ कछु नहीं किसकरिकै किसको कौन उपदेश करै केवल एकरस शून्य है शून्य अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं अरु जो कछु भेद है तिसको ज्ञानवान् जानते हैं अरु वाणीकी गम नहीं तिसविषे जो अनंत संवेदन फुरती है तिसकरि संसार फुरता है अरु संवेदनहीकारि लीन होता है जैसे पवनकरि अग्नि प्रज्वलित होता है अरु पवनहीकारि लीन होता है तैसे संवेदन बहि-

मुख फुरती है सब संसार भासता है अरु जब अंतर्मुख होती है तब जगत् लीन हो जाता है ताते संसार फुरणेमात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है तैसे आत्माविषे जगत् प्रमादकरिके भासता है जगत् कछु बना नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है तिसविषे स्थित होहु, जब स्थित होवैगा तब अशेष विशेष भाव मिटि जावैगा. हे रामजी ! ग्राह्य अरु ग्राहक संबंध भी जाता रहैगा केवल जो परमात्मतत्त्व शुद्ध है अजर अमर है खाते पीते चलते सोते वृत्ति तहां ही रखनी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भावनाप्रतिपादनोपदेशो नाम सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७० ॥

एकसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७१.

हंससंन्यासयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जिस प्रकार आत्मपदको प्राप्त होता है सो सुन, जब पुरुष निरहंकार होता है तब आत्मपदको प्राप्त होता है जो सर्वात्मा है तिसको आवरण करनेहारी अविद्या है जैसे सूर्यमंडलके आगे बादल आय आच्छादि लेता है तैसे अविद्या आत्माविषे आवरण करती है तिस अविद्याकरि उन्मत्तकी नाईं मूर्ख चेष्टा करते हैं अरु जो अहंताते रहित ज्ञानवान् पुरुष है तिसको दुःख कोऊ नहीं स्पर्श करता संदेह भी निर्दुःख होता है. जैसे भींतके ऊपर मूर्तियां युद्धकी सेना लिखी होती हैं सो देखनेमात्र शोभा दृष्टि आती है परंतु वह शांतरूप हैं तैसे ज्ञानवान्की चेष्टाविषे भी क्षोभ दृष्टि आता है परंतु सदा अक्षोभ निर्वाणरूप है वासनासहित दृष्टि आता है अरु सदा निर्वासी है जैसे जलविषे लहरीचक्र क्षोभ दृष्टि आता है परंतु जलते इतर कछु नहीं तैसे ज्ञानवान्को ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता जिसके अंतर दृश्यभाव शांत हो गया है बाहिर क्षोभवान् दृष्टि आता है तौ भी मुक्तिरूप है जैसे धुएँके बादल आकाशविषे हस्ती घोडा पहाडरूप दृष्टि आते हैं परंतु है कछु नहीं तैसे जगत् दृष्टि आता है परंतु है कछु नहीं.

अहंकारकरि जगत् भासता है अहंकारते रहित निर्विकार शांतरूप होता जाता है ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है तिसको पायकरि ज्ञानवान् शोभता है ऐसा शरत्कालका आकाश नहीं शोभता अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा नहीं शोभता अरु पूर्णमासीका चंद्रमा भी ऐसा नहीं शोभता जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है. हे रामजी ! अहंता ही इस पुरुषको मल है जब अहंता नाश होवै तब स्वरूपकी प्राप्ति होवै अरु संसारके पदार्थकी जो भावना थी सो निवृत्त हो जाती है. काहेते कि भ्रमकरिकै उपजती थी. जो वस्तु भ्रमकरिकै उपजी होती है सो भ्रमके अभाव हुए तिसका भी अभाव हो जाता है जैसे आकाशविषे धुएँका बादल नाना प्रकारके आकार हो भासता है अरु है नहीं तैसे यह विश्व अनहोता भासता है विचार कियेते रहता नहीं. हे रामजी ! जबलग इसको संसारकी वासना है तबलग बंध है जब वासना निवृत्त हो जावै तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै अरु संपूर्ण कलना मिटि जावै इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे तुल्य हो जावै यद्यपि व्यवहार कर्त्ता है तौ भी शांतरूप है जैसे शब्दको रागद्वेष नहीं फुरता तैसे ज्ञानी निर्वाणपदको प्राप्त होता है जिस निर्वाणविषे सत् असत् शब्द कोऊ नहीं केवल ब्रह्मस्वरूप है ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता केवल आत्मत्वमात्र है अरु अद्वैत है. हे रामजी ! विश्व भी वहीरूप है चेतन आकाश है जैसी जैसी भावना होती है तैसा२ चेतन होकरि भासता है जब जगत्की भावना होती है तब नाना प्रकारके आकार दृष्टि आते हैं अरु जब ब्रह्मकी भावना होती है तब ब्रह्म भासता है जैसे विषविषे अमृतकी भावना होती है अरु विधिसंयुक्त खाते हैं तब विष भी अमृत हो जाता है अरु जो विधि विना खाइये तो मृतक होता है तैसे जब इस संसारको विधिसंयुक्त देखिये अर्थ यह जो विचारिकरि देखिये तो ब्रह्मस्वरूप भासता है अरु जो विचार विना देखिये तो जगत्रूप भासता है सो विचार तब होता है जब अहंकार निवृत्त होता है अरु अहंकार आकाशविषे उपजा है अरु आकाश शून्यताविषे उपजा है अरु शून्यता आत्माके प्रमादकरि उपजी है बहुरि अहंकारते जगत हुआ है अरु

अहंकार मिथ्या है. हे रामजी ! शरीर आदिक चित्तपर्यंत विचार देखिये तो दृष्टि कहूं नहीं आते इनविषे जो अहंप्रत्यय है सो भ्रममात्र है जब तू विचारि देखेगा तब मरीचिकाके जलवत् भासैगा. हे रामजी ! इस प्रपंचके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं जैसे स्वप्नके पर्वतका त्यागना यत्न कछु नहीं तैसे मिथ्या संसारके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं बहुरि इसका निर्णय क्या करिये जो है ही नहीं जैसे बंध्याके पुत्रकी वाणी विचारिये कि सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है सो मिथ्या कल्पना है बंध्याका पुत्र है नहीं तो तिसका विचार क्या करिये तैसे प्रपंच है नहीं इसका निर्णय क्या करिये ताते तुम ऐसे करो जैसे मैं कहता हौं तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै. हे रामजी ! ऐसी भावना करु कि न मैं हौं न जगत् है, जब अहंकार न रहा तब कलना कहां होवै इसका होना ही अनर्थ है जब ऐसे विचार उत्पन्न होता है तब भोगकी वासना क्षय हो जाती है अरु संतकी संगति होती है अन्यथा भोगकी वासना नष्ट नहीं होती. हे रामजी ! जबलग इसको अहंता उठती है, अर्थ यह कि दृश्य प्रकृतिसाथ मिलाप है तबलग द्वैतभ्रम नहीं मिटता जब अहंका उत्थान मिटि जावै तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता ही रहै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे हंससंन्यासयोगो नाम एकसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७२.

निर्वाणयुक्त्युपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब अहंताका उत्थान होता है तब स्वरूपका आवरण होता है अरु जब अहंता मिटि जावै तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है इस संसारका बीज अहंता ही है सो अहंकार ही मिथ्या है तिसका कार्य सत्य कैसे होवै जो प्रपंच मिथ्या हुआ तो पदार्थ कहांते सत् होवै. हे रामजी ! ऐसा जो ब्रह्म है तिसकी युक्ति क्या है जो संकल्पपुरुष भी असत्य है अरु तिसको संशय भी मिथ्या है

अरु जिसप्रति प्रश्न करता है सो भी मिथ्या है जैसे स्वप्नविषे द्वैतकलना होती है सो असत् है तैसे यह जगत् द्वैत भी असत्य है. हे रामजी ! यह सब जगत् इसके अंतर स्थित है अरु प्रमादकरि बाहिर भासता है यह अपना ही स्वप्न दृष्टि आता है जो अंतरकी बाह्य सृष्टि भासती है ताते यह जगत् सब चिद्रूप है इतर कछु नहीं सो चेतनसत्ता आकाशते भी अतिसूक्ष्म है अरु स्वच्छ है, हे रामजी ! यह जगत् चित्तकरि चेता है ताते कहूं हुआ नहीं न किसीका नाश होता है न उत्पत्ति होती है न किसीका कहूं जन्म है न मृत्यु है सर्व ब्रह्म ही है. हे रामजी ! जगत्‌के नाश हुए कछु नाश नहीं होता काहेते कि हुआ कछु नहीं जैसे स्वप्नके पहाड नष्ट हुए जैसे संकल्पपुर नष्ट हुए जो कछु उपजे नहीं तो क्या नष्ट हुए तैसे यह जगत् है कछु हुआ नहीं यह विचारकरि देखता है जो वस्तु अविचारते उपजी होवै सो विचारकरि कैसे रहै जैसे जो पदार्थ तमते उपजा होवै सो प्रकाश हुए कैसे रहै तैसे यह जगत् है अविचार-करि भासता है विचार करनेते नाश हो जाता है. हे रामजी ! यह जगत् संकल्प ही मात्र है जैसे संकल्पनगर होता है तैसे यह संसार है इसविषे कोऊ पदार्थ सत्य नहीं ताते रूप अरु इंद्रियां अरु मनके अभावकी चिंतवना करनी यह संसार ऐसा है जैसे समुद्रविषे चक्र नहीं है जल ही है तिस विषे प्रीति भावना करनी अज्ञान है. हे रामजी एक ऐसे हैं जो बाह्यते शांतरूप दृष्टि आते हैं अरु अंतर उनके क्षोभ होता है अरु एक ऐसे हैं जो अंतरते शीतल हैं बाह्य नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं जिनके दोनों मिटि जाते हैं सो मोक्षके भागी होते हैं तिनके अंतर बाहर एकता होती है जैसे समुद्रविषे घट भरि राखिये तिसके अंतर बाहर जल होता है. हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्माको ज्यों त्यों जाना है तिसको न भय होता है न शोक होता है न मोह होता है केवल स्वच्छ रूप शांत आत्माविषे स्थित है भय तब होता है जब दूसरा भासता है सो सर्व द्वैतका तिसके अभाव हो जाता है अरु शांतरूप होता है. हे रामजी ! सम्यक्‌दर्शीको जगत् दुःख नहीं देता अरु असम्यक्‌दर्शीको दुःख देता है जैसे जेवरी होती है जो जानता है तिसको जेवरी भासती है अरु

जो नहीं जानता तिसको सर्प भासता है अरु भयको प्राप्त होता है तैसे जिसको आत्माका साक्षात्कार है तिसको जगत्कल्पना कोऊ नहीं भासती चिदानंद ब्रह्म अधिष्ठानरूप भासता है अरु जिसको अधिष्ठानका अज्ञान है तिसको जगत् द्वैतरूप होकारि भासता है अरु रागद्वेषविषे जलता है. हे रामजी ! अपर जगत् कोऊ नहीं इसके अनुभवविषे जगत्कल्पना होती है अज्ञानकरिकै द्वैतरूप हो भासता है जब अपने स्वभाव सत्ताविषे जागता है तब सब अपना आप भासता है जैसे स्वप्नविषे अपना आप ही द्वैतरूप हो भासता है अरु राग द्वेष उपजता है जब जागता है तब सब आत्मरूप हो भासता है तैसे यह जगत् है न इस जगत्का कोऊ निमित्त कारण है न कोऊ उपादान कारण है जो पदार्थ कारण विना भासै सो असत् जानिये वास्तव उपजा नहीं भ्रमकारि सिद्ध हुआ है जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसे यह जगत् अकारण है भ्रमकरिकै भासता है. हे रामजी ! शास्त्रकी युक्तिसाथ विचार करिकै देख जो द्वैतभ्रम मिटि जावै रंचकमात्र भी कछु बना नहीं जैसे आकाशविषे नीलता कछु बनी नहीं अरु मरुस्थलकी नदी भासती है तैसे यह जगत् भी जान. आत्मा शुद्ध है अद्वैत है तिसविषे अहंकृतका फुरणा ही दुःख है अरु दुःखका कारण है अरु जो स्वरूपका प्रमाद न होवै तो अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं अरु जो स्वरूप भूला है तौ अहंकृतादिक दृश्य विषकी वल्ली बढ़ती जाती है अरु नानाप्रकारके आकारको धारती है अरु वासना दृढ होती है. जबलग वासना होती है तबलग बंध है जब वासना निवृत्त होवै तब ही कल्याण होता है. हे रामजी ! जिस दृश्यकी भावना करता है सो दृश्य भी कछु भिन्न नहीं जैसे समुद्रविषे तरंग चक्र होते हैं सो इतर कछु नहीं तैसे अहंकार आदिक जो दृश्य हैं सो हैं नहीं जो है नहीं तिसकी इच्छा करनी यही मूर्खता है अरु ज्ञानवान्की वासना क्षय हो जाती है जैसे महा अणु होता है तब आकाशको ग्रहण करता है जो आकाशवत् बहुत सूक्ष्म होता है तैसे ज्ञानवान्की वासना सूक्ष्म होती है वह वासना उसके बंधनका कारण नहीं होती काहेते जो संसारकी सत्यता हृदय-

विषे नहीं रहती अरु सत्यता इसकरि नहीं रहती जो आत्माका साक्षात्कार हुआ है अरु जब आत्माका प्रमाद है तब अहंता उदय होती है अरु दृश्य भासती है जैसे नेत्रके खोलनेकरि दृश्यका ग्रहण करता है जब नेत्र मूंदि लिये तब दृश्यरूपका अभाव हो जाता है तैसे जब अहंता उदय होती है तब दृश्य भी होती है जब अहंता नष्ट भयी तब संसारका अभाव हो जाता है. हे रामजी! अज्ञान किसका नाम है सो सुन, अहंताका उदय होना इसीका नाम अज्ञान है अहंताकरिकै बंध है अहंताते रहित मोक्ष है आगे जो इच्छा होवै सो करहु. हे रामजी! देह इंद्रियादिक मृगतृष्णाके जलवत् हैं इनविषे अहंता करनी मूर्खता है अरु ज्ञानवान् अहंताको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होता है संसारके इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक नहीं करता जैसे आकाशविषे बादल हुए तौ भी ज्योंका त्यों है तैसे ज्ञानी ज्योंका त्यों है इनविषे अहंकार नहीं ताते सुखरूप है. हे रामजी! रूप दृश्य अरु इंद्रियां अरु मन उसके जाते रहते हैं जैसे वंध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती तैसे ज्ञानीके रूप अवलोकन नमस्कार नष्ट हो गये हैं काहेते जो सर्व ब्रह्म तिसको भासता है द्वैतभावना नष्ट हो गयी है अरु संसारका बीज अहंता ज्ञानीविषे दृढ है. हे रामजी! अहंताकरिकै इसकी बुद्धि बुरी हो गयी है अर्थ यह कि स्थूल हो गयी है ताते दुःख पाता है इस दुःखके नाशका उपाय कहता हौं तू सुन कि संतजनके वचनोंविषे भावना करनी अरु विचार करिकै हृदय विषे धारणी इसकरि अहंतारूपी दुःख नष्ट हो जाता है अरु संतके वचनोंका निषेध करना इसको मुक्तिफलके नाश करनेहारा है अरु अहंतारूपी वैतालके उपजानेहारा है ताते संतकी शरणको प्राप्त होहु अहंताको दूर करहु इसविषे खेद कछु नहीं यह अपने आधीन है अपना अभाव चिंतवना इसविषे क्या खेद है? हे रामजी! संतकी संगतिद्वारा इसको बहुत सुगम होता है जो ज्ञानवान् होवैं उनकी पृथक् पृथक् सेवा करनी अरु बुद्धिको बढावनी तिनके वाक्य श्रवण करिकै वचनोंको इकट्ठा करना अरु विचार करिकै बुद्धिको तीक्ष्ण करनी बुद्धि जब तीक्ष्ण होवैगी तब अहंतारूपी

विषकी वल्लीका नाश करैगी यह विचार करिये कि मैं कौन हौं यह जगत् क्या है जब ऐसा विचार करैगा संत अरु शास्त्रोंके वचनोंकरि निर्णय कियेते सत् है सो सत् होता है अरु असत् है सो असत् हो जाता है सत् जानकरि आत्माकी भावना करनी अरु असत् जगत् मृगतृष्णाके जलवत् जानिकरि भावना त्यागनी जिनको सुख जानकरि पानेकी भावना करता था सो दुःखदायी भासते हैं जैसे मरुस्थलविषे जल जान-करि मृग दौडता है तो दुःख पाता है अधिष्ठानके अज्ञानकरिकै तैसे अधिष्ठान सबका आत्मतत्त्व है सो शुद्धरूप परम शांत परमानंदस्वरूप है जिसको पायकरि बहुरि दुःखी न होवै. हे रामजी ! इसको बंधनका कारण भोगकी वासना है सो भोगकरि शांति नहीं होती जब सन्तकी संगति होती है तब इसका कल्याण होता है अनात्माविषे अहंभाव छूटि जाता है अपर प्रकार शांति नहीं होती. हे रामजी ! बालककी नाईं हमारे वचन नहीं हमारा कहना यथार्थ है काहेते जो स्वरूपका भान हमको स्पष्ट है जब इसकी अहंता मिटि जावै तब सुखी होवै ताते अहं-ताका नाश करहु अहंता नाश हुई तब जानिये जो चैत्यकी भावना मिटि जाती है. हे रामजी ! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है तब अहंतारूपी अंधकार नष्ट हो जाता है अरु ज्ञान तब होता है जब संतका विचार प्राप्त होवै विषयते वैराग्य होवै अरु स्वरूपका अभ्यास करै इसीकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे निर्वाणयुक्त्युपदेशवर्णनं नाम द्विसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७२ ॥

त्रिसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७३.

शांतिस्थितियोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिन पुरुषोंने अपना अज्ञान नाश नहीं किया ज्ञानकरिकै तिनने कछु करने योग्य नहीं किया अज्ञान-करिकै इसको अहंभावना होती है तब आगे जगत् भासता है अरु

लोक परलोककी भावना करता है इसी वासनाकरि जन्म मरणको पाता है हे रामजी ! जबलग संसारका शब्द अर्थ इसके हृदयमें दृढ है तबलग शब्द अर्थके अभावकी चिंतवना करै, जहां इसको जगत् भासता है तहां ब्रह्मकी भावना करे, जब ब्रह्म भावना करैगा तब संसारके शब्द अर्थते रहित होवैगा अरु आत्मपद भासैगा. हे रामजी ! इस संसारविषे दो पदार्थ हैं एक यह लोक दूसरा परलोक, अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं परलोकका नहीं करते ताते दुःख पाते हैं अरु तृष्णा मिटती नहीं अरु जो विचारवान् पुरुष हैं सो परलोकका उद्यम करते हैं सो यहां भी शोभा पाते हैं अरु परलोकविषे भी सुख पाते हैं अरु दोनों लोकके कष्ट तिनके मिटि जाते हैं अरु जो इसी लोकका उद्यम करते हैं तिनको दोनों ही दुःखदायक होते हैं, यहां तृष्णा नहीं मिटती अरु आगे जायकरि नरक भोगते हैं अरु जिन पुरुषोंने आत्म परलोकका यत्न किया है तिनको वही सिद्ध होता है अरु सुखी होते हैं अरु जिनने नहीं यत्न किया सो दुःखी होते हैं ताते अहंकारसों रहित होना यही आत्मपदकी प्राप्ति है जबलग इसको परिच्छिन्न अहंकार उपजता है तबलग दुःखी होता है अरु नाम इसका जीव है जो कछु फुरता है तिसकरि विश्वकी उत्पत्ति होती है जैसे नेत्रके खोलनेकरि रूप भासता है अरु नेत्रके मूदनेकरि रूपका अभाव हो जाता है तैसे जब अहंता फुरती है तब दृश्य भासती है अरु जब अहंताका अभाव होवै तब दृश्यका अभाव हो जाता है सो अहंता अज्ञानकरि सिद्ध होती है ज्ञानके उपजेते निवृत्त हो जाती है. हे रामजी ! जब यह पुरुष अपना प्रयत्न करै अरु साथ ही सत्संग करै इसकरि संसारसमुद्र उतर जावेगा इतर नहीं तरता. हे रामजी ! युक्तिकारिकै जैसे विष भी अमृत हो जाता है तैसे पुरुषार्थकरि सिद्धता प्राप्त होती है. हे रामजी ! इस जीवको दो व्याधि रोग हैं इस लोकका और परलोकका तिसकरि जीव दुःख पाते हैं, जिन पुरुषोंने संतसाथ मिलाप करि इसका औषध किया है सो मुक्तरूप हैं अरु जिनने औषध नहीं किया सो पुरुष पंडित हैं तो भी दुःख पाते हैं सो औषध

क्या है शम दम करना अरु संतसग करना इन साधनकरि यत्नकरि जिनने आत्मपद पाया है सो कल्याणमूर्त्ति हैं. हे रामजी ! चिकित्साका औषध भी यही है, जिनने किया तिननें किया अरु जिनने न किया भोगविषे लंपट रहे वह मूर्ख तहाँ पड़ैंगे जहाँ फेर किसी औषधको न पावैंगे ताते हे रामजी ! इन भोगोंका त्याग करहु अरु आत्मविचारविषे सावधान होहु यही औषध है. हे रामजी ! जिस पुरुषने मन नहीं जीता सो मूढ है भोगरूपी चीकडविषे मग्न है वह आपदाका पात्र है जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं तैसे आपदा तिसको प्राप्त होती हैं अरु जिसकी तृष्णा भोगते निवृत्त भयी है अरु वैराग्य उपजा है सो मुक्ति योगको प्राप्त होता है जैसे जीनेकी आदि बालक अवस्था है तैसे निर्वाण पदकी आदि वैराग्य है. हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है भ्रमकरि भासता है जैसे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है अरु संकल्पनगर भ्रममात्र होता है अरु मृगतृष्णाका जल भ्रमकरि भासता है तैसे यह जगत् भ्रमकरि भासता है संसारका बीज अहंता है जब अहंता उदय हुई तब रूप अवलोक भासते हैं ताते यही चितवना कर कि मैं नहीं. जब यही भावना करैगा तब शेष जो रहैगा सो तेरा शांतरूप है जिसविषे आकाश भी शून्य है केवल आत्मत्वमात्र है अहंके उत्थानते रहित है अरु जड अजड है अरु जडताका अभाव है ताते अजड है केवल ज्ञानमात्र है अरु विश्व तिसविषे ऐसे है जैसे जलविषे तरंग होते हैं अरु जैसे पवनविषे स्पंद होता है अरु आकाशविषे जैसे शून्यता है तैसे आत्माविषे जगत् है सो आत्माते इतर कछु नहीं, जो कछु आत्माते इतर होता तौ प्रलयविषे नाश हो जाता सो प्रलयकालविषे भी रहता है जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास सदा रहता है तैसे आत्माविषे विश्वका चमत्कार रहता है जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव होती है तैसे यह जाग्रत्सृष्टि भी अनुभवरूप है सो आत्मा अंतर बाहरते रहित है अरु शुद्ध है अद्वैत है अजर है अमर है चैत्यते रहित चेतन है अरु सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान वही है फुरणेकरिकै दूसरा भासता है अरु फुरणा

अफुरणा वही है जैसे चलना ठहरना दोनों पवनके रूप हैं, जब चलता है तब भासता है जब ठहरता है तब नहीं भासता तैसे जब चित्तशक्ति फुरती है तब विश्वरूप होकरि भासती है जब अफुर होती है तब केवलमात्र पद रहता है सो निराभास है, अविनाशी अरु निर्विकल्प है अरु सबका अपना आप है अरु सत असत जड चेतन आदिक शब्द अर्थ सब इसी अधिष्ठान सत्ताविषे फुरते हैं इतर कछु नहीं ताते इसी अपने स्वरूपविषे स्थित होहु जो परमार्थसत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभावविषे स्थित है; अहं त्वंते रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है तिसी विषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे शांतिस्थितियोगोपदेशो नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः॥ १७३॥

चतुःसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७४.
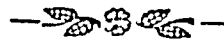
परमार्थयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिनको दुःख सुख चलावते हैं इंद्रियके इष्टविषे सुखी होते हैं अरु अनिष्टविषे दुःखी होते हैं राग द्वेषके आधीन वर्तते हैं तिनको ऐसे जान कि नष्ट हुए हैं, जिनका पुरुषप्रयत्न नष्ट हुआ है सो वारंवार जन्मको पावैंगे अरु जिनको सुख दुःख नहीं चलावते तिनको अविनाशी जान, वह जन्ममरणके फांसते मुक्त हुए हैं तिनको शास्त्रका उपदेश नहीं है. हे रामजी! राग द्वेष तब फुरता है जब मनविषे इच्छा होती है अरु इच्छा तब होती है जब संसारकी सत्यता दृढ होती है जिसको असत्य जानता है तिसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती अरु इच्छा भी नहीं होती अरु जिसको सत्य जानता है तिसविषे बुद्धि दौडती है. हे रामजी! अज्ञानीको संसार सत्य भासता है तिसकरि दुःख पाता है जब शांतपदको यत्न करै तब दुःखते मुक्त होवै, शांतपद कैसा है जिसविषे अहं त्वं अरु जगत् ब्रह्म यह शब्द कोऊ नहीं केवल चिन्मात्र आकाशरूप है तिसविषे अहं त्वं

जगत् ब्रह्म शब्द कैसे होवै यह शब्द सब विचारके निमित्त कहे हैं वास्तवते शब्द कोऊ नहीं अद्वैत चैत्यते रहित चिन्मात्र है जब सर्व शब्दका बोध किया तब शेष शांतपद रहता है अभावते नहीं इसीते आत्मत्वमात्र कहा है अरु जगत् फुरणेकरि उसीविषे भासता है तिस जगत्विषे जहाँ ज्ञप्ति जाती है तिसका ज्ञान इसको होता है. हे रामजी। एक अधिष्ठान ज्ञान है अरु एक ज्ञप्तिज्ञान है अधिष्ठानज्ञान सर्वज्ञ है सो ईश्वरको है अरु ज्ञप्तिज्ञान जीवको है एक लिंगशरीरका जिसको अभिमान है सो जीव है अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी ईश्वर है, जहां इस जीवकी ज्ञप्ति पहुँचती है तिसको जानता है जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोये होवैं एकको स्वप्न आया तिसविषे मेघ गर्जते हैं अरु दूसरा सोया है तिसको मेघका शब्द नहीं सुन पडता काहेते जो ज्ञप्ति इसके विषे नहीं आते परंतु मेघ तो उसके स्वप्नमें है जैसे सिद्ध विचरते हैं अरु इसको दृष्टि नहीं आते काहेते जो इसकी प्राप्ति नहीं जाती अरु सब सृष्टि बसती है तिसका ज्ञान ईश्वरको है सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है कछु बनी नहीं भ्रमकरिकै भासती है जैसे बादलविषे हस्ती घोड़ा मनुष्य आदिक विकार भासते हैं सो भ्रांतिमात्र हैं तैसे आत्माके अज्ञानकरि यह सृष्टि नाना प्रकारकी भासती है. हे रामजी। यह आश्चर्य है जो आत्माविषे अहंका उत्थान होता है कि मैं हौं ऐसे जानता है अरु वर्णाश्रम अपनेको मानता है अरु विचारकरि देखिये तौ अहं कछु वस्तु नहीं सिद्ध होती अरु अहं अहं फुरती है यह आश्चर्य है जो भूत कहांते उठा है शुद्ध आत्मब्रह्मविषे यह कैसे हुआ है अनहोते अहंकारने तुमको मोहित किया है इसके त्यागनेविषे तौ यत्न कछु नहीं इसका त्याग करहु. हे रामजी। यह संकल्प मिथ्या उठा है जब अहंकारका उत्थान होता है तब जगत् होता है जब अहंता मिटि जावै तब जगत्का भी अभाव हो जाता है काहेते कि बना कछु नहीं भ्रममात्र है, जैसे संकल्पनगर भ्रममात्र है अरु स्वप्नसृष्टि भ्रममात्र है तैसे यह विश्व भी भ्रममात्र है कछु बना नहीं अरु आत्मत्वरूप है इतर कछु नहीं जैसे पवनके दो रूप हैं चलता है तौ भी पवन है ठहरता है तौ भी पवन है तैसे विश्व भी

आत्मस्वरूप है जैसे पवन चलता है तब भासता है अरु ठहरि जाता है तब नहीं भासता तैसे चित्त चैत्यशक्तिका चमत्कार है जब फुरता है तब विश्व भासता है तौ भी चिद्धन है जब ठहरि जाता है तब विश्व नहीं भासता परंतु आत्मा सदा एकरस है जैसे जलविषे तरंग होते हैं जैसे सुवर्ण-विषे भूषण होते हैं सो इतर कछु हुआ नहीं तैसे आत्माविषे विश्व इतर कछु हुआ नहीं आत्मस्वरूप है ज्ञप्ति भी ब्रह्म है अरु ज्ञप्तिविषे फुरा विश्व भी ब्रह्म है विधिनिषेध अरु हर्ष शोक किसका करिये सर्व वही है. हे रामजी! संकल्पको स्थित करिकै देख जो सब तेरा ही स्वरूप है जैसे पुरुष शयन करता है उसको स्वप्नसृष्टि भासती है जब जागता है तब देखता है सब मेरा ही स्वरूप है तैसे जाग्रत् विश्व भी तेरा स्वरूप है जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं सो जलरूप हैं तैसे विश्व आत्मस्वरूप है जैसे चितेरा काष्ठविषे कल्पता है कि एती पुतलियां निकसैंगी अरु जैसे मृत्तिकाविषे कुंभार घटादिक कल्पता है कि एते पात्र बनैंगे काष्ठ मृत्तिकाविषे तौ कछु नहीं ज्योंका त्यों काष्ठ है अरु ज्योंकी त्यों मृत्तिका है परंतु उनके मनविषे आकारकी कल्पना है तैसे आत्माविषे संसाररूपी पुतलियां मन कल्पता है जब मनका संकल्प निवृत्त हो जावै तब ज्योंका त्यों आत्मपद भासै जैसे तरंग जलरूप हैं जिसको जलका ज्ञान है सो तरंग भी जलरूप जानता है अरु जिसको जलका ज्ञान नहीं सो भिन्न भिन्न तरंगके आकार देखता है तैसे जब निःसंकल्प होकरि स्वरूपको देखै तब फुरणे-विषे भी आत्मसत्ता भासैगी अहं त्वं आदिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूप ही है तौ भ्रम कैसे होवै अरु किसको होवै सब विश्व आत्मस्वरूप है सो आत्मा निरालंब है आलंबरूप जो चैत्य है अहंकार तिसते रहित है केवल आकाशरूप है जब तू तिसविषे स्थित होवैगा तब नाना प्रकारकी भावना मिटि जावैगी नाना प्रकारकी भावना जगत्विषे फुरती है अरु जगत्का बीज अहंता है जब अहंता नाश होवै तब जगत्का भी अभाव हो जावैगा. हे रामजी! अहंताका फुरणा ही बंधन है अरु निरहंकार होना मोक्ष है एक चित्तबोध है अरु एक ब्रह्मबोध है चित्त-बोध जगत् है अरु ब्रह्मबोध मोक्ष है चित्तबोध अहंताका नाम है

जबलग चित्तबोध फुरता है तबलग संसार है अरु जब चित्तका अभाव होवै तब मुक्त होवै इस चित्तके अभावका नाम ब्रह्मबोध है. हे रामजी ! जैसे पवन फुरता है तैसे ब्रह्मविषे चित्तबोध है अरु जैसे पवन ठहरि जाता है तैसे चित्तका ठहरना ब्रह्मबोध है जैसे फुर अफुर दोनों पवन ही हैं तैसे चित्तबोध है ब्रह्मबोध ब्रह्म ही है इतर कछु नहीं हमको तौ ब्रह्म ही भासता है चेतन मात्र शांतरूप है अरु अपने स्वभावविषे स्थित है. जिसको अधिष्ठानका ज्ञान होता है तिसको निवृत्त भी वही रूप भासता है अरु जिसको अधिष्ठानका ज्ञान नहीं तिसको भिन्न भिन्न जगत् भासता है जैसे एक बीजविषे पत्र टास फूल फल भासते हैं अरु जिसको बीजका ज्ञान नहीं तिसको भिन्न भिन्न भासते हैं. हे रामजी ! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है ताते सब विश्व आत्मस्वरूप भासता है अरु अज्ञानीको नाना प्रकारका विश्व भासता है जन्म अरु मृत्यु भासते हैं. हे रामजी ! सब शब्द आत्मतत्त्वविषे फुरते हैं सर्वका अधिष्ठान आत्मा है निराकार निर्विकार है अरु शुद्ध है सबका अपना आप है ताते सब विश्व आकाशरूप है इतर कछु हुआ नहीं जैसे तरंग जलरूप हैं तैसे विश्व आत्मस्वरूप है अरु चित्त जो फुरता है तिसके अनुभव करणेहारी चेतनसत्ता है सो ब्रह्म है अरु तेरा स्वरूप भी वही है ताते अहं त्वम् आदिक जगत् सब ब्रह्मरूप है संशयको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु अरु पाछे तुमको कहा है द्वैत अद्वैत सब उपदेशमात्र है एक चित्तकी वृत्तिको स्थित करिकै देख सब ब्रह्म है इतर कछु नहीं निषेध किसका करिये ? हे रामजी ! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं एक मोक्षरूप है एक बंधरूप है जो वृत्ति स्वरूपकी ओर फुरती है सो मोक्षरूप है जो दृश्यकी ओर फुरती है सो बंधरूप है जो तुमको शुद्ध भासती है सोई करहु अरु जो द्रष्टा है सो दृश्य नहीं होता अरु जो दृश्य है सो द्रष्टा नहीं होता आत्मा तौ अद्वैत है ताते द्रष्टाविषे दृश्य पदार्थ कोऊ नहीं तुम क्यों दृश्यकी ओर फुरते हौ अनहोती दृश्यको क्यों ग्रहण करते हौ अरु द्रष्टा भी तेरा नाम दृश्यकरि होता है जब दृश्यका अभाव जाना तब

अवाच्य पद है तिसको वाणीकरि कछु कहा नहीं जाता. हे रामजी ! जैसे अंगी अरु अंगवालेविषे भेद कछु नहीं जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं बरफ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं कोऊ जगत् कहै अथवा ब्रह्म कहै तैसे एक ही पर्याय है जगत ही ब्रह्म है ब्रह्म ही जगत् है ताते आत्मपदविषे स्थित होहु भ्रमकरिकै आपको कछु अपर मानते हैं तिसको त्यागिकरि ब्रह्महीकी भावना करहु अरु आपको मनुष्य कदाचित् नहीं जानना जो आपको मनुष्य जानैगा तौ यह निश्चय अधोगतिको प्राप्त करनेहारा है ताते अधोगतिको मत प्राप्त होहु अपने स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुःसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७४ ॥

पंचसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७५.

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! देशते देशांतरको वृत्ति जब जाती है तिसके मध्य जो संवित्‌तत्त्व है तिसको जो अनुभव करता है सो तेरा स्वरूप है तिसविषे स्थित होहु अरु जैसी चेष्टा आवै तैसी करहु देख सुन स्पर्श कर गंध ले बोल चाल हँसहु सब क्रिया करहु परंतु इनके जाननेवाली जो अनुभवसत्ता है तिसविषे स्थित होहु यह जाग्रतविषे सुषुप्ति है चेष्टा शुभ करहु अरु अंतरते पत्थरकी शिलावत् फुरणेते रहित होहु. हे रामजी ! तेरा स्वरूप निराभास है भास जो दृश्य है तिसते रहित है अरु निर्मल शांतरूप है तिसविषे स्थित होहु जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है तैसे होहु, यह दृश्य अज्ञानकरिकै भासती है तमरूप है अरु आत्मा सदा प्रकाशरूप है तिस प्रकाशविषे अज्ञानीको तम भासती है जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है अरु उलूकको नहीं भासता है अज्ञानकरिकै तम ही भासता है तैसे अज्ञानीको अविद्यारूप जगत् भासता है सो अविचारते सिद्ध है अविद्याक-

रिकै इसकी विपर्ययदृष्टि हुई है इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है जो 'जायते अस्ति वर्द्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति' इन षट् विकारोंते रहित है ताते निर्विकार है तिसको विकारी जानता है आत्मा निर्विकार निराकार है तिसको साकार जानता है आत्मा आनंदरूप है तिसको दुःखी जानता है आत्मा शांतरूप है तिसको अशांत जानता है आत्मा महत् है तिसको लघु जानता है आत्मा पुरातन है तिसको उपजा मानता है आत्मा सर्वव्यापक है तिसको परिच्छिन्न मानता है आत्मा नित्य है तिसको अनित्य देखता है आत्मा चैत्यते रहित शुद्ध चिन्मात्र है यह चैत्यसंयुक्त देखता है आत्मा चेतन है यह जड देखता है आत्मा अहंते रहित सदा अपने स्वभावविषे स्थित है यह अनात्म अहंकारविषे अहंप्रतीति करता है आत्माविषे अनात्मभावना करता है अरु अनात्मविषे आत्मभावना करता है आत्मा निरवयव है तिसको अवयवी देखता है आत्मा अक्रिय है तिसको सक्रिय देखता है आत्मा निरंश है तिसको अंशांशीभावकरि देखता है आत्मा क्रियामय है तिसको रोगी देखता है आत्मा निष्कलंक है तिसको कलंकसहित देखता है आत्मा सदा प्रत्यक्ष है तिसको परोक्ष जानता है अरु जो परोक्ष है तिसको प्रत्यक्ष जानता है. हे रामजी ! इत्यादिक जो विकार है सो आत्माविषे अज्ञानकरिकै देखता है आत्मा शुद्ध है अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है अरु स्थूलते स्थूल है अरु बडेते बडा है लघुते लघु भी है सर्वशब्द अरु अर्थका अधिष्ठान है. हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है तिसविषे जगत्रूपी रत्न हैं पर्वत अरु वनसहित भी जगत् दृष्टि आता है परंतु आत्माके निकट रुईके लोम जैसा लघु है आत्मरूपी वन है तिसविषे संसाररूपी मंजरी उपजी है सो कैसी मंजरी है पांचौ तत्त्व पृथ्वी अप तेज वायु आकाश इसके पत्र हैं तिनकरिकै शोभती है सो अहंताके उदय हुए उदय होती है अरु अहंताके नाश हुए नाश होती है अरु आत्मरूपी समुद्र है तिसविषे जगत्रूपी तरंग हैं सो उठते भी हैं अरु लीन भी हो जाते हैं अरु आत्माकाशविषे संसार भ्रममात्र है आकाश वृक्षकी नाईं है आत्माके प्रमादकरि भासता है. हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमा है तिसकी

किरणें जगत् है अरु नेति शक्ति नृत्य करनेहारी है सो तीनों अविचार-सिद्ध हैं विचार कियेते शांत हो जाते हैं जैसे दीपक हाथविषे लेकरि अंधकार देखिये तौ दृष्टि नहीं आता तैसे विचारकरि देखिये तौ जगतका अभाव हो जाता है केवल शुद्ध आत्मा ही प्रत्यक्ष भासता है. हे रामजी ! जगत् कछु बना नहीं जैसे किसीने बरफ कही किसीने शीतलता कही तिसविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं अरु भेद जो भासता है सो भ्रममात्र है जैसे तंतु अरु पटविषे भेदकछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं. हे रामजी ! आत्मरूपी रंगविषे जगतरूपी चित्र पुतलियां हैं अरु आत्मारूपी समुद्रविषे जगत्रूपी तरंग हैं सो जलरूप हैं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, आत्मरूप ही है आत्माते इतर कछु बना नहीं जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं अरु जिसकरि सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ है तिसको प्रौढ जानना यही मूर्खता है. हे रामजी ! यह विश्व तेरा ही स्वरूप है तू जागिकरि देख तू ही खडा है अरु स्वच्छ आकाश सूक्ष्म प्रत्यक् ज्योति अपने आपविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम पंचसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७५ ॥

षट्सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७६.

इच्छानिषेधयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह तीनों संसार हैं सो ज्ञानवान्को भ्रममात्र भासते हैं वास्तव कछु नहीं मिथ्या हैं जैसे जलविषे लहरी तरंग उठते हैं सो जलरूप हैं तैसे आत्माविषे रूप अवलोकन मनस्कार फुरते हैं सो सब आत्मरूप हैं इतर कछु नहीं. हे रामजी ! यह शुद्ध परमात्माका चमत्कार है अरु आत्मा दृश्यते रहित है शुद्ध है चिन्मात्र है निर्मल है अद्वैत है तिसविषे जगत् कछु बना नहीं हमको तौ सदा वही भासता है जगत् कछु नहीं भासता जैसे

कोऊ आकाशविषे नगर कल्पता अरु सब रचना तिसविषे देखता है सो उसके हृदयविषे दृढ हो जाती है अरु जो संकल्पकी सृष्टिको मिथ्या जानता है तिसको शून्याकाश ही भासता है तैसे यह विश्व मूर्खके हृदयविषे दृढ भया है अरु ज्ञानवान्को आत्मस्वरूप ही भासता है जैसे मट्टीके खिलौनोंकी सेना होती है हस्ती घोडा आदिक दृष्टि आते हैं तिसविषे वह रागद्वेष नहीं करता जिसको माटीका ज्ञान है अरु बालक माटीके ज्ञानते रहित हैं तिसविषे रागद्वेष करते हैं तैसे ज्ञानवान् इस जगत्विषे रागद्वेष नहीं करते अरु अज्ञानी रागद्वेष करते हैं जैसे खिलौनेविषे सारभूत मृत्तिका होती है तैसे इस जगत्विषे सारभूत चेतन आत्मा है जो कछु पदार्थ भासते हैं सो आत्माका निवृत्त है मिथ्या ही भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र होवै तिसविषे सुखके निमित्त इच्छा करनी यही मूर्खता है. हे रामजी ! हमको तौ इच्छा कछु नहीं काहेते जो हमको जगत् मृगतृष्णाके जलवत् भासता है ताते इच्छा किसकी करैं जिसविषे सत्यप्रतीति होती है तिसविषे इच्छा भी होती है जो सत्य ही न भासै तौ इच्छा कैसे करि होवै. हे रामजी ! इच्छा बंधन है अरु इच्छाते रहित होना इसीका नाम मुक्ति है ताते ज्ञानवान्को इच्छा कछु नहीं रहती अनिच्छित ही चेष्टा होती है जैसे सूखा बांस होता है तिसके अंतर बाहर शून्य होता है संवेदन उसको कछु नहीं फुरती तैसे ज्ञानवान्के अंतःकरणविषे अरु बाह्यकारणविषे भी शांति होती है अंतःकरणविषे संकल्प कोऊ नहीं उठता अरु बाह्यविषे भी उपाधि कोऊ नहीं निःसंकल्प निरुपाधि चेष्टा उसकी होती है. हे रामजी ! जिस पुरुषके अंतरते संसारका रस सूखि गया है सो संसारसमुद्रते पार हुआ है ऐसे जान अरु जिसका रस नहीं सूखि गया तिसको इष्ट अनिष्टकरिकै रागद्वेष फुरते हैं तब संसारबंधनविषे जान. हे रामजी ! मैं तुझको ऐसी समाधि कहता हौं जो सुखेन ही प्राप्त होवै अरु जिसकरि मुक्ति होवै सो श्रवण करु सर्व इच्छाते रहित होना यही परम समाधि है जिस पुरुषको इच्छा फुरती है तिसको उपदेश भी नहीं लगता जैसे आरसीके ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसे हृदयपर उपदेश नहीं ठहरता

अरु इसको इच्छा ही दीन करती है अरु इच्छाते रहित हुआ तब शांतरूप होता है बहुरि इसको शांतिके निमित्त कर्त्तव्य कछु नहीं रहता. हे रामजी! हम तौ निरिच्छित हैं हमको अंतर बाहर शांति है हमको कर्तव्य करने योग्य कछु नहीं जो कछु प्रारब्ध तिसकरि चेष्टा होती है रागद्वेषते रहित बोलते हैं परंतु बाँसुरीकी नाईं जैसे बाँसुरी बोलती है अहंकारते रहित तैसे ज्ञानवान् अहंकारते रहित हैं अरु स्वादको ग्रहण करते हैं परंतु कडछीकी नाईं जैसे कडछीको सर्व व्यंजनविषे पाता है अरु तिसी द्वारा सब निकास पाते हैं परंतु उसको राग द्वेष कछु नहीं फुरता जो यह होवै यह न होवै तैसे ज्ञानवान् अनिच्छित ही स्वादको लेता है अरु गंध भी पवनकी नाईं लेता है जैसे पवन भली बुरी गंधको लेता है परंतु रागद्वेषते रहित है तैसे ज्ञानवान् रागद्वेषकी संवेदनते रहित गंधको लेता है इसी प्रकार सर्व इंद्रियोंकी चेष्टा करता है परंतु इच्छाते रहित होता है इसीते परम सुखरूप है अरु जिसकी चेष्टा इच्छा सहित है सो परम दुःखी है. हे रामजी! जिस पुरुषको भोग रस नहीं देते सो सुखी है अरु जिसको रस देते हैं रागकरि तृष्णा बढती जाती है तिसको ऐसे जान जैसे किसीके मस्तक ऊपर अग्नि लगी तिसके ऊपर बुझानेके निमित्त तृण डारे तब वह बुझती नहीं बढती जाती है तैसे विषयकी इच्छा भोगनेकरि तृप्त नहीं होनेकी सो इच्छा ही बंधन है इच्छाकी निवृत्तिका नाम मोक्ष है. हे रामजी! संसाररूपी विषका वृक्ष है तिसका बीज इच्छा है जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है तिसका संसार बढता जाता है तिसकरि वारंवार जन्म अरु मृतक होता है. हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्माके लोकविषे भी नहीं जैसा सुख इच्छाकी निवृत्तिविषे है ऐसा दुःख नरकविषे भी नहीं जैसा दुःख इच्छाके उपजानेविषे है इच्छाके नाशका नाम मोक्ष है अरु इच्छाके उपजनेका नाम बंधन है जिस पुरुषको इच्छा उत्पन्न होती है सो दुःखको पाता है संसाररूपी गर्त्त (खात) विषे पड़ता है अरु इच्छारूपी विषकी वल्ली है तिसको समतारूपी अग्निकरि जलावहु सम्यक्दर्शनकरि जलाए विना बड़े दुःखको प्राप्त करैगी अरु बढ़ि जावैगी. हे रामजी! जिस पुरुषने इच्छा दूर करनेका

उपाय नहीं किया तिसने अंधे कूपविषे प्रवेश किया है शास्त्रका श्रवण भी इसी निमित्त है जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै अरु तप दान यज्ञ भी इसी निमित्त है जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै जो एक ही वार निवृत्त करि न सकिये तौ क्षण क्षण निवृत्त करियें. हे रामजी ! यह विषकी वल्ली बढी हुई दुःख देती है जो पुरुष शास्त्रोंको पढ़ता भी है अरु इच्छाको बढावता भी है सो दीपक हाथ लेकरि कूपविषे गिरता है अरु इच्छारूपी कंटिआरीका बूटा है जिसमें सर्वदा कंटक लगे रहते हैं तिसविषे सुख कदाचित् नहीं जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयन करै अरु सुखी हुआ चाहै तौ नहीं होता तैसे असारकरि कोऊ सुख पाया चाहै तौ कदाचित् नहीं होवैगा जिसकरि इच्छा निवृत्त होवै सोई उपाय किया चाहिये इच्छाके निर्वृत्त होनेविषे सुख है अरु इच्छाके उत्पन्न होनेविषे बड़ा दुःख है. हे रामजी ! जो अनिच्छित पदविषे स्थित हुआ है तिसको जब एक क्षण भी इच्छा उपजती है तब रुदन करता है जैसे चोरते लूटा रुदन करता है तैसे वह रुदन अरु पश्चात्ताप करता है अरु तिसके नाश करनेका उपाय करता है. हे रामजी ! इच्छारूपी क्षेत्र है अरु रागद्वेषरूपी तिसविषे विषकी वल्ली है जो पुरुष तिसके दूर करनेका उपाय नहीं करता सो मनुष्यविषे पशु है यह इच्छारूपी विषका वृक्ष बढा हुआ नाशका कारण है तातें तुम इसका नाश करहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम षट्सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७६ ॥

सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७७.

जगदुपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इच्छारूपी विषयके नाश करनेका उपाय तुमको आगे भी कहा है अब बहुरि स्पष्ट करि कहता हौं तू श्रवण करु इच्छाके त्याग करने योग्य संसार है सो मिथ्या है आत्मसत्ता भिन्न करिये तौ मिथ्या है जो मिथ्या हुआ तौ तिसविषे इच्छा करनी क्या है अरु

जो आत्माकी ओर देखिये तौ सर्व आत्मा ही है जब सर्व आत्मा ही हुआ तौ इच्छा करनी क्या है इच्छा दूसरेविषे होती है सो दूसरा कछु है नहीं इच्छा किसकी करिये. हे रामजी ! द्रष्टा दृश्य भी मिथ्या है द्रष्टा कहिये इंद्रियां दृश्य कहिये विषय सो ग्राहक इंद्रियां हैं अरु ग्राह्य विषय हैं अविचारसिद्ध हैं भ्रमकरिकै भासते हैं आत्माविषे कोऊ नहीं जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिकै रूप भासते हैं यह ग्राह्य ग्राहक भ्रमकरिकै भासते हैं अरु सुखदुःख भी इन्हींकरि होता है आत्माविषे कोऊ नहीं भ्रमकरि भासता है. हे रामजी द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनों ब्रह्मविषे कल्पित हैं वास्तवतें ब्रह्म है चिरकाल हम खोजि रहे हैं परंतु द्वैत हमको कछु दृष्टि नहीं आता एक ब्रह्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों भासती है अरु निराभास है फुरणेते रहित ज्ञानरूप है आकाशते भी सूक्ष्म है अरु सर्व जगत् भी हुई है सो मैं हौं. हे रामजी ! जैसे जलविषे तरंग होते हैं अरु आकाशविषे शून्यता है अरु जैसे पवनविषे चलना है अग्निविषे उष्णता है सो सब ही अनन्यरूप हैं तैसे आत्माविषे जगत् अनन्यरूप है आत्मा ही विश्व आकार होकरि भासता है अपर कछु हुआ नहीं. हे रामजी ! जो हुआ है तौ इच्छा किसकी करता है यह जो मैं तुझको मोक्ष उपाय कहता हौं तू आपको क्यों बंधन करता है बडा बंधन इच्छा ही है जिस पुरुषको इच्छा बढती जाती है सो जगत्रूपी वनका मृग है तिस मृग अरु पशुका संग कदाचित् नहीं करना मूर्खका संग बुद्धिको विपर्यय करि डारता है ताते विपर्ययबुद्धिको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु विश्व भी सब तेरा अनुभवरूप है अरु इसका सुख दुःख विद्यमान भी देखता हैं परंतु आत्माविषे भ्रममात्र भासता है कछु है नहीं विश्व भी आनंदरूप शिव ही है तू विचारि देख दूसरा तौ कछु है नहीं जैसे मृत्तिकाविषे नाना प्रकारकी सैन्य हस्ती घोडा आदिक होती है परंतु मृत्तिकाते इतर कछु नहीं तैसे सब विश्व आत्मरूप है इतर कछु नहीं तिस विषे कारणकार्यभाव देखना भी मूर्खता है जो दूसरी वस्तु ही नहीं तौ कारण कार्य किसका होवै बहुरि इच्छा किसकी करता है जिस संसारकी इच्छा करता है सो है नहीं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है अरु सीपीविषे रूपा भासता है सो दूसरी कछु वस्तु नहीं

अधिष्ठान किरणें अरु सीपी हैं तैसे अधिष्ठानरूप परमार्थसत्ता ही है न सुख है न दुःख है केवल यह जगत् शिवरूप है तिस शिव चिन्मात्रते मृत्तिकाकी सेनावत् अन्य कछु नहीं तौ इच्छा कैसे उदय होवै ? राम उवाच–हे मुनीश्वर ! जो सर्व ब्रह्म ही है तौ इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं इच्छा उदय होवै भावै न होवै बहुरि तुम कैसे कहत हौ कि इच्छाका त्याग करहु ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिस पुरुषकी ज्ञप्ति जागी है अर्थ यह कि ज्ञानरूप आत्माविषे जागा है तिसको सर्व ब्रह्म ही है इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं इच्छा भी ब्रह्म है अनिच्छा भी ब्रह्म है. हे रामजी ! ज्यों ज्यों ज्ञानसंवित् होती है त्यों त्यों वासना क्षय होती है जैसे सूर्यके उदय भए रात्रि नष्ट हो जाती है तैसे ज्ञानके उपजेते वासना नहीं रहती. हे रामजी ! ज्ञानवान्को ग्रहण त्यागकी इच्छा कर्तव्य नहीं इच्छा अनिच्छा तिसको तुल्य हैं यद्यपि ऐसे ही है परंतु स्वाभाविक ही वासना तिसको नहीं रहती जैसे सूर्यके उदय हुए अन्धकार नहीं रहना तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए द्वैतवासना नहीं रहती ज्यों ज्यों ज्ञानकला जागती है त्यों त्यों द्वैत नाश हो जाता है द्वैतके निवृत्त होनेकरि वासना भी निवृत्त हो जाती है. हे रामजी ! ज्यों ज्यों स्वरूपानंद इसको प्राप्त होता है त्यों त्यों संसार विरस होता जाता है जब संसार विरस हो गया तब वासना किसकी करै ? हे रामजी ! अमृतविषे इसको विषकी भावना भयी थी तब अमृत विष भासता था जब विषकी भावनाका त्याग किया तब अमृत तौ आगे ही था सोई हो जाता है तैने जो कछु तुझको भासता है सो सब ब्रह्मरूपी अमृत ही है जब तिस ब्रह्मरूपी अमृतविषे अज्ञानकरिकै जगत्‌रूपी विषकी भावना हुई तब दुःखको पाता है अरु जब संसारकी भावना त्यागी तब आनंदरूपी है तिसको करना न करना दोनों तुल्य हैं यद्यपि ज्ञानवान् विषे इच्छा दृष्टि आती है तौ भी उसके निश्चयविषे नहीं उसकी इच्छा भी अनिच्छा है काहेते जो संसारकी भावना उसके हृदयविषे नहीं तौ इच्छा किसकी रहै. हे रामजी ! यह संसार है नहीं हमको तौ आकाशरूप भासता है जैसे अपरके मनोरा-

ज्यका संकल्प तिसविषे आने जानेका खेद कछु नहीं होता तैसे यह जगत् हमको अपरकी चिंतवनावत् है जैसे किसी पुरुषने मनोराज्य करिकै मार्गविषे कोऊ स्थान रचा होवै अरु तिसविषे किंवाड लगाए होवैं अरु नाना प्रकारका प्रपंच रचा होवै अरु जो कोऊ अपर पुरुष आता है तिसको किंवाडविषे अटकावना कोऊ नहीं अरु न कोऊ किंवाड है न कोऊ पदार्थ है उसका शून्यमार्गका निश्चय होता है तैसे हमको सब प्रपंच शून्य ही भासता है अज्ञानीके हृदयविषे हमारी चेष्टा है अरु हमको सब ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता हे रामजी! जिसको जगत् ही न भासै तिसको इच्छा किसकी होवै जिसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है तिसको इच्छा भी फुरती है अरु राग द्वेष भी उठता है जिसको राग द्वेष उठता है तब जानिये कि संसारसत्ता हृदयविषे स्थित है अरु जिसको नानापदार्थसहित संसार सत्य भासता है सो मूर्ख है अज्ञान निद्राविषे सोया हुआ है जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नविषे पुरुष अपनी मृत्यु देखता है तैसे जिसको यह जगत् सत् भासता है सो निद्राविषे सोया है. हे रामजी! बहुत प्रकारके स्थान मैं देखे हैं तैसे तिनविषे रोग औषध भी नाना प्रकारके देखे हैं परंतु इच्छारूपी छुरीके घावका औषध अपर दृष्टि नहीं आया न जापकरि न तपकरि न पाठकरि न यज्ञ दान तीर्थकरि निवृत्त होता है जेते कछु संसारके पदार्थ हैं तिनकरिकै इच्छारूपी रोग नाश नहीं होता जब आत्मरूपी औषधकी ओर आवै तबहीं नाश होता है अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता. हे रामजी! जिस पुरुषको ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसकी इच्छा स्वाभाविक ही निवृत्त हो जाती है अरु आत्मज्ञान विना अनेक यत्नकरि न जावैगी जैसे स्वप्नकी वासना जागे विना नहीं जाती अपर अनेक उपाय करिये तौ भी दूर नहीं होती. हे रामजी! ज्यों ज्यों वासना क्षीण होती है त्यों त्यों सुखकी प्राप्ति होती है अरु ज्यों ज्यों वासनाकी अधिकता है त्यों त्यों दुःख अधिक है अरु यह आश्चर्य है जो मिथ्या संसार सत्य हो भासता है जैसे बालकको वृक्षविषे वैताल हो भासता है तिसकरि भय पाता है

सो है ही नहीं तैसे मूर्खताकरिकै आत्माविषे संसार कल्पता है तिसी करि दुःखी होता है. हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है ब्रह्मते इतर बना कछु नहीं भ्रमकरिकै भिन्नभिन्न होय भासता है जैसे आकाशविषे शून्यता है जलविषे द्रवता है सत्यताविषे सत्यता ही है तैसे आत्माविषे जगत् है सो न सत् है न असत् है अनिर्वाच्य है. हे रामजी ! दूसरा कछु बना नहीं तौ क्या कहिये केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है सो सर्वका अपना आप वास्तवरूप है जब तिसका साक्षात्कार होता है तब अहंरूप भ्रम मिटि जाता है जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमानरूपी अंधकारका अभाव हो जाता है अरु परम निर्वाण भासता है तिसविषे तहां एक कहना है न दो कहना है केवल शांतरूप परम शिव है जैसे आकाशविषे नीलता भासती है तैसे आत्माविषे जगत् भासता है. हे रामजी ! जिनने ऐसे निश्चय किया है तिनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं तौ भी मेरे निश्चयविषे यह है जो इच्छाके त्यागविषे सुख है जिसकी इच्छा दिनदिन घटती जावै अरु आत्माकी ओर आवै तिसको ज्ञानवान् मोक्ष-भागी कहते हैं काहेते जो संसार भ्रमकरिकै सिद्ध है इसहीकी कल्पना जगत्रूप होकरि भासती है विचार कियेते निकसता कछु नहीं संसारके उदय होनेकरि आत्माको कछु आनंद नहीं अरु नाश होनेकरि कछु खेद नहीं होता काहेते कि भिन्न कछु नहीं जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते विनशते हैं तौ जलको हर्ष शोक कछु नहीं होता काहेते कि जलते इतर नहीं तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तौ इच्छा क्या अरु अनिच्छा क्या. हे रामजी ! आदि जो परमात्माते चित्तशक्ति फुरी है तिसविषे जब अहं ऐसे हुआ तब स्वरूपका प्रमाद हुआ तब यह चित्तशक्ति मनरूप हुई बहुरि आगे देह इंद्रियां हुईं अज्ञानकरिकै मिथ्या भ्रम उदय हुआ है इसी प्रकार अपने साथ मिथ्या शरीरको देखता है जैसे जल दृढ जडताकरिकै बरफरूप हो जाता है तैसे चित्तसंवित् प्रमादकी दृढताकरिकै मन इंद्रियां देहरूप होती हैं जैसे कोऊ स्वप्नविषे अपने मरनको देखता है तैसे अपने साथ शरीरको देखता है जब चित्तशक्ति नष्ट होती है तब शरीर कहां अरु मन कहां यह कोऊ

नहीं भासता जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिकै शरीरादिक भासते हैं तैसे यह जाग्रत् भी जान जो मिथ्या भ्रमकरिकै उदय हुए हैं जब अपने स्वरूपकी ओर आवै तब सब ही भ्रम मिटि जावैं. हे रामजी! जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है तैसे विश्व भी अनहोती भ्रमकरि भासती है आत्माविषे कछु आरंभ परिणामकरिकै नहीं बना वही स्वरूप है जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद नहीं जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवरूप है इतर कछु नहीं तैसे जगत् आत्मा अनुभवते इतर कछु नहीं. हे रामजी! चेतन आकाश परम शांतरूप है तिसविषे देह इंद्रियां भ्रमकरिकै भासती हैं अरु क्रिया काल पदार्थ सब भ्रममात्र हैं जब आत्मस्वरूपविषे जागकरि देखैगा तब द्वैत भ्रम निवृत्त हो जावैगा कैवल्य अद्वैत आत्मा ही भासैगा दृश्यका अभाव हो जावैगा यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो अविद्यमान हैं इनकी प्रतिमा मिथ्या उदय हुई है जैसे स्वप्नविषे अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परंतु हैं नहीं तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है. हे रामजी! पृथ्वी भी आकाशरूप है अरु कंध कोट भी आकाशरूप है अरु पर्वत भी आकाशरूप हैं सब प्रपंच आकाशरूप है जो सर्व आकाशरूप हैं तौ ग्रहण त्याग किसका होवै अरु आकाशरूप दिवारके ऊपर संकल्पने मूर्तियां रची हैं अरु रंग तहां आत्मचैतन्यता है ताते विश्व संकल्पमात्र है जैसा जैसा निश्चय होता है तैसी तैसी सृष्टि भासती है जो कछु बना होता तौ अपरका अपर भासता ताते बना कछु नहीं जैसा संकल्प होता है तैसा आगे रूप हो भासता है. हे रामजी! सिद्ध पास एक चूर्ण होता है तिसकरि जो चाहते हैं सो करते हैं पर्वतको आकाश करते हैं अरु आकाशको पर्वत करते हैं तैसे मैं तुझको चूर्ण कहता हौं जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्णकरि फुरता है तब आत्मरूपी आकाशविषे पर्वत हो भासते हैं अरु जब चित्तरूपी सिद्धका संकल्प उलटता है तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है जैसे स्वप्नविषे संकल्प फुरता है तब अनुभवविषे पर्वत आदिक पदार्थ भास आते हैं अरु जब संकल्पते जागता है तब स्वप्नके पर्वत आकाशरूप हो जाते हैं आकाश ही पर्वतरूप हुआ अरु पर्वत आकाशरूप होता है.

हे रामजी ! तैसे यह सृष्टि संकल्पमात्र है कछु बना नहीं जैसा संकल्प होता है तैसा भासता है अरु जब विश्वके अत्यंत अभावका संकल्प किया तब तैसे ही भासता है जैसे विश्वका अभ्यास किया है अरु विश्व भासी है तैसे आत्माका अभ्यास करिये तौ क्यों न भासै वह तौ अपना आप है जब आत्माका अभ्यास करिये तब आत्मा ही भासता है विश्वका अभाव हो जाता है अनेक सृष्टि अपने अपने संकल्पकरि आकाशविषे भासती हैं जैसा किसीका संकल्प होता है तैसी सृष्टि उसको भासती है जैसे चिंतामणि अरु कल्पवृक्षविषे दृढ संकल्प करता है तब यथा इच्छित पदार्थ निकसि आते हैं सो कछु बने नहीं अरु चिंतामणि भी परिणामको प्राप्त भयी ज्योंकी त्यों पडी हैं संकल्पकी दृढताकरि भासि आते हैं तैसे यह प्रपंच भी आकाशरूप है जैसे आकाशविषे शून्यता है तैसे आत्माविषे जगत् है. हे रामजी ! सिद्धके जो वचन फुरते हैं सो ही संकल्पकी तीव्रता होती है जो चित्त शुद्ध होता है तौ दूसरी सृष्टिको भी जानता है जो पुरुष वचनसिद्ध होनेके निमित्त सूक्ष्म वासना करता है अर्थ यह कि वासनाको रोकता है सो तिसकरि वचनसिद्धताको पाता है जैसा संकल्प करता है तैसा सिद्ध होता है. हे रामजी ! जेता यह दृश्यकी ओरते उपरांत होकरि अंतर्मुख होता है तेती वचनसिद्धता होती जाती है भावै वर देवै भावै शाप देवै वह सिद्ध होता है. हे रामजी ! एक प्रमाण ज्ञान है जो यह पदार्थ इस प्रकार है तिसका जो नामरूप है सो सब आकाशरूप भ्रममात्र है आत्माविषे अपर कछु नहीं अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगत् रूपी तरंग उठते हैं सो आत्मरूपी हैं जिनको ऐसा ज्ञान हुआ है तिनको इच्छा अरु अनिच्छाका ज्ञान नहीं रहता तिनको सब आकाशरूप भासता है. हे रामजी ! आत्मरूपी फूल है तिसविषे जगत्रूपी गंध है जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं जैसे पत्थरके ऊपर लकीर काढिये सो पत्थरते भिन्न नहीं तैसे ब्रह्मते जगत् भिन्न नहीं. हे रामजी ! देश काल पृथ्वी आदिक तत्त्व अरु मैं मेरा सब आत्मरूप है अरु अविनाशी

है काहेते कि अजन्मा है जिनको ऐसे निश्चय हुआ तिनको रागद्वेष नहीं रहता सब आत्मरूप ही भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगदुपदेशवर्णनं नाम सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७७ ॥

अष्टसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७८.

परमनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरी है तिस संवेदनकरि आगे जगत् भासा है जैसे किसीके नेत्रविषे एक अंजन डारिकरि आकाशविषे पर्वत उड़ते दिखाते हैं तैसे अनहोता जगत् फुरणे-करि भासता है. हे रामजी ! ब्रह्मस्वर्गविषे अरु चित्तस्वर्गविषे भेद कछु नहीं, परमार्थते एक ही है दृष्टि सृष्टि अरु वस्तु पर्याय हैं अरु नानातत्त्व भी इसकी भावनाकरि भासते हैं आत्माविषे दूसरा कछु नहीं बना चित्त अरु चैत्य आत्माते इतर नहीं चित्त ही चैत्य होकरि भासता है ज्ञानक-रिकै इनकी एकता होती है इसीते दृश्य भी द्रष्टारूप है जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवित् ही दृश्यरूप होकरि स्थित होती है अरु जागेते एक हो जाती है सो एकता भी तब होती है जब वही रूप है ताते तू अब भी वही जान, दृश्य दर्शन द्रष्टा त्रिपुटी सब वही रूप है. हे रामजी ! जो सजाती है तिसकी एकता होती है विजातीकी एकता नहीं होती जैसे जलविषे जलकी एकता होती है तैसे बोधकरि सबकी एकता होती है ताते दृश्य भी वही रूप है जो एकता हो जाती है जो दृश्य कछु आत्माते भिन्न होती तौ एकता न होती. हे रामजी ! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं जिसते यह सर्व है अरु जो वह सर्व है तिस सर्वात्माको नमस्कार है बहुरि कैसा है आत्मा सर्वव्यापी है अरु सर्वगत है सर्वको धारि रहा है अरु सर्व वही है ऐसे सर्वात्माको मेरा नमस्कार है जो कछु भासता है सब वही है जैसे जलविषे गलावनेकी शक्ति है अरु काष्ठविषे नहीं तैसे ब्रह्मविषे भावना स्वभाव है अपरविषे नहीं जो ब्रह्मभावनाते सर्व ब्रह्म ही

भासता है. हे रामजी ! जड पदार्थ जो भासते सो भी ब्रह्म हैं काहेते जो भासता है सो ब्रह्म ही है जो जड़ होवे तौ भासे नहीं जड़ भी चेतनता शुद्ध संवित्‌विषे है उसविषे शब्द चेतन है इतर कछु नहीं भासता है जैसे शुद्ध संवित्‌विषे स्वप्न फुरता है तिसविषे जड़ भी अरु चेतन भी भासते हैं परंतु जो जड़ भासते हैं उस संवित्‌विषे वह भी चेतन हैं जब चेतन हैं तब फुरते हैं जिनके शुद्ध संवित्‌विषे अहंप्रयत्न नहीं सो जान नहीं सकते अज्ञानी हैं परंतु सब ब्रह्म है जैसे समुद्रविषे जल होता है सो ऊंचे आवै तौ भी जल है अरु नीचेको आवै तौ भी जल है जैसे जो कछु देखता है अरु भासता है सो सब ब्रह्मरूप है इतर कछु नहीं अरु इंद्रियका ग्राम जो भासता है सो भी आत्मा है अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं सो प्रथम आकाश फुरा है बहुरि वायु फुरी है बहुरि अग्नि फुरी है तिसते अनंतर जल फुरा है बहुरि पृथ्वी फुरी है सो चमत्कारकी नाईं अनिच्छित फुरे हैं ताते सब आत्मरूप हैं जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है तैसे आत्मरूपी बीजविषे जगत् होता है अरु नाना प्रकार भासते हैं. हे रामजी ! एक बीज ही नाना प्रकारके रूप धारता है परंतु बीजते इतर कछु नहीं तैसे आत्मसत्ता नाना प्रकार हो भासती है परंतु बीजकी नाईं भी आत्मा परिणम्य नहीं विश्व आत्माका चमत्कार है ताते वही रूप है जैसे स्वर्णविषे अनेक भूषण होते हैं स्वर्णते इतर कछु नहीं तैसे विश्व आत्मरूप है द्वैत कछु नहीं जो आत्माते इतर होवै तौ भासै नहीं ताते भासती जो है सो चेतनरूप है इसते दृश्य अरु द्रष्टाते एक ही रूप है द्रष्टा दृश्यकी नाईं हो भासता है. हे रामजी ! जैसे कोऊ पुरुष तुम्हारे निकट सोया होवै अरु उसको स्वप्न आवै तिसविषे मेघ गर्जते हैं अरु नाना प्रकारकी चेष्टा होती है सो उसको भासती है अरु तुमको नहीं भासती तैसे यह दृश्य तुम्हारी भावनाविषे स्थित है अरु हमको आकाशरूप है. हे रामजी ! चेतन आकाश शांतरूप है तिसविषे सृष्टि कछु बनी नहीं जो कछु उपजा नहीं तौ नष्ट भी नहीं होता केवल शांतरूप है भ्रमकरिकै जगत् भासता है जैसे कोऊ बालक मनोराज्य करिकै आकाशविषे पुतलियां रचै सो आकाशविषे

कछु बना नहीं परंतु उसके संकल्पविषे है तैसे यह विश्व मनरूपी बालकने रची है तिसकी रची हुईविषे भी ज्ञानवान्को शून्यता भासती है. हे रामजी ! संकल्पमात्र सृष्टि क्यों हुई जब इसका संकल्प नष्ट होता है तब शांतपद शेष रहता है सो कैसा पद है निरहंकार सत्तामात्र पद है अरु असत्की नाईं स्थित है बहुरि तिस चिन्मात्र अद्वैतविषे अहंताकरिकै जगत् भासि आता है जब अहंता फुरती है तब जगत् भासता है अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है तब अहंतारूप भ्रम मिटि जाता है जब अहंतारूप भ्रम मिटा तब जगत्का भी अभाव होता है अरु इच्छाका भी अभाव हो जाता है ताते ज्ञानीको इच्छा वासना कोऊ नहीं रहती जब भ्रमरूप अहंता नष्ट हुई तब तिस पदको प्राप्त होता है जिस पदविषे अणिमा आदिक सिद्धि भी सूखे तृणकी नाईं भासती हैं ऐसा आनंदरूप है जिसविषे ब्रह्मादिकका सुख भी तृणसमान भासता है हे रामजी ! जिसको ऐसा ब्रह्मानंद प्राप्त हुआ है तिसको बहुरि इच्छा किसीकी नहीं रहती अरु तिसको मारनेहारे विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते अरु जिवावने हारे पदार्थ अमृत आदिक जीवाते नहीं केवल निर्वाणपदविषे तिसकी स्थिति है. हे रामजी ! जिस पुरुषको संपूर्ण संसारते वैराग्य हुआ है तिसको संसारके पदार्थ सुखदायक नहीं भासते मिथ्या भासते हैं सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त भया है जिसकी संसारकी वासना अरु अहंता नष्ट भयी है तिसकी मूर्ति देखनेमात्र भासती है सो निर्वासी ज्ञानवान् शांतरूप है. हे रामजी ! इच्छा ही बंधन है जब इच्छाका अभाव हुआ तब आनंद हुआ अरु इच्छा भी तब फुरती है जब संसारको सत्य जानता है अरु संसारकी सत्यता अहंताकरि भासती है जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावै तब निर्वाणपदकी प्राप्ति होवै. हे रामजी ! संसार कछु बना नहीं भ्रमकरि सिद्ध हुआ है सर्व ही ब्रह्म है तिस परमात्माविषे जो परिच्छिन्न अहंता फुरी सोई उपाधि है. हे रामजी ! बुद्धिते आदि लेकरि जेती यह दृश्य है जिसको अपनेविषे स्वाद नहीं देती आकाशकी नाईं रहता है तिसको संत मुक्तरूप कहते हैं. हे रामजी ! यह अहं अविचारते सत् भासती है विचार कियेते

असत्य हो जाती है अनहोती अहंताने दुःख दिया है ताते तुम निरहं-कार चेष्टा करहु जैसे यंत्रीकी पुतली अभिमानते रहित चेष्टा करती है तैसे तुम निरहंकार होकारे चेष्टा करहु अरु अपने स्वरूपविषे स्थित होहु तब व्यवहार अरु अव्यवहार तुझको तुल्य हो जावैगा जैसे पव-नको स्पंद दोनों तुल्य होते हैं तैसे तुमको होवैगा अरु अहंकारते रहित तेरी चेष्टा होवैगी अहंता ही दुःख है जब अहंताका नाश हुआ तब शांतपदको प्राप्त होवैगा अरु निर्मल अनामय पदको प्राप्त होवैगा जो सर्व पदार्थका अधिष्ठान है अरु सबका अपना आप है तिसविषे न कोऊ सुख है न दुःख है न कोऊ इंद्रियोंका विषय है परमशांतरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमनिर्वाणयोगो-पदेशवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७८ ॥

ऊनाशीत्युत्तरशततमः सर्गः १७९.

वसिष्ठगीतोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है सो निरावरण है दोनों आवरणते रहित है एक असत्त्वापादक आवरण है एक अभानापादक आवरण है जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयविषे न भासै सो असत्त्वापा-दक है तिसको कहता है कि है नहीं अरु जो सत्यता आत्माकी हृदय-विषे भासै परंतु दृढ प्रत्यक्ष न भासै सो अभानापादक आवरण है असत्त्वापादक आवरण अज्ञानीको भासता है अरु अभानापादक आवरण जिज्ञासुको होता है ज्ञानवान्को यह दोनों आवरण नहीं रहते ताते वह निरावरण शांतरूप होता है आकाशवत् निर्मल अरु निरालंब है सो किसी गुणतत्त्वके आश्रय नहीं होता अरु एक द्वैतभ्रम तिसका नष्ट हो जाता है तिसने आत्मरूपी तीर्थका स्नान किया है सो आत्म-रूपी तीर्थ कैसा है जो अपवित्रको भी पवित्र करता है जिन पुरुषोंने शरीरविषे आत्माका दर्शन किया है तिनका शरीर भी पवित्र भया है

ऐसे पुरुषोंको शरीरकी सत्यता नहीं रहती अरु संसार भी नहीं रहता आत्माके साक्षात्कार हुए सब इच्छा नष्ट हो जाती है अरु सर्व ब्रह्म ही तिनको भासता है द्वैत कछु नहीं भासता सर्व आत्मस्वरूप है तिस-विषे संकल्पकरि नाना प्रकार सृष्टि भासती है. हे रामजी ! तुम संक-ल्पकी ओर मत जावहु काहेते कि चित्तकी वृत्ति क्षणक्षणविषे परिण-मती है अनंत योजनपर्यंत चली जाती है तिसके अनुभव करनेवाली जो सत्ता मध्यविषे है जिसके आश्रय वह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है जब तिसविषे स्थित होकरि देखेगा तब फुरणेविषे भी ब्रह्म-सत्ता भासैगी. हे रामजी ! यह संवित सदा प्रकाशरूप है चित्तके क्षोभते रहित है द्वैतरूप विकारते रहित शुद्ध है अरु जेते कछु प्रकाश हैं तिनका विरोधी भी है दीपकका विरोधी पवन है निर्वाण करि लेता है अरु सूर्यके विरोधी राहु केतु हैं जो आच्छादि लेते हैं अरु महाप्र-लयविषे सर्व प्रकाश तमरूप हो जाता है अरु आत्मप्रकाश तत्त्वसिद्ध है तमको भी प्रकाशता है अरु सदा ज्ञानरूप एकरस है तिसको त्यागिकरि तुम अपर कछु नहीं लगना. हे रामजी ! यह दृश्य सब मिथ्या है जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा कल्पित है तैसे आत्माविषे विश्व कल्पित है जब तू जागिकरि देखेगा तब सबका अभाव हो जावैगा जैसे वंध्याके पुत्रके रूपका अभाव है तैसे सब विश्व मिथ्या भासैगी काहेते जो है नहीं भ्रममात्र स्वप्नकी नाईं अवि-चारसिद्ध है विचार कियेते आत्मा ही है इतर कछु नहीं जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे यह विश्व भी आत्मस्वरूप ज्ञानमात्र है अहं मम देह इंद्रियादिक ज्ञानमात्र हैं दृश्य ही दूसरी कछु वस्तु नहीं जब ऐसे निश्चयको धारैगा तब निःशोक होवैगा अरु मोहते भी रहित होवैगा परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों भासैगी जैसे समुद्र-विषे तरंग उठते हैं तैसे आत्माविषे दृश्य उठती है सो वही रूप है अरु जो इतर भासै सो मिथ्या है अरु सब सृष्टि इसके अंतर स्थित हैं अज्ञान-करिकै बाह्य भासती हैं जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब इसके अंतर होती है अरु अपना स्वरूप होता है निद्रादोष करिकै बाह्य भासती है जब जागता

है तब अपना ही स्वरूप भासता है तैसे जाग्रत् सृष्टि भी विचार कियेते अपने अनुभवविषे भासती है ताते स्थित होकरि देख जो सर्वदा जागती ज्योति है तिसको त्यागिकरि अपर यत्न करना व्यर्थ है. हे रामजी ! अपने अनुभवविषे स्थित होना क्या कष्ट है अरु जो कठिन जानते हैं सो मूढ हैं तिनको मेरा धिक्कार है काहेते जो गऊके पगको समुद्रवत् जानते हैं तिनते अपर मूर्ख कौन है अनुभवविषे स्थित होना गऊपदकी नाईं ही तरणा सुगम है अरु जो अपर पदार्थ हैं जिनके पानेकी इच्छा करैगा तिनविषे व्यवधान है अरु आत्माविषे व्यवधान कछु नहीं काहेते कि अपना आप है. हे रामजी ! जिन पुरुषोंने आत्माविषे स्थिति पायी है तिनको मोक्षकी इच्छा भी नहीं तौ स्वर्गादिककी इच्छा कैसे होवै मोक्ष अरु स्वर्ग आत्माविषे जेवरीके सर्पवत् मिथ्या भासते हैं तिनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है. हे रामजी ! स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ता है यह दोनों मिथ्या हैं निर्वाण अरु जीना तिनको दोनों तुल्य हैं ऐसे जानिकरि इच्छा किसीकी नहीं करते प्रपंच उनको शशेके सींग अरु वंध्याके पुत्रवत् भासते हैं. हे रामजी ! हमको तो सदा आकाशरूप भासता है अरु जो तू कहै उपदेश क्यों करते हो तो हमको भास कछु नहीं तेरी इच्छा ही तुझको वसिष्ठरूप होकरि उपदेश करती है हमको विश्व सदा शून्यरूप भासता है अरु हमको चेष्टा करता भी अज्ञानी जानते हैं हमारे निश्चयविषे चेष्टा भी नहीं अरु हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कछु नहीं अरु अज्ञानीकी चेष्टा अर्थाकार होती है हमको चेष्टा सत् नहीं भासती ताते अर्थाकार नहीं होती जैसे ढोलका शब्द होता है परंतु अर्थ उसका नहीं होता कि क्या कहता है अरु वाणीकरि शब्द बोलता है तिसका अर्थ होता है तैसे हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं अर्थ यह कि जन्मको नहीं देती अरु अज्ञानकी चेष्टा जन्मको देती है अरु हमको संसार ऐसे भासता है जैसे अवयवी सर्व अवयवको अपना स्वरूप ही देखता है हस्त पाद शीश आदिक

सब अपने ही अंग देखता है तैसे हमको जगत् अपना स्वरूप ही भासता है. हे रामजी ! जगत्विषे एक ऐसे जीव दृष्टि आते हैं कि तिनको हम स्वप्नके जीव भासते हैं अरु हमको वह शून्य आकाशवत् दृष्टि आते हैं अरु उनके हृदयविषे हम नाना प्रकारकी चेष्टा करते अपरकी नाईं भासते हैं अरु हमको तो जगत् ऐसे भासता है जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं तैसे आत्माविषे जगत् है मैं भी ब्रह्म हौं तू भी ब्रह्म है जगत् भी ब्रह्म है रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है ताते तू भी ब्रह्मकी भावना करु जो अपने स्वभावविषे स्थित होना परम कल्याण है अरु पर स्वभावविषे स्थित होना दुःख है. हे रामजी ! अपना स्वभाव साधना इसीका नाम मोक्ष है अरु न साधना इसीका नाम बंधन है. हे रामजी ! अपर पदार्थ इस ऊपर उपकार कोऊ करि नहीं सकता न धन न कोऊ मित्र न कोऊ क्रिया एक अपना पुरुषार्थ उपकार करता है सो पुरुषार्थ यही है कि जो अपना चेतन स्वभाव है तिसीविषे स्थित होना परंतु स्वभावका त्याग करना अरु जब अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब सब अपना स्वरूप ही भासैगा अरु जो तू स्वरूपते इतर करि देखे तौ न मैं हौं न तू है न जगत् है सब भ्रममात्र है मृगतृष्णाके जलवत् भासता है अथवा ऐसे जान कि मैं भी ब्रह्म हौं तू भी ब्रह्म है जगत् भी ब्रह्म है अथवा ऐसे जान न तू है न मैं हौं न जगत् है पाछे जो शेष रहैगा सो तेरा स्वरूप है. हे रामजी ! जिस पुरुषको ऐसे निश्चय हुआ है कि मैं तू जगत् सब ब्रह्म है अथवा मैं तू जगत् सब मिथ्या है तिसको बहुरि इच्छा कोऊ नहीं रहती अरु जिनको इच्छा उठती है तौ जानिये कि ब्रह्म आत्माका साक्षात्कार नहीं भया जब भोगकी वासना निवृत्त होवै अरु संसार विरस हो जावै तब जानिये कि यह संसारके पारको प्राप्त भया अथवा होवैगा. हे रामजी ! यह निश्चय करिकै जान कि जिसको भोगकी वासना क्षीणहोती है तिसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है अरु भोगकी तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है यद्यपि तिसविषे प्रत्यक्ष भोगकी तृष्णा दृष्टि आती है तौ भी उसकी भास जाती रहती है अरु ब्रह्मसत्ता भासती है अरु संसारकी ओरते सुषुप्ति हो जाती है मृतककी

नाईं होता है अरु अपने स्वरूपविषे सदा जाग्रत् है अपने स्वभावरूपी अमृतविषे मग्न होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वसिष्ठगीतोपदेशो नाम ऊनाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७९ ॥

अशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८०.

वसिष्ठगीतासंसारोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह परस्वभाव हैं तिनको ब्रह्मरूप जान परस्वभाव क्या अरु ब्रह्मरूप क्या है ! हे रामजी ! तेरा स्वरूप शुद्ध आकाश है तिसविषे जो रूप अवलोकन मनस्कार फुरे है सो प्रकृतिकी मायाकारि फुरे है सो माया स्वभावकरि ये परस्वभाव हैं परंतु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है ताते आत्मस्वरूप हैं आत्माके जाननेते इनका अभाव हो जाता है. हे रामजी ! जब इसको ज्ञान उपजता है तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है संसारकी सत्ता कछु नहीं भासती अरु जब दृढता हुई तब सुषुप्त हो जाता है इनका भाव भी नहीं रहता तुरीयाविषे स्थित होता है अरु जब तुरीयातीत होता है तब अभावका भी अभाव हो जाता है परम कल्याणरूप सत्तासमान पदको प्राप्त होता है सो आदि अंतते रहित परमपद है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हौं अरु परम शांतरूप हौं अरु निर्दोष हौं अरु जगत् भी सब ब्रह्मरूप है इसको सदा यही निश्चय रहता है अरु ऐसा उत्थान नहीं होता कि मैं वसिष्ठ हौं सदा आत्मस्वरूपका निश्चय रहता है परिच्छिन्न अहंकार हमारा नष्ट हो गया है ताते निरहंकार पदविषे हम स्थित हैं जब तू ऐसे होकारि स्थित होवैगा तब परम निर्मल स्वरूप हो जावैगा जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है तैसे तू शोभैगा. हे रामजी! ऐसे पुरुषको बंधन है सो श्रवण कर जिस बंधनकरि आत्मपदको नहीं प्राप्त होता प्रथम धन मणिका बंधन है भोगकी तृष्णा अरु बांधवका बंधन है जिसको इन तीनोंकी वासना रहती है तिसको मेरा धिक्कार है

बडे अनर्थको देनेहारी यह वासना है यह भोग है सो महारोग है अरु बांधव दृढ बंधनरूप हैं अरु अर्थकी प्राप्ति अनर्थका कारण है ताते इस वासनाको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु यह संसार भ्रममात्र है इसकी वासना करनी व्यर्थ है इसको सत् नहीं जानना अरु यह जो तुझको संग मिलाप भासता है सो कैसा है जैसे बैठे हुए स्मरण आवे कि मैं अमुक साथ मिला था तब वह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदयविषे भासती है अरु जैसे संकल्पकरि नगर रचि लिया तिसविषे मूर्ति मनुष्यादिक भासने लगें तैसे यह जगत् भी जान. हे रामजी! तू मैं अरु यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगरके समान है जैसे भविष्यत् नगरकी रचना है तैसे यह जगत् अरु कर्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं सो भी भ्रममात्र हैं केवल आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है आत्मरूपी आकाशविषे यह जगतरूपी पुतलियां हैं अरु संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है वास्तवते केवल शांतरूप आत्मतत्त्व है. हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं तिनको आत्मतत्त्व ही भासता है अरु जिनको आत्मतत्त्वका प्रमाद है तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है अरु आत्माविषे यह जगत् कछु आरंभ परिणामकरिकै बना नहीं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे अज्ञानकरिकै जलाभास भासते हैं तैसे आत्माविषे अज्ञानकरिकै जगत्की प्रतीति होती है जब आत्माका सम्यक् ज्ञान होवै तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है जैसे सूर्यकी किरणें जाननेते जलभ्रम निवृत्त हो जाता है अरु जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नसृष्टि अपना आप ही भासती है तैसे अविद्याके नाश हुए सब अपना आप ही भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वसिष्ठगीतासंसारोपदेशो नामाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८० ॥

एकाशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८१.

जगदुपशमयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है जिसको ज्ञान प्राप्त होता है तिसको सब ब्रह्मरूप भासता है यही

ज्ञानका लक्षण है अरु ज्यों ज्यों ज्ञानकला उदय होती है त्यों त्यों भोगवासना क्षीण होती जाती है जब पूर्ण बोधकी प्राप्ति होती है तब इच्छा किसीकी नहीं रहती जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता है त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता जाता है जब पूर्ण प्रकाश हुआ तब रात्रिका अभाव हो जाता है तैसे जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआ है तिसको भोगकी वासना नहीं रहती अरु संसार तिसको जले वस्त्रकी नाईं भासता है अरु अज्ञानीको सत्य भासता है जैसे स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं होती अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं होता स्वप्नका पुरुष सुषुप्तिको नहीं जानता अरु सुषुप्तिवाला स्वप्नवालेको नहीं जानता तैसे जिनको तुरीयापदकी प्राप्ति होती है तिनको संसारका अभाव हो जाता है अरु अपने स्वभावविषे स्थित होता है अरु संसारको सत् जानता है सो स्वप्ननगर है सुषुप्तिको नहीं जानता. हे रामजी ! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है तिसको अज्ञानी नहीं जान सकता अरु जो जानै तौ परिच्छिन्न अहंकार तिसका नष्ट हो जावै जब अहंकार नष्ट हुआ तब सर्व आत्मा हुआ. हे रामजी ! इसको अहंताने तुच्छ किया है तातें अहंतारूप दृश्यका तुम त्याग करहु अरु अपने स्वभावविषे स्थित होहु अरु संसाररूपी एक पुतली है सो भ्रमकरि उठी है तिसका शीश ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है पाद अरु गिटे इसके पाताल लोक हैं अरु दशो दिशा इसके वक्षःस्थल हैं अरु चंद्रमा सूर्य इसके नेत्र हैं तारागण इसके रोम हैं आकाश इसके वस्त्र हैं अरु सुख दुःखरूपी स्वभाव है अरु पवन इसका प्राणवायु है बगीचे इसके भूषण हैं द्वीप अरु समुद्र इसके कंकण हैं लोकालोक पर्वत इसकी मेखला है. हे रामजी ! ऐसी जो पुतली है सो नृत्य करती है सो क्या है जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नाश होते हैं परंतु जल ही है तैसे जलकी नाईं सर्व ब्रह्मरूप हैं अरु भ्रमकरिकै विकार दृष्टि आते हैं. हे रामजी ! कर्त्ता क्रिया कर्म भी सब आत्मस्वरूप है जब तू आत्माकी भावना करैगा तब तेरा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावैगा जैसे पत्थरकी शिला जड होती है तैसे तेरा हृदय जगततें जड शून्य हो जावैगा. हे रामजी ! आत्मपद शांतरूप है अरु आकाशवत् निर्मल है जैसे आका-

शविषे आकाश स्थित है तैसे आत्माविषे जगत् है न उदय होता है न अस्त होता है केवल शांतरूप है अरु उदय अस्त भी तब होता है जब कछु दूसरी वस्तु होती है सो जगत् कछु भिन्न नहीं आत्मस्वरूप ही है द्वैत अरु एक कल्पनाते रहित आत्मा अपने आपविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम एकाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८१ ॥

द्व्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८२.

पुनर्निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कार है मृत्तिकाकी पुतली जैसे मृत्तिकारूप होती है जैसे कागजकी पुतली कागजरूप होती है तैसे विश्व आत्मरूप है जैसे मृत्तिकाका दीपक देखनेमात्र होता है प्रकाशका कार्य नहीं करता तैसे यह जगत् देखनेमात्र है विचार कियेते आत्मा विना इतर सत्ता कछु नहीं ताते जगत्की सत्यता आत्माते भिन्न कछु नहीं जगत्की आस्था आत्माके आश्रित होती है जैसे जलविषे तरंग अरु आकाशविषे शून्यता अरु पवनविषे फुरना है तैसे आत्माविषे जगत् अभिन्नरूप है जैसे वायु चलती है तब भी पवन है उसको वायुका निश्चय है तैसे चेतनविषे निश्चय है कि जगत् वही स्वरूप है ताते चेतन है सो ज्ञानवान् जानता है कि जगत् मेरा ही स्वरूप है. हे रामजी ! यह आश्चर्य देख कि जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं अरु भ्रमकरिकै भिन्न भासता है जैसे कथाविषे कथाके पुरुष विद्यमान भासते हैं जो युद्ध करते हैं इत्यादिक अपर क्रिया करते हैं तैसे यह जगत् भी मनोमात्र जान. हे रामजी ! जो विद्यमान है सो अविद्यमान हो जाता है अरु जो अविद्यमान है सो विद्यमान हो जाता है जैसे स्वप्नविषे जगत् अनुभवरूप है इतर कछु नहीं तैसे जाग्रत् जगत् विचारकरि देखैगा तब ब्रह्मस्वरूप ही भासैगा जैसे जो पुरुष सोया होता है अरु स्वप्न जगत् तिसहीका रूप है परंतु जबलग निद्रादोष है तबलग भिन्न

भासता है अरु जब जागा तब सब अपना ही आप भासता है तैसे जब यह पुरुष अपने स्वरूपविषे स्थित होकरि देखता है तब सब अपना आप ही भासता है. हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है अरु आत्मा इंद्रियोंका विषय नहीं निराकार है अरु मनके चिंतवनेते रहित है संकल्पकरि आप ही रूप अवलोकन मनस्कारकरि स्थित हुआ है इतर नहीं सर्व वही है अरु तिसीको कई शिव कहते हैं कई ब्रह्म कहते हैं कई आत्मा कहते हैं कई शून्य कहते हैं इत्यादिक नाम तिसीके शास्त्रकारने कहे हैं सो संकल्पविषे कहे हैं अरु आत्मा केवल चिन्मात्र है वाणीका विषय नहीं शांतरूप है अरु चैत्य जो है दृश्य तिसते रहित है सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान है अरु जगत् उसका चमत्कार है. हे रामजी ! आत्मा विषे एक द्वैतकल्पना कोऊ नहीं काहेते जो आत्मतत्त्वमात्र है अरु जगत् भी आत्मरूप है जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्माविषे अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं. हे रामजी ! ऐसे भी किसी देश अथवा किसी कालविषे होवै जो स्वर्ण अरु भूषणविषे कछु भेद होवै स्वर्ण भिन्न होवै अरु भूषण भिन्न होवै परंतु आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ऐसे ही आत्मा प्रकाशता है अरु अपने स्वभावविषे स्थित है अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं जैसे मृत्तिकाकी सैन्य नाना प्रकारकी संज्ञाको धारती है परंतु मृत्तिकाते इतर कछु दूसरी वस्तु नहीं तैसे फुरणेकरिकै नाना प्रकारकी संज्ञा दृष्टि भी आती हैं परंतु आत्माते भिन्न कछु नहीं वही रूप है. हे रामजी ! जो पदार्थ भासते हैं सो अनुभव करिकै भासते हैं पदार्थकी सत्ता अनुभवते इतर कछु नहीं जब तू अनुभवविषे स्थित होकरि देखैगा तब अनुभवरूप अपना आप ही भासैगा अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है तिसके जाननेका नाम ज्ञान है. हे रामजी ! ज्ञान विना जो तप यज्ञ दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं सब क्रियाकी सिद्धता ज्ञानकरि होती है जैसे उलूककी क्रिया रात्रिविषे होती है सो दिन हुएते मिथ्या हो जाती है तैसे तप दान आदिक क्रिया ज्ञानके उदय विना व्यर्थ होती है. हे रामजी ! जो कछु क्रिया ज्ञानके निमित्त करिये सो पुरुष-

प्रयत्न श्रेष्ठ है अरु इनते अन्यथा है सो व्यर्थ है अरु धनके उपजावने-
विषे भी अनर्थ होता है अरु राखनेविषे भी नष्ट है परंतु जो
ज्ञानके साधननिमित्त इसको राखिये अरु दीजिये तब यह अमृत हो
जाता है. हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है जैसे मलिन नेत्रवालेको
रूपविपर्यय भासता है जैसे स्वप्नसृष्टि होती है तिसविषे अज्ञ तज्ज्ञ भी
भासते हैं परंतु असत्‌रूप हैं तैसे यह जगत् जो विद्यमान भासता है
सो अविद्यमान है अरु आत्मा सदा विद्यमान है. हे रामजी ! जो
विद्यमान देव विष्णु है तिसको त्यागिकरि अपर देवका पूजन करते हैं
तिनकी पूजा सफल नहीं होती अरु विष्णु तिसपर कोपायमान भी
होता है सो विष्णु देव विद्यमान कैसे है श्रवण कर. हे रामजी !
आत्मा अनुभवरूप सो विद्यमान देखै है तिसको त्यागिकरि जो अप-
रका पूजन करते हैं सो जन्ममरणके बंधनते मुक्त नहीं होते मूढताविषे
रहते हैं अरु आत्मदेवकी पूजा श्रवण कर जो कछु अनिच्छित आवै
सो तिसको अर्पण करिये अरु ऐसी पूजाविषे भी स्थित नहीं होना जो
इसके जाननेवाला है तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है.
हे रामजी ! इस आत्मदेवते इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेदपूजा है सो
तुच्छ है जब तू आत्मपूजाविषे स्थित होवै तब अपर पूजा तुझको सूखे
तृणकी नाईं भासैगी अरु दान भी आत्मदेवको करणा है सो किस-
करिकै करनेयोग्य है बोधकरिकै करने योग्य है अरु कैसे उत्पन्न होता
है प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है अरु संतोष होवै यथा-
लाभविषे संतुष्ट होना अरु ब्रह्मविद्याका विचार करना अरु संतका
संग करना इन साधनकरि जब बोधरूपी सूर्य उदय होवैगा तब द्वैतरूपी
अंधकार नष्ट हो जावैगा ज्ञानरूप ही भासैगा बहुरि जो ज्ञान उपजा है सो
भी शान्त हो जावैगा ताते उसी देवकी पूजा करु जिसकरिकै आत्मपदकी
प्राप्ति होवै अरु आत्मपदकी पूजाके निमित्त फूल भी चाहिये सो आत्म-
विचार करना अरु सम जो है चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख करणी अरु
यथालाभविषे संतुष्ट रहना संतकी संगति करनी इन फूलनकरिकै निवे-
दन करना यह पूजा भी तब होती है जब अंतःकरण शुद्ध होता है अरु

तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है जब ज्ञान उपजा तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु गुरु अरु शास्त्रते जो वस्तु सुनी है तिसविषे स्थिति होती है अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है तब ज्ञानी कहाता है जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है तब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप ही भासता है उसको शस्त्र काटि नहीं सकते अरु सिंह सर्पका भेद नहीं होता अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता. हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है जैसी भावना करता है तैसा ही आगे हो भासता है जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है तब शस्त्र हो भासते हैं सर्प अग्निविषे सब अपने अपने अर्थाकार भासते हैं अरु जो सर्पमें आत्मभावना करता है तब सर्व आत्मा ही भासता है दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं तौ दिखाई कैसे देवै अरु जो पुरुष कृतकृत्य नहीं भया अरु आपको कृतार्थ मानता है अरु दुःखनिवृत्तिका उपाय नहीं करता तौ दुःखके आयेते दुःख ही देवैगा अरु दुःख इसको चलाय ले जावैगा अरु सुख जब आवैगा तब सुख भी इसको चलाय ले जावैगा. हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहता है वाणी करिकै अरु निश्चयते रहित है अरु शास्त्र भी बहुत देखता है तब वह महामूर्ख है जैसे जन्मका अंध होता है अरु सूर्यको नहीं जानता है तैसे वह आत्मा अनुभवते रहित है जब आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा तब ऐसे आनंदको प्राप्त होवैगा जिसके पाएते अपर पदार्थ रसते रहित भासैंगे ब्रह्माते आदिक काष्ठपर्यंत सब पदार्थ विरस हो जावैंगे ताते आत्मपरायण होहु सदा आत्मपदकी भावना करहु. हे रामजी! जैसी भावना होती है तैसा जगत् भासता है जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसी वस्तु राखिये तैसा प्रतिबिंब होता है तैसे ही जैसी भावना करता है तैसा रूप जगत् भासता है ताते जगत् ब्रह्मरूप जान अपर दूसरा भासै सो भ्रममात्र जान जैसे पत्थरकी शिलाके ऊपर पुतलियां लिखते हैं सो शिलारूप ही हैं तैसे यह जगत् सब आत्मस्वरूप है जब आत्मपदकी तुझको प्राप्ति होवैगी तब सब पदार्थ विरस होवैंगे. हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है जो पुरुष

इस जगत्को पदार्थ करि जानता है अरु कहता है हम मुक्त होवैंगे सो ऐसे है जैसे अंधकूपविषे जन्मका अंध गिरै अरु कहै अंधकारके साथ मैं सचक्षु होऊंगा सो मूर्ख है तैसे आत्मज्ञान विना मुक्त नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम द्व्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८२ ॥

त्र्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८३.

ब्रह्मैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! अहंताते आदि लेकरि जो जगत् भासता है सो मिथ्या भ्रमकरिकै उदय हुआ है इसको त्यागिकरि अपने अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु इस मिथ्या जगत्विषे आस्था करनेकी मूर्खता है अरु जो ज्ञानवान् है तिसको जगत् भ्रमका अभाव है अब ज्ञानी अरु अज्ञानी दोनोंका लक्षण श्रवण कर. हे रामजी ! जैसे किसी पुरुषको ताप चढता है तिसका हृदय जलता है अरु तृषा बहुत होती है अरु जिसका ताप नष्ट हो गया तिसका हृदय शीतल होता है अरु जलकी तृषा भी नहीं होती जैसे जिस पुरुषको अज्ञानरूपी ताप चढा हुआ है तिसका हृदय जलता है अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है अरु जिनके हृदयते अज्ञानरूपी ताप मिटि गया है तिसका हृदय शीतल होता है अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा मिट जाती है अब ताप निवृत्त करनेका उपाय श्रवण कर शास्त्रके अर्थवादकरि बुद्धि विभ्रम हो जाती है अरु मैं तुझको सुगम उपाय कहता हौं कि निरहंकार होना यही सुगम उपाय है न मैं हौं न यह जगत है जब तू ऐसे निश्चयको धारैगा तब सब जगत् तुझको ब्रह्मरूप भासैगा अरु किसी पदार्थकी वांछा न रहैगी जब सब पदार्थको मिथ्या जानकरि अपना भी अभाव करैग तब पाछे प्रत्यक् चेतन परमानंदस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहैगा. हे रामजी ! यह अहंतारूपी यक्ष जो उठा है सो मिथ्या है अरु इस मिथ्या पुरुषने नाना प्रकारका जगत् कल्पा है सो

अहंकार भी मिथ्या है अरु जगत् भी मिथ्या है जब तू अपने स्वरूप-विषे स्थित होवैगा तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा जैसे स्वप्नविषे जगत् भासता है अरु सुंदर पदार्थ भासते हैं तिनकी इच्छा करता है जबलग जागा नहीं तबलग जानता है कि यह पदार्थ सदैव हैं नाश कदाचित् नहीं होते अरु कहता है कि अमुकका रूप देखिये अमुकका भोजन करिये इत्यादिक इच्छा करता है जब जाग उठा तब जानता है कि मेरा ही संकल्प था बहुरि वह पदार्थ सुन्दर स्मरण भी होते हैं अथवा भासते हैं तौ भी उनको मिथ्या जानता है तैसे जब आत्मस्थितिविषे जागता है तब सर्व ब्रह्म ही भासता है. हे रामजी ! इस जगत्का बीज अहंता है जैसे दुःखका बीज पाप होता है तैसे जगत्का बीज अहंता है ताते तुम निरहंकार पदविषे स्थित होहु यह सब तेरा ही स्वरूप है भ्रमकरिकै जगत् भासता है. हे रामजी ! जगत्का अत्यंत अभाव है जैसे जेवरीविषे सर्पका अत्यन्त अभाव है अरु भ्रमदृष्टिकरिकै सर्प भासता है जब विचाररूपी दीपकसे देखता है तब सर्पका अभाव हो जाता है तैसे आत्माविषे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है जब विचारकरिकै जगत्का अभाव निश्चय करैगा तब आत्मपद ज्योंका त्यों भासैगा जैसे वसंतऋतु आती है तब फूल फल टास दृष्टि आते हैं सो एक ही रस एती संज्ञाको धारता है तैसे तू जब आत्मपदविषे स्थित होवैगा तब तुझको सब आत्मरूप ही भासैगा अरु सर्व नाम भी आत्मा ही भासैगा. हे रामजी ! आदि भी आत्मा ही है अरु अंत भी आत्मा ही होवैगा मध्य जो जगत्के पदार्थ भासते हैं तिनकी ओर मत जावहु जो इनके जाननेवाला है जिसकरि सब पदार्थ प्रकाशते हैं तिसविषे स्थित होहु अरु यह मनुष्य सब मृगकी नाई हैं जैसे मरुस्थलविषे जल जानकरि दौडते हैं तैसे जगत्रूपी मरुस्थलकी भूमिका शून्य है अरु तीनों लोक मृगतृष्णाका जल है तिसविषे मनुष्यरूपी मृग दौडते हैं अरु दौडते दौडते हार पडते हैं शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होते काहेते कि जगत्के पदार्थ सब असत्य हैं. हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार सब मृगतृष्णाका जल है इनको जो सत्य जानता है सो

मूर्ख है अरु यह जगत् गंधर्वनगरकी नाईं है तू जागिकरि देख इसको सत्य जानकरि काहेको तृष्णा करता है इसको सत्य जानिकरि तृष्णा करनी यही बंधन है. हे रामजी ! तू आत्मा है इसकी इच्छाकरि बंधमान क्यों होता है जैसे सिंह पिंजरेविषे आया दीन होता है अरु बलकरि जब पिंजरेको तोड़ि डारता है तब बडे वनविषे जाय निवास करता है अरु निर्भय होता है तैसे तू भी वासनारूपी पिंजरेको तोडिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु जो आत्मा सर्वका अधिष्ठान है अरु सबते उत्कृष्ट है तिस पदको तू प्राप्त होवैगा जब इस संसारकी वासना नष्ट होवैगी तब आनंद होवैगा अरु तू निर्वाणपदको प्राप्त होवैगा अरु अक्रूर होवैगा परमउपशम ज्ञेय पदको प्राप्त होवैगा अरु द्वैतभास मिटि जावैगा केवल परमार्थ सत्ता भासैगी इसीका नाम निर्वाण है अरु यह चारो भूमिका शांतिके स्थान हैं जैसे कोऊ पैंढेकरि तपता आवै अरु तिसको शीतल स्थान प्राप्त होवै तब शांतिको पाता है तैसे यह चारो शांतिके स्थान हैं निर्वाणता अरु निरहंकारता अरु वासनाका त्याग अरु परम उपशम इन करिकै ज्ञेयविषे स्थित होना यह शांतिका स्थान है जब तू स्थित होवैगा तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटीका अभाव हो जावैगा केवल द्रष्टा ही रहैगा. हे रामजी ! द्रष्टा भी उपदेश जतावनेके निमित्त कहा है जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका होवे केवल अपने आपविषे स्थित है द्वैत जो है चैत्य तिसते रहित अद्वैत चेतन है शुद्ध है तिसविषे स्थित होकरि जगत्का त्याग करु यह जगत्बुद्धि जन्मके देनेहारी है जो जगत्के पदार्थ सुखदायी भासते हैं सो दुःखके देनेहारे हैं इनको विष जानकरि त्याग कर जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं तैसे यह जगत् अनहोता भासता है आत्माविषे दृश्य कछु नहीं एक ही पदार्थविषे दो दृष्टि हैं ज्ञानी उसको आत्मा जानते हैं अरु अज्ञानी जगत् जानते हैं. दोहा-सब भूतनकी रात्रि सो, संतनका दिन होय ॥ जो लोकन दिन मानिया, संत रहैं तब सोय ॥ १ ॥ ज्ञानी परमार्थतत्त्वविषे जागे हैं अरु संसारकी ओरते सोय रहे हैं अरु अज्ञानी परमार्थतत्त्वते सोये हुए हैं अरु संसारकी ओर सावधान हैं. हे रामजी ! यह जगत् मनते फुरा है अरु

ज्ञानीका मन सत्पदको प्राप्त भया है इसकरिकै जगत्‌की भावना नहीं फुरती है जैसे बालकको संसारके पदार्थका ज्ञान नहीं होता तैसे ज्ञानीके निश्चय विषे जगत् कछु वस्तु नहीं. हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है तब जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं भासता जैसे जलकी बूंद जल विषे डारिये तौ भिन्न नहीं भासती तैसे ज्ञानीको जगत् भिन्न नहीं भासता जैसे बीज-विषे वृक्ष होता है तैसे मनविषे जगत् स्थित होता है जैसे वृक्ष बीजरूप है तैसे जगत् मनरूप है जब जगत् नष्ट होवै तब मन भी नष्ट हो जावैगा अरु मन नष्ट होवै तब दृश्यभी नष्ट होवैगा एकके अभाव हुए दोनोंका अभाव हो जाता है अरु मन नष्ट होवै तौ फुरना भी नष्ट होवै अरु फुरना नष्ट होवै तौ मन भी नष्ट होता है. हे रामजी! यह जगत् अन्तर बाहर जो भासता है सोई मन है. तातें मनको स्थिर करि देखैगा तब जगतकी सत्यता नहीं भासेगी अज्ञानीके हृदय विषे जगत दृढ स्थित है तातें दुःख पाता है जैसे बालकको अपने परछाईं विषे भूत भासता है अरु दुःख पाता है अरु अपर कोऊ निकट खडा है तिसको नहीं भासता वह दुःख नहीं पाता. हे रामजी! यह जगत कछु सत वस्तु होता तौ ज्ञानवानको भी भासता सो ज्ञानीको नहीं भासता तातें जगत कछु वस्तु नहीं जैसे एकही स्थान-विषे दो पुरुष बैठे हैं अरु एकको निद्रा आयी है तिसको स्वप्न जगत् भासता है अरु नाना प्रकारकी चेष्टा होती है अरु दूसरा जो जागता बैठा है तिसको उसका जगत् नहीं भासता तैसे जो पुरुष परमार्थ सत्ता विषे जागृत है तिसको जगत् शून्य भासता है. हे रामजी! यह जगत मिथ्या है तिसकी तृष्णा तू काहेको करता है अपने स्वभाव विषे स्थित होहु यह जगत परस्वभाव है ऐसे जानिकरि भावै जैसी चेष्टा करु तुझको बन्धन न करैगी अरु पूर्व पदकी प्राप्ति होवैगी जैसे सूखे तृण अग्निके जले हुएको पवन उडाय ले जाता है तब नहीं जानता कि कहां गया तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाया अरु निरहंकारतारूपी पवनकरि उडाया संसाररूपी तृण न जानैगा कि कहां गया जैसे लाख योजन पर्यंत चला जावै तौ भी आकाश ही दृष्टि आता है सब सृष्टिको धारि रहा है तैसे सब दृश्य जगतको आत्मा धारता है संसारका शब्द अर्थ

आत्माविषे कोऊ नहीं इसको छोडिकरि देख जो सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्मा ही है. हे रामजी। रूप अवलोकन मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं ताते इनका त्याग करु जैसे मरुस्थलविषे जलाभास मिथ्या है तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या भ्रममात्र है इसके संबन्ध करिके दुःखी होता है जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा मिथ्या है तैसे आत्माविषे जगत् है तू आत्मा ब्रह्म है अरु दुःखते रहित है अपने स्वभाव विषे स्थित होहु अरु आत्मदृष्टि करिकै देख कि सर्व आत्मा है अथवा जगतको मिथ्या जान तौ भी शेष आत्मपद रहैगा जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिविषे अभाव हुए शांतपद शेष रहता है तैसे जगतके अभाव कियेते आत्मपद शेष भासेगा यह जगत् अत्यन्त अभाव है अरु जो दृष्टि आता है सो भ्रममात्र है एक कालविषे होता है अरु दूसरे काल-विषे नष्ट हो जाता है स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव हो जाता है अरु जाग्रतविषे स्वप्नका अभाव हो जाता है अरु सुषुप्तिविषे दोनोंका अभाव हो जाता है ताते भ्रममात्र है अरु विश्व आत्माका चमत्कार है जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं तैसे आत्माविषे जगत् है अहन्ता करिकै उदय होता है अहन्ताके अभावते अभाव हो जाता है जिनको अहन्ता-का अभाव हुआ है वही संत हैं अरु उत्तम पुरुष हैं जिन महानुभाव पुरुषों-का अभिमान नष्ट हो गया है अरु भोगकी आशा नष्ट हो जाती है वह निर्भ्रांतिरूप नित्य ही समाधिरूप होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैकताप्रतिपा-दनं नाम त्र्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८३ ॥

चतुरशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८४.

हरिणोपाख्याने वृत्तांतयोगोपदेशवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है अरु वन-विषे जलता है वह कौन वृक्ष है समाधानरूप जिसके नीचे आया शांतपदको प्राप्त होवै उसके फूल फल लता कैसे होते हैं अरु वृक्ष कहां

होता है सो कृपा करि कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिस प्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है सो श्रवण कर, क्रमकरिकै इसके पत्र पुष्प लताते आदि सब समाधानरूप इस वृक्षका है. हे रामजी ! यह वृक्ष सब जीवको कल्याणके निमित्त साधने योग्य है सो अब तू इसका क्रम सुन. बलकरिकै उत्पन्न होता है अरु संत जनोंके वनविषे यह ध्यानरूपी वृक्ष उपजता है अरु चित्तरूपी पृथ्वीविषे लगता है अरु वैराग्यरूपी इसका बीज है सो वैराग्य दो प्रकारका होता है जो कोऊ दुःख कष्ट प्राप्त होवै तिसकरि भी वैराग्य उपजि आता है अथवा शुद्ध-हृदय निष्काम होता है तो भी वैराग्य उपजता है तिस वैराग्यरूपी बीजको चित्तरूपी भूमिकाविषे पाता है अरु जब वासनारूपी हल फेरता है संतकी संगति अरु सच्छास्त्ररूपी जलकरि सिंचता है मन-रूपी क्यारीविषे सो जल निर्मल है शीतल है अरु हृदयगम्य है तिस कोमलता अरु दयारूपी जलकरि बीजको सिंचता है तब बढनेकी आशा होती है अरु सब क्रियारूपी जाड करिकै अशुभरूपी कुण्डेको दूर करता है अरु बहुत जलते भी रक्षा करता है सो आत्मविचाररूपी सूर्यकी किरणोंकरि सूखता है अरु तिसके चौफेर धैर्यरूपी वाणी करिये अरु तप दान तीर्थ स्नानरूपी थडे ऊपर रख बैठना जो बीज जलि न जावै अरु आशारूपी पक्षीते रक्षा करनी जो वैराग्यरूपी बीजको काढि न ले जावै अरु अभिलाषारूपी बूढे बैलते रक्षा करनी कि क्षेत्रविषे प्रवेश करिकै इसको मर्दन न करै तिसके निमित्त संतोष अरु संतोषकी स्त्री मुदिता दोनों बैठाय रखने अरु इस बीजका नाश-कर्ता जो मेघते उपजता है गडा तिसते भी रक्षा करनी सो गडा क्या है संपदा धनकी प्राप्ति होनी अरु सुन्दर स्त्रियोंकी प्राप्ति होनी सो वैरा-ग्यरूपी बीजका नाशकर्त्ता गडा है एक इसकी रक्षाका सामान्य उपाय है अरु एक विशेष उपाय है जो तप करना अरु इंद्रियोंको सकुचावना अरु दुःखीपर दया करनी अरु सन्तोषमात्र पाठ जाप करना इत्यादिक शुभ क्रिया करनी यह शुभ क्रियारूपी पुतली यंत्री इसके विद्यमान राखिये तौ दूर हो जाता है अरु दूसरा परम उपाय यह है कि सन्तकी

संगति करनी अरु सच्छास्त्रका श्रवण करना अरु प्रणव जो ॐकार है तिसका ध्यान जप करना अरु तिसके अर्थको विचारना यही जो है त्रिशूलरूप तिसका त्रिशूल करना सो गडेके नाशका परम उपाय है जब एते शत्रुते रक्षा करै तब बीजकी उत्पत्ति होवै तिसको सन्तके संग अरु सच्छास्त्रके विचाररूपी वर्षाकालके जलकरि सींचिये तब अंकुर निकसता है अरु बडा प्रकाश होता है जैसे द्वितीयाका चन्द्रमा होता है अरु सब कोऊ तिसको प्रणाम करते हैं तैसे संतोष दया अरु यशरूपी अंकुर निकसता है तिसके दो पत्र निकसते हैं एक वैराग्य दूसरा विचार सो दिन दिन प्रति बढता है अरु शास्त्रते जो श्रवण किया है कि आत्मा सत्य है अरु जगत् मिथ्या है तिसको वारंवार अभ्यास करना इस जलके सिंचनेकरि अंकुर दिन दिन प्रति बढता जावैगा अरु तिसके स्तंभ बडे होवैंगे. हे रामजी! जब टास बडे होते हैं तब वानर उसपर चढिकरि तोड डारते हैं सो रागद्वेषरूपी वानर हैं ताते इस वृक्षको दृढ वैराग्य अरु संतोष अभ्यासरूपी रसकरि पुष्ट करना जैसे सुमेरु पर्वत होता है तैसे संतोषकरि पुष्टि करनी जब ऐसे हुआ तब सुंदर पत्र अरु टास लगैंगे अरु फूल मञ्जरी इसके साथ लगैंगे अरु बडे मार्ग पर्यंत इसकी छाया होवैगी शांति शीतलता शुद्धता अरु कोमलता दया यश कीर्ति इत्यादिक गुण आनि प्रगट होवैंगे तिसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पाता है अरु शीतल होता है अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ताप मिटि जाते हैं अरु परमशांतिको प्राप्त होता है. हे रामजी! यह मैं तुझको ध्यानरूपी वृक्ष कहा है जहां यह वृक्ष उत्पन्न होता है तिस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती जो इस वृक्षकी शरणको प्राप्त होता है तिसके ताप मिटि जाते हैं अरु शांतिवान् होता है अरु वृक्ष जो बढता है सो ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढता है अरु इसविषे वैराग्यरूपी रस है अरु संतोषकरि इसकी छील है तिसकरि पुष्ट होता है जो पुरुष इसका आश्रय लेवैगा सो शांतिको प्राप्त होवैगा. हे रामजी! जबलग मनरूपी मृग इस ध्यानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता तबलग भटकता फिरता है अरु

शांतिको नहीं प्राप्त होता जैसे मृग वनविषे भटकता है तैसे भटकता है तिसको द्वैत अज्ञान प्रमादरूपी वधिक मारने लगता है तिसकरि दुःख पाता है तिसके भयकरि गाँवके निकट आता है तब वह आपो आप इसको पकड़करि खेद देते हैं तिस करि बडे कष्टको पाता है सो गांववासी इंद्रियां हैं जब इनकी ओर आता है तब अपने अपने विषयकी ओर बन्धायमान करती हैं इनके भयकरि बहुरि वनको जाता है तहां वनकी तप्तकरि दुःखी होता है सो विषयकी अप्राप्तिरूपी तप्त है तिसको त्याग करि रसरूप स्थानको शांतिके निमित्त दौडता है जब वहां जाता है तब कामरूपी श्वान इसके मारनेको दौडता है तिसके भयकरि बहुरि बनकी ओर धावता है तब क्रोधरूपी अग्नि जलाती है अरु वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं अरु लोभ मोहरूपी अँधेरी चलती है तिस करि अन्ध हो जाता है हरे तृणको देखकरि ग्रहण करता है तब टोयेविषे गिर पडता है वह टोया तृणकरि आच्छादित है सो तृण कौन है पुत्र धन तिसको सुन्दर देखकरि ग्रहण करती है तब ममताविषे गिर पडता है इस प्रकार दुःख पाता है. हे रामजी! जब यह मन झूठ बोलता है तब मृत्तिका विषे लोटता है ऐसी चेष्टा करता है अरु जब मनरूपी व्याघ्र आता है तब इसका भक्षण करि जाता है जब ध्यानरूपी वृक्षते विमुख होता है तब एते कष्टको पाता है जब मनरूपी व्याघ्र छूटता है तब आशा रूपी जंजीरविषे बन्धायमान होता है जबलग इस वृक्षके निकट नहीं आता तबलग बडे कष्ट स्थानोंको जाता है तमालवृक्षादिकके तले भी जाता है अरु कंटकके वृक्षों तले भी जाता है परन्तु शांतिवान् किसी स्थानविषे नहीं होता बडे कष्टको पाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे हरिणोपाख्याने वृत्तांतयोगोपदेशो नाम चतुरशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८४ ॥

अशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८९.

मनोमृगोपाख्यानयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार मूढबुद्धि मनरूपी हरिण भटकता है ताते मेरा यही आशीर्वाद है कि तुमको उस वृक्षका संग होवै जब उस वृक्षके निकट आता है तब शांति प्राप्त होती है अरु जब इसके नीचे आय बैठता है तब तीनों ताप अन्तःकरणते मिटि जाते हैं अपर जेते कछु वृक्ष हैं तिनके निकट गया मनरूपी मृग शांतिको नहीं पाता सो अपर वृक्ष कौन हैं विषयरूपी वृक्षके निकट गया शांतिवान् नहीं होता जब ध्यानरूपी वृक्षके निकट आता है तब शांतिको पाता है अरु बुद्धि प्रकाश आती है जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकारि खिल आता है बहुरि उसके अनुभवरूपी फल हैं अरु शास्त्रके विचाररूपी पत्र फूल हैं तिनको देखकारि बडे आनंदको प्राप्त होता है अरु वृक्षके ऊपर चढ जाता है, चढिकारि पृथ्वी भूमिका त्याग करता है जैसे सर्प अपनी कंचु-कीका त्याग करता है अरु नूतन सुंदर शरीरकारि शोभता है अरु जब उस वृक्षपर चढता है तब गिरता नहीं पत्र उसके बहुत बली हैं तिनके आश्रय ठहरता है सो कौन पत्र हैं ध्यानरूपी वृक्षके सच्छास्त्ररूपी पत्र हैं जब ध्यानरूपी वृक्षते उतरता है तब शास्त्रके अर्थविषे ठहरता है अरु जेते विषय पदार्थ देखाई देते हैं सो क्षारवत् दृष्टि आते हैं अरु अपनी पिछली चेष्टाको स्मरण कारिकै पछिताता है जैसे किसीने मद्य-पान किया होवै अरु तिसविषे नीच चेष्टा करै जब मद उतरता है तब पछताया करता है तैसे मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टाको धिक्कार करता है अरु कहता है कि बडा आश्चर्य है मैं एता काल इस वृक्षते विमुख हुआ भटकता फिरता हौं अब मुझको शांति प्राप्त हुई है जैसे दिनकी तप्त अभाव हुए चंद्रमुखी कमलिनीको शांति प्राप्त होती है तैसे मनरूपी मृगको शांति प्राप्त होती है. हे रामजी! पुत्र धन स्त्रियादिक जो दिखाई देते हैं तिनको संकल्पपुरकी नाईं अरु स्वप्नवत् देखता है जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नपुरको स्मरण करता है परंतु तिसविषे अभिमान

नहीं होता तैसे इनविषे भी अभिमान नहीं होता जब अनुभवरूपी फलका भक्षण करता है तब बडे आनंदको पाता है जिसविषे वाणी नहीं प्रवृत्त हो सकती परम शांत अरु निर्मलपदको प्राप्त होता है अरु निरतिशय पदको प्राप्त होता है जो मनका विषय होवै सो सातिशय पद है अरु जो मनका विषय नहीं सो निरतिशय पद है अरु जो इंद्रियोंका विषय है तिसका नाश भी होता है अरु जो इंद्रियों अरु मनका विषय नहीं तिसका नाश नहीं होता सो अविनाशी पदको पाता है अरु जैसे किसीको बाण लगता है अरु तिसकी विरोधी बूटी उसके सन्मुख राखिये तौ निकस आता है, तैसे अनुभवरूपी बूटीके सन्मुख हुए मोह बंधनरूपी शर खुल पडते हैं अरु परम पदको पाता है. हे रामजी! ज्ञानवान् जगत्ते मृतक हो जाता है उसको संसारका लेप कछु नहीं लगता जैसे लकडी विना अग्नि शांत हो जाती है तैसे वासनाते रहित ज्ञानवान्की चेष्टा शांत हो जाती है अर्थ यह कि संसारकी सत्यताते रहित चेष्टा होती है बहुरि संसाररूपी अग्नि उदय नहीं होता अरु द्वैत एक कल्पना भी मिटि जाती है अरु उन्मत्तकी नाईं अपने स्वरूपविषे घूर्म रहता है जैसे मरुस्थलकी धूपकी इच्छा पैंडोई नहीं करता तैसे ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता जिसने आत्म अनुभवरूपी अमृतपान किया है तिसको विषयरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती वह पुरुष सदा निर्वासी है जब यहां पुरुष निर्वासी होता है तब चञ्चल जो मनकी वृत्ति है सो सब लीन हो जाती है केवल आत्मत्वमात्र पद रहता है अरु मैं मेरा यह भावना नष्ट हो जाती है जबलग चित्तका संबंध होता है तबलग मैं मेरा भासता है जब चित्तका सम्बन्ध मिटा तब एकाकार हो जाता है जैसे एक सूखा काष्ठ अरु एक गीला काष्ठ होता है सो सूखा शुद्ध कहाता है अरु गीला उपाधिक कहाता है जब जल सूख गया तब शुद्ध होता है तैसे जब मनकी उपाधि नष्ट भयी तब शुद्ध आत्मा ही रहता है अरु एकरस भासता है. हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रमकरिकै भासता है जैसे पत्थरकी शिलाविषे पुतली अनउपजती भासती है सो न सत है न

असत् है, जब पत्थरते भिन्न करि देखिये तब सत् नहीं जो शिलाकरि देखिये तब वही रूप है तैसे जगत् आत्माते भिन्न सत्य नहीं आत्मसत्ताते आत्मरूप है जैसे छोटेबालकके हृदयविषे जगत्का शब्द अर्थ नहीं होता तैसे ज्ञानीकी चेष्टा भी प्रारब्धवेगिकरिके होती है परंतु उसके हृदयविषे जगत्के शब्द अर्थका अभाव है. हे रामजी ! जो कछु प्रारब्ध होती है सो अवश्य उसको भी आनि प्राप्त होती है मिटती नहीं शुभ अथवा अशुभ जैसे मेघते बूँदें गिरती हुई नष्ट नहीं होतीं मेघ मंत्रशक्तिकरिके नष्ट होता है तैसे प्रारब्धकर्म नष्ट नहीं होता अपर नष्ट होते हैं परंतु वह तिनविषे बंधायमान नहीं होता अज्ञानीके हृदयविषे संसार सत्य भासता है अरु भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं पदार्थका ज्ञान है अरु ज्ञानीके हृदयविषे आत्माका ज्ञान है संसारकी सत्यता तिसको नहीं भासती. हे रामजी ! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैं तुझको कहा है सो विधिसंयुक्त तिसकी सेवना करिये तौ अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है अरु बोधते रहित होकरि करता है तौ अनेक यत्नकरि भी फलकी प्राप्ति नहीं होती काहेते ऐसी भावना उसको नहीं प्राप्त होती कि आत्मा शुद्ध है अरु सत् चिद् आनंद है अरु जिनको यह भावना प्राप्त होती है तिनको भोगकी इच्छा नहीं रहती जैसे किसीने अमृतपान किया होता है तब अपर अमल अरु कटुक फलकी वांछा नहीं करता तैसे ज्ञानी इच्छा नहीं करता जैसे रुईके पोयेको अग्नि लगी अरु ऊपरते तीक्ष्ण पवन चला तौ नहीं जानता कि कहां जाय पडा तैसे जगत्रूपी रुईका पोवा ज्ञान अग्निकरि दग्ध किया हुआ अरु वैराग्यरूपी पवनकरि उड़ाया नहीं जाना जाता कि कहां जाय पडा आकाश ही आकाश भासता है जगत् सत् नहीं भासता तौ फिर तृष्णा किसकी करै तृष्णाते रहित स्थित होता है. हे रामजी ! दुःखका मूल तृष्णा है तृष्णाकरि भटकता है जैसे पर्वतके पक्ष थे तबलग उडते थे पक्ष विना उडनेते रहित भये गंभीर स्थिर हो रहे तैसे जब मनते वासना नष्ट हुई तब मन स्थिर हो जाता है. हे रामजी ! पैंडोई वांछित देशको तब जाय प्राप्त होता है जब इतर देशका त्याग करता है तैसे आत्मा शुद्धस्वरूप परमआनंद अपना आप

तब प्राप्त होता है जब धन लोक पुत्र ईषणाका त्याग करै जब आत्माकी प्राप्ति भयी तब निर्विकल्प समाधिकरि निर्विकल्प चेतनका साक्षात्कार होता है जब समाधिविषे साक्षात्कार हुआ तब उत्थानकालविषे भी समाधिस्थित होता है अरु परम निर्वाणपदको प्राप्त होता है अरु चित्तरूपी वल्ली दूर हो जाती है जैसे रसडीको बल होती है तिसको खैंचिकरि बहुरि छोडता है तब वह सूधी हो जाती है तैसे जिसको समाधिविषे साक्षात्कार हुआ तब उसको उत्थानकालविषे भी वही भासता है अरु जिसको उसका प्रमाद है तिसको जगत् भासता है. हे रामजी ! वस्तु एक है परंतु तिस विषे दो दृष्टि हैं जैसे जेवरी एक है सम्यक्दर्शीको जेवरी भासती है अरु असम्यक्दर्शीको सर्प हो भासता है तैसे ज्ञानवान्को आत्मा भासता है अरु अज्ञानीको जगत् भासता है जिस पुरुषने ज्ञानकरि जगत्को असत् नहीं जाना तिसको ऐसे जान जो चित्तकी अग्नि है तिसकरिकै कोई कार्य सिद्ध नहीं होता न शीत ही दूर होती है अरु जिसको स्वरूपकी इच्छा है अरु तृष्णाके नाश करनेका प्रयत्न करता है अरु जगत्को मिथ्या विचारता है सो विचार कियेते आत्मपदको प्राप्त होवैगा अरु तृष्णा भी तिसकी निवृत्त हो जावैगी. हे रामजी ! ज्ञानवान्की तृष्णा स्वाभाविक मिटि जाती है जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार मिटि जाता है तैसे वस्तुकी सत्ताकरि तिसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है अरु परमपदविषे स्थित होता है. हे रामजी ! जिसको दृष्टिविषे निरसता है सो उत्तम पुरुष है सो मनुष्य शरीरको पायकरि ब्रह्म होता है तिसको मेरा नमस्कार है वह मेरा गुरु है. हे रामजी ! जब इसकी बुद्धि विषयते विरस हुई तब कल्याण हुआ वैराग्यकरिकै बोध होता है अरु बोधकरिकै वैराग्य होता है परस्पर दोनों संबंधी हैं जब एक आता है तब दूसरा आता है जब यह आते हैं तब तीनों ईषणा निवृत्त हो जाती हैं जब तीनों ईषणा गयीं तब अमृतकी प्राप्ति होती है सो कैसे प्राप्त होती है श्रवण कर, संतका संग करना अरु सच्छास्त्रका श्रवण करना तिसकरि अपने स्वरूपका अभ्यास करना इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है यह तीनों श्रेष्ठ परस्पर ही एक हैं जैसे अष्ट चरणवाला कीट होता है जो प्रथम चरणको

राखिकरि अपर चरणको राखता है तब सुखेन चला जाता है तैसे संतके संग अरु सच्छास्त्रके श्रवणकरि आत्मपदका अभ्यास करता है तब शीघ्र ही आत्मपदको प्राप्त होता है अरु जगत्का अभाव हो जाता है. हे रामजी जगत्के भाव अरु अभावको ज्ञानी जानता है जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषु-प्तिको तुरीयावाला जानता है तैसे जगत्के भावअभावको ज्ञानी जानता है जैसे अग्निविषे सूखा तृण डारा दृष्टि नहीं आता तैसे ज्ञानवान्को जगत् दृष्टि नहीं आता. हे रामजी ! ज्ञानवान्को सर्वदा समाधि है उत्थान कदाचित् नहीं होता जबलग उस पदको प्राप्त नहीं भया तबलग साध-नाविषे जुडता रहै जब उस पदको प्राप्त भया तब फिरि यत्न कोऊ नहीं रहता. हे रामजी ! इस चित्तके दो प्रवाह हैं एक जगत्की ओर जाता है अरु एक स्वरूपकी ओर जाता है जो जगत्की ओर जाता है सो उपा-धिक है अरु जो स्वरूपकी ओर जाता है सो उपाधिको दूर करणेहारा है जैसे एक लकडी गीली होती है अरु एक सूखी होती है जो गीली है तिसविषे उपाधि जल है तिसकरि विस्तारको पाती है जब जल नष्ट हो जाता है तब शुद्ध होती है बहुरि प्रफुल्लित नहीं होती तैसे संसार-की सत्यताकरि चित्त वृद्ध होता है जब संसारकी वासना नष्ट होती है तब शुद्धपदको पाता है. हे रामजी ! वाद जो करते हैं सो दो प्रकारके हैं एक वाद जो किसीको दुःख देवै सो मूर्ख करते हैं अरु जो परस्पर मित्र-भावकरिकै तत्त्वका निरूपण करना सो ज्ञानवान् करते हैं जैसा वाद करता है तिसका दृढ अभ्यास करता है तैसा ही रूप हो जाता है जो कष्ट झगडा करता है तिसका वही रूप हो जाता है अरु जब स्वरूपका वाद मित्रताकरिकै करता है तब वही रूप होता है उस पदको पायकरि परम-शांतिको प्राप्त होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मनोमृगोपाख्यानयोगो-पदेशवर्णनं नाम पंचाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८५ ॥

इति पूर्वार्द्धं समाप्तम्.
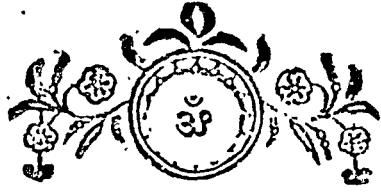
श्रीपरमात्मने नमः।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धं प्रारभ्यते।

षडशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८६.

स्वभावसत्तायोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जिस पुरुषने समाधानरूपी वृक्षके फलको जानकरि पान किया है अरु तिसको पचाया है उसको परम स्थिति प्राप्त होती है जैसे पंख टूटते पर्वत स्थित हो रहे हैं तैसे यह तृष्णारूपी पंखके टूटते स्थित हो जाता है. हे रामजी! जब उसको फल प्राप्त होता है तब चित्त भी आत्मरूप हो जाता है जैसे दीपक निर्वाण होता है तब जाना नहीं जाता कि कहां गया तैसे आत्मपदके प्राप्त हुए चित्त भिन्न होकरि दिखाई नहीं देता. हे रामजी! जबलग वह अकृत्रिम आनंद प्राप्त नहीं भया अरु तिस पदविषे विश्रांति नहीं पायी तबलग शांति प्राप्त नहीं होती. कैसा पद है जो निर्गुण है अरु शुद्ध है स्वच्छ है परम शांत है जब तिस पदविषे स्थिति होती है तब परम समाधि हो जाती है ऐसा त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं जो तिसको उतारे जैसे चित्रकी मूर्ति होती है तैसे उसकी अवस्था होती है चेष्टा भी सब होती है परंतु इच्छाते रहित है जैसे पंखते रहित पर्वत स्थित होता है तैसे मन अमन हो जाता है अरु शांत पदको प्राप्त होता है. हे रामजी! जिसके मनविषे संसारका अभाव हुआ है सो शांत पदको प्राप्त होता है अरु जो वासनासंयुक्त है तब मन है जिस क्रमकरिकै अरु जिस युक्तिकरिकै इसकी वासना क्षय होवै सो इसको कर्तव्य है. हे रामजी! जब वासना क्षय होती है तब बोधरूपी शेष रहता है जिस

क्रमकरि वह प्राप्त होवै सोई किया चाहिये तिस पदके प्राप्त हुए विना शांति कदाचित् न होवैगी जब चित्त तिस पदकी ओर आवै तब शांत होवै अरु दुःखते रहित होवै अरु अविनाशी होवै काहेते जो सव-आत्मनिर्विभाग है अरु अनन्त है परम शांतरूप है सबको कर्मका फल देनेहारा है. हे रामजी! जब ऐसे पदको प्राप्त होता है तब तिसको उत्थानकालविषे आत्मा ही भासता है उसको द्वैत नहीं भासता तब समाधिते उत्थान कैसे होवै ऐसा कोऊ समर्थ नहीं जो तिसकी समाधिते उतारै जब ऐसा पद प्राप्त होता है तब संसार विरस हो जाता है. हे रामजी! जब लग यह पुरुष मूर्तिवत् पुतली नहीं हुआ तबलग विषयका त्याग करै अरु जब ऐसी दशा हुई तब कर्तव्य कछु नहीं रहता जो त्याग करै अथवा न करै अरु यह मेरे निश्चय है जब ज्ञान इसको उपजैगा तब विषयते विरक्त हो जावैगा ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु पदार्थ हैं सो तिसको विरस हो जाते हैं ऐसा जो पुरुष है तिसकी सदा समाधि है. हे रामजी! जिसको समाधिका सुख आया है सो स्वाभाविक समाधिकी ओर आता है जैसे वर्षाकालकी नदी स्वाभाविक समुद्रको जाती है तैसे वह पुरुष समाधिकी ओर लगा रहता है जो पुरुष विषयते अचाह हुआ है अरु आत्मारामी भया है तिसकी वज्र-सारकी नाईं स्थिति होती है जैसे पंखते रहित पर्वत स्थित हुए हैं तैसे जिस पुरुषने संसारको विरस जानकरि त्याग किया है अरु आत्मा-विषे क्रीड़ा आत्माकरि तृप्त हुआ है तिसका ध्यान चलायमान नहीं होता. हे रामजी! जिस पुरुषकी चेष्टा भी होती है अरु संकल्पवि-कल्पते रहित है सो सदा मुक्तिरूप है तिसको कोऊ क्रिया बंधायमान नहीं करती क्रिया अरु साधनाका अभाव हो जाता है जिस पुरुषको विषय जगत् विरस हो गया है तिसको विषयहूकी तृष्णा कैसे होवै जब तृष्णा न रही तब दुःख कैसे होवै दुःख तबलग होता है जबलग विषयकी तृष्णा होती है विषयकी तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभावको त्यागता है. हे रामजी! जब अपने स्वभावविषे स्थित होवै तब परस्वभाव जो है इंद्रियोंके विषय सो रससंयुक्त कैसे भासै दुःख अरु तृष्णा कैसे होवै?

हे रामजी ! जब अपने स्वभावको जानता है तब परम निर्वाण पदको प्राप्त होता है जो आदि अरु अंतते रहित पद है तिसको पाता है सो तिसका उपाय श्रवण कर वेदका अध्ययन करना अरु प्रणवका जप करना जब इनते थकै तब समाधि जो है चित्तकी वृत्तिका रोकना सो रोकै जब बहुरि थकै तब वही जाय पाठ करै जब ऐसे दृढ अभ्यास होवै तब तिस पदको प्राप्त होवैगा जो संसारके पार गमनका मार्ग है जब तिसको पाया तब परमशांतिको प्राप्त होवैगा अरु स्वच्छ निर्मल अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे स्वभावसत्तायोगोपदेशो नाम षडशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८६ ॥

सप्ताशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८७.

मोक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह संसार बड़ा गंभीर है जो तरना कठिन है जिसको तरनेकी इच्छा होवै तिसको यह कर्तव्य है जो वेदका अध्ययन अरु प्रणवका जप अरु चित्तको स्थिर करना जब ऐसे उपाय करै तब ईश्वर इसपर प्रसन्न होवैगा तब इसके हृदयविषे विवेकका कणका उत्पन्न होवैगा तिसकरिकै संसार असत्य भासैगा अरु संतजनोंका संग प्राप्त होवैगा. सो संतजन कैसे हैं शुभ आचार है जिनका अरु परम शीतल हैं अरु गंभीर ऊंचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्ष हैं अरु यश कीर्ति शुभ आचाररूपी फूल अरु पत्रोंसहित हैं ऐसे संतजनकी संगति जब प्राप्त होती है तब जगत्‌के रागद्वेषरूपी तम मिटि जाते हैं जैसे पंडोईके शीशके ऊपर भार होवै अरु तपनाकरि दुःखी होवै अरु शीतल छाया वृक्षकी तिसको प्राप्त होवै तब शीतल होता है अरु फलके भक्षणेकरि तृप्त होता है तब थकेका कष्ट दूर हो जाता है तैसे संतके संगकरि सुखको प्राप्त होता है जैसे चंद्रमाका अमृत किरणोंकरि शीतल होता है तैसे संतजनके वचनोंकरि शांति होती है. हे रामजी ! संतजनके

दर्शन कियेते पाप दग्ध हो जाता है अरु जो पुरुष तप यज्ञ व्रत सकाम करते हैं तिनकी संगति न करिये वह कैसे हैं जैसे यज्ञका स्तंभ होता है सो पवित्र भी होता है परंतु उसकी छाया कछु नहीं ताते उसके नीचे सुख कोऊ नहीं पाता. हे रामजी! जेते कछु सकाम कर्म हैं सो जन्म मरणको देनेहारे हैं यद्यपि यज्ञ व्रत जिज्ञासु भी करते हैं तौ भी उनमें विशेष है. काहेते कि वे निष्काम हैं अरु विषयविषे तिनको विरस भावना है अरु तिनका शुभ आचार है. हे रामजी! ऐसे जिज्ञासुकी संगति विशेष है जिसकी चेष्टाको सब कोऊ स्तुति करते हैं अरु सबको सुखदायक भासता है अरु नवनीत कोमल सुंदर अरु स्निग्ध होता है ऐसा जिज्ञासु होता है तिसको संतकी संगति प्राप्त होती है. हे रामजी! फूलके बगीचे अरु सुंदर फूलकी शय्या आदिक विषयते ऐसा निर्भय सुख प्राप्त नहीं होता जैसा निर्भय सुख संतकी संगतिकरि प्राप्त होता है अरु तिनका सदा आत्मविषे निश्चय रहता है. हे रामजी! ऐसे ज्ञानवान्‌की संगति करिकै इसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है परंतु जब हृदय शुद्ध होता है जबलग हृदय मलिन है तबलग नहीं प्राप्ति होती जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिंबको ग्रहण करती है अरु लोहेकी शिला प्रतिबिंबको ग्रहण नहीं करती तैसे जब इसका हृदय उज्ज्वल होता है तब संतके वचन इसके हृदयविषे ठहरते हैं जैसे वर्षाकालका बादल थोडेसे बहुत हो जाता है जब इसका हृदय शुद्ध होता है तब बुद्धि बढती जाती है जैसे वनविषे केलेका वृक्ष बढता जाता है तैसी बुद्धि बढती जाती है जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है तब वह रूप हो जाती है बुद्धिकी भिन्न संज्ञाका अभाव हो जाता है जैसे लोहेको पारसका स्पर्श होता है तब सुवर्ण हो जाता है बहुरि लोहेकी संज्ञा नहीं रहती तैसे आत्मपदकी प्राप्ति हुए बुद्धिकी संज्ञा नहीं रहती अरु विषयभोगकी तृष्णा भी नहीं रहती. हे रामजी! इसको दीन जो किया है सो विषयकी तृष्णा अभिलाषाने किया है जब तृष्णाका त्याग किया तब परमनिर्मलताको प्राप्त होता है जैसे हस्ती शिरपर मृत्तिका डारता है तबलग मलिन है अरु जब नदीविषे प्रवेश किया तब निर्मल

हो जाता है तैसे जब तृष्णारूपी राखका त्याग किया अरु आत्माविषे स्थित भया तब निर्मल होता है. हे रामजी ! जब भोगकी इच्छा त्यागी तब बडी शोभाको धारता है जैसे सुवर्ण अग्निविषे तपाया तब मैल जलि जाता है अरु उज्ज्वल रूपको धारता है. हे रामजी ! भोग-रूपी बडा विष है तिसको दिनदिनविषे त्याग करना विशेष है जब तृष्णाका त्याग करता है तब मुख भी बडी शोभाकरि शोभता है जैसे राहु दैत्यते रहित हुआ चंद्रमाका मुख शोभा पाता है तैसे तृष्णाके वियोग हुए पुरुषका मुख शोभता है. हे रामजी ! जब इसको भोगते वैरा-ग्य होता है तब दो पदार्थकी प्राप्ति होती है जैसे नूतन अंकुरके दो पत्र होते हैं तैसे एक संतकी संगति अरु एक सच्छास्त्रका विचार प्राप्त होता है अरु तिनविषे दृढ भावना होती है तब अभ्यासकरिकै वही रूप होता है अरु परमानंदरूप होता है जिसको वाणीकी गम नहीं तब भोगकी इच्छाते मुक्त होता है अरु परमशांतिसुखको पाता है जैसे पिंजरेसों निकसि-करि पक्षी सुखी होता है तैसे सुखी होता है. हे रामजी ! इसको भोगकी इच्छाने दीन किया है जब इच्छा निवृत्त होती है तब गोप-दकी नाईं संसारसमुद्रको लंघि जाता है अरु तीनों जगत् सूखे तृणकी नाईं भासते हैं. हे रामजी ! जब भोगकी इच्छा त्यागी तब यह ईश्वर हुआ जिस पुरुषको आत्मसुख प्राप्त हुआ है सो भोगकी इच्छा कदाचित् नहीं करता जब भोग आन प्राप्त होते हैं तब भी उसको विरस भासते हैं अरु मिथ्या भासते हैं ताते भोगको नहीं चाहता जैसे जालते निकसा हुआ पक्षी बहुरि जालको नहीं चाहता तैसे वह पुरुष भोगको नहीं चाहता जब विषयकी तृष्णा निवृत्त होती है तब परम शोभाको धारता है संतका वचन उसको शीघ्र ही प्रवेश करता है. हे रामजी ! मोक्षरूपी स्त्री है अरु तिसके कानके भूषण संतकी संगति हैं जब साधुकी संगति होती है तब अशुभ क्रियाका त्याग हो जाता है अरु बिराने धनकी इच्छा रहती है अरु जो कछु अपना होता है तिसको भी त्यागनेकी इच्छा करता है अरु भले भोग जो पाने निमित्त आते हैं तिनको विभाग देकरि खाता है जो कछु होता है तिसविषे

स्त्री देकरि खाता है बडे उत्तम भोगते लेकरि सागपर्यंत देकरि खाता है, यथाशक्ति प्रमाण जब यह ऐसे हुआ तब फेर ऐसे हो जाता है जब कोऊ शरीर मांगै तब शरीर भी देता है, काहेते जो देनेका अभ्यास हो जाता है अरु लोकते साग माँगनेकी इच्छा भी नहीं रखता तिसकरि संतोषसाथ यथाप्राप्त चेष्टा करता है, तप करता है, दान करता है, यज्ञ- व्रत ध्यानकरि पवित्र रहता है अरु तृष्णाका त्याग किया है. हे रामजी ! ऐसा दुःख क्रूर नर विषे भी नहीं, जैसा दुःख तृष्णाकरिकै होता है अरु जो धनवान् हैं तिनको धनकी चिंता बहुत रहती है, उपजानेकी चिंता है अरु राखनेकी चिंता है, उठते बैठते खाते पीते चलते सोते सदा धनकी चिंता रहती है, इस ही चिंताविषे पचि पचि मरि जाते हैं, बहुरि जन्मते हैं. हे रामजी ! निर्धनको भी चिंता रहती है परंतु थोरी होती है, जबलग चिंता रहती है तबलग दुःखी रहता है; जब चिंता नष्ट हुई तब परम सुखी होता है. हे रामजी ! यद्यपि धनी होवै अरु संतोष नहीं तब परमदरिद्री है अरु जब धनते हीन है परंतु संतोष है तब परमईश्वर है, जिसको संतोष है तिसको विषय बंध नहीं करि सकते. हे रामजी ! जबलग धनकी इच्छा नहीं करी तबलग इसको भोगरूपी विष नहीं लगता, जब धनकी इच्छा उपजी तब परमविष इसको स्पर्श करि जाता है; इसको विपरीत भावनाविषे दुःख होता है, जो दुःखदायक पदार्थ हैं तिनको सुखदायक जानता है. हे रामजी ! जो कछु अर्थ है सोई अनर्थ है जिसको इसने संपदा जाना है सो आपदा है, जिनको इसने भोग जाना है सो सब रोगरूप हैं, इनको संपदा जानकरि विचरता है इसकरि बडा दुःखी होता है. हे रामजी ! रसायन सब दुःखका नाश करता है परंतु यह देवताके पास होती है अरु जब इसको अमृत चाहिये तब संतोष परमरसायन है, जब विषयविषे दोषदृष्टि हुई अरु संतोषको धारा तब मूर्खता इसते दूर हो जाती है अरु गोपदकी नाईं संसारसमुद्रको शीघ्र ही तरि जाता है, जैसे गोपदको सुगम ही लंघा जाता है तैसे संसारसमुद्रको सुगमतासे तरि जाता है. हे रामजी ! जिसको संतोष प्राप्त

होता है तिसको परमशांति होती है अरु वसंत ऋतु भी सुखका स्थान है नन्दनवन भी सुखका स्थान है उर्वशी आदिक अप्सरा होवैं चंद्रमा विद्यमान बैठा होवै कामधेनु विद्यमान होवै जो यह सब इंद्रियोंके सुख हैं सो सब विद्यमान होवैं तो भी शांति न होवैगी परंतु एक संतोषकरि शांति होवैगी तिसको यह विषय चलाय नहीं सकते. हे रामजी! जैसे अर्घ्य भरि भरि पायेते तलाव भरा नहीं जाता अरु जब मेघजलकी वर्षा होवै तब शीघ्र ही भरा जाता है तैसे विषयके भोगकरि शांति नहीं होती अरु संतोषकरि पूर्ण आनंदकी प्राप्ति होयगी अरु संतोषकरि इसको ओज प्राप्त होवैगा कैसा प्राप्त होयगा जो गम्भीर अरु निर्मल अरु शीतल अरु हृदयगम्य अरु सबका हितकारी ऐसा ओज संतोषी पुरुषको प्राप्त होता है और जो ओज हैं सो सात्त्विकी राजसी तामसी होते हैं; अरु यह जो है सो शुद्ध सात्त्विकी है जिस पुरुषको संतोष हुआ है सो ऐसे शोभता है जैसे वसंत ऋतुका वृक्ष फल फूल पत्रोंकरि शोभा पाता है अरु जिसको तृष्णा है सो कैसा है, जैसे चरणके नीचे आया कीट मर्दन होता है. हे रामजी! जिसको तृष्णा है तिसको संतोष शांति कदाचित् नहीं, जैसे जलविषे तृणोंका पूला पाया अरु ऊपर तीक्ष्ण पवन चला तब बडे क्षोभको प्राप्त होता है तैसे तृष्णावान् पुरुषको क्षोभ होता है. हे रामजी! जो पुरुष अर्थके निमित्त सदा इच्छा करता है सो अग्निविषे प्रवेश करता है अर्थ यह कि जो सर्वदा काल तपता रहता है. जैसे गर्दभ विष्ठाके स्थानविषे प्रवेश करता है तैसे तृष्णावान् विषयरूपी स्थानविषे प्रवेश करता है सो गर्दभ है जैसे गर्दभसाथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसे तृष्णावान् गर्दभ साथ स्पर्श करना योग्य नहीं. हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, इस संसारके पदार्थको चाहते हैं सो भी मूर्ख हैं अरु इस जगत्का अधिष्ठान है सो इसको तब प्राप्त होता है, जब निर्वासनिक होता है जब निर्वासनिक हुआ तब संतोषको प्राप्त होता है, तब ऐसा होता है, जैसा तारेविषे चंद्रमा शोभा पाता है, तातें इच्छा नाश करनेका उपाय करौ. हे रामजी! जब इच्छा नष्ट हो गयी

अरु सन्तोषरूपी गम्भीरता प्राप्त भयी अरु द्वैत कलना मिटि गयी तब इसीको परमपद पंडित कहते हैं सो यह पद कैसे प्राप्त होता है श्रवण करु. हे रामजी ! जब इसको संसारते वैराग्य होवै अरु संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ इनविषे दृढ भावना होवै, जब आत्माविषे दृढ भावना भयी तब जगत् विरस हो जाता है अर्थ यह कि जगत् असत्य भासता है अरु हृदयविषे शांति होती है अरु स्वाभाविक आपको ब्रह्म जानने लगता है परिच्छिन्नता मिटि जाती है जबलग आपको परिच्छिन्न जानता था तबलग सब दुःखका अनुभव करता था जब संतकी संगति अरु सच्छास्त्रकरि जगत् विरस हुआ तब परमपदको प्राप्त होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मोक्षोपदेशवर्णनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८७ ॥

अष्टाशीत्यधिकशततमः सर्गः १८८.

विवेकदूतवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी यह जो क्रम है सो जब संसारते वैराग्य होता है तब संतकी संगति होती है बहुरि शास्त्रका श्रवण होता है तब संपूर्ण जगत् विरस हो जाता है जब जगत् विरस हुआ अरु आत्मविषे दृढ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभावसत्ता प्रकाश आती है जब उसी स्वभावसत्ताविषे स्थित हुआ तब परमानंदकी प्राप्ति होती है जिसविषे वाणीकी गम नहीं. हे रामजी ! जब यह अवस्था प्राप्त हुई तब मन अमन हो जाता है अरु अर्थकी तृष्णा नहीं रहती अरु जो अपने पास होता है तिसको राखनेकी इच्छा नहीं करता सहज त्याग हो जाता है अरु पुत्र धन स्त्रियादिक सब विरस हो जाते हैं यद्यपि इनके बीच भी रहता है तौ भी इनविषे अहं मम अभिमान नहीं करता जैसे पैंडोई किसी मार्गविषे आनि उतरता है अरु मार्गवाले साथ कछु संबंध नहीं राखता तैसे किसी विषयसाथ नहीं रखता अरु जो अनिच्छित इंद्रियके सुख

आनि प्राप्त होते हैं तिनविषे राग द्वेष नहीं करता जैसे किसी पत्थरकी शिलापर जल चला जाता है तिसको राग द्वेष कछु नहीं होता तैसे ज्ञानवान्को राग द्वेष किसीविषे नहीं होता. हे रामजी ! उसके शरीरकी यह स्वाभाविक अवस्था हो जाती है जो एकांतको चाहता है अरु वन कंदराविषे रहनेकी इच्छा करता है अरु अज्ञानके जो स्थान हैं स्त्री अरु भोगके स्थान अरु रागद्वेषके स्थान इष्ट अनिष्ट सो दैव-संयोगते मुमुक्षुको आनि प्राप्त भी होते हैं तौ भी शीघ्र ही तिसको त्यागि देता है. हे रामजी ! जब बीज क्षेत्रविषे बोनेका होता है तब तिसके आगे जो बूटा कांटा होते हैं सो कुल्हाडीसे काटि दूर करते हैं तब खेत अच्छा सुंदर फलता है तैसे जिस पुरुषको मनरूपी क्षेत्रविषे अनु-भवरूपी फल देखना होवै सो इच्छारूपी कंटक बूटेको अनिच्छारूपी कुल्हाडेसे काटै अरु संतोषरूपी बीजको बोवै तब क्षेत्र भी सुन्दर फूलैगा. हे रामजी ! जब अनुभवरूपी फल इसको प्राप्त भया तब यह पुरुष सूक्ष्मते सूक्ष्म हो जाता है अरु स्थूलते भी स्थूल हो जाता है अरु सर्व आत्मा होकारि स्थित होता है. हे रामजी ! जब चित्त अदृश्य होता है तब द्वैत भावना मिटि जाती है जब द्वैत भावना मिटी तब चित्त अदृश्यको प्राप्त होता है तिस चित्तको जो उपशमका सुख होता है सो वाणी कारि कहा नहीं जाता तिसका नाम निर्वाणपद तब प्राप्त होता है, जब ईश्वरकी भक्ति करता है अरु जब दिन रात्रि चिरकालपर्यंत भक्ति करता रहता है तब ईश्वर प्रसन्न होता है अरु इसको निर्वाणपदकी प्राप्ति होती है. राम उवाच–हे भगवन् ! सर्वतत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ वह कौन ईश्वर है अरु उसकी भक्ति क्या है, जिसकारि प्रसन्न होता है अरु निर्वाणपदको प्राप्त करता है ? सो तत्त्व कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ईश्वर दूर नहीं अरु उसविषे भेद भी कछु नहीं अरु दुर्लभ भी नहीं, काहेते जो अनुभव-ज्योति है अरु परम बोधस्वरूप है, बहुरि कैसा है, सर्व जिसके वश हैं अरु जो सर्व है अरु जिसते सर्व है तिस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है. हे रामजी ! जो कोउ पूजता है, जप, मंत्र, तप, दान,

होम जो कछु कोऊ करता है सो सर्व ही उसको पूजते हैं, देवता दैत्य मनुष्य जो कछु स्थावर जंगम जगत् है सो सब उसीको पूजते हैं अरु सर्वको फल देनेहारा वही है, उत्पत्ति अरु प्रलयविषे जो कछु पदार्थ भासते हैं सो सब उसीकरि सिद्ध होते हैं ऐसा ईश्वर है, जब तिस ईश्वरकी प्रसन्नता होती है तब अपना एक दूत भेजता है, सो कैसा दूत है, जो शुभ क्रिया सब उसीविषे पाती हैं अरु अतिपवित्र है. राम उवाच-हे भगवन्! ईश्वर जो अद्वैत आत्मा है अरु शुद्ध ब्रह्म है, तिसका दूत कौन है अरु कैसे आता है? सो मुझे कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! ईश्वर जो परमदेव है, तिसका दूत विवेक है अरु हृदयरूपी गुफाविषे आनि उदय होता है, जब उदय होता है तब परम शोभाको प्राप्त करता है जैसे चंद्रमाके उदय हुए आकाश शोभा पाता है तैसे वह पुरुष शोभा पाता है. हे रामजी! जब विवेकरूपी दूत आता है तब इसको संसारते पवित्र करता है,पवित्र करिकै देवके निकट ले जाता है प्रथम वासनारूपी मैलसाथ भरा था अरु चिंतारूपी शत्रुने बांधा था, जब विवेकरूपी दूत आता है तब चित्तरूपी शत्रुको मारता है अरु वासनारूपी मैलको नाश करिकै देवके निकट ले जाता है, तब इसको तिस देवका दर्शन होता है तब परमानंदको प्राप्त होता है, बडा सुख पाता है. हे रामजी! संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे मृत्युरूपी घुमरघेर हैं अरु तृष्णारूपी लहरी तरंग हैं, अज्ञानरूपी जल है, अरु इंद्रियांरूपी तंदुए हैं, तिस समुद्रविषे यह जीव पडे हैं, जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् इसको प्राप्त होती है, तब यह संसारसमुद्रते पार होता है. हे रामजी! यह जीव प्रमादकरिकै जडताको प्राप्त हुए हैं, जैसे जल शीतलताकरिकै गडेकी संज्ञाको पाता है, तैसे प्रमादकरिकै यहां जीवित संज्ञाको पाता है अरु वासनाके साथ आवरा गया है, जब अंतर्मुख होता है तब उस देवके सन्मुख होता है तब वह देव प्रसन्न होता है, सो कैसा देव है, सहस्र जिसके शीश हैं अरु सहस्र जिसके पाद हैं अरु सहस्र भुजा हैं अरु सहस्र नेत्र हैं अरु सहस्र कर्ण हैं अरु सर्व चेष्टाका वही कर्ता है, देखता सुनता बोलता चलता वही है,

अरु अपने स्वभावसत्ताकरि प्रकाशता है, जैसे सब घटविषे चलनाशक्ति पवनकी है तैसे प्रकाशशक्ति देवकी है, जब तिसके सन्मुख अंतर्मुख होता है तब विवेकरूपी दूत भेजता है तब इसको संतकी संगति होती है अरु सच्छास्त्रका श्रवण होता है, तिनके अर्थविषे दृढ भावना होती है तब विवेकरूपी दूत उसको अदृश्यताविषे प्राप्त करता है अरु शून्य हो जाता है, बहुरि शून्यको भी त्यागिकरि बोधमात्रविषे स्थित होता है तब पूर्ण आनंद इसको प्राप्त होता है. हे रामजी ! यह पुरुष आनंदस्वरूप है अरु यह विश्व भी अपना आप है, परंतु अज्ञानकरिकै भिन्न पडा भासता है, जैसे भ्रान्तिकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है मरुस्थलविषे जल भासता है अरु आकाशविषे तरुवर भासते हैं, तैसे भ्रांतिकरिकै जगत् भासता है अरु भूतके अंतर बाहिर अधः ऊर्ध्व सब ब्रह्मदेव ही व्यापि रहा है, स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है सो सब उसी आत्मतत्त्वके आश्रय फुरता है ताते वही स्वरूप है अरु सर्वको वही धारि रहा है, जैसे सर्व भूषणोंको सुवर्ण धारि रहा है तैसे सर्व शब्द अर्थको वही धारि रहा है, वही ईश्वर ब्रह्म है, गंभीर साक्षी आत्मा ॐकार प्रणव सब उसीके नाम हैं, जब ऐसे ईश्वरकी कृपा होती है तब अंतर्मुख होता है अरु शुद्ध निर्मल होता है. हे रामजी ! जब इसका हृदय शुद्ध होता है तब आत्मपदकी ओर इसकी भावना होती है, जो सर्व आत्मा है, जब यह भावना होती है, यही भक्ति है, तब वह ईश्वर कृपा करिकै विवेकरूपी दूत भेजता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विवेकदूतवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८८ ॥

ऊननवत्यधिकशततमः सर्गः १८९.

सर्वसत्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इसको विवेककी दृढता हुई तब परमपदको प्राप्त होता है, जो चैत्यते रहित चेतनघन है अरु

चैत्यका संबंध टूटि जाता है, जब चैत्यका संबंध टूटा तब विश्वका क्षय हो जाता है, जब विश्वक्षय भया तब वासना भी नहीं रहती हे रामजी! यह जगत् भी इस फुरणेविषे है, जब शुद्ध चेतनविषे चैत्योन्मुखत्व भया तब इसका मनोमात्र शरीर होता है, जिसको अंतवाहक कहते हैं अरु जब वासनाकी दृढता भयी तब अधिभूत भासने लगता है, जैसे स्वप्नविषे अपना शरीर भासता है तैसे अपनेविषे शरीर दीखने लगता है. हे रामजी! इसको उत्थान ही अनर्थका कारण है, जब यह चैत्य होता है तब इसको अनर्थकी प्राप्ति होती है, मैं मेरा इत्यादिक जगत् भासि आता है, जब यह होवै नहीं तब जगत् भी न होवै, इसके होनेकरि जगत् भासता है ताते मेरा यही आशीर्वाद है कि तू चेतनताते शून्य होवै, अहंतारूपी चेतनताते रहित अपने बोधविषे स्थित रहै. हे रामजी! इस मनते जगत् हुआ है सो मन अरु जगत् दोनों मिथ्या हैं, रूप अवलोकन मनस्कार तीनोंका नाम जगत् है सो मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या शून्य है, जब इनका अभाव हुआ तब शून्य भी नहीं रहता, केवल बोधमात्र चेतन होता है. हे रामजी! दृश्य दर्शन द्रष्टा यह तीनों भावनामात्र हैं, जब यह होते हैं तब जगत् भासता है अरु जब अहंताका अभाव हुआ तब आत्मपद शेष रहता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं तैसे आत्माविषे जगत् है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, वासना करिकै दृश्य भासती है सो वासना मनते फुरी है अरु मन अज्ञान करिकै हुआ है, जब मन अमनपदको प्राप्त होता है तब दृश्य सब एक ही रूप हो जाता है, जबलग वासना उठती है तबलग मनविषे शांति नहीं होती, जैसे कोऊ पुरुष भँवरी लेता है तब बल चढते जाते हैं अरु जब ठहरता है तब वह बल उतर जाते हैं तैसे जबलग चित्त वासना करिकै भ्रमता है तबलग जन्मरूपी बल चढते जाते हैं अरु जब चित्त ठहरता है तब जन्मका अभाव हो जाता है. हे रामजी! जबलग चित्तका दृश्यसाथ संबंध है तबलग कर्मते नहीं छूटता, जब चित्तका दृश्यते संबंध टूटै तब शुद्ध अद्वैतपदको प्राप्त होता है. हे रामजी! जब शुद्ध चिन्मात्रविषे उत्थान होता

है तब तिसका नाम चैत्योन्मुखत्व होता है, वही अहंता दृश्यकी ओर फुरती जाती है तब प्रमाद हो जाता है अरु जडता होती है, जैसे जल गँदला हो जाता है तैसे चित्तशक्ति प्रमादकरिकै जड़ हो जाती है, जब दृढ वासनाको ग्रहण करती है तब अंतवाहकते अधिभूतक शरीर अपना दृष्टि आता है, बहुरि पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं, ज्यों ज्यों चित्तशक्ति बहिर्मुख फिरती जाती है त्यों त्यों संसार होता जाता हैं, जब फुरणेते रहित होकरि अपने स्वरूपकी ओर आती है तब अपना आप ही भासता है अरु द्वैत मिटि जाता है तब परमानंद अद्वैत-पद भासता है, जब पूर्ण बोध हुआ तब द्वैत अरु एक संज्ञा भी जाती रहती है, केवल आत्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहता है, जब ईश्वरसाथ एकता होती है, जगत्की भास चलती रहती है; जब तिस पदकी प्राप्ति होती है तब दृश्यका अभाव हो जाता है, काहेते कि जगत् भावनामात्र है, जैसे भविष्य कालका वृक्ष आकाशविषे होवै तैसे यह जगत् इसका अत्यंत अभाव है, कछु बना नहीं, भ्रांतिकरिकै भासता है. हे रामजी ! मेरे वचनोंका अनुभव तब होवैगा, जब स्वरूपका ज्ञान होवैगा, तब यह वचन हृदयविषे आनि फुरैंगे, जैसे कथावालेके हृदयविषे कथाके अर्थ आनि फुरते हैं तैसे यह वचन आनि फुरैंगे. हे रामजी ! जबलग यह मन फुरता है तबलग जगत्का अभाव नहीं होता, जब मन उपशम होवै तब जगत्का अभाव होता है, जैसे स्वप्नको स्वप्न जानता है तब बहुरि स्वप्नके पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जबलग सत्य जानता है तब-लग इच्छा करता है. हे रामजी ! यह जीव वासनाके आवरे हुए हैं, जब वासना क्षय होवै तब इसीका नाम ज्ञान है, अज्ञानरूपी भूत इनको लगा है तिसकरि उन्मत्त होनेकरि जगत् भासता है अरु जगत्के भासनेकरि नानाप्रकारकी वासना दृढ हो गयी है तिसकरि दुःख पाता है, जब यह चित्त उलटकरि अंतर्मुख होवै अरु दृढ भावना आत्माविषे करै, जब ज्ञानरूपी मंत्र इसको प्राप्त होता है तब अज्ञानरूपी भूत चलता रहता है. हे रामजी ! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष है, जैसी भावना इसविषे होती है तैसा भान होता है. हे रामजी ! प्रथम इसका शरीर अंतवा-

हक था अरु अपना स्वरूप भूला न था, आपको आत्मा ही जानता था अरु जगत् अपना संकल्पमात्र भासता था, तिसका नाम अंतवाहक है, जब उस संकल्पविषे दृढ़ भावना हुई तब अधिभूत भासने लगा जब तिसविषे दृढ़ भावना हुई तब देह इंद्रियां सब अपनेविषे भासने लगे, जब अपनेविषे भासे तब इनके सुखदुःखको जानने लगा, जब जगत्के सुख दुःख इसको भासे तब सर्व आपदा इसको आय प्राप्त हुई वास्तवते न कोऊ सुखदुःख है न जगत् है, केवल भावनामात्र है, जैसी चित्तकी भावना होती है तैसे ही आगे भासता है. हे रामजी! जब यह भावना उलटकरि अंतर्मुख आत्माकी ओर परिणाम होवै तब एक ही बोधका भान होवै, जब एक बोधका भान इसको हुआ तब द्वैत सब मिटि जाता है. हे रामजी! आत्माविषे अंतवाहक भी नहीं, यह जो शंभु ब्रह्मा है सो भी बोधस्वरूप है, जब बोधते इतर अंतवाहक कछु होता तब भासता सो बोधते इतर कछु पाता नहीं, अंतवाहक भी तिसीकरि है, अंतवाहक कहिये जो शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्योन्मुख हुआ है अरु चित्तशक्ति फुरी है तब तिसको पंचतन्मात्राका संबंध हुआ, यही जड चेतन ग्रंथि है, चेतन है चित्तशक्ति अरु जड़ है पंचतन्मात्रा इनका इकट्ठा होना इसका नाम अंतवाहक शरीर है, जब यह भी आत्माविषे कछु हुआ होता तब यह वचन न होते ताते चिन्मात्र है, बना कछु नहीं, काहेते कि आत्मा अद्वैत है. हे रामजी! दूसरा कछु बना नहीं, भ्रमकरिकै द्वैत भासता है, जैसे पुरुष शयन करता है अरु स्वप्न भ्रमकरिकै तिसको द्वैत भासता है तैसे यह जाग्रत भी भ्रांतिकरिकै भासता है, कछु है नहीं. हे रामजी! जब है नहीं तब इच्छा किसकी करता है? एता सुख इंद्रियोंके इष्ट भोगते नहीं होता, जेता कछु सुख उनके त्यागनेते होता है. हे रामजी! एक यज्ञ है, जिसके कियेते पुरुष परमपदको प्राप्त होता है सो यज्ञ तब होता है जब एक स्तंभ गाड़ता है तिसके नीचे बल करता है, जब यज्ञ करि रहता है तब सर्व त्याग करता है, तब इसको फलकी प्राप्ति होती है, इस क्रम किये विना यज्ञ सफल नहीं होता, सो स्तंभ क्या है अरु बल क्या है, यज्ञ क्या

है, त्याग क्या है अरु फल क्या है सो श्रवण करु. हे रामजी ! ध्यानरूपी स्तंभ करै, जो आत्मपदका सदा अभ्यास होवै अरु तृष्णारूपी तिसके आगे बल करै अरु ज्ञानरूपी यज्ञ करै, जो आत्माके विशेषण वेदशास्त्रविषे कहे हैं, नित्य वेद शुद्ध है बोधरूप है अद्वैत है निर्विकल्प है देह इंद्रियां प्राण आदिकते रहित है ऐसे जाननेका नाम ज्ञान है सो यही यज्ञ है ध्यानरूपी स्तंभकरिकै अरु तृष्णारूपी बलकरिकै अरु मनरूपी दृश्यको जानकरि यह यज्ञ पूर्ण होता है जब ऐसा यज्ञ हुआ तब तिसके पाछे दक्षिणा भी करिये तब यज्ञफल होवै जो सर्व देना यह दक्षिणा है सो क्या सर्वस्व है अहंकार त्याग करना सर्वस्व त्याग है जब सर्वस्व त्याग किया तब यज्ञ सफल होता है, इसका नाम विश्वजित यज्ञ है जब इस प्रकार यज्ञ हुआ तब इसका फल भी होता है सो फल क्या है यद्यपि अंगारकी वर्षा होवै अरु प्रलयकालका पवन चलै अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश होवैं तब ऐसे क्षोभविषे भी चलायमान नहीं होता यह फल इसको प्राप्त होता है जो कदाचित् स्वरूपते नहीं गिरता यह शत्रुनाश वज्रध्यान है. हे रामजी ! अहंताका त्याग करना यह सर्वते श्रेष्ठ त्याग है जो कार्य अहंताके त्याग कियेते होता है सो अपर उपायकारि नहीं होता तप दान यज्ञ दमन उपदेश इन उपाधिहूते भी अहंताका त्याग करना बड़ा साधन है, सर्व साधन इसके अंतर्भूत होते हैं. हे रामजी ! जब तू अहंताका त्याग करैगा तब अंतर बाहर तुझको ब्रह्मसत्ता ही भासैगी, द्वैतभ्रम संपूर्ण मिटि जावैगा हे रामजी ! मनके सर्व अर्थरूपी तृणोंको ज्ञानरूपी अग्नि लगाइये अरु वैराग्यरूपी वायुकारि जगाइये तब इन तृणोंको भस्म करि डारै तब तू परमशांतिको प्राप्त होवैगा, मनके जलानेकरि परम संपदा प्राप्त होती है इसते इतर सब आपदा हैं मन उपशमविषे कल्याण है, यह जो अंतर बाहिर नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं सो मनके मोहते उत्पन्न हुए हैं, जब मन उपशमको प्राप्त होवै तब नाना प्रकार जो भूतकी संज्ञा है, मनुष्य पशु पक्षी देवता पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप हो जाते हैं. हे रामजी ! यह सर्व ब्रह्म है, ज्ञानीको एक सत्ता

भासती है, दूसरा कछु अपर बना नहीं, भ्रमकरिकै जगत् भासता है अरु तिसविषे नानाप्रकारकी वासना हुई है, अपनी अपनी वासनाके अनुसार जगत्को देखते हैं ताते तुम जागहु अरु वासनाके पिंजरेको काटिकरि आत्मपदको प्राप्त होहु. हे रामजी! अज्ञान करिकै जो आत्मपदते सोये पडे हैं अरु वासनाके पिंजरेविषे पड़े हैं तिन अज्ञानीकी नाईं तुम नहीं होना, अज्ञानकरिकै जीवका नाश होता है, जो कछु जगत् दीखता है सो भ्रममात्र है अरु इनका बोलना भी ऐसे जान जैसे बाँसुरीविषे पवनका शब्द होता है तैसे यह प्राणवायुकरि बोलते दृष्टि आते जान, ताते जगत् भ्रममात्र है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सर्वसत्तोपदेशो नाम ऊननवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८९ ॥

नवत्यधिकशततमः सर्गः १९०.

सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो जीव हैं देशदेशविषे मनुष्य देवता नाग किन्नर पशु पक्षी अरु पर्वत कंदरा स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है सो सप्त प्रकारकी सृष्टि है अरु सप्त प्रकारके जीव हैं तिनको भिन्नभिन्न श्रवण कर; एक स्वप्न जाग्रत् है दूसरे संकल्प जाग्रत् है तीसरे केवल जाग्रत् है अरु चौथे चिर जाग्रत् है पंचम दृढ जाग्रत् है षष्ठ जाग्रत् स्वप्न है, सप्तम क्षीण जाग्रत् है. राम उवाच! हे भगवन्! तुमने जो यह सप्त प्रकारकी जीवसृष्टि कही है सो बोधके निमित्त मुझको खोलिकरि कहौ, यह ऐसे हैं जैसे नदियोंके जलका समुद्रविषे भेद होवै अरु इन्होंका पूछना भी ऐसे है जैसे एक जलते फेन बुद्बुदे तरंग वायुकरि होते हैं, सो विस्तार करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! एक तौ यह, जो किसी जीवको किसी कल्प अपनी जागृतिविषे सुषुप्ति तिसविषे जो स्वप्न हुआ तिस स्वप्नविषे उसको हमारी जागृतिका जगत् भासि आया, शब्द अर्थसंयुक्त तिसको सत्य जानिकरि ग्रहण करने लगा,

उसके लेखे हम स्वप्न नर हैं परंतु उसके निश्चयविषे नहीं, वह अपनी जाग्रति मानता है, हमारा अरु उसका कल्प एक हो गया है इसीतें वह भी जाग्रति जानता है अरु पूर्व कल्पविषे भी उसका शरीर चेतन फुरता है परंतु सोया पड़ा है. राम उवाच-हे भगवन् ! जब वह पुरुष अपने कल्पविषे जागा तब यह उसको क्या भासै अरु जब वह न जागै अरु वहां कल्पका प्रलय हो जावै तब उसके शरीरकी क्या अवस्था होवै अरु जब यहां ज्ञानकी प्राप्ति होवै तब उस शरीरकी क्या अवस्था होवै सो क्रम करिकै कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब वह पुरुष अपने कल्पविषे जागै तब यह जाग्रत उसको स्वप्न भासै जब वहां न जागै अरु उस कल्पकी प्रलय होवै तब वह जीव वहां चेष्टा करै अरु जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तब उस शरीर अरु इस शरीरकी वासना इकट्ठी होकरि निर्वाणको प्राप्त होवै अरु जब ज्ञान न प्राप्त होवै तब उसी जीवको इस शरीरको त्यागिकर अपर जगद्भ्रम भासि आवै, आपको पूर्ववत ही जानै भावै न जानै परंतु जगद्भ्रम विना ज्ञान नहीं मिटता. हे रामजी ! यह अरु वह दोनों तुल्य हैं ब्रह्मसत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशती है. हे रामजी ! जैसे गूलरविषे मच्छर होता है तैसे यह जीव भी भ्रमकरिके फुरते हैं सो यह जाग्रत कही है, जो स्वप्नविषे जाग्रत है, स्वप्न जाग्रत् इसका नाम है अरु यह पुरुष बैठा है अरु चित्तकी वृत्ति ठहर गयी है १ अरु निद्रा नहीं आयी तिसविषे मनोराज्य हुआ, तिस मनोराज्यविषे जगत् हुआ, तिसविषे दृढ भावना हो गयी अरु पूर्वकी वासना विस्मरण भयी अरु यह सत्य भासी अरु मनोराज्यका शरीर रचा वही आधिभौतिकता दृढ हो गयी तिसका नाम संकल्प जाग्रत् है २ आदि परमात्मतत्त्वते फुरा अरु निश्चयात्मपदविषे रहा अरु जगत् जो भासा तिसको संकल्पमात्र जाना तिसका नाम केवल जाग्रत है ३ आदि परमात्मतत्त्वतें फुरणा हुआ तिसविषे सृष्टि हुई तिसको सत्य जानिकरि ग्रहण किया अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ अरु आगे जन्मांतरको प्राप्त हुआ तिसका नाम चिर जाग्रत् है ४ जब इसविषे दृढ घनीभूत वासना हुई अरु

पापकर्म करने लगा तिसके वशते स्थावर योनिको पाया तब तिसका नाम घनी जाग्रत् है तिसीका नाम सुषुप्ति जाग्रत् है ५ अरु जब इसविषे संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंके विचारकरि बोधको प्राप्त हुआ तब यह जाग्रत् उसको स्वप्न हो जाता है तिसका नाम स्वप्नजाग्रत् है ६ अरु जब बोधविषे दृढ स्थिति भयी तब इसको तुरीयापद कहते हैं, इसका नाम क्षीणजाग्रत् है ७ जब इस पदको प्राप्त हुआ तब परमानंदकी प्राप्ति होती है. हे रामजी! यह सप्त प्रकारके जीव अरु सृष्टि सब ही मैं तुझको कही है तिसको विचारिकरिके देख जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावे अरु यह भी क्या कहना है कि यह जीव है यह सृष्टि है; सर्व ब्रह्मसत्ता है दूसरा कछु हुआ नहीं, मनके फुरणेकरि दृश्य भासती है, मनको स्थिर करि देख तो सब शून्य हो जावैगी अरु शून्य भी न रहैगा, शून्यका कहना भी न रहैगा इस गिनतीका भी स्मरण करु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनं नाम नवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९० ॥

एकनवत्यधिकशततमः सर्गः १९१.

सर्वशांत्युपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन्! तुम जो केवल जाग्रतकी उत्पत्ति अकारण अकर्मक बोधमात्रविषे कही सो असंभव है, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं संभवता तैसे आत्माविषे सृष्टि नहीं संभवती, काहेते जो आत्मा निराकार है अरु निष्क्रिय है, न समवायकारण है न निमित्तकारण है जैसे मृत्तिका घट आदिकका कारण होती है तैसे आत्मा सृष्टिका समवायकारण भी नहीं, काहेते कि अद्वैत है अरु जैसे कुलाल घटादिकका निमित्तकारण होता है तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्तकारण भी नहीं, काहेते कि अक्रिय है, तिस अकारणके अकर्मकविषे सृष्टि कैसे संभवै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तू धन्य है, अब तू जागा है, आत्माविषे सृष्टिका अत्यंत अभाव है काहेते जो निर्विकार है, निष्क्रिय है, न अंतर है न बाहिर

है, न ऊर्ध्व है न अधः है, केवल बोधमात्र है, तिसविषे न कोऊ आरंभ है न परिणाम है, केवल बोधमात्र अपने आपविषे स्थित है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल कल्पित है तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या है. महा बुद्धिमान् ! आत्मा अकारणरूप जगत् है तिसते कार्यरूप जगत् कैसे होवै ? तिसते केवल जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया तिसके अभावते सबका अभाव है न कछु उपजा है न भास होता है, उपदेश अरु तिसका अर्थ आरोपित है अरु कछु है ही नहीं, अरु आरोपित शब्द भी जिज्ञासुके जतावनेनिमित्त कहा हैं, है कछु नहीं; आत्मा सदा अद्वैतरूप है. राम उवाच–हे भगवन् ! जब आत्माविषे सृष्टि ही नहीं तौ पिंडाकार कैसे भासते हैं, उनको किसने रचा है अरु मन बुद्धि इंद्रियोंका भान क्या होता है, चेतनको किसनें मोहित किया है, भूतको स्नेह रागके बंधनकरि अरु आत्माविषे आवरण कैसे होता है सो समुझायकरि कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! न कोऊ पिंड है, न किसीने इसको किया है, न कोऊ भूत है, न किसीने इनको मोहित किया है अरु न किसीको आवरण किया है, भ्रांति करिकै आवरण भासता है; जब आत्माको आवरण होता तब किसी प्रकार नष्ट होता परंतु आवरण ही नहीं तब नष्ट कैसे होवै. हे रामजी ! जिसको आवरण होता है तिसका स्वरूप एक अवस्थाको त्यागिकरि दूसरी अवस्थाको ग्रहण करता है सो आत्मा तौ सदा ज्ञानस्वरूप है, अन्य अवस्थाको कदाचित नहीं प्राप्त भया, सदा ज्योंका त्यों है, तिसविषे मन बुद्धि आदिक कछु बने नहीं तब मोह कहां अरु आवरण कहां सदा एकरस आत्मतत्त्व है ज्ञानीको ऐसे भासता है अरु अज्ञानीको नानाप्रकारका जगत् भसता है; आत्मा ज्ञानकालविषे भी एकरस है, अज्ञानकालविषे भी एकरस है तिसविषे दो दृष्टि होती हैं; ज्ञानदृष्टिकरि सर्व आत्मा है, अज्ञानदृष्टिकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है. हे रामजी ! जैसे एक समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे उठते हैं अरु लीन होते हैं सो उनका उत्पत्ति अरु लीन होना भी जलविषे है, जलते इतर कछु नहीं तैसे जेते कछु विचार अरु इच्छा भासते हैं सो सब आत्माविषे होते हैं, दूसरी वस्तु कछु नहीं, विकार अविकार सब परमात्म-

तत्त्व है अरु समुद्रविषे लहरी बुद्बुदे परिणामकरि होते हैं, आत्मा सदा ज्योंका त्यों है नानाप्रकारके आकार भासते हैं सो भी वही रूप है जैसे स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण होते हैं सो सब स्वर्ण ही हैं, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, भ्रांतिकरिकै नानाप्रकारकी संज्ञा होती है; जैसे कोऊ पुरुष जाग्रत् बैठा होवै अरु नींद आयेते स्वप्नसृष्टि भासि आवै सो जाग्रत्के अज्ञानकरि स्वप्नसृष्टि भासी है, जब निद्रा निवृत्त भयी तब जाग्रत् भी भासती है सो जाग्रत् भी परमात्मतत्त्वके अज्ञानकरि भासती है, जब तिस पदविषे जावैगा तब जाग्रद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा. हे रामजी ! संसार अपने फुरनेकरिकै हुआ है, जब फुरणा दृढ भया तब दुःख पाने लगा, जैसे बालक अपनी परछाईंविषे वैताल कल्पि-करि आप ही दुःख पाता है तैसे यह जीव अपने फुरणेकरि आप ही दुःख पाता है, जब आत्मबोध होता है तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है. हे रामजी ! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है सो भावनामात्र है, जब यही भावना उलटकरि आत्माकी ओर आवै तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा अरु देह इंद्रियादिक जो आत्माके अज्ञानकरिकै फुरे हैं अरु तिनविषे अहंकार हुआ है सो आत्मभावनाकरि निवृत्त हो जावैगा, जैसे वर्षाकालविषे बहुत मेघ होते हैं जब शरत्काल आया तब मेघ नष्ट हो जाते हैं, तैसे जब बोधरूपी शरत्काल आता है तब अनात्मविषे आत्माभिमानरूपी मेघ नष्ट हो जाता है अरु परम स्वच्छता प्रगट होती है. हे रामजी ! जेता कछु जगत् पिंडरूप होकरि भासता है सो सब आत्माका साक्षात्कार होवैगा तब पिंडबुद्धि जाती रहैगी जगत् सब आकाशरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालविषे मेघकी घनता जाती रहती है अरु आकाशरूप हो जाता है. हे रामजी ! यह भ्रांतिकी कठिनता तबलग भासती है जबलग स्वरूपते सुषुप्तिवत् है, जब जागैगा तब जगत् सब आकाशरूप हो जावैगा, जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नजगत् आकाशरूप हो जाता है. हे रामजी ! जेते कछु विकार अरु क्षोभ अरु नानात्व भासते हैं सो प्रमादकरि भासते हैं, जब आत्मबोध होता है तब सब क्षोभविकार मिटि जाते हैं

सर्व प्रपंच एकताको प्राप्त होता है, द्वैतभाव मिटि जाता है, जैसे प्रज्वलित अग्निविषे घृत अथवा इंधन अरु मिष्टान्न जो कछु डालिये सो एकरूप हो जाता है, तैसे जब बोधकी प्राप्ति होती है तब सब जगत् एकरूप हो जाता है, जैसे नानाप्रकारके भूषण अग्निविषे डारिये तब एक स्वर्ण ही हो जाता है, अरु भूषणकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे मनको जब आत्मबोधविषे स्थित किया तब जगत् संज्ञा नहीं रहती, केवल परमात्मतत्त्व हो जाता है. हे रामजी ! इंद्रियां जगत् तबलग भासता है जबलग स्वरूपते सोया पडा है, जब जागैगा तब संसारकी सत्यता मिटि जावैगी अरु इच्छा भी कोऊ न रहैगी, जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है अरु तिस स्वप्नते जागता है तब स्वप्नके स्वर्णकी इच्छा नहीं करता, जो मुक्तिको प्राप्त होवे, काहेते जो उसकी सत्यता नहीं भासती तौ इच्छा कैसे करै, तैसे जबलग स्वरूपते सोया पडा है, तबलग संसारके पदार्थको मिथ्या नहीं जानता, तब इच्छा करता है अरु जब जावैगा तब सब पदार्थ विरस हो जावैंगे, जब ज्ञानकरिकै जगत्को मिथ्या स्वप्नवत् जानैगा तब इच्छा भी न करैगा. हे रामजी ! जीवन्मुक्तकी चेष्टा सब दृष्टि आती है, परंतु उसके हृदयविषे जगत्की सत्यता नहीं, काहेते जो आत्मानुभव उसको हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जिसने सूर्यकी किरणैं जानी तिसको जल नहीं भासता, किरणैं भासती हैं, अरु जिसने किरणैं नहीं जानी तिसको जल भासता है अरु भासता दोनोंको तुल्य है, परंतु ज्ञानवान्के निश्चयविषे जगत् जलवत् नहीं अरु अज्ञानीको जगत् जलवत् दृढ भासता है. हे रामजी ! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है, तिसविषे ज्ञानरूपी फल डालिये तब निवारण हो जावै, जब मन निर्वाण हुआ तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जहां जगत्का अभाव है, अरु अहंकारका भी अभाव है, न शून्य है न अशून्य है, केवल अकेवल, उदय अस्त दोनों नहीं. हे रामजी ! जो पुरुष ऐसे पदको प्राप्त हुआ है सो कृतकृत्य होता है अरु रागद्वेषते रहित परमशांतपदको प्राप्त होता है, अहंकार निर्वाण हो जाता है, केवल निर्वाच्यपदको प्राप्त होता है, जहां उत्थान कोई

नहीं. हे रामजी ! आत्माविषे जगत् पदार्थ कोऊ नहीं, परंतु मनके संकल्पकारि भासते हैं, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है कि, एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं सो उसके निश्चयविषे हैं, स्तंभविषे पुतलियोंका अभाव है, तैसे मनके निश्चयविषे जगत् है, आत्माविषे बना कछु नहीं, जिस पुरुषका मन सूक्ष्म हो गया है तिसको जगत् स्वप्नवत् भासता है जब स्वप्नवत् जाना तब इच्छा किसकी करै अरु त्याग किसका करै. हे रामजी ! जगत् तबलग भासता है, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया तब आत्मानुभव होवैगा, जब जगत् रससंयुक्त कदाचित् नहीं भासैगा, जैसे धूप अरु छाया इकट्ठी नहीं होती तैसे ज्ञान अरु जगत् इकट्ठे नहीं होते, आत्मज्ञान हुए जगत्का अभाव हो जाता है, जैसे पूर्वकाल वर्तमानकालविषे नहीं होता है तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता. हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है, विचार कियेते इसका अभाव हो जाता है अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो मिथ्या है, जैसे निद्रा दोष करिकै स्वप्नविषे तीनों भासते हैं अरु जागेते अभाव हो जाता है तैसे अज्ञानकरिकै यह भासते हैं अरु ज्ञानकरिकै त्रिपुटीका अभाव हो जता है. हे रामजी ! जैसे मनोराज्यकरिकै मनविषे जगत् स्थित होता है तैसे यह पर्वत नदियाँ देश काल जगत् भी जान, ताते इस भ्रमका त्याग कारि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत् भ्रमकरिकै उदय हुआ है, विचार कियेते नष्ट हो जवैगा अरु परम शांति तुझको प्राप्त होवैगी. हे रामजी ! जिसका मन उपशमभावको प्राप्त हुआ है सो पुरुष मौनी है, वह निरोधपदको प्राप्त हुआ है, वह संसारसमुद्रको तरा है अरु कर्मोंके अंतको प्राप्त हुआ है, तिसको संपूर्ण जगत् पहाड नदियां संयुक्त लीन हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुए विद्यमान जगत् भी वह शांत अंतःकरण है, परमशांतिरूपी अमृतकारि तृप्त है, वह ज्ञानवान् निरावरण होकारि स्थित होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सर्वशांत्युपदेशो नाम एकनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९१ ॥

द्विनवत्यधिकशततमः सर्गः १९२.

ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनम् ।

राम उवाच-हे भगवन्! जिस क्रमकरि बोध आत्मा जगत्‌रूप हो भासता है सो क्रम भेदके निवृत्ति अर्थ बहुरि मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जेता कछु जगत् दृष्टि आता है, सो चित्तविषे निश्चय होता है ज्ञानवान्‌को भी चित्तकरि भासता है अरु अज्ञानीको भी चित्तकरि भासता है, परंतु एता भेद है जो अज्ञानी जगत्‌को देखता है तब सत् मानता है अरु ज्ञानवान् शास्त्रयुक्तिकरि देखता है, पूर्व अपर अर्थके विचारकरि भ्रांतिमात्र जानता है अरु अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है सो कछु है नहीं तैसे अविद्या कछु वस्तु नहीं, जेता कछु स्थावर जंगम जगत् भासता है सो कल्पके अंतविषे नष्ट हो जाता है, जैसे समुद्रते एक बुंद निकासिये तब नष्ट हो जाती है, काहेते जो विभागरूप है, तैसे माया अविद्या सत् असत् आदिक सर्व संबंधका अभाव हो जाता है, काहेते जो सब शब्द जगत्‌विषे हैं, जब जगत् लीन भया तब शब्द कहां रहै? अरु वास्तवते न कछु उपजा है, न लीन होता है, एक ही चिदाकाश है अरु जब तू कहै, देह तौ उपजी है सो देह अरु तत्त्व स्वप्नवत् तू जान अरु जो तू कहै, जगत् प्रलयविषे लीन होता है तौ कछु है क्यों, तब नाश वही होता है जो असत्य होता है अरु जो तू कहै, असत्य है तौ बहुरि क्यों उपजता है,तब उपजी वस्तु भी सत् नहीं होती अरु जो तू कहै,महाप्रलयविषे चिदाकाश ही रहता है सोई जगत्‌रूप हो भासता है, तौ जगत् कछु इतर वस्तु नहीं भया बोधमात्र ही इस प्रकार हो भासता है जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं तैसे जिसते जगत् भासता है सो वही रूप है अपर कछु उपजा नहीं, जो उपजा नहीं तौ विकार अरु भेद कैसे होवै, ताते बोधमात्रही अपने आपविषे स्थित है, कारणकार्यते रहित परम शांतरूप आत्मसत्ता स्थित है, वही जगत्-रूप होकरि भासता है,देश काल पदार्थ सब महाप्रलयरूप हैं जब महाप्र-

लय होता है तब ब्रह्मदेवपर्यंत सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वीका नाम भी नहीं रहता, अर्थ भी नहीं रहता, केवल बोधमात्र बोधते भी रहित शेष रहता है, परम शांतरूप है, तिसविषे वाणी अरु मनकी गम नहीं, केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता रहती है, तिसको तत्त्ववेत्ता अनुभव कहते हैं, अपर कोऊ जान नहीं सकता. हे रामजी! जो पुरुष अविद्यारूपी निद्राते जागा है सो निराभास होता है अर्थ यह कि, चित्तते चैत्यका संबंध टूटि जाता है अरु परम प्रकाशरूप आत्मपद तिसको प्राप्त होता है अरु स्वभावविषे स्थित होता है, परभाव जो प्रकृति है तिसका अभाव हो जाता है. हे रामजी! जेता कछु जगत् परभावकरिकै भिन्न भिन्न भासता था सो सब एकरूप हो जाता है, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं अरु जागेते सब एकरूप हो जाते हैं, अपना आप ही भासता है तैसे जब इसको आत्माका अनुभव हुआ तब जगत् अपना आप ही भासता है. हे रामजी एकरूप तब हो भासता है, जब अपर कछु नहीं बना, जैसे स्वर्णके भूषण अग्निविषे डारिये तब अनेक भूषणका एकपिंड हो जाता है अरु एक ही आकार भासता है, तैसे जब बोधका अनुभव हुआ तब सर्व एकरूप हो जाता है. हे रामजी! भूषणोंके होते भी स्वर्ण ही था इसीते एकरूप हो गया, तैसे जब बोधका अनुभव हुआ तब सर्व एकरूप हो भासता है, ताते जगत्के होते भी जगत् आत्मरूप है, जगत् है नहीं अरु हुएकी नाईं भासता है अरु भिन्न भिन्न दृष्टि आता है, जैसे सोमजलविषे तरंग हैं नहीं अरु भासते हैं, तौ भी जलरूप है, असम्यक्दृष्टिकरि भिन्न २ भासते हैं. हे रामजी! ज्ञानीको जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्ति तुल्य हैं, जैसे भूषणके होतेभी स्वर्ण है अरु भूषणके अभाव हुएभी स्वर्ण है तैसे ज्ञानवान्को देहके होते भी ब्रह्म है अरु देहके अभाव हुए भी ब्रह्म है अरु जो अज्ञानी है तिसको नाना प्रकारका जगत् फुरता है, सो अज्ञानी कौन है, जिसको मनका संबंध है. हे रामजी! यह जगत् भिन्न २ फुरता है, जैसे काष्ठके स्तंभविषे चितेरा पुतलियां कल्पता है सो अपरको नहीं भासतीं, उसके मनविषे होती हैं तैसे भिन्न भिन्न पदार्थरूपी पुतलियां अज्ञानीके मनविषे फुरती हैं अरु ज्ञानवान्को नहीं भासती हैं

अरु जब काष्ठका आकार होता है तब चितेरा पुतलियां कल्पता है अरु यह आश्चर्य देख कि, मनरूपी ऐसा चितेरा है, आकाशविषे पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है, खोदे विना भासते हैं. हे रामजी! अपर दूसरा कछु नहीं बना, जैसे किसी पुरुषने कागजके ऊपर पुतली लिखी होय सो कागजरूप है, अपर कछु नहीं बनी, तैसे वह जगत् भी वही स्वरूप है. हे रामजी! जब तुझको आत्मपदका अनुभव होवैगा, तब जेते कछु जगत्के शब्द अर्थ हैं सो सब उसीविषे भासैंगे, जैसे जिनने स्वर्णको जाना तिनको भूषणके शब्द अर्थ स्वर्ण ही भासते हैं, तैसे जब आत्मपदको जानेगा तब तुझको जगत्के शब्द अर्थ आत्माहीविषे दृष्टि आवैंगे. हे रामजी! यह जीव महासूक्ष्मरूप है, इस जीवविषे अपनी सृष्टि है, सो जबलग फुरना है तबलग सृष्टि है, जब सृष्टि फुरना अपनी ओर आता है तब सब सृष्टि एक आत्मरूप हो जाती है, आकाश काल दिशा पदार्थ सब आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, अपने आपविषे स्थित है, अद्वैत चिन्मात्र पद है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनं नाम द्विनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९२ ॥

त्रिनवत्यधिकशततमः सर्गः १९३.
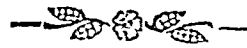
निर्वाणवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ दृक् अरु दृश्यका संबंध कैसे हुआ है अरु कालविषे कालत्व कैसे फुरा है, आकाशविषे शून्यता कैसे हुई है, वायुविषे वायुता कैसे हुई है, जड़विषे जड़ता अरु भूतविषे भूतता अरु संकल्पविषे स्पंद अरु सृष्टिविषे सृष्टिता कैसे हुए हैं, मूर्त्तिविषे मूर्त्तिता, भिन्नविषे भिन्नता, दृश्यविषे दृश्यता किसते हुए हैं सो मुझको कहो, काहेते कि, अर्धप्रबुद्धको बोधके निमित्त कहना योग्य है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वरते आदिक

जो सर्व पदार्थ हैं सो प्रलयकालविषे जिसमें लीन होते हैं तिसका नाम प्रलय है, तिसका शब्द यह है, जो प्रलय शब्द है अरु सब निर्वाण हो जाते हैं यह अर्थ है. हे रामजी ! ऐसा जो अनंत आकाश है सो सम है अरु शुद्ध है, आदि अंतते रहित है अरु मध्यते भी रहित है, चेतनघन अद्वैत है, जहाँ एक अरु दो शब्द भी नहीं, जिसविषे आकाश भी पहाड़वत् स्थूल है, ऐसा सूक्ष्म है अरु है नहीं, दोनों शब्दते रहित अपने आपविषे स्थित है, जैसे पाषाणका शिलाकोश होता है, तैसे चित्तके फुरणेते रहित है, ऐसे परमात्मतत्त्व अकारणते सृष्टिका उपजना कैसे कहिये, जैसे आकाश अपने आपविषे स्थित है, तैसे ब्रह्म अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! एक निमिषके फुरणेकरि जो अनेक योजनपर्यंत वृत्ति जाती है तिसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है तिसविषे तू स्थित होकरि देख कि, जगत् कहाँ है अरु जगत्की उत्पत्ति कहाँ है ? हे रामजी ! उत्पत्ति जो होती है सो समवायकारणकरि अरु निमित्तकारणकरि होती है, सो आत्मा निराकार अद्वैत सन्मात्र है, न समवायिकारण है, न निमित्तकारण है, ताते आत्मा अच्युत है सो स्वरूपते कदाचित् नहीं गिरा तौ समवायिकारण कैसे होवै अरु निमित्तकारण भी नहीं, जो निराकार है, ताते आत्माविषे जगत् कोई नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है अरु अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या किसका नाम है, जो वस्तु होवै नहीं, अरु प्रत्यक्ष भासै, सो अविद्याकरि जानिये. हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है अरु तिसविषे तरंग आवर्त्त उठते हैं सो जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, जब तू अपने आपविषे स्थित होवैगा तब जगत्का शब्द अर्थ इतर न भासैगा, काहेते जो दूसरी वस्तु कछु है नहीं. हे रामजी ! ब्रह्म अमूर्त है, तिसविषे यह मूर्त्तियां कैसे उत्पन्न होवैं, ताते यह भ्रांतिमात्र है. जो वस्तु कारणते उपजी होवै सो सत् होती है अरु जो कारण विना दृष्टि आवै सो भ्रममात्र जानिये, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तिसका कोऊ कारण नहीं, ताते मिथ्याभ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् मिथ्यामात्र है, विचार कियेते नहीं रहता. हे रामजी !

आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं सो सब शून्य हैं, आत्माविषे न उदय हुए हैं, न अस्त होते हैं, ज्योंका त्यों आत्मा ही स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० निर्वाणवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमः सर्गः॥ १९३ ॥

चतुर्णवत्यधिकशततमः सर्गः १९४.

द्वैतकतापतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है तैसे ब्रह्मरूपी आकाश अपने आपविषे स्थित है, सो कैसे किसीका कारण होवै, कारण कार्य तब होता है, जब द्वैत होता है अरु आरंभ परिणाम होता है, सो आत्मा अद्वैत है, अच्युत है अरु निर्गुण है तिसविषे आरंभ कैसे होवै. हेरामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब काष्ठमौन है, काष्ठमौन कहिये जहां मनका फुरणा शून्य है हे रामजी ! जो कछु द्वैत भासता है सो भ्रममात्र है, अरु जो कछु हुआ होता तौ ज्ञानीको भी प्रत्यक्ष होता, सो ज्ञानकालविषे नहीं भासता, तातें भ्रममात्र है. हे रामजी ! पृथ्वी जलतें आदि लेकरि जो पदार्थ हैं सो इनका फुरणा स्वप्नकी नाईं है, जैसे स्वप्नविषे चेष्टा होती है, सो पास बैठेको नहीं भासती, तातें है नहीं, तैसे सृष्टि अकारण संकल्पमात्र है. हे रामजी ! जैसे शशेके शृंगका कारण कोऊ नहीं तैसे जगत्का कारण कोऊ नहीं, जो कछु होवै तौ कारण भी होवै, जो होवै नहीं तौ किसका कारण कौन कहिये. राम उवाच-हे भगवन् ! वटका बीज होता है, तिसविषे वृक्षका भाव होता है, काल पायकरि बीजतें वृक्ष हो आता है, तैसे इस जगत्का कारण परमाणु क्यों न होवै ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! सूक्ष्मविषे जो स्थूल होता है सो संकल्पमात्र होता है, मैं भी कहता हौं, सूक्ष्मविषे स्थूल होता है, परंतु संकल्पमात्र होता है, कछु सत् नहीं होता, जो कहिये सत्य होता है तौ नहीं संभवता जैसे राईके कणकेविषे सुमेरु पर्वतका होना नहीं संभवता तैसे सूक्ष्म

परमाणुते जगत्का उत्पन्न होना असंभव है. हे रामजी ! सूक्ष्म परमाणुका कार्य भी जगत् तब कहिये, जब सूक्ष्म अणु भी आत्माविषे पाया जावे, आत्मा तौ अद्वैत है, तिसविषे एक अरु दो कहनेका अभाव है आत्माविषे जानता भी नहीं, केवल आत्मतत्त्वमात्र है, आधार आधेयते रहित है, बीज भी तब परिणमता है, जब उसको जल देता है अरु रक्षा करनेका स्थान होता है अरु आधार आधेयते रहित है, केवल अपने भावविषे स्थित है, अद्वैत सत्तामात्र है, जैसे वंध्याके पुत्रका कारण कोऊ नहीं तैसे जगत्का कारण कोऊ नहीं, जो वंध्याका पुत्र ही नहीं तो किसका कारण कौन होवै, तैसे जगत् है नहीं तौ ब्रह्म इसका कारण कैसे होवे अरु जिसको तू दृश्य कहता है सो द्रष्टा ही दृश्यरूप होकरि स्थित भया है, जैसे स्वप्नविषे द्रष्टा ही दृश्यरूप होता है तैसे यह जाग्रत् दृश्यरूप होकरि आत्मा ही स्थित है. हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणें जलाभास होकरि स्थित होती हैं तैसे ब्रह्म ही जगत् आकार होकरि दृष्टि आता है, दृश्य भी कछु दूसरी वस्तु नहीं; जैसे समुद्र ही तरंग आवर्त्तरूप होकरि भासता है तैसे अनंतशक्ति होकरि परमात्मसत्ता स्थित है. हे रामजी ! मैं अरु तू यह जगत्के पदार्थ सब फुरणेमात्र हैं, जैसे संकल्प नगर होता, जो मनकरि रचा है, तैसे यह जगत् आत्माविषे कछु बना नहीं, केवल अपने आपविषे ब्रह्म स्थित है, हमको तौ सदा वही भासता है. हे रामजी ! आत्माविषे यह जगत् न उदय हुआ न अस्त होता है, सदा ज्योंका त्यों निर्मल शांतपद है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतकताप्रतिपादनं नाम चतुर्णवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९४ ॥

पंचनवत्यधिकशततमः सर्गः १९५.

परमशांतिनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जगत् भाव अभाव जड चेतन स्थावर जंगम सूक्ष्म स्थूल शुभ अशुभ कछु हुआ नहीं तौ मैं तुझको

क्या कहौं, जो यह कार्य है अरु इसको यह कारण है यह हुआ नहीं, बहुरि कारण कार्य कैसे होवै, जो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु होवै सो कारण कार्य कैसे होवै, केवल अपने आपविषे स्थित है, जो है अरु नहींकी नाईं स्थित हुआ है, तिसविषे संवेदन है, जो जानना तिसके फुरणेकरिकै जगत् भासता है, सो फुरणा चेतनमात्रका विवर्त है, तिस विवर्त करिकै जगद्भ्रम हुआ है, जब यही फुरणा उलट-करि अपनी ओर आता है तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, अरु जब फुरता है तब ध्यान ध्याता ध्येयरूप होकरि स्थित होता है, इसहीका नाम जगत् है, इसीविषे बंध भी होता है अरु मुक्त भी होता है, आत्माविषे न बंध है, न मोक्ष है. हे रामजी ! जब तरंग घनभूत होकरि वहते हैं तब एक नदी होकरि चलती है, तैसे जब वासना दृढ होती है, तब जगत्रूप होकरि स्थित होता है अरु भासता है, जब ऐसी वासना दृढ हुई तब रागद्वेष संकल्पकरि बंधायमान होता है अरु जब वासना क्षय होती है, तब जगत्का अभाव हो जाता है, स्वच्छ आत्मा भासता है, जैसे शरत्कालका आकाश स्वच्छ होता है, तिसते भी निर्मल भासता है. हे रामजी ! यह जीव जो मरि जाता है सो मरता नहीं, मुआ तब कहिये जो अत्यंत अभावको प्राप्त होवै अरु जीनेको न प्राप्त होवै, बहुरि जगत् न भासै, ताते यह मरना नहीं, काहेते जो बहुरि जगत् भासता है यह मरना सुषुप्तिकी नाईं भया, जैसे सुषुप्तिते जागे हुए जगत् भासता है अरु वही चेष्टा करने लगता है; जैसे स्वप्न अरु जाग्रत होता है, तैसे मृत्यु अरु जन्म भी है, ताते मरना अरु जन्म हुआ; जब मरनेका शोक उपजै तब तिसविषे जीवनेका सुख आरोपिये अरु जब जीवनेका हर्ष उपजै तब तिसविषे मरणेका शोक आरोपित है, तब दोनों अवस्था शरीरकी सम रची हैं, जब यह अवस्था शरीरकी जानी तब तेरा अंतर शीतल हो जावैगा, जब संवेदन फुरणेका अत्यंत अभाव हुआ तब परमशांत हुए ध्यान ध्याता ध्येय तीनोंका अभाव हो जावैगा अरु अज्ञान भी न रहैगा, जब ऐसा अभाव हुआ तब पाछे स्वच्छ निर्मल पद रहैगा. हे रामजी ! अब भी निर्मल पद है, परंतु भ्रमकरिकै पदार्थ-

सत्ता भासती है, जैसे निद्रादोषकरिकै केवल अनुभवविषे पदार्थसत्ता होकरि भासती है अरु जागेते कहता है, केवल भ्रममात्र ही थे, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र जान, परमार्थस्वरूपके प्रमादकरिकै यह जगत् भासता है अरु स्वरूपविषे जागेते इसका अभाव हो जाता है. हे रामजी ! स्वप्नविषे अणहोते राज्य देखता है, तैसे तू यह जगत् जान, इसका फुरणा ही इसको बंधनका कारण है जैसे घुराण आप ही स्थान बनाती है अरु आप ही फँस मरती है अरु जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करिकै मुखते अपरका अपर बोलता है अरु तिसकरिकै बंधायमान होता है, तैसे अपने संकल्प ही करिकै बँधता है, जब संकल्प मिटै तब परमानंदको प्राप्त होवै अरु परम स्वच्छ शांति उदय होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमशांतिनिर्वाणवर्णनं नाम पंचनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९५ ॥

षण्णवत्यधिकशततमः सर्गः १९६.
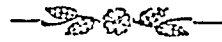
आकाशकुटीवसिष्ठसमाधिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जहां आकाश होता है, तहां शून्यता भी होती है अरु जहां आकाश होता है तहां आकाश भी होता है अरु जहां आकाश है तहां पदार्थ भी होते हैं, तैसे जहां चेतनसत्ता है, तहां सृष्टि भी भासती है परंतु कैसे भासती है, जो बनी कछु नहीं अरु सदा रहती है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल कदाचित् नहीं उत्पन्न भया अरु जलाभास सदा रहता है काहेते कि उसीका विवर्त है, तैसे सृष्टि आत्माका विवर्त है, जहां चेतनसत्ता है तहां सृष्टि भी है. इसीपर एक इतिहास तुझको कहता हौं, सो कैसा इतिहास है जिसके सुननेते अरु समुझनेते जरामृत्युते रहित होवै परमसुंदर इतिहास है अरु चित्तको मोहनेहारा आश्चर्यरूप है अरु प्रकृतरूप है अरु मेरा देखा हुआ है. हे रामजी ! एक कालमें मेरा चित्त जगत्‌ते उपरत हुआ, जो किसी एकांत स्थानविषे जायकरि समाधान करौं जगत् कैसा है, जो मोहरूप व्यवहार करिकै दृढ हुआ

है अरु जेता कछु जानने योग्य है तिसको मैं जाननेहारा हौं परंतु व्यवहारकरिकै भी शांतरूप होऊं ऐसे मैं विचारत भया जो निर्विकल्प समाधि करौं अरु परम शांतिको प्राप्त होऊं जो आदि अंत मध्यते रहित परमानंदस्वरूप है अरु अविनाशी पद है तिसविषे विश्राम करौं. हे रामजी! तब मैं भी ज्ञानवृत्तिवान् परमात्मस्वरूप ही था परंतु चित्तकी वृत्ति जब जगत्भावते उपरत भयी तिस कारणतें व्यवहारविषे भी एकांत समाधिकी इच्छा करी जहां क्षोभ कोऊ न होवै तहां स्थित होवैं ऐसे विचार करिकै मैं आकाशविषे उडा. एक देवताका पर्वत था तहां जाय बैठा वहां बहुत प्रकारके इंद्रियोंके विषय देखे, अंगना गायन करती हैं अरु चमर शिरपर होते हैं अरु मंद मंद पवन चलता है वह विषय भी मुझको आपातरमणीय भासे, किसीकालविषे किसीको सुखदायक नहीं, समाधिवालेके यह शत्रु हैं तिनको विरस जानिकरि बहुरि मैं उडा. एक और पर्वतकी कंदरा थी अरु बहुत सुंदर थी तहां आय प्राप्त भया. सुंदर वन है अरु सुंदर पवन चलता है ऐसे स्थानको मैंने देखा अरु मुझको शत्रुवत् भासा काहेते जो पक्षीके शब्द होते हैं अरु पवनका स्पर्श होता है इत्यादिक अपर भी विषय हैं तिनको देखिकरि मैं आगे चला. नागके देश देखे अरु सुन्दर नागकन्या देखीं अरु बहुत सुंदर इंद्रियोंके विषय भी देखे सो विषय भी मुझको सर्पवत् भासैं, जैसे सर्पके स्पर्श कियेते विषकरि अनर्थको प्राप्त होता है तैसे मुझको विषय भासैं बहुरि आगे चला. हे रामजी! जेते कछु इद्रियोंके विषय हैं सो सब अनर्थके कारण हैं तिनविषे प्रीति मूढ अज्ञानी करते हैं बहुरि समुद्रके किनारे गया तिसके पास जो पुष्पके स्थान हैं तिनविषे विचरा, कन्दरा अरु वनको देखत भया, पर्वत पाताल दशों दिशा देखता फिरा परंतु एकांतस्थान मुझको कोऊ दृष्टि न आया तब मैं बहुरि आकाशको उडा, आकाशविषे पवन अरु मेघके स्थान लंघता गया अरु देवगण विद्याधर अरु सिद्धके स्थान लंघता गया, आगे देखौं तौ कई ब्रह्मांड भूतके उडते हैं. अपूर्व भूत देखे अरु नानाप्रकारके स्थान देखे अरु गरुडके स्थानको लँघता गया, कहूँ सूर्यका प्रकाश होता है तिसको भी लँघता गया,

कहूँ ऐसे देखा कि सूर्यका प्रकाश ही नहीं बहुरि चन्द्रमाके मण्डलको लंघा आगे एक अग्निका स्थान था तिसको मैं लँघिकरि महा आकाशविषे गया जहां इंद्रियोंको रोकना भी न रहै काहेते जो इंद्रियोंके विषय कोऊ दृष्टि न आवै एक आकाश ही आकाश दृष्टि आवै अरु वायु अग्नि जल पृथ्वी चारोंका अभाव है, हे रामजी ! तिस स्थानविषे मैं गया जहां भूत स्वप्नवत् भी दृष्टि न आवैं अरु सिद्धकी गम भी नहीं तहां जायकरि मैं एक संकल्पकी कुटी रची अरु तिसके साथ कल्पवृक्ष फूल पत्रोंकरि पूर्ण रचे तिस सुन्दर कुटीके एक ओर छिद्र रक्खा मेरा जो सूक्ष्म संकल्प था सो प्रत्यक्ष आनि हुआ तिस कुटीको रचकरि तिसविषे प्रवेश किया अरु संकल्प किया जो सौ वर्ष पर्यंत मैं समाधिविषे रहौंगा उसते उपरांत समाधिते उतरौंगा ऐसे विचारकरि मैं पद्मासन बांधा अरु समाधिविषे स्थित भया अरु परमशांतिविषे स्थित भया अरु जहां कोऊ क्षोभ नहीं तिस निर्विकल्प समाधिविषे सौ वर्ष जब व्यतीत भये तब वह जो भावी थी समाधिके उतरनेकी सो संकल्प आनि फुरा जैसे पृथ्वीविषे बीज बोया हुआ काल पायकरि अंकुर लेता है तैसे संकल्प आनि फुरा प्रथम प्राण आनि फुरे जैसे सूखा वृक्ष वसंतऋतुविषे फुरि आता है तैसे प्राण फुरि आये तब ज्ञान इंद्रिय प्रगटि आयी जैसे वसंतऋतुविषे फूल खिल आते हैं तैसे ज्ञान इंद्रिय खिल आयी बहुरि स्पंद जो है अहंकाररूपी पिशाच सो आनि फुरा कि मैं वसिष्ठ हौं, ऐसा जो अहंकाररूपी पिशाच अरु इच्छारूपी तिसकी स्त्री सो आनि फुरे. हे रामजी ! सौ वर्ष मुझको ऐसे व्यतीत हुआ जैसे निमेषका खोलना होता है काल भी बहुत प्रकारकरि व्यतीत होता है किसीको थोडा हो जाता है अरु किसीको बहुत हो जाता है सुखी होता है तब बहुत काल भी थोडा हो भासता है अरु दुःखीको थोडा काल भी बहुत हो जाता है. हे रामजी ! इस समाधिका जो मैं वर्णन किया सो यह शक्ति जीवविषे है परंतु सिद्ध नहीं होती काहेते जो नानाप्रकारकी वासना साथ अंतःकरण

मलीन है, जब अंतःकरण इनका शुद्ध होवै तब जैसा संकल्प करै तैसा सिद्ध होवै अरु मलिन अंतःकरणवालेका संकल्प सिद्ध नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे आकाशकुटीवसिष्ठसमाधिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९६ ॥

सप्तनवत्यधिकशततमः सर्गः १९७.

विदितवेद्याहंकारवर्णनम् ।

राम उवाच—हे भगवन् ! तुम निर्वाणस्वरूप हौ, तुमको अहंकाररूपी पिशाच कैसे फुरा, यह संशय मेरा दूर करौ. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! ज्ञानी होवै अथवा अज्ञानी होवै, जबलग शरीरका संबंध है, तबलग अहंकार दूर नहीं होता, काहेते कि, जहां आधार होता है, तहां आधेय भी होता है अरु जहां आधेय होता है, तहां आधार भी होता है, तैसे जहां देह होती है, तहां अहंकार भी होता है अरु जहां अहंकार होता है, तहां देह भी होती है. हे रामजी ! अहंकार विना शरीर नहीं रहता सो अहंकार अज्ञानरूपी बालकने कल्पा है अरु ज्ञानीविषे जो विशेषता है सो श्रवण करु, तिसके जाननेते अहंकार नष्ट हो जाता है. हे रामजी ! यह अहंकार अविद्याकरि कल्पा है, सो अविद्या किसका नाम है, जो वस्तुते मिथ्या होवै अरु भासै सो अविद्या है अरु जो अविद्या ही मिथ्या है, तौ तिसका कार्य अहंकार कैसे सत्य होवै, यह मिथ्या भ्रमकरिकै उदय हुआ है, जैसे भ्रमकरिकै वैताल वृक्षविषे भासता है, तैसे भ्रमकरिकै अहंकाररूपी वैताल उदय हुआ है अरु इसका कारण अविचारसिद्ध है, विचार कियेते इसका अभाव हो जाता है, जहां जहां विचार होता है, तहां तहां अविद्या नहीं रहती, जैसे जहां दीपक होता है तहां अंधकार नहीं रहता, दीपकके जागेते अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे विचारके उदय हुए अविद्याका अभाव हो जाता है, जो वस्तु विचार कियेते न रहै सो मिथ्या जानिये, जो आप ही मिथ्या है, तिसका कार्य कैसे सत्य होवै ताते अहंकारको मिथ्या जान. हे रामजी !

जैसे आकाशके वृक्षका कारण कोऊ नहीं, तैसे अहंकारका कारण कोऊ नहीं; मनसहित जो षट् इंद्रिय हैं, शुद्ध आत्मा तिनका विषय नहीं काहेतें कि सो साकार है अरु दृश्य है, साकारका कारण निराकार आत्मा कैसे होवै जो कछु आकार है सो सब मिथ्या है, जो बीज होता है, तिसते अंकुर उत्पन्न होता है, तब जानता है कि,बीजते अंकुर उत्पन्न हुआ है; परंतु बीज ही न होवै तौ तिसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्न होवै, तैसे जगत्का कारण संवेदन ही न होवै तौ जगत् कैसे होवै, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा होवै तौ तिसका कारण भी मानिये, जो दूसरा चंद्रमा ही न होवै तिसका कारण कैसे मानिये. हे रामजी। ब्रह्म आकाश अद्वैत है अरु शुद्ध है फुरनेते रहित है अरु अच्युत है, अविनाशी है, सो कारण कार्य कैसे होवै. हे रामजी। पृथ्वी आदि तत्त्व जो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, भ्रमकरिकै भासते हैं, केवल शुद्ध आत्मा अपने आपविषे स्थित है अरु जो तू कहै अविद्यमान है, तौ भासते क्या हैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्नविषे अनहोती सृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भी अनहोता भासता है, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे अनहोते वृक्ष भासते हैं, इसविषे आश्चर्य कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर रचि लीजै, तब उसविषे चेष्टा भी होती है, परंतु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है, वास्तव अर्थाकार कछु नहीं होता, परंतु अपने कालविषे सत् भासता है, जब संकल्पका लय होता है, तब उसका भी अभाव हो जाता है, तब आकाशके वृक्षकी नाईं हुआ क्यों, जो आकाशके वृक्ष भावनाकरि भासते हैं, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र है, स्वरूपते कछु नहीं, जो विचार करि देखिये तौ इसका अभाव हो जाता है. हे रामजी। शुद्ध आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सोई जगत्का आकार हो भासता है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे जेते पदार्थ भासते हैं, सो सब अनुभवरूप हैं, तैसे जगत् भी ब्रह्मस्वरूप है. हे रामजी। हमको सदा वही भासता है, तौ अहंकार कहां होवै, न मैं अहंकार, न मेरा अहंकार है, केवल आकाशविषे अहंकार कहां होवै. हे रामजी। न मैं हौं, न मेरेविषे कछु फुरना है, अथवा सर्व आत्मसत्ता मैं ही हौं, तौ भी अहंकार न हुआ. हे रामजी।

हमारा अहंकार ऐसा है, जैसे अग्निकी मूर्ति लिखी होती है तिससे अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता दृष्टिमात्र हुई है, तैसे ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका नहीं होता, अपने स्वभावविषे स्थित है सर्व ज्ञानवान्का एक ही निश्चय है जो ब्रह्म ही भासता है अरु अहंकारका अभाव है, न आगे था न अब है, न बहुरि होवैगा, भ्रमकरिकै अहंकार शब्द जानता है. हे रामजी ! जब ऐसे जानैगा तब अहंकार नष्ट हो जावैगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ देखनेमात्र होता है, वर्षाते रहित, तैसे ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र होता है, अपरकी बुद्धिविषे भासता है, परंतु ज्ञानीके निश्चयविषे असंभव है, उसका अहंप्रत्यय आत्माविषे रहता है, परिच्छिन्न अहंकारका अभाव हो जाता है, जब अहंकार नाश हुआ, तब अविद्याका भी नाश हुआ अरु यही अज्ञानका नाश है, ये तीनों पर्याय हैं. हे रामजी ! अपने स्वभावविषे स्थित होकरि प्रकृत आचारको करने अरु अंतरते शिलाकोशवत् हो रहु अरु बाह्य इंद्रियोंकी क्रिया सब रहै अरु अपने निश्चयको गुप्त राखिये अरु सर्व इंद्रियोंको इस प्रकार धारहु, जैसे आकाश सबको धार रहा है, अंतरते शिलाके जठरवत् रहो, देखनेमात्र तुम्हारेविषे भी अहंकार दृष्टि आवैगा, जैसे अग्निकी मूर्ति लिखी दृष्टि आती है तैसे तुम्हारेविषे अहंकार दृष्टि आवैगा, परंतु अर्थ कारण होवैगा, केवल ब्रह्मसत्ता ही भासैगी, अपर कछु न भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विदितवेदाहंकारवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९७ ॥

अष्टनवत्यधिकशततमः सर्गः १९८.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है कि, तुमने अहंकारके त्यागेते परम सात्त्विकी प्राप्तिका उपदेश किया है, सो यह परम दशा है, जो राग द्वेष मलते रहित निर्मल है परम उत्तम है, अरु अविनाशी

है आदि अंतते रहित है, यह दशा तुमने परम विभुताके अर्थ कही है. हे भगवन्! सर्वदा काल अरु सर्वप्रकार वस्तु वही ब्रह्मसत्ता है समरूप सत्ताके अनुभवते परम निर्मल है तौ शिलाख्यान किस निमित्त कहा है, सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! सर्वविषे सर्वदा काल अरु सर्वते रहित है, तिसके बोध अर्थ मैंने तुझको दृष्टांत शिलाख्यान कहा है. हे रामजी! ऐसा स्थान कोऊ नहीं, जहाँ, सृष्टि नहीं, सर्व स्थानविषे सृष्टि भासती है अरु आदिते कछु बना नहीं अरु सर्वदाकाल वसती है, शिलाके कोशविषे अनेक सृष्टि भासती हैं, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे शिलाकोशविषे सृष्टि वसती हैं. श्रीराम उवाच-हे भगवन्! जो सर्वविषे सृष्टि वसती हैं, कुंद आदिकविषे यह तुमने कहा तौ आकाशरूप क्यों न होवै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यही मैं भी तेरे ताईं कहता हौं जो कछु सृष्टि है, सो सब आकाशरूप है, स्वरूपते सृष्टि तौ उपजी नहीं, सर्वदा आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, आकाशकी वार्ता क्या कहनी है, जो शिलाकोशविषे सृष्टि वसती हैं, जो आकाशरूप हैं सो वसती हैं, अर्थ यह कि हुई कछु नहीं. हे रामजी! पृथ्वीविषे ऐसा अणु कोऊ नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, अणु अणुविषे सृष्टि है, अरु सर्व ओरते वसती हैं अरु परमार्थते कछु बना नहीं, केवल आत्मरूप हैं, सर्व सृष्टि शब्दमात्र हैं जैसे यह सृष्टि भासती है, तैसे वह भी है, जब यह शब्दमात्र है, तब वह भी शब्दमात्र है अरु जो यह सत् भासती है, तौ वह भी सत् भासती है. हे रामजी! ऐसे कोऊ जलका कणका नहीं, जिसविषे सृष्टि नहीं, वह सर्वविषे सृष्टि है अरु यह आश्चर्य देख कि इस विना कछु नहीं अरु ऐसा कोऊ अग्निका अरु वायुका कणका नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, सर्वविषे सृष्टि है अरु आकाशरूप है, कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे सदा ज्योंकी त्यों स्थित है. हे रामजी! आकाशविषे ऐसा अणु कोऊ नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, सबविषे सृष्टि है, परंतु कछु उपजी नहीं, ऐसा ब्रह्म अणु कोऊ नहीं, जहां सृष्टि न होवै, सबविषे है परंतु स्वरूपते कछु हुई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे सदा स्थित है. हे रामजी!

ऐसा अणु कोऊ नहीं, जिसविषे ब्रह्मसत्ता नहीं अरु ऐसा कोऊ चिद्अणु नहीं, जिसविषे सृष्टि नहीं, सो सृष्टि कैसे है, जैसे किसीने अग्नि कही, किसीने उष्णता कही, तिसविषे भेद कोऊ नहीं तैसे कोऊ ब्रह्म कहै, कोऊ जगत् कहै, शब्द दो हैं परंतु वस्तु एकही है, जगत् ही ब्रह्म है अरु ब्रह्म ही जगत् है, भेद कछु नहीं, जैसे बहते जलका शब्द होता है तिसविषे अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे जगत् मुझको कछु पदार्थ नहीं भासता, काहेते जो दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं मैं तू अरु यह जगत् सुमेरुते आदि लेकरि जो पर्वत हैं, देवता किन्नर अरु दैत्य नाग इत्यादिक जो जगत् है सो सब निर्वाणस्वरूप हैं, आत्मतत्त्वविषे कछु बना नहीं, यह बोलते चालते जो भासते हैं सो स्वप्नकी नाईं जान, जैसे कोऊ पुरुष सोया है अरु स्वप्नविषे नाना प्रकारके युद्ध होते हैं, वादित्र बाजते हैं अरु अपर चेष्टा होती है अरु जो उसके निकट जाग्रत् पुरुष बैठा है तिसको कछु नहीं भासता, काहेते जो बना कछु नहीं अरु उसको सब कछु भासता है तैसे ज्ञानीके हृदयविषे जगत् शून्य है अरु अज्ञानीको भ्रमकरिकै जगत् नानाप्रकारका भासता है. ताते हे रामजी ! स्वप्नवत् इस जगत्को जानकरि प्रकृत आचार करु अरु अंतरते शिलाकी नाईं होहु, जो फुरै कछु नहीं ब्रह्म अरु जगत्विषे रंचक भी भेद नहीं, ब्रह्म ही जगत् है जगत् ब्रह्म है, जगत्का स्पष्ट अर्थ ब्रह्मते भिन्न नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नामाष्टनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९८ ॥

नवनवत्यधिकशततमः सर्गः १९९.

जगज्जालसमूहवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! आकाशकोशविषे जो कुटी बनायकरि समाधि लगायी अरु सौ वर्षते उपरांत उतरी तिसके अनंतर जो वृत्तांत हुआ सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब समाधिते मैं उतरा तब आकाशविषे मैं एक शब्द सुना सो कैसा शब्द हुआ जो कोमल

हृदय अरु सुंदर तुतरीकी तारवत् अंगनाका शब्द हुआ तब मैंने विचार किया कि यह शब्द कहांते आया है, मैं तौ बहुत ऊर्ध्वको आया हौं, जहां सिद्धकी भी गम नहीं, सिद्धते भी तीन लाख योजन ऊँचा आया हौं, यह शब्द कहांते आया ऐसे विचारि मैं देखने लगा, दशो दिशा आकाश ही सर्व ओर देखे हैं परंतु सृष्टिकाकर्त्ता कोऊ दृष्टि न आवै, एक आकाश ही भासै अपर कछु न भासै, तब मैंने विचार किया कि जो सृष्टि आकाशविषे होती है ताते मैं आकाश ही हो जाऊँ अरु यह शब्दको पावौं कि किसका शब्द है आकाशको भी त्यागकरि चिदाकाश हो जाऊँ जहां भूताकाश भी कुटीवत भासता है तब इसका भी अंत भासैगा अरु जानि लेवैगा जो यह शब्द होता है, ऐसे विचार करि मैं निश्चय किया कि यह शरीर ही यहां रहै, नेत्र मूँदे रहैं; तब पद्मासन बांधिकरि बाह्यकी इंद्रियोंको भी रोकी अरु जो इंद्रियोंकी वृत्ति शब्द आदिकको ग्रहण करती थी तिसको रोक लिया, अंतर बाहिरकी वृत्ति सब त्यागी, सर्व अहंवृत्तिको त्यागिकरि मैं आकाशरूप हो गया, जैसे इस ब्रह्मांडविषे आकाशका अंत नहीं पाता तैसे मैं इसको त्यागिकरि चित्ताकाशरूप हो गया, मैं चित्ताकाशविषे आया सो चित्ताकाश कैसा है, जो संकल्प ही जिसका रूप है, तिसको भी मैं त्यागिकरि बुद्धि अकाशविषे आया, बहुरि तिसको भी त्यागिकरिकै चिदाकाशविषे आया, तिस शब्दके देखनेके संकल्पकरि चिदाकाश रूप हो गया, जैसे जलकी बूँद समुद्रमें मिलि समुद्ररूप हो जाती है तैसे मैं चिदाकाश हो गया सो चिदाकाश निराकार निराधार है अरु सबको धारि रहा है, परमानंदस्वरूप है, शांत है अरु अनंत है, जिसविषे सर्व ब्रह्मांड प्रतिबिंबित होते हैं, आत्मा आदर्श है तिसविषे मैं स्थित हुआ तब मुझको अनंत सृष्टि अपने आपविषे भासने लगी, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु होते हैं तैसे ब्रह्मविषे सृष्टि है परंतु जीवकी अपनी अपनी सृष्टि है, इसकी सृष्टिको वह न जानै, उसकी सृष्टिको वह न जानै, जैसे मनुष्य सोये होवैं अरु अपनी अपनी स्वप्नसृष्टिको देखैं, तिसविषे आकाश अरु काल अपना आप देखै, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता उसकी सृष्टिको वह नहीं

जानता परंतु ज्ञानी सर्व सृष्टि देखता है, तैसे मुझको सर्व सृष्टि चिदाकाशविषे भासे अरु जीवको अपनी अपनी सृष्टि भासे,अपरकी सृष्टि अपरको दृष्टि नआवे. हे रामजी ! एक सृष्टि ऐसे भासे,जो आवरण कोऊ नहीं, आवरण कहिये जैसे पृथ्वीके चौफेर समुद्र होते हैं सो वहां आवरण कोऊ न था अरु कहूं कहूं एक ही भूतका आवरण है, कहूं ऐसी सृष्टि आवे, जिनको पाँच ही तत्त्वका आवरण है, प्रथम पृथ्वीका आवरण, दूसरा जलका, तीसरा अग्निका, चतुर्थ वायुका, पंचम आकाशका आवरण है, कहूं ऐसी सृष्टि देख आवें, जिनको चार तत्त्वका आवरण है, कहूँ ऐसी देखी जिनको षट् आवरण, कहूं दश आवरण दृष्टि आवें, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्टि आवे जिसको षोडश आवरण है अरु कहूं ऐसी दृष्टि आवें जिनको चौंतीस आवरण हैं, कहुं छत्तीस आवरण तत्त्वके संयुक्त सृष्टि देखीं. हे रामजी ! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखता भया, चिदाकाशविषे, परंतु कैसी हैं जो आकाशरूप हैं सो आत्माते इतर वस्तु कछु नहीं, मनके फुरणेते मुझको सृष्टि दृष्टि आवें, काहेते जो संकल्पमात्र ही हैं, अपर कछु बना नहीं, जैसे कंधके ऊपर मूर्तियां लिखी होवें तैसे आत्मरूपी कंधके ऊपर मूर्तियां दृष्टि आवें, अपने अपने व्यवहारविषे मग्न रहे हैं. हे रामजी ! ऐसी अनंत सृष्टि देखी. एककी सृष्टिको दूसरा न जानै सब अपनी सृष्टिको जानै, जैसे अनेक पुरुष एक ही कालविषे शयन करें अरु स्वप्नसृष्टि अपनी अपनी देखें दूसरी सृष्टिको वे नहीं जानते. हे रामजी ! कछु ऐसी सृष्टि देखी, जहां सूर्यका प्रकाश नहीं अरु न चंद्रमाका प्रकाश है, न अग्निका प्रकाश है अरु चेष्टा उनकी सब बड़ी होती हैं । कहूं ऐसी देखी जहां सूर्य चंद्रमा हैं कहूँ ऐसी देखी जो उनको कालका ज्ञान भी नहीं कि कौन काल है, न वहां कोऊ दिन है न रात्रि ही है, सदा एक समान रहते हैं, कहूं महाशून्यरूप तम ही दृष्टि आवै, कहूं ऐसे दृष्टि आवै जो देखते ही रहते हैं, कहूं मनुष्य ही रहते हैं, कहूं तिर्यक् ही रहते हैं, कहूँ दैत्य ही दृष्टि आवें, कहूँ जल ही दृष्टि आवे अपर तत्त्व कोऊ न दृष्टि आवै अरु कहूं ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जहां शास्त्रका विचार ही

नहीं, कहूँ शास्त्र पुराण विपर्ययरूप हैं, कहूँ समान हैं, कहूं प्रलय होती दृष्टि आवैं, कहूँ उत्पत्ति होती दृष्टि आवै. हे रामजी! इत्यादिक अनंत सृष्टि मैंने देखी, परंतु जब स्वरूपकी ओर देखौं तब केवल ब्रह्मरूप ही भासे अपर कछु बना दृष्टि न आवै अरु जब संकल्प करिकै देखिये तब अनंत सृष्टि दृष्टि आवै, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जहां बालकको वृद्ध यौवन अवस्थाकी मर्यादा ही नहीं, जैसे जन्मै तैसे ही रहे, कहूँ ऐसी सृष्टि है जो चंद्रमा सूर्यका प्रकाश नहीं अरु अग्निके प्रकाशसाथ उनकी चेष्टा होती है, कहूँ ऐसे देखे जो ऊर्ध्वको चले जावैं, कहूं नीचे चले जावैं, कहूँ ऐसे देखे जो शास्त्रकी मर्यादासाथ चेष्टा करैं, कहूँ कृमि ही वसते हैं अपर कोऊ नहीं. हे रामजी! चेतनरूपी वनविषे मैंने अनंत सृष्टिरूपी वृक्ष देखे परंतु दूसरा कछु बना दृष्टि न आया, तब चेतनका आभास ही दृष्टि आया, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है अरु बना कछु नहीं तैसे सृष्टि बनी कछु नहीं अरु दृष्टि आवै, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है अरु दूसरा चंद्रमा भासता है तैसे अनहोती सृष्टि भासे, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है अरु गंधर्वनगरकी सृष्टि भासती है तैसे संपूर्ण सृष्टि भासती है. हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश है तिसविषे चित्तरूपी गंधर्वने सृष्टि रची है. स्वरूपते इतर कछु उपजा नहीं, सब अकारण है, जो निमित्तकारण समवायकारणविना सृष्टि भासे सो भ्रममात्र जानिये, जैसे स्वप्नसृष्टि कारण विना होती है अरु अर्थाकार हो भासती है तौ भी अजातजात है, अर्थ यह जो उपजेविना उपजी भासती है, तैसे संपूर्ण सृष्टि आभासमात्र है. हे रामजी! आभासविषे भी अधिष्ठानसत्ता होती है जिसके आश्रय आभास फुरता है सो शांत चिदानंद ब्रह्म सबका अधिष्ठान है अरु सर्व आत्मताकरिकै स्थित है, ब्रह्मसत्ताते इतर कछु नहीं, चैत्यताकरिके नानात्व भसता है परंतु नानात्व हुआ कछु नहीं आत्मा ही सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे क्षीरसमुद्रविषे वायुकरिकै नाना-प्रकारके तरंग उपजे भासते हैं तौ भी क्षीरते इतर कछु नहीं, ऐसा क्षीरसमुद्रका तरंग कोऊ नहीं, जिसविषे घृत न होवै, सब विषे घृत

व्याप रहा है, तैसे जो कछु पदार्थ हैं तिन सबविषे ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत है अरु जैसे क्षीरके मथन कियेते घृत निकसता है तैसे विचार कियेते जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है इतर कछु नहीं, काहेते जो कारणद्वारा कछु नहीं उपजा, परमार्थते केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, फुरणेरूपी भ्रमकरिकै कछु हुआ दृष्टि आता है, जब फुरणेरूपी भ्रम निवृत्त हुआ तब ब्रह्म ही भासता है ताते अविद्यारूप फुरणेको त्यागिकरि अपने निर्विकल्प स्वरूपविषे स्थित होहु तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जगज्जालसमूहवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९९ ॥

द्विशततमः सर्गः २००.
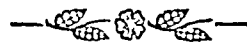
जगज्जालवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार मैं सृष्टि देखी तब बहुरि विचार आनि हुआ कि वह शब्द करनेहारा कौन था, तिसको देखौं, तब मैं देखने लगा, देखते देखते तीतरीकी नाईं शब्द सुना परंतु उसको न देखा तब फेरि देखा, देखते देखते शब्दका अर्थ भासने लगा, बहुरि देखा तब अंगना दृष्टि आयी सो कैसी है, स्वर्णवत् जिसका शरीर है,बहुत सुंदर वस्त्र पहिरे हुए है अरु सर्व अंग भूषणोंकरि पूर्ण हैं, लक्ष्मीकी नाईं तिसको उपमा दीजिये अरु भवानीकी उपमा दीजिये ऐसी सुन्दर है, जब मैं उसको देखी तब वह मेरे निकट आय प्राप्त भयी अरु कहने लगी. हे मुनीश्वर ! अपर संसार मैं देखा है परंतु समानधर्मा मुझको दृष्टि आया है अरु तुम उत्तमधर्मा भासते हौ संसारसमुद्रके पार हुए दृष्टि आते हौ संसारसमुद्रपरके तुम वृक्ष हौ जो कोऊ तुम्हारी ओर आता है तिसके आश्रयभूत हौ अरु निकासि भी लेते हौ, अपर जो जीव हैं सो संसारसमुद्रविषे बहे जाते हैं अरु तुम पारको प्राप्त हुए हौ ताते तुमको नमस्कार है. हे रामजी ! जब इस प्रकार अंगनाने कहा तब मैं आश्चर्यको प्राप्त हुआ कि इसने मेरे ताईं कादाचित् देखा भी नहीं अरु

सुना भी नहीं, बहुरि इसने क्योंकरि जाना ? तब मैं ऐसे विचार किया कि यह मायाका कोऊ चरित्र है अरु जो ब्रह्मांड मुझको दृष्टि आये हैं सो इसकरके दृष्टि आये हैं. हे रामजी ! ऐसे विचार किया तब उसको त्यागिकरि मैं बहुरि आकाशको उडा तब अपर सृष्टि भासने लगी, जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है अरु संकल्पकी सृष्टि होती है अरु गंधर्व-नगरकी सृष्टि होती है तैसे यह सृष्टि है, वास्तव कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नादिक सृष्टि अनहोती भासती हैं तैसे यह जगत् है, केवल बोध-मात्र आत्मा अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! जब मैं बोधविषे स्थित होकरि देखौं तब मुझको आत्मा ही भासै अरु जब संकल्प करके देखौं तब नाना प्रकारका जगत् भासै, कहूं नष्ट होते भासै, कहूं नष्ट होकरि उत्पत्ति होते भासै, जैसे पीपलके पात पडते हैं अरु बहुरि तैसे ही उपजते हैं तैसे उपजते भासैं, कहूँ अर्धस्वभाव तैसा होवै, कहूँ ऐसे दृष्टि आवैं जो नाश होकरि अपरके अपर उत्पन्न होवैं, कहूँ उत्पन्न होते ही दृष्टि आवैं, कहूं भिन्न भिन्न सृष्टि अरु भिन्न भिन्न शास्त्र दृष्टि आवैं, कहूं सूर्य चंद्रमा अरु तारोंका चक्र ऐसे ही फिरता दृष्टि आवै अरु कहूं अपर प्रकार दृष्टि आवै, कहूं नरककी सृष्टि दृष्टि आवै, कहूं स्वर्गके स्थान दृष्टि आवैं, इसी प्रकार अनंत ही सृष्टि देखा अरु अनंत ही रुद्र देखे, अनंत ही ब्रह्मा देखे, अनंत ही विष्णु देखे, कहूं प्रलयके मेघ गर्जते हैं, कहूँ सुमेरु आदिक पर्वत उडते दृष्टि आवैं, कहूँ ब्रह्मांड जलते दृष्टि आवैं अरु द्वादश सूर्य तपते दृष्टि आवैं, कहूँ ऐसे स्थान दृष्टि आवैं जो जन्मते ही पुष्ट हो जावैं, कहूँ ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जो एक सृष्टिविषे मुआ दूसरी सृष्टिविषे आवै अरु दूसरी सृष्टिविषे मुआ उसी सृष्टिविषे आवै, कहूं प्रलय होती दृष्टि आवै, कहूं ज्योंकी त्यों रहती सृष्टि दृष्टि आवै, उनके निकट उसको कष्ट कछु न होवै, जैसे दो पुरुष एक ही शय्यापर सोये होवैं अरु दोनोंको स्वप्न आवै, एककी सृष्टिविषे प्रलय होती है अरु दूसरेकी ज्योंकी त्यों रहै, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं. हे रामजी ! इस प्रकार मैंने अनंत सृष्टि देखी परंतु तिनविषे सारब्रह्म सत्ता मैंने देखी, अपर सब स्वप्नवत् स्थान दृष्टि आये, जैसे केलेके वृक्षविषे

सार कछु नहीं निकसता तैसे स्थानविषे सार कछु न देखा. हे रामजी ! क्रिया काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप हैं जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सब जलरूप हैं तैसे जगत् सब ब्रह्म स्वरूप है इतर कछु नहीं; जैसे क्षीर-समुद्रविषे तरंग आवर्त क्षीरते भिन्न कछु नहीं होते तैसे तू अरु मैं जगत् सब ब्रह्म ही है, जब बोधकी ओर मैं देखौं तब सर्व ब्रह्म ही दृष्टि आवै जब संकल्पकी ओर देखौं तब नाना प्रकारका जगत् दृष्टि आवै इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखत भया कहूँ कैसे सृष्टि देखी जो अधः ही है कहूँ गुणकी सृष्टि देखी अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो धर्म अधर्म-को जानते ही नहीं. हे रामजी ! एकसौ पचास सृष्टि त्रेतायुगकी देखी अरु जो भिन्न भिन्न सृष्टि हैं अरु भिन्न भिन्न जगत् तिनविषे ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ भिन्न भिन्न देखे जिनको मेरे समान ज्ञान है अरु मेरे ही समान स्फूर्ति है बहुरि मुझते उत्तम भी हैं अरु तू सुन जो तिन एकसौ पचास सृष्टिविषे तितने वसिष्ठ देखे तिन सबके आगे उपदेश लेनेके निमित्त रामजी बैठे हैं अरु त्रेतायुगविषे अनेक युग अरु अनेक द्वापर अनेक त्रेता अनेक सत्ययुग देखे सो सब चेतन आकाशके आश्रय देखे. हे रामजी ! हुए बिना सब दृष्टि आवैं जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है जैसे आकाशविषे अनहोती नीलता भासती है जैसे जेवरीविषे अनहोता सर्प भासता है तैसे ब्रह्म करिकै अनहोता जगत् भासता है. हे रामजी ! मनके फुरणेकरि जगत् भासता है अरु फुरणेके मिटेते सब ब्रह्म ही भासता है. हे रामजी ! अनंत सृष्टि मैंने देखीं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे अनंत त्रसरेणु दृष्टि आवैं तैसे सृष्टि अनंत देखी एक चेतनते अनेक चेतन दृष्टि आवैं जैसे वृक्षते फल प्रगट होते हैं तैसे संकल्परूपी वृक्षते सृष्टिरूपी फल दृष्टि आवैं जैसे एक गुल्लरके फूलविषे अनंत मच्छर होते हैं तैसे एक आत्मसत्ताके आश्रय अनंत सृष्टि संकल्पके फुरणेकरि मुझको दृष्टि आईं कहूं महाप्रलयके क्षोभ होते हैं अरु समुद्र उछलते हैं तिनके तरंग देवलोकको गिराते हैं कहूं श्यामरूप चंद्रमा उष्ण दृष्टि आवै कहूँ सूर्य शीतल दृष्टि आवै कहूँ ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जो दिनको अंध हो जावै अरु रात्रिको उलूकादिककी

नाईं चेष्टा करै अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो उनको रात्रि अरु दिनका ज्ञान कछु नहीं अरु कालका ज्ञान भी नहीं धर्म अधर्मका ज्ञान भी नहीं जैसी अपनी इच्छा होवै तैसे करते हैं कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो पुण्य करनेहारे नरकको प्राप्त होते हैं अरु पापकर्त्ता स्वर्गको जावैं कहूँ ऐसी सृष्टि देखी कि बालूते तेल निकसता है अरु विषपान कियेते अमर होते हैं अरु अमृतके पान कियेते मरि जावैं. हे रामजी ! जैसे जिसका निश्चय होता है तैसा ही आगे भासता है यह जगत् संकल्पमात्र है जैसी भावना होती है तैसा आगे होकरि भासता है कहूँ पत्थरविषे कमल उपजते दृष्टि आये हैं अरु कछु वृक्षोंमें लगे रत्न हीरे दृष्टि आये हैं अरु बड़े प्रकाश संयुक्त आकाशविषे वृक्षके वन दृष्टि आये हैं कहूँ ऐसी सृष्टि देखी कि मेघके बादल ही तिनके वस्त्र हैं वस्त्रोंकी नाईं बादलोंको पकरि लेवैं कहूँ शीशके भार लेते दृष्टि आवैं अरु सब चेष्टा भी करैं अंधे काने दोरे इत्यादिक नाना प्रकारकी सृष्टि देखी हैं. हे रामजी ! जब मैं स्वरूपकी ओर देखौं तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्टि आवै अरु जब संकल्पकी ओर देखौं तब नाना प्रकारका जगत् भासै कहूँ ऐसे ही दृष्टि आवै जो चंद्रमा सूर्यको जानते ही नहीं कहूँ एक पृथ्वीकी सृष्टि देखी पृथ्वीविषे अरु अग्निकी सृष्टि देखी अग्निविषे जलकी सृष्टि जलविषे देखी कहूँ पांच भूतकी सृष्टि देखी जैसे यह विद्यमान है कहूँ काष्ठकी पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी जैसे यह विद्यमान है भोजन करती है कहूँ कहूँ प्राणहु विना यंत्रीकी पुतलियांवत् चेष्टा करते हैं. हे रामजी ! जब ऐसे सृष्टिको देखता देखता महा आकाशविषे अनंत योजन पर्यंत चला गया परंतु एक आकाश ही दृष्टि आवै अपर तत्त्व कोऊ दृष्टि न आवै बहुरि ऐसी सृष्टि देखी जो खाना पीना सब चेष्टा करै परंतु दृष्टि न आवै वैतालकी नाईं जैसे वैताल सब चेष्टा करते हैं अरु दृष्टि नआवैं तैसे वह दृष्टि न आवै अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी कि मैं अरु कल्पना भी नहीं केवल निश्चित पद रहै अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो उनका मन ही नहीं कहूं निरहंकार सृष्टि देखी कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो सबविषे आत्मभावना करते हैं कहूं सब अपना आप ही जानै

भेदभावना किसीके नहीं, कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो सब मोक्षकी लक्ष्मी करि शोभते हैं कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो उपजिकरि शीघ्र ही नाश हो जावै जैसे नख अरु केश उपजते हैं कहूं ऐसे देखे जो चिरकालपर्यंत रहैं. हे रामजी ! इस प्रकार अनंत सृष्टि देखीं सो कैसी सृष्टि हैं; जो अनहोती फ़ुरती हैं अरु संकल्पमात्र हैं जब संकल्प लय हो जावै तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावै, चित्तके स्पंदविषे सब जगज्जाल देखे वस्तुते क्या दृष्टि आवै, सो सुन, मैं ऊर्ध्व गया, अधो गया, दशों दिशा गया परंतु मेरे तौ चेतनरूपी समुद्रके बुद्बुदे भासे हैं अपर कछु न भासे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगज्जालवर्णनं नाम द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥

एकाधिकद्विशततमः सर्गः २०१.

बोधजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ब्रह्म चिदाकाश अपने आपविषे स्थित है, जैसे जल अपने जलभावविषे स्थित है अरु तिसविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसको मुनीश्वर चित्ताकाश कहते हैं तिस मनविषे संकल्प विकल्प फ़ुरणेकरि अनंतकोटि ब्रह्मांड बन गये हैं तिसका नाम भूताकाश है, जो मनते उपजा है, इस कारणते इसका नाम भूताकाश है, सो संकल्पमात्र है, आत्माते इतर कछु नहीं. श्रीराम उवाच–हे भगवन् ! यह जो कल्प है, ब्रह्माका दिन अरु रात्रि जो दिनविषे भूत उत्पन्न होते हैं अरु रात्रिविषे प्रलय हो जाते हैं अरु जब महाप्रलय होता है, तब भूत कोऊ नहीं रहता सब ब्रह्मसत्ताविषे लीन हो जाते हैं, सब जीवन्मुक्त हो जाते हैं, सूक्ष्म ब्रह्म ही शेष रहता है, तिस सूक्ष्म ब्रह्मते बहुरि कैसे उत्पत्ति होती है, सो कृपा करिकै कहौ ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब भूत नष्ट हो जाते हैं अरु ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, तिसको भी मानता है तुझने भी

कहा जो पाछे ब्रह्मसत्ता शेष रहती है जब तुझने माना जो सबका कारण ब्रह्म शेष रहता है, सो ब्रह्मसत्ता शुद्ध स्वरूप है, आकाशते भी सूक्ष्म है, जो आकाशका एक अणु होवै अरु तिसका सहस्र भाग करिये जैसे वह अणुका भाग सूक्ष्म होता है, तिसते भी ब्रह्मसत्ता अतिसूक्ष्म है. हे रामजी! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्मते जगत्‌की उत्पत्ति कैसे कहौं अरु जो उत्पत्ति ही नहीं भयी तौ तिसकी प्रलय कैसे होवै अरु यह जगत् जो दृष्टि आता है, सो ब्रह्मका हृदय है, अपनी जो स्वभाव सत्ता है, तिसका नाम हृदय है, सो यह जगत् ब्रह्मका वपु है, जैसे स्वप्नविषे अपनी संवित् ही देशकाल पर्वत आदिकरूप होती है, तैसे यह जगत् संवित्‌रूप है अरु अपने स्वरूपके अज्ञान करिकै दुष्की नाईं दुःखदायक भासता है, जैसे अपने पडछायेविषे अज्ञानकरिकै भूत कल्पता है अरु भयको प्राप्त होता है, जब विचारकरि देखता है, तब भय निवृत्त हो जाता है, तैसे यह जगत् कछु उपजा नहीं. हे रामजी! चेतनसंवित् ही जगत् आकार होकरि भासती है अपर वस्तु कछु नहीं, जो सब वही हुआ तौ आदि सर्वका होना अरु प्रलय सब उसीके अंग हैं, इतर कछु नहीं, अस्ति नास्ति उदय अस्तते आदि जो शब्द हैं, सो सब आकाशरूप हैं अरु सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है अरु सर्व शब्द ब्रह्महीविषे होते हैं अरु ब्रह्म सर्व शब्दते रहित भी है, जो सर्व शब्दते रहित हुआ तौ जगत्‌की उत्पत्ति प्रलय क्योंकरि कही जावै, आत्मा अच्छेद्य अरु अदाह्य अरु अक्लेद्य है, अदृश्य है, इंद्रियोंका विषय नहीं अशब्द पद केवल आत्मा है अरु परमदेव है अरु जगत् भी अविनाशी है, काहेते जो उपजा ही नहीं. हे रामजी! जगत् भी आत्माते इतर नहीं, आत्मरूप है, जो आत्मरूप है, तौ विकार कहां होवै, सर्व शब्द अरु अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, ताते जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जैसे अंगवाला सर्व अंग अपने जानता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मके अंग हैं अरु सबको जानना है, वास्तवते सुस्वच्छ आकाशवत् है, अदेशकाल वस्तु सुख दुःख जन्म मरण साकार निराकार केवल अकेवल नाशी अविनाशी इत्यादिक सर्व शब्द अरु अर्थ सब ब्रह्महीके नाम हैं, जैसे अवयव अवयवी पुरुषके हैं, जो

पसारै तौ भी अपने स्वरूप हैं, जो संकोचै तौ भी अपने अवयव हैं, तैसे उत्पत्ति प्रलय सब ब्रह्मही के अवयव हैं, इतर कछु नहीं, परंतु इतरकी नाईं जगत् हुआ भासता है, जैसे सूर्य किरणोंविषे जल कछु हुआ नहीं परंतु हुएकी नाईं दृष्टि आता है, किरणैं ही जल होकरि भासती हैं, तैसे आत्मा जगत् आकार होकरि भासता है, सो आत्मस्वरूप ही है. हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे सो संवित् फुरणा हुआ है, सो दृढ मूल है, अरु चित्त शरीररूपी तिसके स्तंभ हैं, अरु लोकपाल तिसके दास हैं अरु शाखा तिसकी जगत् अरु फल तिसका प्रकाश है, जिस करि जगत् प्रकाशता है अरु अंधकार तिस वृक्षविषे श्यामता है अरु वृक्षविषे जो पोल होती है, सो आकाश है, अरु फूलके गुच्छे हैं सो प्रलय हैं अरु गुच्छेके हिलावनेहारे जो भँवरे होते हैं, सो विष्णु रुद्रादिक हैं अरु जडता तिसकी त्वचा है इस प्रकार सम सत्य आत्मब्रह्म है, ब्रह्मत्वभावते भी नहीं, कछु नहीं, सर्वदा अपने स्वभावविषे स्थित है. हे रामजी ! जगत्‌का भाव अभाव उत्पत्ति प्रलयादिक सर्व स्वभाव अनुभवरूप ब्रह्म स्थित है अरु विकार तिसविषे कोऊ नहीं केवल शुद्ध निरंजन आत्मआकाश निर्मल है, जैसे चंद्रमाके मंडलविषे विषकी वल्ली नहीं होती, तैसे आत्माविषे विकार कोऊ नहीं निर्मल आकाशरूप है अरु आदि अंत मध्यकी कलनाते रहित है, तौ लोकपालभ्रम कैसे होवै अरु जेते कछु विकार भासते हैं, सो आत्माके अज्ञानकरि भासते हैं, जब तू एकाग्रचित्त विचार करिकै देखैगा, तब जगद्भ्रम शांत हो जावैगा, यह जगद्भ्रम फुरणेकरि भासा है, जब फुरणा उलटिकरि आत्माकी ओर आवैगा, तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा, जैसे पवनकरि दीपक जागता है, अरु पवनहीकरि लीन हो जाता है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है अरु चित्तका फुरणा जब अंतर्मुख होता है तब जगद्भ्रम मिटि जाता है. हे रामजी ! जब ज्ञानकरिके देखैगा, तब अज्ञानरूप फुरणेका त्रिकाल अभाव हो जावैगा, बंध मुक्ति आत्माविषे कोऊ न भासैगी, इसविषे संशय कछु नहीं, यह जगज्जाल जो भासता है, सो आत्माविषे कछु उपजा नहीं

अज्ञान करिकै भासता है, जब विचार करिकै देखैगा; तब अष्ट सिद्धिका ऐश्वर्य तृणवत् भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० बोधजगदेकताप्रतिपादनं नाम एकाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०१ ॥

द्व्यधिकंद्विशततमः सर्गः २०२.

जगदेकताप्रतिपादनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! यह जो जगज्जाल तुमने देखा चिद्रूप होकरि सो एक स्थानविषे बैठिकरि देखा, अथवा सृष्टिविषे जायकरि देखा सो कहौ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मैं अनंत आत्मा हौं, सर्वशक्तिसंपन्न सर्वव्यापी चिदाकाश हौं, मेरेविषे आना जाना कैसे होवै न एक स्थानविषे बैठिकारि देखा है अरु न सृष्टिविषे जायकरि देखा है. हे रामजी! मैं चिदाकाश हौं, चिदाकाशविषे देखा है. हे रामजी! जैसे तू अपने अंगको शिखाते लेकरि नखपर्यंत देखता है, तैसे मैं ज्ञाननेत्रकरि अपने आपहीविषे जगत्को देखत भया हौं, सो कैसे जगत्को देखा है, जो निराकार निरवयव आकाशरूप निर्मल देखे हैं अरु सावयव जो दृष्टि आये हैं, सो फुरणेकरि दृष्टि आये हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे दृष्टिका अनुभव होवै, परंतु संवित्‌रूप है अपर कछु नहीं, जैसे वृक्षके पत्र टास फूल फल सब अपने अंग होते हैं तैसे ज्ञाननेत्रकरि जगत्को मैं देखत भया हौं. हे रामजी! जैसे समुद्र सब तरंग फेन बुद्बुदे अरु जल तरंगको अपने आपहीविषे देखता है, तैसे मैं अपने आपविषे जगत्को देखता भया हौं अरु अब भी मैं इस देहविषे स्थित हुआ पर्वतविषे सृष्टियां ज्ञान करिकै देखता हौं, जैसे कुटीके अंतर बाहर आकाश एकरूप है, तैसे मुझको आगे भी अरु अब भी जगत् आकाशरूप अपने आपविषे भासते हैं, जैसे जल अपने रसको जानता है, जैसे बरफ अपनी शीतलताको जानता है, जैसे पवन अपनी स्पंदताको जानता है, तैसे मैं ज्ञानकरि सृष्टि अपनेविषे देखत

भया हौं, जिस ज्ञानवान् पुरुषको शुद्ध बुद्धविषे एकता भयी है, सो ऐसे देखता है, जो सर्वात्मा आकाशवत् अपना आप है, जिसको आत्म-स्थिति भयी है, सो वेदनको भी अवेदन देखता है, जो कदाचित् उपजा नहीं, जैसे देवता अपने अपने स्थानविषे बैठे हुए दिव्य नेत्रकरि कोटि योजनपर्यंत अपने विद्यमान देखते हैं, तैसे जगतोंको मैं सर्वात्म होकरि देखत भया हौं, जैसे पृथ्वीविषे निधि होती है अरु औषधि रससहित पदार्थ होते हैं, सो पृथ्वी अपनेविषे ही देखती है, तैसे मैं जगत्को अपने-विषे ही देखत भया हौं. राम उवाच-हे भगवन्! वह जो कमलनयनी कांता थी, आर्या छंदके पाठ करनेहारी सो बहुरि क्या करत भयी. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आकाशवपुको धारिके मेरे निकट आनि स्थित भयी, जैसे भवानी आकाशविषे आनि स्थित होवै, तैसे आनि स्थित भयी, जैसे मैं आकाश वपु था, तैसे उसको मैं आकाश वपु देखत भया आकाशविषे प्रथम इस कारणते मैं देखत भया कि जो मेरा आधि-भौतिक शरीर था, जब चित्तपद होकरि मैं स्थित भया, तब कांताको देखा, मैं आकाशरूप हौं अरु वह सुन्दरी भी आकाशरूप है अरु जगज्जाल जो देखा सो भी आकाशरूप है. श्रीराम उवाच-हे भगवन्! तुम भी आकाशरूप थे अरु वह भी आकाशरूप थी अरु वचनविलास तब होता है, जब शरीर होता है अरु तिसविषे बोलनेका स्थान कंठ तालु नासिका दंत ओठ आदिक होते हैं अरु प्राण अन्तर प्रेरणेहारे होते हैं, तब अक्षरका उच्चार होता है, तुम तो दोनों निराकार थे, तुम्हारा देखना बोलना किस प्रकार भया अरु बोलना अवलोकनरूप मनस्कारकरि होता है, रूप कहिये दृश्य, अवलोकन कहिये इंद्रियां, मनस्कार कहिये मनका फुरणा, इन तीनों विना तुम्हारा बोलना कैसे हुआ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे रूप अवलोकन मनस्कार अरु शब्द पाठ परस्पर वचन होते हैं, सो आकाशरूप होते हैं, तैसे हमारा देखना बोलना आपसविषे परस्पर संवाद हुआ है, जैसे स्वप्नविषे देखते हैं, रूप अवलोकन मनस्कार आकाशरूप होते हैं अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, तैसे हमारा देखना अरु बोलना हुआ, यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता

कि, देखना बोलना कैसे हुआ अरु जैसे आकाशविषे मैंने सृष्टि देखी है, तैसे यह सृष्टि भी है, जैसे उनके शरीर थे तैसे हमारा शरीर है, जैसे यह जगत् है, तैसे वह जगत् है. हे रामजी! यह आश्चर्य है; जो सत् वस्तु नहीं भासती है अरु जो असत् वस्तु है सो भासती है, जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी पर्वत समुद्र अरु जगत् व्यवहार है नहीं सो प्रत्यक्ष भासता है अरु सत् वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती, तैसे हम तुम जगत् सब आकाशरूप हैं; जैसे स्वप्नविषे युद्ध होते भासते हैं अरु शब्द होते हैं अरु आना जाना भासता है सो सब आकाशरूप है अरु हुआ कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी है. हे रामजी! स्वप्नसृष्टि मिथ्या है, बनी कछु नहीं, अरु कछु है, सो अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं अरु तू कहे स्वप्न क्या हैं अरु कैसे होते हैं सो सुन आदि परमात्मतत्त्वविषे स्वप्न-वचन हुआ है, सो विराट आत्मा है, बहुरि तिसते यह जीव हुए हैं; सो आकाशरूप हैं; काहेते जो विराट आकाशरूप है. यह सब आकाशरूप है अरु स्वप्न दृष्टांत भी मैं तेरे बोधके निमित्त कहा है, काहेते कि स्वप्न भी कछु हुआ नहीं, केवल आत्ममात्र है, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी! वह ज्ञाता मैंने देखा, तब उसते पूछत भया, काहेते जो संकल्प मेरा अरु उसका एक हुआ जैसे स्वप्नविषे स्वप्न जनका होता है, तैसे हमारा हुआ. हे रामजी! जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे हम तुम सब जगत् आकाशरूप हैं, कछु हुआ नहीं, स्वप्नजगत् अरु जाग्रत्‌जगत् एकरूप है, परंतु जाग्रत् दीर्घ कालका स्वप्न है, ताते इसविषे दृढ व्यवहार उत्पन्न प्रलय होते भासते हैं. हे रामजी! स्वप्नविषे भोग होते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, निर्मल आकाशरूप आत्माते इतर कछु बना नहीं, तैसे यह दृश्य अरु द्रष्टा स्वप्नकी नाईं अनहोते भासते हैं, जो हम तुम आदिक दृश्यको मनरूपी द्रष्टा सत्य मानता है, सो दोनों अज्ञानकरि भ्रममात्र उदय हुए हैं, अरु जो शुद्ध द्रष्टा है, सो दृश्यते रहित है, अरु जैसे द्रष्टा आकाशरूप है, तैसे दृश्य भी आकाशरूप है, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवते इतर कछु नहीं, तैसे यह जाग्रत् भी अनुभवरूप है. हे रामजी! चिदाकाश जो अनंत आत्मा है, सो इस जगत्‌का कारण कैसे होवै,

जैसे स्वप्नसृष्टिका कारण कोऊ नहीं तैसे इस जाग्रत् जगत्का कारण भी कोऊ नहीं काहेते जो हुआ कछु नहीं अरु जो कछु है सो अनुभवरूप है ताते यह जगत् अकारण है. हे रामजी ! यह जीव साकाररूपी है अरु इनके स्वप्नकी सृष्टि नाना प्रकारकी होती है सो भी आकाशरूप है कछु आकार नहीं अरु जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है तिसविषे आदि आभासरूप जगत् फुरा है सो आकाशरूप क्यों न होवै साकार क्या अरु निराकार क्या सो सुन एक चित्त है एक चैत्य है चित्त नाम है शुद्ध चिन्मात्रका अरु चैत्य नाम है दृश्य फुरनेका अरु जिस चित्तको दृश्यका सम्बंध है तिसका नाम जीव है जिस चित्तको अज्ञान-करिकै द्वैतका सम्बंध है अरु अनात्मविषे आत्माभिमान है ऐसा जो जीव है सो साकाररूप है तिसके स्वप्नकी सृष्टि आकाशरूप है सो अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ता है तिसका स्वप्न आभासरूप जगत् आकाशरूप क्यों न होवै. हे रामजी ! यह जगत् निरुपादान है अर्थ यह जो बना कछु नहीं चिदाकाश निराकाररूप है जैसे स्वप्नविषे जगत् अकृत्रिम होता है तैसे यह जगत् है न इसको कोऊ निमित्तकारण है न समवायिकारण है आत्मा अच्युत अरु अद्वैत है सो दृश्यका कारण कैसे कहिये. हे रामजी ! न कोऊ कर्त्ता है भोक्ता है न कोऊ जगत् है, है अरु नहीं यह भी कहना नहीं बनता ऐसा जो ज्ञानवान् है सो पाषाणवत् मौन स्थित होता है अरु जब प्रकृत आचार आनि पड़ता है तब तिसको भी करता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जगदेकताप्रतिपादनं नाम द्व्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०२ ॥

त्र्यधिकद्विशततमः सर्गः २०३.

विद्याधरीविशोकवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! वह जो तुम्हारे निकट आकाशरूप कांता आयी थी सो अनेक कचटतादिक अक्षर शरीर बिना कैसे बोली

अरु जो तुम स्वप्नकी नाईं कहो तब स्वप्नविषे केवल आकाश होता है तहां यरलव आदिक कैसे बोलता है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! स्वप्नविषे जो शरीर होता है सो आकाशरूप है तिसविषे कचटतादिक अक्षर कदाचित् उद्देश नहीं हुए जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता तैसे आकाशरूप आत्माविषे शब्द कदाचित् नहीं हुआ अरु जो तू कहै स्वप्नविषे जो यरलवादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं तिसका उत्तर यह है जो कछु शब्द वहां सत् हुए होते तौ निकट बैठेको भी सुनते. हे रामजी! निकट बैठे जनको नहीं सुने तौ ऐसे मैं कहता हौं जो आकाश हैं हुआ कछु नहीं हुआ भासता है सो भ्रांतिमात्र है केवल चिन्मात्र आकाशका किंचन है सो आकाशविषे आकाश ही स्थित है तैसे यह जगत् भी हुआ कछु नहीं. हे रामजी! जैसे चंद्रमाविषे श्यामता है अरु आकाशविषे वृक्ष होता है अरु जैसे पत्थरविषे पुतलियां नृत्य करती भासैं सो मिथ्या हैं तैसे यह जगत्का होना मिथ्या है. हे रामजी! स्वप्नविषे जो जगत् भासता है सो चिदाकाशका किंचन है सो किंचन भी आकाशरूप है इतर कछु नहीं जैसे स्वप्नका जगत् आकाशरूप है तैसे यह जगत् भी आकाशरूप है जैसे यह जगत् है तैसे वह जगत् थे अरु यह जो आकाश है सो आत्माकाशविषे अनाकाश है जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रमकरिकै प्रवृत्त भासती है तैसे जगत् भी भ्रमकरिकै प्रत्यक्ष भासता है. राम उवाच-हे भगवन्! जो यह जगत् स्वप्न है तौ जाग्रत क्यों भासता है अरु जो असत् है तौ सतकी नाईं क्यों भासता है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! एक मृदुसंवेग है एक मध्य संवेग है एक तीव्र संवेग है संवेग कहिये संकल्पका परिणाम सो त्रिविध है जैसे कोऊ पुरुष अपने स्थानविषे बैठा हुआ मनोराज्यकरिकै किसी व्यवहारको रचता है सो तिसको जानता है जो संकल्प मात्र है अरु जैसे नट स्वांग धारता है तब वह जानता है कि मेरा स्वांग है अरु न मेरा यह स्वांग सत्य है अपने स्वरूपको सत् जानता है इसका नाम मृदुसंवेग है काहेते जो अपना स्वरूप नहीं भूला अरु मध्यसंवेग यह है जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है तिसविषे स्वप्नसृष्टि भासती है अरु एक शरीर अपना भासता है तब अपने

शरीरको सत् जानता है अरु जगत्को भी सत् जानता है, काहेते जो स्वरूपका प्रमाद है, स्वप्नकालविषे सृष्टिको सत् जानता है अरु जागे हुए तिसको असत्य जानता है, तिसका नाम मध्यसंवेग है, काहेते जो सोया हुआ शीघ्र ही जाग उठता है अरु जो सोया अरु जागे नहीं तिसका नाम तीव्रसंवेग है. हे रामजी ! आदि संकल्प स्वप्न विषयरूप भासते हैं, तिसविषे नाना प्रकारकी सृष्टि होकरि स्थित है, जिनको आदि स्वरूपका प्रमाद नहीं हुआ तिनको यह जगत् मृदुसंवेग है, काहेते सो अपनी लीलामात्र असत्य जानते हैं अरु जिनको आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है अरु बहुरि शीघ्र ही स्वरूपविषे जागि उठते हैं, तब तिनको यह जगत् असत्य भासता है, उनकी इस जगत्विषे सत्यप्रतीति नहीं होती अरु जिनको प्रमाद हुआ है, बहुरि जागे नहीं, तिनको यह जगत् सत् हो भासता है, काहेते जो चित्तकी वृत्तिका प्रमाण तीव्र हो गया है, इस कारणते अज्ञानीको यह जगत् स्वप्नरूप जागृत हो भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नकी सृष्टि सत्य हो भासती है. हे रामजी ! चित्तके फुरणेका नाम जगत् है, जब चित्त बहिर्मुख होता है, तब जगत् हो भासता है अरु स्वरूपका अज्ञान होता है, जब अज्ञान हुआ, तब जगद्भ्रम दृढ होता जाता है, ताते इस जगत्का कारण अज्ञान है. हे रामजी ! आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान होवैगा, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा अपना आप है, ताते आत्मपदविषे स्थित होउ, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा. हे रामजी ! अज्ञानकरिकै इस जगत्की सत्य प्रतीति होती है, तिसविषे जैसी जैसी भावना होती है, तैसे ही जगत् हो भासता है. हे रामजी ! जिसप्रकार जगद्भ्रम सत्य हो भासता है सो सुन, जो अज्ञानी जीव है जब मृतक होता है, तब मुक्त नहीं होता, अज्ञानके वशते जड पत्थरवत् होता है, काहेते जो चेतनरूप है. हे रामजी ! जब मृत्यु होता है, तब आकाशरूप चित्तविषे ही जगत् फुरि आता है अरु अपनी वासनाके अनुसार नाना प्रकारका जगत् हो भासता है अरु नाना प्रकारकी व्यवहाररचना क्रियासहित होकरि भासती हैं अरु कल्पपर्यंत सब क्रिया

जीवकी अंतवाहक होती हैं, जैसी हमारी हैं. हे रामजी! तू देख, वह जगत् क्या रूप है, किसी कारणते तौ नहीं उपजा जैसे वह जगत् कलनामात्र सत् हो भासता है, तैसे यह जगत् भी जान. हे रामजी! यह जो तेरेताईं स्वप्न आता है, तिसविषे जो पुरुष पदार्थ है, सो भी सत् है, काहेते जो ब्रह्मसत्ता सर्वात्मक है. हे रामजी! प्रबोध हुए भी स्वप्नके पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसीते कहा है कि, स्वप्नसंकल्प ब्रह्म अरु जाग्रत् तुल्य है, जैसे आगे उदाहरण कहा है, शुक्रका अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका, लवण अरु गाधिका, इनको मनोराज्यभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है, आगे कहेंगे, दीर्घतपाको स्वप्न प्रत्यक्ष हुआ है, इसीते कहा है, जो सब तुल्य हैं अरु जीव जीवप्रति अपनी अपनी सृष्टि है, काहेते जो संकल्प अपना अपना है, ताते सृष्टि भिन्न भिन्न है अरु सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है अरु सर्व सृष्टिका प्रतिबिंब आत्मरूपी आदर्शविषे होता है अरु सर्व सृष्टि आत्माका अनुभव है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है अरु तिस वृक्षते अपर वृक्ष होते हैं, तौ तूँ विचारकरि देख जो बीज तौ एक था अरु सब वृक्ष आदि बीजते उपजते हैं, तैसे एक आत्माते अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं, परंतु स्वरूपते इतर कछु नहीं, जैसे एक पुरुष सोया है अरु तिसको स्वप्नकी सृष्टि भासि जाती है, बहुरि स्वप्नविषे जो बहुत जीव भासते हैं, तिसको भी अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है. हे रामजी! जिसते आदि स्वप्नसृष्टि भासती है, सो पुरुष एक ही है, तिस एकहीविषे अनंत सृष्टि चित्तके फुरणेकरि होती हैं, तैसे आत्मसत्ताके आश्रय अनंत सृष्टि फुरती हैं, परंतु स्वरूपते कछु हुआ नहीं, सब आकाशरूप हैं अरु जीवको अपनी सृष्टि अपने अज्ञानकरिकै भासती है. हे रामजी! जीवको अपरकी सृष्टिका ज्ञान नहीं होता, अपनी ही सृष्टिको जानते हैं; काहेते जो संकल्प भिन्न भिन्न हैं, एकको हम स्वप्नके नर हैं, अरु एक हमको स्वप्नके नर हैं, वह अपर सृष्टिविषे सोए हैं, अरु हमारी सृष्टि उनको स्वप्नविषे भासती है तिनको हम स्वप्नके नर हैं अरु जो हमारी सृष्टिविषे सोए हैं, तिनको स्वप्नविषे अपर सृष्टि भासि आयी है, सो हमारे स्वप्नके नर हैं. हे रामजी! इस प्रकार

आत्मतत्त्वके आश्रय अनंत सृष्टि भासती हैं अरु सृष्टिको सत् जान-कारि जीव विचरते हैं, सो मोक्षमार्गते शून्य हैं, जसे यह पुरुष शयन करता है, तिसको स्वप्नविषे परिणाम हुआ, तिसविषे जो जीव हुए तिनको बहुरि स्वप्न हुआ, तब अपनी अपनी सृष्टि उनको भासती है, अरु बहुरि तिनके अपनी सृष्टि भासि आयी तो अनंत सृष्टि अनुभवते आश्रय होती है, तैसे एक आत्माके आश्रय असंख्य सृष्टि फुरती हैं, सो सृष्टि कैसी हैं, कई समान हैं, कई अर्धसमान हैं, कई विलक्षण भासती हैं, अपनी अपनी सृष्टिको जीव जानते हैं, जैसे एक मंदिरविषे दशपुरुष सोए हैं अरु तिनको अपना अपना स्वप्न आया, तब उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता, उसकी सृष्टिको वह न जानता, तैसे यह सृष्टि भी अप-रको ज्ञान है, काहेते कि, संकल्प अपना अपना है, जैसे पत्थरको पत्थर नहीं जानता अरु जो अंतवाहके शरीर योगीश्वर हैं, तिनको सृष्टिका ज्ञान होता है. हे रामजी ! वास्तवते सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे सृष्टि भासती है. हे रामजी ! वास्तवते कछु हुआ नहीं, सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्मा ही अपने आपविषे स्थित है, जिनको आत्माका प्रमाद हुआ तिनको जगत् भासता है, वास्तवते जगत् किसी कारणकरि नहीं उपजा, आभासरूप है, सम्यक् ज्ञानके हुएते ब्रह्म अद्वैत भासता है अरु असम्यक् ज्ञानते द्वैत-रूप जगत् हो भासता है, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानते जेवरी ही भासती है अरु असम्यक् ज्ञानकरि सर्प भासता है, तैसे आत्माके असम्यक्ज्ञानकरि जगज्ज्ञान होता है. हे रामजी ! मैंने उस देवीसों प्रश्न किया कि हे देवी ! तू कहांते आयी है अरु तेरा स्थान कौन है अरु तू कौन है अरु इहां किसनिमित्त आयी है ? तब देवी बोली.देव्युवाच–हे मुनीश्वर ! ब्रह्मरूपी जो महाकाश है, तिसका जो अणु है, बहुरि तिस अणुका भी जो अणु है; तिसका जो छिद्र है, तिस छिद्र विषे भी जो छिद्र है तिसविषे जो तुम रहते हौ, तुम्हारा यह जगत् भी उसीविषे है, तुम्हारी सृष्टिका जो ब्रह्मा है, तिसकी संवेदनरूपी कन्या है; तिसने यह जगत् रचा है, तिस तुम्हारे

जगत्‌विषे पृथ्वी है, तिसके ऊपर समुद्र हैं, तिनकरि पृथ्वी आच्छादित है, तिसके परे दूना अपर द्वीप है, तिस द्वीपके परे दूना समुद्र है, इस प्रकार पृथ्वीको लंघि जाता है, तब आगे स्वर्णकी पृथ्वी आती है, सो दश सहस्र योजनपर्यंत महासुंदर प्रकाशरूप है, तिसने सूर्य चंद्रमाके प्रकाशको भी लज्जित किया है, तिसके परे अपर लोकालोक पर्वत है, सो सब ठौर प्रसिद्ध है, तिसविषे बहुत नगर बसते हैं अरु कहूं ऐसे स्थान हैं जहां सदा प्रकाश ही रहता है,जैसे ज्ञानीके हृदयविषे सदा प्रकाश रहता है अरु कहूँ ऐसे स्थान हैं, जहां सर्वदा अन्धकार ही रहता है, जैसे अज्ञानीके हृदयविषे अन्धकार रहता है, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जहां प्रत्यक्ष पदार्थ पाते हैं, जैसे पण्डितके हृदयविषे अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जहां पदार्थ नहीं पाते, जैसे मूर्खके हृदयविषे श्रुतिका अर्थ नहीं होता, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जिनके देखनेकरि हृदय प्रसन्न होता है, जैसे संतके दर्शनकरि हृदय प्रसन्न होता है, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जिनविषे सदा दुःख ही रहता है जैसे अज्ञानीकी संगतिविषे सदा दुःख रहता है, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जहां सूर्य उदय नहीं होता, कहूँ सूर्य चंद्रमा दोनों उदय होते हैं, कहूँ पशु ही रहते हैं, कहूँ मनुष्य ही रहते हैं, कहूँ दैत्य ही रहते हैं, कहूँ देवता ही रहते हैं, कहूँ नट कृषाण ही रहते हैं, कहूँ धर्मका व्यवहार होता है, कहूँ विद्याधर ही रहते हैं कहूँ उन्मत्त हस्ती रहते हैं, कहूँ बडे नंदन बाग हैं, कहूं ऐसे स्थान हैं, जहां शास्त्रका विचार नहीं, कहूं शास्त्रके विचारवान् रहते हैं, कहूँ राज्य ही करते हैं, कहूं बड़ी वसंतियां हैं, कहूं उजाड वन हैं, कहूं पवन चलता है कहूँ बड़े खात छिद्र हैं, कहूं ऊर्ध्व शिखर हैं, तहां विद्याधर देवता रहते हैं, कहूं यक्ष राक्षस मत्त रहते हैं, कहूं विद्याधरी देवियां महामत्त रहती हैं, इस प्रकार अनंत देशस्थानकी वस्तियां हैं, तिस लोकालोकके शिखर ऊपर शत योजनका तलाव है, तिसविषे कमल फूल लगे हैं अरु सब कल्पवृक्ष हैं, सब पत्थर चिंतामणि हैं, तिसविषे उत्तर दिशा एक स्वर्णकी शिला पड़ी है, तिसके शिखर ऊपर ब्रह्मा विष्णु रुद्र आनि बैठते हैं अरु विलास करते हैं, तिसके ऊपर शिला है, तिसविषे मैं रहती हौं अरु मेरा भर्त्ता भी रहता है, संपूर्ण परिवार भी वहां रहता है. हे मुनीश्वर

तिसविषे एक ब्राह्मण रहता है, सो वृद्ध अवस्था अबलग जीवता है, सो ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है अरु सदा वेदका अध्ययन करता है, तिसने मुझको अपने विवाहके निमित्त अपने मनते उपजाई है, अरु अब मैं भी बडी हुई हौं, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी होती है अरु मेरे मनका विवाह नहीं करता, जबका उपजा है, तबका ब्रह्मचारी ही रहता है अरु वेदका अध्ययन करि विरक्तचित्त हुआ है. हे मुनीश्वर ! उस ब्राह्मणने मुझको विवाहके निमित्त उपजाई है अरु वस्त्र औ भूषणसंयुक्त मैं उत्पन्न भयी हौं, अरु चंद्रमाकी नाईं सुंदर हौं, सब अंग मेरे सुंदर हैं, सब जीवको मोहनेहारी हौं, मुझको देखिकरि कामदेव भी मूर्छित हो जाता है अरु फूलकी नाईं मेरा हँसना है अरु सब गुण मेरेविषे हैं अरु महालक्ष्मीकी मैं सखी हौं, मेरा त्याग करि ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है अरु सदा वेदका अध्ययन करता है अरु बडा दीर्घसूत्री है, जब मैं उत्पन्न भयी थी तब कहता था कि, मैं तुझको विवाहौंगा जब मैं यौवन अवस्थाको प्राप्त भयी हौं, तब त्यागिकरि एकान्त जाय बैठा है. हे मुनीश्वर ! स्त्रीको सदा भर्ता चाहता है, अब मैं यौवन अवस्थाकरि परी :जलती हौं अरु जो बडे तलाव कमलसहित दृष्टि आते हैं, सो भर्ताके वियोगकरि अग्निके अंगारे भासते हैं अरु बडे बाग नंदनवन आदिक मुझको मरुस्थलकी नाईं भासते हैं, इनको देखिकरि रुदन करत हौं, नेत्रते जल चला जाता है, जैसे वर्षाकालका मेघ वर्षावता है, तैसे मेरे नेत्रते जल चलता है, जब मैं मुख आदिक अपने अंगको देखती हौं, तब नेत्रके जलकरि निकट कमलिनी डूबि जाती है अरु जब कल्पतरु तमालवृक्षके फूल पत्र शय्यापर बिछायकरि शयन करती हौं, तब अंगके स्पर्शकरि फूल जलावते हैं, जिस कमलसाथ मेरा स्पर्श होता है, सो जलि जाता है. हे भगवन् ! भर्ताके वियोगकरि मैं तपी हुई हौं, जब बर्फके पर्वत ऊपरि जाय बैठती हौं, तब वही अग्निवत् हो जाता है अरु मैं नाना प्रकारके फूलको गलेविषे डारती हौं, तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती, मैं सुन्दर हौं अरु भर्ताको सुख देनेहारी हौं अरु मेरे भर्ताकी देह त्रिलोकी है, तिसके चरणोंविषे सदा मेरी प्रीति रहती है अरु मैं गृहके सब

आचार करती हौं, सब गुणों करके संपन्न हौं अरु सर्वको धारि रही हौं, अरु सर्वकी प्रतिपालक हौं अरु ज्ञेयकी सदा मुझको इच्छा रहती है. हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रता हौं, जो पुरुष पतिव्रता स्त्रीके साथ स्पर्श करता है, सो बहुत सुख पाता है, तीनों तापते रहित होता है अरु सब गुण जिसविषे पाते हैं, सदा भर्ताविषे प्रीति करती है अरु भर्ताकी प्रीति उसीविषे रहे, ऐसी मैं हौं, तिसको त्यागिकरि ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है अरु सर्वकाल वेदका अध्ययन अरु विचार करता रहता है अरु सर्व कामनाका जिसने त्याग किया है, कोऊ इच्छा तिसको नहीं रही अरु मैं उसके वियोगकरि जलती हौं. हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है, जिसका भर्ता विवाहकरि मरि गया है अरु जिसका भर्ता नहीं प्राप्त भया सो भी भली है, जो सदा कुँवारी है अरु जो भर्ताके संयोगते प्रथम ही मरिजाती है, सो भी श्रेष्ठ है अरु जिसको भर्ता प्राप्त भया है, परंतु तिसको स्पर्श नहीं करता, तब उसको बड़ा दुःख होता है. हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्माकी भावनाके संस्कारते रहित उत्पन्न हुआ है, सो निष्फल है, जैसे पात्र विना अन्न निष्फल होता है, अर्थ यह जो संतजन तीर्थ आदिकते रहित पापस्थानोंविषे डोया हुआ धन निष्फल होता है, जैसे समदृष्टि विना बोध निष्फल होता है, जैसे वेश्याकी लज्जा निष्फल है, तैसे मैं पति विना निष्फल हौं. हे भगवन्! जब शय्या बिछाय करि शयन करती हौं तब फूल भी जलि जाते हैं, जैसे समुद्रको वडवाग्नि जलाती है, तैसे कमलोंको मेरे अंग जलाते हैं. हे मुनीश्वर! जो सुखके स्थान हैं, सो मुझको दुःखदायक भासते हैं अरु जो मध्यस्थान हैं, सो न सुख देते हैं, न दुःख देते हैं अरु जो सुखके स्थान हैं, सो भर्ताके वियोगकरिके दुःखकी नाईं हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विद्याधरीविशोकवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०३ ॥

चतुरधिकद्विशततमः सर्गः २०४.

विद्याधरीवेगवर्णनम् ।

विद्याधर्युवाच–हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मैं तप करती फिरती हौं, अब मुझको भी भर्त्ताके वियोगकरि वैराग्य उपजा है, भर्त्ताका वैराग्यरूपी गड़ा मेरी तृष्णारूपी कमलिनी ऊपर पड़ा है, तिसकरि जलि गयी हौं, ताते जगत् मुझको विरस भासता है. हे मुनीश्वर ! यह जगत् असार है, इसविषे स्थिर वस्तु कोऊ नहीं, इस कारणते मुझको भी वैराग्य उपजा है अरु मेरा भर्त्ता जो स्वभूत है, सो संसारते विरक्त होकरि एकांत जाय बैठा है, वेदको विचारता रहता है, परंतु आत्मपदको नहीं प्राप्त भया, मनके स्थिर करनेका उपाय करता है, परंतु अबलग मन स्थित नहीं भया, सर्व ईषणाते रहित होकरि शास्त्रको विचारता रहता है अरु आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ अरु मुझको भी वैराग्य उपजा है, अब दोनों वैराग्यकरि संपन्न हुए हैं अरु परमपद पानेको मुझको इच्छा भयी है अरु शरीर हमको विरस हो गया है, जैसे शरत्कालकी वल्ली विरस होती है, इस कारणते मैं योगकी धारणा करने लगी हौं, यह शक्ति मुझको उत्पन्न भयी है, आकाशमार्गको आऊं जाऊं योगधारणाकरि आकाशके ऊपर उड़नेकी शक्ति हुई है, बहुरि सिद्धमार्गकी धारणाकरि सिद्धोंके मार्ग भी आऊं जाऊं परंतु अर्थ कछु सिद्ध न हुआ, पाने योग्य जो आत्मपद है, सो प्राप्त न हुआ, जिसके पायेते दुःख कोऊ न रहै, अब मुझको निर्वाणकी इच्छा भयी है अरु सिद्धोंके गण भी मैंने देखे हैं, देवता अरु विद्याधर देखे हैं, ज्ञानके स्थान भी देखे हैं, इत्यादिक बहुत स्थान देखे हैं, परंतु जहां जाऊं तहां तुम्हारी स्तुति करैं वसिष्ठमुनि ऐसे हैं, जो वचन द्वारा बलकरि अज्ञानको निवृत्त करते हैं जैसे बड़ा मेघ वर्षता है, परंतु जब वायु चलता है, तब मेघको दूर करता है, तैसे तुम्हारे वचन अज्ञानको दूर करते हैं, जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी, तब मैं इस सृष्टिविषे आनेका अभ्यास किया, तब धारणाके अभ्यासते तुम्हारी सृष्टिविषे आयी हौं ताते हे मुनीश्वर ! मेरे अरु मेरे

भर्त्ताको शांति अर्थ आत्मज्ञानका उपदेश करौ, मेरा भर्त्ता जो मनके स्थिर करनेको यत्न करता है, तिसको तुम ऐसा उपदेश करौ, जो शीघ्र ही स्थिर होवै अरु आत्मपदको प्राप्त होवै अरु मुझको भी आत्मज्ञानका उपदेश करौ. हे भगवन् ! तुम मायाते परे मुझको दृष्टि आते हौ, इस कारणते मैं तुम्हारी शरण आयी हौं अरु मैं स्त्रीबुद्धिकरिकै तुम्हारे निकट नहीं आयी, शिष्यभावको लेकरि आयी हौं अरु मैं जानती हौं कि, मेरा अर्थ सिद्ध हो रहा है, काहेते जो कोई महापुरुषकी शरण आय प्राप्त होता है सो भी निष्फल नहीं जाता, सब अर्थ संपूर्ण होता है, जैसा जिसका अर्थ होता है सो महापुरुष सिद्ध करि देते हैं,जैसे कल्पवृक्षके निकट कोऊ जाता है, तिसका अर्थ पूर्ण होता है, तैसे मेरा अर्थ सफल हो जावैगा, ताते कृपा करिकै मुझको उपदेश करौ. हे मुनीश्वर ! तुम दयाके मानौ समुद्र हौ, सबके अर्थ संपूर्ण करनेको समर्थ हौ अरु सुहृद् हौ, अर्थ यह कि उपकारकी अपेक्षा विना उपकार करते हौ, ताते मैं अनाथ तुम्हारी शरणको आनि प्राप्त भयी हौं, मुझको आत्मपदकी प्राप्ति करौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरीवेगवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०४ ॥

पञ्चाधिकद्विशततमः सर्गः २०५.

विद्याधर्यभ्यासवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार विद्याधरीने मुझको कहा तब तिस कालमें आकाशविषे संकल्पका आसन मैंने रचा; तिसपर बैठा अरु एक आधारभूतका आसन संकल्पकरि तिसको बैठाई काहेते जो हमारा शुद्ध संकल्प है; जो कछु चिंतवना करिये सो हो जाता है, तब मैं कहा–हे देवी ! तू कैसे कहती है कि गिटीविषे हमारी सृष्टि है, गिटीविषे तुम्हारी सृष्टि कैसे वसती है सो कहो. विद्याधर्युवाच–हे भगवन् ! तुम्हारी सृष्टिविषे जो लोकालोक पर्वत है,सो प्रसिद्ध है तिसके

उत्तरदिशा शिखरपर शिला है, तिस स्वर्णकी गिटीविषे हमारी सृष्टि है, जैसे तुम्हारी सृष्टि है, तैसे उस गिटीविषे सृष्टि वसती है, तिस सृष्टिका ब्रह्मा मेरा भर्ता है, मैं तिसकी स्त्री हौं अरु त्रिलोकी इस प्रकार वसती है, ऊर्ध्वलोक देवता रहते हैं, पातालविषे दैत्य अरु नाग रहते हैं, मध्यमंडलविषे मनुष्य अरु पशु पक्षी रहते हैं समुद्र भी हैं, पर्वत भी हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश हैं, समुद्रने गंभीरता अंगीकार करी है जीवहुने प्राण अंगीकार किये हैं, पवनने आकाश विषे चलना अंगीकार किया है, आकाशने पोल अंगीकार किया है, पृथ्वीने धैर्य अंगीकार किया है, विद्याधरने ज्ञान अंगीकार किया है, अग्निने उष्णता, सूर्यने प्रकाश अंगीकार किया है, दैत्योंने क्रूरता, विष्णुने अवतार अंगीकार किये हैं, जगत्की रक्षाके निमित्त नदीने चलना, पर्वतने स्थिरता अंगीकार करी है, इस प्रकार सब नीति परमात्माके आश्रय रची हुई हैं, कल्पपर्यंत ज्योंकी त्यों मर्यादा रहती है, इस प्रकार जीव जन्मते मरते हैं, देवता विमानपर आरूढ फिरते हैं, दिनका स्वामी सूर्य है रात्रिका स्वामी चंद्रमा है, नक्षत्र तारेका चक्र पवनकरिकै फिरता है अरु दो ध्रुव हैं, काल इस चक्रको फेरता है, फेरता फेरता नाशरूप जो काल है, सो कल्पके अंतविषे कालचक्रके मुखमें जाय रहता है. हे मुनीश्वर ! परमात्मा अनंत है, अंत कोऊ नहीं जान सकता, जब संवेदन फुरती है, तब जाना जाता है, कि यह जगत् ईश्वरकी सत्ताकरिकै है, जब फुरणेते रहित होता है, तब जाना नहीं जाता कि जगत् कहां गया. हे मुनीश्वर ! तुम चलौ, हमारी सृष्टिका विलास देखौ, तुम तौ जगत्के विलासते पारको प्राप्त हुए हौ, यद्यपि तुमको इच्छा नहीं तौ भी कृपा करिकै शिलाविषे हमारी सृष्टिको देखौ. वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! इस प्रकार कहकरि आकाशमार्गमें ले चली, जैसे गंधको वायु ले जाता है, तैसे मुझको ले गयी, तब दोनों आकाशमार्गमें उडे, भूताकाशविषे हम चिरकाल उडते गये, हमको लोकालोक पर्वत दृष्टि आया, तिसके निकट जायकरि तिसके शिखर देखे, जो महाऊर्ध्वको गये हैं अरु मेघ पडे विचरते हैं

अरु शिखर ऐसे सुंदर हैं, मानौ क्षीरसमुद्रते चंद्रमा निकसा है, ऐसे सुंदर शिखरको हम देखते भये तहां जायकरि शिला देखी, कैसी शिला है, जो स्वर्णकी महासुंदर शिला है, तिसके निकट हम गये, तब मैंने कहा हे देवी यह तौ शिला पडी है, तुम्हारी सृष्टि कहां है, इसविषे पृथ्वी कहां है द्वीपकी मर्यादा कहां है, समुद्र कहां है, जिनका आवरण चहुँफेर होता है अरु तिनके ऊपर दशसहस्रयोजनपर्यंत स्वर्णकी पृथ्वी होती है, सो कहां है, पर्वत कहां हैं, सप्तलोक कहां हैं, आकाश कहां है, दशो दिशा कहां हैं, तारामंडल कहां है, सूर्यचन्द्रमा कहां हैं, जो रात्रि दिनके प्रकाशक हैं अरु भूतका संचार कहां होता है, देवगण कहां हैं, विद्याधर सिद्ध गंधर्व कहां हैं, योगीश्वर कहां हैं, वरुण कुबेर कहां हैं, जगतकी उत्पत्ति प्रलयका संचार कहां है, पातालकी भूमिका कहां है अरु न्याय करनेहारे मंडलेश्वर कहां हैं अरु मरुस्थलकी भूमिका कहां है अरु नंदनवनादिक कहां हैं, देवता दैत्यके विरोधसंचार कहां है, यह तौ शिला दृष्टि आती है. हे रामजी! आश्चर्यको प्राप्त होकरि जब मैंने ऐसे कहा, तब विद्याधरी बोली–हे भगवन्! तुमको तौ प्रत्यक्ष इस शिला विषे अपनी सृष्टि भासती है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे अपना मुख भासता है, तैसे मुझको अपनी सृष्टि भासती है, जैसे मर्यादा देशदेशांतरकी मुझको भासती है इसका संस्कार पूर्वका मेरे हृदयविषे है, इसीते मुझको प्रत्यक्ष भासती है अरु तुम्हारे हृदयविषे इसका संस्कार नहीं, इसीते तुमको नहीं भासती, तुम्हारी सृष्टिकी अपेक्षाकरिकै यह शिला पडी है, तुमको शिलाका निश्चय है, इस कारणते तुमको इसविषे जगत् नहीं भासता. हे भगवन्! जिसका अभ्यास होता है; सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है अरु सोई भासता है. हे मुनीश्वर! गुरु शिष्यको उपदेश करता है, जो कछु इसकी वांछा होती है, सो उपदेशमात्रते इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, जब तिसका अभ्यास करै, तब इसकी प्राप्ति होती है. हे मुनीश्वर! ऐसा शास्त्र कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते न पाइये, ऐसा न्याय अरु ऐसी सिद्धता कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते न पाइये, ऐसी कला कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते न पाइये, ऐसा पदार्थ कोऊ

नहीं जो अभ्यासकी प्रबलता करि सिद्ध न होवै, जो थककरि फिरै नहीं तो अवश्य सिद्ध होते हैं, हे मुनीश्वर! जो कछु सिद्ध होता दृष्टि आता है, सो सब अभ्यासके वशते होता है, प्रथम जो मैं तेरे साथ आयी हौं तब मुझको भी शिलाविषे सृष्टि न भासी थी, काहेते जो सृष्टि अंतवाहक शरीरविषे स्थित है, सो तुम्हारे साथ द्वैतरूपी कथाके करनेते अंतवाहक शरीर मुझको विस्मरण हो गया था, जो विश्वकी चर्चा अरु तुम्हारी सृष्टिकी चर्चाकारिकै मुझको स्पष्ट नहीं भासती, जैसे मलीन आदर्शविषे मुख नहीं भासता, तैसे तुम्हारी सृष्टिके संकल्प-करि मुझको भी सृष्टि भासती नहीं, परंतु चिरकाल जो अभ्यास किया है; ताते बहुरि भासती है, काहेते जो कछु दृष्टि अभ्यास होता है, तिसकी जय होती है. हे मुनीश्वर! चिन्मात्रपदविषे फुरणेकरि आदि जीवके शरीर अंतवाहक हुए हैं, अर्थ यह जो आकाशरूप शरीर थे, जब उसविषे प्रमादकरिकै दृढ अभ्यास हुआ तब अधिभूत होकरि भासने लगे, जब भावना उलटीकरि बहुरि योगकी धारणा करिकै अभ्यास करता है, तब अधिभूतता क्षीण हो जाती है अरु अंतवाहक प्रगट होता है, तिसकरि आकाशविषे पक्षीकी नाईं उडता फिरता है, ताते तुम देखौ, कि अभ्यासके बलकरि सब कछु सिद्ध होता है. हे मुनीश्वर! अज्ञा-नकरके जगत् अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो दृढ स्थित हुआ है, बहुरि जब शास्त्रके वचनों विषे दृढ अभ्यास होता है, तब क्षीण हो जाता है. हे मुनीश्वर! तुम देखो जिस किसी सृष्टिको प्राप्ति होती है, सो अभ्या-सके बल करके होती है, जो अज्ञानी होता है अरु ब्रह्म अभ्यास करता है, तौ ज्ञानी होता है अरु पर्वत बड़ा है परंतु जब अभ्यास-करि चूर्ण किया चाहै तौ चूर्ण होता है अरु संपूर्ण वृक्षको भोजन करना कठिन है, परंतु अभ्यास करिकै शनैः शनैः घूणा खाय जाता है, आप तौ छोटा है, परंतु जो वस्तु पानी कठिन होवै सो अभ्यासकरि सुगम हो जाती है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पतरुके निकट जायकरि जिस पदार्थकी वांछा करता है, सो सिद्ध होता है, तैसे आत्मरूपी चिंतामणि कल्पतरु है; तिसविषे जिस पदार्थका अभ्यास करता है, सो

सिद्ध होता है, अभ्यासरूपी भूमिका फल देती है, जो बालक अवस्थाते अभ्यास होता है, सो वृद्ध अवस्थापर्यंत होता है. हे मुनीश्वर! जो पुरुष बांधव नहीं होता अरु निकट आय रहता है, तब निकटके अभ्यासते बांधव हो जाता है, परंतु विदेश रहता है, तौ अभ्यासकी क्षीणताते अबांधव हो जाता है. हे मुनीश्वर! विष होता है अरु तिसविषे अमृतकी भावना करता है, तौ अभ्यासकरि अमृत हो जाता है, जो मिष्टान्नविषे कटुभावाना होती है तौ कटु भासता है अरु कटुविषे मिष्टान्नकी भावना करिये तौ मिष्टान्न भासता है, जैसे किसीको निंब प्रीतम है किसीको मिष्टान्न प्रीतम है. हे मुनीश्वर! जो कछु सिद्ध होता है, सो अभ्यासके बलकरि सिद्ध होता है, पुण्य किया होता है, सो पापके अभ्यासकरि नाश हो जाता है अरु पाप पुण्यके अभ्यासकरि नाश होता है, अरु माता भी अमाता हो जाती है, किसी अर्थके अनर्थ हो जाते हैं अरु मित्र भी अमित्र हो जाता है, भाग्य अभाग्यरूप हो जाता है, इत्यादिक पदार्थ सब चल हो जाते हैं, परंतु अभ्यासका नाश कदाचित नहीं होता. हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकट पड़ा होता है अरु इंद्रियां साधक भी विद्यमान हैं, तौ भी अभ्यास विना प्राप्ति नहीं होती, जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है तहां दृष्टिरूप पदार्थकी प्राप्ति होती है, अज्ञानरूपी विषूचिका रोग है, ब्रह्मचर्चाके अभ्यासकरि नाश हो जाता है. हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र है, आदि अंतते रहित है, आत्मा अभ्यासरूपी नौकाकरि तिसको तरि जाता है, जब अभ्यासको न त्यागैगा, तब अवश्य तरैगा. हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय होवै, तिसके अभावकी भावना करिये तौ अस्त हो जाता है, अरु जो अस्त होवै, तिसके उदय होनेकी भावना करिये तब उदय होता है, जैसे सिद्धके शापकरि उदय पदार्थकी नष्टता होती है अरु वरते अप्राप्त पदार्थकी प्राप्ति होती है. हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्रके इष्ट पदार्थको श्रवण करता है अरु तिसका अभ्यास नहीं करता, सो मनुष्यविषे नीच जानना, इष्ट पदार्थकी प्राप्ति तिसको कदाचित् नहीं होती, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं होता, तैसे उसको इष्ट पदार्थ सिद्ध नहीं होता. हे मुनीश्वर! जो आत्मरूपी इष्टको त्यागि-

करि अपर किसी पदार्थकी वांछा करता है सो अनिष्टते अनिष्टको पाता है नरकते नरकको भोगता है. हे मुनीश्वर ! जिसको अभ्यासका भी अभ्यास प्राप्त भया है तिसको शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी अभ्यासके बलकरि इष्टको पाता है जैसे प्रकाशकरि पदार्थ देखिये जो वह पडा है तिसका नाम अभ्यास है अरु देखिकरि जो तिसके निमित्त यत्न करना तिसका नाम अभ्यासका अभ्यास है जब यत्न अरु अभ्यास करता है तब पदार्थको पाता है बारंबार चिंतवनेका नाम अभ्यास है जब ऐसा अभ्यास होवै तब इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं होती. हे मुनीश्वर ! चौदह प्रकारके भूतजात हैं जैसा जैसा जिसको अभ्यास है तिसके बलकरि तैसा तैसा सिद्ध होता है अभ्यासरूपी सूर्य है तिसके प्रकाशकरि अपने इष्टरूपी पदार्थको पाता है अभ्यासके बलकरि भय निवृत्त होता है पृथ्वी पर्वत वन कन्दराविषे निर्भय होकरि विचरता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधर्यभ्यासवर्णनं नाम पंचाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०५ ॥

षडधिकद्विशततमः सर्गः २०६.

प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणवर्णनम् ।

विद्याधर्युवाच–हे मुनीश्वर ! जो कोऊ पदार्थ सिद्ध होता है सो निरंतर अभ्यासकरि सिद्ध होता है तुम्हारा शिलाविषे दृढ निश्चय होता है ताते तुमको शिला भासती है अरु मुझको इसविषे सृष्टि भासती है जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकल्पसाथ मिलै तब तुमको भी जगत् भासै यह जगत् जो स्थित है सो मेरे अंतवाहकविषे है अरु आदि वपु सबका अंतवाहक है सो अंतवाहकविषे सबकी एकता है जैसे समुद्र-विषे सब तरंगकी एकता होती है. हे मुनीश्वर ! जब तुम धारणाका अभ्यास करिकै शुद्ध बुद्धिविषे प्राप्त होहुगे तब तुमको शिलाविषे सृष्टि भासैगी. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार मुझको शुद्ध युक्ति कही तब मैं पद्मासन बांधिकरि विषयते त्याग किया अरु विषय जो

कथाका क्षोभ था तिसको भी त्याग किया अपने अधिभूत भी त्याग किया अरु निरंतर शुद्ध बोधका अभ्यास किया तिस अभ्यासके बलकरि मुझको बोधका अनुभव उदय हुआ जैसे मेघके अभावते शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसे कलनाते रहित मुझको शुद्ध बोधका अनुभव उदय हुआ सो कैसा बोध है जो उदय अरु अस्तते रहित परम शांतरूप है तिसविषे शिला मुझको आकाशरूप दृष्टि आयी अरु शिला तत्त्वकरके भी दृष्टि आयी केवल बोधमात्र दृष्टि आयी है पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोऊ दृष्टि न आवैं केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आप ही दृष्टि आवै जब बोधमात्रते अंतवाहकरूप होकरि स्पंद फुरा तब अंतवाहक करिकै शिलाविषे सृष्टि भासने लगी जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है अरु बोधते भिन्न भिन्न नहीं होती तैसे सृष्टि मुझको दृष्टि आयी अरु शिला क्या रूप भासी जैसे स्वप्नके गृहविषे शिला दृष्टि आवै सो अनुभव ही शिला अरु गृहरूप होकरि भासता है इतर कछु नहीं होता तैसे वह शिला दृष्टि आयी. हे रामजी! जैसे आकाशरूप वह शिला देखी तैसे सब जगत् चिदाकाश है कछु द्वैत बना नहीं सर्वदा काल आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है अरु जो कछु द्वैत भासता है सो आत्माके अज्ञानकरिकै भासता है जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे अपना शिर काटा देखता है अरु रुदन करता है बहुरि जाग उठा तब आपको ज्योंका त्यों आनंद देखता है तैसे जबलग अज्ञान निद्राविषे सोता पडा है तबलग जगद्भ्रम मिटता नहीं जब स्वरूपविषे जागिकरि देखैगा तब सब भय मिटि जावैगा केवल अपना है आप भासैगा. हे रामजी! यह आश्चर्य देख जो वस्तु सत्रूप है सो असत्की नाईं भासती है आत्मा सदा सत्रूप है सो ज्ञानकरिकै भासता नहीं अरु जो असत्रूप है सो सत्की नाईं हो भासती है शरीरादिक दृश्य असत्रूप हैं सो सत्वत् होकरि भासते हैं. हे रामचंद्र! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है अरु शरीरादिक परोक्ष हैं अज्ञानकरिकै शरीरादिक प्रत्यक्ष भासते हैं अरु आत्मपद परोक्ष भासता है. हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो कछु इस लोक अथवा परलोककी क्रिया सिद्ध

होती है, सो आत्मसत्ताकरिकै सिद्ध होती है अरु जो कछु प्रत्यक्ष प्रमाण-कारि जगत् भासता है,सो आत्मसत्ताकरिकै भासता है,आदि प्रत्यक्ष आत्मा ही है अपर सब कछु आत्माके पाछे जाना जाता है, जो पुरुष कहते हैं, आत्मा योगकारि प्रत्यक्ष होता है अरु मनकारि प्रत्यक्ष होता है, सो मूर्ख हैं, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, अरु प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण भी आत्माकारि सिद्ध होते हैं, यही माया है, जो सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा है, तिसको परोक्ष जानना अरु जो शरीरादिक असत् हैं, तिनको सत् मानना. हे रामजी ! जेते कछु जीव तिनका वास्तवरूप ब्रह्म ही है, तिनविषे आदि फुरना अन्तवाहकरूप हुआ है, तिसके अनंतर अधिभूतक भासने लगा है, भ्रमकारिकै अधिभूतकको अपना आप जानते हैं अरु जो सदा निर्विकार निराकार निर्गुण स्वरूप है, अपना आप अनुभवरूप है, तिसको कोऊ नहीं जानते, आदि शरीर सर्व जीवका अंतवाहक है, सो शुद्ध आत्माका किंचन है, केवल आकाशरूप है, कछु बना नहीं, संकल्पकारिकै अधिभूतता दृढ हुई है, सो मिथ्या भ्रांतिकारि भासती है, जैसे स्वप्नविषे अधिभूतक शरीर भासता है, तैसे जाग्रत्विषे अधिभूत शरीर भासता है अरु अंतवाहक अविनाशी है, इसलोक परलोकविषे इसका नाश नहीं होता, वास्तव बोधस्वरूपते इतर कछु नहीं, भ्रमकारिकै अधिभूत दृष्टि आता है,जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जैसे आकशविषे दूसरा चंद्रमा है, तैसे भ्रमते अपनेविषे अधिभूत शरीर भासता है. हे रामजी ! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु है सो असत् हो भासती है अरु जो असत् वस्तु है, सो सत् होकारि भासती है, सो अविचारते जीवको भासती है, यह मोहका माहात्म्य है, जो सबके आदि प्रत्यक्ष आत्मा है, तिसको अप्रत्यक्ष जानते हैं, अप्रत्यक्ष जगत्को प्रत्यक्ष जानते हैं. हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो भ्रमकारिकै भासता है, स्वप्नकी नाईं मिथ्या है, जिनविषे पदार्थको सुखरूप मानता है सो सबका कारण है, काहेते जो परिणाम इनका दुःख होता है, जो प्रथम क्षीणसुख भासता है, बहुरि तिनके वियोगते दुःख होता है, इसी कार-

णते इनका नाम आपातरमणीय कहाता है, इनको पाइकरि शांतिमान् कोऊ नहीं होता, जैसे मृगतृष्णाके क्षीणसुख भासते हैं, बहुरि तिनके वियोगते दुःख होता है, जलको पाइकरि कोऊ तृप्त नहीं होता, तैसे विषयके सुखकरि तृप्त कोऊ नहीं होता तिनविषे लगते हैं, सो मूर्ख हैं, जो अनुत्तम सुख है, अनुभवकरिकै प्रकाशता है, तिसको त्यागिकरि विषयके सुखविषे लगते हैं सो मूर्ख हैं, शुद्ध आकाशरूप अंतवाहकविषे जगत् देखते हैं. हे रामजी! हुआकी नाईं भासता है, तौ भी हुआ कछु नहीं, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तौ भी हुआ नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तौ भी हुआ नहीं, तैसे यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है, तौ भी हुआ कछु नहीं. हे रामजी! प्रत्यक्षप्रमाण भी है नहीं, असत्य है, तौ अनुमानादिक प्रमाण कहांते सत्य होवैं; जैसे जिस नदीविषे हस्ती बहे जाते हैं, तौ रुईके वहनेविषे क्या आश्चर्य है, तैसे सब प्रत्यक्षप्रमाण जगत्को असत् जाना तौ अनुमान प्रमाणकरि क्या सत् होना है? हे रामजी! केवल बोधमात्रविषे जगत् कछु बना नहीं, हमको तौ सदा ऐसे ही भासता है अरु अज्ञानीको जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषको स्वप्नविषे पर्वत दृष्टि आते हैं अरु जागृत पुरुषको नहीं भासते, तैसे अज्ञानीको यह जगत् भासता है, हमको आकाश समुद्र पर्वत सब केवल बोधमात्र भासते हैं, जैसे कथाके अर्थ श्रोताके हृदयविषे होते हैं, अरु जिसने नहीं सुनी, तिसके हृदयविषे नहीं होते, तैसे मेरे सिद्धांतको ज्ञानवान् जानते हैं, अपर अज्ञानी नहीं जान सकते. हे रामजी! जेता कछु अधिभूत जगत् भासता है, सो अप्रत्यक्ष है अरु आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो इस लोक अथवा परलोकका अर्थ है सो अनुभवकरि सिद्ध होता है, काहेते जो सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष है, तिसको त्यागिकरि जो जो देहादिक दृश्यको अपना आप जानता है, अरु इनहीको प्रत्यक्ष जानते हैं, सो मूर्ख पशु पत्थरवत् हैं, सूखे तृणकी नाईं तुच्छ हैं, जैसे भ्रमतेको पर्वत आदिक पदार्थ भ्रमते भासते हैं तैसे अज्ञानीको अधिभूत भासता है. हे रामजी! यह जगत् सब परोक्ष है, काहेते जो इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष होता है, जो नेत्र होते हैं, तौ रूप भासते हैं; जो नेत्र न होवैं तौ

न भासैं इस प्रकार सब इंद्रियोंके विषय हैं, जो होवैं तौ भासैं, नहीं तौ न भासैं, अरु आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, उसके देखनेविषे किसकी अपेक्षा नहीं चाहती. हे रामजी ! जो इंद्रियोंकरि सिद्ध होवै सो असत्य क्यों हुआ, जगत् ही असत् हुआ, तिसके पदार्थ सत् कैसे होवैं? ताते इस जगत्की सत्यता त्यागिकरि शुद्ध बोधविषे स्थित होहु. इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणं नाम षडधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०६ ॥

सप्ताधिकद्विशततमः सर्गः २०७.
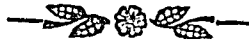
शिलांतरवसिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मैं उस शिलाको देखत भया, जब बोध दृष्टिकरि देखौं, तब मुझको ब्रह्मरूप भासै अरु जब संकल्प दृष्टिकरि देखौं तब जगत् दृष्टि आवै, पृथ्वी द्वीप समुद्र पर्वत लोक अरु लोकपाल सूर्य चंद्रमा तारागण पाताल जगत् सब दृष्टि आवैं, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे आत्मरूपी आदर्शविषे जगत् भासै, तब देवीने शिलाविषे प्रवेश किया, मैंने भी संकल्परूपी शरीरकरि प्रवेश किया, दोनों जगत्के व्यवहारको लंघते गया; जहां परमेष्ठी ब्रह्माका स्थान था तहां हम जाय बैठे, तब देवीने कहा, हे भगवन् ! तुम ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है, उसके ताईं तुमने बिवाह निमित्त उपजाई, बहुरि क्यों इसका त्याग किया, यह तुम पूछना. हे मुनीश्वर ! इसने मेरे ताईं विवाहके अर्थ उत्पन्न करी थी, जब मैं बड़ी हुई तब उसने मेरा त्याग किया है, तिसको वैराग्य उपजा है, तिसको देखिकरि अब मेरे ताईं भी वैराग्य उपजा है, इसीते हम परमपदकी इच्छा रखते हैं, जहां न द्रष्टा है, न दृश्य है, न शून्य है, केवल शांतरूप है, जो सर्गके आदि अरु महाकल्पके अंतविषे रहता है, तिसविषे स्थित होनेकी इच्छा है, जिसविषे स्थित हुए पहाडवत् समाधि हो जावै, ऐसे परमपदका उपदेश करो. हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि भर्ताको जगावने निमित्त निकट

जाइकरि कहत भई. हे नाथ! तुम जागौ, तुम्हारे गृहविषे अपर सृष्टिके ब्रह्माका पुत्र वसिष्ठमुनि आया है, तुम उठकरि इसका अर्घ्यपाद्य पूजन करौ काहेते कि हमारे गृहविषे अतिथि आए हैं, अरु महापुरुष पूजाकरि प्रसन्न होते हैं. हे रामजी! जब इस प्रकार देवीने कहा, तब ब्रह्माजी समाधिते उतरा, प्राण आनि देहनाडीविषे स्थित हुए, जैसे वसंत ऋतुकरि सब वृक्षोंविषे रस हो आता है, तैसे दश इंद्रियां संतुष्ट भई, अंतःकरणविषे शनैः शनैः करि प्राण आनि स्थित हुए, सब इंद्रियां खिल आईं तब मुझको अरु देवीको अपने सन्मुख देखत भया अरु ज्ञानकरिकै ओंकारका उच्चार करि ब्रह्माजी सिंहासनपर बैठा, ब्रह्माजीके जागनेकरि बड़ा शब्द होने लगा, विद्याधर गंधर्व ऋषि मुनि आयकरि प्रणाम करत भये, स्तुति करने लगे, वेदकी ध्वनिकरि पाठ करने लगे, तब मुनिको कहत भये. अन्यसृष्टिब्रह्मोवाच-हे ऋषि! तुम कुशल तो हौ क्योंकि बडे मार्गकरि आये हौ अरु सार असारको जाननेहारे हौ जैसे हाथविषे बिल्वका फल होता है, तैसे तुमको ज्ञान है अरु ज्ञानरूपी समुद्र हौ ऐसे कहकरि अपने निकट आसन दिया, अरु नेत्रसे आज्ञा करी, कि इस आसनपर विश्राम करौ. हे रामजी! जब इस प्रकार मुझको कहा, तब मैं प्रणाम करिकै निकट जाय बैठा, एक मुहूर्त पर्यंत देवता सिद्ध ऋषिके प्रणाम होते रहे, तिसके अनंतर विद्याधर अरु देवता सब गये, तब मैं कहत भया, हे भूत भविष्य वर्तमान् तीनों कालके ज्ञाता ईश्वर परमेष्ठी! ऊंचे आसनपर विराजमान हौ अरु साक्षात् ब्रह्मज्ञानके समुद्र हौ अरु यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है, जिसको तुमने भार्याके निमित्त उत्पन्न कीनी है, बहुरि विरस जानकरि त्याग किया है, तुम्हारे वैराग्य करनेकरि इसको भी वैराग्य उपजा है, इस निमित्त मुझको ले आई है, कि परमात्मतत्त्वकी वाणीकरि हमको उपदेश करहु, सो इसका अभिप्राय क्या है? अन्यसृष्टिब्रह्मोवाच-हे मुनीश्वर! मैं शांत हौं, अजर अमररूप हौं अरु मेरेविषे उदय अस्त कदाचित् नहीं, मैं परम आकाशरूप हौं अरु अपने आपविषे स्थित हौं, न मेरी कोऊ स्त्री है, न मैंने किसीकी उत्पत्ति कीनी है, तथापि जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं

कहता हौं, काहेते कि महापुरुषके विद्यमान ज्योंका त्यों कहना योग्य है. हे मुनीश्वर ! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्रपद है, तिसका वचन अहं होकरि फुरा है, जो मैं हौं तिसका नाम आदि ब्रह्मा है, सो मैं हौं कैसा ब्रह्मा है, जैसा भविष्यत् सृष्टिका होवै, अर्थ यह जो संकल्परूप द्रष्टा अरु संकल्परूप मैं हौं अरु वास्तवते क्या है, आकाशरूप हौं, सदा निरावरण हौं अरु अपने आप ही विषे मेरी अहंप्रतीति है, तिसविषे आदि जो संकल्पका फुरणा हुआ है, तिसकरि जगद्भ्रम रचा है, तिस जगद्भ्रमविषे मर्यादा हुई है अरु संकल्पका जो अधिष्ठाता यह ब्रह्म शक्ति है, सो भी शुद्ध है. हे मुनीश्वर ! तिस मर्यादाको सहस्र चौकडी युगकी बीती हैं, अब कलियुग है, कल्पकी भी अरु महाकल्पकी भी मर्यादा पूरी भयी है, तिसकरि मुझको परमचिदाकाशविषे स्थित होनेकी इच्छा भयी है, ताते इसको विरस जानकरि त्याग किया है, जब इसका त्याग करौं, तब निर्वाणपदको प्राप्त होवौं, काहेते कि, यह मेरी इच्छा वासनारूप है, जो वासनाका त्याग होवै तौ निर्वाणपद प्राप्त होवै अरु यह जो चित्तकला शुद्ध है, इसने धारणा अभ्यास किया था, तिसकरि अंतवाहक शक्ति इसको प्राप्त भई है, अंतवाहक शक्तिकरि आकाशविषे फुरा है अरु संसारते विरक्त भयी है, आकाशमार्गविषे इसको तुम्हारी सृष्टि भास आयी अरु परमपद पानेकी जो इच्छा हुई थी तिस वासना- करि इसको तुम्हारी संगति प्राप्त भई, परमपद पानेकी इच्छा इसको हुई है, ताते तुम्हारी शरणको प्राप्त भयी है अरु तुमको ले आयी है, जो श्रेष्ठ हैं, तो बडेकी शरण जाते हैं, अपने कल्याणके निमित्त तुमको ले आयी है. हे मुनीश्वर ! यह मेरी वासनाशक्ति है, आगे मैं इसको मूर्ति- रूप उत्पन्न करी थी, तब इस जगज्जालको रची थी, अब मुझको निर्विकल्प निर्वाणपदकी इच्छा भयी है, तिसकरिकै मैंने इसका त्याग किया है, अब इसको भी वैराग्य उपजा है, इस कारणते तुम बोधस्वरूपकी शरणको प्राप्त भयी है. हे मुनीश्वर ! यह जगद्विलास संकल्पविषे हुआ है, वास्तवते कछु हुआ नहीं, परमात्मतत्त्व ज्योंका त्यों अपनेआपविषे स्थित है, अरु मैं तू, मेरा तेरा इत्यादिक शब्द समुद्रके तरंगकी नाईं हैं, जैसे समु-

द्रविषे तरंग उपजकरि शब्द करते हैं बहुरि लीन हो जाते हैं, तैसे हमारा तुम्हारा बोलना मिलाप होता है. हे मुनीश्वर ! वास्तवते न कोऊ उपजा न किसीमें लीन होता है, जैसे तरंग जलरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं, इंद्रियां मन बुद्धिआदिक सब वहीरूप हैं. हे मुनीश्वर! मैं चिदाकाश हौं अरु चिदाकाशविषे स्थित हैं अरु यह ब्राह्मी शक्ति है, जिसने जगत् किया है, सो यह भी अजर अमर है, न कदाचित् उपजी है, न नाश होवैगा, शुद्ध आत्मा किंचनद्वारा जगत् हो भासता है, जैसे सूर्यकी किरणें जल हो भासती हैं अरु जल कछु हुआ नहीं, तैसे आत्मा ही है, विश्व कछु हुआ नहीं. हे मुनीश्वर ! जगत्-जाल होकरि आत्मा भासता है, जगत्के उदय अस्त होनेकरि आत्मा-विषे कछु क्षोभ नहीं होता, ज्योंका त्यों एकरस स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, परंतु समुद्र ज्योंका त्यों रहता है, न तरंग उपजे हैं, न लीन होते हैं, तैसे जगत् कछु उपजा नहीं, संकल्प-करि उपजेकी नाईं भासता है, जैसे दृढ़ताकरिकै जल गढ़ा हो जाता है, तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यताकरिकै पिंडाकार भासता है, परंतु उपजे कछु नहीं. हे मुनीश्वर ! यह जो शिला है. जिसविषे हमारी सृष्टि है, सो शिला केवल चिद्घनरूप है, तुम्हारी सृष्टिविषे यह शिला है अरु हम चेतनघन हैं, आकाश चेतन आत्मा शिला होकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे पत्तनसृष्टि सब जाग्रत् भासती है, सो बोधरूप जगत्करि भासता है, तैसे यह जगत् अरु शिलारूप होकरि बोध ही भासता है. हे मुनीश्वर ! जैसे स्वप्नविषे ग्रहका चक्र फिरता दृष्टि आता है, सूर्य चंद्रमा पर्वत नदी वरुण कुबेर आदिक जगत् भ्रमकरिकै दृष्टि आते हैं, सो बने कछु नहीं, चेतनका किंचन ही ऐसे भासता है तैसे यह जगत् शुद्ध आकाशका किंचन है जैसे सूर्यकी किरणोंविषे किंचित् जलाभास होता है, तैसे जहां आत्मसत्ता है, तहां जगत् भासता है अरु जो पदार्थ हैं सो आत्मसत्ताकरि भासते हैं, ब्रह्मसत्ता सर्वविषे अनुस्यूत है ताते सबके उरविषे सृष्टि वसती हैं, जैसे एक शिलाविषे हमारी सृष्टिविषे जो कछु पदार्थ भासते हैं, तिनविषे सृष्टि वसती हैं सो परिच्छिन्न दृष्टि-

करि नहीं भासती हैं, जब अंतवाहकदृष्टिकरि देखिये तब सृष्टि भासती है, घटोंविषे सृष्टि है, गर्तोंविषे सृष्टि है, पृथ्वीविषे सृष्टि है, जल अग्नि पवन आकाशविषे सृष्टि है, सब ठौरविषे सृष्टि है अरु बना कछु नहीं, जैसे जहां समुद्र है, तहां तरंग भी होते हैं, परंतु समुद्रते भिन्न कछु तरंग हुए भी नहीं वहीरूप हैं, तैसे यह जगत् कछु उपजता नहीं, न मिटता है, ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपने आपविषे स्थित है अरु जगत् जो फुरता है, सो संकल्पशक्तिकरि फुरता है, संकल्पशक्ति अहंरूपी किंचन-मात्र उदय हुई है अरु जैसे कमलते सुगंधि लेकरि तारियां निसकती हैं, तैसे मूलते देवी जगत्रूपी सुगंधिको लेकरि उदय भयी है, परंतु वास्तव जगत् कछु बना नहीं, संकल्पशक्तिकरि बनेकी नाई भासता है. हे मुनीश्वर ! वास्तवते न कोऊ संकल्प है, न प्रलय है ज्योंका त्यों ब्रह्म अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, जैसे समुद्रविषे समुद्र स्थित है, तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है. हे मुनीश्वर ! यह जगत् न सत् है, न असत् है, आत्माविषे न उदय हुआ, न अस्त होवैगा जैसे आकाशविषे नीलता न सत् है, न असत् है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् न सत् है, न असत् है अरु मैं तिस ब्रह्मका किंचन ब्रह्मा हौं, यह जगत् मेरे संकल्पविषे उत्पन्न हुआ है, अब मैं संकल्पका निर्वाण करता हौं, जब संकल्प निर्वाण हुआ, तब जगत्का आभास हो जावैगा, जैसे कमलके नाश हुए सुगंधिका अभाव होता है, तैसे मेरेविषे इच्छा फुरी थी तिसविषे वासना है, वासनाविषे जगत् है, अब मैं इसको निर्वाण करता हौं, जब इच्छा निर्वाण हुई तब जगत्का भी स्वाभाविक अभाव हो जावैगा, अरु तुम्हारा जो शरीर भासता है, सो इस संकल्पविषे भासता है, ताते तुम अपनी सृष्टिविषे गमन करौ, नहीं तो तुम्हारा शरीर भी यहां निर्वाण हो जावैगा. हे रामजी ! इस प्रकार मुझको कहकरि बहुरि देवीको कहत भया. हे देवी ! अब तू आत्मपदविषे अरु बोध आदिकको भी लीन कर अपनेविषे निर्वाण होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे शिलांतरवसिष्ठ-ब्रह्मसंवादवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०७ ॥

अष्टाधिकद्विशततमः सर्गः २०८.

अन्यजगत्प्रलयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार ब्रह्माने कहिकरि पद्मासन किया, अपर भी सब जन संयुक्त तब अकार उकार मकारको छोडिकरि अर्धमात्राविषे स्थित भया, तब ब्रह्माजीकी मूर्ति ऐसी दृष्टि आवै, जैसी कागजऊपर मूर्ति लिखी होती है अरु निर्वेदना हुआ, जेता कछु जगज्जालका ज्ञान था, तिसका विस्मरण किया अरु देवीने भी उसी प्रकार पद्मासन किया, ब्रह्माजीके निश्चयविषे लीन हो जाने लगी, जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्माविषे लीन होने लगा, तब जेते कछु उपद्रव थे, सो अति उदय हुए मनुष्य पाप करने लगे, स्त्रियां दुराचारिणी होत भयीं सब जीवने धर्मका त्याग किया, कामी पुरुष बहुत भए, परस्त्रियोंके साथ संग करैं, पुरुष स्त्रियां शंका किसीकी न करैं, काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेष बढि गए, शास्त्रकी मर्यादाको त्यागत भए, अनीश्वरवादी होत भए, वर्षा होनेते रहि गई, कुहिड परने लगी अरु काल पडा, दुष्टजन धनपात्र होने लगे, धर्मात्मा आपदा भोगने लगे, चोर चोरने लगे, राजा मद्यपान करने लगे, जीवनको बडे दुःख प्राप्त होने लगे, तीनों तापकरि जलते रहैंही, राजा न्यायको त्यागत भए, इत्यादिक जो पाप आचार थे, सो उदय भए, धर्म छपन हो गया, अज्ञानी राज्य करैं, पंडित ज्ञानी टहल करैं, दुर्जनोंकी महान् पूजा होवै, सत्य पंडितका निरादर होवै, तब जीवके समूह इकट्ठे भए पृथ्वीके ऊपर पृथ्वी अपनी सत्ताको त्यागत भई काहेते जो पृथ्वी ब्रह्मके संकल्पविषे पड़ी थी; जब उसने अपना संकल्प खैंचा, तब निर्जीव हो गई, चैतन्यता निकस गई, जो स्थान भूतके विचरनेका होवै सो खाईंकी नाईं हो जावै, भूत नाश हो जावैं, पृथ्वी भी नाश होने लगी, पर्वत कंपने लगे, भूचाल हाहाकार शब्द होने लगे जैसे शरत्कालविषे वल्ली सूखि जाती है, जर्जरीभाव होती है, तैसे पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त भयी काहेते जो चेतनता शरीर सर्व जगत ब्रह्मा है, ज्यों ज्यों संकल्परूपी चेतनता क्षीण होती जावै, त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होवै, जैसे

किसी पुरुषका अर्धांग मरि जाता है तब वह अंग शव जैसा हो जाता है, फुरणा तिसविषे नहीं रहता, तैसे ब्रह्मके संकल्परूप चेतनतापृथ्वी सों निकसती जावै, इस कारणते पृथ्वी निघरी निघरी जावै, धूड उडै, नगर नष्ट होवै, इसप्रकार उपद्रव उदय हुए, काहेते कि पृथ्वीके नाशका समय निकट आया अरु समुद्र जो अपनी मर्यादाविषे स्थित थे, सो भी अपनी मर्यादाको त्यागत भये, जैसे कामी पुरुष मद्यपान कियेते अपनी मर्यादाको त्यागता है, तैसे समुद्र उछले किनारे गिराय दिये, पर्वत कंदरासों निकस जावै पृथ्वीको नाश करते भये, राजा अरु नगरवासी भागते जावैं, पाछे तीक्ष्ण वेगकरि जल चला जावै, बडे पर्वत गिरने लगे अरु चक्रकी नाईं फिरने लगे, समुद्रके तरंगसाथ पर्वत गिरैं अरु उडैं अरु तरंग उछलकरि पातालको गए, पातालका नाश होने लगा, अरु बड़े रत्नके पर्वत गिरैं, तब रत्नका ऐसा चमत्कार होवै जैसा तारामंडलका होता है, इसी प्रकार बड़ा क्षोभ होने लगा अरु तरंग उछलकरि सूर्य चंद्रमाके मंडलको जावैं अरु प्रकाश भूसल हो गया, वडवाग्नि उदय भई तब वरुण कुबेर यम इनके जो वाहन थे सो भयको प्राप्त भए, जलके वेगकरि पर्वत नृत्य करने लगे मानो पर्वतोंको पंख लगे हैं, स्वर्गविषे जो कल्पतरु थे समुद्रविषे आनि पड़े, चिंतामणि अरु सिद्ध गंधर्व सब गिरने लगे, समुद्र इकट्ठे हो गए, जैसे गंगा यमुना सरस्वती एकत्र होती हैं, तैसे समुद्र मिलिकरि शब्द करने लगे अरु ऐसे मच्छ निकसे, जिनके पुच्छ लगनेकरि पर्वत उडते जावैं अरु कंदराविषे जो हस्ती थे सो पुकार करैं, सूर्य चंद्रमा तारागण क्षोभको प्राप्त भए समुद्रविषे गिरने लगे. हे रामजी! इस प्रकार प्रलयके क्षोभकरि जेते कछु लोकपाल थे सो सब समुद्रके मुखमें आनि पडे, वह मच्छ उनको भक्षण करते भए अरु तरंग आपसमें युद्ध करैं, जैसे मतवारे हस्ती शब्द करते हैं तैसे युद्ध करैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अन्यजगत्प्रलयवर्णनं नामाष्टाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०८ ॥

नवाधिकद्विशततमः सर्गः २०९.

निर्वाणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! वह विराट्रूप जो ब्रह्मा था, जिसका देह सम्पूर्ण जगत् था. सो अपने प्राणको खैंचत भया, तब छत्र; चक्रके फेरनेहारा जो वायु है, सो अपनी मर्यादा त्यागिकरि क्षोभ करने लगा तब वह चक्र नाश होने लगे, काहेते जो ब्रह्माके संकल्पविषे थे, किसीकी समर्थता नहीं जो उनको रक्खै अरु तेजमें जो देवता थे सो पवनके आधार थे, वह पवनके निकसनेकरि निराधार भए;तब समुद्रविषे गिरने लगे, जैसे वृक्षसों फल गिरते हैं तैसे गिरते भए, जैसे संकल्पके नाश हुए संकल्पका वृक्ष गिरता है, जैसे पक्क फल समयकरि गिरता है तैसे सब गिरते भये सुमेरुकी कंदरा गिरत भयी, पवनका बडा क्षोभ हुआ, अरु शब्द हुआ, अपनी शांतिके निमित्त पवनका क्षोभ हुआ जैसे पवनविषे तृण फिरता है तैसे आकाशविषे पवन फिरने लगा देवताके रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था सो गिरता भया. राम उवाच-हे भगवन्! संकल्परूप जो ब्रह्मा था सो विराट् आत्मा है, सब जगत् उसका देह है, भूमंडल उसका कौन अंग है, पाताल कौन अंग है स्वर्गलोक कौन अंग है अरु संकल्परूप कसे अंग होते हैं, संकल्प तौ आकाशरूप होते हैं अरु जगत् प्रत्यक्ष पिंडाकार दृष्टि आवै, जो जिसते उपजता है, सो तिस ही जैसा होता है, तौ यह जगत् ब्रह्माके अंग कैसे हैं? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस जगतते पूर्व केवल चिन्मात्र था, तिसविषे जगत् न सत् था, न असत् था केवल आत्मत्वमात्र अपने आपविषे स्थित था, जैसे आकाश अपने आपविषे स्थित है, एक अरु दो शब्दते रहित है, तिसं केवल चिन्मात्रका किंचन अहं होकरि स्थित भया है, तिस अहंकारका चैत्य जो दृश्य है, तिस साथ संबंध हुआ, तिस दृश्यके अनुभव ग्रहणकरि निश्चय हुआ तिसका नाम बुद्धि है, बहुरि सो व्यतीत हुआ तिसका नाम मन है, तिस मनके फुरणेकरि जगत् दृष्ट हुआ है. हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्य है, सोई

ब्रह्मरूप करि कहता है, तिसविषे फुरणेविषे आगे जगत् हो खड़ा भया है, तिस संकल्परूप जगत्का वह विराट् है, परंतु क्या है, आकाशरूप है, अपर बना तौ कछु नहीं, अरु यह जो आकार सहित जगत् भासता है, सो ब्रह्मकरि भासता है, सब संकल्प आकाशरूप है, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप होता है परंतु निद्रादोष करिकै पिंडाकार भासता है, अरु आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्योंका त्यों अपना आपविषे स्थित है. हे रामजी ! अहं जो फुरा है, सो मिथ्या है, अज्ञान करिकै दृढ स्थित हुआ है, असम्यक्दर्शीको दृढ भासता है, सो केवल संकल्पमात्र है, अपर कछु नहीं बना, ताते जेता कछु जगत् भासता है सो सब चिदाकाश है, एक अरु द्वैत कलनाते रहित है, सर्व शब्दते रहित आत्मामात्र है, मैं अरु तू शब्द कोऊ नहीं, यह जगत् तिसका किंचन है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है तैसे आत्माका आभास जगत् है, संकल्प दृढता करिकै दृश्य भासता है, अरु है नहीं, जैसे संकल्परूप गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है. हे रामजी ! जिस प्रकार मैंने जगत् वर्णन किया है, जो पुरुष मेरे कहनेको ज्योंका त्यों धारै, तब उसकी वासना नष्ट हो जावै अरु पूर्ववत् आत्मा ज्योंका त्यों भासैगा, जैसे जगत्के आदि आत्मत्वमात्र था, तैसे ही भासैगा काहेते अपर कछु हुआ नहीं, केवल आत्मत्वमात्र ज्योंका त्यों स्थित है, जो आत्मा ही है, तौ समवायकारण अरु निमित्तकारण कैसे होवै, जगत्का उदय होना अरु नाश होना असत् है, अद्वैत अनंत कहना भी कोऊ नहीं, जब सर्व शब्दका अभाव हुआ, तब परमचिदाकाश अनुभवसत्ता ही शेष रहैगी, इसीका नाम मोक्ष है. हे रामजी ! हमको तौ अब भी संवित्सत्ता ही भासती है, कैसा हौं मैं शुद्ध हौं, सर्वकल्पनाते रहित हौं, चिदाकाश हौं अरु मेरेविषे जो वसिष्ठ अहं फुरा है, सो फुरा नहीं, फुरेकी नाईं भासता है, एक भी आत्माका किंचन है, हुआ कछु नहीं, ताते तुम भी इसीप्रकार जानकरि निर्वासनिक होहु; अरु अपने प्रकृत अचारको करहु अथवा न करहु, जो इच्छा है सो करहु परंतु करने अकरनेका संकल्प न

करहु, परम मौनविषे स्थित होहु, ज्ञानवान्‌को यह अनुभव होता है, ताते तुम भी ऐसे धारहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणे उ० निर्वाणवर्णनं नाम नवाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०९ ॥

दशाधिकद्विशततमः सर्गः २१०.

विराडात्मवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! बंध मोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है, न असत् है. उदय भी नहीं हुआ, अस्त भी नहीं होता, केवल ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, ऐसे तुमने मुझको उपदेश किया है सो मैंने जाना है, आत्माविषे जगत् न उपजा है, न मिटता है, तुमने अमृतरूपी वचनोंसे उपदेश किया है, सो मैंने जाना है, सुनता मैं तृप्त नहीं होता, अमृतकी नाईं पान करता हौं अरु जगत् सत् असत्‌ते रहित सन्मात्र है, तिसको मैं जाना है, बहुरि कहौ कि संसारभ्रम कैसे उपजता है, अरु अनुभव कैसे होता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो कछु तुझको दृष्टि आता है, स्थावर जंगम जगत् सर्व प्रकार देश काल संयुक्त, तिसके नाशका नाम महाप्रलय है, तिसविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र भी लीन हो जाते हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो स्वच्छ है, अज है, अनादि है, केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं. कैसे कहिये केवल अपने आपविषे स्थित है, परम सूक्ष्म है, तिसविषे आकाश भी सूक्ष्म है, जैसे सुमेरुपर्वतके निकट राईका दाणा सूक्ष्म है, तैसे आकाशते आत्मा सूक्ष्म है, कैसी सूक्ष्मता है, जो संवेदनते रहित चिन्मात्र है, तिसविषे अहं किंचन होकारि फुरा है अरु आत्मा सदा निर्विकल्प है, सात समुद्र हैं देशकालके भ्रमते रहित हैं, केवल चेतनघन अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे अपने भावको लेकारि स्थित होता है, तैसे आत्मा अपने भावको लेकारि चेतन किंचन होता है तिसका नाम ब्रह्मा है, सो भी चिद्रूप है. हे रामजी ! चिद् अणु जो

अपने भावको लेकरि उदय हुआ है, सो चैत्यनाम दृश्यको देखत भया है, तब उसका अनुभव क्या मिथ्य हुआ ? जैसे स्वप्नविषे अपना मरण देखता है, सो अनुभव मिथ्या है,तैसे चिद् अणु दृष्टिकरि दृश्यको देखता है, सो मिथ्यादृष्टि है, जब चिद् अणु अपने स्वरूपको देखत भया, सो केवल निराकाररूप है, परंतु अहं जो ऐसे बीज दृढ होते हैं, तिसकरि अपने आपसों निकसि दृश्यको संकल्पकरि देखता है, जैसे बीजते अंकुर निकसताहै, तैसे संकल्पके फुरणेकरि देश काल द्रव्य द्रष्टा दर्शन दृश्य होता है, वास्तवते हुआ कछु नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, परंतु संकल्पकरि हुएकी नाईं भासता है, सो देश है, जहां चिद् अणु भासै जिस समय भासै सो काल है अरु जो भान हुआ सो क्रिया हुआ, भानका ग्रहण हुआ सो द्रव्य है, देखनेको जो वृत्ति दौडती है, सो नेत्र होकरि स्थित हुए हैं, अरु देखने लगेते जिसको देखते हैं, सो भी शून्य हैं, देखनेहारे शून्य हैं, सब असत्य हैं, कछु बना नहीं, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्मा अपने आपविषे स्थित है, संकल्पद्वारा सब कछु बनता जाता है, चिद् अणु जो भासा है, सो दृश्यरूप होकरि स्थित भया है, जब चिद् अणुविषे रूपकी वृत्ति फुरती है, तब चक्षु इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब श्रवणकी वृत्ति फुरती है, तब श्रोत्र होकरि स्थित होते हैं, जब स्पर्शकी वृत्ति फुरती है, तब त्वचा इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब सुगंधि लेनेकी वृत्ति फुरती है, तब नासिका इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब रस लेनेकी इच्छा होती है, तब जिह्वा इंद्रिय होती है अरु स्वाद लेती है, हे रामजी ! प्रथम यह चिद् अणु नामते रहित फुरा है अरु संपूर्ण जगत् भी तद्रूप ही था, अब भी वही केवल आकाशरूप है अरु संकल्पकरि अपनेविषे पिंड घनको देखा है; बहुरि शरीरको देखा बहुरि इंद्रियोंको देखा, अनादि सत्स्वरूप चिद् अणु इंद्रियोंके संयोगते पदार्थोंको ग्रहण करता है, स्पंदरूप जो वृत्ति फुरी है, तिसका नाम मन हुआ, जब निश्चयात्मक बुद्धि होकरि स्थित भई, तब चिद् अणुविषे यह निश्चय हुआ कि, मैं द्रष्टा हौं, यह अहंकार हुआ, जब अहंकारसाथ चिद्

अणुका संयोग हुआ तब देशकालका परिच्छेद अपनेविषे देखत भया आगे दृश्यको देखत भया, पूर्व उत्तर काल देखत भया, आपको ऐसे देखते हैं, इस देशविषे बैठा हौं, यह मैं कर्म किया है, यह विषमअहंकार हुआ, देशकाल क्रिया द्रव्यके अर्थको भिन्नभिन्नकारि ग्रहण करता है, आकाश होकारि आकाशको ग्रहण करता है. हे रामजी ! आदि फुरणेकारि चिद्अणुविषे अंतवाहक शरीर हुआ है, बहुरि संकल्पके दृढ़ अभ्यासकारि अधिभूतक भासने लगा है, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे अपर आकाश होवै, तैसे यह आकाश है, अणुहीते भ्रमकरिकै उदय हुए हैं अरु सत्की नाईं भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे भ्रमकरिकै नदी भासती है, तैसे अविचारकरिकै संकल्पकी दृढता है, पंचभूत आकार भासते हैं, तिनविषे अहंप्रत्यय हुआ है, तिसकारि देखता है, यह मेरा शिर है, यह मेरे चरण हैं, यह मेरा अमुक देश है, इत्यादिक शब्द अर्थको ग्रहण करता है, नाना प्रकारका जगत् शब्द अरु अर्थ सहित ग्रहण करता है, भाव अभावको ग्रहण करता है, इस प्रकार कहता है कि, यह देश है, यह काल है, यह क्रिया है, यह पदार्थ है. हे रामजी ! जब इस प्रकार जगत्के पदार्थका ज्ञान होता है, तब चित्त विषयकी ओर उड़ता है अरु रागद्वेषको ग्रहण करता है, जो कछु देहादिक भूत फुरनेकारि भासते हैं, सो केवल संकल्पमात्र हैं, संकल्पकी दृढताकारिके दृढ हुए हैं. हे रामजी ! इस प्रकार ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, इसी प्रकार विष्णु रुद्र हुए हैं, इसी प्रकार कीट उत्पन्न भये हैं परंतु प्रमाद अप्रमादका भेद है, जो अप्रमादी है, सो सदा आनंदरूप है, ईश्वर है, स्वतंत्र है, तिसको यह जगत् अरु वह जगत् अपना आप रूप है अरु जो प्रमादी है, सो तुच्छ है, सदा दुःखी है, अरु वास्तवते परमात्मतत्त्वते इतर कछु हुआ नहीं, अपने आप स्वभावविषे स्थित है; जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है अरु सर्वका बीज है अरु त्रिलोकरूप बुंदका मेघ है, कारणका कारण वही है, कालविषे नीति वही आत्मा है, क्रियाविषे क्रिया वही है, आदिविराट् पुरुषका शरीर भी नहीं अरु हम

तुम भी नहीं, केवल चिदाकाशरूप अब भी इनका शरीर आकाशरूप है, आत्मसत्ता इतर अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त भए, केवल आकाशरूप जैसे स्वप्नविषे युद्ध होते हैं अरु मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं, इत्यादिक शब्द अर्थ भासते हैं, सो केवल आकाशरूप हैं, बना कछु नहीं, परंतु निद्रादोषकरि भासते हैं, जब जागता है, तब जानता है, जो हुआ कछु न था आकाशरूप है, तैसे जो पुरुष अनादि अविद्याते जागा है, तिसको जगत् आकाशरूप भासता है. हे रामजी ! बहुत योजनपर्यंत विराट् पुरुषका देह है, तौ भी ब्रह्म आकाशके सूक्ष्म अणुविषे स्थित है, यह त्रिलोकी एक चिद्अणुविषे स्थित है, विराट् पुरुष इसका ऐसा है, जिसका आदि अन्त मध्य नहीं भासता ऐसा स्थूल देह इसका है, तौ भी एक चावलके समान नहीं. हे रामचंद्र ! यह जगत् अरु जगत्के भाग विस्तीर्ण दृष्टि आते हैं,तौ भी एक कणके समान नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वतके एक अणुके समान नहीं, तैसे विचाररूपी तराजूकरके तौलिये तौ परमार्थसत्ताविषे कछु सत्यता इनकी नहीं पाई जाती, दृष्टि भी आते हैं, परंतु आत्मसत्ताते इतर कछु हुआ नहीं,आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, इसीका नाम स्वयंभू मनु कहते हैं, इसीको विराट् कहते हैं, इसीको जगत् कहते हैं, जगत् अरु विराट्विषे भेद कछु नहीं, वास्तवते आकाशरूप है, सनातन भी इसीको कहते हैं, रुद्र इंद्र उपेंद्र पवन मेघ पर्वत जल जेते कछु भूत हैं, सो तिसका वपु है. हे रामजी ! आदिवपु जो इनका चिन्मात्ररूप है, तिसविषे चैत्यता करिके अपना अणु जैसा वपु देखता है; जैसे तेजका कणका होता है, तिस तेज अणुते चैत्यताकरिके क्रमकरि अपना बडा शरीर जगत्रूप देखत भया, जैसे स्वप्नविषे कोऊ पुरुष आपको पर्वत देखै, तैसे आपको विराट्रूप देखत भया है, जैसे पवनके दो रूप हैं; चलता है तौ भी पवन है, नहीं चलता तौ भी पवन है, तैसे जब चित्त फुरता है, तब भी ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है अरु जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्योंकी त्यों है, परंतु जब स्पंद फुरता है, तब विराट्रूप होकरि स्थित होता है, जब चित्त अफुर होता है, तब अद्वैतसत्ता भासती है अरु सदा अद्वैत ही विराट् स्वरूप कैसा है ?

हे रामजी! इस दृष्टिकरि उसके शिर पाद नहीं भासते हैं अरु जेते कछु ब्रह्मांडकी पृथ्वी है सो तिसका मांस है अरु सब समुद्र तिसका रुधिर हैं, नदी तिसकी नाड़ी हैं अरु दशों दिशा तिसके वक्षस्थल हैं अरु तारागण रोमावली हैं, सुमेरु आदिक तिसकी अंगुलियां हैं अरु सूर्यादिक तेज तिसके पित्त अरु चंद्रमा कफ हैं अरु पवन तिसका प्राणवायु है, संपूर्ण जगज्जाल उसका शरीर है, ब्रह्मा तिसका हृदय है, सो आकाशरूप है, संकल्पकरिकै नानारूप हो भासता है, स्वरूपते कछु बना नहीं, आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप हैं अरु अपने आप ही विषे स्थित हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विराडात्मवर्णनं नाम दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१० ॥

एकादशाधिकद्विशततमः सर्गः २११.

विराट्शरीरवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आदि जो विराट् हैं, सो ब्रह्म है, तिसका तौ आदि अंत कछु नहीं अरु यह जगत् उसका छोटा वपु है, तिस चेतन वपुका किंचन ब्रह्मरूप हुआ है, तिसके अंगके विस्तारका क्रम सुन, तिस ब्रह्माने संकल्पकरि एक अंड रचा है, कैसा ब्रह्मा है, जिसका संकल्प ही वपु है, तिस अंडको फोडता भया, तब अण्डेका जो ऊर्ध्व भाग था, सो ऊर्ध्वको गया अरु जो अधोभाग था, सो अधःको गया, सो पाताल ब्रह्मका चरण हुआ अरु ऊर्ध्व शिर हुआ अरु मध्य जो अवकाश है, सो ब्रह्माका उदर हुआ, दशों दिशा वक्षस्थल हुए अरु हाथ सुमेरुआदिक पर्वत हुए. अरु मांस पृथ्वी हुई अरु समुद्र आंत्रा हुए, सब नदियां तिसकी नाडी भई, तिसविषे जल है सो रुधिर हुआ. प्राण अपान वायु पवन हुआ, हिमालय पर्वत तिसका कफ है, सर्व तेज उसके पित्त हैं चंद्रमा, सूर्य, तिसके नेत्र हैं अरु तारागण स्थूल लार है अरु लार प्राणके बलकरि निकसती हैं, जैसे ताराचक्रको पवन फेरता है अरु ऊर्ध्व लोक

तिसकी शिखा है, मनुष्य, पशु, पक्षी, उसके रोम हैं अरु सब भूतकी चेष्टा उसका व्यवहार है, पर्वत उसके अस्थि हैं, ब्रह्मलोक इसका मुख है, सब जगत् विराट्का वपु है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह जो तुमने संकल्प-रूप ब्रह्मा कहा अरु जगत् तिसका वपु कहा सो मैं मानता हौं, परंतु यह जगत् तौ तिसका शरीर हुआ, बहुरि ब्रह्मलोकविषे ब्रह्मा कैसे बैठता है, अपने शरीरविषे ही भिन्न होकरि कैसे स्थित होता है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इसविषे क्या आश्चर्य है, जो तू ध्यान लगाइकरि बैठे अरु अपनी मूर्ति अपने अंतर रचिकरि स्थित होवै तो भी होता है अरु जैसे पुरुषको स्वप्न आता है, तिसविषे जगत् भासता है सो सब अपना स्वरूप है, परंतु अपनी मूर्ति धारिकरि अपरको देखत भया, तैसे ब्रह्मका एक शरीर ब्रह्मलोकविषे भी होता है, ब्रह्म अरु जीवविषे एता भेद है कि, जीव भी अपनी स्वप्नसृष्टिका विराट् है परंतु उसको प्रमादकरिके भासती नहीं अरु ब्रह्म सदा अप्रमादी है, तिसको सब जगत् अपना शरीर भासता है. हे रामजी ! देवता, सिद्ध, ऋषीश्वर, विद्याधर सो विराट् पुरुषकी ग्रीवाविषे स्थित हैं अरु भूत, प्रेत, पिशाच सब वैराट् पुरुषके मलते उपजे कीटकी नाईं उदरविषे स्थित हैं, स्थावर जंगम जगत् सब संकल्प करि रचा हुआ विराट्विषे स्थित है, सब तिसीके अंग हैं, जो जगत् है तौ विराट् भी है अरु जगत् नहीं तौ विराट् भी नहीं, जगत् कहिये, ब्रह्म कहिये, विराट् कहिये तीनों पर्याय हैं, ताते संपूर्ण जगत् विराट् वपु हैं, जैसे निराकार क्या अरु आकार क्या, अंतर बाहर सब विराट्का वपु है, जैसे अंतर बाहिर आकाशविषे भेद नहीं तैसे विराट् आत्माविषे भेद नहीं, जैसे पवनके चलने ठहरनेविषे भेद नहीं तैसे विराट् अरु आत्माविषे भेद नहीं, जैसे चलना ठहरना दोनों रूप पवनके हैं तैसे साकार निराकार सब विराट्का शरीर है. हे रामजी ! इस प्रकार जगत् हुआ है, सो कुछ उपजा नहीं, संकल्पकरिकै उपजेकी नाईं भासता है, जैसे सूर्यकी किर-णोंविषे जल हुआ कछु नहीं अरु हुएकी नाईं भासता है तैसे ब्रह्मस-त्ताविषे जगत् उपजेकी नाईं भासता है अरु उपजा कछु नहीं, केवल अपने आपविषे स्थित है, शिला जठरकी नाईं स्थित है, अर्थ यह जो

संकल्पविकल्पते रहित चेतनरूप चैत्यते रहित चिन्मात्र तेरा स्वरूप है ताते कलनाको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विराट्शरीरवर्णनं नाम एकादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २११ ॥

द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः २१२.

जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! प्रथम प्रलयका प्रसंग बहुरि श्रवण करु, मैं ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्माके पास बैठा था, जब नेत्र खोलकरि देखा तब मध्याह्नका समय है, जो दूसरा सूर्य पश्चिम दिशाविषे आनि उदय हुआ है, तिसका बड़ा प्रकाश देखा, मानो सम्पूर्ण तेज इकट्ठा हुआ है अरु वडा अग्निकी नाईं प्रकाश हुआ अरु बिजुरीकी नाईं स्थित हुआ, तिसको देखिकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ, ऐसे देखता था तौ एक अपर सूर्य उदय हुआ, बहुरि उत्तर दिशाकी ओर अपर सूर्य हुआ, इसी प्रकार दश सूर्य आकाशविषे प्रगट हुए अरु एक प्रथम था, एकादश सूर्य उदय होकरि तपाने लगे, द्वादशवां वडवाग्नि समुद्रते उदय भयी, तिसते एक सूर्य निकसा, द्वादश इकट्ठे होकरि विश्वको तपाने लगे. हे रामजी ! प्रलयके तीन नेत्र आदि उदय हुए, एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र वडवाग्नि, तीसरा अग्नि बिजुरी भयी, तीनों नेत्र विश्वको जलाने लगे, दिशा सब रक्त भई, अट अट शब्द होने लगे, नगर वन कंदरा संपूर्ण जलने लगे, पृथ्वी क्षुब्ध जलने लगी, देवताके स्थान जलि जलि डिगने लगे, पर्वत जलि-करि श्याम हो गये, ज्वालाके कणके निकसिकरि पातालको गये, पाताल जलने लगा, समुद्र जलिकरि सूख गये, चिकड हो रहा, हिमालय पर्वत बर्फका जल होकरि जलने लगा जैसे दुर्जनोंके संगकरि साधुका हृदय तप्त होता है, जब इसी प्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित भयी तब मुझको भी तप्त आनि लगी, तब मैं वहांसों दौडिकरि अधः जाय स्थित भया, तहां मैं देखत भया कि, अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वतके

पास आय पडा, मंदराचल पर्वत जलिकरि गिरने लगा, सुमेरु गिरने लगा, अग्निकी ज्वाला ऊर्ध्वको जावै, भड भड शब्द करै. हे रामजी ! इस प्रकार संपूर्ण विश्व जलने लगा, बड़ा क्षोभ आनि उदय हुआ, जहां कछु रस था सो सब विरसताको प्राप्त भया. हे रामजी ! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं, सो सब विरस है परंतु अपने अपने कालविषे रससंयुक्त दृष्टि आते हैं, तिस कालविषे मुझको ऐसे भासै जैसे जली हुई वल्ली होती है तैसे सब विरस दृष्टि आवैं. हे रामजी ! इस प्रकार सब विश्व जलता देखा, परंतु ज्ञानकरि जिसका अज्ञान नष्ट हुआ है सो सुखी दृष्टि आवै, अपर सब अग्निविषे जलते दृष्टि आए अरु बड़े भयानक शब्द होवैं अरु सदाशिवका जो कैलास पर्वत है तिसके निकट अग्नि आती थी, तब सदाशिवने अपने नेत्रसों अग्नि प्रगट करी, तिसकरि बड़ा क्षोभ हुआ, ब्रह्मांड जलने लगा, तब महापवन आनि चला, बडे बडे जो पर्वत थे सो उड़ने लगे जैसे तृण उडते हैं अरु जो स्थान जले थे तिनकी अँधेरी होकरि पुरियोंके स्थान भी उड़ते जावैं, बडा क्षोभ आनि उदय भया, अरु इंद्रादिक देवता अपने स्थानको त्यागिकरि ब्रह्मलोकको चले जावैं अरु बड़े मेघ जलकरि जो पूर्ण थे सो सूखकरि जलने लगे, जलको त्यागते भये अरु कल्परूपी जो पुतली थीं सो नृत्य करने लगी, जले स्थानोंते जो धूम्र निकसता है सो तिसके केश है अरु प्रलयशब्द उसका बोलना है, बडा पवन चला, पर्वत जलकरि उडने लगे, सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं उडते जावैं, जीवको बडा कष्ट प्राप्त हुआ, ऐसा दुःख कहनेविषे नहीं आता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनं नाम द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१२ ॥

त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१३.

ब्रह्मजलमयवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! अग्निकरि स्थान सब जलि गये, तिसके उपरांत पुष्कल मेघ प्रलयके गर्जने लगे अरु वर्षने लगे, प्रथम मूसलकी नाईं फेरि स्तंभकी नाईं धारा वरपैं, बहुरि नदीकी वर्षा करने लगे, बहुरि महानद वर्षने लगे जिनकी गंगा यमुना नदी लहरी हैं, सब स्थान शीतल होगये, जैसे अज्ञानी तीन तापकरि जला हुआ संतके संगकरि शीतल होता है, तैसे शीतल भये. हे रामजी! ऐसा जल चढा जिसकरि सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करैं, जैसे समुद्रविषे झाग होती है तैसे होगये, बहुरि कैसे लगे जैसे जलचर होते हैं तैसे पर्वत वहते जावैं. हे रामजी! ऐसे जल चढे जो कहनेविषे नहीं आता, बड़े बड़े स्थान बहते जावैं, देवता सिद्ध, गधर्व बहते जावैं, जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकरि सेवना करते हैं सो भी बहुत दृष्टि आये, जसे कोऊ पुरुष कंटके अंधे कूपविषे गिरते दुःख पावैं, तैसे दृष्टि आवैं अरु मुझको सब ब्रह्म दृष्टि आवैं, जब संकल्पकी ओर देखौं तब महाप्रलय दृष्टि आवै, मेघ गर्जते जटा होकरि दृष्टि आवैं अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जल चढि गया, मैं देखकरि आश्चर्यको प्राप्त भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मजलमयवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१३ ॥

चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः २१४.

वासनाक्षयप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! ब्रह्माका जगत् मैं देखौं तौ भी जलमय हो गया, जलते इतर कछु न भासै, सब शून्य ही भासै, दिशा कोऊ न भासै, न ऊर्ध्व न अधो न मध्य भासै, न कोऊ तत्त्व भासै, न कोऊ पर्वत भासै, संपूर्ण जल ही भासै, न कोऊ देवता न पशु पक्षी भासै, तब मैं ब्रह्मपुरीको देखत भया कि, क्या दशा है, जैसे प्रातःकालका

सूर्य अपनी प्रतिभाको पसारता है तैसे ब्रह्मपुरीको दृष्टि पसारिकै देखत भया, तब ब्रह्माजी मुझको परम समाधिविषे दृष्टि आया अरु अपर जो जीवन्मुक्त ब्रह्माका परिवार था सब पद्मासनकरि परम समाधि लगाइ बैठे, जैसे पत्थरके ऊपर मूर्तियां होवैं तैसे ही सब परमसमाधिविषे अचल बैठे देखे, जो संवेदन फुरणेते रहित स्थित हैं सो किंचन कौन हैं, चारों वेद मूर्तिधारी स्थित हैं, शुक्र अरु बृहस्पति अरु वरुण कुबेर, इंद्र,यम, चंद्रमा, अग्नि देवता इत्यादि ऋषीश्वर, मुनीश्वर जीवन्मुक्त जो थे तिन सबको मैं ध्यानविषे स्थित देखत भया, द्वादश सूर्य जो विश्वको तपाते थे सो पद्मासन बाँधकरि समाधिविषे स्थित हुए हैं, एक मुहूर्त-पर्य्यंत मैं इसी प्रकार देखत भया, जब एक मुहूर्त बीता तब सूर्य विना सब अंतर्धान हो गये, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने विद्यमान होती है अरु जागेते अभाव हो जाती है तैसे सब अंतर्धान हो गये, मेरे देखते देखते ब्रह्मपुरी शून्य वनकी नाईं हो गयी, जैसे पत्तन, राजमार्ग प्रलय हो जाते हैं, तैसे प्रलय हो गयी. हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं अरु जागेते अभाव हो जाते हैं, यह दृष्टांत तौ बालक भी जाने हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभवको छिपाते हैं सो मूर्ख हैं, मैं अनुभवकरि भी जानता हौं अरु स्मृति भी होती है अरु सुना भी है, जबलग निद्रा है तबलग स्वप्नकी सृष्टि भासती है, जागेते स्वप्नकी सृष्टिका अभाव होता है, तैसे जबलग ब्राह्मीकी वासना थी तबलग सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई तब सृष्टि कहां रहै, जब वासना नष्ट भई तब अंतवा-ह्क अधिभूत शरीर नहीं रहते. हे रामजी ! जब शुद्धमात्र पदते चित्त-शक्ति फुरती है तब पिंडाकार हो भासती है, जबलग वह शरीर है तबलग संसार उपजता भी है, नष्ट भी होता है, तैसे ब्रह्माकी सुषुप्ति-विषे जगत् लीन हो जाता है अरु जाग्रतविषे उत्पन्न होता है, काहेते जो ब्रह्माका शरीर सुषुप्तिविषे लीन होना इसीका नाम प्रलय है अरु जो कहिये इस शरीरके नाशका नाम महाप्रलय होवै तौ ऐसे नहीं. काहेते जो मृतक हुए शरीरका नाश होता है अरु बहुरि लोक भासता है ताते इसका नाम महाप्रलय नहीं अरु जो कहिये वह परलोक भ्रम-

मात्र है तैसे यह भी भ्रांतिमात्र है अरु जो कहिये परलोक भ्रममात्र है इसीका नाम महाप्रलय है तौ ऐसे नहीं, काहेते जो श्रुति स्मृति पुराण सब कहते हैं, जो महाप्रलयविषे रहता कछु नहीं, आत्मसत्ता ही रहती है अरु जो कहिये परलोक भ्रांतिमात्र है इसका नाम होना क्या है तौ श्रुतिशास्त्रका कहना व्यर्थ होता है अरु जो इनका कहना व्यर्थ होवै तौ इनके कहनेकरि ब्रह्माकार वृत्ति किसकी उत्पन्न न होवै अरु जो तू कहै जैसे अंगवाला अंगको सकुचाय लेता है तैसे स्थूल भूत सकुचि-करि अपने सूक्ष्म कारणविषे जाय लीन होते हैं, इसीका नाम महा-प्रलय है तौ ऐसे भी नहीं, काहेते जो सूक्ष्म भूतके रहते महाप्रलय नहीं होता अरु जो तू कहै संवेदन जो अज्ञान है, जिसविषे अहं फुरता है तिस अज्ञानका नाम महाप्रलय है तौ यह भी नहीं, काहेते जो मूर्च्छा-विषे इसका अज्ञान होता है, परंतु बहुरि सृष्टि भासती है अरु मृतक होती है सो बडी मूर्च्छा है, तिसविषे भी बहुरि पांचभौतिक शरीर भासते हैं अरु आगे जगत् भासता है, ताते इसका नाम भी महाप्रलय नहीं अरु जो तू कहै जबलग यह पांच भौतिक शरीर है, तबलग जगत है, इसका अभाव होवे तब महाप्रलय है तौ यह भी नहीं; काहेते जो शरीरको त्यागता है अरु उसकी क्रिया नहीं होती तौ पिशाच जाय होता है, इसका शरीर निरूप होता है अरु मनुष्य तब सब हो जाते हैं अरु क्षत्रिय ब्राह्मणकी संज्ञा नहीं रहती, ताते तू देख जो इस देहका नाम भी महाप्रलय नहीं अरु प्रमादकरिकै विपर्ययका नाम भी महाप्रलय नहीं, महाप्रलय तिसको कहते हैं जो सर्वका अभाव हो जावै अरु सर्वका अभाव तब होता है जब वासना क्षय हो जाती है, ताते वासनाक्षयका नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं, जैसे जबलग निद्रा है तबलग स्वप्नका जगत् भासता है, जब जागा तब स्वप्न जगत्का अभाव हो जाता है, तैसे जबलग वासना है तबलग जगत् है, जब वासनाका क्षय हुआ तब जगत्का अभाव होता है. हे रामजी! वासना भी फुरी नहीं, आभासमात्र है, अरु तू जो कहै भासता क्यों है, तौ जो कछु भासता है सो वही अपने आप भावविषे स्थित है. हे रामजी! भावते उत्थान होनेका नाम बंधन है अरु उत्थान

मिटनेका नाम मोक्ष है. हे रामजी ! नेत्रके खोलने अरु मूँदनेविषे भी कछु यत्न है अरु मुक्त होनेविषे यत्न कछु नहीं, जो वृत्ति बहिर्मुख हुई, तो बंधन हुआ अरु वृत्ति अंतर्मुख भयी तौ मुक्त भया, इसविषे क्या यत्न है, ताते निर्वासनिक सुषुप्तिकी नाईं स्थित होहु, जब अहं संवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्य हो भासता है, आगे जो इच्छा है सो करहु, जब अहं उत्थानते रहित होवैगा, तब परमनिर्वाणपदको प्राप्त होवैगा, जहां एक अरु दो कल्पना कोऊ नहीं, परमशांत निर्विकल्प पदको प्राप्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० वासनाक्षयप्रतिपादनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१४ ॥

पंचदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१५.

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! वह ब्रह्माजी अंतर्धान हो गया, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण हो जावै, जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदविषे निर्वाण हुआ तब द्वादश सूर्य बहुरि ब्रह्मपुरीको जलाने लगे, जब संपूर्ण ब्रह्मपुरी जलि गयी तब वह सूर्य भी ब्रह्माकी नाईं पद्मासन करिकै स्थिर भये, जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होता है तैसे द्वादश सूर्य भी निर्वाण हो गये. हे रामजी ! जब द्वादश सूर्य निर्वाण हुए तब समुद्र उछले, ब्रह्मपुरीको आच्छादि लिया, जैसे रात्रिविषे अंधकार नगरको आच्छादि लेता है तैसे ब्रह्मपुरीको आच्छादि लिया, बड़े तरंग उछले; पुष्कर मेघ भी तरंगकरि छेदे गये जलरूप हो गये. हे रामजी ! तब एक पुरुष आकाशते निकसा, सो मुझको दृष्टि आया, महा भयानक श्यामरूप उग्र आकाशको भी तिसने आच्छादि लिया, कृष्णमूर्ति मानो रात्रि कल्पपर्यंत इकट्ठी होकरि तिसका रूप आनि स्थित हुआ है अरु मुखते ज्वाला निकसती है अरु शरीरका बड़ा प्रकाश मानो कोटिसूर्य स्थित हैं, बिजलीका प्रकाश इकट्ठा हुआ है अरु तिसके पंच मुख हैं, दश

भुजा हैं अरु तीन नेत्र हैं, मानो तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं अरु हाथविषे त्रिशूल है अरु आकाशकी नाईं मूर्ति धारी है, जैसे क्षीरसमुद्रके मथनेको भुजा बड़ी करि विष्णुने शरीर धारा था अरु क्षीरसमुद्रको क्षोभाया था, तैसे नासिकाके पवनकरि समुद्रको क्षोभावत भया, जैसा आकाश बड़ा वपु है, तैसा ही स्वरूप धारा, मानो प्रलयकालके समुद्र मूर्ति धरिके स्थित हुए हैं, मानो सर्व अहंकारकी समष्टिता स्थित भयी है, मानो महाप्रलयकी वडवाग्नि मूर्ति धारिके आनि स्थित भयी है, मानो प्रलयकालके मेघ मूर्ति धारिके स्थित भये हैं. हे रामजी! मैं जानता भया कि, यह महारुद्र है, तिसके हाथविषे त्रिशूल है अरु तीन नेत्र हैं; पंच मुख हैं; ताते रुद्र है, ऐसे जानिकरि मैं प्रणाम किया. राम उवाच-हे भगवन्! उसका भयानक रूप क्या था अरु रुद्र किसको कहिये अरु बडा आकार क्या था? दश भुजा अरु पंच मुख क्या थे? तीन नेत्र क्या थे? हाथविषे त्रिशूल क्या था? अरु किसका भेजा आया था? क्या करता भया अरु कहां गया अरु एकला था अथवा अपर भी कोऊ साथ था अरु श्याम मूर्ति क्यों था? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! विषमविषे परिच्छिन्न जो अहंकार है, सो त्यागने योग्य है अरु समष्टि अहंकार सेवने योग्य है, सर्व आत्मप्रतीतिका नाम समष्टि अहंकार है, तिसका नाम रुद्र है अरु कृष्णमूर्ति इस निमित्त है जो आकाशरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता है तैसे उसविषे कृष्णता है अरु सर्व जो जीव अपने अहंकारको त्यागिकरि निर्वाण हुए, तिनकी समष्टिता होकरि रुद्ररूप भासे, इसीते उग्र था अरु पंच मुख ज्ञानइंद्रियोंके समष्टिता अरु दश भुजा, कर्म इंद्रियां, पंचमुखकी समष्टिता अरु राजस, तामस, सात्त्विक तीन गुण तीनों नेत्र हैं अथवा भूत भविष्य वर्तमान अथवा ऋग् यजु साम तीनों वेद नेत्र हैं अथवा मन बुद्धि चित्त तीनों नेत्र थे, ओंकारकी तीन मात्रा उनके नेत्र हैं, आकाशरूपी वपु था अरु त्रिलोकीरूपी हाथविषे त्रिशूल थे अरु चित्संवित्ते फुरा था, तिसीका भेजा आया था; बहुरि तिसीविषे लीन होवेगा, केवल आकाशरूप था अरु जो कछु करता भया सो सुन. हे रामजी! ऐसा जो

रुद्र था, मानो आकाशको पंख लगे हैं, सोई उड़ा है, तिसने नेत्र प्राणोंको खैंच लिये तब सर्व जल मुखविषे प्रवेश करने लगे, जैसे नदी समुद्रविषे प्रवेश करती हैं तैसे सब जल रुद्रविषे लीन भये, जैसे वडवाग्नि समुद्रको पान करि लेती है तैसे रुद्रने एक मुहूर्तविषे सब जलको पान करि लिया, कहूँ जलका अंश भी दृष्टि न आवे, जैसे अंधकारको सूर्य लीन करि लेता है, तैसे पान करि लिया जैसे अज्ञानीका अज्ञान संतके संगकरि नष्ट हो जाता है तैसे जलको पान करि लिया, केवल शुद्ध आकाश हो गया, न कहूँ पृथ्वी दृष्टि आवे, न अग्नि न वायु न कोऊ तत्त्व कहूँ दृष्टि आवे, एक आकाश ही दृष्टि आवे, जैसे उज्ज्वल मोती होता है तैसे उज्ज्वल आकाश दृष्टि आवे, अपर चारों तत्त्व कहूँ न भासैं, एक अधोभाग दृष्टि आवे, मध्य भाग आकाश सो रुद्र ही दृष्टि आवे अरु एक ऊर्ध्व भाग दृष्टि आवे, चौथा चिदाकाश दृष्टि आवे जो सर्वात्मा है, अपर कछु दृष्टि न आवे. हे रामजी ! रुद्र भी आकाशरूप था, आकार कोऊ न था, भ्रांतिकरिकै आकार भासता था जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे नीलता तरुवरे भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिकै आकार भासते हैं तैसे रुद्रका आकार दृष्टि आया, केवल आत्मा आकाशते इतर कछु न था,जैसे चिदाकाशविषे भूताकाश भ्रमकरिकै भासता है तैसे रुद्रका शरीर भासा, वह रुद्र सर्वात्मा था अरु आकाश होकरि भासा सो किंचन था.हे रामजी! आकाशविषे रुद्र निराधार भासा था, जैसे मेघ निराधार होते हैं तैसे निराधार दृष्टि आया था, श्रीराम उवाच–हे भगवन् ! इस ब्रह्मांडके ऊपर क्या है बहुरि तिसके ऊपर क्या है ? सो कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो ब्रह्मांडका आकाश है, तिसपर दशगुणा जल अवशेष है, जलके ऊपर दशगुणा अग्नि है, तिसके ऊपर दशगुणा वायु है, तिसके ऊपर दशगुणा आकाश है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह तत्त्व पृथ्वीके ऊपर स्थित हैं, जैसे माताकी गोदविषे बालक आनि स्थित होता है तैसे तत्त्व पृथ्वीके ऊपर हैं अरु पृथ्वी भागके आश्रय है. राम उवाच–हे भगवन् ! पृथ्वी

आदिक तत्त्व सहित ब्रह्मांड किसके आश्रय है? निराधार किसके आश्रय स्थित हुआ है? तिनका चलना ठहरना कैसे हुआ? नाश कैसे हुआ? यह कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! तू कहु आकाशविषे मेघ किसके आश्रय होते हैं? सूर्य, चंद्रमा किसके आश्रय होते हैं? जैसे यह संकल्पके आश्रय हैं तैसे ब्रह्मांड भी संकल्पके आश्रय है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तौ तू देखै, जो किसके आश्रय है संकल्पके ही आश्रय है क्यों? अरु संकल्प आत्माके आश्रय है, तैसे यह जगत् अरु तत्त्व भी आत्मसत्ताके आश्रय स्थित हैं अरु इनका ठहरना गिरना भी आत्माके आश्रय है, जैसे आदिचित्त स्पंद होकरि नीति हुई है तैसे ही है, इस प्रकार गिरना है, इस प्रकार ठहरना है, इस प्रकार इसका नाश होना है,इस प्रकार रहना है, तैसे ही परम स्वरूपते इतर कछु नहीं,केवल भ्रममात्र है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, चित्त संवित् ही जगदाकार हो भासती है,जैसे आकाशविषे नीलता भासती है तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जसे तलवारविषे श्यामता भासती है तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे मोती भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है अरु मिथ्या जगत्की संख्या करिये तौ नहीं होती, जैसे सूर्यकी किरणोंका आभास अरु रेतके कणकेविषे संख्या नहीं होती तैसे जगत्की संख्या नहीं होती अरु वास्तवते कछु बना नहीं, अजातजात है, जैसे स्वप्नविषे अनहोती सृष्टि भासती है तैसे यह जगत् भासता है, तातें दृश्यको मिथ्या जानकरि जगत्की वासना त्यागहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नाम पंचदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१५ ॥

षोडशाधिकद्विशततमः सर्गः २१६.

देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! रुद्र तौ बडा भयानकरूप मैंने देखा था अरु नेत्र बडे तेजकरि पूर्ण, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि यह तीनों नेत्र हैं अरु बड़ा भयानकरूप मानो महाप्रलयके समुद्र मूर्ति धारिकै स्थित हुए हैं, अरु रुंडकी माला कण्ठविषे धारी हुई ऐसा रुद्र स्थित था अरु तिसकी परछाया जो निकसै बडी अरु श्यामरूपी तिसको देखिकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, यहां सूर्य भी नहीं, अग्नि भी नहीं, अपर किसीका प्रकाश भी नहीं, यह परछाया किस प्रकार है अरु क्या है, ऐसे देखता था, जो परछाया नृत्य करने लगी, तब तिस परछायेते एक स्त्री निकसि आई, शरीर दुर्बल जैसा नाडी निकसी हुई दृष्टि आवै अरु बड़ा ऊंचा आकार, कृष्णवर्ण मानो अँधेरी रात्रि मूर्ति धारिकै स्थित भयी है, सुमेरु पर्वतकी नाईं आकार अरु तीन नेत्र, बडी भुजा, जिसकी ऊँची ग्रीवा मानो प्रलयकालके मेघ मूर्ति धारिकै आप ही स्थित भये हैं अरु गलेविषे रुद्राक्षकी माला अरु रुंडकी माला पडी हुई इत्यादिक विकराल स्वभाव तिसको देखत भया अरु जिसकी बडी भुजा अरु हाथविषे त्रिशूल, खड्ग, बाण, ध्वज, ऊखल, मूशल आदिक आयुध हैं, ऐसा भयानक आकार देखिकरि मैं विचार किया कि, काली भवानी है, तिसको जानकरि नमस्कार किया, अरु बड़ा श्याम आकार है जिसका, जैसे अग्निके जले हुए पर्वतके शिखर श्याम होते हैं तैसे श्याम आकार हैं अरु मस्तकविषे तीसरा नेत्र वड़वाग्निकी नाईं तेजवान् निकसा है, कबहूँ दो भुजा दृष्टि आवैं कबहूं सहस्र भुजा दृष्टि आवैं कबहूं अनंत भुजा दृष्टि आवैं, कबहूं एक एक भुजा दृष्टि आवै कबहूँ दो भुजा दृष्टि आवैं, कबहूँ कोऊ भुजा दृष्टि न आवै, कबहूं शिर पाद कोऊ दृष्टि न आवैं, एक बहुत जैसा भासै; इस प्रकार करिकै नृत्य करै, ज्यों ज्यों नृत्य करै त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्टि आवै, मानो आकाशको भी आच्छादित कर लिया है अरु दशों दिशा आकार साथ पूर्ण करी हैं,

नख शिखाकी मर्यादा कछु दृष्टि न आवै ऐसा आकार बढाया जब भुजाको हिलावै तब जानिये कि, आकाशको मापती है, पाताल पर्यंत चरण अरु आकाश जिसका शीश है अरु उदर तिसका पृथ्वी है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसका नाभिस्थान है, दशों दिशा तिसकी भुजा हैं, मानो प्रलयकालकी मूर्ति धारकरि स्थित भयी है अरु बड़े पर्वतकी कंदरावत् जिसकी नासिका है, लोकालोक पर्वत तिसकी दाढ हैं अरु कण्ठविषे नदियोंकी माला है, जो जलाती हैं अरु कण्ठविषे वरुण कुबेरादिक देवताके शिरकी माला हैं, पवन नासिकाके मार्गते निकसता है, तिसकरि सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं उडैं अरु ब्रह्मांडकी माला गलेविषे हैं, हाथविषे बहुँटे ब्रह्मांडरूपी भूषण हैं, कटिविषे ब्रह्मांडके घूँघरु तगडी हैं, जब नृत्य करे तब सब ब्रह्मांड नृत्य करै ही, जैसे पवनकरि पत्र नृत्य करते हैं तैसे सुमेरु आदिक नृत्य करैं, एक एक रोमविषे ब्रह्मांड है, जैसे तारागण वायुके आधीन हैं अरु कानविषे धर्म अधर्मरूपी मुद्रा हैं, वडे कान हैं अरु बडा मुख है, मानो संपूर्ण ब्रह्मांडको भक्षण करता है अरु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों स्थान हैं अरु स्थानविषे चारों वेद हैं अरु शास्त्रके अर्थरूपी दूध निकसता है अरु अपर भी सब जगत्की मर्यादा मुझको तिसीविषे दृष्टि आवै, हँसै अरु नृत्य करणेकर कोई ब्रह्मांड नृत्य करैं, अस्ताचल आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं नृत्य करैं, सब कछु विपर्यय होता दृष्टि आवै, तिसके शरीरविषे आकाश अधःको दृष्टि आवै अरु पृथ्वी ऊर्ध्वको दृष्टि आवै, तारामण्डल, सिद्ध, देवता, विद्याधर गंधर्व, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जंगम सब उसविषे दृष्टि आवैं, मानो संपूर्ण ब्रह्मांडोंका आदर्श है अरु भुजाके उछलनेकरि चंद्रमाकी नाईं नखका प्रकाश होवै, मन्दराचल, उदयाचल पर्वत कानविषे भूषण दृष्टि आवैं, हिमालय पर्वत बर्फके कणकेवत् दृष्टि आवै. हे रामजी! इस प्रकार देवीके शरीरमें मुझको अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं, कहूँ इकट्ठी, कहूँ भिन्न भिन्न दृष्टि आवैं, कहूँ एक ही जैसी चेष्टा करैं, कहूं भिन्न भिन्न चेष्टा करैं, मानो ब्रह्मांडरूपी रत्नका डब्बा है. हे रामजी! जब संकल्पसहित देखौं तब मुझको सृष्टि दृष्टि आवै, जब आत्माकी ओर देखौं तब केवल आत्मरूप ही भासै, अपर

कछु दृष्टि न आवै अरु संकल्प दृढ करिकै संपूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्टि आवै, ऐसे समर्थता किसकी दृष्टि न आवै जो नृत्य न करै, सब पर्वत तृणकी नाईं नृत्य करते दृष्टि आवैं, जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सब तिसविषे ही दृष्टि आवै, जो कछु क्रिया है सो तिसकरि ही होती दृष्टि आवैं सिद्ध, देवता, गंधर्व, अप्सरा विमानपर आरूढ फिरैं, नक्षत्रके चक्र फिरते दृष्टि आवैं, मानो ब्रह्मांड बहुरि उदय हुए हैं, जब आत्मदृष्टिकरि देखौं तब ब्रह्मस्वरूप भासै अरु संकल्प सृष्टिकरि जगत् भासै, वह चित्तकला जो संकल्परूप है, तिसविषे सब ही दृष्टि आवैं. हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्र, अग्नि, सूर्य, चंद्रमा आदि सब उसविषे दृष्टि आवैं, जैसे मच्छर वायुकरि उड़ते हैं तैसे अनंत सृष्टि उसके शरीरविषे उड़ती दृष्टि आवै, महा आश्चर्यको मैं प्राप्त भया, जो वह भैरव था अरु यह भैरवी इसकी शक्ति है; दोनों मुझको दृष्टि आवैं, बडे वपुधारी हैं, यह नित्यशक्ति सर्वात्मा है, परमात्माकी क्रियाशक्ति सर्व विश्वको अपने आपविषे जानै, जैसे तीर्थ समुद्र सब तरंगको अपनेविषे अपना आप जानता है तैसे सर्व ब्रह्मांडको अपनेविषे अपना आप जानती थी अरु सदाशिवने भी बडे अहंकारको धारा है, मानो सर्व ब्रह्मांडकी माला कंठविषे डारी है अरु यमादिक सब तिसकी मर्यादा है. हे रामजी ! इस प्रकार मैं रुद्र अरु काली भवानीको देखत भया, रुद्रके शिरपर जो जटा है, सो मोरके पंखकी नाईं है अरु कालीको मैं देखत भया नानाप्रकारके शृंग दमदमते आदि लेकरि शब्द करती हैं, बहुरि शब्द करती भई सो श्रवण कर, दिग्वंदिग्वं तुदिग्वंपच मना वह संमसप्रलय मिय तुय ॥ त्रि पंत्री त्रीलं त्रीषलुषलुमं षनुषंमुमं षषमष भ्रिगुही गुंहीगुंही उग्र मियुगं दलुमददारी मीतीतंदती. हे रामजी ! इस प्रकारके शब्द करती हुई मशाणोंविषे नृत्य करै. हे रामजी ! ऐसी देवी तुम्हारे सहाय होवैं, जो सर्वशक्ति परमात्मा है, सब ब्रह्मांड तिसके आश्रय क्षणविषे अंगुष्ठप्रमाण हो जावै, क्षणविषे बड़े दीर्घ आकारको धारै सब जगतविषे जो क्रिया होती है सो उसके आश्रय होती है, कहूँ उत्पत्ति होती है, कहूँ युद्ध पडे होते हैं, नानाप्रकारकी क्रिया तिसकी

देवीके आश्रय पडी होती है, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब होता है तैसे देवीविषे क्रिया होती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणे उ० देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनं नाम षोडशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१६ ॥

सप्तदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१७.
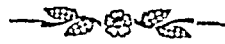
अंतरोपाख्यानवर्णनम्

राम उवाच-हे भगवन्! यह जो तुमने रुद्र अरु कालिकाका वर्णन किया है सो कौन थे? महाप्रलयविषे तौ रहता कछु नहीं, यह काली कौन थी? तिसके शरीरविषे तुमने सृष्टि कैसे देखी, महाप्रलय होकरि तिसके शरीरविषे सृष्टिने कैसे प्रवेश किया अरु उसके हाथविषे बहुरियादिक शस्त्र क्या थे? कहाँते आई थी अरु कहां गई अरु तिसका आकार क्या था? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! न कोऊ रुद्र है, न काली है, न कोऊ पुरुष न कोऊ स्त्री है, न कोऊ नपुंसक है, न पुरुष मिलिकरि कछु हुआ है, न ब्रह्मांड है, न पिंड है, केवल चिदाकाश है, संकल्पते उपजे आकार भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे आकार भासते हैं, तैसे वह आकार भी भासै, वास्तवते केवल चिदाकाश ज्योंका त्यों है. हे रामजी! आत्मपद कैसा अनंत चेतन है, सत्य प्रकाशरूप है अविनाशी है, अपने आप स्वभावविषे स्थित है अरु रुद्रदेवका आकार ज्यों भासा था, सो चेतन आत्मा ही ऐसे होकरि भासा था, कोऊ अपर आकार न था जैसे स्वर्ण ही भूषण होकरि भासता है, तैसे परमदेव चिदाकाश ऐसे होकरि भासा था, काहेते जो चेतनस्वरूप है, जैसे मधुरता गन्नेका स्वरूप है तैसे आत्माका चेतन स्वरूप है. हे रामजी! चेतनसत्ता अपने स्वरूपको नहीं त्यागती अरु आकार होकरि भासती है, सदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे गन्नेके रसविषे मधुरता न होवै, तौ उसको रस नहीं काहेते तैसे आत्मसत्ताविषे चेतनता न होवै तौ चेतन कोऊ न कहै, जो आत्मा चेतनताको त्यागै तौ परिणामी होवै, तब चेतन कहिये, परंतु सदा अपने आप स्व-

भावविषे स्थित है, किसी अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त भया, इसीते कहा है, जो कछु भासता है सो आत्माका किंचन है. हे रामजी ! जैसे गन्नेके रसविषे मधुरता होती है तैसे आत्माविषे चेतनता है, चेतनमात्रविषे एक चैत्यताका लक्षण रहता है, चेतनतारूप इसकरि यह जगत् अभावरूप लखाता है अरु जो शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तका उत्थान नहीं होता तौ जगद्भाव नहीं लखाता अरु आत्मसत्ता दोनों अवस्थाविषे सदा ज्योंकी त्यों है, जैसे वायु स्पंद होता है, तब स्पर्शरूप उसका लक्षण भासता है, अरु जब निस्पंद होता है तब उसविषे शब्द कोऊ नहीं प्रवेश करि सकता अरु वायु दोनों अवस्थाविषे तुल्य है,तैसे शुद्ध चेतनविषे किसी शब्दका प्रवेश नहीं, चेतनता भावविषे है अरु आत्मसत्ता सदा तुल्य है, ताते वास्तव यह जगत् ही नहीं. हे रामजी ! आदि, मध्य, अंत, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्य, असत्य, प्रकाश, अंधकार, पंडित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नाम, कर्म, रूप, अवलोकन, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, बंध, मोक्ष, जड, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,आकाश, आना, जाना, जगत,अजगत,है नहीं, बढना,घटना,मैं, तू, वेद, शास्त्र, पुराण, मंत्र, अकार, उकार, मकार, जय नाम आदिक स्थावर, जंगम जगत् क्रिया सब ब्रह्मस्वरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग, बुद्बुदे, आवर्त सब जलरूप हैं तैसे सब ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मते इतर कछु वस्तु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत भासते हैं सो अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे यह जगत् ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणैं जलरूप होकरि भासती हैं तैसे आत्मसत्ता जगतरूप होकरि भासती है. हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्र, वरुण, कुबेर, यम, चन्द्रमा,सूर्य,अग्नि,जल,पृथ्वी,वायु,आकाश आदिक जेते कछु शब्द हैं सो सब ब्रह्मसत्ता ही ऐसे होकरि स्थित भयी है, परंतु सदा अपने आपविषे ज्योंकी त्यों है, कदाचित परिणामको नहीं प्राप्त भयी, सो सत्ता सर्वकी आत्मा है, जैसे समुद्र अपने तरंगभावको त्यागै तब अपने सौम्यभावविषे स्थित होवै तैसे ब्रह्मसत्ता फुरणेको त्यागै तब अपने स्वभावविषे स्थित होवै, सो अनामय है, अर्थ यह कि, दुःखते

रहित है, परम शांतिरूप है, अनंत है, निर्विकार है, जब इस प्रकार बोध होवै तब तिस ब्रह्मसत्ताको प्राप्त होवै अरु बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही है, जैसे जल अरु समुद्रकी संज्ञा कही है अरु तरंग शब्द कहने करि विलक्षण भासता है जब जल तरंगबुद्धिको त्यागै तब केवल समुद्ररूप है,तैसे यह जीव जब अपने जीवत्वभावको त्यागै,तब आत्म-रूप समुद्रको प्राप्त होवै, जीवत्वका अर्थ यह जो जब दृश्यका संबंध त्याग करैगा तब आत्मा होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१७ ॥

अष्टादशाधिकद्विशततमः सर्गः २१८.

पुरुषप्रकृतिविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तुझको जो चिदाकाश कहा है सो परम चिदाकाश है अरु सदा अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! शुद्ध चिदाकाश मैं तेरे ताईं कहा है सोई यह रुद्ररूप है,सोई नृत्य करता था, तहां आकार कोऊ न था, केवल चिद्घन सत्ता थी, सोई ऐसे होकरि किंचन होती थी. हे रामजी ! जब आत्मदृष्टिकरि देखता था तब मेरे ताईं चिदाकाशरूप ही भासा था. हे रामजी ! मेरे जैसा होवै सोई तैसा रूप देखै, अपर नहीं देखि सकै. हे रामजी ! जिसका नाम कल्पांत कहाता है सोई रुद्र अरु भैरव है, वह कल्पांतकी मूर्ति नृत्य करिकै अंतर्धान हो गयी अरु वास्तवते क्या रूप था ? मायामात्र था, चेतनस-त्ताके आश्रय पडे नाचते हैं. हे रामजी ! जैसे सोनेविषे भूषण हैं परंतु सोने विना नहीं होते तैसे चेतनता किंचनकरि जगत् भासता है, बहुरि वही प्रमादकरि अधिभूत हो जाता है अरु वास्तवते शुद्ध चिदाकाशरूप है, चेतनताकरिकै वही जगत्‌रूप हो भासता है. राम उवाच-हे भगवन् ! प्रथम तुम आत्मतत्त्व अद्वैत कहा, यह जगत् प्रमादकरिकै नाम रूप कल्पित है अरु जो है तौ कल्पके अंतविषे नाश हो जात

है, अद्वैतसत्ता रहती है, बहुरि कहा, चैत्यताकरिकै जगत्‌रूप भासता है, सो अद्वैतविषे चैत्यता कैसे हुई है अरु चेतनेवाला कौन हुआ ? प्रलयके अनंतर काली क्योंकरि भासी ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! न कोऊ चेतन है, न कोऊ चैत्यता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, चेतन घन है परम निर्मल है अरु शांतरूप है अरु शिवतत्त्व भी उसीको कहते हैं, वही शिवतत्त्व रुद्र आकारको धारे हुए दृष्टि आया है, दूसरा कछु नहीं, केवल परम चिदाकाश है, सोई चिदाकाश आकार हो भासता है अरु आकार कछु हुआ नहीं, न भैरव है, न भैरवी है, न काली है, न यह जगत् है, सब मायामात्र है, जैसे स्वप्नविषे आत्मसत्ता चैत्यताकरिकै जगत्‌रूप हो भासती है, स्वरूपते न कछु चैत्यता है, न जगत् है, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है तैसे यह जगत् भी जान, कछु अपर हुआ नहीं अद्वैतसत्ता ही है, तिसविषे चैत्य अरु चेतनेहारे मैं तुझको क्या कहौं ? सब वृत्तिकरिकै भासते हैं, आत्माविषे कछु इनका उपजना नहीं भया, केवल स्वच्छ चिदाकाश है, हमको तौ सदा वही स्वरूप भासता है, अज्ञानीको नाना प्रकारका जगत् भासता है अरु आत्मा सदा एकरस है, चिंतन करिकै तिसविषे आकार भासते हैं, भैरव अरु काली सब निराकार हैं, भ्रांतिकरिकै आकार भासते हैं, जैसे मनोराज्यविषे युद्ध भासते हैं, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं, सो अनहोते संकल्प विलासते हैं तैसे चिदात्माविषे यह जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं तैसे यह आकार भासते हैं. हे रामजी ! यह जो जगदिग्प्रलय महाप्रलयका शब्द हैं तिनका नाश करने अर्थ तुझको कहता हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, सो चेतनताका अभाव कबहूँ नहीं, अपने आपविषे स्थित है अरु किंचन है, जैसे सूर्यकी किरणैं किंचनरूप होती हैं, इनविषे जल भासता है तैसे चैतन्यका किंचन जगत् भासता है, सोई महाप्रलयविषे रुद्र अरु भैरवी हो भासती है, न कछु रुद्र है, न काली है, सर्व आत्मा ही है. हे रामजी ! जो कछु कहना सुनना होता है, वाच्य वाचककरि कहता है, आत्माविषे कहना अरु सुनना कछु नहीं, वही चिदाकाश संकल्पकरिकै रुद्र

नृत्य करता है, जैसे स्वर्ण भूषण होकरि भासता है तैसे चिदाकाश संकल्पकरिकै आकार होकरि भासता है, दूसरा कछु बना नहीं; मैं तू अरु जगत्, चैत्य, अचैत्य सब वही रूप है, उसविषे कोऊ शब्द फुरा नहीं जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारके शब्द भासते हैं सो कछु बास्तव नहीं, पत्थरकी नाई मौन हैं, तैसे जाग्रत् जगत्विषे भी जेते कछु शब्द होते हैं सो सब स्वप्न हैं, कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपने आप भावविषे स्थित है, जहां न एक है, न द्वैत है, न सत्य है, न असत्य है, न चित् है, न चैत्य है, न मौन है, न अमौन है, न कोऊ चेतनेवाला है, चैत्यके अभाववत् है सो क्या है? केवल अचैत्य चिन्मात्र आत्मसत्ता है, निर्विकल्परूप है. हे रामजी! सबते बड़ा शास्त्रका सिद्धांत यही है, तिस दृष्टि मौनविषे तुम स्थित होहु॥ हे रामजी! सर्व सिद्धांतकी समता यही है कि, निर्विकल्प होना, जिस निर्विकल्प समाधिविषे स्थित होना यह सबका सिद्धांत है, जैसे पत्थरकी शिला परममौन होती है तैसे चैत्यते रहित होना अरु जो कछु प्रत्यक्ष आचार आनि प्राप्त होवै तिसविषे प्रवर्तना, सदा आत्मनिश्चय रहना इसका नाम परम मौन है, सब क्रिया होती रहै अरु अपनेविषे कछु न देखना, जैसे नट स्वांग ले आता है, तिसके अनुसार विचरता है परंतु निश्चय उसका आदि ही वपुविषे होता है अरु चलायमान नहीं होता तैसे जो कछु अनिश्चित आनि प्राप्त होवै तिसको यथाशास्त्र करना परंतु अपने निर्गुण निष्क्रिय स्वरूपते चलायमान न होना, अद्वैत स्वरूपविषे स्थित रहना. राम उवाच-हे भगवन्! रुद्र क्या था अरु काली शक्ति क्या थी अरु उसके अंग जो बढते घटते थे सो क्या थे? अरु नृत्य करना क्या था, वस्त्र क्या थे? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! शिवतत्त्व ही आकार होकरि भासता है, अपर आकार कोऊ नहीं, सो कैसा शिवतत्त्व है? चिन्मात्र है, अमल है, विद्या अविद्याके कार्यते रहित, शांत, अवाच्यपद है, यह संज्ञा भी संकल्पविषे तुझको कही है, आत्मवेत्ता आत्मपदको अवाच्यपद कहते हैं, तथापि कछु

मैं कहता हौं. हे रामजी! केवल आत्मत्वमात्र चिदाकाश है सोई शिव-भैरव हैं; तिसके चमत्कारका नाम चिच्छक्ति है, तिसीका नाम काली है. तिसके विषे अरु आत्माविषे अरु शिवरूपविषे अरु काली-विषे भेद कछु नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं तैसे चित्तकला अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे पवन जब निस्पंद होता है, तब तिसका लक्षण नहीं होता, अवाचकरूप होता है अरु जब स्पंद होता है तिसका लक्षण भी होता है, तिसविषे शब्द प्रवेश करता है, तैसे चित्तशक्तिकरि तिसका लक्षण होता है, आगे तिसके अनेक नाम हैं, तिसीका नाम स्पंद है, इच्छा है, तिसीको चैत्योन्मुखत्वकरि वासना कहते हैं, इसीके स्वादकी इच्छाते जब चित्त संवित्‌विषे वासना फुरी, तब तिसका नाम वासना करनेवाला वासक कहाता है, बहुरि आगे दृश्य होती है, जब त्रिपुटी हुई वासना वासक वास, तब वासकको जीव कहते हैं, जीवत्वभाव लेकरि स्थित होती है, जब यह इच्छा इसको होती है कि मैं जीव हौं, मेरा नाश कदाचित् न होवै, इस इच्छाकरि जीव कहता है, ऐसी संज्ञा चिच्छक्तिकी होती है, सो स्पंदविषे होती है अरु शिवतत्त्व सो अफुर है, अचैत्यश-क्तिविषे फुरणेकी नाईं स्थित है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल है नहीं, हुएकी नाईं भासता है, तैसे यह जगत् है नहीं अरु हुएकी नाईं भासता है, तिसविषे यह संज्ञा देते हैं, काली जो परमात्माकी क्रिया-शक्ति है, सो प्रथम तौ कारणरूप प्रकृति है, सब तिसते है, इसीते प्रकृतिरूप है, विकृति नहीं, अर्थ यह किसका कार्य नहीं अरु मह-दादिक पंचभूत महत्तत्त्व अरु बुद्धि अहंकार सप्त प्रकृति विकृति है अर्थ यह, जो कार्य भी हैं, कारण भी हैं. कार्य आदिक देवीके हैं अरु कारण षोडश हैं; पंच ज्ञानेंद्रियां, पंच कर्मेंद्रियां, पंच प्राण, एक मन इनके कारण सप्तदश हैं अरु षोडश हैं सो विकृत हैं, अर्थ यह कि कार्यरूप हैं, कारण किसीका नहीं अरु पुरुष है जो परमात्मा, सो अद्वैत अचिन्त्य चिन्मात्र है; न किसीका कारण है, न कार्य है, अपने आपविषे स्थित है, ताते जेते कछु द्वैतकलना हैं, कारण कार्य-

रूप सो सब चित्तशक्तिविषे स्थित हैं, जब यह निस्पंद होती है, तब शिवपद तत्त्वविषे निर्वाण हो जाती है, कारणकार्यरूपी भ्रम सब मिटि जाता है, केवल आकाशवत् शेष रहता है, सो शुद्ध है, अद्वैत है, अचैत्य चिन्मात्र सदा अपने आप भावविषे स्थित है, तिसकी क्रियाशक्ति स्पंदरूप एती संज्ञा है प्रथम तौ सबका कारण रूप प्रकृति है अरु सोख है, अर्थ यह जैसे बडवाग्नि समुद्रको सुखावती है, तैसे ही जगत्को सुखाती है अरु सिद्धि है अर्थ यह कि सिद्ध आश्रयभूतकरि सेवते हैं अरु जयंती है अर्थ यह कि, जय है जिसकी अरु चंडिका है, अर्थ यह कि, जिसके क्रोधकरि जगत् प्रलय होती है अरु भय पाता है अरु वीर्य है, अर्थ यह कि, जिसका अनंत वीर्य है अरु दुर्गा है, अर्थ यह कि, इसका रूप जानना कठिन है अरु गायत्री है, अर्थ यह कि, जिसके पाठकरि संसारसमुद्रते रक्षा होती है अरु सावित्री है, अर्थ यह कि, जगत्की पालना करती है अरु कुमारी है, अर्थ यह कि, कोमल स्वभाव है अरु गौरी है, अर्थ यह कि, जिसके गौर अंग हैं अरु शिवा है, अर्थ यह कि जिसका शिवके डावे अंगविषे निवास है अरु विजया है, अर्थ यह कि, सब जगत्को जीति रही है अरु स्वशक्ति है, अर्थ यह कि, अद्वैत आत्माविषे जिसने विलास रचा है अरु इंद्र सारा है, अर्थ यह कि, उकार है इंद्र आत्मा तिसका सार अर्धमात्रा है, तीनों मात्रा अकार उकार मकारका अधिष्ठान है. हे रामजी! राजसी, तामसी, सात्त्विकी तीन प्रकारकी क्रिया होती हैं, सो इसीते होती हैं, यह सब संज्ञा क्रियाशक्तिकी कही है, अब शस्त्र अरु बढना घटना तिसका सुन. हे रामजी! नित्य जो करती थी सो क्रिया है, सो क्रिया सात्त्विकी राजसी तामसी तीन प्रकारकी है, मुसल जो था सो ग्राम पुर नगर हैं, अंग तिसके सृष्टि है, जब शिवते व्यतिरेक होती थी, तब अंग बहुत हो जाते थे अरु जब शिवकी ओर आती थी, तब सृष्टिरूप अंग थोरे हो जाते थे अरु जब शिवको आय मिलती थी तब शिव ही होती थी, सृष्टिरूपी अंग कोऊ न रहते थे, यह तो आत्माकी काली शक्तिकी क्रियाका वर्णन तुझको सुनाया है, अब शिवका वर्णन सुन, वाणीते अतीत है, तथापि

कछु कहता हौं परम शुद्ध है, निर्मल अच्युत है, तिसविषे कछु हुआ नहीं, क्रियाशक्तिके फुरणेकरि जगत् हो भासता है, जब अपने अधिष्ठानकी ओर देखता है तब अपना स्वरूप दृष्टि आता है, क्रियाशक्ति अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, काहेते कि आकाशका अंग शून्यता है, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्निका रूप उष्णता है तैसे आत्माका स्वभाव चिच्छक्ति है अरु इसका नाम काली है, जो कृष्णरूप है, जैसे आकाश ऊर्ध्वको श्याम भासता है, तैसे यह आकाशवपु है, जैसे आकाश निराकार है तैसे काली निराकार श्यामा भासती है, आकाशकी नाईं इसका वपु है ताते इसका नाम कृष्णवपु है अरु काली जगत्के नाशके अर्थ है, सो जब स्वरूपकी ओर आती है तब जगत्का नाश करती है. हे रामजी ! स्पंदशक्ति जबलग शिवते व्यतिरेक है तबलग जगत्को रचती है, जहां यह है तहां जगत् है, जगत्ते विलक्षण नहीं रहती, जैसे जहां सूर्यकी किरणें हैं, तहां जलभास होता है, किरणें विना जलाभास नहीं रहता तैसे स्पंदशक्ति जगत् विना नहीं रहती, जैसे आकाशके अंग आकाश हैं तैसे इसके अंग जगत् हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग समुद्ररूप हैं तैसे जगत् इसका रूप है अरु यह शक्ति चिदाकाश है, व्यतिरेक नहीं, जब यह फुरती है तब जगदाकार हो भासती है, जब शिवकी ओर आती है तब शिवरूप हो जाती है, जगत्का भास कोऊ नहीं रहता. ताते हे रामजी ! तुम्हारी चिच्छक्ति तुम्हारी ओर आवै तब जगद्भ्रम मिटि जावै, इस चिच्छक्तिने जगद्भ्रम रचा है, शिव पूजा है सो निर्मल शांतरूप है, अजर अमर है, अचैत्य चिन्मात्र है, तिसविषे कछु क्षोभ नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है. राम उवाच–हे भगवन् ! तुमने जो कालीके अंगकी सृष्टि देखी सो आत्माविषे सत्य है अथवा असत्य है सो कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह काली देवी आत्माकी क्रियाशक्ति है, अर्थ यह है कि, जो फुरण शक्ति है तिसकरिकै आत्माविषे सत्य है अरु वास्तवते आत्माविषे कछु नहीं, मिथ्या है, जैसे तू मनोराज्यकरिकै अपनेविषे दूसरा चितवहि वह कछु वस्तु नहीं

परंतु तिस कालविषे सत्य भासता है तैसे जेती कछु सृष्टि है सो आत्मा-विषे सत्य कोऊ नहीं, परंतु चिच्छक्तिकरि बसती दृष्टि आती है, जैसे कछु विधिनिषेध पदार्थ हैं, आकाश, पर्वत, समुद्र, वन, जगत्, तीर्थ, कर्म, बंध, मोक्ष, गुरु अरु शास्त्र युद्धशस्त्र आदिक जो भासते हैं, सो सब चिदाकाश ब्रह्मरूप हैं, वास्तव इनका होना ब्रह्मते भिन्न नहीं, सर्व प्रकार सर्वदा काल आत्मा अपने आपविषे स्थित है, शुद्ध अद्वैत निराकार है, निर्विकार ज्योंका त्यों है, जगत् तिसविषे कोऊ नहीं उपजा, सब जगत् आत्माविषे क्रियाशक्ति रची है, सो मायाकालविषे सत्य है, वास्त-वते कछु नहीं, जैसे किसी पुरुषको स्वप्नविषे सृष्टि भासती है तिसके शरीरको कोऊ हिलावे तौ वह नहीं जागता, जो कछु सृष्टि होती तौ हिलावनेकरि कोऊ स्थान गिरि पडता है, इसीते नाश किसीका नहीं होता, वास्तव कछु नहीं. हे रामजी! वह सृष्टि उसके चित्तस्पंदविषे स्थित है, प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है, परंतु जबलग निद्रा है, तबलग सृष्टि है, जब निद्रा निवृत्त भयी तब स्वप्नसृष्टि नहीं भासती, तैसे यह सृष्टि कछु वास्तव नहीं, सो अज्ञानकरिके चिच्छक्तिविषे भासती है. हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो चित्तके फुरणेविषे भासते हैं, जिसका संकल्प शुद्ध होता है, तिसके मनोराज्यकी सृष्टि, देश कालकरि प्रत्यक्ष आनि होती है तौ संकल्परूप होती है, बना कछु नहीं, जब संकल्प फुरता है तब संकल्पके अनुसार सृष्टि भासती है, ताते संकल्परूप हुई, क्यों अदृष्ट पदार्थ होता है, जो उसकी सत्यता हृदयविषे होती है, तब इसका अर्थ हृदयविषे अनुभव होता है जैसे परलोक अदृष्ट है, जब उसकी सत्यता हृदयविषे होती है, तब उसका राग द्वेष हृदयविषे फुरता है, काहेते जो संकल्पविषे उसका भाव खडा है, तैसे जबलग चित्तस्पंद फुरता है, तब-लग जगत् सब खडा है, जब चित्त निस्पंद होता है तब जगत्की सत्यता नहीं भासती. हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है सो सर्व क्रिया-शक्तिने आत्माविषे रचा है, जबलग यह काली क्रियाशक्ति शिवते व्यति-रेक होती है, तबलग नाना प्रकारके जगत् रचती है अरु क्षोभको प्राप्त होती है अरु जब शिवकी ओर आती है तब शांतरूप हो जाती है, बहुरि

प्रकृतिसंज्ञा इसकी नहीं रहती, अद्वैत तत्त्वविषे अद्वैतरूप हो जाती है, जैसे जबलग पवन चलता है, तब शीत उष्ण सुगंध दुर्गंध बडा छोटा संज्ञा होती है अरु जब ठहरता है, तब कहा नहीं जाता कि ऐसा है, अथवा ऐसा है तैसे जबलग चिच्छक्ति स्पंदरूप होती है, तबलग जगत्को रचती है अरु प्रकृत कारणरूप कहाती है, तिसविषे दो प्रकार शब्द होते हैं, विद्या अरु अविद्यारूप सो पड़े निकसते हैं. हे रामजी! जो कछु कहना होता है, सो स्पंदरूप जो चित्रलेखा है, तिसविषे है अरु जब शिवतत्त्वविषे अंकुर होती है; तब अद्वैतरूप हो जाती है, तहाँ किसी शब्दकी गम नहीं. हे रामजी! शिव क्या है अरु शक्ति क्या है? सो सुन. जेते कछु जीव हैं, सो शिवरूप हैं अरु इनके जो चित्तका फुरणा है, सो काली कहिये, चित्तशक्ति कहिये, जबलग इच्छाकरि चित्तशक्ति बाहिर फुरती है तबलग भ्रमका अंत नहीं आता, नानाप्रकारके विकारका अनुभव होता है, शांत नहीं होता अरु जब चित्तशक्ति उलटिकरि अधिष्ठानको देखती है, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, परम शांतिको प्राप्त होता है. हे रामजी! आत्मा अरु चित् संवित्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वायुको स्पंद निस्पंदविषे भेद कछु नहीं, परंतु स्पंद होता है तब जानता है अरु निस्पंद होता है, तब नहीं जानता, तैसे चित् संवित् जब फुरता है तब जानता है अरु नहीं फुरता तब नहीं जानता अरु जानना न जानना दोनों नहीं रहता. हे रामजी! जबलग इच्छाशक्ति शिवकी ओर नहीं देखती तबलग नानाप्रकारकी नृत्य करती है अर्थ यह कि जगत्को रचती है अरु जब शिवकी ओर देखती है तब इसको नृत्यविरस हो जाता है अरु सब अंग इसके सूक्ष्म हो जाते हैं. हे रामजी! इस कालीका जो आकार था सो अप्रमाण प्रमाणविषे आता न था अरु शिवकी ओर देखनेते सूक्ष्म हो गया, प्रथम पर्वतसमान भया, बहुरि निकट आई तब ग्रामके समान भया बहुरि वृक्षके समान भया बहुरि निकट आई तब सूक्ष्म आकार भया जब शिवके साथ मिली तब शिवरूप होगई इसका जो विलास है सो शून्य हो जाता है अरु

परम शांत शिवपदको प्राप्त होती है. श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी काली शक्ति है,सो तिसको मिलिकारि शांत कैसे भई? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! देवी परमात्माकी इच्छाशक्ति है अरु जगन्माता इसका नाम है जबलग शिवतत्त्वते व्यतिरेक होती है तबलग जगत्को रचती है जब अपने अधिष्ठानकी ओर आती है जो नित्यतृप्त है अरु अनामय है निर्विकार है परमशांतरूप द्वैतभावते रहित है तब परमशांतिको प्राप्त होती है प्रकृतिसंज्ञा इसकी जाती रहती है जैसे नदी जबलग समुद्रको नहीं प्राप्त भई तबलग दौड़ती है अरु शब्द करती है जब समुद्रको मिली तब शब्द करना अरु दौड़ना नष्ट हो जाता है अरु नदीसंज्ञा भी नहीं रहती समुद्रको मिलिकारि परम गंभीर समुद्ररूप हो जाती है. तैसे जबलग चित्तशक्ति शिवते व्यतिरेक होती है, तबलग जगद्भ्रमको रचती है, जब शिवतत्त्वको मिली तब शिवरूप हो जाती है अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है. हे रामजी! जब यह चित्तशक्ति शिवपदविषे लीन हो जाती है, तब प्रथम जो देह इंद्रियांसाथ तद्रूप भई थी, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे आपको सुखी दुःखी मानती थी अरु रागद्वेषकारि जानती थी, जो नित्यतृप्त अनामय पदके मिलेते सुखदुःखते रहित होती है, काहेते जो अनात्मदेह इंद्रियोंकी तद्रूपता अभाव हो जाती है अरु आत्मतत्त्वसाथ तद्रूप होती है, जैसे पत्थरकी शिलासाथ मिलिकारि खड्गकी धारा तीक्ष्ण होती है तैसे चित्त संवित् जब आत्मपदविषे मिलती है, तब एक अद्वैतरूप हो जाती है, आत्मपदके स्पर्श कियेते अनात्मभावका त्याग करती है, जैसे लोहा पारसके परसते स्वर्ण हो जाता है, बहुरि लोहा नहीं होता,तैसे यह वृत्ति अनात्मभावको नहीं प्राप्त होती अरु यह चित्तकला तबलग विषयकी ओर धावती है, जबलग अपने वास्तव स्वरूपको नहीं प्राप्त भई, जब अपने वास्तव स्वरूपको प्राप्त होती है, तब विषयकी ओर नहीं धावती, जैसे जिस पुरुषको अमृत प्राप्त भया है अरु उसके स्वादका अनुभव भया है, तब वह नीम पान करनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसको आत्मानंद प्राप्त भया सो विषयके सुखकी इच्छा

नहीं करता. हे रामजी ! यह संसारभ्रम चित्तसंवितविषे दृढ सत्य होकरि स्थित भया है अरु संसारके सुखका त्याग नहीं करि सकता, जब आत्मसुख प्राप्त होवैगा, तब त्यागि देवैगा, जैसे जिस पुरुषको जबलग पारस नहीं प्राप्त भया तबलग अपर धनको त्यागि नहीं सकता, जब पारस प्राप्त भया, तब तुच्छ धनका त्याग करता है, बहुरि यत्न नहीं करता, तैसे जब इसको आत्मानंद प्राप्त होता है, तब विषयके सुखका त्याग करता है अरु पानेका यत्न नहीं करता. हे रामजी ! भँवरा तबलग अपर स्थानविषे भ्रमता है, जबलग कमलकी पंक्तिको नहीं प्राप्त भया, जब पंक्तिको प्राप्त भया, तब अपर स्थानको त्याग देता है, तैसे चित्तशक्ति जब आत्मपदविषे लीन भयी तब किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करती, निर्विकल्प पदको प्राप्त होती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० पुरुषप्रकृतिविचारो नाम अष्टादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१८ ॥

ऊनविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २१९.

अनन्तजगद्वर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! अब पूर्वका प्रसंग बहुरि सुन जब काली नृत्यकरि निर्वाण हो गई, तब शिव एकला ही रहा, एक रुद्र ही मुझको दृष्टि आवै अरु दो खंड आकाशके दृष्टि आवैं, एक अधोभाग, एक ऊर्ध्वभाग, अपर कछु दृष्टि न आवै, तब रुद्रने नेत्रको पसारिकै दोनों खंड देखे, जैसे सूर्य जगतको देखता है, तैसे देखकरि प्राणको अंतर खैंचत भया, तब ऊर्ध्व अध दोनों खंड इकट्ठे हो गये, तब ब्रह्मांडको अंतर्मुख पाय लिया, एक शिव ही रह गया, अपर कछु दृष्टि न आवै. हे रामजी ! जब एक क्षण व्यतीत भया तब रुद्र बडे आकारको धरे हुए सो ब्रह्मांडको भी लंघ गया, सो एक वृक्षके समान हो गया, बहुरि अंगुष्ठमात्र शरीर हो गया बहुरि एक क्षणविषे सूक्ष्म अणु जैसा हो गया, बहुरि रेतीके कणकेते भी सूक्ष्म हो गया, बहुरि, नेत्रकारि दृष्टि न आवै,

दिव्य दृष्टिकरि मैं देखता रहा, बहुरि वह भी नष्ट हो गया, केवल चिदाकाश ही शेष रहा, अपर दूसरी वस्तु कछु भासै नहीं, जैसे वर्षाकालके मेघ शरत्कालविषे नष्ट हो जाते हैं,तैसे रुद्र भी नष्ट हो गया. हे रामजी! तिस कालविषे मुझको तीनों इकट्ठे शरण रहे एक देवी ब्रह्माकी शक्ति, दूसरी काली शक्ति, तीसरी शिला, तब मैं विचार किया कि, यह स्वप्न नगरवत् आश्चर्य था,अपर कछु नहीं तब क्या देखौं कि स्वर्णकी शिला ही पडी है, यह श्रेष्ठ शिलाके कोशविषे स्थित थी, तब मैं विचार किया कि, इस सृष्टि शिलाके एककोशविषे अपर सृष्टि भी होवैगी, काहेते जो सर्व वस्तु सर्व प्रकार सर्व ठौर पूर्ण हैं, ताते इसविषे अपर सृष्टि भी होवैगी. हे रामजी! इसविषे मैं सृष्टिको देखने लगा, तब नानाप्रकारकी सृष्टि देखी, जब बोधदृष्टिकरि देखौं तब सर्व ब्रह्म भासै, अरु संकल्पदृष्टिकरि देखौं तब आत्मरूपी आदर्शविषे अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं,जब चर्मदृष्टिकरि देखौं तब शिला ही पडी है,इसप्रकार मैं शिलाकोशविषे चला,घास तृणविषे सृष्टि भासै, पत्थर विषे फलफूलविषे अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं अरु निःसंकल्प आत्मदृष्टिकरि देखौं तब अद्वैत आत्मा ही भासै. हे रामजी! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखता भया, कहूँ ऐसी सृष्टि भासै कि, ब्रह्मा उपजा है अरु रचना रचनेको समर्थ हुआ है, कहूँ ब्रह्माने चंद्रमा सूर्य उपजाये हैं अरु काली मर्यादा करी है, अपर कोऊ नहीं उत्पन्न भया, कहूँ संपूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाये हैं अरु प्राण नहीं हुए, कहूँ समुद्र नहीं उपजे कहूँ आचारसहित सृष्टि दृष्टि आवै, कहूँ चन्द्रमा सूर्य नहीं उपजे अरु कहूँ उपजते हैं, कहूँ चन्द्रमा शिवते निकसे, कहूँ क्षीरसमुद्र मथा नहीं, अमृत नहीं निकसा, लक्ष्मी हस्ती घोडा धन्वंतरि वैद्य नहीं निकसे, कहूँ अमृत मथा नहीं अमृत नहीं निकसा, देवता पडे मरते हैं, कहूँ क्षीरसमुद्र मथा है, तिसते अमृत निकसा है, धन्वंतरि वैद्य निकसा है, लक्ष्मी भी निकसी है, कहूँ प्रकाश नहीं होता,कहूँ सदा प्रकाश ही रहता है,कहूँ पृथ्वीके ऊपर पर्वत ही दृष्टि आवै,अपर कछु नहीं कहूँ इंद्रके वज्रकरि पर्वत कटते हैं अरु उडते हैं, कहूँ प्राणीको जरा मृत्यु नहीं होती, कल्प पर्यंत ज्योंके त्यों रहते हैं,कहूँ प्रलय होती है, कहूँ मेघ

गर्जते हैं, कहूँ संपूर्ण जल ही दृष्टि आवै, अपर कछु नहीं, कहूँ आकाश दृष्टि आवै, अपर प्राणी कोऊ नहीं, कहूँ देवताके युद्ध पडे होते हैं, कहूँ देवको दैत्य जीतते हैं, कहूँ दैत्यको देवता जीतते हैं, कहूँ देव अरु दैत्यकी परस्पर प्रीति है, कहूँ बल अरु इंद्रका, रुद्र वृत्रासुरका युद्ध पडा होता है, कहूँ मधु कैटभ दैत्य ब्रह्माकी कन्याते उत्पन्न होता है, कहूँ सदा प्रसन्नता रहती है अरु तीनों कालको जानते हैं, कहूँ सदा शोकवान् नहीं रहता है, कहूँ सतयुगका समय है, दान पुण्य तपश्चर्या करते हैं, कहूँ कलियुगका समय है, प्राणी पापविषे विचरते हैं, कहूँ अर्ध युग बीता है, कहूँ रामजी अरु रावणका युद्ध होता है, रावणको रामने मर्दन किया है, कहूँ रामजीको रावणने मर्दन किया है, कहूँ सुमेरु पर्वत तले है, पृथ्वी ऊपर है, कहूँ शेष नागके ऊपर पृथ्वी है, भूचालकरि भ्रमती है, कहूँ प्रलयकालका जल चढा है अरु एक बालक वटके वृक्ष ऊपर बैठा अपने अंगुष्ठको चूसता है, सो विष्णु भगवान् हैं, कहूँ ब्रह्माके कल्पकी रात्रि है, महाशून्य अंधकार है, कहूँ कौरव पांडवकी सहायता कृष्ण करता है, कहूँ महाभारतका युद्ध होता है, दोनों ओरते अक्षौहिणी सेना निकसे है अरु कृष्ण पाण्डवकी सहायता करता है, कहूँ एक सृष्टि नाश होती है; उसी सृष्टिविषे उसी जैसी अपर उत्पन्न होती है उसी जैसा कर्म उसी जैसे कुल जाति गोत्र होते हैं, कहूँ उसते अर्धभाग मिलता है, कहूँ चतुर्थ भाग उस जैसा मिलता है, कहूँ विलक्षण भाग होता है. हे रामजी! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि आत्मआदर्शविषे प्रतिबिंबित होती देखी हैं अरु जब मैंने आत्मदृष्टिकरि देखौं तब सब चिदाकाश ही भासे, जब संकल्प दृष्टिकरि देखौं, तब जगत् भासे. कहूँ ऐसी सृष्टि देखी, जहां दशरथका पुत्र राम अरु रावणके मारनेको समर्थ हुआ है, तुम्हारा रूप बडा तपस्वी रहता है अरु सदा प्रसन्न है मन जिसका, ऐसी अनंत सृष्टि देखी. राम उवाच-हे भगवन्! मैं आगे भी हुआ हौं अरु ऐसा ही हुआ हौं अथवा किसी अपर प्रकार हुआ हौं, सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! कई उसी जैसे होते हैं, कई अर्ध लक्षण होते हैं, कई चतुर्थ भाग लक्षण होते हैं, जैसे

अन्नका बीज उसी जैसा होता है, कोऊ उसते विशेष भी होता है, तैसे यह पदार्थ सब पडे परिणाम होते हैं. हे रामजी! तू भी आगे होवैगा, अरु मैं भी आगे होऊंगा, परंतु आत्माका विवर्त्त है, जैसे समुद्रते तरंग भी होते हैं, विलक्षण भी दृष्टि आते हैं, परंतु वही रूप हैं, तैसे हमारे सदृश भी हमारे स्वरूपकी मूर्तिवत् बहुरि होवैंगे, परंतु आत्मतत्त्व भिन्न कछु नहीं, संकल्प करिकै इतरकी नाईं विलक्षणरूप भासते हैं, जैसे समुद्रविषे वायुकरि तरंग भासते हैं, तैसे आत्मा संकल्पकरिकै जगत्-रूप हो भासता है, यद्यपि नाना प्रकार हो भासता है, तौ भी दूसरा कछु हुआ नहीं यह जगत् चेतनका विलास है, चित्तके फुरणेविषे अनंत सृष्टि भासती हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि बडे आरंभकरि भासती है, परंतु स्वरूपते कछु इतर नहीं, तैसे यह जगत् आरंभ परिणामकरि बना कछु नहीं. आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अनंतजगद्वर्णनं नाम ऊनविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१९॥

विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२०.
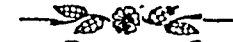
पृथ्वीधातुवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार देखत भया, बहुरि दृश्य-भ्रमको त्यागिकरि अपने वास्तवस्वरूपविषे स्थित भया. मैं अनंत हौं नित्य शुद्ध बोध चिदाकाश सर्वदा अपने आपविषे स्थित हौं. हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसी स्थानविषे संवेदन आभास फुरी है, जैसे अना-जके कोठेते एक मुष्टिकरि निकासिये अरु क्षेत्रविषे डारिये उसीते किसी ठौरविषे अंकुर निकसै तैसे चेतनविषे संवेदन फुरी है, तिस संवेदनसों जगत् उपजा है, जैसे जलके दिये अंकुर निकसि आता है तैसे मेरेविषे सृष्टिका अनुभव होने लगा अरु मैं जानत भया कि सृष्टि मेरेविषे फुरी है. राम उवाच–हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपने आपविषे स्थित थे तिसविषे सृष्टि तुमको कैसे फुरी? दृढ बोधके

निमित्त मुझको कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! वास्तव तौ कछु उपजा नहीं परंतु जैसे हुई है तैसे सुन, मैं जो अनुभव आकाश अनंत था, तिसके किसी स्थानविषे संवेदन चित्त अहं फुरा. अर्थ यह कि, मैं हौं, तिसके अहंभावके होनेकरि आपको मैं सूक्ष्म तेज अणु जैसा जानत भया, तिस अणुविषे जो अहं फुरी तिसको तुमसारखे अहंकार कहते हैं, तिस अहंकारकी दृढताते निश्चयात्मक बुद्धि फुरी, तिस बुद्धिते संकल्प विकल्परूप मन फुरा, तिस मनने आगे प्रपंच रचा, तिस मनविषे देखनेका स्पंद फुरा, तब चक्षु इंद्रिय भयी अरु जिसको देखने लगा, रूप दृश्य भयी; बहुरि सुननेकी इच्छा फुरी तब श्रवण इंद्रिय हुई, तब शब्द ही सुनत भयी,बहुरि रस लेनेकी इच्छा भयी,तब जिह्वा इंद्रिय भयी रसको ग्रहण करने लगी, जब सुगंधि लेनेकी इच्छा करी तब नासिका इंद्रिय भयी अरु सुगंधिको ग्रहण करने लगी, बहुरि स्पर्श करनेकी इच्छा हुई तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भयी अरु स्पर्शको ग्रहण करने लगी, इस प्रकार ज्ञान इंद्रिय मुझको आनि फुरी,तिनविषे शब्द,स्पर्श,रूप,रस, गंध उदय हुए, तब मैं अपने साथ स्थूल वपुको देखत भया, जैसे पुरुष सूक्ष्मते उठिकारि स्वप्न देखता है, तिसविषे अपना शरीर देखता है, तैसे मैं देखता भया. हे रामजी ! जिसको मैं देखत भया सो दृश्य हुआ अरु जिसकरि मैं देखता भया सो इंद्रियां भयीं अरु जब दृश्य फुरणा हुआ सो काल हुआ अरु जहां हुआ सो देश हुआ अरु ज्योंकारि हुआ, सो क्रिया हुई, इस प्रकार सब देशकाल पदार्थ हुए हैं, सो मैंने तेरे ताईं कहे हैं. हे रामजी ! वास्तव न कोऊ देह है, न इंद्रिय है, न सृष्टि है, चित्तकलाविषे हुएकी नाईं दृष्टि आते हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भासती है जब वह सृष्टि मुझको फुरी तब पूर्व स्वरूप विस्मरण भया, जैसे सुषुप्तिविषे मुझको अपना स्वरूप विस्मरणकी नाईं होता है तैसे मुझको विस्मरण हुएकी नाईं भासा, जैसे स्वप्नविषे जाग्रत् स्वरूपका विस्मरण होता है, जाग्रत्विषे स्वप्नस्वरूपका विस्मरण होता है तैसे पूर्वके स्वरूपका मुझको विस्मरण भया, जब शरीर इंद्रियां मुझको अपने साथ भासीं तिसविषे मैंने अहंप्रत्यय करिकै शब्द ओंकार उच्चार किया, जैसे

बालक माताके गर्भते उत्पन्न होकरि शब्द करता है तैसे मैंने ॐ शब्दका उच्चार किया,जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे उठता है अरु शब्द करता है तैसे मैं ओंकारका उच्चार किया, कैसा ओं है, आदि, मध्य, अंतते रहित परब्रह्म है, सर्व ब्रह्मांडरूपी तरंगका आधार समुद्र है. हे रामजी ! जब मैं अधिभूत दृष्टिकरि देखौं, तब मुझको शिला ही भासै अरु जब अंतवाहक दृष्टिकरि देखौं तब अनंत ब्रह्मांड दृष्टि आवैं अरु नाना प्रकारकी क्रिया मर्यादासहित भासैं:अरु आत्मत्व दृष्टिकरि देखौं तौ अद्वैत अपना आप ही भासै. हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणोंविषे मरुस्थलकी नदी भासती है तैसे मुझको सृष्टि भासै, जैसे मरुस्थलकी नदी मिथ्या है तैसे ग्रहण करनेहारी वृत्ति मिथ्या है, जैसे संवेदनविषे मनन फुरता है सो भी मिथ्या है, काहेते जो नदी मिथ्या है तौ मनन तिसका सत्य कैसे होवै, जैसे वह मिथ्या है तैसे यह भी रूप अवलोकन मनुष्यका मिथ्या है भ्रांतिकरिकै सत्य भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टि भ्रांतिमात्र है. जैसे संकल्पपुरी मिथ्या है, जैसे मनोराज्यका नगर अरु कथाका वृत्तांत अनहोता भ्रांतिकरिकै प्रत्यक्ष भासता है तैसे यह जगत् भ्रांतिकरिकै सत्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, संकल्प विलासविषे बने दृष्टि आते हैं हे रामजी ! जिस प्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुन, जब मेरेविषे पृथ्वी धारणा भयी तब पृथ्वी मुझको शरीर होकरि भासने लगी, काहेते जो मैं विराट् आत्मा था तिस पृथ्वीके ऊपर वन, पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फूल, फल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य, नाग आदिक जो स्थित हैं सो पृथ्वी मेरा शरीर भया अरु पर्वत मेरे मुख भए अरु सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजा भयीं अरु सप्त समुद्र मेरा आद्रा भया अरु सर्व नदी मेरे कंठविषे माला भासैं अरु वन मेरी रोमावली भई अरु मरुस्थलकी नदी मेरे ऊपर विस्तार भासै अरु देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, दैत्य यह सब मेरेविषे कीट भासैं, शरीरविषे जुआं, लीखां आदिक हैं अरु किसी ठौर मेरे ऊपर हिलावते हैं अरु बीज बोते हैं, खेती उगती है, प्राणी खाते हैं कहूँ खोदते हैं, कहूँ पूजा करते हैं, कहूँ समुद्र स्थित हैं. कहूं नदी चलती है, कहूँ राजा राज्य

करते हैं, मेरे ऊपर झगड मरते हैं, वह कहता है पृथ्वी मेरी है, वह कहता है मेरी है, इस प्रकार ममताकरिकै युद्ध करते हैं, हस्ती चेष्टा करते हैं, कई रुदन करते हैं,कई हांसी करते हैं, कहूं वृत्ति पसारते हैं, कहूँ सुगंधि है; कहूं दुर्गंधि है, नदियां चलतीं क्षोभ करती हैं, देवता अरु दैत्य मेरे ऊपर युद्ध करते हैं, शीतलताकरिकै जल मेरे ऊपर बर्फ हो जाता है, इत्यादिक इष्ट अनिष्ट स्थान मैं अपने ऊपर देखत भया, राजसी तामसी सात्त्विकी जेती कछु जीवकी क्रिया होती हैं, सो सबका आधार मैं होता भया अरु पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाको संज्ञा होत भई, संवेदन फुरणेकरिकै इस प्रकार मैं आपको जानता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अंतरोपाख्याने पृथ्वीधातुवर्णनं नाम विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२० ॥

एकविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२१.

जलरूपवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन्! तुमको जो धारणा करिकै पृथ्वीका अनुभव हुआ तिसविषे जगत् उत्पन्न हुआ, सो संकल्परूप था, अथवा मनते उपजा था, अथवा अधिभूत रूप था, पृथ्वीते उत्पन्न कैसे हुआ ? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो संकल्परूप है अरु अधिभूतकी नाईं भासता है, सो केवल चिदाकाश अपने आपविषे स्थित है, सो चिदाकाश मैं हौं, न कदाचित् उपजा हौं, न नाश होऊंगा, सर्वदा अद्वैत अचैत्य चिन्मात्ररूप हौं, तिसके संकल्पका नाम मन है, आभासका नाम संकल्प है, तिसीका नाम ब्रह्मा है, तिसीका नाम इच्छा है, तिसविषे जगत् स्थित है, सो जगत् आकाशरूप है, बना कछु नहीं. हे रामजी ! जिसको सत्य कहता है, अरु असत्य कहता है, सो शुभ अशुभरूप जगत् मनविषे स्थित है अरु जेते आकार भासते हैं, सो निराकाररूप हैं, आकाशरूप भ्रांतिकरिकै पिंडाकार भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे शुभ अशुभ पदार्थ भासते हैं, सो

निराकार हैं, भ्रांतिकरिकै पिंडाकार भासते हैं, तैसे यह जगत् भी निराकार है, भ्रमकरिकै पिंडाकार भासता है, विचार कियेते शून्य हो जाता है, जैसे मनोराज्य करिकै आकार रचित हैं, तैसे हमारे आकार जान, स्वरूपते कछु उपजे नहीं, जैसे मृत्तिकाविषे बालक नाना प्रकारकी सेना रचते हैं; सो मृत्तिकामें भी उनको भिन्न भिन्न भाव निश्चय होते हैं; तैसे अद्वैत आत्माविषे मनरूपी बालकने जगत् कल्पा है, वास्तव कछु नहीं, आत्मत्व सदा अपने आपविषे स्थित है, मृगतृष्णाका जल ही नहीं तौ तिसविषे डूबा कौनको कहिये तैसे मन आभासरूप है, तिसका रचा जगत् कैसे सत् होवै. हे रामजी ! सब चिदाकाशरूप है दूसरा कछु बना नहीं. आत्मारूप आकाशविषे मनरूपी नीलता है सो अविचारसिद्ध है विचार कियेते नीलता कछु वस्तु नहीं; जैसे दीपकके विद्यमान अंधकार नहीं रहता तैसे विचार कियेते मन अरु मनकी रचना जगत् नहीं रहती मनका निर्वाण करना परमशांति है अपर उपाय कोऊ नहीं. हे रामजी ! जेते कछु क्षोभ हैं तिनका कर्ता मन है अरु जेती कछु शब्द अर्थ कल्पना उठती हैं सो मनकरि उठती हैं मनके निर्वाण हुए कोऊ नहीं रहती. राम उवाच-हे मुनीश्वर ! तुम जो अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भये सो कछु अपर रूप भी भए अथवा न भए सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! आत्मरूपी जो जाग्रत् है, तिसविषे मैं अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भया, मैं चेतन था अरु जडकी नाईं स्थित भया वास्तवते न कछु मैं जगत् था केवल चिदाकाश है तिसविषे न कछु नाना है न अनाना है जगत् न अस्ति न नास्ति है अहं त्वं इदंका अभाव है केवल परम आकाश है आकाशते भी निर्मल चिदाकाश है अरु जो है सो सर्व शब्दब्रह्म है, जगत्के होते भी अरूप है, काहेते जो कछु आरंभपरिणामकरि नहीं बना, केवल आत्माका चमत्कार है. हे रामजी ! जहां जहां पदार्थसत्ता है, तहां तहां जगत् वस्तु है, सर्व काल सर्व पदार्थका स्पंद ब्रह्म है, जहां ब्रह्मसत्ता है, तहां जगत् है, इस प्रकार अनंत ब्रह्मांडको देखत भया, जब मैं अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि

स्थित भया, जब जलकी धारणा करी, तब जलरूप होकर पसरा वृक्ष, घास, फूल, फल, गुच्छे, टास, तमालपत्रविषे मैं रस होकारि स्थित भया, स्तंभविषे मै ही बल हुआ, समुद्र हुआ, नदियोंके प्रवाह होकारि बहने लगा, तिनविषे गडगड शब्द करने लगा, तरंग बुद्बुदे फेनको पसारिकारि विलास करत भया, उसके कणके होनेकारि मैं ही स्थित भया, आकाशविषे मेघ होकारि स्थित भया, वर्षा करने लगा, प्राणीको तृप्त करने लगा, तिनविषे रुधिरते आदि रस होकारि मैं ही स्थित भया तिनकी नाडी-विषे मथन करिके आप ही प्रवेश किया, जैसीजैसी नाडी होती है, तैसा तैसा रस होकारि स्थित भया, रस, बीज, कफ, पित्त, मूत्र आदिक सब नाडीविषे मैं ही स्थित भया, सर्वप्राणीकी जिह्वा अग्रविषे रस होकारि स्थित भया, स्वादको ग्रहण करने लगा, अपने आपको आपकारि अरु हिमालय-विषे बर्फ होकारि स्थित भया. हे रामजी! मैं चेतन ही जडकी नाईं स्थित भया, बीज होकारि मैं ही उत्पत्ति करत भया, प्रलय मेघ होकारि मैंही नाश करत भया, इस प्रकार जल होकारि स्थावर जंगम जगत् सर्व-विषे मैं स्थित भया अरु सदा अपने आपविषे स्थित होकारि अपने स्वरूपको त्यागता न भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् अनुभवरूप है, अणु होता भासता है, तैसे मैं जलरूप होकारि जगत्को धारता भया. हे रामजी! इसते आदि लेकारि जो नाना प्रकारके स्थान हैं तिनविषे मैं स्थित भया अरु फूलकी शय्याके ऊपर चिरकालपर्यंत विश्राम करत भया अरु गंध होकारि फूलविषे स्थित भया, मेघ होकारि आकाशविषे विचरता भया, गडा होकारि वर्षा करता भया, पर्वतपर प्रवाहवेगकारि उतरता भया, कणके कणके हो गया, समुद्र नदियों विषे विचरता भया, यह प्रतिभास चिद्अणुविषे मुझको भई.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अंतरोपाख्याने जलरूपवर्णनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२२.

अंतवाहकचिदचिद्वर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जलके अनंतर मैंने तेजकी भावना करी अर्थ यह कि तेजको धारा तब मेरे एते अंग उदय भये. चंद्रमा सूर्य अग्नि इन अंगकरि जगतकी क्रिया सिद्ध होने लगी जैसे राजाके अंग अनुचर हरकारे होते हैं, जहां तमरूपी चोरको दीपकरूपी हरकारे मारते हैं, आकाशरूपी जो मैं हौं, तिसके कंठविषे तारेरूपी माला पडी है, सूर्य होकरि मैं जलको सोखने लगा, अरु दशों दिशाको मैं प्रकाशता भया, आकाश जो ऊर्ध्वताकरि श्याम भासता है, सो मेरे निकट प्रकाशमान हो रहता है, सब जगतविषे मैं पसर रहा हौं, जहां मैं होऊं तहांते तमका अभाव हो जावै, चंद्रमासूर्यरूपी डब्बा है तिसविषे दिनरात्रिरूपी रत्न हैं, दिन रात्रि काल वर्षरूपी अनेक रत्न हैं, सो सर्वदा निकसते रहते हैं. राजसी सात्त्विकी तामसी क्रियारूपी कमलिनीका मैं सूर्य हुआ अरु सर्व देवता पितरको तृप्त करत भया. यज्ञकी अग्निहोकरि अग्नि रत्न मोती मणि आदिक जो प्रकाश्य पदार्थ हैं, तिनविषे प्रकाश मैं हौं अरु प्राणके अंतर मैं स्थित हुआ, प्राण अपानके क्षोभकरि अन्नको पचावता है, जैसे आत्माके प्रकाशकरि रूप अवलोकन मनस्कार प्रकाशते हैं, तैसे सब पदार्थ मेरे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, काहेते कि तेजरूप मैं हौं, मानो चेतनसत्ताका मैं दूसरा भाई हौं, जैसे सर्व पदार्थ आत्माकरि सिद्ध होते हैं, तैसे मुझकरि सिद्ध होते हैं. हे रामजी! राजाविषे तेज मैं हौं, सिद्धविषे वीर्य होकरि स्थित मैं हौं, बलरूप होकरि जगतकी पुष्टि मैं करता हौं, वडवाग्नि दाहकशक्ति होकरि जगतको मैं नष्ट करता हौं, तेजवान्‌विषे मैं तेज हौं, बलवान्‌विषे मैं बल हौं, तले भी मैं हूं अरु मध्य भी मैं हूं, अरु चंद्रमा सूर्यते रहित जो स्थान हैं, तिनविषे मैं हूँ, अग्निरूपी दीपक करिकै अरु चंद्रमा सूर्यरूपी नेत्रकरिकै मध्य मंडलविषे स्पष्ट मैं ही देखता हौं. हे रामजी! इसप्रकार तेजरूप होकरि अंतर बाहिर स्थावर जंगम पदार्थविषे मैं स्थित भया अरु जब बोधदृष्टिकरि

देखौं तब सर्व आत्मा ही भान होवै अरु जब अंतवाहक दृष्टिकरि देखौं तब आपको विराट्रूप जानौं, जो सर्व जगत्‌विषे मैं ही पसर रहा हौं, सर्व पदार्थ मेरे अंग हुए हैं, तेजवान्‌विषे तेज मैं हुआ, क्रोधवान्‌विषे क्रोध भी मैं हुआ अरु यतीविषे यती मैं हुआ अरु अजित हुआ, सर्व ओर मेरी ही जय है, काहेते कि जय तिसकी होती है, जिसविषे बल अरु तेज होता है, सो बल मैं हौं, ओज मैं हौं, ताते मेरी जय है. हे रामजी ! स्वर्ण अरु रत्नमणिविषे प्रकाश हुआ, अपर जो रूप है सो मैं हुआ. राम उवाच–हे भगवन् ! इसप्रकार जो तुम जगत्‌की क्रियाको अनुभव करने लगे, जलरूप होकरि अग्निको बुझाने लगे, अग्नि होकरि जलको जलाने लगे, इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर होती रही, इष्ट अनिष्ट सो तिसका सुखदुःखकरि अनुभव किया, अथवा न किया, सो मेरे बोधके निमित्त कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे चेतन पुरुष स्वप्नविषे पर्वत वृक्ष देह इंद्रियां नानाप्रकारके जड पदार्थ देखते हैं, सो उसविषे तौ नहीं; केवल अनुभवरूप है, परंतु निद्रादोषकरि वह द्वैतकी नाईं स्वप्नसृष्टिको जानता है, तिसका रागद्वेष अपनेविषे मानता है अरु अपर कछु है नहीं, द्रष्टा ही दृश्यरूप होकरि स्थित होता है, परंतु निद्रादोषकरि नहीं जान सकता, जब जागता है तब सब स्वप्नसृष्टिको अपना आपही जानता है, तैसे यह जगत् अपने स्वरूपविषे नहीं जब बोधस्वरूपविषे जागैगा तब पदार्थभावना जाती रहैगी सब जगत् बोधस्वरूप भासैगा. हे रामजी ! जिस पुरुषकी देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित अखंड सत्ता उदय भई है, तिसको ज्ञानी कहते हैं, जब यह पुरुष परमात्मा अवलोकन करता है, तब सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जिस पुरुषको स्वप्नसृष्टिविषे पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं भया तिसको अंतवाहक कहते हैं, तिसको पत्थरके प्रवेश करनेविषे भी खेद नहीं होता अरु जल अग्निविषे प्रवेश करनेकरि भी खेद नहीं होता. हे रामजी ! मैं जो आकाशविषे उडता फिरता हौं अरु आकाशको भी लंघिकरि ब्रह्मांडके खपर ऊपर जाय फिरा हौं सो अंतवाहक करिकै फिरा हौं; जिसको अंतवाहक शरीर प्राप्त

होता है, तिसको आवरण कोऊ रोकि नहीं सकता. काहेते कि, सब अंग उसके होते हैं, ताते मुझको शुद्ध आत्माविषे स्वप्न हुआ है; अरु पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं भया, तिसकरि मुझको सब जगत् अपना स्वरूप ही भासता है, अपने संकल्पकरि कल्पे अपने अंग ही भासते हैं; जैसे किंपुरुषने मनोराज्य करिकै अग्निका समुद्र रचा अरु उसविषे स्नान करे तौ क्यों होता है, उसको खेद भी नहीं होता, सब अपने संकल्पविषे उसको भासते हैं, अंतवाहक शरीरकरिकै विराट् सबको अपना आप देखता है, तैसे सब जगत् मुझको अपना आप भासै तौ खेद कैसे होवै, जैसे स्वप्नवाला स्वप्नविषे पर्वत नदियां अग्नि होती है सो वहीरूप हैं अरु एक आप भी आकार धारिकै बन जाता है, पूर्वका स्वरूप उसको भूल जाता है, परिच्छिन्नता करिकै राग द्वेषसाथ जलता है अरु मैं तत्त्वरूप बना जो आपको जडरूप देखत भया, मैं आपको चेतनरूप देखता था अरु जडकी नाईं भी मैं आपको जानत भया, इस प्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न भया, तब मैं वैराट्रूप सबको अपने अंग देखत भया, ताते खेद कैसे होवै, खेद तब होता है, जब अपना स्वरूप भूलता है अरु परिच्छिन्न बनि जाता है, सो मैं तौ बोधवान् रहा, जो मैं स्पंद करिकै सब रूप धारे हैं. हे रामजी! जिसको यह निश्चय है, तिसको दुःख कहाँ होवै, सुखदुःखरूप जो पदार्थ हैं सो मैं अपनेविषे ऐसे देखत भया, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जिसको यह सृष्टि होवै; तिसको दुःख कहां है. हे रामजी! जिसको अंतवाहकशक्ति प्राप्त होती है, वह समर्थ होता है, पातालविषे जावै, आकाशविषे उडै, जहाँ प्रवेश किया चाहै, सो सब होता है, काहेते कि, सृष्टि संकल्पमात्र है. हे रामजी! अपर कछु सृष्टि बनी नहीं, आत्माका किंचन ही सृष्टिरूप होकरि भासता है. हे रामजी! यह सृष्टि सब ब्रह्मरूप है, हमको तौ सदा ऐसे ही भासती है, जब तू जागैगा तब तुझको भी ऐसे ही भासैगी, सो तू भी अब जागा है, इस प्रकार मैं अग्नि होकरि स्थित भया. जिसकी शिखाते कालप निकसती है, सो प्रकाश मैं ही भया, चिद्रूप अपने स्वरूप अनुभवविषे मुझको जगत् भासै, तिनविषे मैं स्थित हुआ,

अंधकार भी अरु उलूकादिक भी मेरे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं अरु भावरूप पदार्थ भी मैं अपनेविषे जानत भया. काहेते कि भावरूप पदार्थ तब भासते हैं जब उनका रूप होता है, सो रूपवान् पदार्थ मैं ही था. इस कारणकरि सब मेरेहीकरि सिद्ध होते हैं, इस प्रकार मुझको प्रतिभा हुई.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अंतवाहकचिदचिद्वर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२३.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! बहुरि मैंने पवनकी धारणाका अभ्यास किया, तब पवनरूप होकरि विचरने लगा, कमल फूल अरु वृक्षको हिलावने लगा, तारानक्षत्रका आधारभूत भया, तब मेरेकरि फिरने लगे, चंद्रमा सूर्यके चलानेहारा मैं ही भया, समुद्र नदियोंके प्रवाह मेरेहीकरि चलते हैं, मनका बड़ा वेग भी मैं ही हौं, प्राणी उसके शरीरविषे मेरा निवास है, मैं ही प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान पंचरूप होकरि स्थित भया हौं अरु सब नाडीविषे मेरा निवास है अरु सब नाडीके रस अपना अपना भाग मैं ही पहुँचावता हौं, हलना, चलना, बोलना, लेना, देना सब मुझहीकरि सिद्ध होता है, सर्व पदार्थविषे स्पर्शशक्ति मैं ही हौं.सर्व शब्द मेरे होकरि सिद्ध होते हैं,क्रियारूपी बूँदका मैं मेघ हौं आकाशरूपी जो गृह है तिसविषे मेरा निवास है, दशों दिशा सब मेरेविषे फुरी हैं, देवताको गंधकरि सुख मैं ही देता हौं, दीपकको प्रज्वलित मैं ही करता हौं, पक्षीविषे मेरा सदा निवास है, जैसे अग्निविषे उष्णता रहती है सबके सुखावनेहारा मैं ही हौं, हरियावल करनेहारा भी मैं ही हौं. हे रामजी ! इस प्रकार मैं पवन होकरि स्थित भया ताते रूप अवलोकन मनस्कार सर्व पदार्थ मैं ही भया, चंद्रमा, सूर्य,तारे, अग्नि, इंद्र, ब्रह्मा, विष्णु,रुद्र, वरुण, कुबेर, यम आदिक जगत् होकरि मैं ही स्थित भया पंचभूतकरि भूतके अंतर भी मैं ही हौं अरु बाहिर भी मैं हौं प्राण अपानके क्षोभकरिकै दुःख होता है सो मैं ही साकार निकाररूप हौं

रक्त पीत श्यामरंग पदार्थ सब मैं ही हौं, पंचभूत चिद्गुणते फुरे हैं सो उसीका रूप हैं जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब अपना ही रूप होती है इतर कछु नहीं हाड़ मांस पृथ्वीकरि भूतविषे स्थित भया हौं,वायुरूप प्राण होकरि स्थित भया हौं अग्निरूप क्षुधा होकरि स्थित भया हौं, आकाशरूप अवकाश होकरि स्थित भया हौं इस प्रकार मैं सर्वविषे स्थित भया हौं सो मैं भी चेतन वपु हौं वह तत्त्व भी चेतनवपु हैं जैसे स्वप्नविषे जगत् आकाशरूप है तैसे वह भी आकाशरूप हैं. हे रामजी! सर्वका सर्व-काल सर्वप्रकार सर्वात्मा स्थित है इसते दूसरा कछु नहीं आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है इतर जानना भ्रांतिमात्र है. यह दृष्टि ज्ञानवान्की है जो असम्यक्दर्शी हैं, तिनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं इस प्रकार मैं संपूर्ण जगत् अपनेविषे ही देखत भया. हे रामजी! मैं कौन हौं मैं जो ब्रह्मरूप था तिसविषे जगत् उत्पन्न होते दृष्टि आये अरु जो मैं ब्रह्मते इतर कहौं एक तृण न उत्पन्न होवै, मैं जो ब्रह्मरूप था तिसते सृष्टि उत्पन्न होती है. हे रामजी! जब मैंने बोधदृष्टिकरि देखा तब आत्माते इतर कछु न देखा जब अंतवाहकदृष्टिकरि देखौं तब मेरे ताईं स्पंदकरिकै अणु अणुविषे सृष्टि भासती हैं. जैसे जहां चंदनका अणु होता है, तहां सुगंधि होती है तैसे जहां जहां तत्त्वके अणु हैं तहां तहां सृष्टि है. हे रामजी! एक अणुविषे अनंत सृष्टि मुझको भासे हैं, जैसे एक पुरुष शयन करता है अरु तिसको स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, बहुरि स्वप्नते स्वप्नांतरकी सृष्टिको देखता है तौ एक ही जीव विषे बहुत क्यों भासे, तैसे अणुविषे अनेक सृष्टि हैं. हे रामजी! जो सृष्टि है सो आभा-सरूप है अरु आभास अधिष्ठानके आश्रय होता है, सो सबका अधि-ष्ठान ब्रह्मसत्ता है, देश कालके परिच्छेदते रहित है. अरु अखंड अद्वैत-सत्ता है, इसीते कहा है,जो अणु अणुविषे सृष्टि है, काहेते कि,कोऊ अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता ही है, जो सर्व ब्रह्म है तौ सृष्टि भी ब्रह्मरूप है, ताते सर्व ब्रह्म ही जान,ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंद विषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२४.

आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार जब मेरेविषे सृष्टि फुरी, तब मैं तिनके भ्रमको त्यागि अरु संकल्पको खैंचिकारि अंतर्मुख हुआ अरु अपनी जो कुटी थी तिसकी ओर आया जब कुटी देखी. तब तिसविषे एक पुरुष बैठा मुझको दृष्टि आया, तब मैं विचार किया कि,- यह किंचन है अरु मेरा शरीर था सो कहां है, तब मैं विचार कारि देखा कि, यह कोऊ महासिद्ध है अरु मेरा शरीर इसने मृतक जानकारि गिराय दिया है. सो सिद्ध कैसे बैठा है, जो पद्मासन बाँधिकारि दोनों गिटे पटके ऊपर किये है अरु शिर ग्रीवा सूधे किये है, दोनों हाथ पटते ऊर्ध्व किये है, मानो कमलफूल है, मानो अंतरका प्रकाश बाह्य आनि उदय हुआ है अरु नेत्र मूँदे हैं, मानो सब वृत्ति मूँदी छोडी हैं. हे रामजी ! इस प्रकार समाधि लगायकारि पद्मासनकारि आत्मपदविषे स्थित बैठा है. बहुरि कैसा है, निरावरण बादलते रहित सूर्यकी नाईं प्रकाशता है; जैसे धूमते रहित अग्नि प्रकाशता है, तैसे वह सिद्ध प्रकाशवान् स्थित है, इस प्रकार मैं उसको आत्मपदविषे स्थित देखत भया, जैसे दीपक निर्वाण स्थित होता है, तैसे स्थित देखिकारि मैंने विचार किया जो यह इहां ही बैठा रहै, मैं अपने स्थान सप्तर्षिविषे जाऊं, इसी प्रकार कुटीके संकल्पको त्यागिकारि मैं उड़ा. हे रामजी ! इसप्रकार उड़ते हुए मार्गविषे मुझको विचार उपजा कि, अब सिद्धकी क्या दशा है, बहुरि उलटिकारि देखौं तौ कुटीसह सिद्ध वहां नहीं, काहेते जो कुटी उसकी आधारभूत थी सो मेरे संकल्पविषे स्थित थी, जब मेरा संकल्प निर्वाण हो गया तब कुटी गिर पड़ी, तब तिसविषे सिद्ध कैसे रहै, वह भी गिर पड़ा. हे रामजी ! उसको गिरता देखकर मैं भी उसके पाछे हुआ कि, इसका कौतुक देखौं, तब आगे वह चला जावै, मैं पाछे अधःको चला जावौं परंतु मैं स्वाधीन चला जावौं अरु वह पराधीन चला जावै, जैसे मेघते बूँदें गिरती हैं, सो ठहरतीं नहीं, जैसे आकाशते

घटा गिरै तैसे वह चला जावै, सप्तद्वीपके पार दशसहस्र योजन स्वर्णकी धरती है, तिसके ऊपर आनि पड़ा जैसे आकाशते रुईका फोहा गिरै तैसे सुखेन आनि पड़ा अरु उसी प्रकार पद्मासन बाँधे हुए शीश ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरे रहे. काहेते कि, उसके शीश ग्रीवा ऊर्ध्वको रहे. हे रामजी ! शरीर हलता चलता प्राणकरि है, जब प्राण ठहर जाते हैं तब शरीर हलता चलता नहीं इस कारणते शरीर उसका सम ही रहा जैसे कुटीविषे बैठा था तिसी प्रकार आसनकरि पृथ्वीऊपरि आनि पडा तब मेरे मनविषे आया कि इसके साथ कछु चर्चा भी कीन्हीं चाहिये परंतु यह तौ समाधिविषे स्थित है किस प्रकार इसको जगावौं. हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै मैं मेघ होकरि वर्षा करने लगा अरु बड़ा शब्द करने लगा जिस शब्दकरि पहाड फूटने लगे तिस शब्द अरु वर्षाकरके भी वह न जागा तब मैं गडा होकरि तिसके ऊपर वर्षा करने लगा जैसे पत्थरकी वर्षा होती है, जब ऐसी वर्षा करी तब वह नेत्र खोलकरि देखने लगा जैसे पर्वतपर मोर मेघको देखने लगै. तब मैं वपुको त्यागिकरि उसके आगे आय स्थित भया तब उसने समाधि खोली अरु प्राण इंद्रियां अपने स्थान विषे आये. हे रामजी ! तब मुझको अपने अग्र देखत भया तब मैं अद्वैतभावको त्यागिकरि बोलत भया. हे साधो ! तू कौन है अरु कहां स्थित है अरु क्या करता था अरु किसनिमित्त कुटीविषे स्थित था. सिद्ध उवाच-हे मुनीश्वर ! मैं अपने प्रकृतभावविषे स्थित हौं अरु सब कछु कहौंगा परंतु काहली मत कर मैं स्मरण करिकै कहता हौं. हे रामजी ! मुझको इस प्रकार कहकर स्मरण करने लगा बहुरि स्मरण करिकै कहत भया. हे ब्राह्मण वसिष्ठजी ! मुझपर क्षमा करनी संतका शांत स्वभाव है मेरे पासते तुम्हारी बड़ी अवज्ञा हुई है परंतु तुम क्षमा करहु मेरा तुमको नमस्कार है. हे रामजी ! इस प्रकार नमस्कार करिकै निर्मल आनंदके उपजावनेहारे वचन कहत भया. हे मुनीश्वर ! यह संसाररूपी नदी है अरु इसका बडा प्रवाह है सो कदाचित् सूखता नहीं अरु चित्तरूप समुद्रते प्रवाह निकलता है जन्ममरण दोनों इसके किनारे

रागद्वेषरूपी इसविषे तरंग हैं अरु भोगकी तृष्णा इसविषे चक्र फिरता है, तिसविषे मैं बडा दुःख पाया है. हे मुनीश्वर ! अपने सुखके निमित्त देवके स्थानोंविषे भी गया हौं अरु दिव्य भोग भोगे हैं, जो स्पर्श आदिक भोग हैं, सो सब मैं भोगे हैं, परंतु शांति नहीं मुझको प्राप्त भई, जिस सुखको मैं चाहता था, सो न पाया सो सुन, जैसे पपीहा मेघकी बूंदको चाहता है अरु मरुस्थलकी भूमिकाविषे उसको शांति नहीं होती, तैसे मुझको विषयके सुखविषे शांति प्राप्त भई नहीं. हे मुनीश्वर ! इस जगत्को असार जानिकरि मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि, एता काल मैं भोग भोगे, परंतु मुझको शांति न प्राप्त भई, असत् जानकरि मैं फिरा अरु विचार किया जो सार होवै तिसविषे स्थित भया होऊं तब मैं जाना कि सार अपना अनुभवरूप ज्ञान संवित् है, ऐसे जानकरि मैं तिसविषे स्थित भया हौं. हे मुनीश्वर ! जेते कछु विषय हैं सो विषरूप हैं, विषके पान कियेते भी मृतक होता है, जैसे स्त्री धन आदिक सुख हैं, सो मोह अरु दुःखके देनेहारे हैं, ऐसा कौन पुरुष है, जो इनविषे आया सावधान रहता है, यह स्वरूपते नष्ट करनेहारे हैं. हे मुनीश्वर ! देहरूपी एक नदी है, तिसविषे बुद्धिरूपी एक मच्छी रहती हैं, सो जब शिर बाहर निकासती है, अर्थ यह कि जो इच्छा करती है, तब भोगरूपी बगुला इसको खाय जाता है, अर्थ यह कि आत्ममार्गते शून्य करता है अरु यह जो भोगरूपी चोर है, जब इनका संग यह करता है तब इसको लूटि लेते हैं, अर्थ यह कि, आत्मज्ञानते शून्य करते हैं, जब आत्मज्ञानते शून्य हुआ तब जन्मका अंत नहीं आता, अनेक शरीरको धारता है, जैसे चक्रके ऊपर चढी हुई मृत्तिका अनेक बासनके आकार धारती है, तैसे आत्मज्ञानते रहित अनेक शरीरको धारता है, सो अब मैं जागा हौं, मुझको अब लूटि नहीं सकते. हे मुनीश्वर ! भोगरूपी बड़े नाग हैं, अपर जो नाग हैं, तिनके दंशते शरीर मृतक होते हैं अरु विषयरूपी सर्पके फूत्कारेकरि मृतक होता है, अर्थ यह कि, इच्छा करनेकरि आत्मपदते शून्य होता है, जब इसको विषयकी इच्छासाथ संबंध होता है, तब इसका क्षणक्षणविषे निरादर

होता है, जैसे कदलीबनते रहित हुआ हस्ती महावतके वश आया निरादरको पाता है. हे मुनीश्वर ! जिस शरीरके निमित्त यह विषयकी इच्छा करता है, सो शरीर भी नाशरूप है, तिसविषे अहंप्रतीति करनी परम आपदाका कारण है अरु शरीरविषे अहंप्रतीति न करनी परम सुखका कारण है, जैसे सर्पके मुखमें पडा हुआ दर्दुर मच्छके खानेकी इच्छा करता है, सो महामूर्ख है, किसी क्षणविषे काल इसको ग्रासि लेवैगा, ताते इसकी इच्छा करनी व्यर्थ है, अरु दुःखका कारण है. हे मुनीश्वर ! बालक अवस्था व्यतीत होती है, तब युवावस्था आती है, युवाते उपरांत वृद्धावस्था आती है, तब जर्जरीभावको प्राप्त होता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढविषे सूखि जाती है, तैसे वृद्धावस्थाविषे शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है अरु दुःख पाता है, बालक अवस्थामें क्रीडाविषे मग्न होता है, यौवन अवस्थाविषे कामादिकरि मग्न होता है, वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकरि मग्न होता है, इस प्रकार यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं, बहुरि मृत्यु हो जाता है, जीवकी अवधि इस प्रकार पडी व्यतीत होती है, परमपदते अप्राप्त रहते हैं. हे मुनीश्वर ! यह आयुर्बल बिजलीके चमत्कारकी नाईं है, तिस क्षणभंगुर अवस्थाविषे जो भोगकी वांछा करते हैं, सो महादुःखको प्राप्त होते हैं, इनविषे सुख देखकरि कहै, कि मैं स्वस्थ रहौंगा, सो कदाचित् न होवैगा, जैसे जलके तरंगकी गोदविषे बैठकरि स्थित हुआ चाहै, सो नहीं रहैगा. अवश्य मरैगा, तैसे विषयभोगोंकरि शांतिसुख नहीं होता, जैसे कोऊ महाधूपकरि तपा हुआ सर्पके फणिकी छायातले बैठिकरि सुखकी वांछा करै सो न होवैगा, जब आत्मज्ञानरूपी वृक्षकी छायाके नीचे बैठे, तब शांत सुखी होवैगा, जिन पुरुषोंने विषयकी सेवना करी है, सो परमदुःखको प्राप्त होते हैं, जिनने आत्मपदकी सेवना करी है, सो परमानंदको प्राप्त होते हैं, जैसे नदीका प्रवाह अधःको चला जाता है, तैसे मूर्खका मन विषयकी ओर धावता है. यह संसार मायामात्र है, इसविषे शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, जैसे मरुस्थलकी नदीके जलकरि तृषा निवृत्त नहीं होती, तैसे विषयभोगकरि शांति कदा-

चित् नहीं होती, जो आत्मपदते विमुख हैं, सो विषयकी ओर धावते हैं अरु जो आत्मपदविषे स्थित हैं,सो विषयकी ओर नहीं दौडते,जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि नष्ट होते हैं,जैसे नदीका वेग समुद्रकी ओर गमन करता है अरु पत्थरकी शिला गमन नहीं करती तैसे भोगरूपी समुद्रकी ओर अज्ञानरूपी नदी गमन करती है ज्ञानरूपी पत्थरकी शिला नहीं गमन करती. हे मुनीश्वर ! कमलविषे सुगंधि तबलग होती है, जबलग सर्पके मुखका वायु नहीं लगा, तैसे बुद्धिविषे तबलग विचार है, जबलग चित्त-रूपी सर्पके भोग इच्छारूपी वायु नहीं लगा, जब लगता है,तब विचार-रूपी सुगंधिको ले जाती है अरु विषरूपी तृष्णाको छोडि जाती है अरु बाण निसानकी ओर तब धावता है, जब धनुष्य अरु चिलेको त्यागता है, त्यागेते बहुरि नहीं मिलता, तैसे आत्मारूपी चिलेते जब चित्तरूपी बाण छूटता है, तब भोगरूपी निसानकी ओर धावता है, जब जाता है, तब फेरि आना कठिन होता है, अर्थ यह कि,अंतर्मुख होना कठिन होता है. हे मुनीश्वर ! यह आश्चर्य है, जो पदार्थ सुखदायक नहीं, तिनकी ओर यह बडा यत्न करता है, तो भी सिद्ध नहीं होते अरु जो अयत्न-सिद्ध आत्मपद है, तिसको त्यागता है, जिनको यह सुख जानता है,सो सब दुःखके स्थान हैं, जिस अपने होनेको यह भला जानता है, सो अनर्थका कारण है, जिस देहको यह सुखरूप जानता है, सो सर्व रोगका मूल है, जिनको यह भोग जानता है, सो इसको दुःख देनेहारे परम रोग हैं, जिनको यह सत जानता है, सो सब मिथ्या हैं, जिनको यह स्थिर जानता है, सो स्थिर नहीं, चलरूप हैं, जिनको यह रस जानता है, सो सब विरस हैं, जिनको बांधव जानता है,सो सब अबांधव हैं, दृढबंधनरूप हैं अरु जिसको यह सुख देनेहारी स्त्री जानता है सो सर्पिणी है, परम विषके देनेहारी है, तिसका मृत्यु होता है, बहुरि नहीं जीवता, अर्थ यह कि, आत्मपदविषे स्थित नहीं होता. हे मुनीश्वर ! मैं परम आपदाका कारण देहको जानता हौं, इसके निवृत्त हुए परमपदको प्राप्त होता है, जिस पुत्र धन आदिकको यह संपदा जानता है, सो परम दुःखरूप आपदा हैं, इनविषे सुख कदाचित् नहीं, यह श्रवण करि वार्त्ता मैं नहीं-

कहता, देखिकरि विचार किया है, विचार करिकै अनुभव किया है, अनुभव करिकै कहा है कि, यह संसार मायामात्र है अरु बडे बडे स्थानोंविषे मैं भी गया हौं परंतु सार पदार्थ मुझको कोऊ दृष्टि नहीं आया, स्वर्गविषे नंदनवनते आदि काष्ठरूप ही दृष्टि आये हैं अरु पृथ्वीविषे आयकरि देखा तौ पंचभूत ही दृष्टिआये हैं अरु शरीरविषे रक्त मांस हाड मूत्र आदिक दृष्टि आये हैं; ताते देखिकरि मैं तिनको धिक्कार करता हौं, जो ऐसे शरीरविषे अहंप्रत्यय करते हैं, इनकी आयुर्बल ऐसी है, जैसे दोनों हाथविषे जल लीजिये सो चला जाता है, ठहरता नहीं अरु जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे उपजकर नष्ट होते हैं, जैसे बिजलीका चमत्कार होकरि नष्ट हो जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है अरु जो ऐसे शरीरको पायकरि सुखकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं. बालक अवस्था तरंगकी नाईं नष्ट हो जाती है, यौवन अवस्था बिजलीके चमत्कारवत् छपन होती जाती है, वृद्ध अवस्थाविषे केश श्वेत हो जाते हैं, दंत घसिकरि गिर पडते हैं, जैसे नीचेस्थानविषे जल आनि स्थित होता है, तैसे सब रोग वृद्ध अवस्थाविषे आनि स्थित होते हैं, अरु तृष्णा दिनदिन बढती जाती है. हे मुनीश्वर ! सब पदार्थ जर्जरीभूत हो जाते हैं अरु तृष्णा ज्वान होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी बढती जाती है, अरु जो सुख भोग प्राप्त होकरि बिछुरि जाते हैं, तिनका दुःख होता है. हे मुनीश्वर ! इसप्रकार इनको असत् जानकरि मैं स्वरूपविषे स्थित भया हौं, जब पांचों इंद्रियोंके इष्टविषे बड़ी उत्तम मूर्ति धारिकै आनि स्थित होवैं तौ भी हमको खैंचि नहीं सकते, जैसे मूर्तिकी लिखी कमलिनी भँवरेको खैंच नहीं सकती, तैसे हम सारखेको विषय चलाय नहीं सकते. हे मुनीश्वर ! तुम्हारा शरीर मैं अवज्ञाकरि डारि दिया है, विचार करिकै नहीं डारा, जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक त्रिकालज्ञ हैं, तौ भी इस चर्मदृष्टिकरि नहीं जान सकते, जब विचारकरि देखते हैं, तब जानते हैं, इस कारणते विचार विना मैंने तुम्हारा शरीर डारि दिया है, अब तुम क्षमा करौ, विचार करिकैं भूत भविष्य वर्तमानको जानता है अरु इन नेत्र-

करि सोई जानता है, जो अग्रभाग होता है. विशेष नहीं जानता, इस कारणकरि मुझते तुम्हारा शरीर गिरा है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२४ ॥

पंचविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२५.

अंतरोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे साधो ! मुझते भी तेरा गिरना विचारविना हुआ है, जो विचारता मैं उठि गया था, यह कुटी मेरे अंतवाहक संकल्पविषे थी, सो अपने स्थानको चला, इस कारणते कुटी गिर पडी, तू भी गिर पडा, जो व्यतीत गई सो भली, तिसकी क्या चिंतवना करिये, ज्ञानवान् बीतीकी चिंतवना नहीं करते जो हानि हुई सो भली. हे साधो ! अब चलिये जहां तुम्हारेको जाना है तहां जावहु. जहां हमको जाना है तहां हम भी जाते हैं. हे रामजी ! इस प्रकार चर्चा करिकै हम दोनों आकाशमार्गको उडे, जैसे पक्षी उडता है तब परस्पर नमस्कार करिकै हम भिन्न भिन्न हो गये वह अपने स्थानको गया अरु मैं अपने स्थानको चला. मैं बहुतेरे स्थान देखता आऊं परंतु मुझको कोऊ न जानै. हे रामजी ! यह संपूर्ण वृत्तांत मैं तेरेताईं कहा है तू इसको विचार. राम उवाच–हे भगवन् ! तुमने जो सिद्धके साथ समागम किया था सो आकाशमार्गविषे कैसे शरीरसाथ फिरे, पांचभौतिक शरीर तौ पृथ्वीपर डारा था वह तौ पृथ्वीविषे अणुरूप हो गया विचरे किस करिकै. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अंतवाहक शरीरसाथ मैं विचरता फिरा हौं तिसकरि मैं सिद्ध देवताके स्थानोंविषे इंद्र वरुण कुबेरके स्थानोंविषे फिरा हौं परंतु मेरेताईं कौन देखै मैं सबको देखौं संकल्पपुरुष साथ मेरा व्यवहार हुआ अपर किससाथ कहौं जो अपर किसीको भासा नहीं. राम उवाच–हे मुनीश्वर ! अंतवाहक शरीर इंद्रियोंका विषय तौ नहीं, सिद्ध साथ चर्चा कैसे करी

अरु तुमको उसने कैसे देखा. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इसप्रकार जो तू कहता है तौ सुन, सिद्धको मैं इसनिमित्त दृष्टि आया हौं जो मेरा सत्य संकल्प है, मेरे यह फुरणा हुआ कि सिद्ध मुझको देखै अरु चर्चा करै इसकरि उसने मुझको देखा उसका संकल्प भी मेरेविषे आया तब जाना अरु जो दोनों सिद्ध होवैं अरु उनका संकल्प भिन्न भिन्न होवै तौ एक दूसरेके संकल्पको नहीं जानते परंतु किसीका विशेष संकल्प होवै तब वह दूसरेके संकल्पको जानता है ताते उसका संकल्प मेरे देखनेको न था अरु मेरा जो दृढ संकल्प था तिसकरि उसके संकल्पको खैंचि अपने ओर ले आया. जो बली होता है तिसकी जय होती है इसकरि उसने मुझको देखा. हे रामजी ! जो अंतवाहकविषे स्थित होता है तिसको तीनों कालका ज्ञान होता है परंतु व्यवहार-विषे लगै तब भूलि जाता है जो वर्तमान पदार्थ होता है तिसका ज्ञान होता है इसी कारणते उसने मेरा शरीर डारि दिया था सो समाधिके व्यवहारविषे लगा था अरु मेरे संकल्पकरि वह कुटी भी तब गिरी थी जो मैं अपने स्थानके व्यवहारको चला था. ऐसी चिंतना करिकै जो में चिंतवनाविषे न होता अरु अंतवाहक शरीरविषे होता अरु उस कुटीके भविष्यत् विचारि देखता अरु उस संकल्पको रहने देता तौ सिद्ध न गिरता जो अपर व्यवहारविषे लगा इसकरिकै अंतवाहक विस्मरण हो गया तब कुटी गिर पड़ी अरु सिद्ध भी गिर पडा. हे रामजी ! इसप्रकार सिद्ध गिरा अरु चर्चा हुई तब मैं वहांते चला. अंतवाहक शरीरकी आकाशमार्गविषे फिरने लगा, सिद्धके समूह देखे. देवता विद्याधर गंधर्व किन्नर ऋषि मुनि वरुण कुबेर इंद्र यमते आदि लेकरि सबके स्थान देखे, मैं सबको देखता फिरा परंतु मुझको कोऊ न देखै; मैं बडे बडे शब्द करौं कि किसीप्रकार शब्द कोऊ सुनै अरु मुझको देखै परंतु मेरा शब्द कोऊ न सुनैं अरु न कोऊ देखै जैसे स्वप्नविषे कोऊ शब्द करै तब उसका शब्द जाग्रतवाले कोऊ नहीं सुनते जैसे असंकल्पवाला दूसरेकी सृष्टि व्यव-हार शब्द कोऊ नहीं जानता तैसे मुझको कोऊ न जानता भया.

हे रामजी ! इस प्रकार मैं, आकाशपिशाच होकरि विचरा, बहुरि देवताके स्थानोंका पिशाच होकरि विचरा, मैं सबको देखौं अरु मुझको कोऊ न देखत भया. राम उवाच-हे भगवन् ! पिशाचका शरीर कौन होता है, अरु पिशाचकी जाति क्या होती है, अरु पिशाचकी क्रिया क्या होती है अरु तिनके रहनेका स्थान क्या होता है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! पिशाचकी कथासाथ प्रयोजन कछु न था तथापि तैंने प्रसंग पायकरि पूछा है, ताते मैं कहता हौं, पिशाचका आकार नहीं होता. अरु जो जो रूप धारते हैं, सो सुन, एक तो आकाशकी नाईं शून्य होते हैं, एक बिछावेकी नाईं भयको देते हैं, एक मेघ होकरि स्थित होते हैं, एक कामरूप धारिकरि स्थित होते हैं, ऐसे रूप धारिकै विचरते हैं वह सबको देखते जानते हैं अरु उनको चलते बैठते कोऊ नहीं जानते परंतु शीत उष्ण करिकै वह भी दुःख पाते हैं, अरु इच्छा द्वेष लोभ मान मोह क्रोध आदिक विकार उनविषे भी रहते हैं शीतल जल, भले, भोजनकी इच्छा वह भी करते हैं, अरु नगरविषे भी रहते हैं वृक्षविषे भी रहते हैं,दुर्गंध स्थानोंविषे भी रहते हैं, कहूँ गीदड होकरि दिखाई देते हैं कहूँ श्वान होकरि दिखाई देते हैं मनविषे भी जायकरि प्रवेश करते हैं, बहुरि मंत्र पाठ दान आदिककरि वश भी होते हैं, सो भी अपनी अपनी वासनाके अनुसार होता है इनविषे भी कई उत्तम होते हैं, कई मध्यम होते हैं, कई नीच होते हैं जो उत्तम हैं सो देवताके स्थानविषे रहते हैं अरु जो मध्यम हैं सो मनुष्यके स्थानविषे रहते हैं जो नीच हैं सो नरकके स्थानविषे रहते हैं अरु इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र जो दृश्य तिसते रहित है शुद्ध चेतन तिसते हुई है. हे रामजी ! सबका अपना आप वही चेतनसत्ता है कल्पवृक्षकी नाईं. उसविषे जैसी २ वासना होती है तैसा तैसा पदार्थ हो भासता है. हे रामजी ! न कहूं पिशाच है न जगत् है, ब्रह्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है. शुद्ध आत्मत्वमात्रविषे जो किंचन हुआ है जो अहं होकरि फुरा है तिसको जीव कहते हैं. तिस अहंकी दृढता करिकै मन फुरा है सो मन ब्रह्मरूप होकरि स्थित भया है तिस

ब्रह्माने मनोराज्यकरिकै आगे जगत् उत्पन्न किया है ब्रह्मा ही जगत्-रूप होकरि स्थित भया है सो ब्रह्माविषे ब्रह्मा ही स्थित है. हे रामजी ! ब्रह्माका शरीर अंतवाहक है केवल आकाशरूप है तिसके दृढ संकल्प-करि अधिभूत जगत दृढ भया है, तिसी मनते अपर मन हुआ है. हे रामजी ! जैसे ब्रह्माका शरीर अंतवाहक है तैसे सबका शरीर अंत-वाहक है परंतु संकल्पकी दृढताकरिकै अधिभूत भासता है,सब मनरूप है; परंतु दीर्घकालका स्वप्न सो जाग्रत् होकरि स्थित भया तिसकरिकै दृढ भासता है जिनोंको संकल्प ब्रह्मशरीरविषे अहंकार है तिन अज्ञानीको जगत् अधिभूत भासता है अरु जो प्रबोधरूप हैं तिनको सब जगत् संकल्परूप है अरु वास्तवते कहै तौ उपजा कछु नहीं, न तू है न मैं हौं, न ब्रह्मा है, न जगत् है, सर्व ही ब्रह्मरूप है जैसे आकाश अरु शून्य-ताविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं ब्रह्म शब्द अरु जगत् दोनों अज हैं, न ब्रह्म ही उपजा है न जगत् उपजा है दोनों ब्रह्मरूप हैं जो ब्रह्मते इतर भासता है सो भ्रांतिमात्र है. हे रामजी ! पंचभूत अरु छठा मन इनका नाम जगत् है, जबलग यह भूत उसविषे दृष्टि आते हैं, तबलग भ्रांति है, जब इनते रहित केवल चेतन भासै, तब इसीका नाम परमपद है. हे रामजी ! जब आत्मप-दविषे जागैगा तब पंचभूत भी आत्माते इतर भासैंगे, सबका अधिष्ठान चेतनसत्ता है, जबलग आत्माका प्रमाद है, तबलग संसारभ्रम न मिटै-गा अरु सब जगत् निराकार संकल्पमात्र है, परंतु संकल्पकी दृढताक-रिकै आकाशविषे स्थूल भूत दृष्टि आते हैं, ज्ञानकालविषे और अज्ञान-कालविषे भी जगत् उपजा नहीं,परंतु अज्ञानीके हृदयविषे दृढ भासता है जैसे किसीने मनोराज्यकरिकै नगर रचा होवै, सो उसीके हृदयविषे है, अपर कहूं नहीं भासता, तैसे जबलग अज्ञान निद्राविषे सोया है, तबलग जगत् भासता है, जब जागैगा तब आकाशरूप देखेगा. हे रामजी ! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता, जबलग स्वरूपका प्रमाद नहीं भया, तबलग ब्रह्माका संकल्प ब्रह्माको नहीं बंधन करता, स्वरूपकी

अहंप्रत्ययकरिकै तौ संकल्परूप है, अपर दूसरी वस्तु सत्य कछु नहीं, आत्मा ही है, वास्तवते न जगत्की आदि है, न मध्य है, न अंत है, न जगत्का होना है, न अनहोना है, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! सो सर्वात्मा है तौ रागद्वेष किसका होवै, सब अपना आपही है, अपना आप जो आत्मतत्त्व है, तिसका किंचन संवेदन फुरणे करिकै जगत्रूप होके स्थित भया है, जैसे किसी पुरुषने मनोराज्य करिकै एक स्थान रचा, जब उसविषे दृढ भावना हुई, तब अधिभूत भासने लग जाता है, तैसे यह जगत् भी ब्रह्माका संकल्प है, चंद्रमा सूर्य अग्नि रुद्र वरुण कुबेर आदिक सब संकल्परूप हैं, संकल्पकी दृढताकरिकै अधिभूत पडे भासते हैं. हे रामजी ! आत्मरूपी एक ताल है, तिसविषे चेतनरूपी जल है, तिसविषे फुरणेरूपी चिकड है, तिसविषे चौदह प्रकारके भूतजात दर्दुर रहते हैं, सो संकल्पमात्र हैं. हे रामजी ! आकाशविषे एक आकाश क्षेत्र है, तिसविषे शिला उत्पन्न होती है, स्वर्गलोक देवता बडी शिला है, एक तिनविषे उज्ज्वल शिला है सो ज्ञानवान् है, मध्यम शिला मनुष्यलोक है, तिर्यक् आदिक योनि नीच शिला हैं, सो सब ही निर्बीज हैं, अर्थ यह कि कारणते रहित हैं, आत्मा अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है, कछु उत्पन्न नहीं भया, परंतु भ्रांतिकरिकै भिन्न भिन्न पडा भासता है, जैसे फेन बुद्बुदे तरंग सब जलरूप हैं, तैसे यह जगत् सब आत्मरूप है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि अकारणरूप होती है, जैसे संकल्पसृष्टि कारणविना होती है तैसे यह जगत् कारणविना संकल्पते उत्पन्न हुआ है, जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हुआ है, तैसे पिशाच भी उदय हुए हैं. हे रामजी ! जैसा किंचन आत्माविषे होता है, तैसा होकरि भासता है, वास्तवते पृथिव्यादिक तत्त्व कहूं नहीं, न कहूं ब्रह्मा उपजा है, न कोऊ जगत् उपजा है, सब भ्रममात्र है, जेते कछु वपु भासते हैं, सो सब निर्वपु हैं, चेतनता करिकै फुरे हैं, सब जीवका आदि अंतवाहक शरीर है, जैसे ब्रह्माका अंतवाहक शरीर था, तैसे सर्व जीवका अंतवाहक शरीर होता है, परंतु संकल्पकी दृढता करिकै अधिभूत हो भासता है,

अरु सब जीवका अपना अपना भिन्न संकल्प है, तिसके अनुसार अपनी२ सृष्टि होती है,अरु जो तू कहै भिन्न भिन्न है तौ जीव इकट्ठे क्यों दृष्टि आते हैं, ऐसा चाहिए जो अपनी अपनी सृष्टिविषे होवैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे एक नगरवासी अपर नगरविषे जावै अरु एक नगरवासी अपरविषे आवै, दोनों जाय इकट्ठे बैठैं, तैसे सब जीव इकट्ठे भासते हैं, तिनके इकट्ठे हुए उसकी सृष्टि वह नहीं देखता अरु उसकी सृष्टि वह नहीं देखता, जैसे स्वप्नविषे भिन्न भिन्न भूतजात होते हैं, अनुभवविषे इकट्ठे दृष्टि आते हैं, अरु एक अनुभवविषे भिन्न भिन्न होते हैं;एक दूसरेकी सृष्टिको नहीं जानते, जीव अंतवाहक भूलि गया है, अधिभूत दृढ हो रहा है, जैसा अनुभवविषे अभ्यास होता है तैसा ही भासता है,जहां पिशाच होता है, तहां अंधकार भी होता है, जो मध्याह्नका सूर्य उदय होवै अरु पिशाच आगे आवै तौ अंधकार हो जाता है, ऐसा तमरूप होता है, जैसे उलूकादिकको प्रकाशविषे अंधकार होता है, तैसे अनेक सूर्यका प्रकाश होवै तौ भी पिशाचका अंधकार ही रहता है. हे रामजी। जैसा उनविषे निश्चय होता है, तैसा ही भान होता है, काहेते जो उनका ओज तमरूप है, जैसा किसीका निश्चय होता है, तैसा भासता है, हमको तौ सदा आत्माका निश्चय है, ताते सदा आत्मतत्त्वका भान होता है, जैसे पिशाच पांचभौतिक शरीरते रहित चेष्टा करते हैं, तैसे मैं पांचभौतिक शरीरते रहित आकाशविषे चेष्टा करता रहा हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणे उ० अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम पंचविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२५ ॥

षड्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२६.

अन्तरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी। मैं चिदाकाशरूप हौं, सो पांचभौतिक शरीरते रहित अंतवाहक शरीरसाथ विचरता रहा हौं, परंतु मुझको देखै कोऊ नहीं, चंद्रमा सूर्य इंद्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं अरु सिद्ध गंधर्व ऋषी-

श्वर मुनीश्वर ब्रह्मा विष्णु रुद्रभी इस चर्मदृष्टिसाथ देखि कोऊ न सकै अरु मैं सबको देखता फिरौं, इंद्रके निकट जायकरि मैं उसके अंग हिलावत भया, परंतु मुझको जानै नहीं, जैसे संकल्पनगर किसको हिलावै अरु वह देखै अरु आधिभौतिक शरीर न हलै, तैसे उनके शरीर मेरे हिलावनेकरि हिले नहीं, तब मैं अतिमोहको प्राप्त भया कि बडा आश्चर्य है, एता काल मैं रहा अरु मुझको देखि कहूँ नहीं सकता, तब यह इच्छा मैंने करी कि मुझको देखै, तब मेरा जो सत्यसंकल्प रूप था तिसकरि देखने लगे, जैसे कहूँ इंद्रजालको देखै तैसे मुझको देखने लगे, जिनने पृथ्वीते उपजा देखा तो पृथ्वीते उपजा वसिष्ठ जानैं, मनुष्यलोकविषे कई जलते उपजा जानै, जो वारंवार वसिष्ठ है, जिन ऋषीश्वरने तीर्थ जो जलरूप है, तिनते उपजा देखा ताते वारिवसिष्ठ जाना, कि यह वारिवसिष्ठ है, कई वायुते उपजा जानैं, सिद्धादिक कई जानैं कि यह सप्तर्षिके मध्य वसिष्ठ है, जो तेज वसिष्ठ है,इस प्रकार जगत्विषे मुझको देखने लगे, तब सबसाथ व्यवहार करने लगा, जब बहुत काल व्यतीत भया तब भावनाकी दृढताकरिकै पांचभौतिक शरीर मुझको देखते भये, प्रथम वृत्तांत सबको विस्मरण हो गया, आधिभौतिकता दृढ होत भई, जैसे अज्ञानकरिकै स्वप्ननरको आधिभौतिक देखता है; तैसे मेरे साथ आकारको देखते भये अरु मुझको सदा अपने स्वरूपविषे अहंप्रत्ययते इतर द्वैत कछु भासता न था, काहेते कि मैं ब्रह्मरूप हौं अरु वसिष्ठ नाम मेरा ऐसा है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, सो मैं चिदाकाशरूप हौं अरु अपरको वसिष्ठप्रतीत उपजी है. हे रामजी ! जैसे तुम सारखेको मेरा आकार दृष्टि आता है, अरु मुझको आधिभौतिक अंतवाहक दोनों शरीर चिदाकाशका किंचन भासता है, मैं सदा निराकार अद्वैतरूप हौं, चेष्टा तुम्हारी हमारी समान है, परंतु मुझको सदा आत्मपदका निश्चय है, इस कारणते मैं जीवन्मुक्त होकरि विचरता हौं, अज्ञानीको क्रियाविषे द्वैत भासता है अरु हमको क्रियाविषे भी अद्वैत भासता है, ब्रह्मा भी ब्रह्मरूप भासता है अरु तिसका संकल्प जो जगत् है सो

भी ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, सो जलरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, भिन्न कछु नहीं सर्व ब्रह्म ही है; ताते मैं चिदाकाशरूप हौं, द्वैत कछु नहीं फुरता, जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकरि भासता है, जैसे अहंके फुरणेते स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे जाग्रत्सृष्टि होती है सो संकल्पमात्र है, ब्रह्मा अरु ब्रह्माका जगत् संकल्पकी दृढता करिकै आधिभौतिककी नाईं हो भासता है, वास्तवते न ब्रह्मा उपजा है, न जगत् उपजा है, चिदानंद ब्रह्म अपने आपविषे स्थित है, सदा एकरस है. हे रामजी ! सृष्टिकी आदि अरु प्रलयपर्यंत जो कछु क्षोभ है, तिसविषे आत्मा सदा एकरस है, उसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं, काहेते कि वास्तव कछु उपजा नहीं अरु जो कछु भासता है, सो अज्ञानकरिकै सिद्ध है, ज्ञानकरि जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे इसको कहूं निधि भासी, तिसके प्राप्ति निमित्त यत्न करता है अरु जब जागा तिसको स्वप्न जाना, बहुरि तिसके पानेका यत्न नहीं करता, तैसे जब आत्मबोध इसको हुआ, तब फेरि इस जगत्विषे जगद्बुद्धि नहीं रहती, अज्ञान ही जगत्भ्रमका कारण है, तिस अज्ञानकी निवृत्तिका उपाय यही है, इस महारामायणका विचार करना, तिसकरि संसारभ्रम निवृत्त होवैगा, यह संसार अविद्याकरि वासनामात्र है, इसको सत्य जानिकरि जो इसकी ओर धावते हैं सो परमार्थते शून्य हैं अरु मूढ हैं कीट हैं अरु वानरकी नाईं चंचल हैं, जिनको भोगविषे सदा इच्छा रहती है सो नीच पशु हैं तिनको संसार निवृत्त होना कठिन है, तृष्णा अंतर सदा रहती है वैराग्यको नहीं प्राप्त होते. हे रामजी ! भोग तौ ज्ञानवान् भी भोगते हैं परंतु भोगबुद्धिकरि नहीं भोगते प्रवाहपतित जो कछु प्रारब्धवेगकरिकै आनि प्राप्त होता है, तिसको भोगते हैं अरु जानते हैं कि गुणविषे गुण वर्त्तते हैं अरु इंद्रियों सहित भोगको भ्रांतिमात्र जानते हैं अरु जो अज्ञानी हैं सो आसक्त होकरि भोगते अरु तृष्णा करते हैं, भोगकी तृष्णाकरि अंतर जलता है इसीका नाम बंधन है अरु भोग दुःखरूप हैं जो इनको सेवते हैं सो अंतरते सदा तृष्णाकरि जलते हैं तिनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित्

नहीं मिटता अरु जो ज्ञानवान् हैं सो सदा आत्माकरि तृप्त रहते हैं ताते शांतरूप हैं, जैसे हिमालय पर्वतविषे पदार्थ शीतल हो जाता है तैसे आत्मज्ञानकरि अंतर शीतल हो जाता है अरु आत्मानंदकी प्राप्ति होती है, दुःख कोऊ नहीं रहता अरु जिनका चित्त सदा स्त्री पुत्र धन-विषे आसक्त है अरु इच्छा करते हैं, सो महामूर्ख हैं अरु नीच हैं, तिनको धिक्कार है, जिसको आत्मपदकी इच्छा होवै, तिसको सदा संत-नका संग करना चाहिये, सो शास्त्रोंका श्रवण विचार करै, इस अभ्या-सकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी. हे रामचंद्र ! यह शास्त्र विचार कियेते परमपदको प्राप्त करनेहारा है, जो पुरुष इस शास्त्रको त्यागिकरि अप-रकी ओर लगते हैं, सो मूर्ख हैं. वाल्मीकिरुवाच–हे राजन् ! जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ; सर्व श्रोता पर-स्पर नमस्कार करि गये, बहुरि सूर्यकी किरणें उदयकरि आनि स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अंतरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२७.

जीवन्मुक्तसंज्ञावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! तुझको अंतरोपाख्यान श्रवण कराया है, तिसके विचारते जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, ऐसे जब तू विचारकरि देखैगा, तब अनंत ब्रह्मांड आत्माविषे वसते दृष्टि आवैंगे. हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं हुआ, ताते मिटना भी नहीं चित्तके फुरणेकरि भासता है, जब चित्तका फुरणा अधिष्ठानविषे लीन हो जावैगा, तब अद्वैत तत्त्व आत्मा ही भासैगा. हे रामजी ! अद्वैत तत्त्व-विषे जगत भ्रमकरि भासता है, ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सदा अद्वैत भासता है, जगत् भी सब चिदाकाशरूप है, मैं भी चिदाकाश हौं, तू भी चिदाकाश है; आत्माते इतर कछु नहीं, आत्मसत्ता ही जगत् होकरि भासती है, जैसे अपना अनुभव स्वप्नविषे स्वप्नसृष्टि हो भासता है, सो

अनुभवरूप ही है, तैसे यह जगत् भी चिदाकाशरूप है, नाना प्रकारके विकार भी दृष्टि आते हैं, तौ भी आत्मसत्ता अनुस्यूत अखंडरूप है, आत्मसत्ता अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे स्वर्ण अरु भूषणविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्म ही चेतनताकरिकै जगत्रूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपने ही अनुभवते वृथा हो भासते हैं, सो इतर कछु हुए नहीं, अनुभवते जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् अरु अनुभव तीनोंविषे भेद कछु नहीं, असम्यक् दृष्टिकरि भेद भासता है, सम्यक् दृष्टिकरि भेद कोऊ नहीं. हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे प्रथम आभास फुरा है, सो ब्रह्मरूप होकरि स्थित भया है सो ब्रह्मा चिदाकाशरूप है, सोई ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उसी ब्रह्मसत्ताने अपने भावको नहीं त्यागा अरु ब्रह्मरूप होकरि स्थित भई है, बहुरि तिसने जगत् रचा है, सो जगत् भी आकाशरूप है, वास्तवते न जगत् उपजा है न ब्रह्मा उपजा है न स्वप्न हुआ है, परमार्थसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है सो शुद्ध अनंत अविनाशी है अचेत चिन्मात्र है अरु जगत् भी वही स्वरूप है. हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूप हौं, न मेरे साथ कोऊ आकार है, न मैं कदाचित् उपजा हौं न मैं कदाचित् मृतक होता हौं नित्य शुद्ध अजर अमर सदा अपने स्वभावविषे स्थित हौं, अनेक विकारविषे भी एकरस हौं, जैसे स्वप्नविषे बडे क्षोभ होते हैं तौ भी जाग्रत् वपुको स्पर्श नहीं करते काहेते जो उसविषे कछु हुए नहीं आभासमात्र है ,तैसे जगत्की उत्पत्ति प्रलयादिक क्षोभविषे आत्मसत्ताको स्पर्श नहीं अर्थ यह कि क्षोभते रहित सदा अनुभवरूप है जिस पुरुषने ऐसे अनुभवको नहीं पिछाना जो सब कछु जिसकरि सिद्ध होता है अरु तिसको छुपाया है सो महामूर्ख है वह आत्महत्यारा है वह महा आपदाके समुद्रविषे डूबैगा अरु जिसको अपने स्वरूपविषे अहंप्रत्यय हुई है तिसको मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता, जैसे पर्वतको चूहा नहीं चूर्ण करि सकता तैसे उसको दुःख नहीं स्पर्श करता अरु जिसको आत्माविषे अहंप्रत्यय नहीं तिस को शांति प्राप्त नहीं होती,जैसे वायु विरोलेविषे तृण उडा हुआ स्थिर

नहीं होता तैसे देहाभिमानीको शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती अपने शुद्ध स्वरूपको त्यागिकरि देहसाथ आपको मिला हुआ जानता है सो क्या करता है, जैसे कोऊ चिंतामणिको त्यागिकरि राखको अंगीकार करै तैसे शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूपको त्यागिकरि देहविषे आत्माभिमान करता है. हे रामजी! जब यह पुरुष अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, तब आपको विचारवान् जानता है अरु जन्मता मरता आपको मानता है अरु जब देहाभिमानको त्यागिकरि आत्माको आत्मा मानता है, तब न जन्मता है, न मरता है, न शस्त्रकरि कटता है, न अग्निकरि दग्ध होता है, न जलकरि डूबता है, न पवनकरि सूखता है, निराकार अविनाशी चिदाकाशरूप है. हे रामजी! जब चेतनको भी मृत्यु होवै, तब पिताके मरे पुत्र भी मर जावै, एकके मरे सब जगत् मरि जावै, काहेते जो आत्मसत्ता चेतन एक है, अनुस्यूत है, सो एकके मरे सब नहीं मरते ताते चेतन आत्माको मृत्यु कदाचित् नहीं, शरीरके काटते आत्मा कटता नहीं, शरीरके दग्ध हुए आत्मा दग्ध होता नहीं संपूर्ण विश्व भस्म हो जावै तौ भी आत्मा भस्म नहीं होता, आत्मा नित्य शुद्ध अनंत अच्युतरूप है, कदाचित् स्वरूपते अन्यथाभावको नहीं प्राप्त भया. हे रामजी! मैं ब्रह्म हौं, अहंरूप हौं अर्थ यह कि सबविषे अहंरूप निराकार अंड मैं हौं, न मुझको जन्म है, न मृत्यु है, सुखकी इच्छा नहीं, न कछु हर्ष है, न शोक है, न जीवनेकी इच्छा है, न मरणेकी इच्छा है, जैसे जेवरीविषे सर्प कल्पते हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पते हैं, तैसे आत्माविषे वशिष्ठ नाम रूप हैं, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित अनंत आत्मा हौं, नित्य शुद्ध बोधरूप हौं, सर्वका स्वरूप आत्मतत्त्व है परंतु वास्तवस्वरूपके प्रमादकरिकै अपर अवस्तुको प्राप्त हुएकी नाईं भासता है अरु जो पुरुष स्वरूपविषे स्थित नहीं हुए, संसारमार्गकी ओर दृढ भये हैं, तिनका जीना वृथा है, कहना चैतन्य है नहीं तौ पाषाणकी शिलावत् है; जैसे लुहारकी खलकाते पवन निकसता है, तैसे उनका जीना वृथा है, घटीयंत्रकी नाईं वासनाविषे भटकते हैं, आत्मानंदको नहीं प्राप्त होते सदा तपते रहते हैं अरु

जिनको आत्मपदविषे स्थिति भई है तिनको दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता, जब प्रलयकालका पवन चले अरु पुष्कर मेघकी वर्षा होवै वडवाग्नि लगै अरु द्वादश सूर्य तपैं तौ ऐसे क्षोभविषे भी चलायमान नहीं होता, काहेते कि सर्व ब्रह्मस्वरूप जानता है, जैसे तृणकरि पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे वह बडे दुःखकरि भी चलायमान नहीं होता दुःख तब होता है जब आत्माते इतर कछु भासता है सो उसको आत्माते इतर कछु नहीं भासता. हे रामजी ! यह सब जगत् आत्मानुभवरूप है,काहेते जो परमात्माका स्वरूप है, स्वप्नविषे अनुभवते इतर कछु वस्तु नहीं होती इसी कारणते सब जगत् अनुभवरूप है अरु जो इतर भासता है सो भ्रांतिमात्र है यह जगत् जो नाना प्रकारका भासता है सो आत्माविषे अव्यक्तरूप है भ्रमकरिकै प्रगट भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि सिद्ध है तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि सिद्ध है वास्तवते ब्रह्मते इतर कछु नहीं आत्मसत्ता ही जगत्रूप होकरि भासती है तिसविषे जैसा जैसा निश्चय होता है तैसा ही अधिष्ठानरूप भासता है अरु जिनके कारणकरिकै सृष्टिका अधिष्ठान दृढ हो रहा है तिनको तैसा ही भासता है, जिनको परमाणुते सृष्टि उत्पत्ति निश्चय भई है तिनको तैसे ही सत्य भासती है माध्यमिक सत्य असत्यके मध्य वस्तुको मानते हैं, एक म्लेच्छ हैं चार्वाकी सो चारों तत्त्वते सृष्टिकी उत्पत्ति मानते हैं. बौद्ध कहते हैं. जो कछु वस्तु है सो बोध है इसके अभाव हुए शून्य ही रहता है,एक अनेक ब्राह्मण हस्ती गौ श्वान घोडा सूर्यादिकविषे भिन्न भिन्न प्रतीति हो रही है, जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं सो सर्वविषे एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखते हैं. हे रामजी ! वस्तु तौ एक है तिसविषे जैसा निश्चय जिसका भया है तैसा ही भासता है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पतरुविषे जसी भावना करी जाती है तैसा रूप हो भासता है. हे रामजी ! बुद्धिमान्करि निर्णय किया है कि सारभूत आत्मसत्ता है, जब तिसविषे दृढ अभ्यास करैगा तब आत्मसत्ता ही भासैगी, तिस निश्चयकरि चलायमान न होवैगा. राम उवाच-हे भगवन् ! बुद्धिमान् कौन हैं, जगत्विषे पातालविषे कौन हैं, भूतलविषे कौन हैं स्वर्ग-

विषे कौन हैं जिनके पूर्वापरके विचारकरि परावरका साक्षात्कार हुआ है अरु आत्मस्वरूपका कैसा निश्चय करते हैं ? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जेता कछु जगत् है सो इंद्रियोंके विषयकी तृष्णाकरि जलते हैं, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष करते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक करते हैं, ऐसा कोऊ जो जगत्विषे सूर्यकी नाईं प्रकाशता है, नहीं तौ सब तृणवत् भोगरूपी वायुविषे भटकते हैं, जो सबते श्रेष्ठ कहाता है, सो भी विषयरूपी अग्निविषे जलता है; जैसे कृम अरु शुभ स्थानविषे रहते हैं अरु तिनकरि आपको प्रसन्न मानते हैं, तैसे देवता भी सदा भोगरूपी अपवित्र स्थानविषे आपको प्रसन्न मानते हैं, सो मेरे मतविषे दुर्गंधके कृमि हैं अरु गंधर्व तौ मूढ हैं, तिनको तौ कछु शुद्धि नहीं, अर्थ यह कि, आत्मपदकी गंध भी नहीं, वह तौ मेरे मतविषे मृग हैं, जैसे मृगको रागकरि आनंद भासता है, तैसे गंधर्व रागकरि उन्मत्त रहते हैं, आत्मपदते विमुख हैं अरु विद्याधर भी मूर्ख हैं, काहेते कि, वेदके अर्थरूपी चतुराईको अग्निविषे जलाते हैं अरु वेदका सारभूत अमृत है, तिसको नहीं जानते, आत्मपदते विमुख हैं, अरु सिद्ध हैं, सो मेरे मतविषे पक्षी हैं, जो पक्षीकी नाईं उडते फिरते हैं, अभिमानरूपी पवनके चलनेकरि अनात्मरूपी गर्त्तविषे आनि पडते हैं, वास्तवस्वरूपविषे स्थित होते नहीं अरु यक्ष धनके अभिमानकरि चतुराई मूर्खकी प्रीतिकरिकै जलते हैं, आत्मपदविषे स्थिति नहीं पाते, योगिनी भी मदकरिकै सदा उन्मत्त रहती हैं, आत्मपदविषे स्थिति नहीं पातीं अरु दैत्योंको भी सदा देवताके मारनेकी इच्छा रहती है, सदा शोकमें रहते हैं, आत्मपदते विमुख हैं, तुम तौ आगे भी जानते हौ, आगे भी मारे हैं अरु अब भी मारौगे अरु मनुष्य भी आत्मपदते गिरे हुए हैं, इनको भी सदा इच्छा रहती है, कि गृह बनाइये अरु खाने अरु धन संचनेके निमित्त जगत् करते हैं, इंद्रियोंके अर्थविषे डूबे हुए हैं अरु पातालविषे नाग रहते हैं, जिनका जलविषे निवास है, सुंदर नागिनीविषे आसक्त रहते हैं; सो भी आत्मानंदते गिरे हुए हैं, इत्यादिक जो भूतप्राणी हैं, सो विषयसुखविषे लगे हुए हैं, आत्मपदते विमुख हैं अरु सब जातविषे विरले जीवन्मुक्त भी हैं अरु ज्ञान-

वान् भी हैं, सो श्रवण करु. देवताविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र सदा आत्मानंदविषे मग्न हैं, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इंद्र, धर्म राजा, वरुण, कुबेर, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कचते आदि लेकरि जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सप्त ऋषि अरु दक्ष प्रजापतिते आदि लेकरि जीवन्मुक्त हैं, सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार चारों जीवन्मुक्त हैं, अपर भी मुक्त बहुत हैं, सिद्धविषे कपिलमुनि आदिक जीवन्मुक्त हैं, यक्षविषे विद्याधरविषे योगिनीविषे जीवन्मुक्त हैं अरु दैत्यविषे हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बलि, बिभीषण, इंद्रजित, सारमेय, चित्रासुर, नमुचि आदिक जीवन्मुक्त हैं, मनुष्यविषे राजर्षि, ब्रह्मर्षि, नागविषे शेषनाग, वासुकि आदिक जीवन्मुक्त हैं. ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक हैं कोई कोई विरले जीवन्मुक्त हैं. हे रामजी! जाति जातिविषे संक्षेपते तुझको जीवन्मुक्त हुए हैं, सो कहे हैं अरु जहां जहां देखा है, तहां तहां अज्ञानी बहुत हैं, ज्ञानवान् कोऊ विरला दृष्टि आता है, जैसे जहां जहां अपर वृक्ष बहुत हैं, परंतु कल्पवृक्ष कोऊ विरला होता है, तैसे संसारविषे अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं, ज्ञानी कोऊ विरला है. हे रामजी! शूरमा अपर कोऊ नहीं, जिसको आत्मपदविषे स्थिति भयी है, सोई शूरमे हैं अरु संसारसमुद्र तरणा तिनहींको सुगम है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्तसंज्ञावर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२८.

जीवन्मुक्तव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो विवेकी पुरुष विरक्तचित्त हैं, जिनको स्वरूपविषे स्थिति भयी है, तिनके एते विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दंभ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार स्वाभाविक निवृत्त हो जाता है, जैसे बाणको देखिकरि कौआ भागि जाता है, तैसे

विवेकरूपी बाणको देखिकरि विकाररूपी कौए भागि जाते हैं अरु एते गुण उनके हृदयविषे स्वाभाविक आनि स्थित होते हैं, वह पुरुष किसी-पर क्रोध नहीं करता अरु जो करते दृष्टि आते हैं, सो किसी निमित्तमात्र जानना, उनके हृदयविषे कछु नहीं, सदा शीतलता अरु दया उनके हृदयविषे रहती है, जो कोऊ उनके निकट आता है, सो भी शीतल हो जाता है, काहेते जो निरावरण स्थित हैं, जैसे चंद्रमाके निकट आयेते शीतल होता है, तैसे ज्ञानवान्के निकट आयेते हृदय शीतल होता है, कोऊ पुरुष उनते उद्वेगवान् नहीं होता अरु जो कोऊ निकट आता है तिसको विश्रामके निमित्त स्थान देते हैं अरु उसका अर्थ भी पूर्ण करते हैं, जैसे कमलके निकट भँवरा जाता है तिसको विश्रामका स्थान देते हैं अरु सुगंधिकरि तिसका अर्थ पूर्ण करते हैं; तैसे संतजन अर्थ पूर्ण करते हैं अरु यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं अरु हेयोपादेयकी विधिको भी जानते हैं, जो कछु स्वाभाविक आनि प्राप्त होवै, तिसको शास्त्रकी विधिसहित अंगीकार भी करते हैं अरु हृदयविषे सबकी भावनाते रहित हैं अरु दान स्नान आदिक शुभ क्रिया तिनविषे स्वाभाविक होती हैं अरु उदारता वैराग्य धैर्य शम दम आदिक गुण उनविषे स्वाभाविक होते हैं, इस लोकविषे भी सुख देनेहारे हैं परलोकविषे भी सुख देनेहारे हैं. हे रामजी ! जिन पुरुषोंविषे ऐसे गुण पाइये सो संत हैं, संसारसमुद्रके पार करनेहारे संतजन बहुत हैं, जैसे जहाजको आश्रय करके समुद्रते पार होता है, तैसे संसारसमुद्रके पार करनेहारे संतजन हैं जिनको संतजनका आश्रय हुआ है, सो तरे हैं, बहुरि कैसे हैं संतजन, जो संसारसमुद्रके पारके पर्वत हैं, जैसे समुद्रविषे बहुत जल होता है अरु बडे तरंग उछलते हैं, तिसविषे बडे मच्छ रहते हैं, जब प्रवाह उछलता है, तब पर्वत उस प्रवाहको रोकता है, उछलने नहीं देता, तैसे चित्तरूपी समुद्र है, तिसविषे इच्छारूपी तरंग हैं, रागद्वेषरूपी मच्छ रहते हैं, जब इच्छारूपी तरंगका प्रवाह उछलता है, तब संतरूपी पर्वत तिसको रोकते हैं, सो संत अपने चित्तको भी रोकते हैं अरु उनके निकटको जाता है, तब उसकी भी रक्षा करते हैं अरु शरीर नष्ट होने लगै अथवा नगर

नष्ट होने लगै अथवा निकट अग्नि लगै तौ भी ज्ञानवान्का हृदय स्वरूपते चलायमान नहीं होता, वह सदा अपने स्वरूपविषे स्थिर रहता है, जैसे भूकंपकरिकै सुमेरु चलायमान नहीं होता, तैसे वह नहीं चलायमान होता, यह जो मैं तुझको शुभ गुण कहे हैं, स्नान दान सो जीवको सुख देनेहारे हैं अरु दुःखको निवृत्त करते हैं, इनकरि सुखकी प्राप्ति होती है अरु दुःख नष्ट हो जाता है, सो श्रवण कर, जब स्नान दानकी ओर यह पुरुष आता है,तब संतकी संगतिविषे भी इसका चित्त लगता है, जब संतकी संगतिविषे चित्त आया, तब क्रमकरिकै इसको परमपदकी प्राप्ति होती है, ताते इस पुरुषको यही कर्तव्य है कि जो शास्त्रकरि कहा है तिसके अनुसार शुभगुणविषे चेष्टा होवै अरु संतके निश्चयका अभ्यास होवै. हे रामजी ! जिसको संतकी संगति प्राप्त होती है सो भी संत हो रहता है, संतका संग वृथा नहीं जाता, जैसे अग्निसाथ मिला पदार्थ अग्निरूप हो जाता है तैसे संतके संगकरि असंत भी सन्त हो जाता है अरु जो मूर्खकी संगति करता है, तब साधु भी मूर्ख हो जाता है, जैसे उज्ज्वल वस्त्र मलके संगकरि मलिन हो जाता है तैसे मूढके संगकरि साधु भी मूढ हो जाता है, काहेते जो पापके वशते उपद्रव भी आनि होते हैं, तैसे पापके वशते साधुको भी दुर्जनोंकी संगतिकरि दुर्जनता आनि उदय होती है. ताते हे रामजी ! दुर्जनोंकी संगति सर्वथा त्यागनी है अरु संतकी संगति कर्तव्य है जो परमहंस संतजन पाइये तौ जो साधु होवै जिसविषे एक गुण भी शुभ होवै तिसका भी अंगीकार करिये परंतु साधुके दोष न विचारिये उसका शुभ गुण अंगीकार करिये; जैसे भँवरा केतकीके कंटकके ओर नहीं देखता है, उसकी सुगंधका ग्रहण करता है. ताते हे रामजी ! संसारमार्गको त्यागिकारि संतकी संगति करौ, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्तिव्यवहारो नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२८ ॥

ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २२९.

परमार्थरूपवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् । हमारे दोष तौ सच्छास्त्र अरु सत्संग अरु तिनकी युक्तिकरि दूर होते हैं अरु समान दुःख तीर्थ स्नान दान जप पूजाकरि निवृत्त होते हैं,अपर जीव जो कीट पतंग पशु पक्षी आदिक हैं, तिनके दुःख कैसे निवृत्त होवैंगे, सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो वास्तवसत्ता है, तिसका नाम ब्रह्म है, अखंड है, अद्वैत है, तिसविषे कछु द्वैतका विभाग नहीं, परंतु तिसविषे चित्त किंचन आभास फुरा है सो फुरणा नानात्व हुएकी नाईं स्थित भया है, वास्तव कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे स्वप्नसृष्टि भासती है, परंतु वास्तव कछु हुई नहीं, निद्रा-दोषकरिकै भासती है, तैसे जाग्रतसृष्टि भी कछु वास्तव हुई नहीं अज्ञानकरिकै जीवको भासती है, वास्तवते सब ब्रह्मरूप है, अपने स्वरूपके प्रमादकरिकै जीवत्वभावको अंगीकार किया है, तिस जीवत्वके अंगीकार करनेकरि जैसा निश्चय करता है, अनात्मदेहादिकविषे आत्माभिमानकरिकै तैसी ही गतिको पाता है, बहुरि देश काल क्रिया द्रव्यका संकल्प जैसा दृढ होता है, तैसा अनुभवसत्ताविषे हो भासता है, तिसविषे चार अवस्था कल्पित होती हैं, जैसी जैसी भावना होती हैं, तिसके अनुसार अवस्थाका अनुभव होता है, सो अवस्था कौन कौन है, सो श्रवण कर, एक घन सुषुप्ति है, दूसरी क्षीण सुषुप्ति है,तीसरी स्वप्न अवस्था है, चौथी जाग्रत् है, अब इनके भेद सुन. हे रामजी ! पर्वत पाषाण जो हैं, सो घन सुषुप्तिविषे हैं जैसे सुषुप्तिअवस्थाविषे कछु फुरता नहीं जड़ीभूत हो जाता है, तैसे तिनको फुरणा कछु नहीं फुरता, घन सुषुप्तिविषे स्थित हैं अरु वृक्ष क्षीण सुषुप्तिविषे स्थित हैं, जैसे क्षीण सुषुप्तिविषे कछु फुरणा फुरता है, तैसे वृक्षविषे भी फुरणा होता है ताते क्षीण सुषुप्तिविषे तिर्यग् जो पक्षी कीट पतंग जीव हैं, सो स्वप्न-अवस्थाविषे स्थित हैं,जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासता है, परंतु दृढ समष्टि नहीं भासता है, तैसे इनको थोडा सूक्ष्म ज्ञान है, ताते स्वप्नअवस्थाविषे

स्थित हैं अरु मनुष्य देवता हैं, सो जाग्रत्‌रूप जगत्‌का अनुभव करते हैं. हे रामजी !-यह चारों अवस्था आत्माविषे स्थित हैं अरु आत्मसत्ताहीविषे स्थित हैं, सबका अहंप्रत्ययरूप आत्मा है, बडेका क्या अरु छोटेका क्या. तिसविषे जैसा संकल्प दृढ होता है तैसा ही हो भासता है. हे रामजी ! हमको एक दिन व्यतीत होता है अरु कीटको युगका अनुभव होता है अरु उनके युगविषे हमको एक क्षणका अनुभव होता है अरु हमको सूक्ष्म अणु होता है, तिनको वह पर्वतके समान भासता है. हे रामजी ! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है, परंतु भावनाकरि भिन्न भासता है अरु एक कीट है, सो बहुत सूक्ष्म है, जब वह चलता है तब वह जानता है कि, मेरा गरुडकासा वेग है, उसको वही सत् हो रहा है अरु वालखिल्यका अंगुष्ठप्रमाण शरीर है, तिनको वही बडा भासता है विराट्‌को वही अपना बड़ा शरीर भासता है, जैसी जिसकी भावना होती है, तैसा ही तिसको भासता है, मनुष्य देवता पशु पक्षी सबको अपना भिन्न भिन्न संकल्प है, जैसा संकल्प किसीको दृढ हो रहा है, तिसको तैसा ही स्वरूप भासता है, जैसे मनुष्य राग, द्वेष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक विकारकरि आसक्त होता है, तैसे कीट पतंग पक्षी आदिको भी होते हैं, परंतु एता भेद है कि, जैसे हमको यह जगत् स्पष्ट रूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता, संसारी सब हैं, परंतु वासनाके अनुसार घटवत् भासते हैं अरु दुःखका अनुभव स्थावर जंगमको भी होता है, जो किसी स्थानको अग्नि लगती है, उसविषे वृक्ष पाषाण जलते हैं, तब उनको भी दुःख होता है, परंतु सूक्ष्म स्थूलका भेद है, जैसे अपर जीवको शस्त्रप्रहार कियेते शरीर नष्ट होनेका दुःख होता है, तैसे वृक्षादिकको भी होता है, परंतु घन सुषुप्ति क्षीणसुषुप्ति स्वप्न जाग्रत्‌का भेद है, पर्वत पाषाणको सूक्ष्म जैसा दुःख होता है, वृक्षको पाषाणते विशेष होता है, परंतु स्पष्ट मान अपमानका दुःख नहीं होता; स्वप्नकी नाईं होता है अरु मनुष्य देवताको स्पष्ट राग द्वेष जाग्रत्‌की नाईं होता है, काहेते जो जाग्रत्‌अवस्थाविषे स्थित हैं अरु

वृक्ष पाषाण आदिकको स्पष्ट दुःखका विकल्प नहीं उठता,जडता स्वभावविषे स्थित है अरु दुःख कहिये तौ सबको होता है अरु तू अपर आश्चर्य देख कि कीट महादुःखी रहते हैं,जब मृतक होवैं तब सुखी होवैं अरु अज्ञानकरिकै जो इस शरीरविषे आस्था हुई है तिसको भी मरणा बुरा भासता है तौ अपर जीवको भला कैसे लगै? हे रामजी! अपने स्वरूपके प्रमादकरिकै भय क्रोध लोभ मोह जरा मृत्यु क्षुधा तृषा राग द्वेष हर्ष शोक इच्छादिक विकारकी अग्निकरि जीव जलते हैं, आत्मानंदको नहीं प्राप्त होते घटीयंत्रकी नाईं वासनाके अनुसार भटकते हैं, जब वासना दृढ पापकी होती है, तब पाषाण वृक्ष योनिको पाते हैं, जब क्षीण वासना तामसी होती है, तब तिर्यक् पक्षी सर्प कीट योनिको पाते हैं. हे रामजी! राजसी वासनाकरि मनुष्य होते हैं, सात्त्विकी वासनाकरि देवता होते हैं अरु जब मनुष्य शरीर धारिकरि निर्वासनिक होते हैं तब मुक्तिको पाते हैं जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जीवका दुःख नष्ट हो जाता है अपर दुःखके नाश करनेका उपाय कोई नहीं यह जगत्के दुःख तबलग भासते हैं जबलग इसको आत्मज्ञान नहीं उपजा,जब आत्मज्ञान उपजा तब जगत्भ्रम मिटि जाता है अरु जो मुझते पूछौ तौ वास्तव न कोऊ देवता है, न मनुष्य है, न पशु पक्षी है, न पाषाण है, न वृक्ष है, न कीट है सब चिदाकाशरूप है दूसरा कछु बना नहीं भ्रांतिकरिकै नाना स्वरूप हो भासता है सदा सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी! न कछु जगत्का होना है, न अनहोना है; न आत्मता है, न परमात्मता है, न मौन है, न अमौन है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अचैत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जन्म अरु जन्मांतर भ्रमकरिकै भासते हैं, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर भ्रमकरिकै भासता है अरु जैसे स्वप्नविषे एक अपना आप होता है, निद्रादोषकरि द्वैत भासता है, तैसे एक अब भी आत्मा अद्वैतरूप है, अविचारकरिकै नानात्व भासता है अरु दुःख भी अज्ञानकरिकै भासता है, विचार कियेते दुःख कछु नहीं पाता, जो यह पुरुष मृतक होकरि उत्पन्न होता है, तौ शांति हुई, दुःख कोऊ नहीं अरु जो

मृतक होकरि शांत हो जाता है, उपजता नहीं, तौ भी दुःख कोऊ नहीं, मुक्त हुआ अरु जो मरता नहीं तौ भी ज्योंका त्यों हुआ, दुःख कोऊ नहीं हुआ अरु जो सर्व चिदाकाश है, तौ भी दुःख कोऊ नहीं हुआ. हे रामजी ! अज्ञानीके निश्चयविषे दुःख है, विचार कियेते दुःख कोऊ नहीं अरु यह जगत् आत्मरूपी आदर्शविषे प्रतिबिंबित है, परंतु यह जगतरूपी कैसा प्रतिबिंब है, जो अकारणरूप है, इसका कारणरूप बिंब कोऊ नहीं, कारणते रहित है, जैसे नदीविषे नीलताका प्रतिबिंब पडता है, सो अकारणरूप है, तैसे यह जगत् आकारणरूप है, अज्ञानीको तिसविषे सत्यता है, प्रमाददोषकरिकै ज्ञानीको द्वैत नहीं भासता, अज्ञानीको द्वैत भासता है.हे रामजी ! हमको तौ सदा चिदाकाश ही भासता है, हम जागे हुए हैं, ताते द्वैत कछु नहीं भासता, जैसे सूर्यको अंधकार नहीं भासता, तैसे हमको द्वैत नहीं भासता, जो ज्ञानी है, तिसको ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता, सर्व ब्रह्म ही भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० परमार्थरूपवर्णनं नाम ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २२९ ॥

त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३०.

नास्तिकवादनिराकरणम् ।

श्रीराम उवाच-हे भगवन् ! जो कछु तुमने कहा है सो मैं जानता भया हौं परंतु नास्तिकवादीका कल्याण भी किसी प्रकार होता है, जो नास्तिकवादी कहते हैं, कि जबलग जीव है, तबलग सुखी जीवै, जब मर जावैगा तब भस्मीभूत होवैगा, न कहूँ आना है, न कहूँ जाना है, तिनका कल्याण किस प्रकार होवैगा. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! आत्मसत्ता आकाशकी नाईं अखंडित सर्वत्र पूर्ण है, जबलग तिसका भान नहीं होता, तबलग मनकी तप्तता नष्ट नहीं होती, जब आत्मसत्ताका भान होता है, तब शांति प्राप्त होती है, आपको अमर जानता है अरु जिस पुरुषने अखंड निश्चयको अंगीकार किया है,तिसको दुःख स्पर्श नहीं करता, वह

ब्रह्मदर्शी होता है अरु जिसको ब्रह्मसत्ताका निश्चय नहीं भया, तिसके मनको ताप नहीं छोडते, स्वरूपके प्रमादकरि आपको मरता जानता है अरु महाप्रलयरूप आत्माविषे सर्व शब्दका अभाव है, जैसे महाप्रलयविषे सर्व शब्दका अभाव होता है, तैसे आत्माविषे सर्व शब्दका अभाव है, जिसको आत्माविषे निश्चय हुआ है, तिसको सर्व शब्दका अभाव हो जाता है, सो महाज्ञानवान् है, उसको आत्मसत्ता ही भासती है, जो वास्तव है, तिसको हमारा उपदेश नहीं, वह ज्ञानी है. हे रामजी! आत्मसत्ताविषे द्वैत जगत् कछु बना नहीं, परमार्थसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जो सृष्टि भासती है सो स्वप्नवत् अकारण है, तातें ज्ञानवान् पुरुष सर्व शब्द अर्थको नहीं जानता है, ऐसा पुरुष हमारे उपदेशके योग्य नहीं, काहेते कि जो सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत आत्मपद है, जो तिसको जाना है, तिसको बहुरि कर्तव्य कछु नहीं अरु जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्त भयी सो उपदेशका अधिकारी हैं अरु यह जगत् आत्माका किंचन है, अज्ञानीको सत् भासता है अरु ज्ञानीके निश्चयविषे कछु नहीं, जैसे संकल्पकरि एक वृक्ष रचा, तिसके पत्र टास फूल फल उसको भासते हैं, अपरके मनविषे शून्य होते हैं, तैसे अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् होता है, ज्ञानीके निश्चयविषे विलास है, आत्माते इतर कछु नहीं. हे रामजी! आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वव्यापी है,तिसविषे जैसा निश्चय फुरना होता है, अहंप्रत्यय भावनाकी दृढताते तैसे हो भासता है, जिस पदार्थका निरंतर दृढ अभ्यास होता है, शरीरके त्यागे हुए भी यही अभ्यास रूप धारि लेता है अरु आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है, केवल अद्वैत संवित् सबका अपना आप है, जैसे इसको स्वरूपका ज्ञान हुआ है, सो शास्त्रके दंडते रहित होता है अरु वेद शास्त्र जो पदार्थको भला बुरा सांच अरु झूठ वर्णन करते हैं, जिस पुरुषको तिसविषे निश्चय होता है, तिसको वासनाके अनुसार वेद फल देते हैं अरु जिसके निश्चयविषे आत्मते भिन्न सर्व शब्दका अभाव हुआ है, तिसको आत्म अनात्मविभागकलना भी नहीं रहती, देह रहै अथवा न रहै. हे रामजी! जिसकी संवित् जगत्के शब्द अर्थविषे बँधी हुई है, तिसको पदार्थविषे रागद्वेष उपजता

है, जैसे सुषुप्तिविषे आत्मसत्ता है अरु अभावकी नाईं स्थित है, तैसे नास्तिकवादी भी अपने जडस्वरूपको देखते हैं, काहेते कि, तिनको जड शून्यका अभ्यास है, तिसकरि उनकी संपत्ति दृश्य सुखसाथ वेधी हुई है, इसकरि तिनका जगत्भ्रम नहीं मिटता, उस मलिन वासनासाथ जो संवित् मिली है, इसकरि उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं, तिस जडताको भोगिकरि वासनाके अनुसार बहुरि परिणमैंगे अरु सुख दुःखको भोगैंगे उस भावनाकरि कछुक जगत्भान शून्य हो जाता है, केतेक काल पीछे चेतन होकरि बहुरि उनहीं कर्मको भोगते हैं, जैसे सूर्यके आगे बादल आवै, बहुरि निवृत्त होवै, तैसे जगत् होता है अरु फुरणारूप जो जीव है, जैसा तिसविषे निश्चय होता है, तैसा ही भासता है, जिसको एक आत्माविषे निश्चय होता है, सो जन्म मृत्यु आदिक विकारते रहित होता है अरु जिसको नानास्वरूप जगत्विषे निश्चय होता है, सो जन्म मरणते नहीं छूटता. हे रामजी ! जिस बुद्धिविषे पदार्थका रंग चढता है, सो रागद्वेषरूप नरकते मुक्त नहीं होता अरु जिसको एक आत्माका अभ्यास होता है, तिसके अभ्यासके बलते सब जगत् आत्मत्वकरि भासता है अरु राग द्वेषते मुक्त होता है, जैसे स्वप्नविषे किसीको अपना जाग्रत् स्वरूप स्मरण आता है, तब सर्व स्वप्नका जगत् तिसको अपना आप भासता है, तैसे जिसको आत्मज्ञान होता है, तिसको सर्व जगत् अपना आप भासता है, सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योति है, जिसको ऐसे आत्मसत्ताविषे नास्तिकभावना होती है, सो ऐसी अवस्थाको प्राप्त होता है, गर्त्तविषे कीट होता है, पाषाण वृक्ष पर्वत आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होता है, चिरकालपर्यंत तिनविषे रहता है, जबलग उसकी बुद्धिको द्वैतका संयोग होता है, तबलग जगत् भ्रमको देखता है अरु भ्रम नहीं मिटता, जब उसकी संवित्को द्वैतका संयोग मिटि जावै, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है. हे रामजी ! सम्यक्ज्ञानकरि जगत्भ्रमका अभाव हो जावैगा, अभावका निश्चय फुरै, तब बहुरि जगत् नहीं भासता अरु जब संसारके पदार्थकरि संवित् वेधी हुई है, तब

जैसा निश्चय होवैगा तैसा ही प्राप्त होता है, तिस निश्चयके अनुसार गतिको पावैगा. राम उवाच–हे भगवन् ! नास्तिकवादीका वृत्तांत तुमने कहा सो मैंने जाना अरु जिस पुरुषके हृदयविषे जगत्की सत्यता स्थित है अरु आत्मबोधके मार्गते शून्य है, शुद्धस्वरूपको नहीं जानता, तिसको अज्ञान है, तिसके मोक्षकी युक्ति अरु तिसकी अवस्था क्या होती है, सो मेरे दृढबोधनिमित्त कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसका उत्तर तो मैंने प्रथम ही तुझको कहा है, अब फेरि तुझने जो पूछा है ताते बहुरि कहता हौं, प्रथम तौ पुरुषका अर्थ सुन कि पुरुष किसको कहते हैं. हे रामजी ! यह जगत् नेत्रविषे स्थित नहीं, न श्रवणविषे है, न नासिका आदि इंद्रियविषे स्थित है, चेतनसंवित्विषे स्थित है जगत्, सो चेतन संवित् ही पुरुषरूप है. जिस पुरुषको तिसविषे निश्चय है सो ज्ञानवान् है तिसको द्वैतकलना नहीं फुरती, जो प्रत्यक्ष दृष्टि भी आती है परंतु उसके निश्चयविषे नहीं होती, जैसे आकाशविषे धूड भी दृष्टि आती है, परंतु स्पर्श नहीं करती तैसे ज्ञानवान्को द्वैतकलना स्पर्श नहीं करती अरु जिस चेतन संवित्साथ फुरणेका संबंध है तिसको जगत्का आकार भासता है अरु जिस पुरुषकी संवित्विषे देश काल क्रिया द्रव्यका संबंध है सो कलंक दृढ हो रहा है अरु अपने वास्तव अद्वैत स्वरूपके अभ्यासकरि मार्जन नहीं करता सो वास्तव चेतन आकाशरूप भी है तौ भी कलंककरि वासनाके अनुसार जगत् तिसको आपते भिन्न भासता है, द्वैतभ्रम नहीं मिटता. हे रामजी ! जो पुरुष ऐसा भी है कि देहके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहता है अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों नहीं भासती तौ अज्ञानी है, आत्मसत्ता जाननेविना संसार तिसका निवृत्त नहीं होता, जब आत्मसत्ताका साक्षात्कार होवैगा तब सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा. हे रामजी ! यह पुरुष न जीव है, न फुरना है, न शरीरके नाश होनेसे नाश होता है, यह पुरुष केवल चिन्मात्रस्वरूप है, अरु वासनाकरि भ्रमको देखता है अरु जो शून्यवादी हैं सो वृक्ष पर्वत जडादिक योनिको पाते हैं, जो सदा अनुभव तिसको त्यागकरि अपर

कछु इष्ट जानते हैं सो मूर्ख हैं, तिनको आत्मसुख नहीं प्राप्त होता, आत्माके प्रमादकरि अहं त्वम् अंतर बाहर आदिक शब्द भासते हैं अरु जब आत्मज्ञान हुआ तब सर्व शब्द आत्मारूप हो जाता है अरु जिन पुरुषोंने आत्मानात्मका निर्णय करि नहीं देखा सो पुरुषविषे नीच है अरु जिन पुरुषोंने निर्णय करिकै आत्माविषे अहंप्रतीति करी है, अनात्माका त्याग किया है, सो महापुरुष हैं, तिनको मेरा नमस्कार है अरु जिसने अनात्मविषे आत्माको त्यागिकरि अहंप्रतीति करी है सो बालक है, जैसे आकाशविषे बादलके चक्र हस्ती घोडेके आकार भासते हैं अरु जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है सो द्वैत कछु नहीं, जैसे स्वप्नके नगर अपने अपने अनुभवविषे स्थित होते हैं अरु बाहर द्वैतकी नाईं भासते हैं सो आभासमात्र हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है सो आभासमात्र है, वास्तव कछु नहीं, जिसको आत्मसत्ताका अनुभव हुआ है, तिसको जगत्के शब्द अर्थ राग द्वेष किसीकी कल्पना नहीं रहती, पुण्य पाप फल तिसको स्पर्श कछु नहीं करता. हे रामजी ! ज्ञानसंवित्का नाश कदाचित् नहीं होता ताते विश्व भी अनुभवरूप है, इस जगत्का निमित्तकारण अरु समवायिकारण कोऊ नहीं, काहेते कि अद्वैत है. अरु जो तू कहै प्रत्यक्ष घटादिक समवाय अरु निमित्तकारण उपजते दीखते हैं, तौ जैसे स्वप्नविषे कारण कार्य अनहोते भासते हैं, तैसे यह भी जान. प्रथम स्वप्नविषे बने हुए दृष्टि आते हैं, पाछे कारणकरि होते दृष्टि आते हैं, तैसे यह भी जान, केवल भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नसृष्टिका जागे हुए अभाव होता है तैसे ज्ञानकरि इसका अभाव हो जाता है; यह दीर्घकालका स्वप्न है ताते जाग्रत् कहाता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने आप होती है, निद्रादोषकरिकै भिन्न भासती है तैसे यह जगत् अपना आप है, परंतु अज्ञानकरिकै भिन्न भासता है, ज्ञान जाग्रत्ते सब अपना भासता है, तिसविषे रागद्वेषका अभाव हो जाता है; जैसे चंद्रमा अरु चंद्रमाकी चाँदनीविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, आत्मा ही जगत्रूप हो भासता है. हे रामजी !

तू अपने अनुभवविषे स्थित होकरि देख कि सर्व ब्रह्मरूप है, जगत् कछु नहीं भासता, सर्वात्मारूप है अरु साध्य है, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है तैसे आत्मसत्ता फुरणेरूपी बादलते परम शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे स्थित हुएते मान अरु मोहका अभाव हो जाता है, तृष्णा किसी पदार्थविषे नहीं रहती, प्रारब्धवेगकरि जो कछु आनि प्राप्त होता है तिसको भोगता है, आत्मदृष्टिकरि दुःखते रहित हुआ प्रत्यक्ष आचारको करता है तिसको शास्त्रका दंड नहीं रहता, परम शांतरूप विराजता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० नास्तिकवादनिराकरणं नाम त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३० ॥

एकत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३१.

परमोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूप हौं अरु दृश्य दर्शन द्रष्टा यह त्रिपुटी जो भासती है सो भी चिदाकाशरूप है,आत्मसत्ता ही त्रिपुटीरूप हो भासती है, दूसरी वस्तु कछु नहीं अरु नास्तिकवादी कहते हैं कि परलोक कोऊ नहीं, अर्थ यह कि जो आत्मसत्ता कोऊ नहीं, सो मूर्ख हैं. हे रामजी ! जो अनुभव आत्मसत्ता न होवै तौ नास्तिक किसकरि सिद्ध होवै ? जिसकरि नास्तिकवाद भी सिद्ध होता है सो आत्मसत्ता है, जो इष्टानिष्ट पदार्थविषे रागद्वेष करते हैं अरु आत्माका नाश कहते हैं सो महामूर्ख हैं, जैसे जाग्रत्के प्रमादकरिकै स्वप्नमें इष्टानिष्टविषे रागद्वेष करता है, इष्टको ग्रहण करता है, अनिष्टको त्यागता है अरु जागेते सर्व अपना ही स्वरूप भासता है, ग्रहण त्याग राग द्वेष किसी पदार्थविषे नहीं रहता, तैसे आत्माके अज्ञानकरिकै किसी पदार्थविषे राग करता है, किसीविषे द्वेष करता है, जब आत्मज्ञान होता है, तब सब अपना ही स्वरूप भासता है,राग द्वेष किसीविषे नहीं रहता अरु चित्तके फुरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है, चित्तके शांत हुए जगत् लय

हो जाता है,ताते जगत् मनविषे स्थित है, सो मन आत्माके अज्ञानकरि हुआ है, जब आत्मज्ञान हुआ तब मनुष्य देवता हस्ती नाग आदिक स्थावर जंगम सब जगत् आत्मरूप भासता है,राग द्वेष किसीविषे नहीं रहता अरु नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं सो नास्तिका साक्षी सिद्ध होता है,जिसकरि नास्ति भी सिद्ध होता है सो अस्ति आत्मपद है, तिस अस्ति अनुभवके एते नाम शास्त्रकार कहते हैं–सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहं ब्रह्म अस्मि कहते हैं, एक कहते हैं शून्य ही रहता है, एक कहते हैं अस्तिपद रहता है. हे रामजी ! यह सर्व संज्ञा आत्मसत्ताकी हैं सो आत्मसत्ता आपना ही आप स्वरूप है, सो मैं आत्मा हौं,यह अंग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं,इनको इष्ट पदार्थसाथ लेपन करिये अथवा चूर्ण करिये तौ मुझको हर्ष शोक कछु नहीं, इनके बढ़नेकरि मैं बढ़ता नहीं,इनके नष्ट हुए मैं नष्ट नहीं होता. हे रामजी ! तीन शब्द होते हैं,जो मैं जन्मा हौं अरु जीवता हौं अरु मरौंगा, जो प्रथम न होवै अरु उपजै तिसको जन्म कहते हैं,मध्यविषे जीवता कहते हैं, बहुरि नाश होवै तिसको मृतक कहते हैं सो आत्मविषे तीनों विकार नहीं. आत्मा उपजा भी नहीं,काहेते कि आदि ही सिद्ध है अरु मृतक भी नहीं होता, काहेते कि अविनाशी है, चेतन आकाश सबका अधिष्ठान है, कालका भी अधिष्ठान है, बहुरि तिसका नाश कैसे होवै ? अर्थ यह कि उदय अस्तते रहित है, जिसविषे देश काल जगतका किंचन होता है तिस-करि आत्माका नाश कैसे होवै ? ताते आत्मा अविनाशी है. हे रामजी ! जिस वस्तुको देश कालका परिच्छेद होता है तिसका नाश भी होता है सो देश काल वस्तु तीनों आत्माविषे कल्पित हैं, जैसे सूर्यकी किर-णोंविषे जल कल्पित होता है तैसे आत्माविषे तीनों कल्पित हैं, कल्पित वस्तुसाथ सत्यका अभाव कैसे होवै ताते आत्मा अविनाशी है अरु अद्वैत है, तिसविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे शून्य स्थानविषे वैताल कल्पित होता है तैसे आत्माविषे जगत् कल्पित है, तिस अभा-वरूप जगत्विषे प्रमादकरिकै एकको अभाव जानता है, एकको सद्-भाव जानता है, जब इस निश्चयको त्यागिकरि अंतरमोक्ष होवै तब

इसको शांति प्राप्त होवैगी अरु विचार करिकै देखिये तौ इस संसारविषे दुःख कहूँ नहीं, जो मरिकै बहुरि जन्म लेता है तौ भी दुःख कछु न हुआ, काहेते जो शरीर वृद्धिभावको प्राप्त होकरि क्षीण भया तब तिसको त्यागिकरि नूतनको ग्रहण किया तौ उत्साह हुआ, जो मृतक होकरि बहुरि नहीं उपजता तौ भी आनंद हुआ, काहेते जबलग जीता था तब-लग इसको ताप था तिसीका भाव जानता था, किसीका ग्रहण करता किसीका त्याग करता था, तिनकरि तपता था, जब तिनते छूटा तब बडा आनंद हुआ अरु जो सर्व चिदाकाशरूप है तौ भी अपना आप आनंदरूप है, दुःख कछु न हुआ हे रामजी ! एक प्रमादकरि दुःख होता है, अपर किसी प्रकार दुःख नहीं होता. यह जगत् सब आत्मरूप है, जो आत्मरूप हुआ तौ दुःख कैसे होवै ? अरु जो तू कहै, मैं अपने कर्मते डरता हौं, परलोकविषे मुझको भयका कारण होवैगा तौ बुरे कर्मका दुःख यहां भी होता है अरु परलोकविषे भी होवैगा ताते बुरे कर्म मत करु, मैं तुझको ऐसा उपाय कहता हौं, जिसकरि सर्व दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, सो उपाय यह जो कहौ मैं नहीं; अथवा ऐसे जान कि सर्व मैं ही हौं, सर्व वासना त्यागिकरि आपको अविनाशी जान अरु आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, यह जगत् भी सब तेरा स्वरूप है, जब ऐसे आत्माको जानैगा तब शरीरके त्याग कियेते भी दुःख कोऊ न रहैगा अरु शरीरके होते भी दुःख कहूँ नहीं, जब पूर्व शरी-रको त्यागिकरि नूतन जन्म लिया तब भी आनंद हुआ, परम शांति प्राप्त भई अरु जो चिदाकाशरूप है तौ भी परम आनंद हुआ. हे रामजी ! सर्व प्रकार आनंद है परंतु भ्रांतिकरिकै दुःख भासता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार होवैगा तब सर्व जगत् ब्रह्मानंदस्वरूप भासैगा. हे रामजी ! जिसको आत्मसत्ताका प्रकाश है सो पुरुष सदा आनंदविषे मग्न रहता है अरु प्रकृत आचारको भी करता है परंतु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे स्वरूपते चलायमान कदाचित् नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वत वायुकरि चलायमान नहीं होता तैसे ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे चलाय-मान नहीं होता, परम गंभीरताविषे रहता है ताते जो कछु

आत्माते इतर उत्थान होता है तिसको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, जो चिन्मात्र सत्ता शरत्कालके आकाशवत् निर्मल है, जब ऐसे स्वच्छ केवल चिन्मात्रका अनुभव होवैगा तब जगत् द्वैतरूप होकरि न भासैगा, व्यवहारविषे भी द्वैत न फुरैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० परमोपदेशवर्णनं नाम एकत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३२.
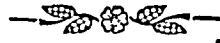
चेतनाकाशपरमज्ञानवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! जिन पुरुषोंको आत्मा परमात्माका साक्षात्कार हुआ है सो कैसे हो जाते हैं अरु कैसा उनका आचार होता है सो मेरे ताईं कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे उनकी चेष्टा अरु जैसे उनका निश्चय है सो सुनो, सबके साथ उनका मित्रभाव होता है, पाषाणसाथ भी मित्रभाव होता है अरु बांधवको ऐसे जानते हैं, जैसे वनके वृक्ष पत्र होते हैं, स्त्री पुत्रादिके साथ ऐसे होते हैं जैसे वनके मृगपुत्र साथ होते हैं, जैसे उनविषे स्नेह नहीं होता तैसे पुत्रादिकविषे भी स्नेह नहीं करते अरु जैसे माताकी पुत्रविषे दया होती है तैसे वह सबके ऊपर दया करते हैं अरु निश्चयते उदासीन रहते हैं, जैसे आकाश किसीके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे वह स्पर्श किसीसाथ नहीं करते अरु जेती कछु आपदा हैं सो उनको परमसुखरूप हैं अरु जेते कछु जगत्विषे रस हैं सो तिनको विरस हो जाते हैं, न किसीविषे राग करते हैं, न किसीविषे द्वेष करते हैं, तृष्णा करते दृष्टि भी आते हैं परंतु अंतरते जड पत्थरकी नाईं होते हैं, व्यवहार करते भी हैं परंतु निश्चयते परमशून्य मौन होते हैं, अर्थ यह कि सदा समाधिविषे स्थित होते हैं अरु सब क्रिया करते दृष्टि आते हैं सो किस प्रकार करते हैं जो सबको स्तुति करने योग्य हैं, यत्नते रहित सब क्रियाका आरंभ करते भी हैं परंतु निश्चयते सदा आपको अकर्त्ता जानते हैं अरु जो कछु प्रारब्धवेगकरि आनि प्राप्त

होता है तिसको भोगते हैं अरु देश काल क्रिया सबको अंगीकार करते हैं अरु जो परस्त्री आदिक अनिष्ट आय प्राप्त होवै तिसका त्याग भी करते हैं परंतु निश्चयते सदा अकर्त्ता ज्योंके त्यों रहते हैं अरु सुख दुःखकी प्राप्तिविषे समबुद्धि रहते हैं अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरते हैं परंतु स्वरूपते कदाचित् चलायमान नहीं होते, जैसे फूलके मारनेकरि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे दुःख सुखकी प्राप्तिविषे चलायमान नहीं होते, सदा स्वभावविषे स्थित रहते हैं, सुख दुःखको भोगते वह भी दृष्टि आते हैं अरु उनके निश्चयविषे कछु नहीं होता, जैसे स्फटिकमणिविषे कोऊ रंग राखिये तब तिसविषे रंग भासता है परंतु उसका रूप कछु अपर नहीं हो जाता, स्फटिक मणि ज्योंकी त्यों रहती है, तैसे सुखदुःखके भोग ज्ञानवान्विषे दृष्टि आते हैं परंतु स्वरूपते चलायमान कदाचित् नहीं होते, चेष्टा अज्ञानीकी नाईं करते हैं परंतु निश्चयते परम समाधि है, जैसे अज्ञानीको भविष्यत्का राग द्वेष सुख दुःख कछु नहीं होता तैसे ज्ञानीको वर्तमानका राग द्वेष नहीं होता अरु स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसी होती है कि सर्वसाथ मित्रभाव है, न उसते कोऊ खेदवान् होता है, न वह किसीते खेदवान् होता है अरु जब उसको सुख आनि प्राप्त होता है तब रागवान् दृष्टि आता है अरु दुःखकी प्राप्तिविषे दोषवान् दृष्टि आता है परंतु निश्चयते उसको हर्ष शोक कछु नहीं,जैसे नट स्वांग लाता है,जैसे स्वांग होता है तैसी चेष्टा करता है राजाका स्वांग होवै अथवा दरिद्रका होवै परंतु निश्चय अपने रूपविषे होता है, तैसे ज्ञानवान्विषे सुख दुःख दृष्टि आते हैं परंतु निश्चय उनका आत्मस्वरूपविषे होता है अरु पुत्र धन बांधव आदिकको बुद्बुदेकी नाईं जानता है, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, बहुरि लीन भी हो जाते हैं परंतु जलको राग द्वेष कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्को राग द्वेष कछु नहीं होता अरु सबके ऊपर दयास्वभाव होता है अरु पतित प्रवाहविषे जो सुख दुःख आनि प्राप्त होता है तिसको भोगता है, जैसे वायु चलता है तब दुर्गंध सुगंधको साथ ले जाता है परंतु वायुको राग द्वेष कछु नहीं तैसे ज्ञानवान्को राग द्वेष कछ नहीं, बाहर अज्ञानीकी नाईं व्यवहार

करता है परंतु निश्चय जगत्को भ्रांतिमात्र जानता है, अथवा सर्व ब्रह्म जानता है, सदा स्वभावविषे स्थित होता है, अनिच्छित प्रारब्धको भोगता है, परंतु जाग्रत्विषे सुषुप्तिकी नाईं स्थित है, पूर्व अरु भविष्यत्की चिंतवना नहीं करता,वर्तमानविषे विचरता है सो अंतरते शीतल रहता है, बाह्य इष्ट अनिष्ट दृष्टि आते हैं, अंतरते अद्वैतरूप है, ज्ञानवान् कर्म करता है परंतु कर्मविषे अकर्मको जानता है अरु जीवता ही मृतककी नाईं है. हे रामजी ! जैसे मृतक होता है, तिसको बहुरि जगत्की कलना नहीं फुरती तैसे जिसको आत्मपद्की अहंप्रत्यय हुई है तिसको द्वैत नहीं भासता; प्रत्यक्ष व्यवहार उसविषे दृष्टि भी आता है परंतु निश्चयविषे अर्थ शांत हो गया है. राम उवाच-हे भगवन् ! यह ज्ञानीके लक्षण जो तुमने कहे सो तिनको वही जानैं, अपर कोऊ नहीं जानता, काहेते कि बाहिरकी चेष्टा अज्ञानीके तुल्य है अरु अंतरते शांतरूप है, जो ब्रह्मचर्यकरि भी अंतर धैर्य होता है, तपस्याकरि भी राग द्वेष कछु नहीं फुरता अरु एक मिथ्या तपस्वी है तिसी प्रकार हो बैठते हैं, उनका निश्चय सत् है अथवा असत् है, उनको कैसे जानिये ? सो कृपा करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह निश्चय सत् होवै अथवा असत् होवै, यह लक्षण संतके हैं, अरु आत्माका जो साक्षात्कार है यह निश्चय अपने आपकरि जानता है अपर किसीकरि नहीं जानता, इसी कारणते तिसका लक्षण ज्ञानी ही जानता है, अपर कोऊ नहीं जानता, जैसे सर्पके खुदको सर्प ही जानता है, अपर कोऊ नहीं जानता तैसे ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेद्य है. हे रामजी ! यह जो गुण कहे हैं सो ज्ञानवान्विषे स्वाभाविक भी रहते हैं, अपरको यत्नसाध्य हैं अरु सर्व जगत् तिसको भ्रांतिमात्र है, अथवा अनुभवदृष्टि करिकै अपना आप ही भासता है इस कारणते परमशांत है, राग द्वेष उसके निश्चयविषे नहीं फुरता अरु अपने निश्चयको बाह्य प्रगट नहीं करता अरु जो अधिकारी होता है तिसको जनावता भी है अरु जो अनधिकारी अज्ञानी है तिसको जान भी नहीं सकता, जैसे बावनचंदनकी बडी सुगंधि है परंतु दूरते नहीं भासती, तैसे अज्ञानी उसके निश्चयते दूर है इस कारणते वह

जान नहीं सकता, जो चर्मदृष्टिकरि देखै सो उसको देखि नहीं सकता अरु वह अधिकारीविना जनावता भी नहीं, जैसे अमोलक चिंतामणि होवै अरु नीचको दीजै तौ भी उसके माहात्म्यको वह नहीं जानता ताते उसका निरादर करता है, तैसे आत्मरूपी चिंतामणि है, अनधिकारी जो अज्ञानी है सो तिसका माहात्म्य नहीं जानता इसते उसका निरादर होता है, इसी कारणते ज्ञानवान् प्रगट नहीं करता. हे रामजी ! अपने ऐश्वर्यको जो प्रगट करता है कि हमको अर्थकी प्राप्ति होवैगी अरु हमारी मान्यता होवैगी अरु हमारे चेले बनैंगे, हमारी पूजा होवैगी सो अज्ञानी है और ज्ञानवान् पदार्थको गंधर्वनगर अरु इंद्रजालकी नाई जानते हैं, बहुरि वांछा किसकी करैं, इस कारणते अनधिकारीको अपना इष्ट नहीं प्रगट करते, जो कोऊ निकट बैठता है तौ भी अपने निश्चयरूपी अंगको सकुचाय लेते हैं, जैसे कच्छू अपने अंगको सकुचाय लेता है तैसे वह निश्चयरूपी अंगको सकुचाय लेते हैं अरु जो अधिकारी देखते हैं तिस प्रति प्रगट करते हैं. हे रामजी ! पात्रविषे पदार्थ पाया शोभता है, अपात्रविषे पाया अनिष्ट हो जाता है, जैसे गऊको घास देना है तब वह भी क्षीर होता है अरु सर्पको क्षीर दिया तौ विष हो जाता है, तैसे अधिकारीको दिया शुभ होता है, अनधिकारीको अनिष्ट हो जाता है. हे रामजी ! अणिमाते आदि लेकरि जो सिद्धि हैं सो जपकरि द्रव्यकरि अरु कालकरि अथवा देशकरि प्राप्त होती हैं, सो अभ्यासके बलकरि अज्ञानीको भी प्राप्त होती हैं अरु ज्ञानीको भी होती हैं, परंतु ज्ञानका फल नहीं, यह जप आदिकका फल है अरु जिसकी सिद्धताके निमित्त जो पुरुष दृढ होकरि लगता है सोई सिद्ध होता है, जो इन सिद्धियोंका दृढ अभ्यास करता है तब उनकरिकै आकाशमार्गविषे उड़ने आने जाने लगता है, सो यह पदार्थ तबलग रस देते हैं, जबलग आत्ममार्गते शून्य है. हे रामजी ! परम सिद्धता इनकरि प्राप्त नहीं होती, सो परम सिद्धता आत्मपद है, जिसको आत्मपदकी प्राप्ति भई है सो इनकी अभिलाषा नहीं करता, ऐसा पदार्थ पृथ्वीविषे कोऊ नहीं, आकाशविषे देवताके स्थानोंविषे भी नहीं, जिस-

विषे ज्ञानीका चित्त मोहित होवै, सब पदार्थ ज्ञानवान्‌को मृगतृष्णाके जलवत् भासते हैं अरु मेरे सिद्धांतविषे तौ यही है कि सदा विषयते उपरत होना अरु आत्माको परम इष्ट जानना, इसीका नाम ज्ञान है अरु जो प्रारब्ध करिकै आनि प्राप्त होवै तिसको करता है, परंतु करणेकरि तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता अरु अकरणेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, न किसी अर्थका आश्रय करता है न तिसके निमित्त किसी भूतका आश्रय करता है, सर्वदा अपने आप स्वभावविषे स्थित होता है, ऐसे निश्चयको पायकरि आश्चर्यवान् होता है, कहता है कि बडा आश्चर्य है, सदा अपना आप स्वरूप है तिसको मैं विस्मरण करिकै एता काल भ्रमता रहा हौं, अब मुझको शांति प्राप्त भई है अरु जगत्‌को देखिकै वह हँसता है, काहेते कि यह जगत् अनायासरूप है, अपनी ही संवित्‌विषे स्थित है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब स्थित होता है तैसे अपनी संवित्-विषे जगत् स्थित है, तिसको वह द्वैत जानते हैं अरु रागद्वेषकारि जलते हैं, ऐसे अज्ञानीको देखिकरि हँसता है अरु व्यवहार करता भी हँसता है, जैसे किसीने स्वप्नविषे हाथमें स्वर्ण दिया अरु देकरि बहुरि लिया अरु इसने उसको स्वप्न जाना तब चेष्टा करता है परंतु हँसता है, कहता है कि यह मेरा ही स्वरूप है, तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्च-यविषे हँसता है अरु जैसे किसी ग्रामको अग्नि लगती है तिस गांवते निकसिकरि एक पुरुष पर्वतपर जाय बैठे तब जलतेको देखिकरि हँसता है तैसे ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी नगर जलतेसों निकसकरि आत्मरूपी पर्वतपर जाय बैठा है सो अज्ञानीको दग्ध होता देखिकरि हँसता है, जो आप अशोक होकरि उनको सशोक देखता है. हे रामजी ! जब ज्ञानवान् बोधदृष्टिकरि देखता है तब अद्वैत सत्ता भासती है अरु जब अंतवाह-कविषे स्थित होकरि देखता है तब जैसे स्थित होते हैं तैसे उनको देखता है, आपको शांतरूप देखता है, अर्थ यह कि आत्मतत्त्व परमानंदस्वरूप है, तिसते इतर जेते कछु पदार्थ हैं सो सब दोषरूप हैं, सिद्धताते आदि लेकरि जेती कछु क्रिया हैं सो संसारके कारण हैं, जैसे समुद्रविषे कई तरंग बड़े होते हैं कई छोटे होते हैं परंतु समुद्रहीविषे हैं, जिस तरंगका

आश्रय करैगा सो सिद्धताको प्राप्त होवैगा, हलने डोलने कहनेते मुक्त होवैगा, तैसे सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं सो कहूं बड़ा ऐश्वर्य है, कहूँ छोटा ऐश्वर्य है परंतु संसारहीविषे है, जो पुरुष इस क्रियाको त्यागिकरि अंतर्मुख होवैगा सो संसाररूपी समुद्रको त्यागिकरि आत्मरूपी पारको प्राप्त होवैगा. हे रामजी! जिस पुरुषको जिस पदार्थका अभ्यास होता है सोई तिसको प्राप्त होता है, जैसे पाषाणको नित्यप्रति घसते रहिये तो वह भी चूर्ण हो जाता है तैसे जिस पदार्थका सर्वदा अभ्यास करता है सो प्राप्त होता है, जिसको आत्मपद अभ्यासकरि प्राप्त होता है सो परम-श्रेष्ठ हो जाता है अरु सब जगत्के ऊर्ध्व विराजता है अरु परमदयाकी खान होता है,जैसे मेघ समुद्रते जल लेकरि वर्षा करते हैं सो जलका स्थान-क समुद्र होता है,तैसे जेते कछु दया करते दृष्टि आते हैं,ज्ञानवान्के प्रसाद-करि करते हैं,सर्व दयाका स्थान ज्ञानवान् है अरु ज्ञानवान् सबका सुहृद् है, जो कछु प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त होता है तिसको करता है अरु जो शरीरको दुःख आनि प्राप्त होता है तिसको ऐसे देखता है,जैसे अन्य शरीरको होता है, अपनेविषे सुख दुःख दोनोंका अभाव देखता है अरु जिसको अभ्यास नहीं प्राप्त भया सो शरीरके रागद्वेषकरि जलता है अरु ज्ञानीको शांतिमान् देखिकरि अपरको भी शुभ होता उपज आती है,जैसे पुण्यकरिकै जो स्वर्ग गया है तिसको नाते आदि पदार्थ दृष्टि आते हैं, कल्पवृक्ष सुंदर मंजरियोंसंयुक्त अरु सुंदर अप्सरा आदिक दृष्टि आते हैं, तिन पदार्थनको देखिकरि प्रसन्नता उपजती है,तैसे ज्ञानवा-न्की संगतिविषे जो पुरुष जाता है तिसको प्रसन्नता उपजि आती है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतलता उपजाता है तैसे ज्ञानवान्की संगति शीतलता उपजाती है, ज्ञानवान् आत्मपदको पायकरि आनंदवान् होता है सो आनंद दूर नहीं होता, काहेते कि आप ही तिस आनंदक-करि अष्ट सिद्धि स्वयं तृणसमान भासती हैं. हे रामजी! ऐसे पुरुषका आचार अरु वह जिस स्थानोंविषे रहते हैं सो सुनौ, कईतौ एकांत जाय बैठते हैं, कई शुभस्थानविषे रहते हैं, कई गृहस्थ ही रहते हैं, कई अवधूत हुए सबको दुर्वचन कहते हैं, कई तपस्या करते हैं, कई

परम ध्यान लगाय बैठते हैं, कई नंगे फिरते हैं, कई बैठे राज्य करते हैं, कई पंडित होकारि उपदेश करते हैं, कई परम मौन धारि रहे हैं, कई पहाडकी कंदराविषे जाय बैठते हैं, कई ब्राह्मण हैं, कई संन्यासी हैं, कई अज्ञानीकी नाईं विचरते हैं, कई नीच पामर होते हैं, कई आकाशविषे उडते हैं इत्यादिक नानाप्रकारकी क्रिया करते दृष्टि आते हैं परंतु सदा अपने स्वरूपविषे स्थित हैं. हे रामजी! जिसको पुरुष कहते हैं सो देह इंद्रियां पुरुष नहीं अरु अंतःकरणचतुष्टय भी पुरुष नहीं, पुरुष केवल चिदाकाशरूप है, सो न कछु करता है, न किसीकारि उसका नाश होता है, जैसे नट स्वांग ले आता है अरु सब चेष्टा करता है, परंतु नटभावते आपको असंग देखता है तैसे ज्ञानवान् व्यवहार भी करता है परंतु आपको अकर्त्ता असंग देखता है, अच्छेद्य हौं, अदाह्य हौं, अक्लेद्य हौं, अशोष्य हौं, नित्य हौं, सर्वगत हौं, स्थिर हौं, अचल हौं, सनातन हौं, हे रामजी! इस प्रकार आत्माविषे जिसको अहंप्रतीति भई है तिसका नाश कैसे होवै अरु बंधमान कैसे होवै? वह पुरुष भावै जैसे आरंभ करे अरु भावै जैसे स्थानविषे रहै, तिसको बंधन कछु नहीं होता, पातालविषे चला जावै अथवा आकाशविषे उड़ता फिरै अथवा देशांतरविषे भ्रमता फिरै, तिसको न कछु अधिकता है, न कछु ऊनता है, पहारविषे चूर्ण हो जावै तौ भी चूर्ण नहीं होता, यह तौ चेतन पुरुष है, शरीरके नाश हुए इसका नाश कैसे होवै? ऐसे अपने स्वरूपविषे सदा स्थित है, आकाशवत् परम निर्मल है, अजर अमर शिवपद है, ताते हे रामजी! ऐसे जानिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० चेतनाकाशपरमज्ञानवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३३.

सर्वपदार्थाभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! एक भावमात्र है, एक भासमात्र है, एक भासितमात्र है; भावमात्र कहिये केवल चेतनमात्र, तिसविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार उत्थान हुआ तिसका नाम भास है, बहुरि तिसविषे जो जगत् हुआ तिसका नाम भासित है सो भासित कल्पितका नाम है सो कल्पितके नाश हुए अधिष्ठानका तौ नाश नहीं होता क्यों कि जो अधिष्ठान कछु अपर भाव होवै तौ नाश भी होवै सो तौ कछु अपर बना नहीं, तिसके फुरणेविषे तीन संज्ञा हुई हैं सो फुरणा भी तिसका किंचन है, आत्मा फुरणे अफुरणेविषे ज्योंका त्यों है, जैसे स्पंद निस्पंदविषे वायु एक ही है, तैसे बोध अबोधविषे आत्मा एकही है, बोध अबोध फुरणा अफुरणा एक ही अर्थ है. हे रामजी ! सो आत्मा किसकरि अरु कैसे नाश होवै ? चेतन भी मरता होवै तब इसका किंचन जगत् कैसे रहै ? किंचन कहिये आभास, सो आभास अधिष्ठानविना नहीं होता तातें आत्माका नाश नहीं होता अरु तुम जो चेतनको भी मरता मानौ जो मरिकै बहुरि नहीं उपजता तौ भी आनंद हुआ, मेरा भी यही उपदेश है जो चेतनता मिटै, जब चेतनता उपजती है तब जगत् भासता है, तिसके मिटेते आत्मा ही शेष रहैगा, ब्रह्म चेतनका तौ नाश नहीं होता अरु जो तू कहै वह चेतन नाश हो जाता है, यह अपर चेतन है, जिसते जगत् होता है तो हे रामजी ! अनुभव तौ एक है, उसका नाश कैसे मानिये जैसे बरफ शीतल है, भावे किसी ठौरते पान करिये वह सबको शीतल ही है अरु अग्नि उष्ण ही है, जिस ठौरते स्पर्श करिये तहां उष्ण ही है, तैसे आत्माका स्वरूप चेतन है, सो एक अखंडरूप है, जहां कोऊ पदार्थ भासता है सो तिसी चेतनताकरि प्रकाशता है अरु चेतनसत्ता स्वच्छ निर्मल है, अद्वैत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसका नाश कैसे होवै ? अरु जो तू शरीरके नाश हुए आत्माको नाश होता मानै तौ ऐसे नहीं, काहेते कि शरीर यहां अखंड पडा है, वह

परलोकविषे चेष्टा करता है अरु पिशाच आदिकका शरीर भी नहीं दृष्टि आता, जो शरीरविना अभाव होता होवै तौ उनका भी अभाव हो जावै ताते शरीरके अभाव हुए आत्माका अभाव नहीं होता, काहेते कि शरीरके मृतक हुए कछु चेष्टा शरीरसाथ होती नहीं, काहेते जो पुर्यष्टका जीवकला बीज नहीं, शरीर तौ अखंड पड़ा है, उसते कछु नहीं होता, जीव परलोकविषे सुख दुःख भोगता है तौ शरीरके नाश हुए नाश क्यों न हुआ ? अरु जो तू कहै, सब स्वभाव उसविषे रहता है तौ सर्वकाल उसको क्यों नहीं देखता, उसी समय आपको मृतक देखता है अरु बांधव भाई जन सब उसी समय मृतक जानते हैं अरु जो तू कहै, जीवित धर्मकरि वेष्टित है, इसीते सब अवस्थाका अनुभव नहीं करता, मृत्युसमय जब जीवित्वभाव नष्ट हो जाता है तब मृतक होता है, जो ऐसे होवै तौ परलोकका अनुभव न करै सो ऐसा नहीं, जब शरीरपात होता है तब सब अवस्थाको भी जानता है, बहुरि परलोकविषे शब्द होता है तिसका अनुभव करता है, अपने कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है अरु देशस्थानको प्राप्त होता है, यह वार्त्ता शास्त्रकरि भी प्रसिद्ध है; जो वेद शास्त्र पढे करते हैं अरु अनुभवकारिकै भी प्रसिद्ध है कि मृतकको किसने जाना अरु अभावको किसने जाना ? जिसने जाना सो आत्मा है, एक अखंड है ताते हे रामजी ! शरीरके नाशविषे आत्माका नाश नहीं, सो नित्य शुद्ध है, जैसा जैसा निश्चय उसविषे होता है तैसा ही हो भासता है, जैसा मिलता है तैसा प्रकाशता है, ऐसा जो सत्य आत्मा है सो किसीविषे बंधमान नहीं होता, जैसे जेवरीविषे सर्पआकार भासता है सो जेवरी सर्प तौ नहीं हो जाती, सर्प कल्पितका अभाव हो जाता है अरु जेवरी ज्योंकी त्यों रहती है, तैसे आत्मसत्ता आकार हो भासती है परंतु आकार तौ नहीं होती, आकारका अभाव हो जाता है अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है, इसी कारणते बंधमान नहीं होती, ऐसी आत्मसत्ताविषे जो विकार भासते हैं सो भ्रममात्र हैं अरु भ्रांतिहीकरि दुःख पाते हैं. हे रामजी ! यह जगत् आभासमात्र है, तिस

आभासमात्रविषे जो राग द्वेष आदिक फुरते हैं सो तिनकी निवृत्तिका उपाय मैं तुझको कहता हौं अरु जो कछु उपदेश मैंने किया है, तिसके विचारनेकरि भ्रांति निवृत्त हो जावैगी अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अभ्यास विना आत्मपदकी प्राप्ति चाहे तौ कदाचित् न होवैगी, जब वारंवार अभ्यास करैगा तब द्वैतभ्रम मिटि जावैगा अरु आत्मपद प्राप्त होवैगा, जिसका नित्य अभ्यास करता है अरु यत्न भी तिसका करता है सो प्राप्त होता है, वह कौन पदार्थ है जो अभ्यासकरि प्राप्त न होवै ? जो थककर फिरै नहीं अरु दृढ अभ्यास करै तौ प्राप्त होता है; राज्यकी लक्ष्मी तब प्राप्त होती है जब रणविषे दृढ होकरि युद्ध करता है, तब जय होती है अरु मुखते कहै मेरी जय होवै तब तौ नहीं होती, तैसे आत्मपद भी तब प्राप्त होवैगा जो दृढ अभ्यास करैगा, अभ्यास विना कहनेमात्रकरि प्राप्त नहीं होता. हे रामजी ! इस मनके दो प्रवाह हैं, एक जगत्का कारण है, एक स्वरूपकी प्राप्तिका कारण है, जो असत्य शास्त्र हैं, जिनविषे आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा तिनको त्याग, यह जो महारामायण है मोक्ष उपाय सो चार वेद, षट् शास्त्र, सर्व इतिहास पुराणका सिद्धांत मैंने कहा है कि इसके समान अपर कोऊ न कहैगा, न किसीने कहा है, ऐसा जो शास्त्र है, इसके विचारविषे मनको लगावै तब शीघ्र ही आत्मपदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! आत्मज्ञान वर शापकी नाईं नहीं, जो कहनेमात्रते सिद्ध प्राप्त होवै, इसकी प्राप्ति तब होवैगी जब वारंवार विचार करिकै दृढ अभ्यास करैगा, जब भावना होवैगी तब मुक्तिपद होवैगा, ऐसा कल्याण पिता अरु माता नहीं करते अरु मित्र भी ऐसा कल्याण न करैंगे, तीर्थ आदिक सुकृत भी न करैंगे जैसा कल्याण वारंवार विचारते मेरा उपदेश करैगा, ताते अपर सब उपायको त्यागिकरि इसीका विचार करु तब भ्रांति सब मिटि जावैगी अरु शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी. हे रामजी ! अज्ञानरूपी विषूचिका रोग है तिसकरि जीव पडे जलते हैं, जो मेरे शास्त्रको विचारैगा तिसका रोग नष्ट हो जावैगा अरु ईश्वरकी महामाया है, जो मिथ्याभ्रमकरि दुःखी होते हैं, जो अपना दुःख नाश करणा

होवै तौ मेरा शास्त्र विचारै, जेते कछु सुंदर पदार्थ दृष्टि आते हैं सो मिथ्या हैं, तिनके निमित्त यत्न करना परम आपदा है, यह कैसे पदार्थ हैं, आपातरमणीय हैं, जो देखनेमात्र सुन्दर हैं अरु अंतरते शून्य हैं, इनकी प्रातिविषे मूर्ख आनंद मानते हैं. हे रामजी! यह पदार्थ तबलग सुन्दर भासते हैं जबलग इसको मृत्यु नहीं आया, जब मृत्यु आवैगा तब सब क्रिया रह जावैंगी, इनके निमित्त जो बडे यत्न करते हैं सो मूर्ख हैं, जिस कालविषे मृत्यु आता है तिसी काल इसको कष्ट आनि प्राप्त होता है. चंद-नका लेप इसको करिये तौ भी शीतल नहीं होता अरु जिस द्रव्यके निमित्त बड़ा यत्न करता है अरु प्राणको त्यागता है, युद्ध करता है धनके निमित्त, सो धन स्थिर नहीं रहता, धनका अरु प्राणीका वियोग हो जाता है, जब वियोग होता है तब कष्ट पाता है अरु मैं ऐसे उपाय कहता हौं, जिसविषे यत्न भी थोड़ा होवै अरु सुगमतासे प्राप्त होवै, सो जब शास्त्रके अर्थविषे दृढ अभ्यास होता है तब अजर अमरपद प्राप्त होता है ताते तुम बोधवान् होहु, बोधकरिकै अभ्यासका अजरपदके निमित्त यत्न करु अरु जो यत्न न करैगा तौ अज्ञानरूपी शत्रु लात मारैगा अरु जो शत्रुको मारना होवै तौ निर्मान निर्मोह होकारि आत्मपदका अभ्यास करु. हे रामजी! जो पुरुष अबलग अज्ञानरूपी शत्रुके मारनेका यत्न नहीं करता अरु आत्मपद पानेका यत्न नहीं करता सो परम कष्टको पावैगा, संसाररूपी दुःखते कदाचित् मुक्त न होवैगा अरु निकसनेका उपाय यही है जो महारामायण ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसको विचारि-करिकै अपने हृदयविषे धारणा, इस उपायकरिकै भ्रांति मिटि जावैगी, कैसा महारामायण उपदेश है, जो सर्व सिद्धांतका सार है अरु अपर शास्त्रकरि प्राप्त होवै, अथवा न भी होवै परंतु इसके विचारकरि अवश्य आत्माको प्राप्त होवैगा, जैसे तिलकी खलते तेल निकसना कठिन है अरु तिलते तेल काढिये तौ निकसता है, तैसे मेरा उपदेश तिलकी नाईं है अरु इतर है सो खलकी नाईं है. हे रामजी! जेते कछु शास्त्र हैं, तिनविषे जो मुख्य सिद्धांत है तिसविषे सार जो सिद्धांत है सो मैंने तुझको कहा है, जो आत्मा सदा विद्यमान है तिसको भ्रांतिकरिकै अवि-

द्यमान जानता है, तिसीके विद्यमान करनेको सर्व शास्त्र प्रवर्त्ते हैं, जो तिनके विचारकरिकै भी आत्मपदको विद्यमान नहीं जानता सो मेरे उपदेश विचारनेसों आत्मपदको विद्यमान नहीं जानैगा यह निश्चय है। हे रामजी ! अपर शास्त्रके दृढ विचार अरु यत्नकरिकै जो सिद्धता होती है, सो इस शास्त्रके विचारकरिकै सुखेन ही प्राप्त होवैगी, शास्त्रकर्ताका अपर लक्षण नहीं विचारना, शास्त्रकी युक्ति विचारि देखनी है, जो कछु सर्व शास्त्रका सार सिद्धांत है सो मैंने तुझको सुगम मार्गकरि कहा है, इसके विचारकरि इसकी युक्ति देखै अरु जो कछु अज्ञानी मुझको कहते हैं अरु हँसते हैं सो मैं सब ही जानता हौं परंतु मेरा जो दयाका स्वभाव है तिसकरि चाहता हौं कि किसी प्रकार नरकरूप संसारते निकसैं, इस कारणते उपदेश करता हौं . हे रामजी ! मैं तुझको जो उपदेश करता हौं सो मैं किसी अपने अर्थके निमित्त नहीं करता कि मेरा कछु अर्थ सिद्ध होवैगा, जो कोऊ तुझको उपदेश करता है सो सुन, तेरा जो कोऊ बडा पुण्य है सोई शुद्ध संवित् होकरि मलीन संवित्को उपदेश करता है सो संवित् न देवता है न मनुष्य है न यक्ष है न राक्षस है, पिशाच आदिक भी नहीं, केवल जो ज्ञानमात्र है सो भी तू ही है अरु मैं भी वही हौं अरु जगत् भी वही है, जो सर्व वही है तौ वासना किसकी करनी है ? हे रामजी ! इसको दुःखका कारण वासना ही है, जो पुरुष इस संसारबंधन दुःखकी चिकित्सा अब न करैगा सो आत्महत्यारा है अरु बडे दुःखविषे जाय पडैगा, जहांते निकसनेको कभी समर्थ न होवैगा तब क्या करैगा ? ताते अबहीं उपाय करै, जबलग सर्व भावकी वासना निवृत्त नहीं होती तबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता, इसीका नाम बंधन है, जब वासना क्षय होवैगी तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो अविचारते सिद्ध हैं, विचार कियेते कछु नहीं रहते, जो विचार कियेते न रहैं तिनकी अभिलाषा करनी व्यर्थ है, जो वस्तु होती होवै तिसके पानेका यत्न भी करिये तौ बनता है अरु जो वस्तु न होती होवै तिसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है, यह जगत्के पदार्थ असत्यरूप हैं, जैसे शशेके शृंग

असत् हैं अरु जैसे मरुस्थलकी नदी असत् होती है तैसे यह जगत् असत् है, जो सम्यग्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है सो जानता है, यह जगत् शशेके शृंगवत् असत् भ्रांतिमात्र है, इसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है, जो पदार्थ कारणविना दृष्टि आवै तिसको भ्रांतिमात्र जानिये, आत्मा जगत्का कारण नहीं ताते जगत् मिथ्या है, आत्मपद सब इंद्रियाँ अरु मनते अतीत है अरु जगत् पांचभौतिक है सो मन इंद्रियोंका विषय है अरु आत्मपद है सो मन इंद्रियोंका विषय नहीं तौ जगत्का कारण कैसे कहिये, जो अशब्द पद है सो नानाप्रकार शब्दका कारण कैसे होवै ? जो निराकार आत्मपद है सो पृथ्वी आदिक भूत नाना-प्रकारके आकारका कारण कैसे होवै ? हे रामजी ! जैसा कारण होता है, तिसते तैसा कार्य उपजता है सो आत्मा निराकार अरु जगत् साकार है तौ निराकार साकारका कारण कैसे होवै ? जैसे वटका बीज साकार होता है तिसका कार्य वट भी साकार होता है अरु साकारतें निराकार कार्य तौ नहीं होता तैसे निराकारते साकार कार्य भी नहीं होता ताते इस जगत्का कारण आत्मा नहीं, न समवायिकारण है न निमित्तकारण है, निमित्तकारण तब होता है जब कछु द्वितीय वस्तु होती है, जैसे मृत्तिकाका कुलाल घट बनाता है सो आत्मा अद्वैत है, निमित्तकारण कैसे होवै ? अरु समवायिकारण भी तब होता है जब साकार वस्तु होती है, जैसे मृत्तिका परिणामीका घट होता है सो आत्मा निराकार अपरिणामी है, जगत्का कारण कैसे होवै ? दोनों कारणते जो रहित भासै सो जानिये कि भ्रांतिमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आकार भासते हैं सो कारणविना भासते हैं ताते भ्रांतिमात्र हैं, तैसे यह जगत् भी कारणविना भ्रांतिमात्र भासता है, आत्माविषे जगत् कदाचित् नहीं हुआ, जैसे प्रकाशविषे तम नहीं होता तैसे आत्माविषे जगत् नहीं. अरु जो तू कहै भासता क्यों है तौ उसीका किंचन भासता है सो वहीरूप है, जैसे चलती है तौ भी वायु है अरु ठहरती है तौ भी वायु है, चलने अरु ठहरनेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा

अरु जगतविषे भेद कछु नहीं. वही आत्मसत्ता फुरणेकरि जगतरूप हो भासती है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत् विषे भेद कछु नहीं, अपर कछु द्वैत वस्तु है नहीं, जो कहते हैं, जगत् कर्मोंकरि होता है सो असत्य है, कर्म भी बुद्धिकरि होते हैं सो आत्माविषे बुद्धि ही नहीं तौ कर्म कैसे होवै ? जो कर्म ही नहीं तौ जगत् कैसे होवै, जैसे शशेके शृंगके धनुषसाथ बाण चलाना असत्य है तैसे कर्मकरि जगतका होना असत्य है, अरु एक कहते हैं, सूक्ष्म परमाणुते जगत् हो जाता है सो भी असत् है, काहेते कि जो सूक्ष्म परमाणु परिणामीकरि जगतरूप हुए होते तौ बुद्धिरूप जगत् न भासता, यह तौ बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्टि आती है, जो परमाणुते जगत् होता तौ इनही करि बढता जाता, काहेते कि परमाणु जड हैं, वही बढते जाते हैं सो ऐसे तौ नहीं, बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्टि आती है, इसीते कहा है कि असत् कहते हैं; काहेते कि सूक्ष्म भी किसीते उत्पन्न हुआ चाहिये अरु कोऊ रहनेका स्थान भी चाहिये सो आत्माविषे देश काल वस्तु तीनों कल्पित हैं, जो आत्माविषे यह न हुए तौ परमाणु कैसे होवैं, जगत् कैसे होवै ? आत्मा अद्वैत है ताते जगत् न उपजा है न नष्ट होता है, जो उपजा होता तौ नष्ट भी होता; जो उपजा नहीं तौ नष्ट कैसे होवै ? आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है ताते हे रामजी ! मैं भी आकाशरूप हौं तू भी आकाशरूप है, सब जगत् ही आकाशरूप है, किसीके साथ आकार नहीं सब निराकाररूप है अरु जो तू कहै, बोलते चालते क्यों हैं तौ जैसे स्वप्नविषे सब आकाशरूप होते हैं अरु नानाप्रकारकी चेष्टा करते दृष्टि आते हैं, अरु बोलते चालते हैं तैसे यह भी बोलते चालते हैं परंतु आकाशरूप हैं अरु जो तेरा स्वरूप है सो श्रवण करु, देशको त्यागिकरि जो देशांतरको संवित् जाता है अरु तिसके मध्य जो ज्ञान संवित् है सो तेरा स्वरूप है सो अनामय सर्व दुःखते रहित है, जैसे जाग्रत् देशको त्यागिकरि स्वप्नमें जाती है, जाग्रत त्यागि दिया अरु स्वप्न आया नहीं, मध्य जो अचेत चिन्मात्रसत्ता है तैसे ब्रह्मरूप है, तिसविषे पंडित ज्ञानवान्‌का निश्चय है, ब्रह्मा विष्णु

रुद्रादिक तिसीविषे स्थित रहते हैं, तिनको कदाचित् उत्थान नहीं होता, जैसे बरफते अग्नि कदाचित् नहीं उपजती तैसे तिनको स्वरूपते उत्थान कदाचित् नहीं होते, सो आत्मसत्ता कैसी है ? न उपजती है न विनशती है, न अपरकी अपर होती है, सर्वदा अपने स्वभावविषे स्थित है. हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है सो वास्तवमें कछु उपजा नहीं, भ्रमकरिकै भासता है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आरंभ होते दृष्टि आते हैं अरु जागेते अत्यंत अभाव भासते हैं तैसे यह जगत् भी है, आदि जो अद्वैततत्त्वविषे स्वप्न हुआ है जिसविषे ब्रह्मा उपजा है, तिसने आगे जगत् रचा है सो ब्रह्मा भी आकाशरूप है, स्वरूपते इतर कछु हुआ नहीं, सब असत्यरूप है, जैसे स्वप्नविषे नदी पर्वत दृष्टि आते हैं परंतु कछु उपजे नहीं, अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है; तैसे ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जगत् सब असत्यरूप है, जिसको तू ब्रह्मा कहता है सो वास्तवमें कछु उपजा नहीं तौ जगत्की उत्पत्ति मैं तुझको कैसे कहौं ? जैसे मरुस्थलकी नदी ही उपजी नहीं तिसविषे मच्छियां कैसे कहिये ? तैसे आदि ब्रह्म नहीं, तिसविषे जगत् उपजा कैसे कहिये ? केवल आत्मचेतनसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है अरु यह जगत् भी वही रूप है परंतु अज्ञानकरिकै विपर्ययरूप भासता है, जैसे स्वप्नविषे पुरुष अनुभवरूप होता है अरु अपने प्रमादकरिकै नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, पर्वत जल पृथ्वी जन्म मरणादिक विकार देखता है परंतु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञानकरिकै विषयरूप भासते हैं तैसे यह जगत् भी जान, आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, अज्ञानकरिकै आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है. ताते हे रामजी ! जिसके अज्ञानते यह जगत् भासता है अरु जिसके ज्ञानकरि निवृत्त हो जाता है ऐसा जो आत्मतत्त्व है तिसके पानेका यत्न करौ, सो कैसा पद है, नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप है अरु सदा अपने स्वभावविषे स्थिर है, तेरा अनुभवरूप है, जो सदा अनुभवकरिकै प्रकाशता है तिसविषे स्थित होनेमें क्यों कायरता करनी ? हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच है सो

भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रांतिमात्र है तैसे आत्माविषे जगत् भ्रममात्र है, तिसको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सर्वपदार्थाभाववर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३४.

जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जिस प्रकार यह जगत् आभास फुरा है अरु भासता है सो सुनौ, आदि जो शुद्ध है, अचिंत्य चिन्मात्र है तिसविषे जब चेतनता फुरती है सो वेदन होती है, तिसविषे शब्दतन्मात्र होता है, शब्दतन्मात्रते आकाश उत्पन्न होता है, बहुरि स्पर्शकी इच्छा होती है तब वायु उपजती है, जब आकाशविषे उत्थान हुआ तब तिस वायु अरु आकाशके संघर्षण भावते अग्नि उपजता है, जब अग्निविषे उष्ण स्वभाव होता है तब जल उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि जब तेजकी अधिकता होती है तब जल उत्पन्न होता है, स्वेदवत् जब जल बहुत इकट्ठा होता है तब तिसते पृथ्वी उत्पन्न होती है,इस प्रकार आकाश वायुते जल पृथ्वी उत्पन्न होते हैं तब तत्त्वते शरीर उपजते हैं, स्थावर जंगमभूत नानाप्रकार जगत् दृष्टि आता है सो पांचभौतिक है अरु वास्तवते न पंचभूत हैं न कोऊ उपजता है न नष्ट होता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारका जगत् आरंभ परिणामसहित भासता है परंतु वास्तव कछु उपजा नहीं, आत्मसत्ता ही चित्तके फुरणेकरि जगतरूप हो भासती है, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी जान. हे रामजी! यह जगत् सब अपना अनुभवरूप है, भ्रमकरिकै आकारसहित भासता है, जब भले प्रकार विचारि देखिये तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल चेतन आत्मत्वमात्र शेष रहता है,जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नविषे नानाप्रकारके क्षोभ भासते हैं, जब जागता है तब एक अपना आप ही भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागेते अद्वैत

ही अद्वैत भान होता है. हे रामजी ! जो बोधसमय द्वैत कछु न भासै तौ अबोधसमय भी जानिये कि द्वैत कछु नहीं हुआ अरु जो बोध समय सत्य भासे तौ जानिये कि सर्वदा काल यही सत्य है. हे रामजी ! यह निश्चय धार कि अपर जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, जैसे किरणोंविषे जल भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, विचार कियेते कछु नहीं पाता. हे रामजी ! अपनी कल्पना ही इसको जगत्‌रूप हो भासती है, अपर कछु नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि अपनी कल्पनारूप है परंतु निद्रादोषकरि भिन्न हो भासती है, तिसविषे रागद्वेष उपजता है अरु जागेते सब क्षोभ मिटि जाते हैं तैसे अज्ञानकरिकै जगत् सत्य भासता है, तिसविषे राग द्वेष भासते हैं, ज्ञानकरिकै सब शांत हो जाते हैं. हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है, ज्ञानवान्‌के निश्चयविषे सब चिदाकाश है अरु अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् है, जो बड़े क्षोभ आनि प्राप्त होवैं तौ भी ज्ञानवान्‌को चलाय नहीं सकते, उसके निश्चयविषे कछु द्वैत नहीं फुरता, सदा एकरस रहता है, जो प्रलयकालके मेघ आनि गर्जैं अरु समुद्र उछलैं अरु पहाडके ऊपर पहाड पडैं, ऐसे भयानक शब्द होवैं तौ भी ज्ञानवान्‌के निश्चयविषे कछु द्वैत नहीं फुरता, जैसे कहूँ पुरुष सोया पड़ा है, तिसके स्वप्नविषे बड़े क्षोभ होते हैं अरु जाग्रत्‌को निकट बैठे नहीं भासते तैसे ज्ञानवान्‌के निश्चयविषे द्वैत कछु नहीं भासता, काहेते जो है नहीं अरु अज्ञानीको होते भासते हैं, जैसे वंध्या स्त्री स्वप्नविषे अपने पुत्रको देखती है सो अनहोताभ्रमकरि उसको भासता है तैसे अज्ञानीको अनहोता जगत् सत्य होकरि भासता है. हे रामजी ! भ्रमकरिकै अनहोता भासता है अरु होतेका अभाव भासता है, जैसे वंध्या अनहोते पुत्रको देखती है अरु पुत्रवाली स्वप्नविषे पुत्रका अभाव देखती है तैसे अज्ञानकरिकै अनहोता जगत् सत्य भासता है अरु सदा अनुभवरूप आत्माका अभाव भासता है सो भ्रमकरिकै अपरका अपर भासता है, जैसे दिनको सोया हुआ स्वप्नविषे कहूँ रात्रिको देखता है अरु रात्रिको सोया हुआ

स्वप्नविषे दिनको देखता है अरु शून्य स्थानविषे नानाप्रकारका व्यवहार देखता है, अरु अंधकारविषे प्रकाशको देखता है सो भ्रमकरिकै देखता है अरु पृथ्वीपर सोया है अरु स्वप्नविषे आकाशमें दौड़ता फिरता है अरु गर्त्तविषे गिरता आपको देखता है सो भ्रमकरिकै भासता है तैसे यह जाग्रत् जगत् भी विपर्ययरूप भ्रम करिकै देखता है, जाग्रत् अरु स्वप्न-विषे भेद कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे मुए हुए भी बोलते चालते दृष्टि आते हैं. हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे तुमको नानाप्रकारका जगत् भासता है अरु जागिकरि कहते हौ, सब भ्रममात्र था तैसे हमको यह जाग्रत् जगत् भ्रममात्र भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं तैसे जाग्रत् अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं, जैसे दो मनुष्य एक ही जैसे होते हैं, जैसे दो सूर्य होवें तिनविषे भेद कछु नहीं होता, तैसे जाग्रत् अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं जानना. राम उवाच-हे भगवन्! स्वप्नकी प्रतिभा अल्पमात्र भासती है,शीघ्र ही जागकर कहता है, एक भ्रममात्र थी; अरु जाग्रत् दृढ होकरि भासती है, तुम दोनोंको समान कैसे कहते हौ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जिस प्रतिभाका प्रत्यक्ष अनुभव होता है सो जाग्रत् कहाती है अरु जिसका प्रत्यक्ष अनु-भव नहीं होता, चित्तविषे स्मृति होती है सो स्वप्न है, सो जाग्रत् अरु स्वप्न दो प्रकारका है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है सो जाग्रत् है तिसविषे जब सोय गया तब स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे जगत् भासि आया सो जहां जगत् भासि आया वही तिसको जाग्रत् हो गई अरु जहांते सोया था वह स्वप्न हो गया अरु यहां जो स्वप्न भासा तिसको जाग्रत् जान चेष्टा करने लगा. भाई जन लोकसाथ जब वहांते मृतक हो गया, बहुरि उसविषे आया, आयकरि पिछलीका स्वप्न जानने लगा तो चित्तके भ्रमकरिकै स्वप्नको जाग्रत् देखत भया था अरु जाग्रतको स्वप्न देखत भया था. हे रामजी! सो क्या भया, जैसे किसीको स्वप्न आया तिसविषे अपनी चेष्टा व्यवहार करने लगा, बहुरि तिसविषे स्वप्न हुआ तिस स्वप्नांतरते जब जागा, बहुरि उस स्वप्नविषे आया, आयकरि उसको स्वप्न जानने लगा अरु

उस स्वप्नको जाग्रत् जानने लगा. हे रामजी ! जैसे वह स्वप्नांतरते जागकरि तिसको स्वप्न कहता है अरु स्वप्नको जाग्रत् कहता है तैसे यहां जाग्रत् स्वप्नरूप है अरु आगे जो होता है सो स्वप्नांतर है, एक अपर प्रकार है, जो इस जाग्रत्विषे मृतक हुआ शरीर छूटि गया तब परलोकको देखता है सो परलोक जाग्रत् हो गया अरु इस जाग्रत्को स्वप्न जानने लगा, जैसे स्वप्नते जागा स्वप्नको भ्रम कहता है तैसे इस जाग्रत्को परलोकविषे भ्रम जानता है, बहुरि परलोकविषे स्वप्न आया तब परलोककी जाग्रत् स्वप्नवत् हो गई अरु जो स्वप्नविषे सृष्टि भासी तिसको जाग्रत् जानत भया, बहुरि वहांते मृतक होकरि यहां आया तब यह जाग्रत् हो गई, परलोक स्वप्न हो गया, ताते हे रामजी ! स्वप्न अरु जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं अरु मूर्ख स्वप्नते जब जागता है तब जानता है, इसका नाम जागना है, इसको जाग्रत् मानता है, उसको स्वप्न जानता है अरु है वह स्वप्नांतर अरु यह स्वप्न है, इसविषे जो तीव्र संवेदन हो रहा है इसते उसको जाग्रत् जानता है अरु उसको स्वप्न जानता है परन्तु हैं दोनों तुल्य, भेद कछु नहीं, आत्माविषे एक दोनों असत्यरूप हैं, इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है अरु आत्मा न कदाचित् उपजता है न मरता है अरु उपजता भी है मरता भी है, उपजता इस कारणते नहीं कि पूर्वसिद्ध है अरु मरता इस कारणते नहीं कि भविष्यत् कालविषे भी सिद्ध है, परलोकविषे सुख दुःखको भोगता है अरु भ्रमकालविषे जन्मता भी है मरता भी है सो प्रत्यक्ष भासता है अरु वास्तवते ज्योंका त्यों है. हे रामजी ! यह जगत् तिसका आभास है, चेतनका चमत्कार चैत्य होकरि भासता है, जैसे घट मृत्तिकारूप है मृत्तिकाते इतर कछु नहीं तैसे चेतन भी चेतनरूप है, चेतनते इतर जगत् कछु नहीं, स्थावर जंगम जगत् सब चिन्मात्र है. हे रामजी ! जैसे तुमको स्वप्न आता है, तिसविषे पत्थर पहाड भासते हैं सो तुम्हारा ही अनुभव रूप है, इतर तौ कछु नहीं, तैसे यह दृश्य सब चिन्मात्ररूप है, जैसे घट मृत्तिकाते भिन्न नहीं तैसे जगत् चिदाकाशते भिन्न नहीं, जैसे काष्ठके पात्र काष्ठते भिन्न नहीं, सब काष्ठरूप है तैसे जगत् चेतनरूप है, चेतनते

इतर कछु नहीं, जैसे पाषाणकी मूर्ति पाषाणरूप है तैसे जगत् भी चेतनरूप है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है तैसे चेतन जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे अग्नि उष्णरूप है तैसे चैत्य चेतनरूप है, जैसे वायु स्पंदरूप है तैसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे वायु निस्पंदरूप है तैसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे पृथ्वी घनरूप होती है, जैसे आकाश शून्यरूप होता है, जहां शून्यता है तहां आकाश है, तैसे जहां चैत्य है तहां चेतन है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवित् पहाड़ नदियांरूप हो भासती हैं तैसे चिन्मात्रसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है. हे रामजी ! जो कछु पदार्थ तुझको भासते हैं तिनको त्यागिकरि आत्माकी ओर देख, यह विश्व सब आत्मरूप है, शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाशविषे निर्मल है, ऐसे जानकरि तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी ! जब तुझको स्वभावसत्ताका अनुभव साक्षात्कार होवैगा तब जेती कछु द्वैतकलना भासती हैं सो सब शांत हो जावैंगी, केवल आत्मतत्त्व मात्र शेष रहैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३४ ॥

पंचत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३५.

जगन्निर्वाणवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! चिदाकाश कैसा है ? जिसको तुम परब्रह्म कहते हो तिसका क्या रूप है ? तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंको पान करता मैं तृप्त नहीं होता ताते कृपा करिकै कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जैसे एक माताके गर्भते दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं, उनका एक जैसा आकार होता है पर जगत्‌व्यवहार निमित्त उनका नाम भिन्न भिन्न होता है, अपर भेद कछु नहीं अरु जैसे दो पात्रविषे जल राखिये तौ जल एक ही है पर पात्रके नाम भिन्न भिन्न होते हैं तैसे स्वप्न अरु जाग्रत् नाम दो हैं परंतु एक ही जैसे हैं सो आत्माविषे दोनों कल्पित हैं, जिसविषे दोनों कल्पित हैं सो चिदाकाश है अरु वृत्ति जो फुरती है,

देश देशांतरको जाती है तिसके मध्यविषे जो संवित् ज्ञानरूप है,जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है सो चिदाकाश संवित् है अरु वृक्ष जो रसको खैंचि-करि ऊर्ध्वको जाते हैं सो तिसके आश्रय जाते हैं, ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाशरूप है. हे रामजी! जेते कछु वृक्ष हैं, फूल फल टास सो सब रसके आश्रय फुरते हैं, तैसे यह जगत् सब चिदाकाशके आश्रय फुरता है, तिसके आश्रयवृत्ति फुरती है, ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश है अरु जिसकी इच्छा सब निवृत्त हो गई है अरु राग द्वेषरूपी मल निवृत्त भया है, शरत्कालके आकाशवत् जो शुद्ध संवित् है तिसको चिदाकाश जान. हे रामजी! जगत्का जब अंत होता है अरु जडता आई नहीं तिसके मध्य जो अद्वैतसत्ता है सो चिदाकाश है अरु वल्ली फूल फल गुच्छे वृक्ष जिसके आश्रय बढते हैं सो चिदाकाश है अरु रूप अवलोकन मनस्कार इन तीनोंका जहां अभाव है ऐसी शुद्ध संवित् है सो चिदाकाश है अरु पृथ्वी पर्वत नदियां सर्वका आश्रय है सो चिदाकाश है अरु द्रष्टा दृश्य दर्शन यह तीनों जिसते उपजे हैं बहुरि जिसविषे लीन होते हैं ऐसी जो अधिष्ठानसत्ता है सो चिदाकाश है अरु जिसते सर्व उपजते हैं अरु जो यह सर्व हैं ऐसा जो सर्वात्मा है सो चिदाकाश है, अर्धरात्रिको जो उठता है, इंद्रियोंकी चपलताका विषयते अभाव होता है, अफुरसत्ता तिस कालमें होती है सो चिदाकाश है. हे रामजी! जिस संवित्विषे स्वप्नसृष्टि फुरती है, बहुरि जाग्रत् भासती है, दोनोंके करनेहारेमें शोभता है सो चिदाकाश है अरु जैसा फुरणा होता है तैसा ही जगत्-विषे भासता है, वही द्रष्टा दर्शन दृश्य होकरि भासता है, दूसरा कछु नहीं अरु आत्मरूपी सूत्र हैं अरु असत् सत् जगत्रूपी माणिक जिसविषे पिरोये हुए हैं, जिसके आश्रय इनका फुरणा होता है सो चिदाकाश है. हे रामजी! जिसके आश्रय निमेषविषे जगत् उपजता है अरु उन्मे-षविषे लीन हो जाता है ऐसी जो अधिष्ठानसत्ता है तिसको चिदाकाश जान, यह सब जगत् मिथ्या है, भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे मरुस्थल-की नदी भासती है, इसते जो रहित है, जिसविषे संकल्प विकल्प क्षोभ नहीं अरु सदा अपने आपविषे स्थित है, दुःखते रहित निर्वि-

कल्प सत्ता है सो चिदाकाश है. हे रामजी ! नेति नेतिकरि जो पाछे अनाद्य पद शेष रहता है तिसको तू चिदाकाश जान अरु आत्मसत्ता शुद्ध चेतन सबका अपना आप है, सबका अनुभवरूप होकरि प्रकाशता है, जैसा तिसविषे फुरणा होता है, जो यह ऐसे है, तैसा हो भासता है सो चिदाकाशरूप है ताते शुद्ध आत्मसत्ता ही फुरणेकरि जगत्‌रूप हो भासती है, जसे जाग्रत्‌के अंतविषे अद्वैतसत्ता होती है,बहुरि तिसते स्वप्न-सृष्टि भासि आती है तो स्वप्नसृष्टि वास्तव कछु उपजी नहीं, वही अनु-भव स्वप्नसृष्टि हो भासती है तैसे यह जगत् जो कार्यरूप दृष्टि आता है सो अविद्याकरिके भासता है, वास्तव कछु उपजा नहीं, जैसे स्वप्न-सृष्टि अकारण भासती है तैसे यह सृष्टि अकारण है, ब्रह्माते आदि चींटीपर्यंत जेता कछु स्थावर जंगमरूप भासता है सो सब चिदा-काशरूप है, कछु उत्पन्न नहीं भया, जो दूसरा कछु न हुआ तौ कारण कार्य भी कछु न हुआ. हे रामजी ! न कोऊ द्रष्टा है न दृश्य है, न भोक्ता है न भोग है, सब कल्पनामात्र हैं, आत्मअज्ञानकरि कल्पना उठती है, आत्मज्ञानकरि लीन हो जाती है, जैसे समुद्रके जाननेते अपर तरंगकल्पना मिटि जाती है, अनुभव आत्माविषे कारण कार्य कछु नहीं अरु जो तू कहै, कारण कार्य भासते क्यों हैं ? तौ जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके पदार्थ दृष्टि आते हैं परंतु वास्तव कछु बने नहीं तैसे यह जगत् कारण कार्य कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव ही नगररूप हो भासता है तैसे यह जगत् भासता है. हे रामजी ! आत्मसत्ता ही फुरणेकरि जगत्‌की नाईं भासती है, जिस जग-त्‌को यह इंद्ररूपकरि कहता है सो भी अहंरूप है, जिसको यह समुद्र कहता है सो भी अहंकाररूप है, जिसको यह रुद्र कहता है सो भी इसका अनुभवरूप है, इत्यादिक जेता कछु जगत् भासता है सो भावनामात्र है, जैसी इसकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप होकरि भासता है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पांतरविषे जैसी भावना होती है तैसे ही सिद्ध होता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना होती है

तैसी हो भासती है, ताते चिदाकाशका निश्चय दृढ़ होता है, तब अज्ञानकरिकै जो विरुद्ध भावना भई थी सो निवृत्त हो जाती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जगन्निर्वाणवर्णनं नाम पंचत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३६.

कारणकार्याभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब मन थोड़ा भी फुरता है तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है अरु जब फुरणेते रहित होता है तब जगत्भावना मिटि जाती है इस प्रकार जो जानता है सो ज्ञानवान् पुरुष है, इंद्रियोंकरि देखता सुनता ग्रहण करता भी निर्वासनिक हो जाता है अरु जगत्की ओरते घन सुषुप्ति होती है. हे रामजी ! जिसका मन निर्वासनिक शांत भया है सो बोलता चालता खाता पीता भी पाषाणवत् मौन हो जाता है ताते यह जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, जैसे मृगतृष्णाकी नदी अनहोती भासती है, जैसे भ्रमकरिकै आकाश-विषे दूसरा चंद्रमा भासता है तैसे मनके भ्रमकरिकै आत्मविषे जगत् भासता है, आदिकारणते कछु उत्पन्न नहीं भया, जिसका आदिकारण नहीं पाइये सो कार्य भी असत् जानिये ताते सब जगत कारण विना ही भासता है, उपजा कछु नहीं. हे रामजी ! जो पदार्थ कारणविना भासता है अरु जिसविषे भासता है सो अधिष्ठानसत्ता है, अधिष्ठान-विषे भासा तिसको भी वही रूप जानिये अरु जो अधिष्ठानते व्यति-रेक भासै सो भ्रममात्र जानिये, जैसे स्वप्नविषे इंद्रियादिक पदार्थ भासि-आते हैं तिसविषे दृश्य दर्शन सब मिथ्या है, हुआ कछु नहीं तैसे यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है, न कछु उपजा है न स्थित भया है, न आगे होना है न नाश होना है, जो उपजा ही नहीं तौ नाश कैसे होवै ? न कोऊ द्रष्टा है न दर्शन है न दृश्य है, केवल चिन्मात्र सत्ता अपने आप-विषे स्थित है. राम उवाच-हे भगवन् ! यह द्रष्टा दर्शन दृश्य क्या

है अरु कैसे भासता है? यह आगे भी कहा है अरु बहुरि भी कहो. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह दृश्य सब अदृश्यरूप है, कारणरहित दृश्य हो भासती है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जेता कछु जगत् विस्तारसहित भासता है, सो आदि स्वरूपते सब परमात्मस्वरूप है, जैसे स्वप्नविषे आकाशका वन भासै अरु अपर पदार्थ भासैं सो सब चिदाकाशरूप हैं तैसे यह जगत् भी चिन्मात्ररूप है, कारणकार्यभाव कहूं नहीं, जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है, निस्पंद हुए नहीं भासता तैसे आत्माविषे चित्त फुरता है तब आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है सो क्या वस्तु है, वही आत्मसत्तारूप भावविषे भाव है, जैसे आकाशविषे शून्यता है तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है ताते कछु भासता है सो चेतनका आभास प्रकाश है, परमार्थसत्ता केवल अपने आपविषे स्थित है अरु तिसते इतर कहिये तौ न द्रष्टा है न दृश्य है, आत्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों है. राम उवाच—हे ब्राह्मण ब्रह्मके वेत्ता ! जो इस प्रकार है तौ कारणकार्यका भेद कैसे प्रवर्त्तता दीखता है? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जैसा जैसा फुरणा तिसविषे होता है तैसा तैसा रूप हो भासता है, चेतन आकाश ही जगत्रूप हो भासता है, अपर न कहूं कारण है न कार्य है, जैसे स्वप्नसृष्टि कारणकार्यसहित भासती है सो किसी कारणते तौ नहीं उपजी. अकारणरूप है, तैसे यह सृष्टि किसी कारणते नहीं उपजी अकारणरूप है, न कहूं करता है न भोगता है, भ्रम करिकै कर्त्ता भोक्ता भासता है, स्वप्नकी नाईं विकल्प उठते हैं, वास्तवते ब्रह्मसत्ता ही है. हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे नगर अरु जगत् भासता है सो चिदाकाश अनुभवसत्ता ही ऐसे हो भासती है, अनुभवते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् संपूर्ण चिदाकाश है, जब ऐसे जानैगा तब जगत् भी ब्रह्मतत्त्व भासैगा. हे रामजी ! यह जगत् चित्तके फुरणेकरिकै उपजा है, जैसे मूर्ख बालक अपने परछायेविषे वैताल कल्पता है तैसे चित्तके भ्रमकरि जगत्-को कल्पता है सो इसका कारण ब्रह्म ही है, अपर कारण कहूं नहीं, काहेते कि महाप्रलयविषे चिदाकाश ही रहता है सो कारण किसका होवै? वही सत्ता इंद्ररूप है वही रुद्ररूप है, नदियां पर्वत आदिक जेता

कछु जगत् भासता है सो वही रूप है, तिसते इतर तौ द्वैतरूप कछु नहीं; जैसा जैसा फुरणा तिसविषे होता है तैसा रूप भासता है, जैसे चिंतामणि कल्पवृक्षविषे जैसी भावना करता है तैसा रूप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना होती है तैसा ही पदार्थरूप हो भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ड० कारणकार्याभाववर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३७.

अभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! अचैत्य चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है सो जगत्रूप हो भासती है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जब अहं फुरणा होता है तब जगत् हो भासता है, सो अहंरूपी जीव है, जगत्विषे जीवता दृष्टि आता है परंतु मृतककी नाईं स्थित है अरु तू मैं आदिक सब जगत् जीवता बोलता चलता व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परंतु काष्ठ मौनवत् स्थित है, आत्मरूपी रत्नका जगत्रूपी चमत्कार है, जो प्रकाश आत्माते भिन्न कछु नहीं; जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे धुएँका पर्वत मेघ भासता है सो भ्रांतिमात्र है तैसे यह जगत्लक्षण भी भासता है, परंतु वास्तवते कछु नहीं, अवस्तुभूत है, उपजा कछु नहीं. हे रामजी ! चित्तरूपी बालकने जगत्जालरूपी सेना रची है सो असत है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आदिक भूत भ्रांतिमात्र हैं, तिनविषे सत् प्रतीति करनी मूर्खता है, बालककी कल्पनाविषे सत् प्रतीति बालक ही करते हैं, इस जगत्को आश्रय करिकै जो सुखकी इच्छा करते हैं सो क्या करते हैं? जैसे कहूं आकाशके धोनेका यत्न करै तैसे उनका यत्न व्यर्थ है, यह सब जगत भ्रांतिरूप है, इसविषे जो आस्था करते हैं अरु इसके पदार्थ पानेका यत्न करते हैं सो क्या करते हैं? जैसे वन्ध्या कहूं पुत्र पानेका यत्न करै सो व्यर्थ है, तैसे जगत्विषे जो सुखके पानेका यत्न करते हैं सो व्यर्थ

है. हे रामजी ! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं सो भ्रांतिमात्र हैं, जों भ्रांतिमात्र हैं तौ इनकी उत्पत्ति किसकरि कैसे कहिये ? जो मूर्ख बालक हैं तिनको पृथ्वी आदिक जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं, ज्ञानवान्को सत्य नहीं भासते, ये अज्ञानीको सत्य भासते हैं, तिनसाथ हमारा क्या प्रयोजन है ? जैसे सोएको स्वप्नविषे आत्मअनुभवसत्ता ही पृथ्वी पहाड नदियां जगत् हो भासती है, सो सब आकार भासते भी निराकाररूप है, तैसे यह जगत् आकारसहित भासता है परंतु आकार कछु बना नहीं, वही निराकारसत्ता जगत्रूप हो भासती है सो निराकार ही है, अपर जगत् कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र०उ० अभावप्रतिपादनं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३७ ॥

अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३८.

विपश्चित्समुद्रप्राप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! तुम कहते हौ, जगत् अविद्यमान है अरु अज्ञानकरिकै स्वप्नकी नाईं सत् भासता है, विद्यमान भी स्वप्न-नगर शून्यरूप है, तैसे यह जगत् अज्ञानरूप है सो अज्ञान क्या है अरु केते कालकी अविद्या हुई है अरु किसको है अरु इसका प्रमाण क्या है ? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो कछु तुमको जगत् दृष्टि आता है सो सब अविद्या है सो अविद्या अनंत है, देश अरु काल-करि इसका अंत कदाचित् नहीं होता ताते अनंत है, जिसको अपने वास्तवस्वरूपका अज्ञान है तिसको सत्य दिखाई देता है, इसके ऊपर एक इतिहास है सो सुनो. हे रामजी ! आत्मरूप चिदाकाश है तिस चिदाकाशके अणुविषे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं, तिन विषे एक ब्रह्मांड इसी जैसा है तिस ब्रह्मांडके जगत्विषे तुरमत नाम देश है, तिसका राजा विपश्चित् था सो एक समय अपनी सभाविषे बैठा था अरु चारों दिशा

उनकी सेना हैं अरु बडा तेजवान् अरु अग्निदेवताको पूजता था, अपर किसी देवताको पूजता न था, अग्निहीको देवता जानिकारि पूजता था अरु बडी लक्ष्मीकरि शोभता था अरु बहुत गुणकरि संपन्न था अरु बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न था. एक कालमें सभाविषे बैठा था कि पूर्व दिशाकी ओरते हरकारा आया अरु कहत भया, हे भगवन्! तुम्हारा जो मंडलेश्वर पूर्व दिशाका था सो जराकरि मृतक भया है सो कहां गया, मानौ यमको जीतने गया है ताते पूर्व दिशाकी रक्षा करौ, वहां अपर मंडलेश्वर आता है. हे रामजी! इस प्रकार वह कहता ही था कि अपर हरकारा शीघ्रतासों आया अरु कहत भया, हे भगवन्! तुमने जो पश्चिमदिशाका मंडलेश्वर किया था सो तपकरि मृतक भया है अरु तहां एक अपर मंडलेश्वर आता है ताते वहांकी रक्षा करौ. हे रामजी! इस प्रकार दूसरा हरकारा कहता था कि अपर हरकारा आया अरु कहत भया, हे भगवन्! दक्षिण दिशाका मंडलेश्वर पूर्व पश्चिमकी रक्षाके निमित्त गया था सो मार्गहीविषे मृतक भया ताते दोनोंकी रक्षाके निमित्त सेना भेजो कि शत्रु आनि दृढ हुआ है, विलंबका समय नहीं, शीघ्र ही सेना पठावहु. हे रामजी! इस प्रकार राजा सुनकरि बाहर निकसा अरु कहने लगा, सब सेना मेरे पास आवै अरु दिशाकी रक्षाके निमित्त जावै, बडे शस्त्र ले जावहु, हस्ती घोडा रथ आदिक सेना ले जावहु. हे रामजी! इस प्रकार राजा कहता था कि एक अपर पुरुष आया अरु कहत भया, हे भगवन्! उत्तर दिशाकी ओर जो तुम्हारा मंडलेश्वर था तिसके ऊपर अपर शत्रु आनि पडा है, बडा युद्ध होता है ताते उसकी रक्षाके निमित्त सेना भेजहु, विलंबका समय नहीं शीघ्र ही भेजहु अरु आगे कई दुष्ट चले आते हैं, मैं बहुरि जाता हौं कि मेरा स्वामी युद्ध करता है. हे रामजी! इस प्रकार कहिकरि वह गया तब द्वारपाल आयकरि कहत भया, हे भगवन्! उत्तर दिशाका मंडलेश्वर आया है, आज्ञा होवै तौ ले आऊं, जब राजाने कहा, ले आवहु, वहां ले आया, राजाके सन्मुख आयकरि प्रणाम किया, राजा देखत भया कि अंग टूटि गये हैं अरु मुखते रुधिर

चला जाता है, ऐसी अवस्थामें भी धैर्यसंयुक्त मंडलेश्वर कहत भया, हे भगवन्! यह मेरे अंगका हाल भया है, मैं तुम्हारा देश राखनेको चला था अरु मेरे ऊपर शत्रु आनि पडा, मेरी सेना थोडी थी इस कारणते दौडिकरि तुम्हारे पास आया हौं कि प्रजाकी रक्षा करहु. हे रामजी! जब इस प्रकार उसने कहा तब राजाने सब मंत्री बुलाये, मंत्री राजापास आये अरु कहत भये, हे भगवन्! अब तीन उपाय छोडहु अरु एक उपाय करहु, एक नम्रता छोडहु, दूसरा धन देना छोडहु अरु बुद्धिभेद भी छोडहु, ये तीनों अब नहीं चाहिये, काहेते कि नम्रता माननेवाले नहीं, यह नीच पापी हैं अरु धन देना इस कारणते नहीं चाहिये कि यह अधीन है अरु बुद्धिकरि भेद भी नहीं जानते, जो सब मिलि इकट्ठे भये हैं ताते यह तीनों उपाय छोडहु अरु एक उपाय करहु कि युद्ध ही होवै, विलंबका समय नहीं, उनकी सेना अब निकट आई है, अब उत्साह सहित कर्म करना है, जो प्राणकी रक्षा नहीं चाहनी. हे रामजी! इस प्रकार जब मंत्रीने कहा तब राजाने वचन कहा कि सब सेना मेरे संभवकरि उनके सन्मुख जावे, निशान नगारे हस्ती घोडा रथी पियादा सेनाके साथ जावैं, इस प्रकार जब राजाने कहा तब सब सेना विद्यमान आनि स्थित भई, नौबत नगारे बाजने लगे, नाना प्रकारके शस्त्रसहित चारो प्रकारकी सेना इकट्ठी भई तब राजाने कहा, हे साधो! तुम आगे जावो, सेना आगे होवै तिसके पाछे सेनापति जावै, तिसके साथ युद्ध करहु, स्नान करिकै मैं भी चला आता हौं. हे रामजी! इस प्रकार कहकर मंत्रीको चलाय अरु पाछे गंगाजलसे राजाने स्नान किया, एक स्थानविषे अग्निका कुंड था, तिसके निकट जायकरि हवन किया, जब अग्नि बहुत प्रज्वलित भई तब राजाने कहा, हे भगवन्! एता काल मुझको व्यतीत भया है, यथाशास्त्र विचरता रहा हौं अरु अपनी प्रजाको सुखी राखी है अरु अभय किया है अरु शत्रुको नाश करनेहारा हौं, शत्रुको मार सिंहासनके तले दिया है, आप सिंहासनपर बैठा हौं, पातालवासी दैत्य सब मैंने जीति राखे हैं अरु दशों दिशा अपने अधीन करी हैं, सात समुद्र-

पर्यंत मेरे भयकरि काँपते हैं अरु सब ठौर मेरी कीर्ति हो रही है अरु रत्नोंके स्थान मेरे भरे हुए हैं वस्त्र सेना घोडे हाथी भी बहुत हैं अरु बडे भोग भी मैंने भोगे हैं अरु दान भी बडे बडे किये हैं, सिद्ध देवता विषे भी मेरा यश हुआ है, सब ओर मेरा यश हुआ है अरु शरीर भी वडा हुआ है अरु क्षोभ भी बडा आनि प्राप्त भया है, अब मेरा जीवनेते मरणा भला है. हे भगवन्! मैं तुमको शीश निवेदन करता हौं, कृपा करिकै लेवहु अरु जब मुझपर प्रसन्न होवोगे तब एककी चार मूर्ति देना जो चारों ओरको जावै अरु जहां मुझको कछु कष्ट होवै तहां दर्शन देना. हे रामजी! इस प्रकार कहिकरि खड्ग निकासि अपना शीश काटिकरि अग्निविषे डारि दिया अरु धड आप ही अग्निविषे जाय पडा, शीश धड दोनों भस्म हो गये, अग्निने भक्षण करि लिये बहुरि उसी जैसी चार मूर्तियां निकसि आईं, उसी जैसे आकार वस्त्र भूषण मुकुट कवच पहिरे हुए नानाप्रकारके शस्त्र धारे हुए उदय भये. हे रामजी! इस प्रकार बडे तेजसंयुक्त चारो राजा विपश्चित प्रगट भये, रथ हस्ती घोडा प्यादे चारो प्रकारकी सेना भी प्रगट भई अरु चारों ओरते वहां शत्रु आनि युद्ध करने लगे. बडा युद्ध होता है, नगर जलाते हैं अरु हाहाकार शब्द होता है, शूरवीर युद्धविषे प्राणको त्यागते हैं अरु उछलकर लडते हैं, बडे रुधिरके प्रवाह चलते हैं, खड्ग बरछीकी वर्षा होती है, अग्निका अट्ट अट्ट शब्द होता है, मानो समय विना प्रलय आने लगी है, बडा युद्ध होता है, जो शूरमे हैं सो युद्धविषे मरनेको जीवना मानते हैं अरु जीवनेको मरण जानते हैं, ऐसे निश्चयको धारिकै युद्ध करते हैं अरु कायर हैं सो भाग भाग जाते हैं, जैसे गरुडके भयकरि सर्प भागि जाते हैं अरु शूरमे सन्मुख होकरि लडते हैं, इस प्रकार बडा युद्ध होने लगा, रुधिरकी नदियां चलीं, तिन विषे हस्ती घोडा रथ शूरमे बहते जावैं अरु बडे बडे वृक्ष नगर गिरते बहते जावैं अरु मांसभक्षणके निमित्त योगिनी आनि स्थित भई हैं, जो जो युद्धविषे मृतक होवैं तिनको अप्सरा विद्याधरी विमानके ऊपर चढाय करि स्वर्गको ले जावैं. हे रामजी! इस प्रकार जब युद्ध हुआ तब

राजा विपश्चितकी सेना सब शून्य हो गई अर्थात् थोडी हो गई अरु राजाने सुना कि सेना बहुत मारी गई है तब राजाने असवार होकर आय देखा कि सेना थोडी हो गई है, एक एक राजा एक एक ओरको गये, चारो राजा चारो ओरको गये अरु विचार किया कि यह महागंभीर सेनारूपी समुद्र है तिसविषे शस्त्ररूपी जल है, धारारूपी तरंग हैं अरु मच्छरूपी शूरमे हैं ऐसा जो समुद्र है तिसको अगस्त्य होकरि मैं पान करौं, ऐसे विचार करि उद्यम किया, काहेते कि विशेष सेना देखी, एक तौ आगेहीको चले आवैं अरु एक शूरमे तेजकरि सेनाको जलावैं अरु तीसरी बहुत हैं ऐसी तीन प्रकारकी सेनाके तीन उपाय किये, प्रथम तौ वायव्यास्त्र हाथमें लिया, परमात्मा ईश्वरको नमस्कार किया अरु मंत्र पढिके पवनका अस्त्र चलाया, तिसकरि अंधेरी आई तब जेती सेना आगे चली आती थी सो स[illegible] पाछे उलट उडने लगी, बहुरि मेघरूपी अस्त्र चलाया तब वर्षा होने लगी, तिसकरि जो तेज उनकी सेनाको जला ता था सो शीतल हो गया, तिसके अनंतर शिव अस्त्र चलाया सो कैसा चलाया, प्रथम शस्त्रकी नदी चली, बहुरि त्रिशूलकी नदी चली, बहुरि चक्रकी नदी चली, बहुरि वज्रकी नदी चली, बरछीकी नदी चली, बिजलीकी नदी चली, अग्निकी नदी चली इत्यादिक जो शस्त्र अरु अस्त्र हैं [illegible] वर्षा [illegible], जब इस प्रकार नदियां चलीं तब जो कछु सेना सन्मुख आती थी सो मृतक हो गई, जैसे कमलिनी काटी जाती है तैसे शूरवीर काटे जावैं, पहाडकी कंदरा गिरि बहुत उडते जावैं, समुद्रविषे जाय पडैं, सुमेरु कंदराविषे जाय छुपे, समुद्रविषे जायकरि सेना डूबे, जैसे अज्ञानी विषयमें डूबते हैं, इस प्रकार दोनों ओरते सेना शून्य भई, चारों दिशाकी सेना नाशको प्राप्त भई, चीन महाचीन देशके अरु पहाड़ कंदराके रहनेवाले सब बहते जावैं, हे रामजी ! कई शस्त्रकरि अरु आंधीकरि उडे सो सब क्षेत्रविषे जाय पडे, कई वनविषे, कई नीचेके देशविषे, जो पुण्यवान् थे सो उत्तम क्षेत्रविषे जाय पडे, मृतक हुए वह स्वर्गको गये अरु पापी नीच देशविषे जाय पडे, तिसकरि दुर्गतिको प्राप्त हुए. कई

पिशाच हुए, कितनेको विद्याधरी ले गई, कई ऋषीश्वरके स्थानोंविषे जीते जाय पड़े, तिनकी उनने रक्षा करी इसी प्रकार बाणकरि छेदे हुए नाशको प्राप्त भए, रुधिरकी नदियोंविषे बहते समुद्रकी ओर चले जावैं. हे रामजी ! जब सब सेना शून्य हो गई तब आकाश शुद्ध हुआ, जैसे ज्ञानीका मन निर्मल होता है तैसे आकाश अधिक क्षोभते रहित भया, जब सब सेना शून्य भई तब चारो राजा आगेको चले जावैं. हे रामजी ! चारो विपश्चित् चारों दिशाके समुद्रके ऊपर जाय प्राप्त भये तब क्या देखे कि बड़े गंभीर समुद्र हैं, रत्न चमकते हैं, कहूं हीरा मोती चमकते हैं इत्यादिक रत्न मणिकी जाति सब देखत भये अरु बड़े गंभीर समुद्रविषे बड़े मच्छ देखते भये अरु तरंग उछलते हैं अरु रेतीविषे नानाप्रकारके वृक्ष लगे हुए हैं, लौंग एलायचीके वृक्ष चंदनके वृक्ष इत्यादिक वृक्ष समुद्र ऊपर जायकरि देखते भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रक० उ० विपश्चित्समुद्रप्राप्तिवर्णन-मष्टत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३८ ॥

एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३९.

जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार राजा विपश्चित् समुद्रपार जाय प्राप्त भये तब उनके साथ जो मंत्री पहुँचे थे सो राजाको सब स्थान दिखाते भये. कैसे स्थान हैं, बड़े गम्भीर स्थान अरु बड़े गंभीर समुद्र, जो पृथ्वीके चौफेर वेष्टित हैं अरु बडे तमाल वृक्ष अरु बावलियां पर्वतकी कंदरा हैं, तालाव हैं ऐसे नानाप्रकारके स्थानोंको देखत भये, ऐसा स्थान राजाको मंत्री दिखाइकरि कहत भये, हे रामजी ! तीन पदार्थ बडे अनर्थके कारण हैं अरु परमसारके कारण हैं, एक तौ लक्ष्मी अरु दूसरा देहआरोग्य अरु तीसरी यौवनावस्था; जो पापी जीव हैं सो लक्ष्मीको पापविषे लगाते हैं अरु देह अरोगकरि विषयको सेवते हैं अरु यौवन अवस्थाविषे भी सुकृत नहीं करते, पाप करते हैं अरु जो

पुण्यवान् हैं सो मोक्षविषे लगाते हैं, लक्ष्मीकारि यज्ञादिक शुभ कर्म करते हैं, देह अरोगकारि परमार्थ साधते हैं, यौवनअवस्थाविषे भी शुभ कर्म करते हैं, पाप नहीं करते. हे राजन्! समुद्र अरु पर्वतकी किसी ठौरविषे रत्न होते हैं, किसी ठौरविषे दर्दुर होते हैं तैसे संसाररूपी समुद्रविषे कहूँ रत्नोंकी नाईं ज्ञानवान् होते हैं अरु कहूँ अज्ञानीरूपी दर्दुर होते हैं, हे राजन् यह समुद्र कैसा है, मानों जीवन्मुक्त है, काहेते जो जलकरि भी मर्यादा नहीं छांडता अरु रागद्वेषते रहित है, किसी स्थानविषे दैत्य रहते हैं, कहूं पंखसंयुक्त पर्वत हैं, कहूं वडवाग्नि है, कहूँ रत्न हैं परंतु समुद्रको न किसी स्थानविषे राग है, न द्वेष है, जैसे ज्ञानवान्को किसीविषे राग द्वेष नहीं, परंतु सबमें ज्ञानवान् कोऊ विरला होता है, जैसे जिस बांसते मोती निकसता है सो बांस विरला होता है अरु जिस सीपमें मोती निकसता है सो सीप भी विरली होती है तैसे तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोऊ विरला ही होता है. हे रामजी! संपूर्ण रचना यहांकी देख, पर्वत कैसे हैं जिनके किसी स्थानविषे पक्षी रहते हैं, किसी स्थानविषे विद्याधर हैं, देवियां विलास करती हैं, कहूं योगी रहते हैं, कहूं ऋषीश्वर मुनीश्वर रहते हैं, कहूं ब्रह्मचारी विरागी रहते हैं, इत्यादिक पुरुष रहते हैं, यह द्वीप है अरु सात समुद्र हैं, जिनके बडे २ तरंग उछलते हैं अरु [illegible]धतका कौतुक देख, आकाश चंद्रमा सूर्य तारे देख, ऋषि मुनि देख, सर्वको ठौर आकाश दे रहा है महापुरुषकी नाईं, अरु आप सदा असंग रहता है, शुभ अशुभ दोनोंविषे तुल्य है, स्वर्गादिक शुभ स्थान हैं अरु चांडाल पापी नरकस्थान हैं अरु अपवित्र हैं परंतु आकाश दोनोंविषे तुल्य है, असंगता करिकै निर्विकार है, जैसे ज्ञानीका मन सर्व स्थानते निर्लेप होता है तैसे आकाश सर्व पदार्थते असंग अरु न्यारा है अरु महात्मा पुरुषकी नाईं सर्वव्यापी है. हे आकाश! तू कैसा है, सर्व प्रकाश तेरेविषे अंधकार दृष्टि आता है, यह आश्चर्य है. हे आकाश! तू सबका आधारभूत है, तुझको शून्य कहते हैं सो मूर्ख हैं, दिनमें तुझविषे श्वेत भासता है, और रात्रिको अन्धकार भासता है अरु संध्याकालमें तेरेविषे लाली भासती है अरु तू तीनोंते न्यारा है, यह तीनों राजसी तामसी

सात्त्विकी गुण हैं, तू इनके होते भी असंग है. हे आकाश! तू निर्मल है, प्रकाश अरु तप तेरेविषे दृष्टि आते हैं परंतु तू सदा ज्योंका त्यों है, यह अनित्यरूप है, चंद्रमा तेरेविषे शीतलता करता है अरु सूर्य दाहक होता है अरु तीर्थ आदिक पवित्र स्थान हैं, पापी आदिक अपवित्र स्थान हैं परंतु तू सबविषे एक समान ज्योंका त्यों रहता है, वृक्षके बढने ऊंचे होनेको तू ही स्थान देता है, अपनी महिमाको तू आपही जानै अपर कोऊ तेरी महिमाको पाय नहीं सकता, तू निष्किंचन अद्वैत है अरु सर्वको धारि रहा है अरु सर्वका अर्थ तेरेकारि सिद्ध होता है, तृण जल नीचेको जाता है अरु तू सबते ऊंचा है अरु विभु है, अनेक पदार्थ तेरेविषे उत्पन्न होते हैं अरु नष्ट हो जाते हैं, तू सदा ज्योंका त्यों रहता है, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं अरु अग्निही-विषे लीन हो जाते हैं तैसे तेरेविषे अनंत जगत् उपजते हैं अरु लीन होते हैं, तू सदा ज्योंका त्यों रहता है, जो तुझको शून्य कहते हैं सो मूढ हैं. हे राजन्! ऐसा आकाश कौन है सो सुन, ऐसा आकाश आत्मा है, जो चेतन आकाश है तिसविषे अनंत जगत् उत्पन्न होते हैं अरु लीन हो जाते हैं, तिसको जो शून्य कहते हैं सो महामूर्ख हैं; जो सर्वका अधिष्ठान है अरु सर्वको धारि रहा है अरु सदा निःसंग है सो ऐसे चिदाकाशको नमस्कार है. हे राजन्! यह आश्चर्य है, जो सदा एकरस है तिसविषे नानातरंग भासते हैं, यही माया है. हे राजन्! एक विद्याधर अरु विद्याधरी थे तिनके मंदिरविषे एक ऋषि आय निकसा तिसका विद्याधरने आदरभाव न किया तब ऋषीश्वरने शाप दिया कि तू द्वादश वर्षपर्यंत वृक्ष होवैगा तब वह विद्याधर वृक्ष हो गया, अब जो हम आये हैं, हमारे देखते ही वह शापते मुक्त हुआ, वृक्षभावको त्यागिकरि बहुरि विद्याधर हुआ है, यह ईश्वरकी माया है, कबहूं कछु हो जाता है, कबहूं कछु हो जाता है. हे मेघ! तू धन्य है, तेरी चेष्टा भी सुंदर है अरु तीर्थविषे सदा तेरा स्नान होता है, तू सबते ऊंचे विराजता है, सब आचार तेरा भला दृष्टि आता है, परंतु एक तेरेविषे नीचता है, जो गडेकी वर्षा करता है, तिसकरि खेतियां नष्ट हो जाती हैं, बहुरि

उगतीं नहीं तैसे अज्ञानकी चेष्टा देखनेमात्र सुंदर है अरु अंतरते मूर्ख है, तिनकी संगति बुरी है अरु ज्ञानवान्की चेष्टा देखनेमात्र भली नहीं तौ भी उनकी संगति कल्याण करती है. हे राजन् ! सबते नीच श्वान है, काहेते कि जो कोई तिसके निकट आता है तिसको काटता है अरु घरघरविषे भटकता फिरता है अरु मलिन स्थानोंविषे जाता है, तैसे अज्ञानी जीव श्रेष्ठ पुरुषकी निंदा करता है अरु मनविषे तृष्णा रहती है अरु विषयरूपी मलिन स्थानोंविषे गिरता है सो मूर्ख मनुष्य मानों श्वान हैं, श्वान नीचते नीच है, जो ब्रह्माने संपूर्ण जगत्को रचा है, शुभ भी अरु अशुभ भी तिसविषे श्वान नीच है सो श्वान क्या समझा है ? एक पुरुष श्वानसों प्रश्न करता भया, हे श्वान ! तुझते कोई नीच है, अथवा नहीं ? श्वानने कहा, मुझतें नीच मूर्ख मनुष्य हैं, उनते मैं श्रेष्ठ हौं, प्रथम तौ मैं शूरमा हौं अरु जिसका भोजन खाता हौं तिसकी रक्षा करता हौं अरु उसके द्वारे बैठा रहता हौं पर मूर्खते यह तीनों कार्य नहीं होते ताते मैं उसते श्रेष्ठ हौं, काहेते कि मूर्खको देहाभिमान है ताते श्वानसों नीच है. हे राजन् ! परम अनर्थका कारण देहाभिमान है, देहके अभिमानकरिकै परम आपदाको प्राप्त होता है सो मूर्ख नहीं मानौ कौआ है, कौआ क्या करता है, सबते ऊंचे टासपर जाय बैठता है अरु कां कां करता है, मानौ मुखकी ध्वजा विराजती है. हे राजन् ! कमलकी खान तालके निकट एक कौआ जाय निकसा सो क्या देखा कि भवँर कमलनकी सुगंधि बैठे ले रहे हैं तिनको देखकर हँसने लगा अरु कां कां शब्द करत भया, तिसको देखि भँवरे हँसे कि यह कमलकी सुगंधिको क्या जानै, तैसे जिज्ञासु भँवरेवत् हैं परमार्थरूपी सुगंधिको लेते हैं अरु जो अज्ञानीरूपी कौए हैं सो परमार्थरूपी सुगंधिको नहीं जानते इस कारणते मूर्खको देखिकरि जिज्ञासु हँसते हैं, जो आत्मरूपी सुगंधिको नहीं जानते, अरे कौआ ! तू क्यों हंसकी रीस करता है, हंस तौ हीरा मोती चुगनेहारे हैं अरु तू नीच स्थानोंका सेवनेहारा है, मंत्रीने कहा, हे भँवरे ! कोयल ! तुम कमलको देखकरि क्या प्रसन्न होते हो ? प्रसन्न तब होवहु, जब वसंत ऋतु होवै, यह तो वर्षाकालका

समय है, यह फूल गड़ेकरि नष्ट हो जावैगा. हे राजन्! कोयलरूपी जिज्ञासु हैं तिनको यह उपदेश है. हे जिज्ञासु! जो सुन्दर पदार्थ तुमको दृष्टि आते हैं तिनको देखिकरि तुम क्यों प्रसन्न होते हौ? तब प्रसन्न होवै जो यह सत्य होवैं, यह तौ मिथ्या हैं, अविद्याकरिकै रचे हैं, तुम क्यों प्रसन्न होते हौ? अपने कुलविषे जाय बैठहु, अज्ञानीका मार्ग छोड़ि देरहु, जैसे कौआ हंसविषे जाय बैठता है तौ भी उसका चित्त अपने गंदगीके भोजनविषे होता है, जो हंसका आहार मोती है तिन मोतीकी ओर देखता भी नहीं, तैसे अज्ञानी जीव कदाचित् संतकी संगतिविषे जाय भी बैठता है तौ भी उसका चित्त विषयकी ओर भ्रमता फिरता है स्थिर नहीं होता अरु जैसे कोयलका बच्चा कौआको माता पिता जानकरि उनविषे जाय बैठता है तब उनकी संगतिकरि यह भी गंदगीका भोजनकरनेहारा हो जाता है तिसको बर्जन करते हैं, रे बेटा! तू कौआकी संगति मत बैठ, अपने कुलविषे बैठ, काहेते कि तेरा भी नीच आहार हो जावैगा, तैसे जिज्ञासु जो अज्ञानीका संग करता है तब उनके अनुसार तिसको विषयकी तृष्णा उत्पन्न होती है तिससे वर्जन करते हैं, रे जिज्ञासो! तू मूर्ख अज्ञानीविषे मत बैठ, अपने संतजन कुल हैं तिनविषे बैठ, जैसे कोयलके बच्चेको कौए सुख देनेहारे नहीं होते तैसे मूर्ख तुझको सुख देनेहारे नहीं होवैंगे, मंत्री बहुरि कहता है, अरी ईल! तू क्यों हंसकी रीस करती है, तू भी बहुत ऊंचे उड़ती है परंतु हंसका गुण तेरेविषे कोऊ नहीं, जब तू मांसको पृथ्वीपर देखती है तब वहां गिरते पडती है अरु हंस नहीं गिरते, तैसे जो मूर्ख हैं सो संतकी नाई ऊंचे कर्म भी करते हैं परंतु विषयको देखिकारि गिरते हैं अरु संत नहीं गिरते, तौ मूर्ख संतकी कैसे रीस करैं, बहुरि मंत्री कहता है-हे बगला! तू हंसकी रीस क्या करता है? अपने पाखंडको छिपायकरि तू आपको हंसकी नाई उज्ज्वल दिखाता है, जब मच्छ निकसता है तब तू ग्रासि लेता है, यह तेरेविषे अवगुण है अरु हंस मानस सरोवरके मोती चुगनेहारे हैं, तू टोएमेंते तृष्णा करिकै मच्छी खानेहारा है, तू क्यों आपको हंस मानता है? तैसे अज्ञानी जीव विषयकी तृष्णा करते हैं अरु ज्ञानवान् विवेक-

करि तृप्त हैं तिनकी रीस अज्ञानी क्या करता ? हे राजन् ! जो हंस हैं सो सदा अपनी महिमाविषे रहते हैं अरु अपना जो मोतीका आहार है तिसको भोजन करते हैं, अपर किसी पदार्थको स्पर्श नहीं करते. जैसे चंद्रमुखी कमल चंद्रमाको देखिकरि शोभा पाते हैं, चंद्रमा विना शोभा नहीं पाते, तैसे बुद्धि भी तब शोभा पाती है जब ज्ञान उदय होता है, आत्मज्ञान विना बुद्धि शोभा नहीं पाती अरु बड़े बड़े सुगंधिवाले जो वृक्ष हैं तिनका माहात्म्य भँवरे ही जानते हैं, इतर जीव नहीं जानते. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! समुद्रके कांठेपर राजा विपश्चित्‌को मंत्री ऐसे कहिकरि बहुरि कहत भये. हे राजन् ! अब पृथ्वीपर नगर२के मंडलेश्वर स्थापित करौ. हे रामजी ! जब ऐसे मन्त्रीने कहा तब सर्व दिशाके मंड-लेश्वर स्थापित किये, चारो राजा जो बैठे थे अपनी अपनी दिशाके समुद्र ऊपर सो आपसमें कहत भये अपने मंत्रीसों, हे साधो ! अब हमनें दिग्विजय करी है, समुद्रपर्यंत अब हमारी जय हुई है, अब चैत्य जो है दृश्य सो दृश्य विभूतिको देख, समुद्रके पार द्वीप है, बहुरि समुद्र है, बहुरि द्वीप है, बहुरि समुद्र है ऐसे सात द्वीप सात समुद्र हैं, तिनके पार क्या है ? इस प्रकार सर्व दृश्य देखनेकी इच्छा करिकै अग्निदेवताका आवाहन किया तब इनकी दृढ भावना करिकै अग्निदेवता सम्मुख आनि स्थित भया अरु कहत भया, हे राजन् ! जो कछु तुमको वांछा है सो मांगौ. राजाने कहा, हे भगवन् ! जो ईश्वरकी माया पांचभौतिक दृश्यविषे भूत हैं तिनके देखनेकी हमारी इच्छा पूर्ण करनेहारे तुम हौ. हे देव ! हम इस शरीरके साथ दृश्य देखने जावैं, जब यह शरीर चलनेते रहित होवै तब मंत्र-सत्ता करिकै जावैं, जहां मंत्रकी गम भी न होवै तहां सिद्धता करिकै जावैं, जहां सिद्धताकी गम भी न होवै तहां मनके बेगकरि जावैं, मृत भी होय न जावैं यह वर हमको देवहु. हे रामजी ! जब इस प्रकार राजाने कहा तब अग्निने कहा ऐसे ही होवै इस प्रकार कहिकरि अग्नि अन्तर्धान हो गया, जैसे समुद्रसों तरंग उठिकरि बहुरि लय हो जावै तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, जब राजा विपश्चित् वरको पायकरि चल-नेको समर्थ भये तब जेते कछु मंत्री मित्र थे सो रुदन करने लगे. हे

राजन् ! तुमने यह क्या निश्चय किया है ? ईश्वरकी मायाका अंत किसीने नहीं पाया, तुम चलो अपने स्थानको,यह क्या निश्चय तुमने धारा है ? हे रामजी ! इस प्रकार मंत्री कहते रहे परंतु राजा उनको आज्ञा देकरि एक एक दिशाके समुद्रविषे प्रवेश किये, चारो दिशाविषें चारो राजा प्रवेश करत भये, जो बडे बडे शक्तिमान् गुणज्ञ मंत्री थे सो साथ ही चले तब राजा मंत्रशक्ति करिकै समुद्रको लंघि गया, जैसे कहूं पृथ्वीके ऊपर चले तैसे चला गया; अपर द्वीपविषे जाय निकसा, बहुरि बडा समुद्र आया तिसविषे जाय प्रवेश किया,अरु वडे तरंग उछले जिनका सौ योजनपर्यंत विस्तार है,कभी अधःको कभी ऊर्ध्वको जावै.हे रामजी ! ऐसे तरंग उछलैं मानौ पर्वत उछलते हैं,जब ऊर्ध्वको उछलैं तब स्वर्गपर्यंत उछलते भासैं अरु जब अधःको जावैं तब पातालपर्यंत चलते भासैं, जैसे तृण फिरता है, तैसे राजा फिरे, इस प्रकार कष्टते रहित समुद्रको लंघि गये अरु दिशाको लंघि गये परंतु मध्यमें जो वृत्तांत हुआ है, सो सुनो; क्षीरसमुद्रविषे एक मच्छ रहता था, कैसा मच्छ था कि सर्वदेवता तिसको प्रणाम करते थे, विष्णु भगवान्के मच्छ अवतारके परिवारविषे था, जब राजाने क्षीरसमुद्रविषे प्रवेश किया, तब राजाको मुखमें डारि लिया, तब राजा मंत्रके बलकरि तिसके मुखते निकसि गया, आगे बहुरि एक मच्छ था तिसने भी मुखमें लिया, तिसते भी निकसि गया, बहुरि आगे पिशाचिनीका देश था, उसने राजाको काम करिकै मोहित किया अरु दक्ष प्रजापतिकी कछु अवज्ञा करी, तिसने शाप दिया तिसकरि राजा वृक्ष हो गया, केता काल वृक्ष रहा बहुरि छूटा, एक देशविषे दर्दुर जाय हुआ, सौ वर्षपर्यंत खाईविषे पडा रहा, बहुरि तिसते छूट मनुष्य आय भया, तहां किसी सिद्धके शापकरि शिला हो गया, सौ वर्षपर्यंत शिला ही रहा, तिसते उपरांत अग्निदेवताने शिलाते छुडाया, बहुरि मनुष्य हुआ तब वह सिद्ध आश्चर्यवान् हुआ कि मेरे शापको दूर करिकै मनुष्य हुआ है, यह तौ मुझसों भी बडा सिद्ध है ऐसे जानकरि तिसके साथ मैत्री करी, इस प्रकार दूसरे समुद्रको लंघता भया, क्षीरसमुद्र, खारी समुद्र, इक्षुके रसके समु-

द्रको, द्वीपको लंघता गया, बहुरि एक अप्सराकरिकै मोहित हुआ, बहुत कालकरि वहांते छूटा, बहुरि एक देशविषे पक्षी हुआ, बहुत कालपर्यंत पक्षी होकरि छूटा, बहुरि एक गोपी पिशाचिनी थी तिसने बैल करिकै राखा तब दूसरे विपश्चित्ने बैल विपश्चित्को उपदेशकरि जगाया. हे रामजी ! चारो दिशाविषे चारो विपश्चित् भ्रमते फिरे, दक्षिण दिशाका तौ पिशाचिनीकरिकै मोहित हुआ, कामुक भया, इसते लेकरि वह जन्मोंको पावत भया अरु पूर्वका बहता हुआ मच्छके मुखमें चला गया उसने निकास डारा, इसते लेकरि तौ वह अवस्था देखत भया अरु उत्तर दिशाका जो होत भया, इसी लेकरि अवस्था देखत भया अरु पश्चिम दिशाका हेमचू पक्षीकी पीठपर जो प्राप्त हुआ तिसने कुशद्वीपविषे जाय डारा, इसते लेकरि वह भी अनेक अवस्थाको प्राप्त हुआ. हे रामजी ! एक एक विपश्चित् अनेक योनि अरु अवस्थाका भिन्न भिन्न अनुभव करत भये. राम उवाच–हे भगवन् ! तुम कहते हौ विपश्चित् एक ही था, उसकी संवित् भी एक ही थी, आकार भी एक ही था तौ भिन्न भिन्न रुचि कैसे भई जो वह पक्षी हुआ, वह वृक्ष हुआ, इनते लेकरि वासनाके अनुसार शरीरको पाते फिरे. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसविषे क्या आश्चर्य है ? उनकी संवित् एक थी परंतु भ्रमकरिकै भिन्नता हो जाती है, जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है तिसविषे पशु पक्षी हो जाते हैं अरु भिन्न भिन्न रुचि भी हो जाती है, तैसे उनकी भिन्न भिन्न रुचि हो गई अरु अपर देख जो शरीर एक ही होता है तिसविषे नेत्र श्रवण नासिका जिह्वा त्वचाकी रुचि भिन्न भिन्न हो जाती है, अपने अपने विषयको ग्रहण करती है सो एक ही शरीरविषे अनेकता भासती है, तैसे उनकी एक ही संवित् थी परंतु संकल्प भिन्न भिन्न हो गया, मनके फुरणेकरि एकविषे अनेक भासे, जैसे एक ही योगेश्वर होता है सो इच्छा करिकै अपर अपर शरीरको धारि लेता है, एकविषे अनेक हो जाता है अरु एक सहस्रबाहु अर्जुन था सो एक भुजासाथ युद्ध करता था, दूसरी भुजासाथ दान करता था अरु एक साथ लेता था, इसी प्रकार सब भुजासाथ चेष्टा करता था,

वह भी भिन्न भिन्न हुए, एक ही शरीरविषे भिन्न भिन्न चेष्टा होती है अरु विष्णु भगवान् कहूँ दैत्यसाथ युद्ध करता है, कहूँ कर्म करता है, कहूँ लीला करता है, कहूँ शयन कर रहता है सो संवित् तौ एक ही है परंतु चेष्टा भिन्न भिन्न होती है, तैसे उनकी संवित्‌विषे अनेक रुचि हुई इस-विषे क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! इस प्रकार जन्मते जन्मांतरको अविद्यक संसारविषे देखत भये. राम उवाच-हे भगवन् ! वह तौ बोधवान् विपश्चित् थे, बोधवान् तौ जन्म नहीं पाते. उनका जन्म किस प्रकार हुआ ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वे विपश्चित् बोधवान् न थे परन्तु बोधके निकट थे, धारणा अभ्यासवाले थे, जो ज्ञानवान् होते तौ दृश्यभ्रम देखनेकी इच्छा काहेको करते ? ताते वह ज्ञान-वान् न थे, धारणा अभ्यासी थे अरु समुद्रको लंघि गये अरु मच्छके उदरते बलकारि निकसे सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है, ज्ञानका लक्षण स्वसंवेद है, परसंवेद नहीं. राजा विपश्चित् ज्ञानवान् न थे इस कारणते देश देशांतरविषे भ्रमते रहे, ज्ञान विना अविद्यक संसारविषे जन्म मरणमें भटकते रहे. राम उवाच-हे भगवन् ! ज्ञानवान् योगी-श्वरको भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालका ज्ञान कैसे होता है, जैसें तीनों काल उसको विद्यमान हैं अरु एक देशविषे स्थित हुआ सर्वत्र कर्मोंको कैसे करता है ? सो सब मेरे ताईं कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! अज्ञानीकी वार्त्ता यह मैंने तुझको कही है अरु जेता कछु जगत् है सो सब चिदाकाशस्वरूप है, जिनको ऐसी सत्ताका ज्ञान हुआ है सो महापुरुष हैं, जैसे स्वप्नते कोई पुरुष जागा है तौ स्वप्नकी दृष्टि सब उसको अपना ही स्वरूप भासती है, उसविषे बंधमान नहीं होता. हे रामजी ! जेती कछु नानात्व भासती है सो नाना नहीं अरु अनाना भी नहीं, केवल आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है तैसे आत्मा अपने आपविषे स्थित है अरु यह तीनों काल भी ज्ञानवा-न्को भ्रमरूप हो जाते हैं, सब जगत् भी ब्रह्मरूप हो जाता है, द्वैतभाव उसका मिटि जाता है, ऐसे ज्ञानवान्‌को ज्ञानी ही जानता है अपर कोऊ

जान नहीं सकता, जैसे अमृतको जो पान करता है सोई स्वाद जानता है अपर कोऊ जान नहीं सकता. हे रामजी ! ज्ञानी अरु अज्ञानीकी चेष्टा तौ तुल्य भासती है परंतु ज्ञानीके निश्चयविषे कछु अपर है अज्ञानीके निश्चयविषे अपर है जिसका अंतर शीतल भया है सो ज्ञानवान् है अरु जिसका अंतर जलता है सो अज्ञानी है, वह बांधा हुआ है अरु ज्ञानवान् है तिसका शरीर चूर्ण होवै अथवा राज्य आनि प्राप्त होवै तौ भी उसको राग द्वेष नहीं उपजता, सदा ज्योंका त्यों एकरस रहता है, वह जीवन्मुक्त है परंतु यह उसका लक्षण अपर कोऊ नहीं जान सकता, वह आप ही जानता है, शरीरको दुःख भी आय प्राप्त होता है सुख भी आय प्राप्त होता है, मरता भी है अरु रुदन भी करता है हँसता भी है, लेता भी है देता भी है इसते लेकरि सब चेष्टा करता दृष्टि आता है, अपने निश्चयविषे न दुःखी होता है न सुखी होता है, न देता है न लेता है, सदा ज्योंका त्यों रहता है. हे रामजी ! व्यवहार तौ उसका भी अज्ञानीकी नाईं दृष्टि आता है परंतु अंतरते उसका यह निश्चय होता है, अद्भुत पदविषे स्थित रहता है, गिरता कदाचित् नहीं, परम उदितरूप होता है, रागसहित दृष्टि भी आता है, परंतु अंतरते राग किसीविषे नहीं, क्रोध करता भी दृष्टि आता है परंतु उसको क्रोध कदाचित् नहीं, जैसे आकाश शुभ पदार्थको धारता है, धूम अरु बादलकरि आच्छादित भी दृष्टि आता है परंतु किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानविषे सब क्रिया दृष्टि आती हैं परंतु अपने निश्चयविषे किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, जैसे नटवा स्वांग ले आता है, चेष्टा करता देखता है अरु अंतरते अपने नटत्वभावविषे निश्चय होता है, तैसे ज्ञानवान्को भी सर्व क्रियाविषे अपना आत्मभाव निश्चय होता है, जैसे जिनको स्वप्न आता है अरु स्वप्नविषे अपना पूर्वरूप स्मरण आता है तब स्वप्नके पदार्थविषे वर्त्तता है तौ भी उनके सुखविषे आपको सुखी नहीं मानता अरु दुःखविषे आपको दुःखी नहीं मानता, सब सृष्टि उसको अपना स्वरूप भासती है, तैसे ज्ञानवान्को अपने स्वरूपके निश्चय करिकै सुख दुःखका क्षोभ नहीं होता अरु जो ऐसे पुरुष हैं तिनको क्या दुःखसाथ होता है, जैसे उनकी इच्छा होती है तैसे ही

सिद्ध होकरि भासती है. हे रामजी! यह जेती सृष्टि है सो सब चित्सत्ताविषे है, जो योगीश्वर पुरुष तिसविष स्थित होकरि जहां प्राप्त हुआ चाहते हैं तहां अंतवाहकसाथ जाय प्राप्त होते हैं अरु तीनों काल उनको विद्यमान होते हैं, वह साधन कछु नहीं परंतु ज्ञानी अवश्यकरि किसी निमित्त यत्न नहीं करता, जैसा आनि प्राप्त होता है तिसविषे प्रसन्न रहता है. हे रामजी! एक कालमें ब्रह्माजी सामवेदको ऊर्ध्वमुख करिके गायन करते थे अरु सदाशिवका मान न किया, अपमान किया तब सदाशिवने अपने नखसे ब्रह्माके पांच शीश काटि डारे परंतु ब्रह्माजीके मनविषे कछु क्रोध न फुरा अरु विचारत भया कि मैं तब भी चिदाकाश था, अब भी चिदाकाश हौं, मेरा तौ कछु गया नहीं, शिरसे मेरा क्या प्रयोजन है, न कछु हानि है न कछु लाभ है. हे रामजी! इस प्रकार सर्व विश्व रचनेहारे ब्रह्माजीका शिर काटा, जो बहुरि भी शिर लगाइ लेता तौ समर्थ था, परंतु उसको लगानेका कछु प्रयोजन न था, न न लगानेविषे कछु हानि थी, उसका भी निश्चय सदा आत्मपदविषे है इस कारणते क्षोभ कछु न हुआ. हे रामजी! काम जैसा अपर कोऊ विकार नहीं, जो सदाशिव पार्वतीको डावे अंगपर धारते हैं अरु कामदेवके पंचबाण चलनेकरि सर्व विश्व मोहित होता है, तिस कामदेवको सदाशिवने भस्म करि छोडा है तौ स्त्रीके त्यागनेको समर्थ नहीं क्या? परंतु तिनको राग द्वेष कछु नहीं इस कारणते त्याग नहीं करते, त्यागनेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, रखनेकरि कछु अनर्थ नहीं होता, जो कछु प्रवाहपतित कार्य हुआ है तिसको करता है खेद कछु नहीं मानता ताते जीवन्मुक्त है अरु विष्णुजी सदा विक्षेपमें रहता है, आप भी कर्म करता है अरु लोकसों भी करावता है, शरीरको धारता है अरु त्यागी होता है, वृद्धि करता है इत्यादिक क्षोभविषे रहता है सो त्यागनेको समर्थ भी है परंतु त्यागनेविषे उनका कछु कार्य सिद्ध नहीं होता अरु करनेविषे कछु हानि नहीं होती, उसको कई गुणकरि गुणवान् जानते हैं अरु मुझको तौ शुद्ध चिदाकाशरूप भासता है, मूर्ख कहते हैं, श्याम है, सुंदर है, विष्णु तौ शुद्ध चिदाकाशरूप है, सदा शुद्ध स्वरूपविषे उनको अहंप्रत्यय है अरु आकाशमार्गविषे जो सूर्य

स्थित है सो कबहूं ऊर्ध्वको जाता है, कबहूँ नीचेको जाता है तिसको स्थिति होनेकी क्या समर्थता नहीं ? परंतु चलना अरु ठहरना तिसको दोनों सम हैं, खेदते रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यविषे रहता है ताते जीवन्मुक्त है अरु जीवन्मुक्त चंद्रमा भी है सो घटता घटता सूक्ष्म होता दृष्टि आता है, कबहूं बढता जाता है, शुक्ल अरु कृष्ण दोनों पक्ष तिसविषे रहते हैं सो रात्रिको प्रकाशता है, वह अपनी क्रियाको त्याग नहीं सकता परंतु क्षोभते रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यविषे विचरता है ताते जीवन्मुक्त है अरु अग्नि सदा दौड़ता रहता है, यज्ञ होमके भोजन करनेको सर्व ओर जाता है, उसको गृहविषे बैठनेकी क्या समर्थता नहीं ? परंतु जो अपना आचार है तिसको त्यागता नहीं, ठहरनेविषेकछु कार्य सिद्ध नहीं होता अरु चलनेविषे कछु हानि नहीं होती, दोनोंविषे तुल्य जीवन्मुक्त है. हे रामजी ! बृहस्पति अरु शुक्रको बड़ा क्षोभ रहता है, बृहस्पति देवताके जयके निमित्त यत्न करता है अरु शुक्र दैत्यके जयके निमित्त यत्न करता रहता है, क्या इनको त्यागनेकी समर्थता नहीं ? परंतु दोनों इनको तुल्य हैं इस कारणते खेदसों रहित होकरि अपने कामविषे विचरते हैं सो जीवन्मुक्त पुरुष हैं. हे रामजी ! राज्यविषे बडे क्षोभ होते हैं सो राजा जनक आनंद सहित राज्य करता है अरु जीवन्मुक्त है, प्रह्लाद बलि वृत्रासुर अरु मुर इनते आदि लेकरि जो दैत्य जीवन्मुक्त हुए हैं, समताभावको लिये खेदते रहित नाना प्रकारकी चेष्टा करत भये हैं परंतु अंतरते शीतल जीवन्मुक्त रहे हैं, राजा नल अरु दिलीप अरु मांधाताते लेकरि जो हुए हैं, समताभावको ले राज्य किया है सो जीवन्मुक्त हैं, ऐसे अनेक राजा हुए हैं, राज्यविषे रागवान् भी दृष्टि आये हैं परंतु अंतर राग द्वेषते रहित शीतलचित्त रहे हैं. हे रामजी ! ज्ञानी अरु अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है परंतु एता भेद है कि ज्ञानीका चित्त शांत है अरु अज्ञानीका चित्त क्षोभविषे है, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, अनिष्टकी प्राप्तिविषे द्वेष करता है, ग्रहण त्यागकी इच्छा कर जलता है, संसार उसको सत्य भासता है अरु जिसका चित्त शांत हो गया है तिसके अंतर न राग है न द्वेष है, स्वाभाविक शरीरका जो

प्रारब्ध है सो होता है, तिसविषे कछु अपना अभिमान नहीं होता, तिसके निश्चय सब आकाशरूप हैं, जगत् कछु बना नहीं भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रममात्र है अरु दूर नहीं होती, तैसे यह जगत् भ्रमकरिके भासता है परंतु है नहीं, जैसे आकाशविषे नाना प्रकारके तरुवरे भासते हैं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठरूप होती है तैसे जगत् भ्रमरूप है, जो कछु भ्रमते इतर भासता है सो सब भविष्यत् नगरविषे असत् है अरु जो कछु तुझते दृष्टि आता है सो कछु नहीं, सर्व कलनाते रहित शुद्ध संवित् जडताते मुक्तस्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है, केवल आकाशरूप है, तिसविषे जगत् भी वही रूप है, पाषाणकी शिलावत् घन मौन है, तू भी तिसी रूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २३९ ॥

चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४०.

विपश्चिदुपाख्यानवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! वह राजा विपश्चित् बहुरि क्या करत भये ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो उनकी दशा हुई है सो तू श्रवण करु पश्चिम दिशाका विपश्चित् वनविषे विचरता फिरता था सो एक मत्त हस्तीके वश पडा, तिसने पहाडकी कंदराविषे मार डारा अरु दूसरे विपश्चितको राकडी ले गया, तिसने वडवाग्निविषे डारि दिया, वहां अग्निने भक्षण करि लिया अरु तीसरे विपश्चितको एक विद्याधर स्वर्गविषे ले गया, उसने इंद्रका मान न किया, तिसको शाप दिया, वह भस्म हो गया, इसी प्रकार चौथा भी हुआ, उसके मच्छने अष्ट टुकडे करि डारे, जैसे प्रलयकालविषे लोक भस्म हो जावै तैसे चारो ही विपश्चित मरि गये। तब उनकी संवित् आकाशरूप हुई परंतु इनकेविषे जो जगत् देखनेका संस्कार था तिसकरि उनकी आकाशरूप संवित्त बहुरि आनि फुरी

तिसकरि जाग्रत् भासने लगे, पृथ्वी द्वीप समुद्र स्थावर जंगमरूप जगत्को देखत भये अरु अंतवाहक शरीर साथ चेष्टा करने लगे, तिनसों एक पश्चिम दिशाका विष्णु भगवान्के स्थानविषे मुआ निर्वाण हो गया, तिसकी संवित्विषे सर्व अर्थ शून्य हो गये, वह तहां मुक्त हुआ अरु एक मच्छके उदरविषे सहस्र वर्षपर्यंत रहा, तिसते उपरांत निकसा, बहुरि एक देशको राजा हुआ अरु तहां राज्य करने लगा, एक चंद्रमाके निकट आया, तहां वह मरिके स्वर्गविषे चंद्रमाके लोकको प्राप्त हुआ अरु एक बहता समुद्रके पाटको प्राप्त हुआ, आगे चौरासी हजार योजन पृथ्वी भूत तिसको लंघता गया, इसी प्रकार चारों बहुरि जीवते भये, समुद्र वन पर्वतको लाँघते गये, सबके आगे दश सहस्र योजन स्वर्णकी पृथ्वी आई, तहां देवताके विचरनेके स्थान हैं, तिनको भी लंघते गये, आगे लोकालोक पर्वत आया, जिसने सर्व पृथ्वीको आवरण किया है, जैसे वृक्षके वनका आवरण होता है तैसे तिसने पंचाशत्कोटि योजन पृथ्वीको आवरण किया है, पचास हजार योजन लोकालोक पर्वत ऊंचा है, तहां ताराका नक्षत्रचक्र फिरता है तिसको भी लंघि गये, तिसके आगे एक शून्य नक्षत्र था सो कैसा था कि महाशून्य जैसा, जहां पृथ्वी जल आदिक तत्त्व कोऊ नहीं, एक शून्य आकाश है, न कोऊ स्थावर पदार्थ है, न कोऊ जंगम पदार्थ है, न कोऊ उपजै न कोऊ मिटै तिसको देखत भये, इसी प्रकार संपूर्ण भूगोलको देखत भये. राम उवाच–हे भगवन्! भूगोल क्या है अरु किसके आश्रय है अरु तिसके ऊपर क्या है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे गेंद होता है तैसे भूगोल है अरु संकल्पके आश्रय है, सर्व ओर तिसके आकाश है, सूर्य चंद्रमा नक्षत्र सहित चक्र फिरता है. हे रामजी! यह बुद्धिकरिकै बना नहीं, संकल्पकरिकै बना है, जो वस्तु बुद्धिकरिकै बनी होती है सो क्रमकरि स्थित होती है, यह तो विपर्ययरूपकरि स्थित है, पृथ्वीके चौफेर दशगुण जल है, तिसते परे दशगुण अग्नि है, तिसते परे दशगुण वायु है, तिसते परे ब्रह्मांडखर्पर है सो खर्पर एक अधःको एक ऊर्ध्वको गया है, तिसके मध्यविषे जो पोल है सो आकाश है, वह वज्रसारकी नाईं है,

अनंत कोटि योजनका विस्तार है, तिस ब्रह्मांडका तिसविषे भूगोल है, तिसते उत्तर दिशा सुमेरु पर्वत है, पश्चिमदिशा लोकालोक पर्वत है, ऊपर नक्षत्रोंका चक्र फिरता है, जहां वह आता है तहां प्रकाश होता है, जहां नहीं होता तहां तमरूप भासता है सो संकल्प रचना है, जैसे बालक संकल्पकारि पत्थरका वटा रचै, तैसे चेतनरूपी बालकने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है. हे रामजी ! जैसे जैसे उस समय तिसविषे निश्चय हुआ है तैसे ही तैसे स्थित भया है, जहां पृथ्वी स्थित रही है तहां स्थित है, जहां खात रची है तहां खात ही है अरु है क्या ? जैसे स्वप्नविषे अविद्यमान प्रतिभा होती है तैसे भूगोल है. हे रामजी ! जिनको ऐसे भासता है जो सुमेरविषे देवता हैं उत्तर दिशा अरु अपर दिशा मनुष्यते आदि लेकरि जीव रहते हैं ऐसे जिनको ज्ञान है सो पंडित हैं तौ भी मूर्ख हैं, यह तो भ्रममात्र है, बना कछु नहीं, जो हमते आदि लेकरि तत्त्ववेत्ता हैं, तिनको ज्ञाननेत्रकरि आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है, जो मनसहित षट् इंद्रियोंकरि अज्ञानी देखते हैं तिनको जगत् भासता है अरु ज्ञानवान्को परब्रह्म सूक्ष्म ज्योंका त्यों भासता है, जगत्को असत् जानता है, जैसे आकाशविषे अनहोती नीलता भासती है तैसे आत्माविषे अनहोता जगत् भासता है; जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे तरुवरे भासते हैं तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे जगत् भासता है सो केवल आभासमात्र है. हे रामजी ! जगत् उपजा भी दृष्टि आता है अरु नष्ट होता भी दृष्टि आता है परंतु बना कछु नहीं, जैसे संकल्पका रचा फुरणा अपने मनविषे भासता है तैसे यह जगत् मनविषे फुरता है, यह संपूर्ण भूगोल संकल्प विषे स्थित है, जैसे बालक संकल्पकरिकै पत्थरका बटा रचै तैसे भूगोल यह ब्रह्माण्ड सौ कोटि योजनपर्यंत है, तिसका एक भाग अधःको गया है एक ऊर्ध्वको गया है, तिसविषे चेतनरूपी बालकने यह भूगोल रचा है सो संकल्पके आश्रय खडा है, जैसे आदि नीति हुई है तैसे भासता है, इस पृथ्वीकी उत्तरदिशाविषे सुमेरु पर्वत है अरु पश्चिम दिशाकी ओर लोकालोक पर्वत है अरु ऊपर तारा नक्षत्रचक्र फिरता है, लोकालोकके जिस

ओरते आता है तिस ओर प्रकाश होता है अरु भूगोल ऐसे है जैसे गेंद होता है, तिसके एक ओर पाताल है अरु एक ओर स्वर्ग है, एक ओर मध्यमंडल है अरु आकाश सर्व ओर है, पातालवासी जानते हैं हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जानते हैं कि हम ऊर्ध्व हैं, मध्यमवासी जानते हैं कि हम ऊर्ध्व हैं इस प्रकार भूगोल है, तिसके परे एक खात है, शून्य जैसा महातमरूप, जहां न पृथ्वी है न कोऊ पहाड है, न स्थावर है न जंगम है, न कछु उपजा है, कवि महात्मा जैसा है अरु तिसके परे स्वर्णकी कंथ है, दश सहस्र योजन तिसका विस्तार है, तिसके परे दशगुण जल है, पृथ्वीके चौफेर वेष्टन है, तिसते परे दशगुण अग्नि है, तिसते परे दशगुण वायु है, तिसते परे आकाश है, तिसते परे ब्रह्माकाश महाकाश है तिसविषे अनंत ब्रह्माण्ड स्थित हैं सो क्या है अरु कैसे स्थित हैं ? तत्त्व हैं, जैसे कपूरके आश्रय तृण ठहरते हैं तैसे पृथ्वीभागके आश्रय तत्त्व हैं, वस्तुतः क्या है ? शुद्ध चेतन ब्रह्मका चमत्कार है, सो ब्रह्म आकाशवत् निर्मल है, तिसविषे कोऊ क्षोभ नहीं, परम शांत है अरु अनंत है अरु सर्वका अपना आप है. हे रामजी ! अब बहुरि विपश्चित्की वार्ता सुन, जब वह लोकालोक पर्वतपर जाय स्थित भये तब एक शून्य जैसा खात दृष्टि आया, पर्वतसों उतरकर खातविषे जाय पडा, खात भी पर्वतके शिखर ऊपर था अरु तहां पक्षी भी शिखरकी नाईं बडे थे उन पक्षियोंने चंचुसों इसका शरीर चूर्ण किया, तब यह अपने स्थूल शरीरको त्यागिकरि सूक्ष्म अंतवाहक शरीर अपना जानत भया. राम उवाच–हे भगवन् ! आधिभौतिकता कैसी होती है अरु अंतवाहक क्या है, बहुरि क्या करत भया सो कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे संकल्पकरिके दूरते दूर चला जावे अरु जिस शरीरसाथ जावे सो अंतवाहक है अरु जो पांचभौतिक शरीर यह प्रत्यक्ष भासता है सो आधिभौतिक है, जहां मार्गकरि जानेको चित्तका संकल्प उठता है तब स्थूल शरीर गये विना वह पहुँच नहीं सकता जब मार्गकरि चले तब पहुँचता है सो आधिभौतिक है अरु यह प्रमादकरि होता है, जैसे जेवरीके

भूलनेकरि सर्प भासता है, जैसे आत्माके अज्ञानकरि आधिभौतिक शरीर भासता है, जैसे मनोराज्यके पुर बनावै तिसविषे आप भी एक शरीर बनकर चेष्टा करता फिरै सो जबलग पूर्वका शरीर विस्मरण नहीं भया तवलग संकल्पशरीरसाथ चेष्टा करता है सो अंतवाहक है तिसको संकल्पमात्र जानना सो विशेषबुद्धि कहाती है अरु आत्मबोध नहीं भया, जब तिस संकल्पशरीरविषे दृष्ट भावना होती है तिसका नाम आधिभौतिक होता है, सो घट बढ कहाता है ताते जबलग शरीरका स्मरण है तबलग आधिभौतिकता नहीं होती अरु जब विस्मरण होता है तब आधिभौतिकता हो जाती है अरु विपश्चित् जो आधिभौतिक थे सो आत्मबोधते रहित थे अरु जहां चाहैं तहां चले जाते, स्वप्नरूपते न कछु अंतवाहक है. न कछु आधिभौतिक है प्रमादकरिकै आकार भासता है, वास्तव सब चिदाकाशरूप है दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं सब वही है, तिसके प्रमादकरिकै विपश्चित अविद्यक जगत्को देखने चले थे सो अविद्या कछु वस्तु नहीं ब्रह्म ही है तौ ब्रह्मका अंत कहां आवै ? वहांते चला परंतु जानै कि मेरा अंतवाहक शरीर है, सब पृथ्वीको लंघि गया, तिसके परे जलको भी लंघि गया, तिसके परे जो सूर्यवत् दाहक अग्निका आवरण है प्रकाशवान् तिसको भी लंघि गया, मेघ अरु वायुके आवरणको भी लंघा, आकाशको लंघि गया, तिसके परे ब्रह्माकाश था तहां इसको संकल्पके अनुसार बहुरि जगत् भासने लगा, तिसको भी लंघि गया, बहुरि तिसके आगे ब्रह्माकाश है, फेरि पांचभौतिक भासि आये तिसके आवरणको भी लंघि गया, बहुरि तिस ब्रह्मांड कपाटके परे तत्त्वको लंघिकरि ब्रह्माकाश आया, बहुरि तिसविषे अपर पांचभौतिक ब्रह्माण्ड था तिसको लंघि गया अरु अंत न पाया, स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यके अंत लेनेको भटकता फिरा सो अविद्यारूप संसारका अंत कैसे आवै ? जबलग अंत लेनेको भटकता फिरता है तबलग अविद्या है जब अविद्या नष्ट होवैगी तबहीं अविद्यारूप संसारका अंत आवैगा. हे रामजी ! जगत् कछु बना नहीं, वही ब्रह्माकाश ज्यों

स्थित है; तिसका न जानना ही संसार है, जबलग उसका प्रमाद है तबलग जगत्का अंत न आवैगा जब स्वरूपका ज्ञान होवैगा तब अंत आवैगा, सो जानना क्या है? चित्तको निर्वाण करना ही जानना है,जब चित्त निर्वाण होवैगा तब जगत्का अंत आवैगा जबलग चित्त भटकता फिरता है तबलग संसारका अंत नहीं आता ताते चित्तका नाम ही संसार है, जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब जगत्का अन्त होवैगा, इस उपाय विना शांति नहीं प्राप्त होती.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विपश्चिदुपाख्यान-वर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४० ॥

एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४१.

विपश्चिच्छरीरप्राप्तिवर्णनम्।

राम उवाच—हे भगवन्! वह जो दो विपश्चित् थे, तिनकी क्या दशा भई? वह भी कहौ, वह तौ दोनोंकी एक ही कही. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! एक तो निर्वाण हुआ था अरु दूसरा ब्रह्मांडको लंघता गया लंघता लंघता एक ब्रह्मांडविषे गया तब वहां उसको संतका संग प्राप्त भया, तिनकी संगतिकरि तिसको ज्ञान प्राप्त हुआ, ज्ञानको पायकरि वह भी निर्वाण हो गया अरु एक अबलग दूर फिरता है, एक यहां पहाड़की कंदराविषे मृग होकरि विचरता है. हे रामजी! यह जगत् आत्माका आभास है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है; जबलग किरणें हैं तबलग जलाभास निवृत्त नहीं होता, तैसे जबलग आत्मसत्ता है तबलग जगत्का चमत्कार निवृत्त नहीं होता, आत्माके जाननेते जग-त्सत्ता नहीं रहती, जैसे किरणोंके जाननेते जलाभास नहीं रहता, जो भासता है तौ भी किरणोंहीकी सत्ता भासती है, तैसे आत्माके जाननेते आत्माकी सत्ता ही भासती है, भिन्न जगत्की सत्ता नहीं भासती. राम उवाच—हे भगवान्! विपश्चित् एक ही था, एक ही संवित्विषे भिन्न भिन्न वासना कैसे हुई है? अरु मुक्त एक हो गया, एक मृग होकरि फिरता रहा,

एक आगे निर्वाण हो गया यह भिन्नता कैसे हुई है? संवित् एक ही थी तिसविषे घट बढ फल कैसे प्राप्त हुए? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! वासना जो होती है सो देश काल पदार्थ करिकै होती है, तिसविषे जिसकी दृढ भावना होती है तिसकी जय होती है, जैसे एक पुरुषने मनोराज्य करिकै चार मूर्ति अपनी कल्पीं, तिनविषे वासना भिन्न भिन्न स्थापन करीं; वह संवित् तौ एक है परंतु पूर्वका शरीर भूलिकारि वह दृढ हो गये तौ जैसी जैसी भावना तिन शरीरविषे दृढ होती है सोई प्राप्त होती है, तैसे संवित्विषे नाना प्रकारकी वासना फुरती है, जैसे एक ही संवित् स्वप्नविषे नाना प्रकार धारती है अरु भिन्न भिन्न वासना होती है तैसे ही आकाशरूप संवित्विषे भिन्न भिन्न वासना होती है. हे रामजी! संवित् एक थी परंतु देश काल क्रिया करिकै वासना भिन्न भिन्न हो गई पूर्वकी संवित्स्मृति भूलि गई तिसकरि घट बढ फलको पाते भये, सो संवित् क्या रूप है? हे रामजी! देशते देशांतरको संवेदन जाती है, तिसके मध्य जो संवित्सत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है, जैसे एक जाग्रत्के आकारको छोडा अरु स्वप्न पाया नहीं, तिसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है वह किंचनरूप जगत् होकारि भासती है परंतु किंचन भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, एक है न दो है, एक कहना भी नहीं होता, दो कहां होवे अरु जगत् कहां होवे, यही अविद्या है जो है नहीं अरु भासती है, जिस जिस आकारविषे जैसी जैसी वासना फुरती है, बहुरि जो दृढ हो जाती है तिसीकी जय होती है; तिस कारणते एक विपश्चित् जनार्दन विष्णुके स्थानविषे निर्वाण हो गया, दूसरा दूरते दूर ब्रह्मांडको लंघता गया तिसको संतका संग प्राप्त भया, तिसकरि ज्ञान उदय हुआ, वासना मिटि गई अरु अज्ञान तिसका नष्ट हो गया, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है तैसे अज्ञान नष्ट हो गया, वह पदको प्राप्त भया; तीसरा अज्ञानकरिकै दूरते दूर भटकता है अरु चौथा पहाड़की कंदराविषे मृग होकारि विचरता है. हे रामजी! जगत् कछु वस्तु नहीं, अज्ञानके वशतें भटकते हैं तातें अज्ञान ही जगत् है, जबलग अज्ञान है तबलग जगत् है, जब ज्ञान उदय होता है तब अज्ञानका नाश करता है, तब जगत्का

भी अभाव हो जाता है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह जो मृग हुआ है सो कहां कहां फिरा है अरु कहां स्थित है अरु कौन स्थानविषे फिरे है ? सो कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! दो ब्रह्मांडको लंघते दूरते दूर चले गये थे, एक अबलग चला जाता है, पृथ्वी समुद्र वायु आकाश उसकी संवित्‌विषे फ़ुरते हैं, यह तो दूरते दूर चला गया है सो हमारी आधिभौतिक दृष्टिका विषय नहीं अरु एक ब्रह्मांडको लंघता गया था, अब इस जगत्‌विषे पहाडकी कंदराका मृग हुआ है सो हमारी इस दृष्टिका विषय है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह दूर गये थे अरु एक इस जगत्‌विषे अब मृग हुआ है, तुमने कैसे जाना जो आगे ब्रह्मांडविषे था अब इस जगत्‌विषे है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मैं ब्रह्म हौं, जेते कछु ब्रह्मांड हैं सो मेरे अंग हैं, मुझको सबका ज्ञान है, जैसे अवयवी पुरुष अपने अंगको जानता है कि यह अंग फ़ुरता है अरु यह नहीं फ़ुरता तैसे मैं सबको जानता हौं, जहां जहां यह फ़ुरता लंघता गया है सो बुद्धि नेत्रकरि मैं जानता हौं परंतु तुमको जाननेकी गम नहीं, जसे समुद्रविषे अनेक तरंग फ़ुरते हैं अरु समुद्र सबको जानता है तैसे मैं समुद्ररूप हौं अरु ब्रह्मांडरूप मेरेविषे तरंग हैं ताते मैं सबको जानता हौं. हे रामजी ! वह जो मृग है सो दूर ब्रह्मांडविषे फिरता है, वह विश्चित् यह मृग नहीं परंतु वह जैसा है सो सुनो. हे रामजी ! एक ब्रह्मांड इस हमारे ब्रह्मांड जैसा है, एक ही जैसा आकार है, एक ही जैसी चेष्टा, एक ही जैसा जगत् है, स्थावर जंगम सब एक ही जैसे हैं, वहां जो देशकाल क्रियाका विचारना होता है, सो इसके समान होता है जैसे नाम रूप आकार यहां होते हैं, जैसे बिंबका प्रतिबिंब तुल्य ही होता है, जैसे एक ही आकारका प्रतिबिंब जलविषे होता है अरु द्वितीय प्रतिबिंब दर्पणविषे होता है सो दोनों तुल्य हैं, तैसे दोनों ब्रह्मांड एकसमान हैं, ब्रह्मरूपी आदर्शविषे प्रतिबिंबित होता है, इस कारणते यह मृग विपश्चित् है, इसी निश्चयको धारे हुए है, यह अरु वह दोनों तुल्य हैं सो पहाडकी कंदराविषे हैं. राम उवाच–हे भगवन् ! वह विपश्चित् अब कहां है अरु उसका क्या आचार है ? अब मैं जानता हौं कि उसका

कार्य हुआ है चलिकरि मुझको दिखावहु अरु उसको दर्शन देकरि अज्ञान फांसते मुक्त करहु. वाल्मीकिरुवाच–हे अंग! जब रामजीने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वसिष्ठ बोलत भया–हे रामजी! तुम्हारा जो लीलाका स्थान जहां है, तुम क्रीडा करते हौ तिस ठौरविषे वह मृग बांधा हुआ है, तुमको तिरग देशके राजाने आनि दिया है सो बहुत सुंदर है, इसकरिकै तुमने रक्खा है, तिसको मँगावहु तब रामजीके सखा बालकविषे जो निकटवर्त्ती थे तिनसे कहा कि तिस मृगको सभाविषे ले आवहु. हे राजन्! जब इस प्रकार रामजीने कहा तब सभाविषे मृगको ले आये, जेते कछु श्रोता सभाविषे बैठे थे सो बड़े आश्चर्यको प्राप्त भये, बड़ी ग्रीवा सुन्दर अरु कमलकी नाईं नेत्र, घासको खाता, कबहूँ सभाविषे खेलै कबहूँ ठहरि जावै, तब रामजीने कहा हे भगवन्! इसको उपदेश करिकै जगावहु कि हमारे साथ प्रश्न उत्तर करै, कृपा करहु जो मनुष्य होवै, अब तौ प्रश्न उत्तर नहीं करता. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार उपदेश इसको लगैगा नहीं, काहेते कि जिसका कोऊ इष्ट होता है तिसकरि सिद्धता तिसको होती है तातें मैं इसके इष्टका ध्यान करिकै विद्यमान करता हौं, तिसकरि इसका कार्य सिद्ध होवैगा. वाल्मीकिरुवाच–हे अंग! इस प्रकार कहकर वसिष्ठजीने कमंडलु हाथविषे लेकरि तीन आचमन किये अरु पद्मासन बांधकरि नेत्र मूंदि लिये, ध्यानविषे स्थित होकरि अग्निका आवाहन किया अरु कहा, हे वह्नि! यह तेरा भक्त है, इसकी सहायता कर, इसके ऊपर दया कर, तुम संतका दयालु स्वभाव है, जब ऐसे वसिष्ठजीने कहा तब सभाविषे बड़े प्रकाशको धरे अग्निकी ज्वाला प्रगट भई, काष्ठ अंगारते रहित बड़े प्रकाशको लिये पड़ी जलै, जब ऐसी अग्नि जागी तब मृग देखकरि बहुत प्रसन्न भया अरु चित्तविषे बड़ी भक्ति उत्पन्न भई, तब वसिष्ठजीने नेत्र खोलकरि अनुग्रहसहित मृगकी ओर देखा, तिसकरि संपूर्ण पाप उसके दग्ध हो गये अरु वसिष्ठजीने अग्निसे कहा कि हे भगवन् वह्नि! यह तेरा भक्त है, अपनी पूर्वकी भक्ति स्मरण करिकै इसपर दया करहु, इसके मृगशरीरको दूर करिकै इसको

विपश्चित् शरीर देवहु, जो यह अविद्या भ्रमते मुक्त होवै. हे राजन्! इस प्रकार वसिष्ठजीने अग्निसे कह रामजीसे कहत भये, हे रामजी! अब यह मृग अग्निविषे प्रवेश करैगा तब इसका मनुष्यशरीर हो जावैगा, ऐसे वसिष्ठजी कहते थे कि अग्निको मृग देखिकरि एक चरण पाछेको धरा अरु उछलिकरि अग्निविषे आय प्रवेश किया, जैसे बाण निशानविषे आय प्रवेश करते हैं तैसे प्रवेश किया. हे राजन्! तब उस मृगको खेद कछु न भया, उसको अग्नि आनंदवान् दृष्टि आया तब उसका मृगशरीर अंतर्धान हो गया अरु महाप्रकाश मनुष्यशरीरको धारे अग्निते निकसा, जैसे पटके ओटसों स्वांगी स्वांग धारि निकसि आता है तैसे निकसि आया, भले वस्त्रको पहिरे हुए शीशपर मुकुट कण्ठविषे रुद्राक्षकी माला अरु यज्ञोपवीत हुआ, अग्निवत् प्रकाश तेजवान् सभाविषे जो बैठे थे तिनते भी अधिक तेज मानौ अग्निको भी लज्जित किया है, जैसे सूर्यके उदय हुए चंद्रमाका प्रकाश लज्जित होता है तैसे सर्व ओरते जल ही जल होगया तब जैसे समुद्रसों तरंग निकसिकरि लीन हो जाता है तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, तिसको देखिकरि रामजी आश्चर्यको प्राप्त हुए, सर्व सभा विस्मयको प्राप्त भयी, तब बडे प्रकाशको धारनेहारा विपश्चित् निकसिकरि ध्यानविषे जुडि गया, विपश्चित्ते आदि लेकरि इस शरीरपर्यंत सर्व स्मरण करिकै नेत्र खोलि दिये; वसिष्ठजीके निकट आयकरि साष्टांग प्रणाम किया अरु कहत भया, हे ब्राह्मण ज्ञानके सूर्य! हे प्राणके दाता! तुमको मेरा नमस्कार है, हे राजन्! जब इस प्रकार उसने कहा तब वसिष्ठजीने उसके शिर पर हाथ रक्खा अरु कहा, हे राजन्! तू उठ खडा हो, अब तेरी अविद्या मैं दूर करौंगा, तू अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, तब राजा विपश्चितने उठिकरि राजा दशरथको प्रणाम किया अरु कहा हे राजन्! तेरी जय होवै, तब राजा दशरथ आसनते उठिकरि कहत भया, हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहे हो, अब यहां मेरे पास बैठो, तब राजा विपश्चित् बैठि गया, विश्वामित्र आदिक ऋषि बैठे थे तिनको यथायोग्य प्रणाम करिकै बैठि गया तब राजा दशरथने विपश्चित्को

भास करिकै बुलाया, बडे प्रकाशको धारे हुए जो विपश्चित् था इस कारणतें दशरथने कहा, हे भास! तुम तौ संसारभ्रमके लिये चिरकाल फिरते रहे हौ, थके होहुगे, विश्राम करौ अरु जो जो देश काल क्रिया करी है, देखी है सो कहौ, यह आश्चर्य है कि अपने मंदिरविषे सोया होवै अरु निद्रादोषकरिकै गर्त्तविषे गिरता फिरै अरु देशदेशांतरको भटकता फिरै, यही अविद्या है. हे भास! जैसे वनका विचरनेवाला हस्ती संकलकरि बंधायमान होवै, जैसे यह बांधा हुआ दुःख पाता है तैसे तू विपश्चित् भी था अरु अविद्याकरिकै तू जगतके देखने निमित्त भटकता है. हे राजन्! जगत् कछु वस्तु नहीं अरु भासता है वही माया है, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे नाना प्रकाके रंग भासते हैं, तैसे अविद्याकरिकै यह जगत् भासता है अरु सत्य प्रतीत होता है सो है क्या? आकाशरूप ही आकाशविषे स्थित है तिस आकाशविषे जो कछु तुझने देखा है आत्मरूपी चिन्तामणिके चमत्कार साथ सो कहो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विपश्चित्शरीरप्राप्तिर्नाम एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४२.
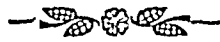
वटधानोपाख्यानवर्णनम्।

दशरथ उवाच–हे भास! बडा आश्चर्य है कि तू विपश्चित् बुद्धिमान् था अरु चेष्टाते तू अविपश्चित् हुआ, बुद्धि करी है सो अविद्याके देखनेको तू समर्थ हुआ था, यह जगत्प्रतिभा तौ मिथ्या उठी है, असत्यके ग्रहणकी इच्छा तुझने क्यों करी? वाल्मीकिरुवाच–हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा तब प्रसंगको पायकरि विश्वामित्र बोलत भया–हे राजा दशरथ! यह चेष्टा सोई करता है, जिसको परमबोध नहीं होता अरु केवल मूर्ख अज्ञानी भी नहीं होता, काहेते कि जिसको परमबोध आत्माका अनुभव होता है, सो जगत्को अविद्यक जानता है, अविद्यक जगत्के अंत लेनेको एता यत्न नहीं

करता, वह तो असत्य जानता है अरु जो देहाभिमानी मूर्ख अज्ञ है सो भी यह यत्न नहीं करता, काहेते कि उसको देखनेकी समर्थता भी नहीं होती ताते तू मध्यभावी है सो आत्मबोधते रहित है अरु आधिभौतिक शरीर त्याग किया है सो यत्न करता है अरु जिनको उत्तम बोध नहीं हुआ तो बहुत इस प्रकार भटकते फिरते हैं. हे राजन्! इसी प्रकार वटधाना भी फिरते हैं, सत्तर लक्ष वर्ष उनके व्यतीत भये हैं, जो इसी ब्रह्मांडविषे फिरते हैं उनने भी यही निश्चय धारा है कि पृथ्वी कहांलग चली जाती है, इस निश्चयते निवृत्त नहीं होते अरु इसी ब्रह्मांडविषे भ्रमते हैं परंतु उनको अपनी वासनाके अनुसार विपरीत अपर ही अपर स्थान पड़े भासते हैं. हे राजन्! जैसे किसी बालकको संकल्पका रचा वृक्ष आकाशमें होवै तैसे यह भूगोल ब्रह्माके संकल्पविषे स्थित है, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी इन पांचो तत्त्वका ब्रह्मांड रचा है, संकल्पकरिकै जैसे एक खेत होवै, तिसके चौफेर कीड़ी फिरै सो जिस ओरते वह जाती है सोई ओर ऊर्ध्व भासता है सो अपर ही अपर निश्चय होता है, तैसे यह संकल्पका रचा भूगोल है, तिसके किसी कोणविषे वटधाना इस प्रकार जीव होत भये हैं, एक राजा था तिनके तीन पुत्र थे तिनको संकल्प आनि उदय हुआ कि हम जगतके अंतको देखैं इसी संकल्पकरि फिरते हैं, पृथ्वी लंघते हैं, बहुरि जल आता है, जल लंघते हैं, बहुरि आकाश आता है, बहुरि पृथ्वी जल वायु आते हैं, बहुरि उसी भूगोलके चौफेर फिरते हैं सो यह भूगोल कैसा है, जैसे आकाशविषे खेत होवै तैसे यह पृथ्वी आकाशविषे है, इसका अधः कोऊ नहीं अरु चरण सो अधः शिरके पास ऊर्ध्व तिसके चौफेर भ्रम रहे परंतु अपने निश्चयकरि अपरका अपर जानते हैं अरु स्वरूपका प्रमाद है तबलग जगतका अभाव नहीं होता, जब आत्मा साक्षात्कार होता है तब जगत ब्रह्मरूप हो जाता है, जगत् कछु नहीं, कछुक फुरणाकरिकै भासता है सो जैसे स्वप्नविषे अज्ञानका अनंत जगत्को देखता है, यह हुआ है सो फुरणा परमब्रह्मविषे हुआ जो फुरणेविषे हुआ है सो भी परमब्रह्म है, अपर कछु बना नहीं,

सत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, जैसे पत्थरकी शिला घनरूप होती है तैसे आत्मतत्त्व चेतनघन है;जैसे आकाश अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, कल्पना परमब्रह्मरूप है अरु ब्रह्म ही कल्पनारूप है.इस जड़ अरु चेतनविषे कछु भेद नहीं. हे राजन्! जिसको जगत् शब्दकरि कहता है सो ब्रह्मसत्ता ही है, न कछु उत्पन्न हुआ है न प्रलय होता है,सर्व ब्रह्म ही है, जैसे पहाड़विषे पत्थरते इतर कछु नहीं तैसे जगत् ब्रह्मसत्ताते इतर कछु नहीं, जैसे पाषाणकी पुतली पाषाणरूप ही है तैसे जगत् ब्रह्मरूप ही है एक सूक्ष्म अनुभव अणुते अनेक अणु होते हैं, जैसे एक पहाड़ते अनेक शिला होती हैं. हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको जगत् ब्रह्मरूप भासता है अरु जो अज्ञानी हैं तिनको नाना प्रकारका जगत् भासता है सो जगत् कछु वस्तु नहीं परंतु जबलग संकल्प है तबलग जगत् फुरता है, जैसे रत्नका चमत्कार होता है तैसे जगत् आत्माका चमत्कार है अरु चेतन आत्माके आश्रय अनंत सृष्टि फुरती हैं सो सृष्टि सब आत्मरूप हैं, आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं, जो जाग्रत् पुरुष ज्ञानवान् हैं तिनको ब्रह्मरूप ही भासता है, जो अज्ञानी हैं तिनको नाना प्रकारका जगत् भासता है.हे राजन्! कई एक इसको शून्य कहते हैं कि शून्य ही है, अपर कछु नहीं अरु कई इसको जगत् कहते हैं अरु कई ब्रह्म कहते हैं; जो किसीको निश्चय होता है तिसको सोई रूप भासता है अरु आत्मरूपी चिंतामणि है; जैसा संकल्प फुरता है तैसा ही भासता है, सर्वका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जैसा जैसा तिसविषे निश्चय होता है तैसा तैसा होकरि वही भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य यह त्रिपुटी जो भासती है सो भी ब्रह्म होकरि भासती है, अपर द्वितीय कछु वस्तु नहीं अरु अपर जो भासता है सोई अज्ञान है. हे राजन्! जबलग इसकी वासना नष्ट नहीं होती तबलग इसके दुःख भी नहीं मिटते जब वासना मिटि जावै तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आप ही भासै, राग द्वेष किसीविषे न रहै, जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारकी सृष्टि भासती है, जो पूर्व स्वरूप स्मरण आता है तौ सर्वरूप आप हो जाता है, राग द्वेष उसका मिटि जाता है; तैसे ज्ञानवान्को यह जगत्

ब्रह्मरूप अपना आप भासता है अरु समानरूप विचारते रहित होता है, जो पूर्व अपूर्व अपरको विचारणा के यह शुभ है यह अशुभ है, अशुभका त्याग करना यह गुणविचार है, जबलग पूर्व अपर विचार मनविषे रहता है तबलग जगत्‌विषे भटकता है अरु बांधा रहता है, काहेते जो शुभ अशुभ दोनों जगत्‌विषे हैं, जब इनका विस्मरण हो जावै, संपूर्ण जगत्‌को भ्रममात्र जानिकरि आत्मपदविषे सावधान होवै तब मुक्त होवैगा अरु इस जीवको अपनी वासना ही बंधनका कारण है, जबलग जगत्‌विषे दुःखकी वासना होती है तबलग रागद्वेष उपजता है तिसकरि बांधा रहता है, जिनको जगत्‌के सुख दुःखविषे राग द्वेषकी भावना नहीं उपजती अरु वासना भी नष्ट भयी है तिनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप ही भासता है, जगत्‌विषे दुःखदायक कछु नहीं भासता; उनको सब ब्रह्म भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० वटधानोपाख्यानवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४२ ॥

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४३.

विपश्चित्कथावर्णनम् ।

दशरथ उवाच-हे भास ! तुम चिरकालपर्यंत जगत्‌विषे फिरते रहे हौ, जिस प्रकार तुमने चेष्टा करी है अरु जो देश काल पदार्थ देखे हैं सो सब ही कहौ. भास उवाच-हे राजन् ! मैं जगत्‌को देखता फिरा हौं, फिरता फिरता थक गया हौं परंतु देखनेकी जो इच्छा थी इस कारणते मुझको दुःख नहीं भासा. जो कछु मैंने चेष्टा करी है अरु जो देखा है सो कहता हौं. हे राजन् ! मैंने बहुत जन्म धारे हैं अरु बहुत वार मृतक भया हौं, बहुत वार शाप पाया है, ऊंच नीच जन्म धारे हैं अरु मर मर गया हौं अरु बहुत ब्रह्मांड देखे हैं परंतु अग्नि देवताके वरकरिके एक वार मैं वृक्ष हुआ हौं, सहस्र वर्षपर्यंत फूल फल टास संयुक्त रहा हौं, जब कोऊ काटै तब मैं दुःखी होऊं, अंतरते मन मेरा पीड़ा पावै. बहुरि

वहांते शरीर छूटा तब सुमेरु पर्वतपर स्वर्णका कमल हुआ, वहांका जल पान किया, बहुरि एक देशविषे पक्षी हुआ, सौ वर्ष पक्षी रहा, बहुरि गीदड हुआ, वहां हस्तीने चूर्ण किया तब मृतक भया, बहुरि सुमेरु पर्वतपर मैं सुंदर मृग हुआ, देवता अरु विद्याधर मेरे साथ प्रीति करैं, तब केता काल रहकरि मृतक भया, बहुरि देवतोंके वनविषे मंजरी हुआ, देवियां विद्याधरियां मुझको स्पर्श करैं अरु सुगंधि लेवैं, तब मैं देवतोंकी स्त्री भया, बहुरि मैं सिद्ध हुआ मेरा वचन फुरणे लगा, बहुरि अपर शरीर धारा, एक ब्रह्मांड लंघि गया, बहुरि अपर बहुरि अपर इसी प्रकार केते ब्रह्मांड मैं लंघि गया, एक ब्रह्मांडविषे जो आश्चर्य देखा है सो सुनहु, एक स्त्री देखी तिसके शरीरविषे कई ब्रह्मांड देखे देखकर मैं आश्चर्यको प्राप्त भया अरु देश काल क्रियाकरि पूर्ण त्रिलोकीको देखता मैं विस्मयको प्राप्त हुआ, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब दृष्टि आता है तैसे मुझको जगत् भासै तब उसको मैंने कहा हे देवी ! तू कौन है अरु यह शरीरविषे तेरे क्या है ? देव्युवाच–हे साधो ! मैं शुद्ध चिच्छक्ति हौं अरु यह सब मेरे अंग हैं मेरेविषे स्थित हैं अरु मेरी क्या बात पूछनी है ? जेता कछु जगत् तू देखता है सो सब चिद्रूप है, चेतनते इतर कछु अपर नहीं, अरु सबविषे ब्रह्मांड त्रिलोकी आय स्थित है, जो अपना आप ही है, जो पूर्व अपने स्वभावविषे स्थित हैं, तिनको अपनेहीविषे भासते हैं अरु अपना ही स्वरूप भासता है अरु जो स्वभावविषे स्थित नहीं तिनको जगत् बाहर भासते हैं अरु आपते भिन्न भासते हैं. हे राजन् ! यह जगत् कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे नगर भासता है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जलविषे तरंग भासते हैं सो जलरूप हैं. तरंग कछु इतर वस्तु नहीं होते, तैसे सब जगत् चिद्रूपविषे भासता है सो चेतनते इतर कछु नहीं परंतु जब स्वभावविषे स्थित होकरि देखैगा तब ऐसे भासैगा अरु जो अज्ञान दृष्टिकरि देखैगा तौ नाना प्रकारका जगत् दृष्टि आवैगा. हे राजन् दशरथ ! इस प्रकार उस देवीने मुझको कहा तब मैं वहांते चला, आगे अपर सृष्टिविषे गया तहां देखौं कि सब ही पुरुष रहते हैं स्त्री कोऊ नहीं, पुरुषसों पुरुष उत्पन्न

होते हैं, तिसते भी आगे अपर सृष्टिविषे गया, तहां न सूर्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न अग्नि है, न दिन है, न रात्रि है, जैसे चंद्रमा सूर्य तारेका प्रकाश होता है तैसे सब अपने प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, तिनको देखि-करि मैं आगे अपर सृष्टिविषे गया, तहां क्या देखा कि आकाशहीते जीव उत्पन्न होते हैं अरु आकाशहीविषे लीन होते हैं, इकट्ठे ही सब उपजते हैं अरु इकट्ठे ही सब लीन हो जाते हैं, न वहां मनुष्य हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्र हैं, न जगत् है, इनते विलक्षण ही प्रकार है. हे राजन् ! इस प्रकार मैंने कई सृष्टि देखी हैं सो मुझको स्मरण आती हैं, आगे अपर सृष्टिविषे मैं गया तहां क्या देखा कि सब जीव एक ही समान हैं, न किसीको रोग है न दुःख है, सब एक जैसे गंगाके तीरपर बैठे हैं. हे राजन् ! एक अपर आश्चर्य देखा है सो सुन, एक सृष्टिविषे मैं गया तहां क्षीरसमुद्र मंदराचलकरि मथा जाता है, एक ओरते विष्णु भगवान् अरु देवता हैं, रत्नसाथ जड़ा हुआ मंदराचल पर्वत है, शेषनागकरिकै रसडी-की नाईं लपेटा हुआ है, मथनेके निमित्त दूसरी ओरते दैत्य लगे हैं, बडा सुन्दर शब्द होता है, तहां महाकौतुक देखिकरि मैं आगे आया, एक अपर सृष्टि देखी, तहां मनुष्य अरु देवता आकाशविषे उडते फिरते हैं, पृथ्वीके ऊपर मनुष्य विचरते हैं, वेद शास्त्र जानते हैं. हे राजन् ! एक अपर आश्चर्य देखा कि एक सृष्टिविषे मैं जाय निकसा तहां मंदराचल पर्वत ऊपर कल्पतरु मंदार वृक्षका वन है, तिसविषे मंदरका नाम एक अप्सरा रहती थी, तहां मंदराचल पर्वतपर जायकरि मैं सोइ रहा, रात्रिका समय था, वह अप्सरा मेरे कंठसे आयलगी तब मैंने जागिकरि देखा अरु कहा, हे सुंदरी ! तैंने मुझको किस निमित्त जगाया ? मैं तौ सुख साथ सोया था तब अप्सराने कहा, हे राजन् ! मैं इस निमित्त तुझको जगाया है कि चंद्रमा आनि उदय हुआ है अरु चंद्रकांत मणि चंद्रमाको देखिकरि स्रवैगी अरु नदीकी नाईं प्रवाह चलैगा तिसविषे तू बहि जावैगा इस कारणतें मैंने तुझको जगाया है. हे राजा दशरथ ! जब इस प्रकार उसने कहा तब तत्काल ही नदीका प्रवाह चलने लगा तब वह प्रवाहको देखिकरि मेरेको आकाशविषे ले उड़ी, पर्वतके ऊपर गंगाका

प्रवाह चलता था तिसके कांठेपर मुझको स्थित किया, सप्तवर्षपर्यंत मैं वहां रहा, बहुरि एक ब्रह्मांडविषे गया तहां तारा नक्षत्रचक्र सूर्य कछु न था, तिसको देखिकरि मैं आगे गया, इस प्रकार अनंत ब्रह्मांड मैं देखता फिरा हौं. हे राजन्! ऐसा देश कोऊ न होवैगा अरु ऐसी पृथ्वी कोऊ न होवैगी, ऐसे नदी पहाड़ कोई न होवैंगे जिसको मैंने न देखा होवैगा अरु ऐसी चेष्टा कोऊ न होवैगी जो मैंने न करी होवैगी, कई शरीरके सुख भोगे हैं,कई दुःख भोगे हैं, वन कंदरा अरु गुप्त स्थान मैंने सब देखे हैं परंतु अग्नि देवताके वरको पायकरि हे राजन्! फिरता फिरता मैं थकि गया तौ भी आगे चला जाऊं, अनेक ब्रह्मांड अविद्यक मैंने फिर देखे हैं अरु अंत अव आया है कि यह जगत् भ्रममात्र है अरु मैंने शास्त्रमें सुना है कि यह जगत् है नहीं, यद्यपि है नहीं तौ भी दुःखको देता है, जैसे बालकको अपने परछायेविषे वैताल भासता है तैसे यह जगत् अविचारकरिकै भासता है अरु विचार कियेते निवृत्त हो जाता है अरु एक आश्चर्य सुन, एकब्रह्मांडविषे मैं गया तहां महाआकाश था तिस महाकाशसे गिरा, पृथ्वीऊपर आनि पडा तब तहां सोइ गया, महागाढ सुषुप्तिरूप हो गया अरु सब जगत्का विस्मरण हो गया जब गाढ सुषुप्ति क्षीण भयी तब एक स्वप्न आया तिस स्वप्नविषे यह जगत् तुम्हारा मुझको भासि आया, तिसविषे पहाड कंदरा देश गुप्त प्रगट स्थान मुझको भासि आये, जहां सिद्धकी गम है तहां भी मैं गया हौं अरु जहां सिद्धकी गम नहीं है तहां भी मैं गया हौं, इस प्रकार यत्न देखे हैं परंतु आश्चर्य है कि स्वप्नकी सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रतविषे दृष्टि आवै है अरु स्वप्नके शरीर जाग्रत्विषे पडे भासते हैं ताते सब जगत् भ्रममात्र है, असत् ही सत् होकरि दिखाई देता है, इस प्रकार देखिकरि मैं आश्चर्यको प्राप्त भया हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विपश्चितकथावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४४.

महाशववृत्तान्तवर्णनम् ।

विपश्चिदुवाच-हे राजन् ! एक सृष्टि जो मैंने देखी है सो किस आकाशमें है, इस महाकाशमें है, जो इस महाकाशते भिन्न नहीं अरु तहां तुम्हारी भी गम नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि कोऊ जाग्रत्विषे देखना चाहे सो दृष्टि नहीं आती तैसे वह सृष्टि है.हे राजन्!पृथ्वीका एक स्थान था सो मेरे देखते देखते पच्छावेकी नाईं फुरणे लगा, बहुरि वह आकाशविषे पहाडकी नाईं भासने लगा अरु मनुष्यका शरीर अरु दशों दिशा रोकि लिया अरु आकाशते भी बडा भासने लगा सो आकाशविषे भी समावै नहीं, बहुरि सूर्य चंद्रमाको मेरे देखते देखते आच्छादि लिया बहुरि भूकंप जैसा आया मानों प्रलयकाल आया है, तब मैं अपने इष्ट अग्नि देवताकी ओर देखत भया अरु कहा-हे भगवन् ! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षा करते आये हौ अब भी मेरी रक्षा करौ, मैं नष्ट होता हौं.तब अग्निने कहा-तू भय मत कर,तब मैंने अग्निविषे जीव प्रवेश किया, बहुरि अग्निने कहा-मेरे वाहनपर आरूढ होकरि मेरे स्थानविषे चल, तब मुझको अपने वाहन तोतेपर चढायकरि मेरे ताईं आकाशमार्गसे ले उड़ा, जब हम उड़े तब पाछेते वह शवनितक पृथ्वीपर गिरा तिसके गिरनेकरि सुमेरु जैसे पर्वत पातालको चले गये, महा बडा शरीर जैसे सैकडों सुमेरु गिरैं तैसे गिरा अरु मंदराचल मलयाचल अस्ताचलते लेकरि जो पर्वत थे सो अधःको चले गये अरु पृथ्वी जर्जरीभावकरि फटि गई, टोए पड़ि गये अरु तिसके शरीरके नीचे वृक्ष मनुष्य दैत्य स्थावर जंगम जो आये सो सब नष्ट हो गये,बडा उपद्रव आनि उदय हुआ, तिसके शरीरसाथ सर्व दिशा पूर्ण हो गईं अरु अंग उसके ब्रह्मांडते भी पार निकसि गये. हे राजन् दशरथ ! जब इस प्रकार मैंने भयानक दशा देखी तब अपने इष्ट अग्निको कहा. हे देव ! यह उपद्रव क्योंकरि हुआ है अरु यह सब कौन हैं ? ऐसा शरीर बडा आगे तौ कोऊ देखा सुना नहीं, तब अग्निने कहा-तू अब तूष्णीं होहु,

यह सब वृत्तांत मैं तुझको कहौंगा, इसको तू शान्त होने दे एता काल तू विलंब करु, इस प्रकार अग्नि कहता था कि देवता विद्याधर गंधर्व सिद्ध जेते कछु स्वर्गके वासी थे सो सब आनिकारि मिल स्थित हुए अरु विचार करत भये कि यह उपद्रव प्रलयकाल विना हुआ है, इसके नाश करनेको देवीजीकी आराधना करिये. हे राजन् ! ऐसे विचार करिकै देवीजीकी स्तुति करने लगे. हे देवी शववाहिनी काकदेशी चंडिका ! हम तेरी शरण आये हैं, इस उपद्रवते हमारी रक्षा करहु ऐसे कहिकारि स्तुति करने लगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० महाशववृत्तांतवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४४ ॥

पंचचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४५.

स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णनम् ।

विपश्चिदुवाच-हे राजन् दशरथ ! वह देवता स्तुति करिकै शवकी ओर देखते भये कि सप्त द्वीप इसके उदरविषे समाय गये हैं अरु भुजाकारिकै सुमेरु आदिक पर्वत आच्छादित हो गये हैं, अपर अंग उसके ब्रह्मांडको भी लंघि गये हैं अरु साथ ही पातालको गये हैं, तिनकी मर्यादा कहूँ पाई न जावै, एक अंगहीकारिकै कहूँ पृथ्वी छपि गई, ऐसे देखकारि विद्याधर देवता गंधर्व सिद्ध इनते लेकारि नभचर स्तुति करने लगे-हे अंबे चंडिका ! अपने गणको साथ लेकारि इस उपद्रवते हमारी रक्षा करहु, हम तेरी शरण आये हैं. हे राजन् ! जब इस प्रकार स्तुति करिकै देवता आराधन करने लगे तब चंडिका अपने गणनको लेकारि आकाशमार्गसों आती भयी, यक्ष वैताल भैरव आदिक गण साथ ले आई, जैसे मेघ सर्व दिशाको आच्छादि लेता है तैसे सर्व ओरते गण आये अरु आकाशको आच्छादि लिया अरु चंडिका बडे तेज रूपको धारे हुए चली आवै, मानौ अग्निकी नदी चली आती है, रक्त नेत्र हैं, शिर ऊपर पके केश हैं अरु श्वेत दंत हैं अरु बडे शस्त्र धारे हुए हैं अरु कई कोटि

योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, सब दिशा आकाश शरीरकरि आच्छादित कर लिया है अरु कंठविषे रुंडकी माला है अरु सब मुरदे वाहनपर आरूढ हुई है अरु परमात्मपदविषे तिसकी स्थिति है अरु हृदय प्रकाशसंयुक्त शरीर है, सूर्य चंद्रमा अग्नि आदिकके प्रकाशको भी लज्जित किया है अरु हाथविषे खड्ग त्रिशूल ध्वजा ऊखल आदिक नाना प्रकारके शस्त्र धारे हैं अरु आकाशविषे तारागणकी नाईं गये हैं, इस प्रकार गणनसहित चली आती है, मानौ समुद्रते निकसी वडवाग्नि चली आती है, जब इसके निकट आये तब देवता बहुरि प्रार्थना करने लगे—हे अंबे ! इस शवको नाश करहु, अपने गणनको आज्ञा करहु जो इसको भोजन करैं, हम इसको देखकरि बडे शोकको प्राप्त हुए हैं, हम तेरी शरण हैं, इस उपद्रवते हमारी रक्षा करु. हे राजा दशरथ ! जब इस प्रकार देवतोंने कहा तब चंडिका प्राणवायुको खैंचती भई, तिसकरि देवीके खैंचनेते जेता कछु शवविषे रक्त था सो सब पान करि लिया जैसे समुद्रको अगस्त्यने पान किया है तैसे पान करि लिया, तिसकरि देवीका उदर अरु अंग सब भरे पूर्ण हो गये अरु नेत्र लाल हो आये, तब देवी नृत्य करने लगी अरु अपर सब शवको भोजन करने लगे, कई मुखको लगे, कई भुजाको, कई उदरको, कई वक्षःस्थलको, कई टांगको, कई चरणको इस प्रकार सब अंगको गण भोजन करने लगे, कई गण आज्ञा लेकारि आकाशविषे गये, सूर्यके मंडलको गये, कई गण अंगके अंत पावनेको उडे सो मार्गहीमें मर गये परंतु अंत कहूँ न पाया अरु देवी उस शवकी ओर देखै, तिस देखनेकारि नेत्रते अग्नि निकसै, तिस अग्निकरि मांस परिपक्व होवै अरु गण भोजन करैं अरु पकनेके समय जो शरीरते कहूं रक्तकी बूंद निकसै तिसकरि मंदराचल अरु हिमाचल पर्वत लाल हो गये, मानौ पर्वतने लाल वस्त्र पहिरे हैं अरु रक्तकी नदियां बहै हैं; बडे जो सुंदर स्थान थे अरु दिशा सब भयानक होत भई अरु पृथ्वीऊपर जीव सब नष्ट हो गये, पहाडकी कंदराविषे जाय देव रहे सो बचि गये, अपर सब नष्ट हो गये. राम उवाच—हे भगवन् ! तुम कहते हौ, उसके नीचे आय प्राणी सब नष्ट हो गये अरु अंग उसके ऐसे कहते हौ, जो ब्रह्मांडको भी लंघि गये, बहुरि कहते हौ देवता बचि रहे सो क्या कारण है ?

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो उसके शरीर अरु अंगके नीचे आये सो नष्ट हो गये अरु मुख अरु ग्रीवाविषे कछु भेद नहीं तिसविषे जो पोल है अरु गोदी अरु टांगके नीचे जो कछु पोल है अरु सुमेरु मंदराचल उदयाचल अस्ताचल पर्वतविषे कछु पुलाव है तिनकी कंदराविषे बैठे देवता बचि गये, अंगके छिद्रविषे रहे हैं इसप्रकारि बचि रहे हैं अरु कहने लगे, बडा कष्ट है, हमारे बैठनेके स्थान कई नष्ट हो गये हैं, वृक्ष कहां गये, बर्फका पर्वत हमारा कहां गया, इनकी सुंदरता कहां गई, वन अरु बगीचे कहां गये, चंदनके वृक्ष कहां गये अरु जनके समूह कहां गये जो हमको यज्ञकारि पूजते थे, वह ऊंचे वृक्ष कहां गये कि ब्रह्मलोकपर्यंत जिनके फूल अरु टास जाते थे अरु वह क्षीरसमुद्र कहां गया, जिसके मथनेकारि बडा शब्द उदय होता था अरु तिसके पुत्र जो रत्न कल्पतरु अरु चंद्रमा थे सो कहां गये अरु जंबूद्वीप कहां गया, जिस जंबूके फलकी नदी चलाई थी अरु स्वर्णवत् जलके चक्र उठते थे सो नहीं है कहां गई अरु गन्नेके रसका समुद्र कहां गया? हा कष्ट! महा कष्ट आपडा है, खंडके पर्वत अरु मिसरीके पर्वत, अप्सराके विचरणेके स्थान कहां गये, पृथ्वी कहां गई, यह नंदनवनके स्थान कहां गये? जहां हम अप्सरासाथ विलास करते थे तिन विषयका अभाव नहीं हुआ, मानौ हमको शूल चुभते हैं, जैसे फलको कंटक चुभते हैं तैसे विषयके आभासरूपी हमको कंटक चुभते हैं. हे रामजी! शोकवान् हुए अरु कहते भये, हा कष्ट! हा कष्ट! इस प्रकार विषय स्मरण कारिकै देवता शोक करते हैं अरु गण वहां शवको भोजन करते हैं, जेते कछु अंग तिसके थे सो गणनने भोजन कारि लिये, तिसकारि अघाय रहे अरु कछु मेदाका शेष रह गया अरु सुगंध बहुत तब तिसका जो पिंड रहा सो धराकी पृथ्वी हुई, तिसकारि तिस पृथ्वीका नाम मेदिनी हो गया; अरु मोटे जो हाडे हुए होते हैं तिसके सुमेरु आदिक पर्वत हुए तब ब्रह्माजीने देखा कि सब विश्व शून्य जैसा हो गया है ताते बहुरि मैं रचौं, तब पूर्वकी नाईं सृष्टिको रची, जगतका सब कर्मव्यवहार चलने लगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० स्वयंमाहात्म्यवृत्तांतवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४६.

मशकव्याधवर्णनम् ।

विपश्चिदुवाच–हे राजन् ! जब यह कर्म हो रहा था तब मैंने अपने इष्ट देवतासों प्रश्न किया, तोते वाहनपर आरूढ हुए मैंने कहा, हे महादेव ! सर्व जगत्‌के ईश्वर अरु जगत्‌के भोक्ता ! यह सब क्या था अरु कहां स्थित था अरु किस प्रकार गिरा है ? अग्निरुवाच–हे राजन् ! अनंत त्रिलोकी जिसका आभास है तिसविषे वृत्तांत वर्णन होवैगा, एक त्रिलोकीविषे इस सबका वृत्तांत नहीं होता ताते सुन. हे राजन् ! एक परम आकाश है सो चिन्मात्र पुरुष है, सर्वज्ञ है, अनामय है अरु अनंत है सो आत्मतत्त्व केवल अपने आपविषे स्थित है, तिसका जो आभास है सो संवेदन फुरणा है, सोई किंचन होता है सो तिसके किसी स्थानविषे फुरता है तब ऐसे भावना होती है कि मैं तेज अणु हौं, तिस भावनाके वशते अणु जैसी हो जाती है, जैसे कोऊ पुरुष सोया है अरु स्वप्नमें आपको मार्गविषे चलता देखता है, जैसे तुम स्वप्नविषे आपको पौढे देखहु तैसे चित्संवेदन आपको अणु जानत भई है, जैसे फुरणा ब्रह्माको हुआ है तैसे घूड़के किणकेका हुआ है अधिष्ठानविषे फुरणा तुल्य हुआ है तब उस अणुको शरीरकी भावना होती है जो अपने साथ शरीर देखती है, शरीरके होनेकरि नेत्र आदिक इंद्रियां घन होती हैं तब शरीर अरु इंद्रियोंसाथ आपको मिला हुआ जानता है, अपना आप जानकरि तिनको ग्रहण करता है, इंद्रियोंकरि विषयको ग्रहण करता है तब वही चिद्रूप जीव प्रमादकरिकै आधाराधेय भावको मानता है अरु अधिष्ठान सत्ताविषे कछु हुआ नहीं, अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है. जैसे स्वप्नविषे प्रमादकरिकै आपको किसी ग्रहविषे बैठे देखता है तैसे यहां प्रमादकरिकै आधाराधेयभावको देखता है, प्राण अरु मन अहंकारको धारता है अरु जानता है, मेरे माता पिता हैं अरु मैं अनादिका जीव हौं अरु अपना शरीर जानकरि आगे पांचभौतिक जगत्‌शरीरको देखता है अपने फुरणेके अनुसार.

हे अंग ! इसी प्रकार जो आदिक शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वविषे फुरणा हुआ तब चित्तकला फुरी, यह आपको तेज अणु जानत भई तिसविषे अहं-वृत्तिकरि अहंकार हुआ अरु निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैत्यतारूप चित्त हुआ, संकल्पविकल्परूप मन हुआ, यह उत्पत्ति होकरि बहुरि तन्मात्र उत्पत्ति भई, फेरि तिनकी इच्छाद्वारा शरीर इंद्रियां उत्पन्न भईं, बहुरि तिन इंद्रियोंके वशते देखनेकी इच्छा हुई तिस संवित्कालविषे तब आगे दृश्य भासि आई तब संवित्शक्ति आपको प्रमाददोषकरिके दैत्य जानत भई कि मैं दैत्य हौं अरु साथ ही तिसके अपने माता पिता फुरि आये कि यह मेरी माता है, यह पिता है, यह कुल है, सो चिरकालकी चली आती है, इसप्रकार एक दैत्य अहंकारसहित विचरने लगा तब एक कुटी-विषे एक ऋषि बैठा था, तिस कुटीकी ओर दैत्य गया सो किस प्रकार गया कि उसकी कुटीका चूर्ण करत भया, जब ऋषिके निकट गया तब ऋषिने कहा–हे दुष्ट ! तुझने क्या चेष्टा ग्रहण करी है अब तू मरि जा-वैगा अरु मच्छर होवैगा. हे विपश्चित् ! तिस ऋषिके शापरूपी अग्नि-करि उसका शरीर भस्म हो गया तब उसकी निराकार चेतनसंवित् भूताकाशरूप हो गई, तब आकाशविषे तिसका वायुसाथ संयोग हुआ, तब उस ऋषि मौनीके शापकी वासना आनि उदय भई, जैसे पृथ्वीविषे समय पायकरि बीजते अंकुर उत्पन्न होता है तैसे पंच तन्मात्रा उदय भई अरु मच्छरका शरीर अपना भासि आया, अज्ञानकरिके मच्छर हुआ, जिस मच्छरकी दो अथवा तीन दिन आयुर्बल होती है तिसका शरीर पाया. राम उवाच–हे भगवन् ! जीव जो जन्म पाते हैं सो जन्म जन्मांतरते चले आते हैं अथवा ब्रह्माते उपजे होते हैं यह कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! कई जन्म जन्मांतरते चले आते हैं अरु कई ब्रह्माते उपजे होते हैं, जिनको पूर्ववासनाका संसरना होता है सो वास-नाके अनुसार शरीरको धारते हैं सो जन्म जन्मांतरते चले आते हैं अरु जिनको संस्कार विना भूत भासि आते हैं सो ब्रह्माते उत्पन्न होते हैं. हे रामजी ! आदि सब जीव संस्काररूपी जो कारण है तिसविना उत्पन्न हुए हैं अरु पाछेते जन्मांतर इनको होता है, जिसको संस्कार-विना भूत भासे सो जानिये ब्रह्माते उपजा है अरु जिसको संस्कार-

करि सृष्टि भासै सो जानिये इसके जन्मांतर हैं. जो ये दो प्रकार भूतकी उत्पत्ति मैंने तुझको कही है, अब बहुरि उस मच्छरका क्रम सुन. हे रामजी ! जब वह मच्छरके जन्मको प्राप्त हुआ तब कमलनिया अरु हरे घास तृण पत्रविषे मच्छरको साथ लिये रहे, वहां एक मृग आनि प्राप्त हुआ, तिसका चरण मच्छरपर आय गया, जैसे किसीके ऊपर सुमेरु पर्वत आय पडे, तब वह मच्छर चूर्ण हुआ अरु मृतक भया अरु मृतक होनेके समय मृगकी ओर देखा, उसके देखनेकरिकै उसका शरीर मृगरूप हो गया तब वह मरिकै तत्काल ही मृग हुआ, वनविषे विचरने लगा, एक कालमें तिसको वधिकने देखा अरु बाण चलाया, तिस बाणकरि मृग वेधा गया, वेधा हुआ मृग वधिककी ओर देखता भया, तिस देखनेकरि वह मरिकै वधिक हुआ तब धनुष अरु बाण लेकरि मृग अरु पक्षीको मारने लगा, बहुरि एक समय वनविषे गया तब एक मुनीश्वरको वनविषे देखा, तिसके निकट जाय बैठा, मुनीश्वरने कहा, हे भाई ! तू यह क्या पापचेष्टाका आरंभ करता है ? इस चेष्टाकरि नरकको प्राप्त होवैगा ताते तू किसी जीवको दुःख न दे अरु जिन भोगके निमित्त तू यह चेष्टा करता है सो भोग बिजुलीके चमत्कारवत है, जैसे मेघविषे बिजुलीका चमत्कार होता है बहुरि मिटि जाता है तैसे भोग होयकरि मिटि जाता है, अरु जैसे कमलके पत्र ऊपर जलकी बुन्द ठहरती है, उसकी आयुर्बल कछु नहीं, क्षण पलविषे वायुकरिकै गिर पडती है, तैसे इस शरीरकी आयुर्बल कछु नहीं, जैसे अंजलीविषे जल पाया ठहरता नहीं तैसे यौवन अवस्था चली जाती है, क्षणभंगुररूप वृक्ष है अरु यौवन असार है, तिसविषे भोगना क्या है ? इनकरि शांति कदाचित् नहीं होती, जो तुझको शांतिकी इच्छा होवै तौ निर्वाणका प्रश्न कर तब तू दुःखते मुक्त होवै, अपने हिंसाकर्मको त्यागि देहु, इसके करणेकरि नरकको चला जावैगा, कदाचित् भी शांति तुझको न प्राप्त होवैगी, तू अपने हाथकरि अपने चरणपर कुल्हाडा क्यों मारता है अरु अपने नाशके निमित्त तू विषका बीज क्यों बोता है ? इस कर्मकरि तू संसारदुःखविषे भटकता फिरैगा,

शांतिवान् कदाचित् न होवैगा ताते सो उपाय कर जिसकरि संसार-समुद्रते पार होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र० उ० मशकव्याधवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४६ ॥

सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४७.

हृदयांतरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनम्।

अग्निरुवाच–हे राजन्! जब इस प्रकार ऋषीश्वरने उस वधिक-को कहा तब वधिकने धनुष अरु बाणको डारि दिया अरु बोला, हे भगवन्! जिस प्रकार संसारसमुद्रते पार होऊं सो उपाय कृपा करिकै मुझको कहौ परंतु कैसे होवै, जो न दुःसाध्य होवै न मृदु होवै मृदु कहिये जो अल्प भी न होवै न दृढ होवै. ऋषीश्वर उवाच–हे वधिक! मनको एकाग्र करना इसका नाम शम है अरु इंद्रियोंको रोकना इसका नाम दम है, सोई मौन है, यह दोनों जो हैं तप अरु मौन, मनको एकाग्र करना, इसकरि अन्तःकरण शुद्ध होता है अरु शुद्ध अन्तःकरणविषे आत्मज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानकरि संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है. अग्निरुवाच–हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषीश्वरने कहा तब वह वधिक उठ खडा हुआ, प्रणाम करिकै जाय तप करने लगा, कैसा तप जो इंद्रिय संयमविषे राखी अरु जो अनिच्छित यथाशास्त्र आनि प्राप्त होवै तिसका भोजन करना अरु सब क्रियाका अंतरते मौनव्रत धरना, जब केता काल उसको तप करते व्यतीत भया तब अंतःकरण शुद्ध हुआ, ऋषीश्वरके निकट आय-करि प्रणाम करि बैठ गया अरु कहत भया. वधिक उवाच–हे भग-वन्! बाहर जो दृश्य है सो अंतर किस प्रकार प्रवेश करती है अरु स्वप्नविषे सृष्टि जो भासती है सो अंतरकी बाह्यरूप हो भासती है सो कैसे भासती है? यह कृपा करिकै कहौ. ऋषीश्वर उवाच–हे वधिक! यह बडा गूढ प्रश्न तूने किया है, यही प्रश्न प्रथम मैंने भी संदेहसंयुक्त होकरि

गणपतिसे किया था, तब जो कछु उनके कहनेकरि मैंने ग्रहण किया है सो सुन. हे वधिक ! एक समय इसी संदेहके दूर करनेका उपाय मैं करत भया, पद्मासन बांधिकरि बाह्यइंद्रियोंको रोका, रोकिकरि मनविषे जोडी अरु मन बुद्धि आदिकको पुर्यष्टकाविषे स्थित किया, स्थित करिकै पुर्यष्टकाको शरीरते विरक्त किया अरु आकाशविषे निराधार तिसको ठहरावत भया, जब विलक्षण हुआ चाहे तब विलक्षण हो जावै अरु जब शरीरविषे व्यापा चाहे तब व्यापि जावै. हे वधिक ! इस प्रकार जब मैं योगधारणा करिकै पूर्ण भया तब एक कालमें एक पुरुष हमारी कुटीके पास सोया था तिसके श्वास अन्तर बाहर आते जाते थे तिसको देखिकरि मैंने यह इच्छा करी कि इसके अन्तर जायकरि कौतुक देखौं कि अंतर क्या अवस्था होती है ? ऐसे विचार करिकै मैंने पद्मासन बांधा अरु योगकी धारणा करिकै उसके श्वास मार्गसों मैंने अन्तर जाय प्रवेश किया, जैसे उष्ट्र ऊंघता होवै अरु उसके श्वासमार्गते सर्प जाय प्रवेश करै तैसे मैंने जाय प्रवेश किया, तिसके अन्तर अपने अपने रसको ग्रहण करनेहारी नाडियां मुझको दृष्टि आईं, कई वीर्यको ग्रहण करनेहारी हैं, कई रक्तको, कई कफको ग्रहण करती हैं, कई मल मूत्रवालियां हैं सो सब मैं देखत भया, अपर अनेक विकार जो उसके अंतर थे सो सब देखत भया, देखिकरि मैं अप्रसन्न भया, महासंकल्परूप स्थान है,रक्त मज्जाकरि संयुक्त अंधकार महानरकके तुल्य जीवको गर्भवास है, बहुरि आगे गया तहां एक कमल देखा, तिस हृदयकमलविषे तिनकी संवेदन फुरती देखी तिस संवेदन फुरणेविषे जो कछु मैंने देखा है सो सुन. कैसी वह संवेदन है, संवित्शक्ति जो महातेजवान् है, हृदयाकाश तहां वह स्थित है, कैसी स्थित है,त्रिलोकीका आदर्श है, त्रिलोकीविषे जो पदार्थ हैं तिनका दीपक है अरु सर्व पदार्थकी सत्तारूप है, ऐसी जो संवित्रूपी जीवसत्ता है सो तहां स्थित है, तिस सत्तासाथ मैं तद्रूपताको प्राप्त हुआ, तहां तिसके अंतर मैंने देखा है सो सुन. सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, देवता अरु गंधर्व इनते आदि लेकरि जो नानाप्रकारका जगत है

स्थावर जंगम सब विश्वको मैं देखता भया, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सहित संपूर्ण सृष्टिको देखिकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ, उसके अंतर सृष्टि क्यों-करि भासी सो सुन. हे वधिक! जाग्रत्‌विषे उस सृष्टिको इंद्रिय-करिकै अनुभव किया था अरु अंतर चितत्त्वविषे उसका संस्कार हुआ था, वही अंतर भास भासने लगा अरु अंतर जो भूतसत्ता थी सो उसके स्वप्नविषे यह सृष्टिरूप बाह्य बनी अरु मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी, जैसे जाग्रत् प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है तैसे मुझको यह सृष्टि भासने लगी. हे वधिक! इस जाग्रत् सृष्टि अरु उस सृष्टिविषे भेद कछु न देखा, दोनों तुल्य हैं, चिरपर्यंत प्रतीतिका नाम जाग्रत् है अरु अल्पकालकी प्रतीतिका नाम स्वप्न है, स्वरूपते दोनों तुल्य हैं, जो उसके स्वप्नअनुभवविषे था सो मुझको जाग्रत् भासा अरु जो मुझको जाग्रत् भासा सो उसको स्वप्न भासा, निद्रादोषकरिकै उसको स्वप्न हुआ, उसको भी तिस कालविषे जाग्रत्‌रूप भासने लगा, काहेते कि स्वप्नरूप है सो जाग्रत्‌विषे स्वप्न है, स्वप्नविषे जाग्रत् है, तैसे जाग्रत् भी अपने कालविषे जाग्रत् है नहीं तो स्वप्नरूप है सो जाग्र-त्‌विषे भी जो सत्य प्रतीति है सोई प्रमाद है,इन दोनोंविषे भेद कछु नहीं, काहेते कि जाग्रत् अरु स्वप्नका अधिष्ठान चेतनसत्ता परब्रह्म है, तिसके प्रमादकरि इसको प्राणके साथ संबंध हुआ, जब प्राणसाथ चित्तसंवेदन मिली तब तिस फुरणेरूपके एते नाम भये, तिसका नाम जीव हुआ, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदिक सब तिसके नाम हैं, वही संवे-दन जो बाह्यरूप हो फुरती है तब जाग्रत्‌रूप जगत् हो भासता है, पंच ज्ञान इंद्रियां, पंच कर्म इंद्रियां, चतुष्टय अंतःकरण यह चौदह इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, इसका नाम जाग्रत् है, जब चित्त-स्पंद निद्रादोषकरिकै अंतर्मुख फुरता है तब नाना प्रकारकी स्वप्नसृष्टि देखता है, निद्रादोषकरिकै तिस कालमें वही जाग्रत्‌रूप हो भासता है, अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है, जब संवेदन तिसकी ओर फुरती है, बाह्य विषयके फुरणेते रहित अफुरण होती है तब न जाग्रत् भासती है न स्वप्न भासता है; केवल आत्मसत्ता निर्विकल्प शेष रहती है. हे

वधिक ! मैंने विचार देखा कि जगत् अपर कछु वस्तु नहीं, फुरणेका नाम जगत् है, जब चित्तसंवेदन फुरणारूप होती है तब जगत् भासता है अरु जब चित्तसंवेदन फुरणेते रहित होती है तब जगत्कल्पना मिटि जाती है ताते मैंने निश्चय किया है कि वास्तवमें केवल चिन्मात्र है, जगत् कछु वस्तु नहीं, मिथ्या कल्पनामात्र है. हे वधिक ! जगत्भावना त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अब वही वृत्तांत बहुरि सुन जब उसके अंतर स्वप्न जाग्रत् अवस्था देखी तब मैंने यह इच्छा करी कि सुषुप्ति अवस्था भी देखौं अरु विचार किया कि सुषुप्ति नाम है प्रलयका, जहां द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनोंका अभाव हो जाता है, परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ तहां महाप्रलय कैसे होवैगी ? अरु जो मैं जाननेवाला न होऊं तब सुषुप्तिको कौन जानैगा ? हे वधिक ! तब मैंने विचारि देखा कि अपर सुषुप्ति कोऊ नहीं, जहां चित्तकी वृत्ति फुरती नहीं तिसीका नाम सुषुप्ति है, ऐसे विचार करिकै चित्तको फुरणेते रहित किया तब सुषुप्ति तिसकी देखी, तहां क्या देखा सो सुन, न कोऊ वहां अहं त्वं शब्द है, न शुभ है, न अशुभ है, न जाग्रत् स्वप्न है, न सुषुप्तिकी कल्पना है, सर्व कल्पनाते रहित चित्सत्ता मैं देखत भया अरु जो तू कहै, सुषुप्ति निर्विकल्प तुझने कैसी देखी तिसका उत्तर यह है, हे वधिक ! अनुभवज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदा कालविषे ज्योंकी त्यों है, तिसविषे जैसा आभास फुरता है तैसा ज्ञान होता है, यह जो तुम भी दिन दिन प्रति देखते हो, सुषुप्तिते उठिकरि जानते हौ कि मैं सुखसों सोया था सो अनुभव करिकै देख, तैसे मैं भी वह देखता भया, यहां चित्तसंकल्प कोऊ नहीं फुरता, निर्विकल्प है परंतु कैसा निर्विकल्प है, जो सम्यक् बोधते रहित है, तिस अभाव वृत्तिका नाम सुषुप्ति है, बहुरि मुझको तुरीया देखनेकी इच्छा भई सो तुरीया देखनी महा कठिन है, तुरीया नाम है साक्षीभूत वृत्तिका सो सम्यक्ज्ञानते उत्पन्न होती है, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीभूत अवस्था है अरु सुषुप्तिकी नाईं है, जैसे सुषुप्तिविषे अहं त्वम् आदिक कल्पना कोऊ नहीं तैसे तुरीयाविषे भी नहीं, ब्रह्मका सम्यक् बोध होता है अरु सुषुप्ति जडीभूत

तमरूप अविद्या होती है, तुरीयाविषे जडता नहीं होती सो सुषुप्ति अरु तुरीयाविषे एता ही भेद होता है, सच्चिदानंद साक्षीवृत्ति होती है, सम्यक् बोधका नाम तुरीयापद है, अपर तुरीया इसके भिन्न कोऊ नहीं, ऐसे निश्चय करि मैं तिसको देखता भया. हे वधिक! चारौं अवस्था मैं भिन्न भिन्न देखता भया अरु माया जो है फुरणा तिससहित मैं देखता भया अरु आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे न कोऊ जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है,न तुरीया है, इनका भेद तहां कहूँ नहीं, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है अरु यह चारौं चित्तसंवेदनविषे होती हैं. हे वधिक! ऐसे अनुभव करिके बाहर आया, बाहर भी मुझको भासने लगा, तब मैंने कहा,यही जगत् मुझको उससे अंतर भासा था,बाहर कैसे आया? तब मैंने बहुरि उसके अंतर प्रवेश किया, प्रथम जो उसके अंतर प्रवेश किया था अरु तिसके अंतर सृष्टि देखी थी तब उसकी संवेदन अरु मेरी संवेदन मिलगई थी, जब मैंने अपनी संवेदन उसते भिन्न करी तब ब्रह्मांड भासने लगा, एक उसकी संवेदन फुरणेको अरु एक मेरी संवेदनविषे भासने लगा, काहेते कि प्रथम उसकी सृष्टिको देखकरि मैंने अर्थरूप जान ग्रहण किया, तिसका संस्कार हो गया, आत्मसत्ताके आश्रय जैसे संवेदन फुरती गई तैसे होकरि भासने लगा, उसका स्वप्न मुझको जागृत् होकरि भासने लगा,जैसे एक दर्पणविषे दो प्रतिबिंब भासैं तैसे एक अनुभवविषे दो सृष्टि भासने लगीं तब मैंने विचार किया कि सृष्टि संकल्परूप है, संकल्प जीवका अपना अपना है अरु अपने संकल्पकी भिन्न भिन्न सृष्टि है, अरु अनुभवके आश्रय जैसा जैसा संकल्प फुरता है तैसी सृष्टि भासती है, सृष्टिका कारण अपर कोऊ नहीं. हे वधिक! अष्ट निमेषपर्यंत मुझको दो सृष्टि भासती रहीं, बहुरि मैं उसके चित्तकी वृत्ति अरु अपने चित्तकी वृत्ति इकट्ठी करि मिलाई तब दोनों तद्रूप होगये, जैसे जल अरु दूध मिलिकरि एक रूप हो जाता है तैसे दोनों चित्त मिलिकरि एक हो गये तब दूसरी सृष्टिका अभाव हो गया, जैसे भ्रमदृष्टिकरि आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं,भ्रमके गयेते दूसरे चंद्रमाका भाव अभाव हो जाता है तैसे द्वितीयावृत्तिके अभाव हुए दूसरी सृष्टिका

अभाव हो गया,एक इसीकी सृष्टि भासने लगती.है, नानाप्रकारके व्यवहार होते दृष्टि आवैं, चंद्रमा सूर्य पृथ्वी द्वीप समुद्र स्पष्ट भासने लगे, केते कालते उपरांत तिसके चित्तकी वृत्ति सुषुप्तिकी ओर आय स्वप्नसृष्टिका विस्तार लीन होने लगा, जैसे संध्याके समय सूर्यकी किरणें सूर्यविषे लय होती जाती हैं, जब सृष्टि चित्तविषे लय होने लगी तब स्वप्नविषे मिटि गई, सुषुप्ति अवस्था हुई, सर्व इंद्रियां स्थिर हो गई. हे वधिक। सुषुप्ति तब होती है जब अन्न भोजन करता है तब वह समवाही नाडीके ऊपर आनि स्थित होता है, जाग्रत्वाली ठहर जाती है, तिसकरि प्राण भी ठहर जाते हैं, तब मन भी ठहर जाता है, तिसका नाम सुषुप्ति होता है, जब मन बहुरि फुरता है तब जाग्रत् होता है. राम उवाच-हे मुनीश्वर। जब मन प्राणोंही करि चलता है तब मनका अपना रूप तौ कहूँ न हुआ क्यों ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी। परमार्थते कहिये तौ देह भी नहीं तौ मन क्या है ? जैसे स्वप्नविषे पहाड भासते हैं तैसे यह शरीर भासता है, काहेते कि सबका आदि कारण कोऊ नहीं ताते जगत् मिथ्या भ्रम है, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो तत्त्ववेत्ता हैं तिनको तौ ऐसे भासता है अरु अज्ञानीके निश्चयको हम नहीं जानते, जैसे सूर्य उलूकके अनुभवको नहीं जानता अरु उलूक सूर्यके निश्चयको नहीं जानता तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय भिन्न होता है अरु शुद्ध चिन्मात्र आकाशविषे जगतभ्रम कोऊ नहीं अरु फुरणे भावकरिकै अपने चेतन वपुको ज्ञानविना ही मनोभावको प्राप्त होता है, तब मन आत्मसत्ताके आश्रय होकरि प्राणवायुको अपना आश्रयभूत कल्पता है कि मेरा प्राण है.हे रामजी। बहुरि जैसी जैसी मन कल्पना करता है तैसे तैसे देह इंद्रियां जगत् भासते हैं, परमब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है, तिसविषे जैसी जैसी भावनाकरि मन फुरता है तैसा रूप हो भासता है, वास्तवते अपर कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविष स्थित है, मनका फुरणा जैसे जैसे दृढ हुआ है तैसे तैसे देह इंद्रियां जगत् भासने लगता है, जैसे स्वप्नविषे कल्पनामात्र जगत् भासता है तैसे यह जान. हे रामजी। जेते कछु विकल्प उठते हैं सो सब मनके रचे हुए हैं, जब मन उदय

होता है तब यह फुरणा होता है कि यह पदार्थ सत्य है, यह असत्य है, जब चित्तशक्तिका मनसाथ संबंध होता है तब प्रथम प्राण उदय होते हैं, प्राणको ग्रहण करिकै मन कहता है, मैं जीव हौं, प्राण ही मेरी गति है, प्राणविना मैं कहां था ? अरु बहुरि कहता है, जब प्राणका वियोग होवैगा तब मैं मरि जाऊंगा, बहुरि न रहूंगा, बहुरि ऐसे कहता है, मुआ हुआ भी मैं जीवौंगा. हे रामजी! जबलग चाहिये तबलग यह तीन विकल्प उठते हैं, अरु संशयवालेको न इस लोकविषे सुख है, न परलोकविषे सुख है, जबलग आत्मबोधका साक्षात्कार नहीं हुआ तबलग चित्त निर्वाण नहीं होता अरु तीन विकल्प भी नहीं मिटते. हे रामजी! मनके मरनेका उपाय आत्मज्ञानते इतर कोऊ नहीं, अरु मनके शांत हुए विना कल्याण नहीं होता, दोनों उपायकरि मन शांत होता है, मनकी वृत्ति स्थित करनी अरु प्राणस्पंद रोकना, जब मन स्थित होता है तब प्राण रोका जाता है अरु प्राणके स्पंद रोकेते मन स्थित होता है अरु जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त भी क्षोभता है, तब आध्यात्मिक आधिभौतिक तापकरि अग्नि जलता है अरु मनके स्थित करणेते परम सुख प्राप्त होता है सो मनकी स्थिति दो प्रकारकी है, एक ज्ञानकी स्थिति है अरु एक अज्ञानकी स्थिति है, जब प्राणी अन्न बहुत भोजन करते हैं तब नाडीके ऊपर अन्न जाय स्थित होता है अरु प्राण ठहर जाते हैं, जब प्राण ठहरैं तब मन भी जडीभूत हो जाता है, तिसका नाम सुषुप्ति है, सो नाडी कौन हैं, जिनके ऊपर अन्न जाय स्थित होता है सो नाडी वही हैं, जिनके मार्ग जाग्रत्‌विषे प्राण निकसते हैं, वासनासहित वही नाडी जब रोकी जाती हैं तब मन सुषुप्त हो जाता है, यह अज्ञानीके मनकी स्थिति है, काहेते कि जडता संसारको लिये शीघ्र ही बहुरि उठि आते हैं, जैसे पृथ्वीविषे बीज समय पायकरि अंकुर ले आता है तैसे वह संस्कारकरिकै बहुरि सुषुप्तिते उठता है अरु जो ज्ञानवान् सम्यक्‌दर्शी हैं तिनका चित्त चेतनताके लिये स्थित होता है, सो चेतनता दो प्रकारकी है, एक योगीकी चेतनता है जिस समाधिकरि मनको स्थित किया है सो समाधिनिष्ठ चित्त है, वह जडता नहीं, जैसे सुषुप्तिविषे

जडता होती है तैसे जडता नहीं, अरु ज्ञानवान् जीवन्मुक्तकी सम्यक्-ज्ञानकरि चित्तकी वृत्ति स्थित है, उनका चित्त वासनाते रहित स्थित है, जिसका चित्त इस प्रकार स्थित है तिस पुरुषको शांति है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है तिसको शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती अरु दुःख भी नहीं मिटते, सो निर्वासनिक चित्त करणेको सम्यक् ज्ञानका कारण यह मेरा शास्त्र है, इसके समान अपर कोऊ नहीं. हे रामजी ! यह जो मोक्षउपाय शास्त्र मैंने कहा है तिसके विचारकरि शीघ्र ही स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, ताते सर्वदा इसका विचार कर्तव्य है, जब इसको भले प्रकार विचारैगा तब चित्त निर्वासनिक हो जावैगा, अब वही प्रसंग जो वधिकको कहता है. हे वधिक ! जब मैं उस पुरुषके चित्तविषे प्राणके मार्ग प्रवेश किया तब क्या देखौं कि इसके प्राण रोके गये हैं, अन्नकरिकै जाग्रत् नाडी जो फुरती थी सो रोकी गई है, काहेते जो अन्न पचा नहीं इस कारणते वह सुषुप्तिविषे है, तिसकी सुषुप्तिविषे मुझको भी अपना आप विस्मरण हो गया, जब कछुक अन्न पचा तब तिसके प्राण फुरणे लगे, जब प्राण फुरे तब चित्तकी वृत्ति भी कछुक जडताको त्यागती भई, संपूर्ण जडताका त्याग नहीं किया परंतु कछु अल्प त्यागा तब फुरणेकरिकै चंद्रमा सूर्य आदिक जो कछु विश्व है सो फुर आया तब मैं नानाप्रकारके जगत्को देखता भया, मेरे ताईं अपना पूर्वसंस्कार भूलि गया, तहां मैं भी अपने कुटुंबविषे रहनेलगा, साथ ही मेरे ताईं अपनी कुटी भासी अरु स्त्री पुत्र भाई जन बांधव सब भासि आये, बहुरि मेरेविषे देखते देखते प्रलयकालके पुष्कर मेघ गर्जने लगे अरु मूसलधारा वर्षने लगे अरु सातो समुद्र उछले, अपर जो प्रलय-कालके उपद्रव होते हैं सो आनि उदय हुए, प्रथम अग्नि लगी, जब अग्नि लग चुकी अरु सब स्थान जल रहे थे तब जलका उपद्रव उदय हुआ, तब क्या देखौं कि नगर ग्राम पुर मनुष्य पक्षी सब बहते जाते हैं अरु हाहाकार शब्द करते हैं, बडा क्षोभ आनि हुआ तब एक आश्चर्य मैंने देखा, मेरी कुटी भी बहती जाती है, स्त्री पुत्र भाई जन इत्या-दिक सब वहां देखता भया सो सब जलके प्रवाहविषे बहते जाते हैं अरु

जिस स्थानविषे थे सो स्थान भी बहता जाता है अरु मैं लुढता जाता हौं, बहते बहते ऐसे मुझको कष्ट प्राप्त हुआ जो कहनेविषे नहीं आता, एक तरंगसाथ ऊर्ध्वको चला जाऊं, अपर तरंगसाथ अधःको चला जाऊँ, जब पूर्व शरीर मुझको स्मरण आया तब जेता कछु जगत् है सो मुझको सब भासने लगा, मिथ्या राग द्वेष सब मिटि गया अरु शरीरकी चेष्टा सब इस प्रकार होवै जो तरंगके साथ कबहूँ ऊर्ध्व कबहूँ नीचे आइ पड़ै परंतु अंतर मेरा शान्त हो गया, तिस कालमें नगर देश मंडल बहते जावैं अरु त्रिनेत्र सदाशिव बहते जावैं, विद्याधर गंधर्व यक्ष किन्नर सिद्ध इनते आदि लेकरि अपर भी सब बहते जावैं, अष्टदल कमलकी पंखडीपर बैठा ब्रह्माजी बहता जावै, इंद्र कुबेर अपनी पुरियोंसहित बहते जावैं अरु विष्णुजी अपनी वैकुंठपुरीसहित बहता जावै, बडे पहाड द्वीप लोकपाल सब बहते जावैं, पातालवासी सब प्रलयके जलविषे बहते जावैं, यम भी अपने वाहनसाथ बहता जावै, ऐसी समर्थता किसीकी नहीं कि किसीको कोऊ निकासै, जो आप ही बहते जावैं बहुरि डूब जावैं, इसी प्रकार गोते खावैं, तैसे बडे ऐश्वर्यसहित देव बहते जावैं, जो संसारसुखनिमित्त यत्न करते हैं सो महामूर्ख हैं अरु जिनके निमित्त यत्न करते हैं सो सुख भी अरु सुखके देनेहारे भी सब बहते जावैं, तैसे सप्त ऋषीश्वर बहते जावैं. हे वधिक! इस प्रकार महाप्रलय होती थी तिसके स्वप्नविषे मैं देखता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४८.

हृदयान्तरप्रलयाग्निदाहवर्णनम्।

वधिक उवाच–हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमने कही, जिसविषे ब्रह्मादिक भी बहते जावैं सो ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक तो स्वतंत्र हैं, ईश्वर हैं, यह परतंत्र हुए बहते जाते तुमने कैसे देखे, अंतर्धान क्यों न हुए?

मुनीश्वर उवाच—हे वधिक ! यह जो प्रलय हुई है सो एक क्रमकरिकै नहीं हुई, जब क्रमते होवै तब यह ईश्वर समाधिकरिकै शरीरको अंतर्धान करि लेते हैं परंतु अंतर्धान होनेका जल चढि जाता है, उनका कछु नियम नहीं, काहेते कि यह जगत् भ्रमरूप है, इसविषे क्या आस्था करनी है? अरु स्वप्नविषे क्या नहीं बनता ? सभी बन जाता है, स्वप्नभ्रांतिकरिकै विपर्यय भी होते हैं, इसके लिये उनको बहते देखा है. व्याध उवाच—हे मुनीश्वर ! जब वह स्वप्नभ्रम था तौ तिसका क्या वर्णन करना ? मुनीश्वर उवाच--हे वधिक ! तेरे ताईं इसको समानता अर्थ कहता हौं ताते सुन, स्थावर जंगम जगत् बहता देखा, साथ ही मैं बहता जाऊं अरु जलकी लहरी उछलैं उन तरंगविषे मैं उछलता परंतु मुझको कष्ट कछु न होवै, तब मैं बहता बहता एक किनारे जाय लगा, तिसके पास एक पर्वत था, तिसकी कंदराविषे मैं जाय स्थित भया, तहां देखत भया कि जीव बहते हैं अरु जल भी सूखता जाता है, तब जलके सूखनेकरि चीकड हो गया, किसी ठौरविषे जल रहा तिसविषे कई डूबते दृष्टि आवैं, ब्रह्माके हंस दृष्टिआवैं, कहूं यमके वाहन, कहूं विष्णुके वाहन गरुड दृष्टि आवैं, चीकडविषे पहाडकी नाईं डूबे दृष्टि आवैं, कहूं इंद्रके हस्ती, कहूं विद्याधर दृष्टि आवैं, इनते आदि लेकरि वाहन चीकडविषे डूबते दृष्टि आवैं, देवता सिद्ध गंधर्व लोकपाल दृष्टि आये, देखिकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ. हे वधिक ! इस प्रकार देखता हुआ मैं पहाड़की कंदराविषे सोय गया, तब मुझको अपनी संवित्‌विषे स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे मुझको चंद्रमा सूर्य आदिक नानाप्रकार भूत जलते दृष्टि आवैं, नगर पत्तन जलते हैं, जगत् बडे खेदको प्राप्त हुआ है तब वहां रात्रि हुई, तहां मैं सोया हुआ अपर स्वप्नको देखत भया, दूसरे दिन तिसविषे मैं बहुरि जगत्‌को देखत भया, सूर्य चंद्रमा देश पत्तन नदियां समुद्र मनुष्य देवता पशु पक्षी नानाप्रकारकी क्रियासंयुक्त दृष्टि आने लगे अरु षोडश वर्षका शरीर मैं आपको देखत भया, अपने पिता अरु माता मुझको दृष्टि आवैं, उनको मैं माता पिता जानौं अरु मुझको वह अपना पुत्र जानैं, स्त्री कुटुंब बांधव समस्त मुझको दृष्टि आने लगे, वह

मैं कैसा? बोधते रहित अरु तृष्णासंहित अहं ममका अभिमान आनि फुरा तब एक ग्रामविषे मेरा गृह था, तिसविषे हम सबने कुटी बनाई, तिसके चौफेर बूटे लगाये, तहां मैंने एक आसन बनाया, तहां कमंडलु अरु माला पडी रहै, मैं ब्राह्मण था मुझको धन उपजानेकी इच्छा भई, जो कछु ब्राह्मणका आचार चेष्टा है सो मैं करौं, बाहिर जायकरि ईंटैं काष्ठ ले आऊं, आनिकरि कुटी बनाऊं, वह चेष्टा हमारी होने लगी, शिष्य सेवक हमारी पूजा करैं, यथायोग्य मैं उनको आशीर्वाद करौं, इस प्रकार गृहस्थाश्रमविषे मैं चेष्टा करौं अरु मुझको यह विचार उपजै कि यह कर्तव्य है, इसके करणेकरि भला होता है, नदियां अरु ताल-विषे स्नान करौं, गऊकी टहल करौं, आये अतिथिकी पूजा करौं. हे वधिक! इस प्रकार चेष्टा करता मैं सौ वर्षपर्यंत रहा तब एक कालमें मेरे गृहविषे मुनीश्वर आया, प्रथम उसको मैंने स्नान कराया, बहुरि भोजन-करि तृप्त किया अरु रात्रिके समय उसको शय्याऊपर शयन कराया, इस प्रकार उसकी टहल करी, रात्रिको वार्त्ता चर्चा करने लगे, तिस-विषे मुझको उसने बडे पर्वत कंदरा अरु सुंदर देश स्थान चित्तके मोहनेहारे सुनाये अरु नानाप्रकारके स्वाद सुनाये अरु कहने लगा कि हे ब्राह्मण! जेते कछु सुंदर स्थान अरु संवाद तुझको सुनाये हैं तिन-विषे सार चिन्मात्ररूप है ताते सब चिन्मात्रस्वरूप है, सब जगत् तिसका चमत्कार है, आभास किंचन है, तिसते इतर वस्तु कछु नहीं, ताते हे ब्राह्मण! उसी सत्ताको ग्रहण करु, सो सत्ता सबका अनुभवरूप है अरु परमानंदस्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु. हे वधिक! जब इस प्रकार उस मुनीश्वरने मुझको कहा तब आगे जो मेरा मन योगकरि निर्मल था तिस कारणते उसके वचन मेरे चित्तविषे चुभि गये, अपने स्वभावसत्ताविषे मैं जागि उठा, तब क्या देखौं कि सब मेरा ही संकल्प, मुझसों भिन्न कोऊ नहीं, मैं तौ मुनीश्वर हौं, यह स्वप्न पाया था, मैं जागिकरि देखौं तब उसी पुरुषका स्वप्न था, तब मेरे चित्तविषे आई कि किसी प्रकार इसके चित्तते बाहर निकसौं अरु अपने शरीरविषे जाय प्रवेश करौं, तब बहुरि विचारा कि यह जगत् तौ उस पुरुषक

वपु है, वही पुरुष विराट् है जिसके स्वप्नविषे यह जगत् है, परंतु तिस पुरुषको अपने विराट्स्वरूपका प्रमाद है तिसकरिकै जैसा वपु हमारा बना है तिसके स्वप्नविषे वह भी तैसा एक विराट्ते इतर बनि पडा है, बहुरि उस विराट्को कैसें जानिये जो उसके चित्तसों निकसि जावैं ? हे वधिक ! इस प्रकार विचार करिकै मैंने पद्मासन बांधा अरु योगकी धारणा करी, उस विराट् स्वरूपके शरीरको देखता भया, देखिकरि जहां चित्तकी वृत्ति फुरती थी तिसके साथ मिला अरु प्राणके मार्गते निकसिकरि अपनी कुटीको देखता भया, बहुरि तिसविषे मैं अपने शरीरको पद्मासन देखत भया, तिसविषे प्रवेश करिकै नेत्र खोले तब अपने सन्मुख शिष्य बैठे देखे अरु वह पुरुष सोया था तिसको देखिकरि एक मुहूर्त्त व्यतीत भया तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि भ्रम-विषे क्या चेष्टा दीखती है ? यहां एक मुहूर्त्त व्यतीत भया है अरु वहां मैंने सौ वर्षका अनुभव किया है, बडा आश्चर्य है कि भ्रमकरिकै क्या नहीं होता ? बहुरि मेरे मनविषे उपजी कि उसके चित्तविषे प्रवेश करिकै कछु अपर कौतुक भी देखौं, तब बहुरि प्राणके मार्गसों उसके चित्तविषे प्रवेश किया तब क्या देखौं जो अगला कल्प व्यतीत हो गया है अरु बांधव पुत्र स्त्री माता पिता आदिक नष्ट हो गये हैं अरु दूसरा कल्प हुआ है तिसकी भी प्रलय होती है, बारह सूर्य आनि उदय हुए, विश्वको जलावने लगे हैं अरु वडवाग्नि जलावने लगी, मंदराचल अरु अस्ताचल पर्वत जलिकरि टूक टूक हो गये, पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त हुई, स्थावर जंगम जीव हाहाकार शब्द करते हैं, बिजुली चमत्कार करती है, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ है. हे वधिक ! मैं अग्निविषे जाय पड़ा मेरा शरीर भी जले परंतु मुझको कष्ट कछु न होवै, जैसे किसी पुरुषको अपने स्वप्नविषे कष्ट आनि प्राप्त होवै अरु जागि उठै तौ कछु कष्ट नहीं होता तैसे अग्निका कष्ट मुझको कछु न होवै मैं आपको वही रूप जाग्रत्वाला जानौं अरु जगत्प्रलयको भ्रममात्र जानौं इस कारणते मुझको कष्ट कछु न होवै अरु चेष्टा तौ मैं भी उसी प्रकार

देखता भया अरु करता भया परंतु अन्तरते ज्योंका त्यों शीतलचित्त रहौं अरु अपर लोक जो थे सो अग्निके क्षोभकारि कष्ट पावैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० हृदयांतरप्रलयाग्निदाह-वर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४८ ॥

एकोनपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २४९.

कर्मनिर्णयवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! प्रलयके क्षोभविषे मैं भी भटकौं, बहुरि जलविषे बहता जाऊं परंतु पूर्वशरीर मुझको विस्मरण न भया इस कारणते शरीरका दुःख मुझको स्पर्श न करै अरु मैं विचारत भया कि यह जगत् तौ मिथ्या है, इसविषे विचरणेकरिकै मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? यह तौ स्वप्नमात्र है, इसविषे किसनिमित्त खेद पाऊं ? ताते इस जगतते बाह्य निकसौं. वधिक उवाच–हे मुनीश्वर ! तुम जो उसके स्वप्नविषे जगत्को देखत भये सो जगत् क्या वस्तु था अरु स्वप्न क्या था ? उसकी संवित्विषे जगत् था अरु तिस जगत्का उसको ज्ञान था, वह प्रमादी था, तुमने तौ जाग्रत् होकरिकै उसका स्वप्न देखा, उसके हृदयविषे पहाड कहांते आया अरु नदियां वृक्ष नानाप्रकारके भूतजात अरु पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि आदिक विश्वकी रचना कहांते आई, वह क्या थे ? यह संशय मेरा दूर करहु अरु जो तुम कहौ अपने स्वप्नविषे तू भी अपनी सृष्टि देखता है तौ हे भगवन् ! हमको जो स्वप्न आता है, तिसको हम अपने स्वरूपके प्रमादकारि देखते हैं अरु तुमने जाग्रत् होकारि देखा है सो कैसे देखा ? मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! प्रथम जो मैंने देखा था सो आपको विस्मरण करिकै तिसके हृदयविषे जगत् देखा था, बहुरि दूसरी बार जो देखा था सो आपको जानिकरि जगत् देखा था सो क्या वस्तु है ? श्रवण कर. हे वधिक ! जो वस्तु कारणते होती है सो सत्य होती है अरु कारणविना भासती है सो मिथ्या होती है अरु मुझको सृष्टि

जो उसके स्वप्नविषे भासी सो कारणविना थी, काहेते कि कारण दो प्रकारका होता है, एक निमित्तकारण है, जैसे घटका कारण कुलाल होता है अरु दूसरा समवायिकारण है, जैसे घट मृत्तिकाका होता है, दोनों कारणकरि उत्पन्न होवै सो सकारण पदार्थ कहाता है सो आत्मा दोनों प्रकार जगत्का कारण नहीं, आत्मा अद्वैत है ताते निमित्तकारण नहीं अरु समवायिकारण इसते नहीं कि अपने स्वरूपते अन्यथाभाव नहीं हुआ, जैसे मृत्तिकापरिणामीकरि घट होता है तैसे आत्माका परिणाम जगत् नहीं, आत्मा अच्युत है अरु वह जगत् कारणविना भासि आया ताते भ्रममात्र ही था. हे वधिक ! वस्तु सोई होती है अरु जगत्की भ्रांति आत्माविषे भासी तौ जगत् आत्मरूप क्यों हुआ ? जब सृष्टि फुरी नहीं तब अद्वैत आत्मसत्ता थी, तिसविषे संवेदन फुरणेकरिकै जगत् हुएकी नाईं उदय हुआ, सो क्या हुआ? जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो किरणें जलरूप भासती हैं तैसे यह जगत् आत्माका अभास है सो आत्मा ही जगत्रूप हो भासता है, तहां न कोऊ शरीर था, न कोऊ हृदय था, न पृथ्वी जल वायु अग्नि आकाश था, न उत्पत्ति प्रलय न अपर कोऊ था, केवल चिन्मात्ररूप ही था. हे वधिक ! ज्ञानदृष्टिकरि हमको सच्चिदानंद ही भासता है सो शुद्ध है, सर्व दुःखते रहित परमानंद है, जगत् भी वही रूप है, तुम सारखेको जो जगत् भासता है, शब्द अर्थ रूप सो आत्माविषे कछु हुआ नहीं, केवल चिन्मात्र सत्ता है, सर्वदा हमको आत्मरूप ही भासता है, जो तू चाहै तौ तुझको भी चिन्मात्र ही भासै तौ सर्व कल्पना मनते त्यागिकरि तिसके पाछे जो शेष रहैगा सो आत्मसत्ता है, सबका अनुभवरूप वही है सो प्रत्यक्ष है अरु शुद्ध है, सर्वदा स्वभावसत्ताविषे स्थित है अरु अमर है, तुम भी तिस स्वभावविषे स्थित होहु. हे वधिक ! आत्मसत्ता परम सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे सूक्ष्म अणुते पर्वत स्थूल होता है तैसे आत्मासों आकाश भी स्थूल है सो आत्माविषे क्या सूक्ष्मता है? यही सूक्ष्मता है जो आत्म त्वमात्र है, जिसविषे उत्थान कोऊ नहीं, केवल निर्मल स्वभावसत्ता है अरु निराभास है तिसविषे यह जगत् भासता है ताते वही रूप है, जैसे

काल होता है तिसीविषे क्षण पल घड़ी प्रहर दिन मास वर्ष युग संज्ञा होती है सो काल ही है, तैसे एक ही आत्माविषे अनेक नामरूप जगत् होता है, जैसे एक बीजविषे पत्र, टास, फूल, फल नाम होते हैं तैसे एक आत्माविषे अनेक नामरूप जगत् होता है सो आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं, सब आत्मस्वरूप हैं,जो आत्माते इतर भासै तो भ्रममात्र जान, जैसे संकल्पपुर होता है तैसे यह जगत् है. हे वधिक ! आत्माविषे जगत् कछु बना नहीं, आत्मा तेरा अपना आप अनुभवरूप है अरु परमशुद्ध है,तिसविषे न जन्म है,न मरण है,चिदाकाश अपना आप है, जो तेरा है; आप अनुभवरूप शुद्ध सत्ता है तिसको नमस्कार है. हे वधिक ! तू तिसविषे स्थित होहु तब तेरे दुःख नष्ट हो जावैंगे अरु यह जगत् अज्ञानीको सत् भासता है, ज्ञानवान्को सदा आकाशरूप भासता है, जैसे एक पुरुष सोया है अरु एक जागता है, जो सोया है तिसको स्वप्नविषे महल माडी जगत् भासता है अरु जाग्रत्को आकाशरूप है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है अरु ज्ञानवान्को आत्मरूप है. वधिक उवाच--हे मुनीश्वर ! एक कहते हैं यह जीव कर्मकरि होता है अरु एक कहते हैं कर्मविना उत्पन्न होता है, दोनोंविषे सत्य क्या है ? मुनीश्वर उवाच--हे वधिक ! आदि जो परमात्माते ब्रह्मादिक फुरे हैं सो कर्मकरि नहीं हुए, वह कर्मविना ही उत्पन्न हुए हैं, न कहूँ जन्म है, न कर्म है, वह ब्रह्मस्वरूप ही हैं, उनका शरीर भी ज्ञानरूप है, वह अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त हुआ, सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्माविषे अहंप्रतीति है. हे वधिक ! सृष्टिके आदि जो ब्रह्मादिक फुरे हैं सो ब्रह्मते इतर नहीं अरु अपर जो अनंत जीव फुरे हैं, जिनका आदि ही आत्मपदते प्रगट होना भया है सो भी ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, आदि सब ब्रह्मा चेतन स्वयंभू हैं. परंतु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिकका अविद्याने स्पर्श नहीं किया, वे विद्यारूप हैं अरु जीव अविद्याके वशते प्रमादकरिकै परतंत्र हुए हैं, बहुरि कर्मकरि कर्मके वश हुए हैं, संसारविषे शरीर धारते हैं; जब उनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है तब कर्मके बंधनते मुक्त होकरि आत्मपदको पाते हैं. हे वधिक ! आदि जो सृष्टि हुई है सो कर्मविना

उपजी है अरु पाछे अज्ञानके वशते कर्मके अनुसार जन्म मरणको देखते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आदि कर्मविना उत्पन्न होती है, पाछे कर्मकरि उत्पन्न होती भासती है तैसे यह जगत् है, आदि जीव कर्मविना उपजे हैं, पाछे कर्मके अनुसार जन्म पाते हैं अरु ब्रह्मादिकके शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं ईश्वरविषे जीवभाव दृष्टि आता है तौ भी तिस कालविषे भी ब्रह्मस्वरूप ही हैं, उनके कर्म कोऊ नहीं, केवल आत्मा ही उनको भासता है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे द्रष्टा ही दृश्यरूप होता है अरु नानाप्रकारके कर्म दृष्टि आते हैं परंतु अपर कछु हुआ नहीं, तैसे जेता कछु जगत् भासता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, अपर कछु नहीं, सुख दुःख भी वही भासता है परंतु अज्ञानीको जगत्प्रतीति होती है, तबलग कर्मरूपी फांसीकरि बांधा हुआ दुःख पाता है, जब स्वरूपविषे स्थित होवैगा तब कर्मके बंधनते मुक्त होवैगा, वास्तवते न कोऊ कर्म है, न किसीको बंधन है, यह मिथ्याभ्रम है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, दूसरा कछु होवै तौ मैं कहौं कि यह कर्म है, इसको बंधन किया है, यह जगत् आत्माविषे ऐसे है जैसे जलविषे तरंग होता है सो भिन्न कछु नहीं, जलते तरंग उत्पन्न होता है सो किस कर्मकरि होता है अरु क्या उसका रूप है जैसे वह जलरूप ही है तैसे यह जगत् आत्मस्वरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, जो कछु कल्पना करिये सो अविद्यामात्र है. हे वधिक! जबलग यह संवित् बहिर्मुख फुरती है तबलग जगत् भासता है अरु कर्म होते दृष्टि आते हैं अरु जब संवित् अंतर्मुख होवैगी तब न कोऊ जगत् रहैगा, न कोऊ कर्म दृष्टि आवैगा, सब आत्मसत्ता भासैगी, जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है तैसे तुझको भी भासैगी. हे वधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको जगत् आत्मत्वकरि दिखाई देता है अरु जो अज्ञानी हैं तिनको प्रमादकरि द्वैतरूप भासता है, तिसविषे पदार्थको सुखरूप जानकरि पानेका यत्न करता है, सुखकरि सुखी होता है, दुःखकरि द्वेष करता है, जो परमानंद आत्मपद है तिसके पानेका यत्न नहीं करता. अरु ज्ञानवान् सदा परमानंदविषे स्थित हैं अरु सब जगत् तिनको ब्रह्मस्वरूप भासता है. हे वधिक! जेता कछु

जगत् तुझको दृष्टि आता है सो सब ही ब्रह्म चिन्मात्रस्वरूप है, न कोऊ स्वप्न है, न कोऊ जाग्रत् है, न कोऊ कर्म है, न कोऊ अविद्या है सर्व ब्रह्मस्वरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अपर कछु नहीं. जैसे जलविषे आवर्त्त स्थित होता है परंतु जलते इतर कछु नहीं तैसे ब्रह्मविषे जगत् हुएकी नाईं भासता है परंतु ब्रह्मते इतर कछु नहीं सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है तू विचारकरि देख तब तेरे दुःख मिटि जावैंगे, जबलग विचार करके स्वरूपको न पावैगा तबलग दुःख न मिटैगा, जब स्वरूपको पावैगा तब सब कर्म नष्ट हो जावैंगे, जेता जेता विचार होता है तेता तेता सुख है, जहां विचार उत्पन्न होता है तहांते अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे जहां प्रकाश होता है तहां अंधकार नहीं रहता तैसे जहां सत् असत्का विचार उत्पन्न होता है तहां अविद्याका अभाव हो जाता है, बहुरि संसारचक्रविषे न गिरैगा अरु परमपदको प्राप्त होवैगा, जिस ज्ञानवान्को यह पद प्राप्त भया है सो दुःखी नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० कर्मनिर्णयो नामैकोनपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २४९ ॥

पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५०.

महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच-हे वधिक ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो परमानंदको प्राप्त होते हैं, जिस आनंदके पायेते जो इंद्रियका आनंद है सो सूखे तृणवत् तुच्छ भासता है अरु जैसा सुख पृथ्वी आकाश पातालविषे भी कहूँ नहीं तैसा सुख ज्ञानवान्को प्राप्त होता है, जिसको ऐसा आनंद प्राप्त भया है सो किसकी इच्छा करै ? अरु आत्मानंद तब प्राप्त होता है जब आत्मअभ्यास होवै, आत्मा शुद्ध है अरु सर्वदा अपने आपविषे स्थित है अरु जो कछु आगे दृष्टि आता है सो अविद्याका विलास है, जब तू अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा तब सब

ब्रह्म तुझको भासैगा. हे वधिक! पृथ्वी आदिक जो तत्त्व हैं सो हैं नहीं, जो कछु होते तौ इनका कारण भी कोऊ होता, जो यह भी नहीं तौ कारण किसको कहिये? अरु जो इनका कारण कहूं नहीं तौ कार्य किसका कहिये ताते यह भ्रममात्र है, विचार कियेते जगत्का अभाव हो जाता है, आत्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों भासती है,जैसे किसीको जेवरी-विषे सर्प भासता है, जब वह भले प्रकार देखै तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, ज्योंकी त्यों जेवरी ही भासती है, तैसे विचार कियेते आत्मसत्ता ही भासती है, जैसे कहूँ आकाशविषे संकल्पका वृक्ष रचै तौ आकाशविषे होवै तैसा भासता है, जैसे किसी पुरुषने संकल्पकरि देवताकी प्रतिमा रची अरु तिसके आगे अपनी प्रार्थना करने लगा तिस भावनाकरि उसका कार्य सिद्ध हुआ सो कैसे सिद्ध हुआ? अनुभवहीते सिद्ध हुआ, जिसके आश्रय वह प्रतिमा हुई तिसकरि कार्य सिद्ध भया. हे वधिक! जेता कछु जगत् तू देखता है सो सब संकल्प मात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है सो स्वप्नमात्र है तैसे यह सर्व विश्व ब्रह्माके संकल्पविषे स्थित है, आदि जो परमात्माते फुरणा हुआ है सो कर्मविना सृष्टि उपजी है, वह किंचन आभासरूप है, बहुरि आगे जो ब्रह्माने रचा है सो संकल्प रूप है, बहुरि आगे अज्ञानकरिकै कर्म करने-लगे तब कर्मकरि उत्पत्ति होती दृष्टि आई, जैसे स्वप्नविषे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्र ही दृढ हो भासती है जबलग स्वप्न अवस्थाविषे है तबलग जैसा वहां कर्म करैगा तैसा ही भासैगा अरु जो जागि उठै तौ न कहूँ कर्म है न जगत् है, तैसे यह सब संकल्पमात्र है, ज्ञानवान्करि अभाव हो जाता है. हे वधिक! यह जो मुझको मनुष्य भासते हैं सो मनुष्य नहीं, तिनके कर्म तुझको कैसे कहौं? जैसे स्वप्नके निवृत्त हुए स्वप्नसृ-ष्टिका अभाव होता है तैसे अविद्याके निवृत्त हुए अविद्यक सृष्टिका अभाव हो जाता है अरु आत्मसत्ता अद्वैत है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, वही रूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं अरु जब चित्तसंवित् फुरती है तब जगत् होकरि भासती

है अरु जब नहीं फुरती तब अद्वैत होकरि स्थित होती है अरु आत्मसत्ता फुरणे अफुरणेविषे ज्योंकी त्यों है, जन्म मरण वढना घटना जो नाम होते हैं सो मिथ्या हैं, काहेते कि दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे किसीने जल कहा किसीने अंबु कहा, दोनों एकहीके नाम होते हैं, तैसे आत्मा अरु जगत् एकहीके नाम हैं परंतु अज्ञानकरि भिन्न भिन्न भासते हैं, जैसे स्वप्नमें कार्य भासते हैं परंतु हैं नहीं तैसे जाग्रतविषे कारण कार्य भासते हैं परंतु हैं नहीं, वास्तवते आत्मतत्त्व है, तिस आत्माविषे जो चित्त फुरता है अहं मम तिस उत्थानते आगे जो कछु फुरणा होता गया सोई जगत् भया है, तिस जगतविषे जैसा जैसा निश्चय हुआ है तैसा तैसा भासने लगा है, तिसका नाम नेति है, तिसविषे देश काल पदार्थकी संज्ञा होने लगी है अरु कारण कार्य दृष्टि आते हैं सो क्या हैं ? केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अपर कछु हुआ नहीं परंतु हुएकी नाईं भासती है, जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारका जगत् भासता है अरु कारण कार्य भी दृष्टि आता है परंतु जागे हुए कछु दृष्टि नहीं आता, काहेते कि है नहीं, तैसे यह जगत् कारण कार्यरूप दृष्टि आता है परंतु है नहीं, आत्माकरि दृष्टि आता है ताते आत्मा ही है, जैसे संकल्पनगर दृष्टि आता है तैसे आत्माविषे घन चेतनताकरिकै जगत् भासता है सो वही रूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसा उसविषे निश्चय होता है तैसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है, जेता कछु जगत् दृष्टि आता है सो सब संकल्पमात्र है, संकल्प ही जहां तहां उडते फिरते हैं अरु अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों है, संकल्प ही मरिकै परलोक देखता है. वधिक उवाच–हे भगवन् ! परलोकविषे जो यह मरिकै जाता है तिस शरीरका कारण कौन होता है अरु तहां हंत्री अरु हंता कौन होता है ? अरु यह शरीर तौ यहां ही रहता है, वहां भोक्ता शरीर कौन होता है जिसकरि सुख दुःख भोगता है ? अरु जो कहौ, तिस शरीरका कारण धर्म अधर्म होता है तौ धर्म अधर्म तौ अमूर्ति हैं, तिनते समूर्ति साकाररूप क्योंकरि उत्पन्न हुआ ? मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है तिसके फुरणेकी एतीसंज्ञा होती हैं, कर्म,

आत्मा, जीव, फुरणा, धर्म, अधर्म, —इनते आदि लेकरि नानाप्रकारके नाम होते हैं, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अहंका उत्थान होता है तब देहकी भावना होती है अरु देह ही भासने लगती है, आगे जगत् भासता है, स्वरूपके प्रमादकरि संकल्परूप जगत् दृढ हो जाता है बहुरि तिसविषे जैसा जैसा फुरणा होता है तैसा तैसा हो भासता है. हे वधिक! यह जगत् संकल्पमात्र है परंतु स्वरूपके प्रमादकरि सत् भासता है अरु प्रमादकरि शरीरविषे अभिमान हो गया है तिसकरिकै कर्तव्य भोक्तव्य अपनेविषे मानता है, वासना दृढ हो जाती है, तिस वासनाके अनुसार परलोकको देखता है. हे वधिक! वहां न कोऊ परलोक है, न यह लोक है, जैसे एक स्वप्नको छांड़िकरि अपर स्वप्नको प्राप्त होवै तैसे अविदित वासनाकरिकै इस लोकको त्यागिकरि परलोकको देखता है, जैसे स्वप्नविषे निराकार ही साकार शरीर उत्पन्न होता है तैसे परलोकविषे है, वास्तवते क्या है? संकल्प ही पिंडाकार होकरि भासता है, जैसी जैसी वासना होती है तैसा ही तिसके अनुसार होकरि भासताहै, अरु शरीर पदार्थ सब ही आकाशरूप हैं. हे वधिक! असत् ही सत् होकरि जन्म मरण भासता है, जैसा जैसा फुरणा होता है तैसा तैसा भासता है, जगत् आभासमात्र है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको आत्मभाव ही सत् है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है तैसा होकरि भासता है, ज्ञान ज्ञेय ज्ञातारूप जगत् भासता है सो अनुभवते भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे अनेक पदार्थ भासते हैं सो अनुभव ही अनेकरूप हो भासता है अरु प्रलयविषे एक हो जाते हैं तैसे ज्ञानरूपी प्रलयविषे सब एकरूप हो जाते हैं, जब संवित् फुरती है तब नानाप्रकारका जगत् भासता है अरु संवित् अफुर होती है तब प्रलय हो जाती है, तब एकरूप हो जाता है, एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है, पृथ्वी आदिक पदार्थ तिसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कछु नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है, तिसविषे निराकार अरु साकार भी कल्पित हैं, इनते रहित निराकार है, जो पुरुष दृश्यसाथ मिले चेतन हैं सो जडधर्म हैं, तिनको नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, ज्ञानवान्को सत्‌रूप चिन्मात्र

ही भासता है. हे वधिक ! यह जगत् सब चिन्मात्र है, जब चित्तसंवित फुरती है तब स्वप्नरूप जगत् भासता है अरु जब चित्त संवित् फुरणेते रहित होती है तब सुषुप्ति होती है, तैसे चित्तसंवित् फुरणेकारि सृष्टि होती है अरु चित्तके स्थिर होनेकारि प्रलय हो जाती है, जैसे स्वप्न अरु सुषुप्ति आत्माविषे कल्पित हैं तैसे आत्माविषे सृष्टि अरु प्रलय कल्पित आभासमात्र हैं, अपर कछु जगत् बना नहीं, फुरणेकारिकै जगत् भासता है ताते जगत् भी आत्मरूप है, पंचतत्त्व भी आत्माका नाम है अरु सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्र है, जैसे आत्माविषे साकार कल्पित हैं तैसे ही निराकार कल्पित हैं, जैसे स्वप्नविषे किसीको साकार जानता है, किसीको निराकार जानता है, दोनों फुरनेमात्र हैं, जो फुरनेते रहित है सो आत्मसत्ता है अरु साकार भी निराकार वही है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, निराकार ही साकार हो भासता है. हे वधिक ! जेता कछु जगत् तुझको दृष्टि आता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, इतर कछु नहीं, परंतु अज्ञानकारिकै नानाप्रकार कार्य कारण भासता है अरु जन्म मरण आदि विकार भासता है, वास्तवते न कोऊ जन्म है न मरण है, न कोऊ कार्य है न कारण है अरु जो यह पुरुष मरता होवै तौ परलोक भी देखै अरु अपने मरणेको भी न जानै, जो परलोक देखता है, अपने मरणेको देखता है सो मरता नहीं, जब यह मृतक होवै तब पूर्व संस्कारको न पावै अरु पूर्वस्मृति इसको न होवै, सो तौ पूर्व संस्कारकारिकै क्रियाविषे प्रवर्त्तता है अरु प्रतियोगी करिकै पदार्थकी स्मृति भी हो आती है, बहुरि कर्मको भोगता है, पूर्वलोक तौ यह पुरुष मृतक नहीं होता, भ्रमकारि मरण भासता है अरु कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं, जब मरिकै परलोक देखता है अरु सुख दुःखको भोगता है तौ शरीर किसी कारणकारि नहीं बना, जैसे वह शरीर अकारण है तैसे अपर जो आकार दृष्टि आते हैं सो भी अकारण हैं, इसीते आभासमात्र है, जैसे स्वप्नके शरीरसाथ नानाप्रकारकी क्रिया होती हैं अरु देशदेशांतरको देखता है, सो सब मिथ्या है, तैसे यह जगत् मिथ्या है अरु मरण भी मिथ्या है अरु जो तू कहै इसके साकारका अभाव देखता है सो मृतक

है, तौ हे वधिक ! जो यह पुरुष परदेश जाता है तौ भी इसका आकार दृष्टि नहीं आता, जैसे दृष्टिके अभावविषे असत् होता है तैसे देहके त्यागविषे भी इसका असत् भाव होता है, इस पुरुषका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु जो तू कहै परदेश गया बहुरि भी आय मिलता है, शरीरके त्यागते बहुरि नहीं मिलता, परदेश गया बहुरि मिलकारि वार्त्ता चर्चा आनि करता है अरु मुआ तौ कदाचित् चर्चा नहीं करता तौ मुआ भी चर्चा करता है सो श्रवण करु, जिसके पितर प्रीतिकरि बांधे हुए मरते हैं अरु यथाशास्त्र उनकी क्रिया नहीं होती तब वह स्वप्नविषे आय मिलते हैं अरु यथार्थ कहते हैं कि हमारी क्रिया तुमने नहीं करी, हम अमुक स्थानविषे पड़े हैं अरु अमुक द्रव्य अमुक स्थानविषे पड़ा है, तुम काढि लेहु, तौ जैसे परदेश गये मिलते हैं अरु वार्ता चर्चा करते हैं तैसे मुए भी करते हैं. हे वधिक ! वास्तवते न कोऊ जगत है न मरता है केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है जैसा जैसा तिसविषे फुरना फुरता है तैसा तैसा हो भासता है. हे वधिक ! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है तैसा हो भासता है, एक संकल्पसिद्ध वस्तु है अरु पर दृष्टिसिद्ध वस्तु है, जब उनकी दृढ भावना होती है तब यह दोनों सिद्ध होती हैं, जो इंद्रियके विषे द्रव्य पदार्थ है सो दृष्टिसिद्ध वस्तु कहाती है, जो इसकी भावना होती है तौ यह प्राप्त होती है अरु जो अपने मनविषे आप ही मान छोडिये कि मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य शूद्र वर्ण हौं अथवा गृहस्थ वानप्रस्थ ब्रह्मचारी संन्यासी आश्रम हौं, इत्यादिक मानना संकल्पसिद्ध है, जबलग इनविषे अभ्यास होता है तबलग आत्मसत्ताकी प्राप्ति नहीं होती अरु जो आत्मसत्ताका अभ्यास होवे तब इन दोनोंका अभाव हो जाता है, आत्मा ही प्रत्यक्ष अनुभवकरिकै भासता है. हे वधिक ! जिस वस्तुका अभ्यास होता है तिसीकी सिद्धता होती है, जो भावना करै अरु थककारि फिरै नहीं तौ अवश्य प्राप्त होता है, अभ्यासविना कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे कोऊ पुरुष कहै, मैंअमुक देशको जाता हौं तौ जबलग उसकी ओर चलै नहीं तबलग अनेक उपायकारि भी नहीं प्राप्त होता, जब

उसकी ओर चलैगा तब पहुँचि रहैगा, तैसे जब आत्माका अभ्यास बहुत एकाग्र होकरि करैगा तब उसको प्राप्त होवैगा, अन्यथा आत्मपदको न प्राप्त होवैगा, हे वधिक ! जिस पुरुषको जगत्के पदार्थकी इच्छा है तिसको आत्मपद प्राप्त नहीं होता अरु जिसको आत्मपदकी इच्छा है तिसको वही प्राप्त होवैगा, जगत्के पदार्थ न भासैंगे, जैसी भावना होवैगी कि मेरी देवताकी मूर्ति होवै तिसकरि मैं स्वर्गविषे विचरौं अरु एक स्वरूपकरि भूलोकविषे मृग होनेकी भावना होवै तब दृढ अभ्यासकरि वही हो जाता है, काहेते जो जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है तैसा ही भासि आता है. हे वधिक ! दो स्वरूपकी क्या वार्ता है ? जो सहस्र मूर्तिकी भावना करै तोभी वही तद्रूप हो जावैगा, जैसी यह पुरुष भावना करता है तैसा ही रूप हो जाताहै अरु यह अविद्यक भ्रममात्र जगत्है, इसकी भावना त्यागिकरि आत्मपदका अभ्यास करहु तब तेरे दुःख मिटि जावैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशो नाम पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५० ॥

एकपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५१.

कार्यकारणाकारनिर्णयवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! जैसे अगाध समुद्रविषे अनेक तरंग फुरते हैं तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि फुरती हैं, जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है परंतु परस्पर अज्ञात है, एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता अरु दूसरेकी सृष्टिको वह नहीं जानता, जैसे एक ही स्थानविषे दो पुरुष सोये होवैं, उनको अपने अपने फुरणेकी सृष्टि भासि आती है, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता, परस्पर अज्ञात हैं तैसे ही सब सृष्टि आत्माविषे फुरती हैं परंतु एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता अरु जो धारणाभ्यासी योगी होता है तिसको अंतवाहक शरीर प्रत्यक्ष हुआ है, सो दूसरेकी सृष्टिको भी जानता है, जैसे एक तलावका दर्दुर होता है अरु एक कूपका दर्दुर होता है अरु

एक समुद्रका दर्दुर होता है, सो स्थान तौ भिन्न भिन्न होते हैं परंतु जल एक ही है, भावै कैसा दर्दुर होवै, तिसको जल जानता है कि मेरेविषे है, तैसे जगत् भिन्न भिन्न अंतःकरणविषे है परंतु आत्मसत्ताके आश्रय है, आदि जो संवेदन तिसविषे फुरी है सो अंतवाहक है, जब अंतवाहकविषे योगी स्थित होता है तब अपरके अंतवाहकको भी जानता है, इस प्रकार अनंत सृष्टि आत्माके आश्रय अंतवाहकविषे फुरती हैं सो आत्माका किंचन है,फुरती भी हैं अरु मिटि भी जाती हैं,संवेदनके फुरणेते सृष्टि उत्पन्न होती है अरु संवेदनके ठहरणेते मिटि जाती है, आकाशरूप होती है अरु वायुके ठहरनेते जल एकरूप हो जाता है, जलते इतर कछु नहीं भासता, तैसे फुरणेकरि आत्माविषे अनंत सृष्टि भासती हैं अरु संवेदनके ठहरनेते सब आत्मरूप हो जाती हैं, आत्माते इतर कछु नहीं भासती हैं, तिसते इतर प्रमादकरि भासती हैं, बहुरि कारणकार्यभ्रम भासता है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो कारणकार्यके क्रमते रहित फुरी है, पाछे कारणकार्यक्रम भासा, बहुरि तिसका संस्कार हृदयविषे हुआ तब संस्कारके वशते भासने लगी, प्रथम संस्कारते रहित अकस्मात् भासी है, तिसविषे जिनको स्वरूपका प्रमाद नहीं भया तिनको सदा परब्रह्मका निश्चय रहता है अरु जगत् अपना संकल्पमात्र भासता है अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद भया है तिनको संस्कारपूर्वक जगत् भासता है, अपर संस्कार भी कछु वस्तु नहीं. हे वधिक ! जो जगत् ही मिथ्या है तौ तिसका संस्कार कैसे सत् होवै ? परंतु ज्ञानवान्को इस प्रकार भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं तिनको स्पष्ट भासता है.हे वधिक! जैसे तुम संकल्पके रचे पदार्थको असत् जानते हौ, जैसे स्मृतिसृष्टिको असत् जानते हौ, जैसे स्वप्नसृष्टिको असत् जानते हौ तैसे हम इस जाग्रत् सृष्टिको भी असत् जानते हैं,जैसे मृगतृष्णाका जल असत् भासता है तैसे हमको यह जगत् असत् है, बहुरि कारण कार्य कर्म संस्कार हमको कैसे भासैं? अरु अज्ञानीको तीनों भासते हैं. हे वधिक ! जब चित्तसंवित बहिर्मुख होती है तब जगत् हो भासता है अरु जब अंतर्मुख होती है तब अपने स्वरूपको देखती है, जब आत्मतत्त्वका किंचन संवे-

दन फुरती है तब स्वप्न जगत् हो भासता है अरु जो ठहरि जाती है तब सुषुप्ति प्रलय हो जाती है, फुरणेका नाम सृष्टिकी उत्पत्ति है अरु ठहरनेका नाम प्रलय है, जिसके आश्रय फुरणा फुरता है सो शुद्ध सत्ता अव्यक्त निराकार है, सोई आकाररूप भासता है अरु जो अकारण निराकार है तिसविषे अकारण आकार भासता है, ताते जानता है कि वही रूप है, अपर कछु नहीं, आकार भी निराकार है, सृष्टि ही दृश्यरूप हो भासती है, जगत् आभासमात्र है, जैसे समुद्रका आभास तरंग होते हैं तैसे आत्माका आभास जगत् है, सो आत्मानंद चिदाकाश है अरु सर्व जगत्का अपना आप है. वधिक उवाच-हे मुनीश्वर! तुम जगत्को अकारण कहते हौ सो कारणविना उत्पत्ति कैसे संभवती है? जो प्रत्यक्ष भासता है अरु जो कारणकरिकै उत्पत्ति कहौ तौ स्वप्नवत् क्यों कहते हौ? स्वप्नसृष्टि तौ कारणविना होती है ताते यह सृष्टि कारणसहित है अथवा कारणते रहित अकारण है? सो कहौ. मुनीश्वर उवाच-हे वधिक! यह जगत् आदि अकारण है, आत्माका आभासमात्र है, प्रथम कारणते रहित है सो आत्माविषे अत्यंत अभाव है, अपर पदार्थ कछु बनै नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है सो चिदाकाश चिन्मात्र है तिसका किंचन चेतनता है, जैसे सूर्यकी किरणोंका आभास जल भासता है परंतु जड़ है, तैसे आत्माका किंचन भी चेतन है, सो किंचन संवेदन अहंभावको लेकरि फुरती गई है, जैसे जैसे फुरती है तैसा तैसा जगत् हो भासता है, जो जो तिसविषे निश्चय किया है, जो यह कर्तव्य है, इसके करणेकरि पुण्य है, इसके करणेकरि पाप है, यह करना है, यह नहीं करना, देश काल क्रिया क्रम है, यह इसी प्रकार है, यह ऋषि है, यह देवता है, यह मनुष्य है, यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है, इसकरि इनको बंधन है, इसकरि इनको मोक्ष है. हे वधिक! जो आदि नीति रची है तैसे ही अबलग स्थित है, अन्यथा नहीं होती, तिसविषे कारण कार्य क्रम है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो बुद्धिपूर्वक नहीं बनी, आकाशमात्र फुरी है, जैसे फुरी है तैसे ही स्थित है, बहुरि पदार्थ जो एकभावको त्यागिकारि अपर भावको अंगी-

कार करते हैं सो कारणकरिके करते हैं, कारणविना नहीं होते; काहेते कि प्रथम सृष्टि अकारण हुई है, पाछेते सृष्टिभावविषे कारण कार्य हुए हैं परंतु-हे वधिक! जिन पुरुषोंको आत्माका साक्षात्कार हुआ है तिनको यह जगत् कारणविना ब्रह्मस्वरूप भासता है अरु जिनको आत्मसत्ताका प्रमाद है तिनको जगत्कारण असत् भासता है, परंतु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है; तिसविषे संवेदनके फुरणेकरि अब्रह्मता भासती है अरु निराकारविषे आकार भासता है अरु अकारणविषे कारणता भासती है अरु जब संवेदन जो मनका फुरणा है सो स्थिर होता है तब सर्व जगत् कारणकार्यसहित भासता है, प्रथम अकारण फुरा है, पाछेते देवता मनुष्य पशु पक्षी पृथ्वी जल तेज वायु आकाश पदार्थकी मर्यादा भई है, बंध अरु मोक्षकी नीति हुई है सो ज्योंकी त्यों है, जो जल शीतल ही है, अग्नि उष्ण ही है इत्यादिक जैसे नीति है तैसे स्थित है अरु जब आत्मसत्ताविषे जागता है तब जगत् कारण-कार्यसहित नहीं भासता, जैसे स्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासि आती है, जब दृढ हो जाती है तब कारणसों कार्य होता है, दृढ हो आता है जो मृत्तिकाविना घट नहीं बनता अरु जागि उठै तब सर्व जगत् आत्मरूप हो जाता है. हे वधिक! यह जगत् संवेदनविषे स्थित है जबलग अहंभावका फुरणा है तबलग जगत् है, जब अहंभाव मिटता है तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होता है, जब लग अहं फुरती है तबलग नाना प्रकारका जगत् हो भासता है, जैसी भावना होती है तैसा भासता है अरु सर्व पदार्थ सर्वदा काल अपनी अपनी शक्तिविषे जैसे आदि नीति हुई है तैसे ही स्थित हैं, जो जीव जैसी क्रियाका अभ्यास करैगा तिसके फलको पावैगा, जो बंधनके निमित्त करैगा सो बंधनको पावैगा अरु मोक्षके निमित्त करैगा तो मोक्षको पावैगा, ऐसे ही आदि नीति हुई है. हे वधिक! इस प्रकार किंचन होकरि मिटि जाता है अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है अरु जगत्की उत्पत्ति प्रलय ऐसे हैं जैसे हाथी अपनी शुंडको पसारै अरु

खैंचै तैसे चित्त संवेदनके पसरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है अरु निस्पंदविषे प्रलय हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० कार्यकारणाकारणनिर्णयो नाम एकपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५१ ॥

द्विपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५२.

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविचारवर्णनम्।

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! यह संपूर्ण जगत् चिद् अणुके ओजविषे है अरु तिस संबंधके अभ्यासकरिकै आत्मा चिद् अणुकी संज्ञाको पाता भया है, ओज अंतःकरण हृदय तीनों अभेद हैं तिसविषे स्थित चेतनसत्ता है, बाहरते मृतक रूपवत् होती है अरु तिसविषे जीवितरूप है अरु तहां बड़े प्रकाशकरि प्रकाशती है, तिस सत्ता आगे चित्तसाथ संयोग हुआ है, चित्त अरु प्राणकलाका संयोग हुआ है. हे वधिक ! जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त खेदको प्राप्त होता है अरु जब चित्त खेदको प्राप्त होता है तब प्राण भी खेदको पाते हैं, जब प्राण स्थित होते हैं तब जीव शांतिको प्राप्त होता है अरु जो प्राण स्थित नहीं होते तब जीव जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाविषे भटकता है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था भिन्न भिन्न आती है सो सुन. हे वधिक ! जब यह पुरुष अन्न भोजन करता है सो अन्न जाग्रत्वाली नाडीके ऊपर जाय स्थित होता है तब वह नाडी रोकी जाती है तिसकरि सुषुप्ति आती है, जिन नाडीविषे चित्तकी वृत्ति गई हुई जाग्रत् जगत्को देखती है सो जाग्रत् नाडी कहाती है, तिनके ऊपर अन्न जाय स्थित होता है अरु चित्तसत्ता जो चित्तविषे प्रतिबिंबित है सो चित्त नाडी तिसके तले आय जाती है तब प्राणवायु भी इस नाडीविषे ठहरि जाता अरु चित्तस्पंद भी ठहरि जाता है तब सुषुप्ति होती है अरु जो पित्त बहुत होता है तब सूर्य अग्नि आदिक उष्ण पदार्थ स्वप्नविषे देखता है अरु जब वह अन्न पचता है अरु उन नाडीविषे प्राण जाते हैं तब

स्वप्न अवस्था आती है, जब जलके शोषणेको वायु बहता है तब जीव स्वप्नविषे उडता है अरु जो कफ बहुत होता है तब किसको देखता है।नदियां अरु ताल देखता है, तिनविषे जाता है, डूबता है, जब उष्ण नाडी विषे अन्न जल जाय पहुँचता है तब जाग्रत् अवस्था होती है, इस प्रकार जीव तीनों अवस्थाविषे भटकता है, जगत् न कछु अंतर है, न बाहर है, केवल अद्वैत सत्ता ज्योंकी त्यों है तिसके प्रमादकरिकै चित्तकी वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है तब जगत्को जाग्रत्‌करि देखता है अरु जब बाहिरकी इंद्रियोंको त्यागि करिकै अंतर आता है तब अंतर स्वप्नजगत्‌को देखता है अरु जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है तब अपर कल्पना मिटि जाती है, सर्व ब्रह्म ही भासता है ताते सर्व कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविचारो नाम द्विपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५२ ॥

त्रिपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५३.

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! यह तीनों अवस्था होती हैं अरु जाती हैं, इनके अनुभव करनेवाली जो सती है सो आत्मसत्ता है अरु सदा एकरस है, जिस पुरुषको अपने स्वरूपका अनुभव भया है तिसको अपना किंचन भासता है अरु जिसको प्रमाद है तिसको जगत् भासता है अरु यह जगत् चित्तका कल्पा हुआ है, इंद्रियोंका जिसको प्रमाद है तिसको जगत् भासता है अरु यह जगत् चित्तका कल्पा हुआ है, जब इंद्रियां विषयके सन्मुख होती हैं तब जगत्‌को देखती हैं, तिस संकल्प जगत्‌को देखिकरि रागद्वेषवती होती हैं, बहुरि इंद्रियके अर्थको पाइकरि जीव हर्ष अरु शोकवान् होता है. हे वधिक ! जिस चिद् अणुका इंद्रिय साथ संबंध है तिसको संसारका अभाव नहीं होता, नेत्र त्वचा जिह्वा नासिका श्रोत्रकरिकै आपको देखता स्पर्श

करता रस लेता सूंघता सुनता मानता है, तब संसारी होकरि देखता दुःख पाता है, जब इनके अर्थको त्यागिकै अपने स्वभावकी ओर आता है तब सर्व जगत्को आत्मरूप जानिकरि सुखी होता है. हे वधिक! चित्तके फुरणेका नाम जगत है अरु चित्तके स्थित होनेका नाम ब्रह्म है, जगत् अपर कछु वस्तु नहीं इसीका आभास है, चित्तके आश्रय सब नाडियां हैं, तिनविषे स्थित होकरि जीव तीनों अवस्थाको देखता है वास्तवते यह जीव चिदाकाश आत्मा है, अज्ञानकरि जीवसंज्ञाको प्राप्त भया है. हे वधिक! ओज धातु जो है हृदय तिसविषे चिद् अणु स्थित होकरि दीपकज्योतिवत् प्रकाशता है, तिस ओजके आश्रय सब नाडियां हैं सो अपने रसको ग्रहण करती हैं, जब यह प्राणी भोजन करता है अरु अन्न जाग्रत् नाडीविषे पूर्ण होता है तब जाग्रत्का अभाव हो जाता है, चित्तकी वृत्ति अरु प्राण आने जानेते रहित हो जाते हैं, वह नाडी मुँदि जाती है, बहुरि जब कफनाडीविषे प्राण फुरते हैं तब स्वप्न भासता है. हे वधिक! जब इंद्रियके ग्रहण करिकै चित्तकी वृत्ति बाह्य निकसती है तब जाग्रत् जगत् हो भासता है अरु जब तन्मात्राको लेकरि चित्तकी वृत्ति ओजधातुविषे फुरती है तब स्वप्न भासता है अरु जब ओज धातुके ऊपर अन्न आदिक द्रव्यका बोध आनि पड़ता है तब सुषुप्ति होती है अरु जब निद्राका अरु जाग्रत्का बल होता है तब दोनों भासते हैं अरु जब दोनोंविषे एकका बल अधिक होता है तब वही भासता है, जाग्रत् अथवा सुषुप्ति अरु जब निद्राते रहित मंद संकल्प होता है तब तिसको मनोराज्य कहता है अरु जब बाह्य विषयको त्यागिकरि चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख होती है तब स्वप्न होता है, तहां फिरि जिस सिद्धांतविषे जाता है तिस अनुसार अंतर जगत् भासता है, कफके बलकरि चंद्रमा अरु क्षीरसमुद्र नदियां ताल जलसाथ पूर्ण अरु वृक्ष फूल फल बगीचे सुंदर वन हिमालय कल्पवृक्ष तमाल सुन्दर स्त्रियां अरु वल्लियां बावलियां इत्यादि सुन्दर अरु शीतल स्थान देखता है, जब पित्तका बल अग्नि होता है तब सूर्य अग्नि अरु सूखे वृक्ष फल टास देखता है अरु संध्याकालके मेघकी लाली देखता

है, वनस्थानको अग्नि लगी देखता है, पृथ्वी अरु रेत तपी हुई देखता है, मरुस्थलकी नदी दृष्टि आती है, जल उष्ण लगता है, हिमालयका शिखर उष्ण लगता है, इनते आदि लेकरि उष्ण पदार्थ दृष्टि आते हैं अरु जब वायुका बल अधिक होता है तब स्वप्नविषे आँधी वायुको देखता है, पाषाणकी वर्षा होती दृष्टि आती है अरु अंधे कूपविषे गिरता है, हस्ती घोडे उड़ते दृष्टि आते हैं आपको उड़ता फिरता देखता है, अप्सराके पाछे दौडता है, पहाड़की वर्षा होती है, वायु तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, इनते आदि लेकरि पदार्थ चलते दृष्टि आते हैं, विपरीत होकरि दृष्टि भासते हैं इस प्रकार वात पित्त कफकरिकै स्वप्नविषे जगत् देखता है, जिसका बल विशेष होता है तिस धर्मविषे दृष्टि आता है, वासनाके अनुसार घट बढ राजसी तामसी सात्त्विकी पदार्थको देखता है, जब तीनों इकट्ठे होकरि कोपते हैं तब प्रलयकाल दृष्टि आता है. हे वधिक ! जबलग वात पित्त कफके अंश साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफके स्थानविषे प्रवेश करता है तबलग समान जलके क्षोभ भासते हैं, इस प्रकार वात पित्त कफ जिसके स्थानविषे अपरके स्वभावको छेते हुए जाते हैं तबलग समान क्षोभ भासता है अरु जब केवल वातका क्षोभ होता है तब महाप्रलयकालके पवन चलते हैं अरु पहाडपर पहाड गिरते, भूकंप आते हैं, इसते आदि लेकरि क्षोभ होते हैं अरु जब कफका क्षोभ होता है तब समुद्र उछलते हैं अरु पित्तकरि अग्नि लगती है, महाप्रलयकी नाईं तत्त्व क्षोभवान् होते हैं, जब प्राण जाग्रत् नाड़ीविषे जाते हैं अरु वह अन्नकरि पूर्ण होती है तब जीव उसके नीचे आइ जाते हैं, जैसे कंधके नीचे दर्दुर आवैं, जैसे पाषाणकी शिलाविषे कीट आय जावैं, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठविषे होवै, जैसे इनविषे अवकाश नहीं रहता, तैसे तिस नाडीविषे फुरणेका अवकाश नहीं रहता, रुक जाती है, तब इसको सुषुप्ति होती है, जब कछु अन्न पचता है तब चित्तसंवित् अपने अंतर स्वप्न देखती है, जिसको सततका विकार विशेष होता है, तिसीका कार्य देखता है, जब अन्न अरु जल पचता है तब फिरि जाग्रत् जगत्को देखता है अरु जब जाग्रत् अरु स्वप्न दोनोंका बल सम होता है तब

दोनोंको देखता है अरु अनुभव करता है. हे वधिक ! इस प्रकार तीनों अवस्था होती अरु मिटि जाती हैं सो तीनों गुणकरि होती हैं, इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवाला है सो गुणते अतीत है अरु सर्वका आत्मा है, यह जगत् अरु स्वप्नजगत संकल्पमात्र है, बना कछु नहीं; ब्रह्मसत्ता ही किंचनकरिकै जगतरूप हो भासती है परंतु अज्ञानी तिसको जगत् जानते हैं, जगतको सत् जानिकरि इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष करते हैं, इष्ट रागसंयुक्त ग्रहण करते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे द्वेष करते हैं; जब बाह्यकी इंद्रियां सुषुप्ति हो जाती हैं तब अंतर स्वप्नविषे भटकता है, तिसविषे सूर्य चंद्रमा वन फूल फल वृक्ष आदिक जगत्को देखता है अरु जब स्वरूपका अनुभव होता है तब सर्व भटकना मिटि जाता है अरु शांतिपदको प्राप्त होता है.

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० उ० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनं नाम त्रिपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५३ ॥

चतुष्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५४.

सुषुप्तिवर्णनम् ।

वधिक उवाच-हे मुनीश्वर ! उस पुरुषके हृदयविषे जो तुमने जगत अरु प्रलय देखे थे तिसके अनंतर क्या होता भया अरु क्या अवस्था देखी ? मुनीश्वर उवाच-हे वधिक ! तिसके चित्तस्पंदविषे मैं देखता भया कि बड़े बड़े पहाड प्रलयकी वायुसाथ सूखे तृणकी नाईं उडते हैं अरु पाषाणकी वर्षा होती है; इस प्रकार मैं प्रलयके क्षोभको देखत भया. मेरे देखते देखते जाग्रत्वाली नाडीविषे अन्न आनि स्थित हुआ, तहां जो अन्नके दाणे गिरैं सो पर्वतवत् भासैं तब चित्तस्पंद जो संवित् थी सो रुक गई, तिसविषे मैं था सो तामस नरकविषे जाय पडा, मानो वहां मैं भी जड हो गया, मुझको ज्ञान कछु न रहा, जब कछु अन्न पचा अरु कछु अवकाश हुआ तब प्राणका स्पंद फुरा, जैसे वायु निस्पंद हुई स्पंद होकरि चलै तैसे वहां संवित् फुरी तब सुषुप्ति दृश्य होकरि

भासने लगी, कैसी है, ज्यों आत्मा द्रष्टा ही दृश्यरूप होकरि भासने लगा परंतु अपर कछु बना नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रव्यताविषे कछु भेद नहीं, जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे भेद नहीं तैसे आत्मा अरु दृश्यविषे कछु भेद नहीं. हे वधिक ! इस प्रकार मैं जगत्को देखता भया, सुषुप्ति जाग्रत् दृश्य, सो दृश्य उपजी मुझको दृष्टि आई, जैसे कुआँरी कन्याते संतान उपजै तैसे उपजत भई. वधिक उवाच–हे मुनीश्वर ! तुमने जो कहा सुषुप्ति आत्माते दृश्य उपजी सो सुषुप्ति क्या है ? जिसविषे तुम दब गये थे वही सुषुप्ति है, जिसते जगत् उपजता है सो मुझको कहौ. मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! जहां सर्व संबंधका अभाव है केवल आत्मसत्ताते इतर कछु कहना नहीं तिसका नाम सुषुप्ति है, तिसविषे जो फुरणा हुआ तिस फुरणेके तीन पर्याय हैं सो सब सन्मात्रके हैं, जो वस्तुस्वरूप है अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है अरु तीनोंके परिच्छेदते रहित है सो सन्मात्र है, तिस सन्मात्रविषे अपर कछु बना नहीं, तिसके सब पर्याय हैं सो वही रूप हैं, वही सत् वस्तु अपने आपविषे विराजता है, कदाचित् अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होता, किंचनविषे भी वही रूप है अरु अकिंचनविषे भी वही रूप है, आत्माका ही नाम सुषुप्ति है, तिसीते सब जगत् होता है, तिस सत्ताका नाम सुषुप्ति है, वही स्वप्न दृश्य होकरि भासता है, उसते इतर कछु नहीं; जैसे वायु स्पंद निस्पंदविषे वही रूप है तैसे आत्मा दोनों अवस्थाविषे एक ही है. हे वधिक ! इस साखेकी बुद्धिविषे अपर कछु बना नहीं, सदा ज्योंका त्यों स्थित है, शरीरके आदि भी अंत भी वही रूप है, तिसविषे जो किंचन द्वाराकरि भासा है सो भी वही रूप है, जैसे सुषुप्ति अवस्थाविषे मुझको अद्वैतका अनुभव होता है, अपर कहूँ फुरणा नहीं होता, तिससों जो स्वप्न अरु जाग्रत् भासि आती है सो भी वही रूप है, जिसते फुरती है अरु जिसविषे भासती है तिसते इतर कछु नहीं, ताते यह जगत् आत्माका किंचन है सो आत्मरूप है, जब तू जागिकरि देखैगा तब तुझको आत्मरूप भासैगा, जैसे स्वप्नपुर अरु संकल्पनगरका अनु-

भव होता है अरु आकाशरूप है तैसे यह जगत् आकाशरूप है, शक्ति भी वही है, सर्वशक्ति आत्मा है, निष्किंचन भी वही है अरु किंचन भी वही है अरु शून्य भी वही है, जो वाणीते कहा नहीं जाता तिस अवस्थाविषे ज्ञानी स्थित है. हे वधिक! ज्ञानवान्को अनुभव प्रत्यक्षकरिकै अनुभवरूप ही भासता है, जैसे स्वप्नविषे जीव अरु ईश्वर भिन्न भिन्न भासता है, उपाधिकरिकै अनुभव भेद भासता है, वास्तवते भेद कछु नहीं, तैसे जाग्रत्विषे अज्ञान उपाधिकरिकै भेद भासता है, स्वरूपते आत्मा एकरूप है, जब अज्ञान निवृत्त होता है तब सर्व आत्मरूप भासता है. हे वधिक! सर्व जगत् अपना स्वरूप है परंतु अज्ञानकरिकै भेद होता है, जब आपको जानै तब द्वैतभेद भी मिटि जावै, जैसे कहूँ पुरुष अपनी भुजापर सिंहकी मूर्ति लिखै अरु उसके भयकरि दौडता फिरै अरु कष्ट पावै सो प्रमादकरिकै भयवान् होता है, वह तौ अपना ही अंग है, ऐसे जानै तब भय मिटि जाता है, तैसे स्वरूपके ज्ञानकरिकै जगत्भय मिटि जाता है, जैसे स्वप्नविषे अज्ञानकरिकै नानात्व भासता है अरु बना कछु नहीं तैसे जाग्रत्विषे नानात्व भासता है परंतु बना कछु नहीं, जब यह पुरुष अंतर्मुख होता है तब इसको बोधकी दृढता हो आती है, जैसे प्रातःकालको ज्यों ज्यों सूर्यकी किरणैं प्रगट होती हैं त्यों त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे ज्यों ज्यों अंतर्मुख होता है त्यों त्यों बोध खिलता है, विषयते वैराग्य करना अरु आत्माका अभ्यास करना इसकरि बुद्धि अंतर्मुख होती है अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब आत्मा सर्व एकरस भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सुषुप्तिवर्णनं नाम चतुष्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५५.

सुषुप्तिवर्णनम्।

मुनीश्वर उवाच-हे वधिक ! तब मैं उसकी सुषुप्तिसों जागिकरि जगत्को देखत भया, जैसे कोऊ पुरुष समुद्रसों निकसि आवै अरु जैसे संकल्पसृष्टि फुरि आवै, जैसे आकाशते बादल फुरि आते हैं, जैसे वृक्षते फल निकसि आते हैं तैसे उसकी सुषुप्तिसों सृष्टि निकसि आई, मानौ आकाशते उडि आई, मानौ कल्पवृक्षते चिंतामणि निकसि आई है, जैसे शरीरके रोम खडे हो आते हैं, जैसे गंधर्वनगर फुरि आता है, जैसे पृथ्वीते अंकुर निकसि आता है तैसे सृष्टि फुरि आई है, जैसे कंधके ऊपर पुतलियां लिखी होवैं, जैसे स्तंभविषे अणउकरि पुतलियां होवैं तैसे मैं सृष्टिको देखत भया, जैसे स्तंभविषे पुतलियां निकसीं नहीं परंतु शिल्पी कल्पता है कि एती पुतलियां निकसैंगी, तैसे अनहोती सृष्टि आत्मरूपी स्तंभते निकसि आती है अरु आत्मरूपी माटीते पदार्थरूपी वासना निकसते हैं परंतु यह आश्चर्य है कि आकाशविषे चित्र होते हैं अरु निराकार चैतन्य आकाशविषे पुतलियां मनुष्य कल्पता है. हे वधिक ! जैसे आकाशविषे मकडीके समूह निकसि आते हैं तैसे शून्य आकाशते सृष्टि निकसकरि पुरुषके हृदयविषे मुझको स्पष्ट भासने लगी अरु देश काल क्रिया द्रव्यकरिकै अकस्मात्ते सत् असत् पदार्थ भासने लगते हैं अरु असत् पदार्थ सत् हो भासते हैं, जैसे मणि मंत्र ओषधि द्रव्यके बलकरि असत् पदार्थ सत् हो भासने लगते हैं अरु सत् पदार्थ असत् भासते हैं तैसे अभ्यासके बलकरि मुझको पुरुषके हृदयविषे सृष्टि भासने लगी. हे वधिक ! जैसा निश्चय संवित्‌विषे दृढ होता है तैसा रूप होकरि भासता है, वास्तवते न कोऊ पदार्थ है, न अंतर है, न बाहर है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह सब सृष्टि इसके अंतर ही स्थित है अरु प्रमाददोषकरिकै बाहरसे फल उत्पत्ति होते देखता है, जैसे स्वप्नविषे सब पदार्थ अपने अंतर बाहर होते भासते हैं तैसे यह पदार्थ अपने अंतरसों बाह्य फुरते भासते हैं. हे वधिक !

यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्टि आता है सो सब निराकार है, अपर कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अज्ञानकरि जगत्‌रूप हो भासती है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको जगत् सत् असत् कछु नहीं भासता, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित भासती है, अरु जो अज्ञानी हैं तिनको भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है अरु जब चित्तकी वृत्ति बाहिर फुरती है तिसको जाग्रत् कहता है अरु जब अंतर्मुख फुरती है तब तिसको स्वप्न कहता है अरु जब वृत्ति स्थित होती है तब तिसको सुषुप्ति कहता है, तौ एक ही चित्तवृत्तिके तीन पर्याय हुए, अपर कछु वास्तव तौ नहीं, इसी जगत्‌के आदि शुद्ध केवल आत्मसत्ता थी, तिसविषे चित्तसंवित् फुरी तब जगत्‌रूप भासने लगी, अपर किसी कारणते जगत् उपजा नहीं, जिसका कारण कोऊ नहीं तिसको असत् जानिये, वास्तवते जगत् कछु बना नहीं, सर्व जगत् शांतरूप ब्रह्म ही है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सुषुप्तिवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५५ ॥

षट्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५६.
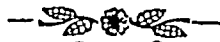
स्वप्ननिर्णयवर्णनम् ।

वधिक उवाच–हे मुनीश्वर ! प्रलयके अनंतर तुमको क्या अनुभव हुआ था ? मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! तब मुझको तिसके अंतर सृष्टि फुरि आई, अपने पुत्र कलत्र स्त्री संपूर्ण कुटुंब भासि आये, तिनको देखिकरि मुझको ममत्व फुरि आई अरु पूर्वकी स्मृति भूल गई, षोडश वर्षका आयुर्बल मुझको अपना भासा, गृहस्थाश्रमविषे स्थित भया, रागद्वेषसहित मुझको जीवके धर्म फुर आये, काहेते जो दृढ ज्ञान मुझको हुआ न था. हे वधिक ! जब दृढ बोध होता है तब राग द्वेष आदिक जीवधर्म चलाय नहीं सकते, संसारको सत्य जानकरि वासना कोऊ नहीं होती, इसी कारणते चलायमान नहीं होता अरु जिसको बोधकी दृढता नहीं तिसको जगत्‌की वासना खैंचि ले जाती है. हे

वधिक ! अब मुझको दृढ बोध हुआ है, इसको तरना महा कठिन है, यह पिशाचिनी महाबली है, काहेते कि चिरकाल दृश्यका अभ्यास हुआ इस कारणते चलाय ले जाती है, जब सच्छास्त्रका विचार अरु संतका संग जीवको प्राप्त होता है अरु अभ्यास दृढ होता है तब दृश्यका सद्भाव निवृत्त हो जाता है, जबलग यह मोक्षका उपाय नहीं प्राप्त भया तबलग यह भ्रम दृढ हो रहा है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि इसको यह विचार उपजै कि मैं कौन हौं अरु यह जगत् क्या है ? इसको विचारिकरि आत्मपदका दृढ अभ्यास होवै तब दृश्यभ्रम मिटि जाता है, काहेते कि असम्यक् ज्ञानकरिकै जगत् सत् भासा है, जब सम्यक् ज्ञान हुआ तब जगत्का सद्भाव कैसे रहै ? जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, जैसे बाजीगरकी बाजी, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, जब अपने स्वरूपविषे जागता है तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, जबलग स्वरूपविषे जागा नहीं तबलग जगत्भ्रम मिटिता नहीं. वधिक उवाच–हे हे मुनीश्वर ! यह तुम सत्य कहते हौ कि जगत्भ्रम मिटना कठिन है, मैं तुम्हारे मुखते वारंवार सुनता हौं अरु विचरता हौं अरु पद पदार्थका ज्ञान मुझको दृढ भया है परंतु संसारभ्रम नष्ट नहीं होता, यह मैं जानता हौं अरु सुनता हौं कि संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारविना शांति नहीं प्राप्त होती, यह संशय मुझको होता है कि तुम जाग्रत् जगत्को स्वप्नवत् कैसे कहते हौ ? कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं. मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! यह जेता कछु जगत् पृथ्वी आदिक पदार्थ सत् भासते हैं अरु शशेके शृंग आदिक असत भासते हैं सो सब मिथ्यारूप हैं, जैसे स्वप्नविषे सत् असत् पदार्थ भासते हैं सो सर्व असत्रूप हैं तैसे यह जगत् असत्रूप है; तिसविषे अल्पप्रतीतिका अरु चिरकालकी प्रतीतिका भेद है, जाग्रत् चिरकालकी प्रतीति है, तिसकरि पदार्थ सत् भासते हैं अरु स्वप्न अल्पकालकी प्रतीति है; तिसकरि स्वप्नपदार्थ असत् भासते हैं, परंतु दोनों भ्रमरूप हैं अरु असत् हैं इस कारणते मैं तुल्य कहता हौं, असत् ही पदाथ भ्रमकरिकै सत्की नाई

भासते हैं अरु यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है, तिसविषे सत् क्या कहौं अरु असत् क्या कहौं ? जैसे स्वप्नविषे कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं सो सब ही असत्य हैं तैसे जाग्रत्विषे कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं परंतु दोनों भ्रममात्र हैं ताते असत्य हैं. हे वधिक ! प्रतीतिका भेद है, पदार्थविषे भेद कछु नहीं; जिसविषे प्रतीति दृढ हो रही है तिसको सत् कहता है अरु जिसविषे प्रतीति दृढ नहीं तिसको असत् कहता है; एक ऐसे पदार्थ हैं जो स्वप्नविषे उनकी भावना दृढ हो गई है, सो जाग्रत्विषे भी प्रत्यक्ष आनि भासता है अरु मनो-राज्यकी दृढता जाग्रत्रूप हो जाती है सो भावनाकी दृढता है, अपर भेद कछु नहीं, जिसविषे भावना दृढ हो गई है सो सत् भासने लगा है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको जगत् संकल्पमात्र ही भासता है, संकल्पते इतर कछु जगत्का रूप नहीं, तिसविषे मैं सत् क्या कहौं अरु असत् क्या कहौं ? सब जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं तिनको सत् असत् कछु नहीं, तिनको सब ज्ञानरूप भासता है अरु जिसको स्वप्नविषे जाग्र-त्की स्मृति आई है तिसको बहुरि स्वप्न नहीं भासता तैसे जिसको जाग्रत्रूप स्वप्नविषे बोधस्मृति भई है सो बहुरि मोक्षको नहीं प्राप्त होता, ताते न कोऊ जाग्रत् है न कोऊ स्वप्न है न कोऊ नीति है, काहेते कि नीति भी कछु अपर वस्तु नहीं निकसती; जैसे स्वप्नविषे नानाप्रका-रके पदार्थ भासते हैं तिनकी मर्यादा नीति भी भासती है, तौ वह नीति किसीकरि है, सब ज्ञानरूप होती है, तैसे जाग्रत्विषे भी सब ज्ञानरूप हैं, संवित्के फुरणेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, तिनविषे नीति भी भासती है, ताते न कोऊ जगत् है न नीति है, इसका कारण कोऊ नहीं, कारणविना ही जगत् अकस्मात् फुर आता है अरु मिटि भी जाता है, संवेदनके फुरणेकरि जगत् फुरि आता है, संवेदनके मिटते मिटि जाता है, ताते जाग्रत् संवेदनरूप है, जैसे वायु स्पंदरूप होता है तैसे संवेदन ही जगत्रूप हो भासता है, वायु स्पंदरूप होती है तब फुरणरूप हो भासती है अरु निस्पंद कोऊ नहीं जानता परंतु वायुको दोनों तुल्य हैं, तैसे चित्त संवेदनके फुरणेविषे जगत् भासता है अरु ठहरनेविषे जगत्-

किंचन मिटि जाता है, फुरना अरु ठहरना दोऊ उसके किंचन हैं, आप दोनोंविषे तुल्य हैं. हे वधिक ! नीति भी अज्ञानीके समुझावने निमित्त कही है, स्वप्न भी असत् है, सब कोऊ जानता है अरु स्वप्नका वृत्तांत जाग्रत्विषे सिद्ध होता दृष्टि आता है, कोऊ कहता है कि रात्रिविषे मुझको स्वप्न आया है, अमुक कार्य इसी प्रकार होवैगा, सो जाग्रत्विषे होता दृष्टि आता है अरु पुत्रको पिता कहि जाता है, मेरी गति करहु अरु अमुक स्थानविषे द्रव्य पडा है तुम काढि लेवहु, सो उसी प्रकार होता दृष्टि आता है, जो नीति होती तौ कार्य कोऊ सिद्ध न होता सो तौ होता है, ताते नीति भी कछु वस्तु नहीं, आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं, जाग्रत् नाम तिसका है जिसको आत्मशब्द कहता है अरु जिसको तुम जाग्रत् कहते हौ सो कछु वस्तु नहीं, जाग्रत् नाम जो मनसहित षट् इंद्रियोंकी संवेदन होती है सो स्वप्नविषे मनसहित षट् इंद्रियोंकी संवेदन होती है, तिनकेविषे ग्रहण होता है ताते जाग्रत् वस्तु कछु नहीं, जो जाग्रत्विषे अर्थ सिद्ध होता है अरु स्वप्नविषे भी होवै तो जाग्रत्विषे कछु वस्तु न हुई, अरु जो तू कहै स्वप्न कछु वस्तु है तौ स्वप्न भी नहीं, स्वप्न तहां होता है जहां निद्राभ्रम होता है, केवल शुद्ध चिन्मात्रसत्ता है, जगत् तिसका किंचन है, जैसे रत्नकी लाटका चमत्कार होता है सो लाट इतर कछु वस्तु नहीं, रत्न ही व्यापा है, तैसे जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्माका चमत्कार है सो बोधसत्ता केवल अपने आपविषे स्थित है, सो अनंत है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, जो आत्माते इतर जगत् भासता है सो नाशरूप है, आत्मा सदा अविनाशी है. हे वधिक ! जब यह पुरुष शरीरको छांडता है तब परलोकविषे सुख दुःख कैसे भोगता है, जैसे जलविषे एकतरंग उठिकरि मिटि जाता है, अपर ठौर अपर प्रकार लेकरि उठता है सो जल ही जल है, आगे भी जल था पाछे भी जल है, तरंग भी जल है, जलहीका विलास इस प्रकार फुरता है, तैसे यह शरीर भी अनुभवरूप है, अनुभवते इतर कछु नहीं, जैसे एक स्वप्नको छांडिकरि दूसरा स्वप्न देखता है तो क्या है, अपना ही आप है, तैसे यह जगत् आत्मरूप है. हे वधिक ! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया यही चारौं वपु

हैं, जाग्रत् जो सृष्टिकी समष्टिता है तिसका नाम विराट् है अरु स्वप्न जो लिंगशरीरकी समष्टिता है तिसका नाम हिरण्यगर्भ है अरु सुषुप्ति शरीरकी समष्टिता अव्याकृत माया है अरु तुरीया सर्व शरीरकी समष्टिता है सो चेतनरूप आत्मा है, तुरीया कहिये साक्षीभूत जानना, तिसकी समष्टितारूप चेतनवपु है, चारों शरीर उसके हैं अरु सदा निराकार है, अचेत चिन्मात्र है. हे वधिक! यह चारों परमात्माके शरीर हैं सो परमात्मा निराकार है अरु आकार जो दृष्टि आते हैं सो भी वही रूप हैं, सो आकार कल्पनामात्र हैं अरु आत्मा सर्व कल्पनाते रहित है ताते सब जगत् चिदाकाशरूप है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे कमलफूल नहीं लगते, तिनका होना असंभव है, तैसे आत्माविषे जगत्का होना असंभव है. हे वधिक! आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तू जागिकरि देख, जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो संकल्पमात्र हैं, जिसविषे कल्पित हैं सो नामरूपते रहित है, तिसको देखैगा तब आत्मरूप सब जगत् भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० स्वप्ननिर्णयो नाम षट्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५७.

स्वप्नविचारवर्णनम् ।

व्याध उवाच–हे मुनीश्वर! उस पुरुषके हृदयविषे जो तुमने सृष्टि देखी थी, तिसविषे तुम किस प्रकार विचरते थे अरु क्या देखा था? सो कहौ. मुनीश्वर उवाच–हे वधिक! जो कछु वृत्तांत है सो तू सुन, जब मैंने उसके हृदयविषे नानाप्रकारका जगत् देखा, तब मैं अपने कुटुंबविषे रहने लगा, पूर्वकी स्मृतिका विस्मरण किया अरु चेष्टा करत भया, षोडश वर्षपर्यंत सत् जानिकरि मैंने चेष्टा करी तब मेरे गृहविषे एक उग्रतपा नाम ऋषीश्वर मान्य करने योग्य आया, तिसका मैंने बहुत आदर किया चरण धोइकरि सिंहासनपर बैठाया अरु नाना प्रकार के भोजनकरि तिसको

तृप्त किया, तिस ऋषिने भोजन करिकै विश्राम किया तब मैंने कहा. हे परमबोधवान्! अदृष्टक्रोधको मैं जानता हौं अरु तुम परमबोधवान् हौ, तुम आपको आप ही जानते हो अरु जब तुम आये तब थके हुये थे, परंतु तुम्हारेविषे क्रोध दृष्टि न आया अरु नाना प्रकारके तुम भोजन किये, तब तुम हर्षवान् भये, इस कारणते मैंने जाना कि तुम परमबोधवान् हौ तुम्हारेविषे राग द्वेष कछु नहीं, ताते मैं एक प्रश्न संशयसंयुक्त होकरि करता हौं, तिस संशयको कृपा करि दूरि करौ. हे भगवन्! इस जगत्‌नगरविषे दुर्भिक्ष आनि पडता है अरु मृत्यु प्राप्त होती है इकट्ठे मरि जाते हैं, अरु कष्ट पाते हैं सो क्या कारण है? यह तौ मैं जानता हौं, कि जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ जीव करता है, तैसे फलको पाता है, जैसे धान्यको बोता है, तब समय पायकरि फल भी अवश्य आता है, तैसे कर्मका फल अवश्य प्राप्त होता है, सो जिसने किया है सोई भोगता है अरु इकट्ठा कष्ट क्योंकरि आनि प्राप्त होता है. उग्रतपा उवाच–हे साधो! प्रथम सुन, कि जगत् क्या वस्तु है, यह जगत् कारणविना उत्पन्न भया है, जो कारणविना दृष्टि आवै सो भ्रममात्र जानिये, ताते तू विचारकरि देख कि यह जगत् क्या है अरु तू कौन है अरु इसविषे क्या है अरु इसका अंत परिमाण कहांलग है? हे व्याध! यह जगत् स्वप्नमात्र है, अरु यह शरीर भी स्वप्नमात्र है, तू मेरा स्वप्ननगर है अरु मैं तेरा स्वप्ननगर हौं, सब जगत् स्वप्ननगर है, कारण कार्य कोऊ नहीं, सब आभासमात्र है, आभासविषे कछु अपर वस्तु नहीं होती, ताते सब जगत् आत्मस्वरूप है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र होता है, तौ सर्प कछु नहीं जेवरी होती है, तैसे सब जगत् चिन्मात्ररूप है, तिसविषे कछु बना नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अहं होकरि इस प्रकार चेतनता संवेदन फुरती है, तब जगत्‌आकारका स्मरण होता है, जैसे जैसे संकल्प फुरता है तैसा तैसा जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि नानाप्रकार हो भासती है, परंतु अनुभवते इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर भासता है, सो अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे यह जगत् भासता है, जिस संवित्‌विषे अपना

स्वरूप स्मरण होता है, तिसको जगत् कारण कार्यरूप भासता है, सोई जीव है, जिस संवित्को कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है, तिसको तिन कर्मका फल नहीं लगता, कर्तव्य दृष्टि भी आता है, परंतु उसके हृदय-विषे कर्तव्यका अभिमान नहीं स्पर्श करता अरु जिसके हृदयविषे कर्तव्यका अभिमान होता है तिसको फल भी होता है. हे साधो! यह जो सृष्टि है, तिसका एक विराट् पुरुष है, तिसका शरीर है अरु यह विराट् भी अपर विराट्के संकल्पविषे है, यह विराट् उस विराट्का रोमांच है, जब विराट् पुरुषके अंगविषे क्षोभ होता है अरु जीवकी पापवासना इकट्ठी आनि उदय होती है, जब वासना अरु अंगका क्षोभ इकट्ठा होता है, तब तिस स्थानविषे उपद्रव कष्ट होता है, जैसे वनविषे बहुत वृक्ष होते हैं, तिनपर वज्र आनि पडे, तिसकरि सब चूर्ण हो जावें, तैसे इकट्ठे पापकरि तैसे इकट्ठे ही मारि जाते हैं अरु इकट्ठे दुर्भिक्षकरि कष्ट पावैं जैसे किसी पुरुषके अंगपर माखी लडैं तिसकरि वह अंग कँपता है, उस अंग कँपनेकरि रोम कँपने लगि जाते हैं अरु जो सर्पादिक जीव कहूँ दंशता है तौ सारा शरीर कष्ट पाता है अरु सब रोम कष्ट पाते हैं, तैसे यह जगत् विराट् पुरुषका शरीर है, जब किसी नगरविषे पाप उदय होता है, तब एक रोमरूपी नगरजीव कष्ट पाते हैं अरु जो सारे अंगरूपी देशविषे पाप आनि उदय होता है, तब सर्पके काटनेवत् सारा शरीर विराट्का क्षोभवान् होता है, तिसके शरीर ऊपर रोमरूपी जीव सब कष्ट पाते हैं, केवल आत्मसत्ता अनुभवरूप है, तिसके प्रमादकरि यह आपदा दृष्टि आती है, कि यह जगत् कारणते उपजा होता तौ सत् होता, सो तौ कारणते उपजा नहीं सत् कैसे होवै, इस जगतविषे सत्प्रतीति करनी यही अज्ञान है. हे साधो! इस आकाशका कारण कोऊ नहीं, पृथ्वीका कारण कोऊ नहीं, अविद्याका कारण भी कोऊ नहीं, स्वयंभू भी अकारण है, स्वयंभू तिसका नाम है, जो अपने आपकरि प्रगट है, तिसका कारण कौन होवै, जल अग्नि वायुका कारण भी कहूं नहीं, जो तू कहै, सबका कारण आत्मा है, तौ आत्मा निमित्तकारण कहैगा, अथवा समवायिकारण कहैगा, सो प्रथम पक्ष निमित्तकारण कहिये तौ नहीं बनता, काहेते कि आत्मा

अद्वैत है, जो दूसरी वस्तु नहीं तौ निमित्तकारण किसका होवै अरु समवायिकारण कहिये तौ भी नहीं बनता, काहेते कि समवायिकारण आप परिणामीकरि कार्य होता है, सो आत्मा अच्युत है, अपने स्वरूपको त्यागता नहीं, सो समवायिकारण कैसे होवै, ताते आत्माविषे कारण-कार्यभाव नहीं, बहुरि जगत् किसका कार्य होवै, हे अंग! जो कारणते दृष्टि आवै तिसको जानिये कि भ्रममात्र भासता है अरु जो तू कहै कारणबिना पिंडाकार नहीं होते, कहूँ कारण भी होवैगा, तौ हे अंग! जो यह पुरुष देहको त्यागता है अरु परलोक जाय देखता है, कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है, उस शरीरका कारण कौन कहैगा, वह तौ कारणते नहीं उपजा, भ्रममात्र है, तैसे यह भी भ्रममात्र जान, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आकार भासि आते हैं, सो किसी कारणते नहीं उपजे, जैसे आकाशविषे तरुवरे अरु रंग भासते हैं सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् भ्रममात्र है, जैसे बालकको अणहोता वैताल भासता है, तिसकरि भयमान होता है, तैसे यह जगत् अणहोता स्वरूपके प्रमादकरि भासता है, वास्तवते परमात्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, सोई संवेदनकरिकै जगत्रूप हो भासती है, ताते जगत् वही रूप है, जैसे वायु चलने ठहरनेविषे एक ही रूप है, परंतु चलनेकरि भासता है, ठहरनेकरि नहीं भासता, तैसे चित्तसंवित् फुरणेकरिकै जगत् आकार हो भासती है, तिसविषे नानाप्रकारके शब्द अर्थ दृष्टि आते हैं अरु जब फुरणेते रहित होती है, तब अपने स्वभावको देखती है, जब संकल्पकी दृढता हो गई तब कारण कार्य भासने लगा, जिसको कारणकार्य सहित भासता है तिसको जगत् सत् भासता है अरु जिसको कारणकार्यते सहित भासता है तिसको जगत् आत्मरूप है, जिसको कारणकार्यबुद्धि है, तिसको वही सत् है, पुण्य करैगा तब स्वर्गसुख भोगैगा, पाप करैगा तब नरकदुःख भोगैगा, ताते उसको पुण्य करना भला है, जब जीवके पाप इकट्ठे आनि होते हैं, तब दुर्भिक्ष पडता है अरु मृत्यु आती है, जैसे पत्थरकी वर्षा होवै, तैसे कष्ट पाते हैं अरु जो मेरा निश्चय पूछैं तौ न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख है, न जगत् है, जब स्वरूपके प्रमादकरिकै अहंता उदय होती

है, तब नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब प्रमाद निवृत्त होता है तब सब आत्मारूप भासता है, ताते तू सर्व कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तब सर्व संशय मिटि जावैंगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० स्वप्नविचारो नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५७ ॥

अष्टपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५८.

रात्रिसंवादवर्णनम् ॥

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर उपदेश करत भया, तिसकरि मैं अपने स्वभावविषे स्थित हुआ अरु अकृत्रिम पदको प्राप्त हुआ, उग्रतपाके साथ मानौ विष्णु भगवान् उपदेश करने आनि बैठा है, तिसके उपदेशकरि मैं जागा, जैसे कोऊ रजकरि वेष्टित स्नान करिकै उज्ज्वल होवै, तैसे मैं हुआ, अपनी पूर्वस्मृति अरु अवस्थाको स्मरण करत भया, समाधिवाले शरीरको भी जाना अरु आत्मवपुको भी जाना, सो उग्रतपा यह तेरे पास बैठे हैं. अग्निरुवाच–हे राजन् ! जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा, तब वधिक विस्मयको प्राप्त भया अरु कहा, हे मुनीश्वर ! बडा आश्चर्य है, जो तुम कहते हौ कि स्वप्नविषे मुझको उग्रतपाने उपदेश किया था, बहुरि जाग्रत्‌विषे कहते हौ कि यह बैठा है, सो यह वार्त्ता तुम्हारी कैसे मानिये, जैसे बालक अपने परछाये-विषे वैताल कल्पै अरु कहै, प्रत्यक्ष बैठा है, जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता तैसे तुम्हारा वचन स्पष्ट नहीं भासता, यह अपूर्व वार्त्ता सुनिकरि मुझको संशय उपजा है, सो तुम दूर करौ. मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! यह बात आश्चर्यके उपजावनेहारी है, परंतु जैसा वृत्तांत हुआ है, सो संक्षेपते तुझको कहता हौं, सो सुन, जब उग्रतपाने मुझको उपदेश किया, तब मैंने कहा. हे भगवन् ! तुम यहां विश्राम करौ, जिस प्रकार मैं रहता हौं, तैसे तुम रहौ, तब रहने लगा अरु मैं उसका उपदेश पायकरि विचारत भया कि यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी

मिथ्या है, इसके सुखनिमित्त मैं क्या यत्न करता हौं, इंद्रियां तो ऐसी ही हैं, जैसे सर्प होते हैं, इनके सेवनेवाला संसाररूपविषे बंधनते कदाचित् मुक्त नहीं होता, मेरे जीनेको धिक्कार है, सो महामूर्ख हैं, मृगकी नाईं मरुस्थलके जलपान करनेनिमित्त दौडते हैं अरु थक पडते हैं, सो तृप्त कदाचित् न होवैंगे, सो मैं अविद्याकरिकै सुखके निमित्त यत्न करता था, इनकरि तृप्ति कदाचित् नहीं होती. हे वधिक ! ममताका रूप बांधव है, सो चरणविषे जंजीर है, अंधकूपविषे गिरनेका कारण है, तिनसाथ बांधा हुआ इंद्रियोंके विषयरूपी कूपविषे मैं गिरा था, विचार किया कि जो बंधनका कारण कुटुंब है, तिसको मैं त्यागि जाऊं, बहुरि विचार किया कि इनके त्यागविषे भी सुख नहीं प्राप्त होता, जब अविद्याको नष्ट करौं. हे वधिक ! ऐसे विचार करि मैं गुरुके पास गया अरु मनविषे विचारा कि जगत् भ्रममात्र है, गुरु भी स्वप्नमात्र हैं, इनसों क्या प्राप्त होना है, बहुरि विचार किया कि यह ज्ञानवान् पुरुष हैं, इनको अहंब्रह्मका निश्चय है, ताते यह ब्रह्मस्वरूप हैं, कल्याणमूर्ति हैं इनसों जाय प्रश्न करौं अरु पूछौं तब मैं जायकरि प्रणाम किया अरु कहा, हे भगवन् ! उस अपने शरीरको देखि आऊं अरु इसके शरीरको भी देखौं कि कहां है, जो इस जगत्का विराट् पुरुष है. हे वधिक ! जब इस प्रकार मैंने कहा तब ऋषिने हँसिकरि मुझको कहा, हे ब्राह्मण ! वह तेरा शरीर कहां है, वह शरीर दूर गये हैं, अब कहां देखैगा, आपे तू जानैगा, तब मैं हाथ जोडिकरि ऋषिको कहा, हे ऋषि ! अब मैं जाता हौं, मेरे आनेपर्यंत तुम यहां बैठे रहना. हे वधिक ! ऐसे कहकरि मैं आधिभौतिक देहके अभिमानको त्यागिकरि अंतवाहक शरीरसाथ उडा, तब आकाशमार्गविषे मैं उडता उडता थका, परंतु शरीर कहूँ न पाये, तब बहुरि ऋषिपास आया. अरु कहा—हे पूर्व अपरके वेत्ता, भूतभविष्यके जाननेहारे ! वह दोनों शरीर कहां गये, न इस सृष्टिके विराट्का शरीर भासता है, जिसके स्कंध मार्ग राह हम आये थे अरु न अपना शरीर भासता है. हे संशयरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य ! सो कहहु. उग्रतपा उवाच—हे कमलनयन ! अरु तपरूपी कमलकी खाणके

सूर्य, हे ज्ञानरूपी कमलके धारणेहारा विष्णुकी नाभि, हे आनंदरूपी कमलकी खाण! तू भी सब कछु जानता है अरु आत्मपदविषे जागा हुआ है अरु योगीश्वर है, ध्यान करिकै देख, जो सब वृत्तांत तुझको दृष्टि आवै. हे मुनीश्वर! यह जगत् असत्यरूप है, इसविषे स्थिर वस्तु कोऊ नहीं; तू विचारकरि देख जो शरीरकी अवस्था तुझको दृष्टि आवै अरु जो मुझसे पूछता है, तौ मैं कहता हौं. हे मुनीश्वर! जिस वनविषे तुम रहते थे, तुम्हारे शरीर वहां थे, एक कालमें तिस वनविषे अग्नि लगी, तहां जो नानाप्रकारकी वृक्ष वल्ली थी, सो सब जलि गई अरु जल भी अग्निकरि क्षोभने लगे अरु वनचारी पशु पक्षी सब जलि गये महाकष्टको प्राप्त भये, तहां तुम्हारे शरीर जलि गये, कुटी भी जलि गई. मुनीश्वर उवाच–हे भगवन्! उस अग्निसाथ जो संपूर्ण वन जलि गया तिस अग्निका कारण कौन था, जो अग्नि लग गई. उग्रतपा उवाच–हे मुनीश्वर! यह जगत् जो है, जिसविषे हम अरु तुम बैठे हैं, इसीका विराट् सोई है, जिसके शरीरविषे तुमने प्रवेश किया था अरु जिसविषे उसका शरीर है अरु तेरा समाधिवाला शरीर है, तिसका विराट् और है, वह सृष्टि उस विराट्का शरीर है. हे मुनीश्वर! उस विराट्के शरीरविषे जो क्षोभ हुआ, इस कारणते अग्नि उत्पन्न भई, शरीर अरु वृक्ष सब जलि गये; इस सृष्टिके विराट्का नाम ब्रह्मा है, तिस ब्रह्माका विराट् अपर है, तिसका विराट् आत्मा है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अपर कछु बना नहीं, जिस पुरुषको उसका प्रमाद है, तिसको उपद्रव होते भासते हैं अरु कारणकार्यरूप पदार्थ भासते हैं, तिसकरि कर्मके अनुसार दुःखसुखको भोगता है, जिसको स्वरूपका साक्षात्कार है, तिसको जगत् आत्मकरिकै भासता है, सर्व ओरते ब्रह्म भासता है. हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार वनके पशु पक्षी सब जले, तब तुम्हारी कुटीको आग लगी, कुटी अरु तुम्हारे शरीर अग्निकरि जलि गये, जिसके शरीरविषे तुमने प्रवेश किया था, सो भी जलि गया अरु तुम्हारे शिष्य भी जलि गये, उसका ओज भी जलि गया, तुम दोनोंकी संवित् आकाशरूप हो गई, वह अग्नि भी वनको जलायकरि अंतर्धान हो गई, जैसे

अगस्त्यमुनि समुद्रका आचमन करिके अंतर्धान हो गया था, तैसे अग्नि वनको जलायकरि अंतर्धान हो गये, तुम्हारे शरीरकी राख भी नहीं रही जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रतविषे दिखाई नहीं देती, तैसे तुम्हारे शरीर अदृष्ट हो गये. हे मुनीश्वर! जेता कछु जगत् दीखता है, सो सब स्वप्नमात्र है, मैं तेरे स्वप्नविषे हौं अरु जगत्का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, सो सबका अपना आप है, जगत् तिसका आभास है, जैसे संकल्पसृष्टि होती है, जैसे स्वप्ननगर होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे यह जगत् है. हे मुनीश्वर! यह जगत् तेरे स्वप्नविषे स्थित है अरु तुझको चिरकालकी प्रतीतिकरिके जाग्रत्विषे कारण कार्य नाना प्रकारका सत् होकरि भासता है. मुनीश्वर उवाच-हे भगवन्! जो यह स्वप्ननगर सत् हो गया है, तौ सब ही स्वप्ननगर सत् होवैंगे? उग्रतपा उवाच-हे मुनीश्वर! प्रथम तू सत्को जान, कि सत् क्या वस्तु है, जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब ही स्वप्ननगर हैं, इनविषे कोऊ पदार्थ सत् नहीं, इस जगत्को तू समाधिवाले शरीरकी अपेक्षाकरि असत् कहता है अरु जिसको तू जाग्रत्वपु कहता है, सो किसकी अपेक्षाकरि कहैगा, यह तौ अदृष्टरूप है क्यों, ताते इसको स्वप्न जान अरु जिस सत्ताविषे यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्न है तिसकी सत्ताको तू जान, तब तुझको सत्पदकी प्राप्ति होवै, जैसे यह जगत् आत्मसत्ताविषे आभास फुरी है, तैसे वह भी है, तू जागिकरि देख, इस अरु सबविषे भेद कछु नहीं अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आत्मरूप रत्नका चमत्कार है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि अनहोता जल भासता है, तैसे सब जगत् आत्माविषे अनहोता भासता है आत्माके प्रमादकरि सत् भासता है, तू अपने स्वभावविषे स्थित होकरि देख. मुनीश्वर उवाच-हे वधिक! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रिके समय कहता हुआ शय्यापर शयन करि रहा, जब केते कालमैंते जागा तब मैंने कहा-हे भगवन्! अपर वृत्तांत मैं पाछे पूछौंगा, परंतु यह संशय प्रथम दूर करौ कि व्याधका गुरु मुझको तुम किस निमित्त कहा? मैं तौ व्याधको जानता भी नहीं कि व्याध कौन है. उग्रतपा उवाच-

हे दीर्घतपस्वी ! तु ध्यान करिकै देख, तू तौ सब कछु जानता है जिस प्रकार वृत्तांत है तिसको जानैगा अरु जो मुझसों पूछता है, तौ मैं भी कहता हौं अरु यह वृत्तांत तौ बडा है, मैं तुझको संक्षेपते कहता हौं. हे मुनीश्वर ! तुम्हारे देशमें राजाकी बंधी अरु लोकधर्मको छोड देवैंगे, तब दुर्भिक्ष आनि पडैगा, मेघ होनेते रहि जावैंगे, लोक दुःख पावैंगे अरु मरि मरि जावैंगे, तेरा कुटुम्ब भी मरि जावैगा, कुटी भी नष्ट हो जावैगी, वृक्ष फल फूलते रहित होवैंगे, एक तू अरु मैं दोनों वनविषे रहि जावैंगे, काहेते कि हमको सुख अरु दुःखकी वासना नहीं, हम विदितवेद हैं विदितवेदको दुःख कैसे होवै. हे मुनीश्वर ! कोऊ काल तौ इस प्रकार चेष्टा होवैगी, बहुरि कुटीके चौफेर फूल फल तमालवृक्ष कल्पतरु कमल ताल इनते आदि लेकरि नानाप्रकारकी सामग्री होवैगी, बडी सुगंधि हो रहैगी, मोर अरु कोकिला आनि विराजैंगे, भँवरे कमलपर आनि गुंजार करैंगे, ऐसा विलास प्रकट होवैगा, मानौ इंद्रका नंदनवन आनि लगा है, ऐसी दशा बहुरि होवैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० रात्रिसंवादो नामाष्टपञ्चाशदधिक द्विशततमः सर्गः ॥ २५८ ॥

एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २५९.

रात्रिप्रबोधवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक ! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर मुझको कहत भया. कि हे मुनीश्वर ! इस प्रकार वह वन होवैगा, तब तू अरु मैं एक समय तप करते बैठे होवैंगे, तहां एक व्याध मृगके पाछे दौडता तेरी कुटीके निकट आवैगा, तिसको तू सुन्दर पवित्र कथा उपदेश करैगा, तिसविषे स्वप्नका प्रसंग चलेगा, तिस प्रसंगको पायकरि स्वप्न अरु जाग्रत्का वृत्तांत वह पूछैगा तिसको तू स्वप्नका प्रसंग कहैगा तिस स्वप्नप्रसंगविषे उसको परमार्थ उपदेश करैगा, काहेते कि संतका स्वभाव यह है अरु मेरे समागमका वृत्तांत उपदेश करैगा, तेरे वचनोंको

पायकरि वह पुरुष विरक्तचित्त होकरि तप करैगा, तिसकरि अंतःकरण उसका निर्मल होवैगा. अरु स्वम्रपदको प्राप्त होवैगा. हे मुनीश्वर। इस प्रकार वृत्तांत होना है सो मैंने तुझको संक्षेपते कहा है तू भी ध्यानकरि देख; तौ इस प्रकार होना है इस कारणते मैं तुझको व्याधका गुरु कहा है. हे व्याध। इस प्रकार जब उग्रतपाने मुझको कहा तब मैं सुनिकरि विस्मित भया, कि इसने क्या कहा, बडा आश्चर्य है ईश्वरकी नेति जानी नहीं जाती कि क्या होना है. हे वधिक। इस प्रकार मेरी अरु उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत हो गई तब मैं स्नान करिकै भली प्रकार उसकी प्रीति बढावनेके निमित्त टहल करी अरु वहां रहने लगा, बहुरि मैं विचारत भया कि यह जगत क्या है अरु इसका कारण कौन है, मैं क्या हौं, तब विचार किया कि यह जगत अकारण है, किसीका बनाया नहीं, स्वप्नमात्र है आत्मारूपी चंद्रमाकी जगतरूपी चांदनी है, तिसका चमत्कार है वही आत्मसत्ता ही घट पट आदिक आकार हो भासती है, ताते न कोऊ कर्म है, न क्रिया है, न कर्त्ता है, न मैं हौं, न जगत है अरु जो तू कहै क्यों नहीं, सर्व अर्थ सिद्ध होते हैं, ग्रहण त्याग सिद्ध होते हैं, तौ सुन, ग्रहण त्याग जो होता है, सो पिंडकरि होता है अरु पिंड तत्त्वका होता है, सो तौ वह पिंड न किसी तत्त्वकरि बना है, न अपर किसी मातापिताकरि, यह तौ स्वप्नविषे फुरि आया, इसका कारण कौन कहिये अरु जो कहिये भ्रममात्र है तौ भ्रमका कारण कौन है, भ्रांतिका द्रष्टा कौन है, जिस शरीरकरि दृष्टि आता था, इसका द्रष्टारूप मैं सो तौ भस्म हो गया, ताते जगत् अपर कछु वस्तु नहीं, केवल आदि अंतते रहित आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सो यह मेरा स्वरूप है, वहां यह जगत्रूप होकरि भासता है, अपर जगत कछु वस्तु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूप हैं, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, परंतु कछु अपर नहीं तैसे नानाप्रकार हो भासता है, आत्मा कछु अपर नहीं, अरु ब्रह्मसत्ता ही निराभास है आभास भी कछु हुआ नहीं केवल

चेतनसत्ता ऐसे रूप होकरि भासती है. हे वधिक ! इस प्रकार मैं विचार करिके विगतज्वर हुआ, मुनीश्वरके वचनोंकरि पर्वतकी नाईं अचल अपने स्वभावविषे स्थित हुआ, जो कछु इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त होवै तिसविषे सम रहौं, अभिलाष रहित सब अपनी चेष्टाको करौं परंतु अपने स्वभावविषे स्थित रहौं. हे वधिक ! सुख भोगनेके निमित्त न मुझको जीनेकी इच्छा है, न मरने की इच्छा है, न जीनेविषे हर्ष है, न मरनेविषे शोक है, सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, कछु संशय मुझको नहीं संपूर्ण संशय फुरणेविषे है, सो फुरणा मेरेविषे नहीं ताते संसार भी नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० रात्रिबोधो नाम एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २५९ ॥

षष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६०.

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच-हे व्याध ! इस प्रकार मैंने निर्णय किया, तब तीनों ताप मेरे नष्ट भये अरु वीतराग निःशंक हुआ, किसी पदार्थकी तृष्णा मुझको न रही अरु निरहंकार हुआ, आत्माविषे जो आत्माभिमान था सो निवृत्त हो गया, परम निर्वाण हुआ, निराधार अरु निराधेय हुआ, अपने स्वभाव आत्मत्वविषे मैं स्थित सर्वात्मा हुआ. हे वधिक ! जो कछु शरीरका प्रारब्ध आनि प्राप्त होवै तिसविषे यथाशास्त्र विचरौं, परंतु निश्चय कर्तृत्वका अभिमान न होवै अरु जगत् मुझको आत्मरूप भासै अरु तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्र है, सो आभास कछु वस्तु नहीं, चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. हे वधिक ! मुनीश्वरका कहा वृत्तांत होता गया है, तू मेरे पास आनि प्राप्त भया है, जो कछु उपदेश किया है, सो मैं तुझको कहा है, जो परम पावन सबका सार है, सो मैं उपदेश किया है, जिस प्रकार जगतके पदार्थ तू अरु मैं जाग्रत् वृत्तांत है, सो मैंने

तुझको कहा है. व्याध उवाच–हे मुनीश्वर! इस प्रकार हुआ तब तू अरु मैं अरु ब्रह्मादिक भी सब स्वप्नके हुए क्यों, सो असत् ही सत्की नाईं भासते हैं. मुनीश्वर उवाच–हे व्याध! तू अरु मैं अरु ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब जगत्के पदार्थ हैं, न यह जगत् सत् है, न असत् है, न मध्य है, अनिर्वचनीय है, काहेते जो अनुभवरूप है. हे व्याध! जो अनुभव करिकै देखिये तौ वही रूप है, जो अनुभवते भिन्न कहिये तौ है ही नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवविषे फुरती है, जो अधिष्ठानकी ओर देखिये तौ वहीरूप है, उसते इतर कहनेविषे नहीं आता. हे वधिक! जैसे कहूँ नगर देखा है अरु अब दूर है, जो स्मृति करिकै देखिये तौ भासता है परंतु कछु बना नहीं, स्मृतिमात्र है, तैसे जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब संकल्पमात्र हैं, कछु बने नहीं, तू अपने स्वभावविषे स्थित होकरि देख, तू तौ बोधवान् है, मिथ्याभ्रमविषे क्यों पडा है. हे व्याध! मैंने तुझको उपदेश किया है, तिसकरि तुझको विश्राम हुआ है, कि नहीं हुआ; जो पदपदार्थविषे विश्राम हुआ है, जो ऐसी सत्ता है, परमपदविषे क्षण भी विश्राम नहीं पाया, काहेते जो दृढ भावना नहीं हुई. हे वधिक! परमपद पानेका मार्ग यह है कि संतकी संगति अरु सच्छास्त्रको विचारणा, तिनके अभ्यासविषे दृढ अभ्यास करना, इस मार्गविना शांति प्राप्त नहीं होती, जब दृढ अभ्यास होवै, तब शांति प्राप्त होवै अरु चित्त निर्वाण हो जावै, द्वैतअद्वैत कल्पना मिटि जावैं, इसीका नाम निर्वाण कहते हैं अरु जबलग चित्त निर्वाण नहीं भया, तबलग राग द्वेष नहीं मिटता अरु जब अभ्यासके बलकरि चित्त निर्वाण हो जाता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है अरु आत्मपद प्राप्त होता है, शांत शिवपदको पाता है, जो मान अरु मोहते रहित है अरु संगका दोष जिसने जीता है, किसीके संगकरि बंधमान नहीं होता अरु अध्यात्मविचार नित करता है, सर्व कामना जिसकी निवृत्त हुई हैं अरु इष्टके रागद्वेषद्वंद्वते मुक्त है, सुखदुःखविषे सम रहता है, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो अविनाशी आत्मपदको पाता है.

इति श्रीयोग० निर्वाणप्र० उ० यथार्थोपदेशो नाम षष्ट्यधिद्विकशततमः सर्गः ॥ २६० ॥

एकषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६१.

भविष्यत्कथावर्णनम् ।

अग्निरुवाच-हे राजन् विपश्चित् ! जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा, तब वधिक बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुआ, मुनीश्वरके वचन सुनकरि मूर्त्तिवत् हो गया, जैसे कागजके ऊपर मूर्ति लिखी होती है, तैसे आश्चर्यकरि स्थित भया अरु संशयके समुद्रविषे डूबि गया, जैसे चक्रके ऊपर चढा वासन भ्रमता है, तैसे वह संशयविषे भ्रमणे लगा, मुनीश्वरका उपदेश सुना, परंतु अभ्यासविना आत्मपदविषे विश्रांति न पाई. हे राजन् ! परम वचनोंका तिसने अंगीकार न किया, जैसे राखविषे आहुति पाई निरर्थक होती है, तैसे मूर्खको उपदेश करना निरर्थक होता है, मूर्खता करिकै वह संशयविषे रहा अरु विचारत भया कि यह संसार अविद्यक है, जो मैं इसका अंत लेऊं जो मुझको आत्मपद भासे, ताते तप करौं. हे राजन् विपश्चित ! इस प्रकार विचारिकरि उठा, उठिकरि उनके पास फिरने लगा अरु पवित्र चेष्टा करने लगा, व्याधका धर्म तिसने त्याग किया, जिस प्रकार वह चेष्टा करै तैसे वह भी अधिक चेष्टा करै, बडा उग्र तप करने लगा, जब सहस्र वर्ष तप करते व्यतीत भया परंतु मनविषे कामना यही रक्खी कि मेरा शरीर बडा होवै, दिन दिनविषे बहुत भोजन बढै, मैं अविद्यक संसारका अंत लेऊं कि कहांलग चला जाता है, जब अविद्याका अंत आवैगा, तब आगे आत्माका दर्शन होवैगा तब सहस्र वर्ष उपरांत समाधिते उतरा अरु गुरुके निकट आयकरि प्रणाम किया अरु कहा-हे भगवन् ! मैं एता काल तप किया है, परंतु शांति मुझको प्राप्त नहीं भई. मुनीश्वर उवाच-हे वधिक ! तुझको उपदेश किया है, तिसका तुझने भली प्रकार अभ्यास न किया, इस कारणते तुझको शांति नहीं प्राप्त भई. हे वधिक ! मैंने तेरे हृदयविषे ज्ञानरूपी अग्निकी चिणगारी डारी थी, परंतु तुझने अभ्यासरूपी पवन करिकै प्रज्वलित न करी ताते यह भी आच्छादित हो गई, जैसे बडे काष्ठके नीचे रंचक चिणगारी आच्छादित हो जाती है. हे वधिक ! तू

न मूर्ख है, न पंडित है, जो तू पंडित होता तौ आत्मपदविषे स्थिति पाता अरु यह भी जब नष्ट नहीं होवैगा, तब अभ्यासकी दृढता होवैगी, तब वह ज्ञान अरु शांति आनि उदय होवैगी, अब जो तेरे हृदयविषे है, भविष्यत् भी होनी है सो मैं तुझको कहता हौं. हे व्याध ! यही तुझने भली प्रकार विचारा है, कि संसार अविद्यक है, इसका मैं अंत लेऊं कि कहांलग चला जाता है, इस कारणते मैं शरीर बढावौं अरु इसका अंत किसी प्रकार देखौं, अब तेरे चित्तविषे यही निश्चय है अरु आगे तेरे यह करना है, जो सौ युगपर्यंत उग्र तप करैगा, तब तुझ ऊपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होवैगा तब देवतोंसहित तेरे गृहविषे आवैगा, तुझसे कहैगा, कछु वर मांग तब तू कहैगा. हे देव ! कैसा अविद्यक जगत् है, अविद्या किसी अणुविषे है, जैसे दर्पणविषे किसी ठौर मलिनता होती है, तिसके नाश हुए दर्पण शुद्ध होता है, तैसे आत्माके किसी कोणविषे अविद्या-रूपी मलिनता है, तिसके नाश हुए उल्लंघि गये चिदात्माका साक्षात्कार मुझको होवैगा, जब अविद्यारूपी जगत्का अंत देखौंगा तब आत्मा मुझको भासैगा, मेरा शरीर घडी घडीविषे योजन पर्यंत वढता जावै,जैसे गरुडका वेग होता है, तैसे बढ़ता जावै अरु मृत्यु भी मेरे वश होवै, शरीर भी आरोग्य होवै अरु ब्रह्मांड खर्परको भी लंघि जावौं अरु जहां मेरी इच्छा होवै, तहां चला जाऊं, मुझको रोकै कोई कहूं नहीं, जब संसारका अंत देखौंगा, तब आत्माको प्राप्त होऊंगा. हे देव ! एता वर देहु, जो मेरा मनोरथ पूर्ण होवै, अपर कछु नहीं कहना. हे वधिक ! जब इस प्रकार तू वर माँगैगा तब ब्रह्माजी कहैगा कि ऐसे ही होवै तब तेरा तपकरिकै दुर्बल हुआ शरीर बहुरि चंद्रमा अरु सूर्यकी नाईं प्रकाशवान् होवैगा अरु घड़ीघड़ीविषे योजन पर्यंत बढता जावैगा जैसे गरुडका तीक्ष्ण वेगकरि चलना है, तैसे तेरा शरीर वेगकरि बढ़ता जावैगा, जैसे प्रातःकालका सूर्य उदय होता है अरु प्रकाश बढता जाता है, तैसे तेरा शरीर बढ़ता जावैगा अरु चंद्रमा सूर्य अग्निकी नाईं प्रकाशवान् होवैगा ब्रह्माजी वर देकरि अंतर्धान हो जावैगा, अपनी ब्रह्मपुरीविषे जाय प्राप्त होवैगा अरु तेरा शरीर प्रलयकालके समुद्रकी नाईं बढता जावैगा अरु

जैसे वायुकरि सूखे तृण उडते हैं तैसे तुझको ब्रह्मांड उड़ते भासैंगे, तब तेरा शरीर बढ़ता ब्रह्मांड खर्परको भी लंघि जावैगा, तिसके परे आकाश भासैगा, बहुरि ब्रह्माण्ड भासैगा, आगे बहुरि ब्रह्मांड, इसी प्रकार तू कई ब्रह्मांड लंघता जावैगा, परंतु तुझको खेद कछु न होवैगा, महाआकाशको भी तू आच्छादित कर लेवैगा तहां किसी तत्त्वका आवरण आवैगा, तिसको तू वरप्राप्त देहकरि सूक्ष्मता करिकै लंघता जावैगा. हे वधिक ! इसी प्रकार कई सृष्टि लंघि जावैगा, कैसी सृष्टि हैं जो इन्द्रजालवत् हैं जो दीर्घदर्शी हैं, सो इनको असत् जानते हैं अरु जो प्राकृत जन हैं तिनको जगत् सत् भासता है अरु ज्ञानवान्को मिथ्या भासता है, तिस मिथ्या जगत्को तू लंघता जावैगा, तहां जाय स्थित होवैगा, जहां अनंत सृष्टि फुरती भासैंगी, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग उठते हैं, तैसे तुमको सृष्टि फुरती भासैगी, परंतु जिसविषे सृष्टि फुरती है, तिस अधिष्ठानका तुझको ज्ञान न होवैगा, तहां तू देखैगा कि मैं बड़ा उत्कृष्ट हुआ हौं अरु ऐसा अभिमान तुझको उदय होवैगा, तब तपका फल वैराग्य भी आनि उदय होवैगा अरु साथ ही यह संस्कार तेरे हृदयविषे आनि फुरैगा तिसकरि शरीरका तू निरादर करैगा अरु कहैगा, हा कष्ट हा कष्ट. हे देव ! यह क्या शरीर तुझने मुझको दिया है, जगत्के अंत लेनेको मैंने शरीर बढाया था सो तौ अंत कहूँ न आया, काहेते कि अविद्या नष्ट न भई, अविद्या तब नष्ट होती है, जब ज्ञान होता है, आत्मज्ञान तब होता है, जब सच्छास्त्रका विचार अरु संतका संग होता है जो संतसंग अरु सच्छास्त्र मुझको प्राप्त होवै, तब ज्ञान उपजैगा, यह तौ मुझको ऐसा शरीर प्राप्त भया है, जो बड़ा भार उठाये फिरता हौं, अनेक सुमेरु पर्वत होवैं तौ भी इसके पास तृणवत् हैं, ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीर है, इस शरीरसाथ मैं किसकी संगति करौं अरु किस प्रकार शास्त्रका श्रवण करौं यह शरीर मुझको दुःखदायी है, ताते इस शरीरका त्याग करौं. हे वधिक ! ऐसे विचारकरि तू प्राणायाम करैगा, तिसकी धारणाकरिकै शरीरको त्यागि देवैगा, जैसे पक्षी फलको खायकरि गिटेको त्यागि देता है, जैसे इंद्रके वज्रकरि खंडित हुएते पर्वत

गिरते हैं तैसे एक सृष्टिभ्रमविषे तेरा शरीर गिरैगा, तिसके नीचे कई पर्वत नदियां जीव चूर्ण होवेंगे, तहां बड़ा खेद होवैगा तब देवता चंडिकाका आराधन करैंगे, सो चंडिका भगवती तेरे शरीरका भोजन करि जावैगी, तब सृष्टिविषे बहुरि कल्याण होवैगा, इस वनविषे जो तमाल-वृक्ष है, तिसके नीचे तू तप करेगा, यह तेरी मैंने भविष्य कही है, अब जैसी तेरी इच्छा हो तैसे करो. व्याध उवाच–हे भगवन्! बड़ा कष्ट है कि मैं एते खेदको प्राप्त होऊंगा, ताते सोई उपाय करहु, जिसकरि यह भावना निवृत्त हो जावै. मुनीश्वर उवाच–हे वधिक! जो कछु वस्तु होनी है सो अन्यथा कदाचित् कछु भी नहीं होती, जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है, जैसे चिल्लाते छुटा बाण तबलग चला जाता है जबलग उसविषे वेग होता है, वेग जब पूर्ण होता है तब पृथ्वी-पर गिर पड़ता है, अन्यथा नहीं होता, तैसे ही जैसा प्रारब्धका वेग उछलता है, तैसे ही होवैगा, जो भावी फिरनेकी शक्ति होवै जीव उपासि तौ बांया चरण दाहने करही, दाहना बांये करही, तौ ऐसे नहीं होता, तौ हुआ है सो होना है, सो यह है, ज्योतिष शास्त्रवाले जो भविष्यत् दशा आगे कहते हैं अरु तैसे ही होता है, तब उसी प्रकार होता है, क्योंकि जो होनी होती है, जो न होवै तौ क्यों कहै, ताते भावी मिटती नहीं. हे वधिक! मैंने तुझको दो मार्ग कहे हैं, जबलग इसको कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है, तबलग कर्मके बंधनते छुटता नहीं अरु जो कर्मकी कल्पना आत्माको स्पर्श न करै तौ कर्म कोऊ नहीं बंधन करता, काहेते कि उसको आत्मा अद्वैतका अनुभव होता है, द्वैतरूप कर्म दिखाई नहीं देते, सुखदुःख सर्व आत्मरूप हो जाते हैं अरु कर्म तबलग बंधन करते हैं, जबलग आत्मबोध नहीं हुआ, जब आत्मबोध होता है तब सर्व कर्म दग्ध हो जाते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० भविष्यत्कथावर्णनं नाम एकषष्ट्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥ २६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६२.

सिद्धनिर्वाणवर्णनम् ।

व्याध उवाच-हे भगवन् ! यह जो तुमने मुझको कहा, सो सुनि करिकै आश्चर्यको प्राप्त हुआ हौं, भला शरीर गिरनेते उपरांत मेरी अवस्था क्या होवैगी, जब विस्ताररूप वासना शरीर आकाशरूप होवैगा. मुनीश्वर उवाच-हे वधिक ! तेरा शरीर गिरेगा, तब तेरी संवित् प्राणवासनासहित आकाशरूप हो जावैगी, महासूक्ष्म अणुवत हो जावैगी, तिस संवित्विषे तुझको बहुरि नानाप्रकारका जगत भासैगा, पृथ्वी देश काल पदार्थ सब भासि आवैंगे, जैसे सूक्ष्म संवितविषे स्वप्नका जगत भासि आता है, तैसे तुझको जगत् भासि आवैगा, तहां तेरी संवितविषे यह आनि फुरैगा कि मैं राजा हौं, अष्ट वर्षका हौं अरु मेरे पितामहका नाम इंद्र है अरु माताका नाम प्रद्युम्नकी पुत्री बधलेखा है अरु मेरा पिता मुझको राज्य देकरि वनको गया है अरु तप करने लगा है अरु चारों ओर समुद्रपर्यंत हमारा राज्य है. हे वधिक ! तहां तेरा नाम सिद्ध होवैगा, तहां तू कई शतवर्षपर्यंत राज्य करैगा अरु नानाप्रकारके विषयको भोगैगा. हे वधिक ! एक विदूरथनामा राजा पृथ्वीविषे होवैगा, तेरे साथ शत्रुभाव करैगा; तेरी पृथ्वीसीमा लेनेका यत्न करैगा, तब तू मनविषे विचार करैगा कि बडा सिद्ध हौं, बहुत शत वर्ष मैं निर्विघ्न भोग भोगे हैं, परंतु एक विदूरथ नामक शत्रु है, तिसका नाश करौं. हे वधिक ! तिसके मारणेनिमित्त तू सेनाको ले चढैगा, सो चार प्रकारकी सेना नाशको प्राप्त होवैगी, हस्ती घोडे रथ प्यादा चार प्रकारकी सेना है, दोनों ओरकी सेना नष्ट होवैगी अरु तुम रथते उतरिकरि परस्पर युद्ध करोगे, तुझको भी बहुत शस्त्र लगैंगे, शरीर काटा जावैगा तौ भी तू उसके सन्मुख जाय युद्ध करैगा, उसको मारैगा, टंगा काटि देवैगा, कुहाडेसाथ तिसको मारिकै बहुरि अपने गृहविषे तू आवैगा, सब दिक्पाल तुझसों भय पावैंगे तू बडा तेजवान् होवैगा, कि बडा आश्चर्य है, विदूरथको जीतिकरि तुझको यमपुरी पठाया है, बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है, तब सिद्ध

राजा कहावेगा. हे मंत्री ! इसविषे क्या आश्चर्य है, मेरे भयकरि तौ दिक्पाल भी कंपते हैं अरु प्रलयकालके समुद्र मेघवत् मेरी सेना है, किसी ओरते आदि अंत नहीं आता, विदूरथके जीतनेविषे मुझको क्या आश्चर्य है,तब मंत्री कहैगा.हे राजा ! एती सेना तेरेसाथ है,तौ क्या हुआ उस विदूरथकी स्त्रीको तुम नहीं जानते, सो कैसी देवी है, जिसके क्रोध फुरणेकरि संपूर्ण विश्व नाश हो जाती है, तिसको तिसकी स्त्री लीलाने तप करनेते वश किया है, जो वह माता सरस्वती ज्ञान शक्ति है अरु सर्व भूतके हृदयविषे स्थित है, जैसा तिसविषे कोई अभ्यास करता है सोई सरस्वती सिद्ध करती है. हे राजन् ! वह राजा अरु तिसकी स्त्री लीला सरस्वतीसों मोक्ष मांगते थे, कि किसी प्रकार हम संसारबंधते मुक्त होवैं, इस कारणते वह मोक्षभाव हुए अरु तेरी जय हुई. राजोवाच–हे अंग ! जो सरस्वती मेरे हृदयविषे स्थित है तौ मुझको मुक्त क्यों नहीं करती, मैं भी सदा सरस्वतीकी उपासना करता हौं. मंत्र्युवाच–हे राजन् ! सरस्वती जो चित्तसंवित् है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तिसकी सिद्धता होती है. हे राजन् ! तू अपनी जय ही सदा मांगता था,इस कारणते तेरी जय हुई अरु वह मुक्ति मांगता था, उसको मुक्ति हुई,उसका संस्कार पिछला उज्ज्वल था, तिसकरि मुक्त भया अरु तेरा संस्कार पिछले जन्मका तामसी था, तिस कारणते तुझको इच्छा न भई अरु शांति भी प्राप्त न भई अरु आदि परमात्मसत्तासों जो सब पदार्थ प्रगट हुए हैं सो सुन, केवल जो आत्मसत्ता निष्किंचन पद है सो सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, तिसविषे चेतनता संवेदन फुरती है, अहम् अस्मि जो मैं हौं, इस भावनाका नाम चित्त है, तिस चेतनताने देह, इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पा है, तिस कल्पनाकरि विश्व चित्तविषे स्थित है अरु चित्त आत्मासों फुरा है, प्रमादकरिकै देहादिक कोऊ कल्पा है. राजोवाच–हे साधो ! आत्मा तौ निष्किंचन केवल पद निर्विकार है, तिसविषे तामसी देह कहांते उपजी. मंत्र्युवाच–हे राजन् ! जैसे स्वप्नविषे प्रमादकरिकै तामसी वपु दृष्टि आता है, परंतु है नहीं, तैसे यह आकार भी दृष्टि आते हैं,

परंतु हैं नहीं, अज्ञानकरिकै भासते हैं, ताते तुझको प्रमाद हुआ है, तब वासनाके अनुसार जन्म पाता फिरा है, इस प्रकार तेरे बहुत जन्म बीते हैं, परंतु पिछला शरीर जो तुझने भोगा है, सो महातामसी था, अर्थ यह जो तामस तामसी था इस कारणते तुझको मोक्षकी इच्छा न भई. हे राजन्! तेरे बहुत जन्म बीते हैं तिनको मैं जानता हौं, तू नहीं जनता. राजोवाच--हे निर्मल आत्मा ! तामस तामसी किसको कहते हैं ? मंत्र्युवाच-हे राजन्! एक सात्त्विक सात्त्विकी है, एक केवल सात्त्विकी है; एक राजस राजसी है, एक केवल राजसी है, एक तामस तामसी है, एक केवल तामसी है, सो भिन्न भिन्न सुन. हे राजन्! जो निर्विकल्प अचेतन चिन्मात्रसत्तासों संवित् फुरी है, तिसकी अहं-प्रतीति अधिष्ठानविषे रही है, अपर निश्चयको नहीं प्राप्त भई, अनात्म-भावको स्पर्श नहीं किया, ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं सो सात्त्विक सात्त्विकी हैं अरु जिनको विभूति सात्त्विकी पदार्थ भासने लगे हैं अरु स्वरूपका प्रमाद है, बुद्धिसाथ स्पर्श किया भी अरु न किया भी सो केवल सात्त्विक है अरु जिसकी संवितको बुद्धिसाथ संबंध हुआ अरु नाना-प्रकारके राजसी पदार्थविषे सत्यप्रतीति हुई है अरु राजस कर्मविषे दृढ अभ्यास है, तिसके अनुसार शरीरको धारते चले गये स्वरूपकी ओर नहीं आये, चिरपर्यंत ऐसे रहे, सो राजस राजसी फुरणा है अरु जिनको बोधविषे अहंप्रतीति भई, स्वरूपका प्रमाद है अरु जगत् सत्य भासता है, राजसी पदार्थविषे अधिक प्रतीति है, राजसी कर्मका अभ्यास है तिसके अनुसार जन्म पाते हैं बहुरि शीघ्र ही स्वरूकी ओर आवें तिनका नाम केवल राजसी है सो राजस राजसीते श्रेष्ठ है अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद है अरु जगत्विषे सत् प्रतीति हुई है तिस जगत्विषे जो तामस कर्म हैं तिन कर्मविषे दृढ अभ्यास हुआ है तिसकरि महामूढ जन्मको पाते चिरपर्यन्त चले जाते हैं दैव-संयोगते कभी मोक्षकी संगति आनि प्राप्त होती है तौ भी त्यागि जाते हैं सो तामस तामसी हैं अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआ है अरु तामसी कर्मकी रुचि है अरु तिन कर्मके अनुसार जन्म पाते

जाते हैं, पाते पाते जो इष्टि पडा; तामसी कर्मको त्यागिकरि मोक्ष-परायण हो गया सो केवल तामसी है, तामस तामसीते श्रेष्ठ है. हे राजन्! तू तामस तामसी था, इस कारणते सरस्वतीसों तू अपनी जय ही मांगता रहा, मोक्षका अभ्यास तुझने न किया. राजोवाच–हे निर्मलचित्त मंत्री! मैं तामस तामसी था इस कारणते मोक्षकी इच्छा न करी, परंतु अब मुझको सोई उपाय कछु कहे जिसकरि मेरा अहं-भाव निवृत्त होवै अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै. मंत्र्युवाच–हे राजन्! निश्चयकरि जान जो कोऊ जैसे पदार्थकी इच्छा करता है तिसको वह पदार्थ प्राप्त होता है अरु जिसकी भावनाकरि अभ्यास करता है, वह पदार्थ निःसंदेह प्राप्त होता है अरु जिसका दृढ अभ्यास करता है वही रूप हो जाता है; ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं, जो अभ्यासके वशते न पाइये, जो प्रथम दिनविषे कोऊ विकर्म कारूते हुआ है अरु अगले दिन शुभ कर्म करै तब वह विकर्म लोप हो जाता है, शुभ कर्म ही सुख हो जाता है, इसते जब तू आत्मपदका अभ्यास करैगा तब तुझको आत्मपद प्राप्त होवैगा, तेरा जो तामस तामसी भाव है सो निवृत्त हो जावैगा. हे राजन्! जो पुरुष किसी पदार्थ पानेकी इच्छा करता है अरु हटिकरि फिरै नहीं, तो अवश्य तिसको पाता है, देह इंद्रियोंका अभ्यास इसको दृढ हो रहा है, तिसकरि बहुरि बहुरि देह इंद्रियोंको पाता है, जब तिनते उलटिकरि आत्माका अभ्यास करै तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, देह इंद्रियोंका वियोग हो जावेगा, ताते सदा आत्मपदका अभ्यास करहु, तिसकरि आत्मपद प्राप्त होवैगा. मुनीश्वर उवाच–हे वधिक! इस प्रकार तू सिद्ध राजा होवैगा अरु मंत्री तुझको उपदेश करैगा, तब तू राज्यका त्याग करैगा अरु वन-विषे जावैगा, उपदेश करनेवाला मंत्री अरु अपर मंत्री सेनायुक्त तुझको कहैंगे कि तू राज्य कर. सब कहि रहैंगे परंतु तेरा चित्त विरक्त होवैगा, राज्यको अंगीकार न करैगा, तिस वनविषे संतका स्थान होवैगा, तहां जायकरि तू स्थित होवैगा, परम विरागसंपन्न होवैगा तब उनका कथाप्रसंग तुझको स्पर्श करैगा अरु संतते कछु मांगिये नहीं

तौ भी अमृतरूपी वचनोंकी वर्षा करते हैं, जैसे पुष्पते सुगंधि माँगिये नहीं तौ भी प्राप्ति होती है, तैसे सज्जनते माँगेविना भी अमृत प्राप्त होता है, जब संतके अमृतवचन सुनता है तब इसको विचार उत्पन्न होता है कि मैं कौन हौं अरु यह जगत् क्या है अरु जगत् किससे उपजा है तब तू उनके हृदयको पायकरि इस प्रकार जानैगा कि मैं अचेतन चिन्मात्रस्वरूप हौं अरु जगत् मेरा आभास है अरु चित्तका फुरणा ही जगत्का कारण है, सो चित्त ही मेरेविषे नहीं तौ जगत् कैसे होवै, जगत् भी मेरेविषे है नहीं मैं अपने ही आपविषे स्थित हौं. हे वधिक! इस प्रकार सर्व अर्थते मनको शून्य करिकै अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब परमानंद निर्वाणपदको प्राप्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सिद्धनिर्वाणवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६३.

विपश्चिद्देशांतरभ्रमवर्णनम्।

मुनीश्वर उवाच–हे वधिक! इस प्रकार तेरी भावी है, सो सब मैंने तुझको कही है, आगे जो भला जानता है सो तू कर. अग्निरुवाच–हे राजा विपश्चित्! इस प्रकार मुनीश्वरने वधिकको कहा तब वधिक आश्चर्यको प्राप्त हुआ अरु वहांते उठि खडा हुआ, मुनीश्वरसहित स्नानको गये अरु दोनों तप करैं अरु शास्त्रको विचारैं, जब केता काल व्यतीत भया तब मुनीश्वर निर्वाण हो गया, तहां वधिक ही तप करनेको समर्थ भया, कि किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट होवै. हे राजा विपश्चित्! सौ युगपर्यंत वधिकने तप किया तब ब्रह्माजी देवतोंको साथ लेकरि आया अरु कहा कछु वर माँग, तब उस वधिकने कहा, मेरा शरीर बडा होवै, मैं अविद्याको देखौं. हे राजन्! वधिक जानत भया कि इस वर माँगेते मेरा भला नहीं परंतु दृढ भावनाके बलते जानिकरि यही वर माँगा, कि मेरा शरीर बडा होवै घडीघडीविषे योजनपर्यंत बढे,

तब ब्रह्माजीने कहा ऐसे ही होवैगा, इस प्रकार कहिकरि ब्रह्माजी अंतर्धान होगये, तब उसका शरीर बढने लगा, एक घडीमें एक योजन बढै, कल्पपर्यंत उसका शरीर बढने लगा, कई ब्रह्मांडपर्यंत चला गया, जिस ओरको देखौं तिस ओर अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं, अविद्यारूप जब थका तब फिरा, जो अविद्याका अंत तौ नहीं आता इस शरीरको मैं कहां लग उठाये फिरौं, इसका अब त्याग करौं तब आत्मपदको प्राप्त होऊंगा. हे राजा विपश्चित ! तब प्राणको ऊर्ध्व खैंचकरि शरीरको त्यागि दिया, वही शरीर यहां आनि पड़ा है, जिस ब्रह्मांडते यह गिरा है सो हमारे स्वप्नकी सृष्टि है, अर्थ यह कि अन्य सृष्टिका था, स्वप्नवत् इस सृष्टिविषे इनकी प्रतिमा आनि पडी है अरु यहां जाग्रत् सृष्टिविषे आनि पड़ा है, तिसते पृथ्वी पहाड सब नाश करिडारे हैं अरु जहांते गिरा है, तहां आकाशविषे तरुवरेकी नांई उनको भासता था अरु यहां इसप्रकार गिरा है, जैसे इंद्रका वज्र होता है. हे विपश्चित्विषे श्रेष्ठ ! वही वधिकका महाशव था, जब उसका शरीर गिरा तब भगवतीने उसका रक्तपान करा, तिसकरि इसका नाम रक्ता भगवती हुआ अरु अपर जो शरीरकी सामग्री रही सो मेधा पृथ्वी भई, जब चिरकाल व्यतीत भया तब मृत्तिका पृथ्वी हो गई, तिस पृथ्वीका नाम मेदिनी पडा अरु ब्रह्माजीने जो नूतन सृष्टि रची है, तिस पृथ्वीपर अब कल्याण हुआ है, अब जहां तेरी इच्छा होवै तहां तू जावै, मैं भी अब जाता हौं,इंद्रको हुता यज्ञ करना है तिसने मेरा अवाहन किया है तहां मैं जाता हौं. व्यास उवाच–हे राजा दशरथ ! इस प्रकार मुझको कहकरि अग्नि देवता अंतर्धान हो गया,जैसे महाश्याम मेघते सौदामिनी चमत्कार करिके अंतर्धान हो जाती है तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, तब मैं वहांते चला, एक सृष्टिविषे गया, तहां अपर प्रकारके शास्त्र अरु अपर प्रकारके प्राणी थे, बहुरि आगे अपर सृष्टिविषे गया तहां ऐसे प्राणी देखे, जिनकी टांगें काष्ठकी अरु आचार मनुष्यका था, आगे अपर सृष्टिविषे गया, उसके शरीर पाषाणके अरु दौड़ते हैं, व्यवहार करते हैं; तिसके परे अपर सृष्टिविषे गया तहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्ति थीं;

तिसते आगे गया तहां क्या देखौं, प्राणी बैठे ही रहैं, बोलते वार्त्ता करते हैं परंतु खानपान कछु नहीं करते. हे राजा दशरथ ! इस प्रकार मैं चिरकालपर्यंत फिरता रहा परंतु अविद्याका अंत कहूँ न आया तब मैंने विचार किया कि आत्मज्ञानी होऊं तब अंत आवैगा, अपर किसी प्रकार अंत न आवैगा इस प्रकार विचार करिकै मैं एक वनविषे गया अरु ज्ञानकी सिद्धताको तप करने लगा, जब केताक काल तप किया तब चित्तविषे यह इच्छा उपजी कि, किस प्रकार संतके निकट जाऊं तिसकी संगतिकरि मुझको शांतपद प्राप्त होवैगा. हे राजन् ! ऐसे विचार करि मैं वहांते चला, कल्पवृक्षके वनविषे आया तहां एक पुरुष मुझको मिला तिसने कहा–हे साधो ! कहां चला है ? मेरे निकट तौ आउ, तब मैंने उसको कहा तू कौन है ? तब उसने कहा मैं तेरा तप हौं, जो तैंने किया है, अब जो कछु वर तू मांग सो मैं तुझको देऊं तब मैंने कहा कि–हे साधो ! मेरी इच्छा यही है, कि मैं आत्मपदको प्राप्त होऊं तब उसने कहा–हे साधो ! अब तुझे एक जन्म अपर मृगका पाना है, वह शरीर तेरा अग्निविषे जलैगा तब तू मनुष्यका शरीर पावैगा अरु ज्ञानवान्की सभाविषे जावैगा, तिस सभाविषे जब तू मनुष्यशरीर धारैगा अरु ज्ञानवान्की सभाविषे जावैगा, तिस तेरे तांई सब जन्मकी अरु क्रियाकी स्मृति हो आवैगी अरु तुझको स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, तू अब मृगशरीर धारु. हे राजा दशरथ ! इस प्रकार जब उसने कहा तब मैंने चिंतवना करी कि मृग होऊं, तब स्वप्नरूप प्रतिभा मेरे तांई फुरी, मैं मृग हो गया, तुम्हरी सृष्टिविषे एक पहाडकी कंदराविषे विचरत भया अरु तिसका राजा शिकार खेलने चला, उसने मुझको देखा तब मेरे पाछे घोड़ा उडाया, तिसके आगे मैं दौडता जाऊं अरु घोडेका वेग तीक्ष्ण था, मुझको उसने पकड़ लिया, अपने गृहमें ले आया, तीन दिन राखा परंतु बहुत सुंदर चेष्टा देखी, तिस कारणते प्रसन्नताते यहाँ ले आया. हे राजा दशरथ ! अब मैंने मृगके शरीरको त्यागिकरि मनुष्यका शरीर पाया है, जो कछु तैंने पूंछा था सो सब तुझको कहा है.

वाल्मीकिरुवाच–हे अंग ! जब इस प्रकार विपश्चित् कह रहा था,

तब रामजीने विपश्चित्‌सों प्रश्न किया. राम उवाच—हे विपश्चित् ! वह मृग तौ अपर सृष्टिका था, यहां क्योंकरि आया. भास उवाच—हे रामजी ! जहां वह शव पडा था, वह भी अपर सृष्टिका था, एक कालमें आकाशमार्गविषे दुर्वासा ऋषीश्वर ध्यान लगाये बैठा था, तिस मार्गकरि इंद्र पृथ्वीको आया, यज्ञके निमित्त मार्गविषे जो दुर्वासा बैठा था, तिसको शव जानकरि इंद्रने चरण लगाया, तब वह समाधिते उतरकरि इंद्रकी ओर देखत भया अरु शाप दिया कि हे शक्र ! तुझने शव जानिकरि गर्व करिके मुझको चरण लगाया है ताते तेरे यज्ञको एक मृतक शव नाश करैगा, जिस स्थान पर वह पडैगा सो पृथ्वी भी नाश होवैगी जब ऐसे उस ऋषिने शाप दिया अरु इंद्र यज्ञ करने लगा, तब अपर सृष्टिते वह शव आनि पड़ा, पृथ्वी चूर्ण हो गई, वह तौ उस प्रकार गिरा अरु मैं तपरूपी मुनीश्वरके वरकरिकै मृग होकरि तुम्हारी सभाविषे आया हौं. हे रामजी ! जो असत होता तौ प्रगट न होता अरु जो सत् होता तौ स्वप्नरूप न होता, जो स्वप्नकी सृष्टिका था. हे रामजी ! तुम हमारी स्वप्नसृष्टिविषे हौ, अरु हम तुम्हारी सृष्टिके स्वप्नविषे हैं जैसे यह स्वप्नपदार्थका होना हुआ है, तैसे यह शवका होना भी हुआ है अरु मृगका भी हुआ है, जैसे यह सृष्टि है तैसे वह सृष्टि भी है, जो यह सृष्टि सत् है तौ वह भी सत् है, परंतु वास्तवते न यह सत् है, न वह सत् है, यह भी भ्रममात्र है, वह भी भ्रममात्र है, सत् वस्तु वही है, जो मनसहित षट् इंद्रियोंते अगम है, सो आत्मसत्ता है, जिसते यह सर्व है अरु जिसविषे सर्व है, ऐसी जो परमात्मसत्ता है सो परमसत्ता है, तिसविषे सब कछु बनता है. हे रामजी ! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलना क्या आश्चर्य है, छाया अरु धूप एक नहीं होती, सत अरु झूठ भी इकट्ठा नहीं होता, ज्ञान अज्ञान इकट्ठा नहीं होता, परंतु आत्माविषे इकट्ठे होते देखते हैं. हे रामजी ! जब यह पुरुष शयन करै है, तब अनुभवरूप होता है, बहुरि स्वप्नविषे स्वप्ननगर भासि आता है अरु छाया धूप भी भासि आता है, ज्ञान अज्ञान सत् झूठ भासि आते हैं, जैसे विरुद्ध पदार्थ आकाशविषे यह भास आते हैं, तैसे संकल्पसों

संकल्प मिलि जाता है, इसविषे क्या आश्चर्य है अरु सब जगत् आकाशवत् शून्य है, निराकार निर्विकार है, निराकारविषे आकार निर्विकारविषे विकार भासते हैं; यही आश्चर्य है अरु जेते कछु आकार दृष्टि आते हैं, सो वही निराकाररूप हैं, ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार होकरि भासती है, जगत्को असत् कहना भी नहीं बनता, जो असत् होता तौ प्रलय होकरि पृथ्वी आप तेज वायुकरि आकाश बहुरि प्रगट न होता, प्रलय होकरि जो बहुरि उत्पन्न होते हैं,ताते असत् नहीं, चेतनरूप आत्माहीका स्वभाव है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार होकरि भासती है. हे रामजी ! जब प्रलय होती है तब सब भूत पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, नष्ट होकरि जो बहुरि उत्पत्ति होती है, इसीते कहा है कि यह सृष्टि आत्माका आभासमात्र है अरु ब्रह्मसत्ताविषे अनंत जगत् फुरते हैं अरु अपनी सृष्टिहीको जीव जानते हैं, यह जीव सब ब्रह्मरूपी समुद्रके कणके हैं, सो अपरकी सृष्टिको अपर नहीं जानता, जैसे सिद्धकी सृष्टि अपने अपने अनुभवविषे फुरती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भिन्न भिन्न होती है, तैसे यह अपनी अपनी सृष्टि है अरु मिल भी जाती है, आत्माविषे सब कछु बनता है, जो अनादि अरु आदि इकट्ठी नहीं होती, विधि अरु निषेध इकट्ठे नहीं होते, विकार अरु निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाशविषे अरु आत्मसत्ता स्वप्नविषे इकट्ठे दृष्टि आते हैं, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है. हे रामजी ! चार सत्ता इस जगत्विषे फुरी हैं, सारथी, गोपती, समान-ब्रह्मसत्ता अरु अविद्या, तिनविषे सारथी अरु गोपतीसत्ता जिज्ञासुकी भावनाविषे भासती हैं अरु समानसत्ता ज्ञानीको भासती है अरु अविद्या अज्ञानीको भासती है, सो चारों भी ब्रह्मते भिन्न नहीं, ब्रह्महीके नाम हैं, ब्रह्मसत्ता स्वभाव चेतनताकरिकै ऐसे ही भासती है, जैसे वायु फुरणेकरिकै चलती भासती है अरु ठहरनेकरिकै अचल भासती है, तैसे चेतनता फुरणेकरिकै नाना प्रकारके कौतुक उठते हैं, फुरणेते रहित निर्विकल्प हो जाता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो तिसविषे सत् नहीं

अरु ऐसा भी पदार्थ कोऊ नहीं, जो असत् नहीं, सब समान हैं, जैसे आकाशके फूल हैं तैसे घटपटादिक हैं अरु जैसे इनके उत्थानका अनुभव होता है तैसे इनका अनुभव होता है, सब पदार्थसत्ताहीकारि सत् भासते हैं अरु जेते कछु शब्द अर्थ फुरे हैं; सो सब मिटि जाते हैं, ताते असत् हैं; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो मरिकै जन्मा नहीं तौ आनंद है, मुक्त भया अरु जो मरिकै जन्म लेता है, तौ भी अविनाशी भया, ताते शोक करना व्यर्थ है. हे रामजी! जगत्के आदिविषे भी ब्रह्मसत्ता थी अरु अंतविषे भी वही होवैगी, जो आदि अरु अंतविषे वही है,मध्यविषे भी वही जानिये ताते सब जगत् आत्मरूप है, जेते कछु शब्द हैं, सब अर्थ संयुक्त हैं, सो सर्व शब्द अरु अर्थाकार अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, ताते सब जगत् ब्रह्मरूप है जिसको यथार्थ अनुभव होता है तिसको ऐसे भासता है. अरु जिसको यथार्थका अनुभव नहीं भया, तिसको नाना प्रकारका जगत् भासता है अरु आत्माविषे जगत् कछु बना नहीं, सब आकाशरूप है; ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है अरु ब्रह्मते इतर जो कछु भासता है सो ब्रह्म-मात्र नाशरूप है, जो दृश्य पदार्थ सब नाशरूप हैं, जिसने सत् जाने हैं तिसके साथ कछु प्रयोजन नहीं, जो दूसरा कछु बना नहीं तौ मैं क्या कहौं, जिसविषे यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं,तिस अधिष्ठानको देखैं तौ सब वहीरूप भासैंगे अरु जो पुरुष स्वभावविषे स्थित है, तिसको यह वचन शोभावान् होते हैं, मैंने अनंत सृष्टि देखी हैं अरु भिन्न भिन्न उनके आचार देखे हैं, दशो दिशाको मैं फिरा हौं अरु भोग बहुत भोगे हैं, बड़ी बड़ी विभूति पाई हैं अरु देखी हैं; अनेक प्रकारकी चेष्टा करी हैं, परंतु मुझको स्वप्न प्राप्त भया, काहेते जो सब भोग पदार्थ अरु कर्म अविद्याकारिकै रचे हुये हैं, तिस अविद्याके अंत लेनेको बहुत काल फिरता रहा हौं, अनेक युगपर्यंत फिरा हौं, अंत कहूँ नहीं आया अरु वसिष्ठजीकी कृपाकारि अब मुझको स्वरूपका साक्षात्कार हुआ, अविद्या नष्ट भई है, परमानंदको प्राप्त हुआ हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विपश्चिद्देशांतरभ्रमवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६३ ॥

चतुःषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः २६४.

स्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच-हे साधो! जब इस प्रकार विपश्चितने कहा तब सायंकाल हुआ सूर्य अंतर्धान हो गया, मानौ विपश्चित्के वृत्तांत देखनेको अन्य सृष्टिविषे गया है,अरु नोबत नगारे बजने लगे, मानौ राजा दशरथकी जयजय करते हैं, तिस समय राजा दशरथने धनकरि अरु जवाहिरकरि भूषण वस्त्रकरि यथायोग्य राजा विपश्चित्का पूजन किया अरु दशरथते आदि लेकरि सब राजा वसिष्ठजीको प्रणाम करत भये अरु परस्पर प्रणाम करिकै सर्वसभासद अपनेस्थानोंको गये,स्नान किया,यथाक्रमकरिकै भोजन किया, नियम करिकै विचारसहित रात्रिको व्यतीत किया,जब सूर्यकी किरणें उदय भई,तब अपने अपने स्थानपर परस्पर नमस्कार करिकै आय बैठे, तव वसिष्ठजी पूर्वके प्रसंगको लेकरि बोले. हे रामजी! यह अविद्या अविद्यमान है अरु भासती है,यह आश्चर्य है जो वस्तु सदा विद्यमान है सो नहीं भासती अरु जो अविद्या है ही नहीं सो सदा भासती है, इसीका नाम अविद्या है. हे रामजी! आत्मसत्ता अनुभवरूप है, तिसका अनुभव होना निश्चय हो रहा है अरु अविद्यक जगत् जो कभी कछु हुआ नहीं सो स्पष्ट होकरि भासता है, यह अविद्या है. हे रामजी! सिद्ध राजाके मंत्रीका उपदेश भी तुझने श्रवण किया अरु विपश्चित्का वृत्तांत भी श्रवण किया, विपश्चित्के मुखते भी श्रवण किया, अब इस विपश्चित्की अविद्या नष्ट होती है, हमारे आशीर्वादते अरु यथार्थ वचनकरिकै अब यह जीवन्मुक्त होकरि विचरैगा, इसकी अविद्या अब नष्ट होती है, मेरे उपदेशकरि जीवन्मुक्त होकरि जहां इसकी इच्छा होवै तहां विचरै, परंतु जब आत्माकी ओर आया तब अविद्या नष्ट भई, आत्मतत्त्वको यथार्थ न जानना इसीका नाम अविद्या है, सो आत्मज्ञानकरिकै नष्ट हो जाती है, जैसे अंधकार तबलग रहता है, जबलग सूर्य उदय नहीं भया, जब सूर्य उदय होता है तब अंधकार नष्ट होता है तैसे अविद्या तबलग अनंत है, जबलग आत्माकी ओर नहीं आया, जब आत्माका साक्षा-

त्कार उदय हुआ तब अविद्याका अत्यंत अभाव हो जाता है, अविद्या अविद्यमान है, असम्यक्‌दर्शीको सत् भासती है, जैसे मृगतृष्णाका जल अविद्यमान है, विचार कियेते अभाव हो जाता है, तैसे अविद्याका भले प्रकार विचार कियेते अभाव हो जाता है. हे रामजी ! अविद्यारूपी विषकी वल्ली है, सो देखनेमात्र फूलसहित सुंदर भासती है, परंतु स्पर्श कियेते कांटे चुभते हैं अरु फल भक्षण कियेते कष्टको प्राप्त करती है, सो फूल फल क्या हैं,जेते कछु शब्द स्पर्श रूप रस गंध इंद्रियके विषय हैं, जो देखने मात्र सुन्दर भासते हैं, सो यही फूल फल हैं, जब इनको स्पर्श करता है, तब तृष्णारूपी कंटक चुभते हैं अरु इंद्रियोंके भोगनेसों राग द्वेष कष्ट प्राप्त होता है. हे रामजी ! आकाशविषे इंद्रधनुष नानाप्रकारके रंग धारे दृष्टि आता है परंतु अंतरते शून्य है, अणहोता भासता है तैसे अविद्या अणहोती भासती है, जैसे वह धनुष जलरूप मेघके आश्रय रहता है, तैसे यह अविद्या जड मूर्खके आश्रय रहती है अरु अविद्यारूप धूड है सो जिसको स्पर्श करती है, तिसको आवरण करि लेती है, जबलग अर्थ नहीं जाना तबलग भासती है, विचार कियेते कछु नहीं निकसता, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, विचार कियेते अभाव होता है, तैसे विचार कियेते अविद्या नष्ट हो जाती है अरु चंचल है अरु भासती है. हे रामजी ! अविद्यारूपी नदी है, अरु तृष्णारूपी तिसविषे जल है,इंद्रियोंके अर्थरूपी घुमरघेर हैं रागरूपी तिसविषे तँदुये हैं, जो पुरुष इस नदीके प्रवाहविषे पडा है, तिसको बडे कष्ट प्राप्त होते हैं तृष्णारूपी प्रवाहविषे बहते जाते हैं तिनको अविद्यारूपी नदीका अंत नहीं आता अरु जो किनारेके सन्मुख होकरि पारको प्राप्त हुए हैं तिनको कोऊ कष्ट नहीं होता, वैराग्य अरु अभ्यासरूपी बेड़ीपर चढे हैं जो अविद्यारूप हैं तिनविषे जो भावना करते हैं सो मूर्ख हैं, यह अविद्याका विलास है. एक ऐसी सृष्टि है, जिसविषे सैकडों चंद्रमा उदय होते है अरु सहस्र सूर्य उदय होते हैं अरु कई ऐसी सृष्टि हैं, तिनविषे जीव सदा समताभावको लिए विचरते हैं अरु सदा आनंदी रहते हैं, अरु कई ऐसी सृष्टि हैं, जो अंधकार कबहूँ नहीं होता अरु कई ऐसी

सृष्टि हैं, जहां प्रकाश अरु तम जीवके आधीन हैं; जेता कछु प्रकाश चाहे तेता ही करे, कई ऐसी सृष्टि हैं, जहां जीव न मरते हैं, न बुड्ढे होते हैं, सदा एकरस रहते हैं, प्रलयकालविषे सब इकट्ठे ही मरते हैं, कहूँ ऐसी सृष्टि हैं जहां स्त्री कोऊ नहीं कहूँ पहाडकी नाईं जीवके शरीर हैं. हे रामजी ! इनते लेकरि जो अनंत ब्रह्मांड हैं सो फुरते हैं, सो अविद्याका विलास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वायुकरि फुरते हैं वायुविना नहीं फुरते तैसे अविद्यारूपी वायुके संयोगते परमात्मरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग उठते हैं अरु मिटि भी जाते हैं. हे रामजी ! बड़े बडे मणिमय अरु मोतीमय स्वर्णमय धातुमय ऐसे जो स्थान हैं अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके तृप्तिकर्ता पदार्थ हैं, घृतरूप स्थान पदार्थ हैं अरु गन्नेके रसके समुद्र हैं, माखन दही दूधके समुद्र हैं, अमृतके तलाव हैं अरु बड़े बड़े कल्पवृक्ष तमालवृक्षते आदि लेकरि जो सुंदर स्थान हैं अरु सुंदर अप्सरा हैं अरु बडे दिव्य वस्त्र हैं, इनते आदि लेकरि जो पदार्थ हैं सो सब संकल्परूप हैं, अविद्याके रचे हुए हैं, इनकी जो तृष्णा करते हैं सो मूर्ख हैं, तिनके जीवनेको धिक्कार है. हे रामजी ! यह अविद्याका विलास है,विचार कियेते कछु नहीं निकसता, जैसे मरुस्थलविषे अणहोती नदी भासती है, विचार कियेते अभाव हो जाती है तैसे आत्मविचार कियेते अविद्याका विलास जगत अभाव हो जाता है, जिसको आत्माका प्रमाद है,तिसको देवता मनुष्य पशु पक्षी आदिक इष्ट अनिष्ट अनेक प्रकारके पदार्थ भासते हैं, कारणकार्यभावकरिकै जगत् स्पष्ट भासता है अरु जिसको आत्माका अनुभव भया है तिसको सर्व आत्मा भासता है. हे रामजी ! एक सदृष्ट सृष्टि है अरु एक अदृष्ट सृष्टि है, यह जो प्रत्यक्ष भासती है सो सदृष्ट सृष्टि है अरु दृष्ट नहीं आती सो अदृष्ट सृष्टि है, सो दोनों तुल्य हैं अरु आकाशविषे जो सृष्टिको सिद्ध रचि लेते हैं सो क्या है, संकल्पमात्र है क्योंकि उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है अरु अनेक प्रकारकी रचना है, उनकी स्वर्णकी पृथ्वी है, रत्न अरु मणिसाथ जड़ी हुई है अरु इंद्रियोंके अनेक प्रकारके विषय हैं अरु अमृतकुंड भरे हुए अरु अपने आधीन तम प्रकाश हैं अरु

अनेक प्रकारकी रचना बनी हुईहै, तौ क्या है, संकल्पमात्र है, क्योंकि तिसी प्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा संकल्प होता है,तैसी तैसी सृष्टि आत्माविषे हो भासती है. हे रामजी। सृष्टिरूपी अनेक रत्न आत्मरूपी डब्बेविषे हैं, जिस पुरुषको आत्मदृष्टि प्राप्त भई है, तिसको सर्व सृष्टि आत्मरूप है अरु जिसको आत्मदृष्टि नहीं तिसको सर्व सृष्टि जगत् भिन्न भिन्न भासता है, जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा पदार्थ हो भासता है, जेता कछु जगत् भासता है,सो सब संकल्पमात्र है,जो तुझको ऐसा तीव्र संवेग होवै,जो आकाशविषे नगर स्थित होवै, तब वही भासने लग जावै. हे रामजी। जिस ओर यह पुरुष दृढ़ निश्चय करता है, सोई सिद्ध होता है, जो आत्माकी ओर एकत्र होता है तब वही सिद्ध होता है, जो दोनों ओर होता तब भटकना होता है, जो जगत्की सत्यताको छांडिकरि आत्मपरायण हो रहे तो तीव्र भावनाकरिकै मोक्ष प्राप्त होता है, जो संसारकी ओर भावना होती है तो संसारकी प्राप्ति होती है, जैसे अभ्यास करता है सोई सिद्ध होता है अरु आदि जो सृष्टि हुई है सो अकारण है तिसविषे दूसरी वस्तु तौ कछु नहीं, वही रूप हैं,बहुरि जैसी जैसी भावना होती है तिसके अनुसार जगत् भासता है, जिसकी भावना धर्मकी ओर होती है अरु सकाम होती है तिसको स्वर्गादिक सुख भासते हैं अरु जिसकी भावना अधर्मविषे होती है तिसको नरकादिक दुःख पदार्थ भासते हैं, शुभ कर्मकरि शांतिकी इच्छा नहीं भासती सो शुभ भी दो प्रकारके हैं, एकको स्वर्गसुख भासते हैं, एकको सिद्धिकी भावना करिकै सिद्धलोक भासते हैं अरु जिसको अशुभ भावना होती है तिसको नाना प्रकारके नरक भासते हैं. हे रामजी। जब यह संवित् अनात्माविषे आत्मअभिमान करती है, तिनके कर्म विषे आपको कर्त्ता जानती है सो पाप करिकै अनेक दुःखको प्राप्त होती है, सो दुःख कहने-विषे नहीं आते,जैसे पहाड़ोंविषे भी पीसनेते बड़ा कष्ट होता है, अंगारकी वर्षाकरि जैसे कष्ट होवै, अंधे कूपविषे गिरणेकरि कष्ट होता है, परंतु स्त्रीके भोगनेकरि अंगारसाथ स्पर्श करता है, अग्निसाथ तप्त लोहेसों कंठसाथ लगता है अरु जिस स्त्रीने परपुरुषको भोगा है सो अंधे कूप-

रूप उखलीविषे खड्गरूपी मूशलकरिकै कटती है अरु जो देहअभिमानी देवता पितर अतिथिके दिये विना भोजन करता है, तिसको भी यमदूत बडा कष्ट देता है, खड्ग अरु बरछीकरि मांसको काटता है अरु प्रहार करता है; परलोकविषे क्षुधा अरु तृष्णाकरिकै कष्टवान् होता है अरु जिन नेत्रोंकरि परस्त्री देखी है तिन नेत्रोंको छुरोंका प्रहार होता है, एक वृक्ष है तिसके पत्र लगते हैं सो खड्गके प्रहारकी नाईं लगते हैं, शूलऊपर चढावते हैं, इनते आदि लेकरि तिनको कष्ट होता है अरु जो शुभ कर्म करते हैं, सो स्वर्गको भोगते हैं, ताते जैसा जैसा कर्म करते हैं तिनके अनुसार जगत्को देखते हैं, जिस जिस भावको चितते हैं सो तिसको प्राप्त होते हैं, केवल वासनामात्र संसार है, जैसा निश्चय होता है तैसा ही भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० स्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६४ ॥

पंचषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६५.

निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर अरु वधिकका वृत्तांत कहा है सो बड़ा आश्चर्यरूप है, यह वृत्तांत स्वाभाविक हुआ है, अथवा किसी कारण कार्यकरि हुआ है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! समुद्रते तरंग उठते हैं तैसे ब्रह्मविषे यह प्रतिभा स्वाभाविक उठती है, जैसे पवनविषे फुरणा स्वाभाविक होता है सो आत्माका चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होती है,सो वहीरूप है, तिसते इतर कछु नहीं, चिन्मात्रविषे जो चेतना फुरी है सो जैसी फुरी है तैसे स्थित है, जबलग इसते इतर अपर फुरना नहीं होता तबलग वही रहता है, जिस प्रतिभाकरिकै कार्यकारण भासता है, जैसे शुद्ध चिदाकाशविषे स्वप्नकी सृष्टि भासती है; तिसविषे साररूप वही है, वही चित्त चमत्कारकरिकै फुरता है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं सो समुद्ररूप हैं, तिसते इतर कछु

वस्तु नहीं तैसे जेता कछु शब्द अर्थ जगत् भासता है सो वही चिन्मात्र है, इतर कछु वस्तु नहीं, जिनको ऐसे यथार्थ अनुभव हुआ है जिनको जगत् स्वप्नपुर अरु संकल्पनगरवत् भासता है, पृथ्वी आदिक पदार्थ पिंडाकार नहीं भासते, उनको सब ब्रह्मरूप हो जाता है. हे रामजी! जो वस्तु व्यभिचारी नाशवंत है सो अविद्यारूप है अरु जो अव्यभिचारी अविनाशी वस्तु है सो ब्रह्मसत्ता है, सो ब्रह्मसत्ता ज्ञानसंवित्‌रूप है, अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागती, अनुभवकरिकै सर्वदा काल प्रकाशती है, तिसविषे अविद्या कैसे होवै, जैसे समुद्रविषे धूडका अभाव है तैसे आत्माविषे अविद्याका अभाव है, जेते कछु आकार दृष्टि आते हैं सो सब चिदाकाशरूप हैं, जैसे तू मनविषे संकल्प धारिकरि इंद्र हो बैठे अरु चेष्टा भी इंद्र जैसी करने लगे, अथवा ध्यानकरि इंद्र रचै, जैसे वह ध्यानकरि प्रतिमा सिद्ध हो आवै, तो जबलग संकल्प रहै तबलग वही भासै, जब इंद्रका संकल्प क्षीण हो जावै तब इंद्रभावकी चेष्टा भी निवृत्त हो जाती है सो संकल्पकरि वही चिन्मात्र इंद्ररूप हो भासता है, तैसे जेता कछु जगत् भासता है सो सब चिन्मात्ररूप है, संवेदनकरिकै पिंडाकार हो भासता है, जब संवेदन फुरणा निवृत्त होता है तब सब जगत् आत्मरूप भासता है अरु ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसा फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, सब जगत् तिसका चमत्कार है अरु निराकार है, जैसे समुद्रविषे तरंग समुद्ररूप होते हैं तैसे निराकार परमात्माविषे जगत् भी आकाशरूप है, इतर कछु नहीं, सर्व ब्रह्मस्वरूप है, इसका नाम परमबोध है, जब इस बोधकी दृढता होती है तब मोक्ष होता है, जिसको सम्यक् बोध होता है तिसको जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है अरु अपना आप भासता है अरु जिसको सम्यक् बोध नहीं भया, तिसको नानाप्रकारका द्वैतरूप जगत् भासता है. हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्रकरि तीक्ष्ण भई है अरु वैराग्य अभ्यासकरि संपन्न निर्मल भई है, तिसको आत्मपद प्राप्त होता है अरु जिसकी बुद्धि शास्त्रके अर्थकरि निर्मल नहीं भई तिसको अज्ञानसहित जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसको आकाशविषे ही चंद्रमा

भासते हैं अरु तरुवरे भ्रमकरिकै भासते हैं तैसे अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, जेता कछु जाग्रत् जगत् है सो स्वप्नमात्र है; जब स्वप्नविषे होता है तब स्वप्न भी जाग्रत् भासती है अरु जाग्रत् स्वप्नवत् हो जाती है अरु जाग्रत्विषे स्वप्न स्वप्न हो जाता है, जाग्रत् सत् भासती है, सो अल्पकालका नाम स्वप्न है, दीर्घकालका नाम जाग्रत् है, आत्माविषे दोनोंका तुल्य भाव होता है, जैसे क्षणविषे दो भाई जोडे जन्मते हैं, सो नाममात्र दो हैं, वस्तुते एकरूप हैं, तैसे जाग्रत्स्वप्न तुल्य ही है अरु जब यह पुरुष शरीरको त्यागता है तब परलोक इसको जाग्रत् हो जाता है अरु यह जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे स्वप्नते जाग उठा तब स्वप्नके पदार्थोंको भ्रममात्र जानता है अरु जाग्रत्को सत् जानता है, तैसे जब परलोक जाता है, तब इस जगतको स्वप्नवत् भ्रममात्र जानता है अरु कहता है, स्वप्न जैसा मैंने देखा था, वह परलोक सत् हो भासत है बहुरि वहांते गिरता है, इस लोकविषे आय पडता है तब इस लोकको सत् जानता है अरु जाग्रत् मानता है अरु वह परलोकको स्वप्नभ्रम मानता है. हे रामजी! जबलग इसको शरीरसाथ संबंध है, तबलग अनेकवार जाग्रत् देखता है अरु अनंत ही स्वप्न देखता है. हे रामजी! जैसे मृत्युपर्यंत इसको अनेक स्वप्न आते हैं तैसे मोक्षपर्यंत इसको अनेक जाग्रत्रूप जगत् भासते हैं, भ्रमांतरविषे इनकी सत्यता अरु जाग्रत्विषे स्वप्नके पदार्थ कोऊ स्मरण करता है, जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकरि अपने जन्मको स्मरण करता है अरु कहता है सब भ्रममात्र थे, तैसे यह जब जागैगा तब कहैगा, जब भ्रममात्र प्रतिभा मुझको भासी थी, न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, काहेते जो दृश्य अविद्यक बंध मोक्ष कैसा है, जब चित्तकी वृत्ति निर्विकल्प होती है तब मोक्ष भासता है अरु जबलग वासना विकल्प सत् है, तबलग बंध भासता है. हे रामजी! आत्माविषे बंध मोक्ष दोनों नहीं; बंध होवै तब मोक्ष भी होवै, बंध नहीं तौ मोक्ष कैसे होवै, बंध अरु मोक्ष दोनों चित्तसंवेदनविषे भासता है ताते चित्तको निर्वाण करु, तब सब कल्पना मिटि जावैगी, जेते कछु पदार्थके प्रतिपादन करनेहारे शब्द हैं तिनको

त्यागिकरि निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है तिसविषे स्थित होहु, जो कछु खान पान बोलना चालना सब क्रियाको करु, परंतु अंतरते परमपद पानेका यत्न करु. हे रामजी! नेतिनेतिकरि सर्व शब्दका अभाव करु, बहुरि अभावका भी अभाव करु, तिसके पाछे जो शेष रहैगा सो आत्मसत्ता परम निर्वाणरूप है तिसविषे स्थित होहु अरु जो कछु अपना आचार कर्म है सो यथाशास्त्र करु अरु हृदयते सर्व कल्पनाका त्याग करु, इस प्रकार आत्मसत्ताविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० निर्वाणोपदेशो नाम पंचषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६६.
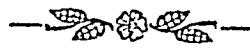
अविद्यानाशोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब चिदाकाश आत्मरूप हैं, ज्ञानवान्‌को सदा वही भासते हैं, आत्माते इतर कछु नहीं भासता, रूप दृश्य अवलोक इंद्रियां मनस्कार फुरणा इसीका नाम संसार है, सो यह भी आत्मरूप है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जैसे अपनी संवित् स्वप्नविषे रूप अवलोकन मनस्कार हो भासती है, आत्माते इतर कछु नहीं परंतु अज्ञानकरि भिन्न भिन्न भासती है अरु जो जागा है तिसको अपना आप भासता है, जैसे अपनी चेतनता ही स्वप्नपुर होकरि भासती है तैसे जगत्‌के पूर्व जो चेतनसत्ता थी वही जगत्‌रूप होकरि भासती है, अरु जगत् आत्माते कछु भिन्न वस्तु नहीं, वही स्वरूप है, जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है, तिसकरिकै तरंगरूप हो भासता है तैसे आत्माका स्वभाव चेतन है सोई आत्मसत्ता चेतनताकरिकै जगत् आकार हो भासती है, इस प्रकार जानिकरि जो परमशांति निर्वाणपद है तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी! जगत् कछु है अरु प्रत्यक्ष भासता है, असत् ही सत् होकरि भासता है, यही आश्चर्य है जो निर्किंचन है,

अरु किंचनकी नाईं होकरि भासता है, आत्मसत्ता सदा अद्वैत अरु निर्विकार है, परंतु अज्ञानदृष्टिकरिकै नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब सर्व विकारको निषेध करि असत्‌रूप जानिये तब सर्वके अभाव हुए आत्मसत्ता शेष रहती है, जैसे शून्य स्थानविषे अनहोता वैताल भास आता है तैसे अज्ञानीको अनहोता जगत् आत्माविषे भास आता है अरु जो पुरुष स्वभावविषे स्थित हुए हैं तिनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासता है, जब सच्छास्त्र अरु संतकी संगति होती है तिनके तात्पर्य अर्थविषे जब दृढ अभ्यास होता है तब स्वभावसत्ताविषे स्थित होती है अरु जिन पदार्थके पानेनिमित्त यह यत्न करता है सो मायिक पदार्थ बिजुलीके चमत्कारवत् उदय भी होते हैं अरु नष्ट भी होते हैं, यह पदार्थ विचारविना सुन्दर भासते हैं, इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं, काहेते कि उनको जगत् सत् भासता है अरु ज्ञानवान्‌को जगत्‌पदार्थकी तृष्णा नहीं होती, काहेते कि वह जगत्‌को मृगतृष्णाकी नाईं असत् जानता है अरु ब्रह्मभावनाविषे दृढ है अरु अज्ञानीको जगत्‌की भावना है, ताते ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, ज्ञानीके निश्चयको ज्ञानी ही जानता है, जैसे सोये हुए पुरुषको निद्रादोषकरिकै स्वप्न आता है तिसविषे जगत् भासता है अरु जाग्रत् पुरुष जो तिसके निकट बैठा है उसको वह स्वप्नजगत् नहीं भासता है, वह असत् है, तौ तिसके निश्चयको स्वप्नवाला नहीं जानता अरु स्वप्नवालेके निश्चयको वह जाग्रतवाला नहीं जानता तैसे ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मृत्तिकाकी सेनाको बालक सेनाकरि मानता है, जो जाननेवाले बडे पुरुष हैं तिनको सब मृत्तिकारूप भासता है, जब वह बालक भले प्रकार जानता है तब उसको भी सेना अरु वैतालका अभाव हो जाता है, मृत्तिकारूप भासती है, तैसे ज्ञानवान्‌को सब जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है. हे रामजी! जब इस पुरुषको आत्माका अनुभव होता है तब जगत्‌के पदार्थकी इच्छा नहीं रहती, जसे स्वप्नविषे किसीको मणि प्राप्त होती है तब प्रीतिकरिकै तिसको रखता है, जब जागता है तब उसको भ्रम जानिकरि तिसकी

इच्छा नहीं करता तैसे जब आत्मपदविषे जागैगा तब जगत्के पदार्थकी इच्छा न करैगा, जैसे मरुस्थलकी नदीको असत् जानता है तब उसविषे जलपानके निमित्त यत्न नहीं करता, तैसे सब जगत्को असत् जानता है तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जिस शरी-रके निमित्त यत्न करता है सो शरीर भी क्षणभंगुर है, जैसे पत्रके ऊपर जलकी बूंद आनि स्थित होती है सो क्षणभंगुर असार है, पवन लगेते क्षणविषे गिर जाती है, तैसे यह शरीर नाशवंत है, जैसे मृग धूपकरि तपा हुआ मरुस्थलकी नदीको सत् जानिकरि जलपान करने निमित्त दौडता है सो मूर्खताकरिकै कष्ट पाता है, परंतु तृप्त नहीं होता तैसे मूर्ख मनुष्य विषयपदार्थको सत् जानिकरि तिनके निमित्त यत्न करते हैं अरु कष्ट पाते हैं अरु तृप्त कदाचित् नहीं होते. हे रामजी! यह पुरुष अपना आप ही मित्र है अरु अपना आप ही शत्रु है, जब सत् मार्गविषे विचरता है अरु अपना उद्धार करता है तब पुरुष यत्नकरिकै अपना आप ही मित्र होता है अरु जो सत् मार्गविषे नहीं विचरता अरु पुरुषप्र-यत्न करिकै अपना उद्धार नहीं करता, जन्म मरण संसारविषे आपको डारता है सो अपना आप ही शत्रु है, अरु जो अपने आपको यत्नकरिकै उद्धार करता है सो अपने ऊपर दया करता है. हे रामजी! इंद्रियका विषयरूपी चीकड है, जो इसविषे गिरा हुआ है अरु अपने ऊपर निकासनेकी दया नहीं करता, सो महा अज्ञान तमको प्राप्त होता है, जो पुरुष इंद्रियोंको जीतिकै आत्मपदविषे स्थित नहीं होता तिसको शांति नहीं प्राप्त होती, जब बालक अवस्था होती है तब शून्यबुद्धि होती है अरु वृद्ध अवस्थाविषे अंग क्षीण हो जाते हैं अरु यौवन अवस्था-विषे इंद्रियोंके जीतनेको समर्थ नहीं होता तौ कब होना है, अपर जो तिर्यक् आदिक योनि हैं सो मृतकवत् हैं, यत्नका समय यौवन अवस्था है, काहेते कि, बालक अवस्था तौ जडमूढरूप है, वृद्ध अवस्था भी महानिर्बल जैसी है, तिसविषे अपने अंग ही उठावने कठिन हो जाते हैं, तौ विचारिकै क्या समर्थ होवैगा, वह तौ बालकवत् है, ताते कछु यत्न यौवन अवस्थाविषे होता है, जो इस अव-

स्थाविषे भी लंपट रहा सो महा अनिष्ट नरकको प्राप्त होवैगा. हे रामजी! विषयविषे प्रसन्न नहीं होना, यह शरीर नाशरूप है, तौ विषय किसको भोगने हैं, श्रुतिकरिकै भी जाना जाता है अरु अनुभवकरिकै भी जाना जाता है कि, यह शरीर नाशरूप है, क्यों कि इस शरीरविषे सत्भावना करिकै जो विषयके सेवनको यत्न करता है, तिसते परे मूर्ख कहूं नहीं वही मूर्ख है, ताते जब इंद्रियोंको जीतैगा तब जन्मजन्मांतरको प्राप्त न होवैगा. हे रामजी! तुम जागहु आपको अविनाशीरूप जानहु; अच्युत परमानंद जानहु, यह जगत् मिथ्यारूप भ्रम उदय हुआ है, इसको त्याग देहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अविद्यानाशोपदेशो नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६६ ॥

सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६७.

इन्द्रियजयवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच-हे भगवन्! तुम सत् कहते हौ कि, इंद्रियके जीतेविना शांति नहीं प्राप्त होती, ताते इंद्रियोंके जीतनेका उपाय कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जिस पुरुषको बडे भोग आनि प्राप्त हुए हैं अरु इन इंद्रियोंको जीता नहीं तब वह शोभा नहीं पाता, जो त्रिलोकीका राज्य आनि प्राप्त होवै अरु इंद्रियोंको जीता नहीं तिसकी उपमा भी कछु नहीं जो बडा शूरवीर है अरु इंद्रियोंको जीता नहीं तौ उसकी भी शोभा कछु नहीं अरु बडी आयुर्बल है जिसकी, चिरकालपर्यंत जीता है अरु इंद्रियां नहीं जीती तौ उसका जीना भी व्यर्थ है, जिस प्रकार इंद्रियां जीती जाती हैं अरु आत्मपद प्राप्त होता है सो प्रकार सुन. हे रामजी! इस पुरुषका स्वरूप अचिंत्य चिन्मात्र है, तिसविषे जो संवित् फुरी है तिस ज्ञान संवितको अंतःकरण दृश्य जगत्साथ संबंध हुआ है, तिसका नाम जीव है, जहांते चित्त फुरता है तहां ही चित्तको स्थित करु, तब इंद्रिय अभाव हो जावैगा, इंद्रियोंका नायक मन है,

जब मनरूपी मतवारे हस्तीको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी कुंडेसाथ वश करै तब तेरी जय होवैगी, सब इंद्रियां रोकी जावैंगी, जैसे राजाके वश कियेते सब सेना भी उसके वश हो जाती है तैसे मनको स्थित कियेते सब इंद्रियां वश हो जावैंगी. हे रामजी! जब इंद्रियोंको वश करैगा तब शुद्धआत्मसत्ता तुझको भासि आवैगी, जैसे वर्षाकालके अभावते शरत्कालविषे शुद्ध निर्मल आकाश भासता है, कुहिड अरु बादलका अभाव हो जाता है, तैसे जब मनरूपी वर्षाकालका अभाव हो जावैगा अरु वासनारूपी कुहिडका आभाव हो जावैगा, तब पाछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता भासैगी. हे रामजी! जेते कछु पदार्थ जगतविषे इष्ट भासते हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, जैसे मरुस्थलकी नदी असत्‌रूप होती है, तैसे जगत्‌के पदार्थ असत्‌रूप हैं, इनविषे तृष्णा करना अज्ञान है जो पदार्थ प्रत्यक्ष आनि प्राप्त होवैं तिनको त्यागिकरि वृत्ति आत्माकी ओर आवै, तब जानिये कि तुझको इंद्रका पद प्राप्त हुआ है अरु विषयविषे आसक्त होना ही बडी कृपणता है अरु इनते उपरत होना यही बड़ी उदारता है, ताते मनको वश कर; तब तेरी जय होवै, जैसे तप्त पृथ्वी ज्येष्ठ आषाढविषे होती है अरु चरणविषे चरणदासी चढाई, तब इसको तप्त नहीं होती अरु सब पृथ्वी शीतल हो जाती है, तैसे अपने मन वश कियेते जगत् आत्मरूप हो जाता है. हे रामजी! जिस प्रकार जनेंद्रने मनको वश किया है तैसे तू भी मनको वश करु, जिस जिस ओर मन जावै तिस तिस ओरते रोकहु, जब दृश्य जगत्‌की ओरते मनको रोकैगा तब वृत्ति संवित् ज्ञानकी ओर आवैगी, जब संवित् ज्ञानकी ओर आई, तब तुझको परम उदारता प्राप्त होवैगी अरु शुद्ध आत्मसत्ता अनुभव होवैगा, तपकरिकै संवित्‌का अनुभव होना कठिन है अरु तीर्थ दानकरिकै भी कठिन है परंतु मनके स्थिर करनेकरि अनुभवकी प्राप्ति सुगम होती है, सो मन स्थिर करनेका उपाय यही है कि संतकी संगती करनी अरु रात्रि दिन सच्छास्त्रको विचारना, सर्वदा काल इस उपायकरि मन शीघ्र ही स्थिर होता है, जब मन स्थिर हुआ तब आत्मपदका अनुभव होता है, जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है सो संसारसमुद्रविषे

डूबता नहीं अरु चित्तरूपी समुद्र है, तिसविषे तृष्णारूपी जल है अरु कामनारूपी लहरी हैं, जिस पुरुषने सम संतोषकरि इंद्रियां जीती हैं सो चित्तरूप समुद्रविषे गोते न खावैगा, इंद्रियोंको जीतिकरि जिसने आत्मपद पाया है, तिसको नानात्व जगत् बहुरि नहीं भासता, जैसे मरुस्थलकी निराकार नदीविषे लहरी भासती हैं, जब भले प्रकार निकट जायकरि विचार करि देखिये, तब लहरिसंयुक्त बहती दृष्टि नहीं आती, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, जब भले प्रकार विचारि देखिये तब नानात्व दृष्टि नहीं आता, आत्मसत्ता ही किंचनकरिके जगत्रूप हो भासती है. जैसे जल अपने द्रवता स्वभावकरिकै तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता चेतनताकरिकै जगत्रूप हो भासती है. हे रामजी! जब आत्मबोध होता है तब बहुरि दृश्यभ्रम नहीं भासता, जैसे साकाररूप नदीका भाव निवृत्त हुये बहुरि बहती है अरु जब निराकार नदीका सद्भाव निवृत्त होता है तब फेरि नदीका सद्भाव क्यों होता है, निराकार मृगतृष्णाकी नदी जब ज्योंकी त्यों जानी तब फेरि सत्य नहीं होती है. हे रामजी! वास्तवते न कर्म है, न इंद्रिय है, न कर्ता है, कछु उपजा नहीं, नानाप्रकार दृष्टि आते हैं परंतु कछु हुआ नहीं,जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी क्रिया कर्म दृष्टि आते हैं परंतु आकाशरूप हैं कछु हुआ नहीं, तैसे यह भी जान, आकाशरूप आत्माविषे आकाशरूप जगत् स्थित है, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयव अवयवीका रूप है, तैसे जगत् आत्माका रूप है, जब आत्माविषे स्थित होवैगा तब अहं त्वम् आदिक शब्दका अभाव हो जावैगा अरु द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहैगा, द्वैत अद्वैत शब्द भी बालक अज्ञानीके समुझावनेनिमित्त कहे हैं, जो वृद्ध ज्ञानवान् हैं, इन शब्दनपर हाँसी करते हैं, जो अद्वैतमात्रविषे इन शब्दोंका प्रवेश कहा है, जिनको यह दशा प्राप्त भई है तिनको न बंध है, न मोक्ष है. हे रामजी! सुषुप्ति अरु तुरीयाविषे कछु थोड़ा भेद है,जो सुषुप्तिविषे अज्ञान जड़ता रहती है अरु तुरीयाविषे अज्ञान जड़ता नहीं, चेतन अनुभवसत्तारूप

है अरु स्वप्न जाग्रत्‌विषे भी भेद नहीं परंतु एता भेद कहता है कि, अल्पकालकी अवस्थाको स्वप्न कहते हैं अरु चिरकालकी अवस्थाको जाग्रत् कहते हैं. हे रामजी! जाग्रत्, स्वप्न अरु सुषुप्ति यह तीनों स्वप्न अरु सुषुप्तिरूप हैं, जाग्रत् अरु स्वप्न यह उभय स्वप्नरूप हैं अरु सुषुप्ति अज्ञानरूप है अरु जाग्रत् जो है सो तुरीयारूप है, और जाग्रत् कोऊ नहीं, जिस जागनेते बहुरि भ्रम प्राप्त होवै तिसको जाग्रत् कैसे कहिये उसको भ्रममात्र जानिये अरु जिस जागनेते फेर भ्रमको न प्राप्त होवै तिसका नाम जाग्रत् है, स्वप्न सुषुप्ति तुरीया चारों अवस्थाविषे चेतनमात्र घनीभूत हो रहा है, सो चारोंको नहीं देखता, ज्ञानवान् जब प्राणका स्पंद रोककरि आत्माकी ओर चित्तको लगाते हैं अरु परस्पर ज्ञानमात्रका निर्णय चर्चा करते हैं अरु ज्ञानमात्रकी कथा कीर्तन करते हैं अरु तिसकरि प्रसन्न होते हैं, ऐसे जो नित जाग्रत् पुरुष हैं अरु निरंतर प्रीतिपूर्वक आत्माको भजते हैं, तिनको आत्मविषयिणी बुद्धि आनि उदय होती है, तिसकरि शांतिको प्राप्त होते हैं, जिनको सदा अध्यात्म अभ्यास है अरु अभ्यासविषे उत्तम हुये हैं तिनको आत्म-पद प्राप्त होता है, वही हांसी करते हैं, काहेते कि, उनको शांतपद प्राप्त भया है अरु जो अज्ञानी हैं सो रागद्वेषकरि जलते हैं अरु जिनको आत्माका दृढ अभ्यास हुआ है तिनको अवेदनसत्ता शांति प्राप्त होती है अरु आत्मस्थिति प्राप्त होती है, जिसके आगे इंद्रका राज्य भी सूखे तृणवत् भासता है, ऐसा परमानंद आत्मसुख है अरु सर्व जगत् तिनको आत्मरूप भासता है अरु जो अज्ञानी हैं तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे सोये हुए पुरुषको स्वप्नकी सृष्टि सत् होकरि भासती है अरु जाग्रत्‌के स्मरणवालेको स्वप्नकी सृष्टि भी अपना आपरूप भासती है अरु सत्‌रूप भासती है अरु ज्ञानवान्‌को सर्व आत्मरूप भासता है, आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता, जब आत्मअभ्यासका बल होवै अरु अनात्माके अभावका अभ्यास दृढ होवै, तब जगत्‌का अभाव हो जावै अद्वैतसत्ताका भान होवै. हे रामजी! मैं तुझको बहुत उपदेश किया है, जब इसका अभ्यास होवै तब इसका फल जो ब्रह्म-

बोध है सो प्राप्त होवै, अभ्यासविना नहीं प्राप्त होता अरु जो एक तृण लोप करना होता है तौ भी कछु यत्न होता है, यह तौ त्रिलोकी लोप करना है. हे रामजी! जैसे बड़ा भार जिसके ऊपर पडता है तब वह बडे ही बलकरि उठावता है, विना वडे बल नहीं उठता, तैसे इस जीवके ऊपर दृश्यरूपी वड़ा भार पड़ा है, जब बड़ा आत्मरूपी अभ्यासका बल होवै तब इसको निवृत्त करै, नहीं तौ निवृत्त नहीं होता अरु यह जो मैं तेरे तांई उपदेश किया है, तिसको वारंवार विचार, मैंने तौ तेरे तांई बहुत प्रकार अरु बहुत वार कहा है. हे रामजी! अज्ञानीको ऐसे बहुत कहनेकरि भी कछु नहीं होता, तुझको जो मैंने उपदेश किया है सो सर्व शास्त्रका सिद्धांत है अरु वेदका सिद्धांत है, जिस प्रकार वेदको पाठ करता है तिस प्रकार इसको पाठ करिये अरु विचारिये अरु इनके रह-स्यको हृदयविषे धारिये, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै अरु अपर शास्त्र भी इसके अवलोकनकरि सुगम हो जावैंगे, तातें नित्यप्रति इस शास्त्रको श्रद्धासहित सुनै अरु कहै, आदितें लेकरि अंतपर्यंत सुनै अरु कहै, तब अज्ञानी जीवको भी ज्ञानकी प्राप्ति अवश्य होवै, जिसने एक वार सुना है अरु कहने लगा है, जो एक वार सुनि छोड़ा है, बहुरि बहुरि क्या सुनना है, तब उसकी भ्रांति निवृत्त न होवैगी अरु जो वारंवार सुनै, विचारै अरु कहै, तब उसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, सब शास्त्रते मैं उत्तम युक्तिकी संहिता कही है, जो शीघ्र ही मनविषे आती है, ऐसी जो संहिता कही है अरु जो पुरुष मेरे शास्त्रको सुननेवाले हैं अरु कह-नेवाले हैं, तिनको बोध उदय होता है, अपर शास्त्रका जो अर्थ है सो भी सुंदरताकरिकै खुलि आता है, जैसे लोनका अधिकारी व्यंजन पदार्थ है, तिसविषे लोन पाया स्वादिष्ट होता है अरु प्रीतिसहित ग्रहण करता है, तैसे जो इस शास्त्रके सुनने कहनेवाले हैं सो अपर शास्त्रका भी अर्थ सुंदर करैंगे. हे रामजी! ऐसे न करिये कि, किसी अपर पक्षको अपना मानकर इसका श्रवण भी न करिये, जैसे किसीके पिताका खारा कुँवा था अरु तिसके निकट मिष्ट जलका कुँवा था, वह अपने पिताका कूप मानिकरि खारा ही जल पीता था, निकट मिष्ट

जलके कुँवेका त्याग करता था, तैसे अपना पक्ष मानिकारि मेरे शास्त्रका त्याग नहीं करना, जो ऐसे जानकारि मेरे शास्त्रको न सुनैगा, तिसको ज्ञान प्राप्त न होवैगा, जो पुरुष इस शास्त्रविषे दूषण आरोपण करैगा कि, यह सिद्धांत यथार्थ नहीं कहा, तिसको ज्ञान कदाचित् न प्राप्त होवैगा, वह आत्महंता है तिसके वाक्य श्रवण नहीं करने अरु जो प्रीतिपूर्वक पूजा भावकारिके श्रवण करै, विचारै, पाठ करै, तिसको निर्मल ज्ञान होवैगा अरु क्रिया भी निर्मल होवैगी, ताते नित्यप्रति विचारने योग्य है. हे रामजी ! तुझको उपदेश किया है, सो किसी अर्थके निमित्त नहीं किया, दया कारिके किया है अरु तुम जो किसीको कहौगे तौ भी अर्थविना दया कारिके कहना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० इंद्रियजयवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६८.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु हुआ नहीं; जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं फुरणा होता है, तब वही संवेदन फुरणा जगत्रूप हो भासता है, जब अधिष्ठानकी ओर देखता है तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप हो जाता है, अपने रूपको त्यागि देता है, अचेत चिन्मात्र होता है. हे रामजी ! फुरणेविषे भी वही है अरु अफुरणेविषे भी वही है, परंतु फुरणेकारि जगत् भासता है, सो जगत् भी कछु अपर वस्तु नहीं वही रूप है अरु जब संवित् संवेदक फुरणेते रहित होती है, तब अपना चिन्मात्ररूप हो जाती है, इस कारणते ज्ञानवान्‌को जगत् आत्मरूप भासता है, ब्रह्मते इतर नहीं भासता, जैसे किसी पुरुषका मन अपर ठौर गया होता है तिसके आगे शब्द होता है तौ भी नहीं भासता अरु कहता है, मैं देखा सुना कछु नहीं, जिस ओर चित्त होता है, तिसका अनुभव होता है, जैसे जिनका मन आत्माकी ओर लगता है तिनको

सब आत्मा ही भासता है, आत्माते इतर जगत् कछु नहीं भासता अरु जिनको आत्मसत्ताका प्रमाद है अरु जगत्की ओर चित्त है, तौ उनको जगत् ही भासता है. हे रामजी! ज्ञानवान्के निश्चयविषे ब्रह्म ही भासता है अरु अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् भासता है, तौ ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय एक कैसे होवै, स्वप्नविषे पुरुष है, तिसको स्वप्नका जगत् भासता है, जाग्रत्को वह जगत् नहीं भासता, उनको एक ही निश्चय कैसे होवै नहीं होता यह अर्थ है, जगत्के आदि भी ब्रह्मसत्ता थी अरु अंत भी वही रहैगी, मध्यविषे जो भासती है सो भी वही जान, आत्मसत्ता ही चेतनताकरि जगत्रूप हो भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि भी ब्रह्मसत्ता होती है अरु अंत भी ब्रह्मसत्ता होती है अरु मध्य जो भासता है सो भी वही है, आत्माते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आदि अंत मध्यविषे भी आत्माते इतर कछु नहीं अरु ज्ञानवान्को सदा यही निश्चय है, कि जगत् कछु उपजा नहीं न उपजैगा, आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, जो सर्व ब्रह्म ही है, अहं त्वं यह सब अज्ञानकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे अहं त्वम् आदिककरिकै अनुभव होता है, तौ अहं त्वम् आदिक भी कछु नहीं, सब अनुभवरूप है, तैसे यह जगत् सर्व अनुभवरूप है. हे रामजी! जैसे एक ही रस फूल फल टास वृक्ष होकरि भासता है परंतु रसते इतर कछु नहीं, तैसे नानास्वरूप जगत् भासता है परंतु आत्माते इतर कछु नहीं; जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर अपने अपने अनुभवते इतर कछु नहीं निकसता परंतु स्वरूपके विस्मरणकरिकै आकाररूप भासते हैं, तैसे यह जगत् आकार भासता है, सो ज्ञानरूपते इतर कछु नहीं, सब जगत् आत्मरूप है, परंतु अज्ञानकरिकै भिन्न भिन्न भासता है अरु यह जगत् सब अपना आपरूप है, इतर कछु नहीं, जो आत्मरूप है तौ ग्राह्यग्रहण कैसे भास होवै, यह मिथ्याभ्रम है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, घट, पट आदिक सब जगत् भ्रमरूप है, ज्ञानवान्को सदा यही निश्चय रहता है कि, अचेत चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मादिक भी कछु फुरिकरि उदय नहीं भये, ज्योंके त्यों हैं, उत्थान कछु न हुआ अरु अज्ञानीके निश्चयमें नानाप्रकारका

जगत् है,उत्पत्ति स्थिति प्रलय ब्रह्मादिक संपूर्ण हैं. हे रामजी ! यह कछु उपजा नहीं, कारणत्वके अभावते सदा एकरस आत्मसत्ता ही है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६८ ॥

ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २६९.

जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जाग्रत् अरु स्वप्नका निर्णय अब सुन, जब इस जगत्विषे सोय जाता है तब स्वप्नकी सृष्टि देखता है, उसविषे जाग्रत् होती है, जाग्रत् होकरि भासती है अरु जब तहां सोय जाता है, तब बहुरि यह सृष्टि देखता है, यही जाग्रत् हो भासती है, यहां सोयकरि स्वप्नविषे जाग्रत होती है, वहां सोयकरि यहां जाग्रत् होती है, तौ स्वप्न जाग्रत् हुआ, जाग्रत्का जाग्रत् नहीं होता, जाग्रत् जो वस्तु है सो आत्मसत्ता है, तिसविषे जागना सोई जाग्रत्की जाग्रत् है, अपर सब स्वप्नजाग्रत् है, जब यहां शयन करता है तब स्वप्नका जाग्रत् सत् होकरि भासता है, यह असत् हो जाता है अरु स्वप्नविषे वहांते शयन करता है, अर्थ यह कि स्वप्नते निवृत्त होता है अरु जाग्रत्विषे जागता है, तब वहां असत् हो जाता है,वह स्वप्न जाग्रत्विषे स्मृतिको प्राप्त होता है अरु जब जाग्रत्विषे सोया अरु स्वप्नविषे जागा, तब जाग्रत् स्वभावको प्राप्त भई अरु जबस्वप्नते उठिकरि जाग्रत्विषे आया, तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृतिभावको प्राप्त भई अरु जाग्रत् जाग्रत्रूप हुई तौ हे रामजी ! स्वप्न तौ कोऊ न हुआ, इसको सर्व ठौर जाग्रत् क्यों हुई अरु जाग्रत् तो कोऊ न हुई काहेते कि जब जाग्रत्ते स्वप्नविषे गया तब स्वप्न जाग्रत्रूप हो गया अरु जाग्रत् स्वप्न होगई अरु जब स्वप्नते जाग्रत्विषे आया तब जाग्रत जाग्रत्रूप होगई अरु जब स्वप्न जाग्रत् स्वप्नरूप होगई, तौ क्या हुआ जाग्रत् सोऊ नहीं, सब स्वप्न असत्रूप है, अपने कालविषे यह जाग्रत है अरु है स्वप्नरूप अरु जब यहांते मृतक होता है, तब यह जगत् स्वप्न-

रूप होता है, स्वप्नरूप परलोक जाग्रत् होता है, जाग्रत्स्मृति प्रत्यक्ष हो- जाती है, तौ इसविषे वह नहीं रहता अरु उसविषे वह नहीं रहता अरु जाग्रत् स्वप्न दोनोंविषे परलोक नहीं रहता अरु इस जाग्रत्विषे देखिये तौ स्वप्न अरु परलोक दोनों नहीं भासते अरु स्वप्नविषे इस जाग्रत अरु परलोक दोनोंका अभाव हो जाता है, तौ क्या सिद्ध हुआ, यह सिद्ध हुआ कि सब स्वप्नमात्र है. हे रामजी! चिरकालकी प्रतीतिको जाग्रत् कहते हैं अरु अल्पकालकी प्रतीतिको स्वप्न कहते हैं, जो आदि स्वप्न हुआ अरु तिसविषे दृढ अभ्यास हो गया, तिसकरि जाग्रत् हो भासती है, ताते जो कछु आकार तुझको सत् भासते हैं सो सब निराकार आका- शरूप हैं, कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिलोकी जगत्भ्रम उदय होता है परंतु सब आकाशरूप होता है, तैसे यह जगत्के पदार्थ अविद्याकरि साकार भासते हैं, सो सब निराकार आकाशरूप हैं, जब अधिष्ठान आत्मतत्त्व- विषे जागैगा तब सब ही आकाशरूप भासैगा अरु अद्वैत आत्मतत्त्वविषे जो ग्राह्यग्राहकभाव भासते हैं सो मिथ्या कल्पना हैं, वास्तवते कछु नहीं सब जगत् मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है, तिसविषे ग्रहण क्या करिये अरु त्याग क्या करिये, इन दोनोंकी कल्पनाको दूर करु, यह होवै, यह न होवै यह कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तब सर्व शांति प्राप्त होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २६९ ॥

सप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७०.

शिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस अर्थका जो आश्रयभूत है सो मैं तुझको कहता हौं, इस जगत्के आदि अचेत चिन्मात्र था, तिसविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति न थी अशब्दपद था, तिसविषे जानना फुरा, तिसका आभास जगत् हुआ, तिस आभासविषे जिसके अधिष्ठानकी

अहंप्रतीति रही है, तिसको जगत् आकाशरूप भासता है, वह संसारविषे डूबता नहीं, उसको अज्ञानका अभाव है जो डूबता नहीं तौ निकसता भी नहीं, अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका भी अभाव है, वह स्वतः ज्ञानस्वरूप है अरु जिनको प्रमाद हुआ है तिनको दोनों अवस्था होती हैं; जो ज्ञानवान् है तिसको जगत् आत्मरूप भासता है अरु जो ज्ञानते रहित है तिसको भिन्न भिन्न नाम रूप जगत् भासता है. हे रामजी ! आत्मा निराख्यात है, चारों आख्याततें रहित निराभास सत्ता है, चारों आख्यात तिसविषे आभास हैं, तिनके नाम सुन एक तौ आख्यात है, एक विपर्ययाख्यात है, एक असत्याख्यात है, चौथा आत्माख्यात है, आख्यात कहिये ज्ञान, जिसको यह ज्ञान है, कि मैं आपको नहीं जानता, इसका नाम आख्यात है अरु देह इंद्रियरूप आप आपको जानना इसका नाम विपर्ययाख्यात है, जगत् असत् जानना इसका नाम असत्याख्यात है अरु आत्माको आत्मा जानना इसका नाम आत्माख्यात है, यह चारों ख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्वका आभास है, आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं है. हे रामजी ! जगत् भी वही स्वरूप है अपर कछु बना नहीं, घनशिलाकी नाईं अचिंत्य स्वरूप है, इसके ऊपर एक आख्यान है सो श्रवणका भूषण है तुझको कहता हौं, सो कैसा उपाख्यान है, जो द्वैत दृष्टिको नाश करता है अरु ज्ञानरूपी कमलका प्रकाश होनेहारा सूर्य अरु परम पावन है, सो तू श्रवण कर. हे रामजी ! एक शिला बडी है, जो कोटि योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, अनंत है किसी ओरते तिसका अंत नहीं आता अरु शुद्ध है अरु निर्मल है अरु निराबाध है अर्थ यह कि अणु अणुकरि पृथक् नहीं भई अपनी सत्ताकरि परिपूर्ण है अरु बहुत सुंदर है जैसे शालग्रामकी प्रतिमा होती है तैसे सुंदर है, शलग्रामके ऊपर शंख चक्र गदा पद्मकी रेखा होती है तैसे इसके ऊपर रेखा हैं अरु वही रूप है अरु वज्रते भी क्रूर है, शिलाकी नाईं निर्विकार है अरु निराकार है, अचेतन है अरु परमार्थ है, यह जो कछु चेतनसत्ता भासती है, सो इसके ऊपर रेखा है, अनंत कल्प बीति गये हैं, परंतु तिसका नाश नहीं होता, अविनाशी है, पृथ्वी, अप, तेज, वायु,

आकाश यह सब उसके ऊपर रेखा हैं अरु आप पृथ्वी आदिक भूततें रहित है अरु शिलावत् है अरु इन रेखाओंको जीवितकी नांई चेतती है, राम उवाच-हे भगवन् ! जो वह अचेतन है अरु शिलाकी नांई निर्विकार है तब उसविषे चेतनता कहांते आई ? जिसकार जीवितधर्मा हुई, वह तौ अचेतन थी. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वह तौ न चेतन है, न जड है शिलारूप है, पत्थरते भी उज्ज्वल है अरु यह चेतनता जो तुम कहते हौ सो चेतनता स्वभावकरिकै दृष्टि आती है, जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है, तैसे चेतनता भी इसका स्वभाव है, जैसे जलते तरंग स्वाभाविक भासते हैं, तैसे इसते चेतनता स्वाभाविक भासती है, परंतु भिन्न कछु नहीं सदा अपने आपविषे स्थित है अरु किसीकरि जानी नहीं जाती अबलग किसीने जानी नहीं. राम उवाच-हे भगवन् ! किसीने उसको देखी भी है अथवा नहीं देखी अरु किसीकरि वह भंग भी हुई है कि नहीं हुई. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मैंने उस शिलाको देखी है, जो तुम भी उस शिलाको देखनेका अभ्यास करौगे तब तुम भी देखौगे, परम शुद्ध है तिसको मैल कदाचित् नहीं लगती छिद्रते रहित है, पोलते रहित है, आदि मध्य अंतते रहित है, तिसके भेदनेको न कोऊ समर्थ है अरु न वह भेदने योग्य है अरु तिसते कोऊ अन्य होवै तौ तिसको भेदै, यह जेते पदार्थ हैं सो सब उसीकी रेखा हैं, सो अनेक उसकी रेखा हैं, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, अप, तेज, वायु, आकाश, देवता, दानव, सूर्य, चंद्रमा यह उसमें रेखा हैं, उसके अंतर स्थित हैं, यह शिला महासूक्ष्म है, निराकार है, आकाशरूप है. राम उवाच-हे भगवन् ! आदि मध्य अंतते रहित है, तब तुमने कैसे देखी है सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वह अपर किसीकरि जानी नहीं जाती, अपने आप अनुभवकरि जानी जाती है, मैंने जो देखी है सो अपने स्वभावविषे स्थित होकरि देखी है, जैसे स्तंभको अणुस्तंभविषे स्थित होकरि देखै तैसे मैं तिसविषे स्थित होकरि देखी है, हम भी तिस शिलाकी रेखा हैं, ताते मैंने तिसविषे स्थित होकरि देखी है. राम उवाच-हे भगवन् ! वह कौन शिला है उसके

ऊपर कौन रेखा है ? सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! परमात्मा-रूपी शिला है अपर कौन होवै अरु मैंने तेरे तांई शिलारूप कहा है, इन वचनकरिकै शिलारूप क्यों कहा है, जो घन चेतनरूप है, उसते इतर कछु नहीं अरु अचिन्तरूप है,तिसके ऊपर पंचतत्त्व रेखा है सो रेखा भी वहीरूप है, एक रेखा बडी है, तिसविषे अपर रेखा रहती हैं सो बडी रेखा आकाश है, अपर तत्त्व आकाशविषे रहते हैं, सब पदार्थ आकाशविषे हैं, सो सब वहीरूप है, तू भी वहीरूप है,मैं भी वहीरूप हौं अपर कछु हुआ नहीं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब ब्रह्मरूप हैं, जेते कछु पदार्थ अरु कर्म भासते हैं सो सब ब्रह्मरूपी शिलाकी रेखा हैं, अपर कछु हुआ नहीं, सर्व काल-विषे ब्रह्मसत्ता ही स्थित है, नानाप्रकारके व्यवहार भी दृष्टि आते हैं परंतु वहीरूप हैं, अपर कछु है नहीं, तैसे यह भी जान, घट ,पट पहाड कंदरा स्थावर जंगम जेता कछु जगत भासता है सो सब आत्मरूप हैं, आत्मा ही फुरणेकरिकै ऐसे भासता है, जैसे जल ही तरंग लहरि होकरि भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ता ही जगत्रूप होकरि भासती है अरु जेते वह पदार्थ हैं,पवित्र अपवित्र सत असत् विद्या अविद्या सब आत्म-सत्ताहीके नाम हैं, इतर वस्तु कछु है नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! यह सर्व ही घनब्रह्मरूप है अरु चिन्मात्र घन ही यह सर्व व्याप रही है, सो परमार्थसत्ता घन शांतरूप है अरु यह भी सर्व परमार्थ घनरूप है, ताते संकल्परूपी कलनाको त्यागिकरि तिस-विषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० शिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७० ॥

एकसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७१.

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो पुरुष स्वभावसत्ताविषे स्थित भये हैं तिनको जो यह चारौं आख्यात कहे हैं, इनते लेकरि जेते शब्दार्थ हैं, सो शशेके शृंगवत् असत् भासते हैं, जगत्का निश्चय तिनविषे नहीं रहता, सर्व ब्रह्मांड तिनको आकाशवत् भासता है, आख्यातकी कल्पना भी कछु नहीं फुरती अरु जेता कछु जगत् दृष्टि आता है सो निराकार परम चिदाकाशरूप है, परम निर्वाणसत्तासों युक्त भासता है अरु तिसविषे निर्वाण हो जाता है, ताते वही स्वरूप है. हे रामजी ! जब इस प्रकार जानिकारि तू तिस पदविषे स्थित होवैगा तब बडे शब्दको करता भी तू निश्चयते पाषाण शिलावत् मौन रहैगा, देखैगा, खावैगा, पीवैगा, सूँघैगा परंतु अपने निश्चयविषे कछु न फुरैगा, जैसे पाषाणकी शिलाविषे फुरणा कछु नहीं फुरता, तैसे तू रहैगा, जो चरणोंकरि दौडता जावैगा तौ भी निश्चयकरि चलायमान न होवैगा, जैसे आकाश अचल है, जैसे सुमेरु पर्वत स्थिर है, तैसे तू भी स्थित रहैगा, क्रिया तौ सब करैगा परंतु अंतरते क्रियाका अभिमान तुझको कछु न होवैगा, स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, जैसे मूढ बालक अपने परछायेविषे वैताल कल्पता है, सो अविचार सिद्ध है, विचार कियेते कछु नहीं निकसता, तैसे मूर्ख अज्ञानी आत्माविषे मिथ्या आकार कल्पते हैं, विचार कियेते सब आकाशरूप है, बना कछु नहीं, जैसे मरुस्थलविषे नदी तबलग भासती है, जबलग विचारकरि नहीं देखता, विचार कियेते नदी नहीं रहती, तैसे यह जगत् विचार कियेते नहीं रहता, चैतन्यरूपी रत्नका चमत्कार है, चेतन आत्माका किंचन फुरणेकारिकै जगत्रूप हो भासता है. राम उवाच–हे भगवन् ! इस जगत्का कारण स्मृति मैं मानता हौं,सो स्मृति अनुभवते होती है अरु स्मृतिते अमनुव होता है, स्मृति अरु अनुभव परस्पर कारण हैं, जब अनुभव होता है, तब उसकी स्मृति भी होती है, वह स्मृति संस्कार बहुरि स्वप्नविषे जगत्रूप हो क्यों भासती

है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जगत् जो उपजा है सो किसी संस्कारकरि नहीं उपजा, जो किसी स्मृतिका संस्कार होवै सो नहीं, तब क्या है काकतालीवत् अकस्मात् फुरि आया है. हे रामजी ! यह जगत् आभासमात्र है, आभासका अभाव कदाचित् नहीं होता, काहेते कि उसका चमत्कार है, जो इतर कछु बना होवै तौ तिसका नाश भी होय, सो इतर तो कछु हुआ भी नहीं, नाश कैसे होवै यह जगत् सत् भी नहीं अरु असत् भी नहीं, अपने स्वभावविषे आत्मसत्ता स्थित है, जगत् तिसका आभास है. हे रामजी ! तू जो स्मृतिकारण कहता है सो कारणकार्यभाव आभास तहां भासते हैं जहां द्वैत है, स्वरूपविषे कछु कारणकार्यभाव नहीं, जैसे स्वप्नमें मरुस्थलविषे जल भासा, तिसविषे जल मानिकरि गया तो तू देख, आगे जायकरि उसको उस जलकी स्मृति हुई अथवा स्वप्नके व्यवहारकर्त्ताको स्वप्नांतर हुआ, तिस स्वप्नांतरविषे बहुरि जाय व्यवहार करता भया, तौ हे रामजी ! तू देख कि, उसकी स्मृति भी असत् हुई अरु जो उसने अनुभव किया सो भी असत् है तैसे यह संसार भी है, कछु भेद नहीं. हे रामजी ! ताते न जाग्रत् है न स्वप्न है, न कोऊ सुषुप्ति है, न तुरीया है, तौ क्या है, अद्वैतसत्ता सर्व उत्थानते रहित चिन्मात्र स्थित है, ताते जगत् भी वहीरूप है, जो क्रिया भी दृष्टि आती है, तौ भीकछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे अंगना कंठसाथ आय मिलती है, तब उसकी क्रिया तौ कछु साची नहीं, तैसे यह क्रिया भी साची नहीं अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया इन शब्दका अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुषको है, शशेके शृंग अरु आकाशके फूल-वत् असत् भासते हैं, जैसे वंध्याका पुत्र अरु जैसे श्याम चंद्रमा शब्द कहनेमात्र हैं, इनका अर्थ असत् है तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे पांचो अव-स्थाका होना असंभव है अथवा सर्वदाकालविषे जाग्रत् है, जाग्रत् तिसका नाम है जहां कछु अनुभव होवै सो अनुभवसत्ता सदा जाग्रत्-रूप है, जैसा पदार्थ आगे आता है तिसीका अनुभव करता है, ताते सर्वदा सर्वकाल जाग्रत् है अथवा सर्वदा काल स्वप्न है, स्वप्न उसका नाम है, जहां पदार्थ विपर्यय भासे हैं,सो जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो विप-

र्यय ही भासते हैं, विपर्ययते रहित आत्मा है,तिसविषे जो पदार्थ भासते हैं सो विपर्यय हैं,ताते सर्व कालविषे स्वप्न ही है अथवा सर्वकाल सुषुप्ति ही है सुषुप्ति तिसका नाम है, जहां अज्ञानवृत्ति होवै, सो अज्ञान कहता है मैं आपको भी नहीं जानता,न जाननेकरि सर्वदाकाल सुषुप्ति है अथवा सर्वकाल तुरीया है, तुरीया उसका नाम है जो साक्षीभूत सत्ता होवै जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाका जिसविषे अनुभव होता है सो सर्वदा काल सबका अनुभव करता है, सो प्रत्यक् चेतन है, ताते सर्वदाकाल-विषे तुरीया पद है अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीत पद है, तुरीयातीत तिसको कहते हैं जो अद्वैतसत्ता है, जिसके पास द्वैत कछु नहीं, सो सर्वदाकाल अद्वैतसत्ता है, तिसविषे जगत्का अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, ताते सर्वदाकालविषे तुरीयातीत पद है अरु जो मुझते पूछै तौ हे रामजी! मुझको तरंग बुद्बुदे झाग आवर्त्त कछु नहीं भासते, सर्वदाकाल चित् समुद्र ही भासता है, तिसते इतर कछु नहीं, उदय अस्तते रहित आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो भी कछु उपजे नहीं, आत्म-सत्ताका किंचन इस प्रकार भासता है,जैसे नख अरु केश उपजते भी हैं अरु अभाव भी हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् उपजता भी है अरु लीन भी हो जाता है, जैसे नख अरु केशके उपजने काटनेविषे शरीर ज्योंका त्यों रहता है तैसे जगत्के उपजने अरु लीन होनेविषे आत्मा ज्योंका त्यों रहता है. हे रामजी! यह जगत् उपजा नहीं, तिसविषे सत् क्या कहिये अरु असत् क्या कहिये, कल्पना क्या कहिये अरु स्मृति क्या कहिये, अंतर क्या कहिय अरु बाहर क्या कहिये, अद्वैत सत्ताविषे कल्पना कछु नहीं बनती यह अर्थ है अरु जो तू कहै बाह्यते अंतर स्मृति होती है परंतु अंतरते बाहर दृष्टि आती है, तौ अंतर अनुभवकी अपेक्षा-करिकै हुई है सो भी उत्पन्न नहीं भई, अंतर अरु बाहर क्या कहौं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भासि आती है सो अपना ही अनुभव होता है, वही सृष्टिरूप हो भासता है, वहां तो अंतर बाहर कछु है नहीं, तैसे यह जगत् भी अंतर बाहर कछु है नहीं, सब भ्रमरूप है, जिसको इच्छा

कहते हैं, स्मृति कहते हैं, विद्या अविद्या इष्ट अनिष्ट जेते कछु शब्द हैं सो सब आत्माके नाम हैं, आत्माते इतर अपर पदार्थ कछु वस्तु नहीं। हे रामजी ! जागिकरि देख सब तेरा ही स्वरूप है, मिथ्याभ्रमको अंगीकार करिकै क्यों इतर कछु देखता है, जेते कछु शब्द हैं सो अर्थविना कहूँ नहीं अरु शब्द अर्थका विचार संकल्पकरि होता है अरु संकल्प तब फुरता है जब चित्तविषे अहं अभिमान होता है, सो चित्त आत्मसारविषे लीन करु, जब चित्तको निर्वाण करैगा, तब सब जगत् शांत हो जावैगा; जैसे दर्पणविषे जगत्‌रूपी प्रतिबिंब होता है, सो जगत् कछु वस्तु नहीं जब चित्त निर्वाण हो जावैगा तब द्वैत कल्पना सब मिटि जावैगी, यह जो मोक्षशास्त्र मैंने तुझको कहा है, इसके अर्थको विचार अरु संकल्पको त्यागिकरि अपने परमानंद स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनं नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७१ ॥

द्विसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७२.

सालभजनकोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जगत् किसी कारणकरि उत्पन्न नहीं भया, जैसे समुद्रविषे तरंग स्वाभाविक फुरते हैं, तैसे संवित्सत्तासों आदि सृष्टि फुरी है, जैसे जल स्वाभाविक द्रवताकरिकै तरंगरूप अपनी सत्ताकरि बढता जाता है, तैसे आत्मसत्ताकरि जगत्‌विस्तार होता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, आत्मसत्ता ही इसप्रकार भासती है, जब आत्मसत्ता चिन्मात्रका अभ्यास बहिर्मुख फुरता है तब अंतःकरणचतुष्टय होते हैं, तिसविषे जो निश्चय होता है, तिसका नाम नेति हुआ है, प्रथम अकस्मात्‌ते स्वाभाविक ही कारणविना फुरि आया है, वह आभासमात्र है, जब वह दृढ हो गया तब नीति स्थित भई अरु वास्तवते द्वैत कछु बना नहीं, जो सम्यक्‌दर्शी पुरुष है तिसको सब आत्मा दृष्टि आता है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास सब वृक्ष ऊपर हैं इतर

कछु नहीं.हे रामजी! वृक्षते ज्यों फूल फल टास होते हैं सो किस कारणकरि बुद्धिपूर्वक तौ नहीं होते, तैसे यह जगत् भी जान. जो सम्यग्दर्शी है तिसको भिन्न भिन्न रूप भी पत्र टास आदिक विस्तार एक वृक्षरूप भासता है, तैसे यथार्थज्ञानीको सर्व आत्मा ही भासता है अरु मिथ्यादृष्टिको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, सम्यक्दर्शीको एक वृक्ष ही भासता है. हे रामजी! वृक्षका देखनेवाला भी अपर होता है अरु दृष्टांतविषे दूसरा कोऊ नहीं, चैतन्य आत्माका आभास ही चैतन्य है वही चैतन्यरूप हो भासता है, तिस चैतन्य आभासको असम्यक् दृष्टिकरिकै भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं, सम्यक्दर्शी सबको आत्मारूप देखता है, जैसे पत्र आपको भिन्न जानैं, फूल फल सब आपको भिन्न भिन्न जानैं वृक्ष सब अपना आप जानता है ज्ञानी अज्ञानी सब आत्मरूप हैं, जैसे कंधके ऊपर पुतलियां लिखी होती हैं सो कंधते इतर कछु नहीं, कंधरूप हैं, तैसे स्वर्गगत आत्मरूपी कन्धके चित्र हैं, सो आत्मते इतर कछु नहीं, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे फूलविषे सुगंधता है, जैसे जलविषे द्रवता है, जैसे वायुविषे स्पंद है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे फूल अरु सुगंधिविषे भेद कछु नहीं जहां जल है तहां द्रवता भी है, जहां अग्नि है, तहां उष्णता है, जहां वायु है, तहां स्पंद भी है, तैसे जहां चित्सत्ता है, तहां जगत् भी है, जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, हे रामजी! जगत् आत्माका आभास है, ताते वही रूप है, यह जगत् भी अचैत्य चिन्मात्र है अरु जो तू कहै, अचैत्य चिन्मात्र है, तौ पृथ्वी पहाड आदिक आकार क्यों भासते हैं तौ हे रामजी! नित्य प्रति जो तुझको स्वप्न आता है, तिस अनुभव आकाशविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व भासि आते हैं, तब वही चिन्मात्र ही आकार होकरि भासता है, क्यों कि अपर कछु नहीं; तैसे यह भी जान, जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब अनुभवरूप है, जैसे चिन्मात्र आत्माविषे सृष्टि आभासमात्र है तैसे कारण कार्यभाव भी आभासमात्र है परंतु वही रूप है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार

होकरि भासती है अरु यह पदार्थ जो कारण कार्यकरिके उपजे दृष्टि आते हैं सो अभ्यासकी दृढताकरिकै भासते हैं, आदि सृष्टि कछु कारणकरिकै नहीं उपजी, पाछे कारण करिकार्य उत्पत्ति दृष्टि आती है, यद्यपि कार्य कारण दृष्टि आते हैं तौ भी कछु उपजा नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके कार्य कारण भासि आते हैं, परंतु कछु हुए तौ नहीं, सदा अद्वैतरूप हैं, तैसे जाग्रतविषे भी जान. पदार्थकी स्मृति भी स्वप्नविषे होती है अनुभव भी स्वप्नविषे होता है,जो स्वप्न ही नहीं फुरा तौ भी स्मृत्यु कहां है अरु अनुभव कहाँ है, न जगत्का अनुभव है, न जगत् है, अनुभवसत्ता ही जगत्रूप हो भासती है सो जाग्रत्रूप है जब तिसका अनुभव होवैगा तब न स्मृति रहैगी, न जगत् रहैगा, ताते हे रामजी ! जो अनुभवरूप है तिसका अनुभव करु यह जगत् भ्रमरूप है, जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है अरु जो उपजा है अरु जिसविषे भासता है तिसको उसीका रूप जान, इतर तौ कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासते हैं सो उपजे नहीं परंतु उपजे दृष्टि आते हैं, सो अनुभवविषे उपजे हैं, अनुभव स्वतः सिद्ध है, तिसविषे जो पदार्थ भासते हैं सो अनुभवरूप हैं,अनुभव ही इसप्रकार हो भासता है, तैसे यह सब अनुभवरूप हैं, इतर कछु नहीं, जेता कछु जगत् है सो आत्मरूप है, ताते हे रामजी ! जेता कछु जगत् है सो अकारण है; आत्माका आभास है, कारण करिकै कछु बना नहीं, अनंत ब्रह्मांड ब्रह्मसत्ताविषे आभास फुरते हैं अरु अज्ञानीको कार्य कारण सहित भासते हैं, तिसविषे नेति हुई है, जब जागिकरि देखेगा तब सर्व अद्वैतरूप भासैगा, न कोऊ नेति है न जगत् है, जबलग अज्ञाननिद्राविषे सोया हुआ है, तबलग जो पदार्थ उस सृष्टिविषे हैं, सोई भासैंगे जैसा कर्म है सो भासैगा अरु यह जगत्रूपी स्वप्न है, तिसविषे स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं अरु नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं, तिनके प्राप्त होनेका साधन धर्म अधर्म है, धर्म स्वर्ग सुखका साधन है, अधर्म नरकदुःखका साधन है, जबलग अविद्यारूपी निद्राविषे सोया हुआ है, तबलग इसको यथार्थ जानता है, जब जानैगा तब सब आत्मरूप होवैगा, इष्ट अनिष्ट कोऊ

न रहैगा अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब अनुभवरूप है, सो अनुभव सदा जाग्रत् ज्योति है तिसको जान अरु जिन पुरुषोंने इस अनुभवको नहीं जाना सो उन्मत्त पशु हैं; काहेते कि, वे आत्मबोधते शून्य हैं, आत्माको सदा समीप नहीं जानते; इसते उन्मत्त अपना आप भूलि जाता है, जैसे किसीको पिशाच लगता है तब उसको अपना स्वरूप विस्मरण हो जाता है, पिशाच ही देहविषे बोलता है,तैसे जिसको अज्ञानरूपी भूत लगा है सो उन्मत्त भया है, अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानता अरु विपर्यय बुद्धिकरिकै देहादिकको आत्मा जानता है, विपर्यय शब्द करता है अरु जिनको स्वरूपविषे अहंप्रतीति है, तिनको सर्व जगत् आत्मरूप भासता है. हे रामजी ! जो आदि सृष्टि किसी कारणकरि बनी होती तौ इसके पीछे प्रलय आदिकविषे कछु शेष रहता सो तौ अत्यंत अभाव होता है, ताते सब जगत् अकारण है, जैसे चिंतामणिते अकारण पदार्थ दृष्टि आता है, तैसे यह अकारण है, न कहूँ संस्कार है, न स्मृति है, सब आत्माके पर्याय हैं, आत्माते इतर कछु नहीं, ताते सर्व जगत् आत्मरूप जान. राम उवाच–हे भगवन् ! जो संस्कारते अनुभव नहीं होता अरु अनुभवते स्मृति नहीं होती तौ इस प्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्टि आते हैं ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह संशय भी तेरा दूर करता हौं, जैसे हस्तीके बालक मारनेविषे सिंहको यत्न कछु नहीं होता, तैसे इस संशयके नाश करनेको मुझे यत्न कछु नहीं, जैसे सूर्यके उदय हुए तिमिरका अभाव होता है, तैसे मेरे वचनोंकरि तेरा संशय दूर हो जावैगा. हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, तिसते इतर कछु नहीं, जैसे शिल्पी स्तंभविषे पुतलियां कल्पता है, परंतु पुतलियां कछु बनी नहीं, उसके चित्तविषे पुतलियोंका आकार हैं, तैसे आत्मरूपी स्तंभ है, तिसविषे चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है. हे रामजी ! स्तंभसों पुतलियां निकासे तौ भी निकसती हैं परंतु आत्मा तौ अद्वैत है, निराकार है; तिसविषे अपर कछु नहीं निकसता, तिसविषे वाणीकी भी गम नहीं, चेतनमात्र है, तिसविषे अहं ऐसा जो फुरणा फुरा है, तब आपको चेतन जानत

भया, बहुरि आगे शब्दके अर्थ कल्पे हैं, सो शुद्ध अधिष्ठान चेतन आपको जानत भया, सोई स्वर्ग है, ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इंद्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादि शब्द अरु अर्थ फुरणेहीविषे हुए हैं, जैसे एक ही समुद्रविषे द्रवताकरिकै आवर्त तरंग फेन बुद्बुदे नाम होते हैं सो सब ब्रह्मके नाम हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है, वही फुरणेकरि जगत् आकार हो भासता है, फुरणेते रहित जगत् आकार मिटि जाता है, परंतु फुरणे अफुरणेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे स्पंदनिस्पंदविषे वायु ज्योंका त्यों है, तैसे ब्रह्म ज्योंका त्यों है अरु जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना ही अनुभव पहाड़ वृक्ष आदिक नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, तैसे यह ब्रह्मसत्ता जाग्रत् जगतरूप हो भासती है, तिसविषे कहूं अंतवाहक हो भासता है; कहूँ आधिभौतिक भासता है, कहूँ ईश्वर, कहूँ जीव हो भासता है, इसते आदिक लेकरि शब्द अर्थसंयुक्त जीव फुरता गया है, सो ब्रह्मसत्ता इस प्रकार स्थित भई है, जैसे स्तम्भविषे पुतलियां स्तंभरूप होती हैं, तैसे आत्माकाशविषे जगत् आत्मस्वरूप है आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे तिसविषे जगत् आभास है तैसे स्मृति अनुभव भी आभास है, स्मृति जो संस्कार हैं, तिनते जगत्की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न होवै सो तौ स्मृति संस्कार भी आभास है. यह जगत्का कारण कैसे होवै, स्मृति भी तब होती है, जो प्रथम जगत् होता है, सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसे होवै, ताते जगत् आभासमात्र है; इसका कारण कोऊ नहीं. हे रामजी ! स्मृति संस्कार जगत्का कारण तब होवै, जो कछु जगत् आगे हुआ कहौं सो कछु न था अरु अनुभव तिसका होता है, जो पदार्थ भासता है सो तौ इस जगत्के आदि कछु जगत्का अंश न था, बहुरि अनुभव कैसे कहौं जो अनुभव ही न हुआ तौ स्मृति किसको होवै, जो अस्मृति ही न हुई तौ बहुरि तिसते जगत् कैसे कहौं, ताते हे रामजी ! आदि जो जगत् फुरा है, सो अकारण अकस्मात्ते फुरा है, जैसे रत्नकी लाट होती है तैसे जगत् है, पाछेते कारणकार्यरूप भासती है, आदि अकारणरूप है, ताते हे रामजी !

जिसका कारण कोऊ न होवै सो जानिये कि उपजी नहीं, जिसविषे भासती है वही रूप है, अधिष्ठानते इतर कछु नहीं, ताते सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, स्मृति भी भ्रमविषे आभास फुरी है, अनुभव भी आभास है, सो ब्रह्मते इतर कछु नहीं अरु आभास भी कछु फुरा नहीं, आभासकी नांई जगत् भासता है, आत्मसत्ता अद्वैत है, जिसविषे आभास भी नहीं बनता, न स्मृति है, न अनुभव है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है, यह कल्पना कछु नहीं तौ क्या है, ब्रह्म ही है अरु फुरणा जो कछु कहते हैं सो कछु वस्तु नहीं, जैसे स्तंभविषे पुतलियां कल्पता है, तैसे स्पंद चेतना आत्मा॰ विषे जगत् कल्पती है अरु शिल्पी जो कल्पता है सो आप भिन्न होकरि कल्पता है अरु यह चित्तसत्ता ऐसी है, कि अपने ही स्वरूपविषे कल्पती है, जगत्रूपी पुतलियां देखती हैं, सो आत्मआकाशरूपी स्तंभ है, तिसविषे जगत् भी आकाशरूपी पुतलियां हैं, जैसे आकाश अपने आकाशभावविषे स्थित है, तैसे ब्रह्म अपने ब्रह्मत्वभावविषे स्थित है, जगत् भिन्न भी दृष्टि आता है परंतु अचैत्य चिन्मात्रस्वरूप है, भेदभावको नहीं प्राप्त भया, विकारवान् भी दृष्टि आता है परंतु विकार कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे आप ही सब स्पष्ट भासता है, तैसे यह जगत् अपने आपविषे भासता है परंतु है कछु नहीं. हे रामजी! यही आश्चर्य है, जो मैंने ऐसा उपदेश किया है, अपने अनुभवको प्रगट करि कहा है अरु जीव आप भी जानते हैं, स्वप्नविषे नित्य देखते हैं अरु सुनते भी हैं, परंतु निश्चयकरि जान नहीं सकते अरु स्वप्नपदार्थको मूर्खताकरि त्यागि नहीं सकते यह आश्चर्य है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ॰ सालभजनकोपदेशो नाम द्विसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७२ ॥

त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७३.

जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो पुरुष इंद्रियके इष्ट विषयको पायकरि सुख नहीं मानता अरु अनिष्टविषयको पायकरि दुःख नहीं मानता इनके भ्रमते मुक्त है, जिसको बड़े भोग आनि प्राप्त हुए हैं अरु अपने स्वरूपते चलायमान नहीं होता, तिसको जीवन्मुक्त जान. हे रामजी ! जेते कछु शब्द अर्थ हैं सो जिसको द्वैतरूप नहीं भासते, सो तू जीवन्मुक्त जान, जिस अविद्यारूपी जाग्रत्‌विषे अज्ञानी जागते हैं, तिसते ज्ञानवान् सोये रहे हैं अरु परमार्थरूपी जाग्रत्‌ते अज्ञानी सोय रहे हैं, नहीं जानते यह अर्थ है,तिसविषे जीवन्मुक्त स्थित हैं,इस कारणते ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयको पायकरि सुखी अरु दुःखी नहीं होते तिनका चित्त सदा आत्मपदविषे स्थित है. राम उवाच-हे भगवन् ! जो पुरुष सुखको पायकरि सुखी नहीं होता अरु दुःखसाथ दुःखी नहीं होता, सो जड हुआ, चेतन तौ न हुआ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! सुख दुःख तबलग होता है जबलग चित्तको जगत्‌का संबंध होता है, जब चित्त जगत्‌के संबंधते रहित चिन्मात्र होता है, तब औपाधिक जो हैं सुख अरु दुःख सो नहीं रहते, जो अपने स्वभावविषे स्थित पुरुष है सो परम विश्रामको प्राप्त होता है अरु वह सर्वको करता है परंतु स्वरूपते उसको कर्तव्यका उत्थान कछु नहीं होता, निश्चय सदा अद्वैतविषे रहता है, नेत्र साथ देखता है परंतु द्वैतकी भावना उसको कछु नहीं फुरती, जैसे अत्यंत उन्मत्त होता है तिसको सब पदार्थ दृष्टि भी आते हैं परंतु उसको पदार्थका ज्ञान कछु नहीं होता, तैसे जिसकी बुद्धि अद्वैतविषे घनीभूत भई है तिसको द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते, जिनको द्वैत नहीं भासता तिनको सुखदुःख कैसे भासैं, तिन पुरुषोंने तहां विश्राम किया है, जहां न शय्या है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है,न सुषुप्ति है;सर्व द्वैतते रहित अद्वैतरूपी शय्याविषे विश्रामकरि रहे हैं, संसारमार्गते उल्लंघि गये हैं अरु आत्माके प्रमादकरि इसको कष्ट होता है,अपनी विभूति विद्याको त्यागि-

करि प्रसन्न होता है, बहुरि संसारके क्रूर मार्गविषे कष्ट पाता है,वह मनुष्य नहीं मानो मृग है, संसाररूपी जंगलविषे कष्ट पाता है, जब तृषाकरि कायर होता है तब जलकी ओर दौडता है, जहां जाता है, तहां मरु-स्थलकी नदी भासती है जल प्राप्त नहीं होता, बहुरि आगे दौडता है तब अधिक तृषा बढ जाती है,इस प्रकार दौडता दौडता जड हो जाता है, दुःखी होकरि मरि जाता है, परंतु जल प्राप्त नहीं होता, सो जल अरु दौडना अरु जड़ता अरु मरना चारों भिन्न भिन्न सुन. हे रामजी ! मन रूपी तो मृग है अरु संसाररूपी जंगलविषे आनि पडा है अरु इंद्रि-योंके विषयरूपी जलाभास हैं, तिनको सत् जानिकरि शांतिके निमित्त तृष्णारूपी मार्गकरि दौडता है, सो विषय आभासमात्र हैं, तिसविषे शांतिरूपी जल है नहीं, दौडता दौडता वृद्ध अवस्थाविषे जाय पडता है तब जड हो जाता है, ऐसे कष्टको प्राप्त होता है अरु शांतिरूपी जल नहीं पाता, तृप्त नहीं होता. हे रामजी ! यह मनुष्य ही मानो पैंडोई है, तिसके शीशपर बड़ा भार है अरु क्रूर मार्गविषे चला जाता है अरु मार्गविषे इसको चोरने लूटि लिया है, तिसकरि जलता है,इस पुरुषरूपी पैंडोईके शीशपर जन्मका बड़ा भार है, संशयरूपी मार्गविषे खड़ा है, कर्मइंद्रिय ज्ञानइंद्रिय तिनके जो विषय हैं, इष्ट अनिष्ट तिनके रागद्वेष-रूपी तस्करने इससों विचाररूपी धन हरि लिया है, तिसकरि रागद्वेष-तृष्णारूपी अग्निसाथ जलता है, बडा आश्चर्य है, जो ऐसे क्रूर मार्गको त्यागिकरि वह परमपदविषे विश्राम पाता है, अन्य आनंदको त्यागि-करि परमपद आनंदको प्राप्त भये हैं, तिन मुक्त पुरुषोंको संसारका दुःख सुख नहीं व्याप सकता, परम अद्वैत शुद्ध सत्ताको प्राप्त भये हैं, सर्वको देखते हैं, ग्रहण अरु त्यागरूपी जो अग्नि है तिसको त्यागिकरि उन परमपदविषे विश्राम पाया है, सदा सोये रहते हैं, प्रगट सुखसाथ जो सोते हैं सो वही सोते हैं, उनके अंतर सदा शांति रहती है परंतु जडताते रहित हैं, आकाशते भी अधिक सूक्ष्मसत्ताको प्राप्त हुए हैं, जैसे समुद्र-विषे धूड नहीं होती, जैसे सूर्यविषे तम नहीं होता, तैसे उनविषे लोभ जो है इंद्रियके इष्टविषयकी तृष्णा सो नहीं होती, तिनते रहित होकरि

तिन्होंने विश्राम पाया है, यह आश्चर्य है अणुते अणु होकरि अरु महत्ते महत् होकरि केवल विश्रामवान् हुए हैं. हे रामजी ! जो आत्मसत्ताकी ओरते सोये पडे हैं, तिनको दुःख होता है अरु ज्ञानवान् द्वैतजगत्की ओर जड हुए हैं अरु अपने स्वरूपविषे चेतनको दुःख कछु नहीं; वह जाग्रत्की ओरते सोये हैं, तिनको अविद्यक जो जगत् है, दृश्यसंबंध सो दूर हो गया है,वह इस ओरते सोये हैं, उनको बहुरि दुःख कैसे होवै, वह पुरुष सदा अद्वैतरूप है, जो अनंत जगत्को करता है अरु आपको सदा अकर्त्ता जानता है, ऐसे आश्चर्यपदविषे तिन्होंने विश्राम पाया है, जगत्के समूहसत्ता समानविषे स्थितिकरिकै विश्राम पाया है, यह आश्चर्य है अरु वह संपूर्ण क्रियाको करते हैं, परंतु सदा अक्रियपदविषे स्थित हैं, संपूर्ण पदार्थविषे स्वप्नवत् जानिकरि सुषुप्ति भये हैं, आकाशते भी अधिक सूक्ष्म हुए हैं, आत्मसत्ताविषे विश्राम पाये हैं, सो आत्मसत्ता आकाशको भी व्याप रही है, तिसको आत्मवत् जानिकरिकै स्थित भये हैं; परम स्वच्छ जो पद है तिसविषे सर्व शब्द अर्थ आकाशरूप हो जाते हैं, आकाश भी आकाश हो जाता है, तिस पदविषे विश्राम किया है सो आश्चर्य है अरु नेत्र उसके खुले हुए हैं अरु सुषुप्तिविषे स्थित है, क्या सुषुप्ति है, जो दृग अरु दृश्यभाव उनका दूर हो गया है अरु जगतके प्रकाशते रहित हैं अरु परम प्रकाशरूप हैं. हे रामजी ! बाह्य जो भोगपदार्थ हैं,तिनते रहित हैं, अंतर आत्मविषे स्थित हैं, प्रगट जो सोता है अरु सुषुप्तिविषे जागता है अरु जाग्रत्ते उसको सुषुप्ति है,वह सुषुप्तिसाथ सोया है, वह कर्म करता है,परंतु कर्त्ताकरणभावते रहित है, क्रोध भी करता है, क्रोधके फुरणेते रहित है, सर्व ओरते प्रकाशवान् होकरि विराजते हैं, निर्भय होकरि विश्राम करते हैं, कामना करते भी दृष्टि आते हैं परंतु तृष्णाते रहित हैं,निःसंकल्पपदविषे स्थित भये हैं, यह आश्चर्य है,जिस क्रियाकी ओर देखते हैं तिसी ओर तिनको शांति भासती है, काहेते कि एक मित्र तिनके साथ रहता है, तिसकरि दुःख कोऊ तिनके निकट नहीं आता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७३ ॥

चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७४.

जीवन्मुक्तिवाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन्! वह मित्र कौन है, ज्ञानीका कोऊ कर्म मित्र है अथवा आत्माविषे विश्रामका नाम मित्र है, यह संक्षेपकरि मुझको कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! एक अकृत्रिम कर्म है, अपना सुकर्म उनका नाम है, अपना ही जो प्रयत्न है सो उनका मित्र है सो मैं कहता हौं सो सुन, आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक यह तीन ताप सदा अज्ञानीको जलाते हैं, सो ज्ञानीको नहीं भासते. जो बडा कष्ट आनि प्राप्त होवै सो लंघना कठिन है, बहुकोप होवै सो भी उसको स्पर्श करता नहीं, जैसे मलको जल नहीं स्पर्श करता, तैसे ज्ञानीको कष्ट नहीं स्पर्श करता, काहेते कि मित्र उसके साथ रहता है,जैसे बालकका मित्र बाल होता है सो बडा भय भी उसका हेतु होता है, तैसे चिरकाल जो ज्ञानवान्ने अभ्यास किया है सो अभ्यास इसका मित्र हो रहता है,दुष्ट क्रियाकी ओर वह विचरने नहीं देता अरु शुभकी ओर वर्तावता है, जैसे पिता पुत्रको अशुभकी ओरते वर्जिकरि शुभकी ओर लगाता है,तैसे उसको विचाररूपी मित्र तृष्णाते वर्जना करता है अरु आत्माकी ओर स्थिर करता है अरु रागद्वेषरूपी जो अग्नि है तिसते निकासकरि समतारूपी जो शीतलता है तिसको प्राप्त करता है, ऐसा उसका विचाररूपी मित्र है अरु जेते दुःख क्लेश हैं तिन सबते वह तराय ले जाता है, जैसे मलाह नदीते तराय ले जाता है. हे रामजी! विचाररूपी मित्र बहुत सुंदर है अरु शांतरूप है, सर्व मैलको जलावनेहारी अग्नि है, जैसे स्वर्णके मैलको अग्नि जलायकरि निर्मल करती है, तैसे विचाररूपी अग्नि रागद्वेषरूपी मलको जलाती है अरु जब विचार रूपी मित्र आता है तब स्वाभाविक इसकी चेष्टा निर्मल हो जाती है; वेदउक्त विचारता है अरु सब कोऊ उसको देखकर प्रसन्न होता है दया अरु कोमलता अमान अक्रोध आदिक गुण स्वाभाविक आनि प्राप्त होते हैं, जैसे तिलविषे तेल रहता है, जैसे फूलविषे सुगंधि रहती है, अग्निविषे उष्णता रहती है, तैसे विचारकरि

ज्ञानीविषे शुभ आचार रहते हैं अरु विचाररूपी मित्र शूरमा है, जो कोऊ शत्रु होता है प्रथम तिसको मारता है, अज्ञानरूपी शत्रुको नाश करता है, जैसे सूर्य तमको नाश करता है अरु दीपकप्रकाशवत् साथ होता है, विषयभोगरूपी अंधकूप जो गंदगी है तिसविषे गिरने नहीं देता, सर्व ओरते रक्षा करता है अरु जिस ओरते वह पुरुष जाता है तिस ओरते सबको प्रसन्नता उपजती है. हे रामजी ! वचन तिसका ऐसा होता है, जो कोमल अरु मधुर अरु स्निग्ध क्षोभते रहित उदार आत्मा अरु लोकपर उपकार अरु प्रसन्नताको लिये बोलना अरु सुहृदता शांतरूप अरु परमार्थके कारण. हे रामजी ! वचन तौ तिसके ऐसे होते हैं, प्रसन्नताको लिये हुए अरु आप भी सदा प्रसन्न रहता है, जैसे पतिव्रता स्त्री भर्ताको सदा प्रसन्न राखती है, तैसे विचाररूपी मित्र इसको सदा प्रसन्न राखता है,सदा शुभ आचारविषे राखता है,दान तप यज्ञादिक जो शुभ क्रिया हैं सो आप ही करता है अरु लोकोंते भी करावता है अरु जिसके अंतरविषे विवेकरूपी मंत्री आता है, तहां अपने परिवारको भी साथ ले आता है. राम उवाच–हे भगवन् ! उसका परिवार कौन है, अरु उसका स्वरूप क्या है अरु उसका आचार क्या है ? संक्षेपते सब ही कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! स्नान दान तपस्या ध्यान यह चारों उसके बेटे हैं, स्नान तौ यह है जो सदा पवित्र रहता है, यथायोग्य अरु यथाशक्ति दान करता है अरु बाहरी वृत्तिको स्थिर अंतर करना इसका नाम तप है अरु आत्माकी वृत्तिविषे चित्तको लगावना इसका नाम ध्यान है यह चारों उसके बेटे हैं. हे आत्मदर्शी ! परंतु वृत्तिका सदा स्वाभाविक अंतर्मुख व्यवहार होता है अरु मुदिता इसकी स्त्री है सदा प्रसन्न रहना इसका नाम मुदिता है, सो नमस्कारके योग्य है, जैसे चंद्रमा द्वितीयाकी रेखाको देखिकरि सब कोऊ प्रसन्न रहता है अरु नमस्कार करता है, तैसे तिसको देखिकरि सब कोऊ प्रसन्न होता है अरु नमस्कार करता है अरु मुदिताऱूपी स्त्री साथ एक सहेली रहती है, करुणा अरु दया तिसका नाम है अरु समतारूपी द्वारपालनी सन्मुख खड़ी रहती है, जब विवेक राजा अंतःपुरविषे आता है

तब सन्मुख होकरि सब स्थान दिखाती है, अरु सदा संगी रहती है अरु जिस ओर राजा देखता है तिस ओर समता ही दृष्टि आती है, सो आनंदको उपजानेहारी है, सो दो पुत्र साथ लेकरि पुरीविषे विचरती है, जिस ओरते राजा भेजता है, तिस ओरते धैर्य अरु धर्मको लिये फिरती है, जब राजा असवार होकरि चलता है तब वह भी तमरूपी वाहनपर आरूढ होकरि राजाके साथ जाती है, जब राजा शत्रुसाथ लडाई करता है, सो शत्रु कौन हैं? पांचो विषय शत्रु हैं, तब धैर्य संतोष मंत्री मंत्र देता हैं, तब विचाररूपी बाणसाथ तिनको नष्ट करता है. हे रामजी। विचार तिसके सदा संग रहता है, अरु सब कार्यको करता है, यह स्वाभाविक चेष्टा उसते होती है अरु आप सदा अमान रहता है, कर्तृत्व अरु भोक्तृत्वका अभिमान तिसको कोऊ नहीं फुरता, जैसे कागजके ऊपर मूर्ति लिखी अभिमानते रहित होती है, तैसे वह अभिमानते रहित है अरु जो परमार्थनिरूपणते रहित निरर्थक वचन हैं, तिनके बोलनेते पत्थरकी शिलावत् गूँग है अरु निरर्थक संबंध सुननेते बहरा है, जैसे पाषाण नहीं सुनता अरु जो क्रिया शास्त्र लोककरि निषेध है, तिसकी ओरते शव है, जैसे शवसों कछु क्रिया नहीं होती, तैसे उसको क्रियाका उत्थान नहीं होता जहां ज्ञानवान् अरु जिज्ञासुकी सभा होती है तहां परमार्थके निरूपणको शेषनाग अरु बृहस्पतिकी नांई होता है, सविधान इत्यादिक जो शुभ क्रिया हैं सो उससों स्वाभाविक होती है, जैसे सूय चंद्रमा अरु अग्निविषे प्रकाश स्वाभाविक होता है तैसे उनविषे स्वाभाविक शुभ क्रिया होती हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्तिबाह्यव्यवहारवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७४ ॥

पंचसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७५.

द्वैतैकताभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह जगत् वास्तवते ज्ञानस्वरूप है, आत्मसत्ताका चमत्कार है, अपर कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ता ही फुरणेकरिकै इस प्रकार हो भासती है, अपर कारण इसका कोऊ नहीं जब महाप्रलय था तब शब्द अर्थ द्वैत कछु न था, तिस अद्वैतसत्ताते जगत् फुरि आया है सो तिसीते भासि आया है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है, सो बीज भी जगत्का कोउ न था, तौ किस कारणते उत्पन्न हुआ, अपर तौ कारण कोऊ न था, ताते अब भी जगत्को महाप्रलयरूप जान. हे रामजी! न कोऊ पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं, न जगत् है, न आभास है, न फुरणा है, जैसे आकाशके फूलका शब्द निरर्थक है, तैसे इनका होना भी निरर्थक है, केवल ब्रह्मसत्ता स्वच्छ अपने आपविषे स्थित है, रूप इंद्रियां मन भी ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव है, नानाप्रकारका जगत आकार अरु इंद्रिय मन होकारि भासता है, अपर तौ कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी यही रूप है. हे रामजी! सर्व जगत् आत्मरूप है, जैसे कारणविना आकाशहीविषे दूसरा चंद्रमा भासि आता है, सो कछु हुआ नहीं, आकाशहीविषे भासि आता है, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है,जिसविषे आभास फुरा सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जेते कछु पदार्थ तुझको भासते हैं सो ब्रह्मस्वरूप जान, जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है सो अपने अनुभवविषे होती है उसका स्वरूप अनुभवते इतर कछु नहीं, तैसे सृष्टिके आदि जो अनुभव होता है सो अनुभवरूप है, अपर कछु उपजा नहीं, वही अनुभवसत्ता इस प्रकार भासती है. हे रामजी! देशते देशांतरको संवित् प्राप्त होती है, तिसके मध्यविषे जो अनुभव है सो तेरा स्वरूप है, अपर सब आभासमात्र है, जाग्रत् देशको त्यागिकरि स्वप्नशरीरसाथ मिली नहीं, जो जाग्रत् स्वप्नदेशका मध्य है सो मध्यविषे ब्रह्मसत्ता तेरा स्वरूप है, स्वप्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित है, जाग्रत् जो जगत्

भासता है, सो भी उसीका स्वभाव है, जैसे रत्नका स्वभाव चमत्कार होता है, अग्निका स्वभाव उष्णता है, जलका स्वभाव द्रवना है, पवनका स्वभाव फुरणा है तैसे ब्रह्मका स्वभाव जगत् है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है तैसे आत्मविषे जगत् भासता है. हे रामजी ! यह आश्चर्य है, कि अज्ञानी सत्को असत जानते हैं अरु असत्को सत जानते हैं, जो अनुभवसत्ता है तिसको छिपाते हैं अरु शशेके शृंगवत् जगत् है, तिसको प्रत्यक्ष जानते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनको क्या कहिये, सबका प्रकाशक आत्मसत्ता है, जिसको तू सूर्य देखता है सो वही परम-सूर्य देव होकरि भासता है, चंद्रमा अरु अग्नि उसीके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, सबका प्रकाश तेजसत्ता वही है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे सूक्ष्म अणु होता है तैसे आत्मसत्ताविषे सूर्यादिक भासते हैं, जिसको साकार कहते हैं अरु निराकार कहते हैं सो सब शशेके शृंगवत् हैं, ज्ञानवान्को ऐसे भासता है, जो जगत् कछु उपजा नहीं तौ मैं क्या कहौं, जहां सर्व शब्दका अभाव हो जाता है तिसके पाछे चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है, तहां शून्यका भी अभाव हो जाता है. हे रामजी ! जिनको तू जीता जानता है, सो जीता भी कोऊ नहीं जो जीता नहीं तौ मुआ कैसे होवै, जो कहिये जीता है तौ जैसे जीता है तैसे मृतक है, मृतक अरु जीतेविषे कछु भेद नहीं, ताते सर्व शब्दते रहित अरु सबका अधिष्ठान वही सत्ता है, तिसविषे नानात्व भासता भी है परंतु हुआ कछु नहीं, पर्वत जो स्थूल दृष्टि आते हैं, सो अणुमात्र भी नहीं, जसे स्वप्नविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परंतु कछु हुए नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसते जगत् भासता है. हे रामजी ! जो परमार्थसत्ताते जगत भासि आया सो अपर तौ कोऊ न हुआ क्यों, ताते वही सत्ता जगत्रूप हो भासती है; कई कहते हैं इस आत्मविषे हैं, कई कहते हैं इस आत्म-विषे नहीं; सो आत्माविषे कछु दोनों शब्दका अभाव है अरु अभावका भी अभाव है; यह भी तेरे जाननेके निमित्त कहता हौं; स्वस्थ है, परम शांतरूप है; उस अरु तेरेविषे कछु भेद नहीं; परिपूर्ण अच्युत अनंत अद्वैत है; सोई जगत्रूप होकरि भासता है, जैसे कोऊ पुरुष शयन

करता है तब सुषुप्तिविषे अद्वैतरूप हो जाता है, बहुरि सुषुप्तिते स्वप्न फुरि आता है बहुरि सुषुप्तिविषे लीन हो जाता है तौ उपजा क्या अरु लीन क्या भया. स्वप्नके आदि भी अद्वैतसत्ता थी अरु अंत भी वही रही अरु मध्य जो कछु भासा; सो भी वही रूप हुआ; आत्माते इतर तौ कछु न हुआ क्यों; ताते जेता कछु जगत् भासता है; सो ब्रह्मस्वरूप है; ब्रह्मते इतर कछु नहीं. हे रामजी! हमको तौ सदा अनुभवरूप जगत् भासता है, हम ऐसे नहीं जानते कि जो अज्ञानीको क्या भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टिते जागा है; तिसको अद्वैत अपना आप भासता है; तैसेही तुरीयाविषे भासता है, तुरीया अरु जाग्रत्‌विषे भेद कछु नहीं, जाग्रत्‌ही नाम तुरीयाका है, जाग्रत् तुरीयारूप है, यह भी क्या कहना है, सबही अवस्था तुरीयारूप हैं, तुरीया नाम है जाग्रत्‌सत्ताका, जो अनुभव-साक्षी ज्योति है, सो जाग्रत्‌विषेभी साक्षी अनुभवरूपहै, स्वप्नविषे साक्षीरूप है; सुषुप्तिविषे भी साक्षीरूप है, ताते सब तुरीयारूप है, परंतु जिसको स्वरूपका अनुभव हुआ है; तिस ज्ञावान्‌को ऐसेही भासता है अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न अवस्था भासती है. हे रामजी! एक पदार्थका वृत्तिने त्याग किया है अरु दूसरे पदार्थविषे लगी नहीं; वह जो मध्यविषे अनुभवज्योति है; तिसको तू आत्मसत्ता जान अरु तिसविषे जो बहुरि कछु भासा सो भी वहीरूप जान; जैसे जाग्रत्‌को त्यागकरि स्वप्नके आदि साक्षी अनुभवमात्र होता है, तिस सत्ताविषे स्वप्नशरीर अरु पदार्थ भासते हैं सो भी आत्मरूप हैं, तैसे जो कछु जाग्रत् शरीर अरु पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं, जब तुम ऐसे जानोगे तब तुमको दुःख कोऊ स्पर्श न करैगा; जैसे स्वप्नकी सृष्टिविषे अपने स्वरूपकी स्मृति आई तब दुःख भी अदुःख होता है; बोलना चालना खाना पीना देना इनते आदि लेकरि शब्द अरु अर्थ होते हैं अरु युद्ध कर्म द्वैतरूप होते हैं; सो सब अद्वैत अपना आप हो जाते हैं; व्यवहार भी सब करता है परंतु अपने निश्चयविषे कछु नहीं फुरता; तैसे जो पुरुष अपने स्वरूपविषे जागे हैं तिनको सब जगत् आत्मरूपही भासता है; जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक है; जैसे बरफविषे शीतलता स्वाभाविक है, तैसे ज्ञानवान्‌को

आत्मदृष्टि स्वाभाविक है, अपर लोकको यह दृष्टि यत्नकरि प्राप्त होती है अरु ज्ञानवान्को स्वाभाविक होती है, जिसको तुम इच्छा कहते हौ सो ज्ञानवान्को सब भ्रमरूप है, अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासती है अरु ज्ञानवान्को आत्मानंद प्राप्त हुआ है, अपना जो शुभावसर है सदा तिसविषे स्थित है, अपर कल्पना उसको कोऊ नहीं उठती, वह विद्यमान निरावरण दृष्टिको लेकारि स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० द्वैतैकताभाववर्णनं नाम पंचसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७५ ॥

षट्सप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७६.

स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं सो अविद्यमान हैं कछु हैं नहीं, तैसे पिता माता जो आदि ब्रह्माजी है तिसको भी आकाशरूप जान, वह भी कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ताते इतर कछु उसका होना नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु बुद्बुदे उठते हैं सो स्वाभाविक हैं, तरंग शब्द कहना भी उनको नहीं बनता, वह तौ जलरूप हैं, तैसे जिसको तुम ब्रह्माजी कहते हौ सो अपर कोऊ नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, ब्रह्माजी इस जगत्का विराट् है, जैसे पत्र फूल फल टास वृक्षके अंग हैं तैसे सब भूत विराट्के अंग हैं, जो विराट् ब्रह्मा ही आकाशरूप है तौ तिसके अंग जगत्की वार्त्ता क्या कहिये. हे रामजी ! विराट्के न प्राण हैं, न आकार हैं, न इंद्रियां हैं, न मन है, न बुद्धि है, न इच्छा है, केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो विराट् नहीं तौ जगत् कैसे होवै, जो तू कहै आकाशरूपके अंग कैसे भासते हैं ? तौ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे बड़े पहाड पर्वत प्रत्यक्ष दृष्टि आते हैं परंतु कछु बने नहीं आकाशरूप हैं, तैसे आदि विराट् भी कछु बना नहीं आकाशरूप है, तिसके अंग मैं साकाररूप कैसे कहौं, सब आकार संकल्पपुरकी नांई कल्पित है, एक आत्म-

सत्ता ही सर्वदाकाल ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे स्मृति क्या कहिये अरु अनुभव क्या कहिये, अनुभवस्मृति भी तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग आभास होते हैं तैसे आत्माविषे अनुभव अरु स्मृति भी आभास है अरु स्मृति भी तिसकी होती है, जिसका प्रथम अनुभव होता है सो अनुभव भी जगत्‌विषे होता है, जहां जगत् भी उपजा न होवै तौ अनुभव अरु स्मृति तिसकी कैसे होवै, ताते न अनुभव है न स्मृति है, इस कल्पनाको त्यागि देहु, जहां पृथ्वी होती है तहां धूड भी होती है जहां पृथ्वीते रहित आकाश ही होवै तहां धूड नहीं, तैसे जहां पदार्थ होते हैं तहां स्मृतिअनुभव भी होता है, जहां पदार्थ ही नहीं तौ यह कैसे होवै, ताते दोनोंका अभाव है. राम उवाच–हे भगवन् ! स्मृतिवान्‌विषे इष्ट स्मृतिका अनुभव तौ प्रत्यक्ष होता है, प्रथम पदार्थका अनुभव होता है, पीछे उसकी स्मृति है, तिस स्मृति संस्कारते बहुरि अनुभव होता है, ऐसे ही ब्रह्मादिकका क्यों न होवै, यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, तुम कैसे इसका अभाव कहते हौ अरु अभावविषे विशेषता क्या है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! स्मृति अनुभव तहां होता है जहां कार्य-कारणभाव होता है अरु ब्रह्माते आदि लेकरि काष्ठपर्यंत जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब आकाशरूप है, कछु बना नहीं, अविद्यमान ही भ्रमकरि विद्यमान भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है सो अविद्यमान है, भ्रमकरि जल भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरि भासता है अरु स्मृति तिसकी होती है, जिस पदार्थका प्रथम अनुभव होता है,जो कहिये ब्रह्मादिक स्मृति संस्कारते उपजा है तौ ऐसे नहीं बनता काहेते कि प्रथम तौ ज्ञानवान्‌का स्मृतिते होना नहीं होता तौ तिनका स्मृति कारण कैसे कहिये अरु द्वितीय यह है कि इस जगत्‌के आदि कोऊ जगत् न था जिसकी स्मृति मानिये इस जगत्‌के आदि केवल अद्वितीय आत्मसत्ता थी तिसविषे स्मृति क्या अरु अनुभव क्या ताते ब्रह्मादिकका होना अरु जगत्‌का होना किसी कारणकार्यभावकरि नहीं, अकारण है. हे रामजी ! प्रथम तौ तुम यह देखो कि ज्ञानीको जगत् नहीं भासता तौ स्मृति किसकी कहिये उसको तौ केवल ब्रह्मसत्ता ही

भासती है, जैसे सूर्यको रात्रिकी स्मृति नहीं होती तैसे ज्ञानीको जगत्‌की स्मृति नहीं होती, हमारे निश्चयविषे तौ यह कि है जगत् न हुआ है, न आगे होवैगा, केवल अपने आपविषे ब्रह्मसत्ता स्थित है, सो अद्वैत है अपर सब तिसका आभास है, जो आभासको सत् जानता है तौ स्मृतिको भी सत् जान अरु जो आभासको असत् जानता है, तौ स्मृतिको भी असत् जान, जैसे स्वप्नविषे सृष्टिका आभास होता है, तिसविषे अनुभव भी होता है अरु स्मृति भी होती है, जागेते सृष्टि अनुभव स्मृतिका अभाव हो जाता है, तैसे परमात्मसत्ता अद्वैतके जाग्र-त्‌विषे अनुभव अरु स्मृतिका अभाव है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, जैसे कोऊ पुरुष मरुस्थलविषे भ्रमकरि नदी देखता है अरु सत् जान-करि उसकी स्मृति करता है, जो नहीं देखी थी सो उसके निश्चयहीविषे नहीं है, अपर कछु नदी तौ नहीं, जो नदी ही असत् है तौ स्मृति कैसे सत् होवै, तैसे अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् भासा है सो जगत् ही असत् है, तिसकी स्मृति अनुभव कैसे होवै, ज्ञानवान्‌के निश्चयविषे ऐसे ही भासता है. हे रामजी ! स्मृति जो होती है सो पदार्थकी होती है, सो पदार्थ कोऊ नहीं, सर्व ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है तैसा ही होकरि भासता है परंतु अपर कछु वस्तु नहीं, जैसे वायु चलता भी है अरु ठहरता भी है, सो चलने अरु ठहरनेविषे वायुको भेद कछु नहीं, तैसे ज्ञान-वान्‌को जगत्‌के फुरणे अफुरणेविषे ब्रह्मसत्ता अभेद भासती है, कारण कार्य नहीं भासता, जैसे पत्र टास फूल फल सब वृक्षके अवयव हैं, तैसे जगत् आत्माके अवयव हैं, आत्माविषे प्रगट होते हैं, बहुरि लीन भी हो जाते हैं, इतर कछु नहीं, जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकरि भासता है, कछु आरंभ अरु परिणामकरिकै नहीं होता, आभा-समात्र है, जैसे घट पट आदिक आत्माको आभास है, तैसे स्मृति भी अभास है, स्मृति भी जागत्‌विषे उदय भई है, जो जगत् ही असत् है तौ स्मृति कैसे सत् होवै अरु जो यथार्थदर्शी हैं तिनको सब ब्रह्मरूप भासता है, इनको न कछु मोक्ष उपाय भासता है, न इसका कोऊ अधि-

कारी भासता है, हमारे निश्चयविषे अद्वैत ब्रह्मसत्ता ही भासती है, जैसे नट स्वांगको धारता है, सो सब स्वांगको आभासमात्र जानता है, किसी स्वांगको सत् नहीं जानता, सबविषे स्वांगी अनागत जानता है, तिसते इतर कछु नहीं, तैसे हमको ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता अरु अज्ञानीके निश्चयको हम नहीं जानते, जिस प्रकार उसको जगत्शब्द है सो उसके निश्चयको कोऊ नहीं जानता है, हमारे निश्चयविषे सब चिन्मात्र है, अज्ञानीको जगत् द्वैतरूप भासता है अरु विपर्यय भावना होती है, ज्ञानवान्को चिन्मात्रते इतर कछु नहीं भासता, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने अनुभवविषे स्थित होती है, सर्वका अधिष्ठान अनुभवसत्ता है परंतु निद्रादोषकरिके भिन्न भिन्न भासती है, तैसे अज्ञानीको जगत् भिन्न भिन्न भासता है अरु जो जागे हुए ज्ञानवान् हैं, तिनको भिन्न कछु नहीं भासता, न उनको अविद्या भासती है, न मूर्खता, न मोह भासता है, सब अपना आप हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जहां कछु दूसरी वस्तु बनी नहीं, तहां स्मृति अरु अनुभव किसका कहिये यह कलना सब ही मिथ्या है. हे रामजी! सर्व अर्थका जो अर्थभूत है सो ब्रह्म है; सब पदार्थ तिसविषे कल्पित हैं, स्मृति अरु अनुभव मनविषे होता है, सो मन आत्माविषे ऐसे है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तिसविषे स्मृति क्या कहिये अरु अनुभव क्या कहिये, सब कल्पित है, यह अर्थ है अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व आत्माविषे कछु बने नहीं, ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, ज्ञानवान्को सदा ऐसे ही भासता है, आभास भी आत्माविषे आभास है कारणकार्यभाव कदाचित् नहीं, भासता; जैसे सूर्यको अंधकार कदाचित् नहीं भासता, तैसे ज्ञानवान्को कारणकार्यभाव दिखाई नहीं देता, जैसे स्वप्नके आदि अद्वैत सत्ता होती है, तिसविषे अकारण स्वप्नकी सृष्टि फुर आती है, तैसे अद्वैतसत्ताविषे आकारण आदि सृष्टि फुरि आई है, न पृथ्वी है, न कोऊ अपर पदार्थ है, सब चिदाकाशरूप है, अपर कछु बना नहीं, आभासमात्र जगत्विषे स्मृतिकी कल्पना कैसे होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७७.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच-हे भगवन्! जिसविषे सर्व अनुभव होता है, तिसके देहविषे अहंप्रत्यय किस प्रकार होती है, वह तौ सर्वात्मा है, तिस सर्वात्माको एक देहविषे अहंप्रत्यय होना यह क्योंकरि होता है अरु काष्ठ पाषाण पर्वत अरु चेतनका अनुभव किस प्रकार हो गया है, वह तौ अद्भुत स्वरूप है, तिसविषे जड चेतन यह दोनों भेद कैसे हुए? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे शरीरविषे हाथ आदिक अपने अंग हैं, तिन सर्व अंगोंविषे एक शरीर फुरणा व्यापा हुआ है अरु जो तिन अंगोंविषे एक अंगको पकड़करि कहै, कि नाम ले कौन है ? तब वह अपनी नाम संख्या कहता है, तौ तू देख कि उस एक अंगविषे अपना आप क्यों कहा परंतु सर्व अंगोंविषे उसकी आत्मता तौ नाश नहीं हो जाती है, तैसे आत्मा अनुभवरूप है, तौ भी एक अंगविषे उसकी आत्मता फुरती है, तिसकरि उसकी सर्वात्मता खंडन तौ नहीं हो जाती; जैसे पत्र फूल फल टास आदिक सर्व अंगविषे वृक्ष एक ही व्यापा हुआ है परंतु जो एक टास अथवा पत्रको पकड़िकरि कहता है, तौ कहता है यह वृक्ष है, है तो इसके एक अंगविषे वृक्षभावना कहना, इसविषे वृक्षका सर्वात्मभाव नष्ट नहीं होता, तैसेही सर्वात्मा एक देहविषे अहंभाव सिद्ध होता है, जड़ अरु चेतन भी दोनों भाव एकहीके धारे हैं, एकहीके दोनों स्वरूप हैं, जैसे एक ही शरीरविषे दोनों सिद्ध होते हैं, हाथ पाँव आदिक जड हैं अरु नेत्र इसका द्रष्टा चेतन है, सो एक ही शरीर दोनों धारे हैं अरु दोनों एक ही शरीरका स्वरूप है, तैसे एक आत्माने दोनों धारे हैं अरु एकहीके स्वरूप हैं, जैसे वृक्ष अपने अंगको धारता है अरु वृक्षस्वभावको भी धारता है, तैसे सर्वात्मा सर्वको धारता है, जैसे स्वप्नसृष्टि सर्वको अनुभव धारती है अरु सर्व क्रियाको भी धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व जगत् अरु जगत्की सर्व क्रियाको धारती है, काहेते कि सर्वात्मा है, है सो क्यों न धारे, जैसे एक ही समुद्रविषे अनेक तरंग उठते हैं

परंतु सब ही समुद्रके आश्रय हैं अरु वही रूप हैं, तैसे जेते कछु जीव हैं सो परमात्माविषे फुरते हैं अरु परमात्माके आश्रय हैं अरु वही रूप हैं, जैसे तरंग आपको जानै कि मैं जल ही हौं, तब तरंगसंज्ञा उसकी जाती रहती है जलरूप ही देखता है, तैसे जीव जब परमात्मासाथ आपको अभेद जानै कि मैं आत्मा ही हौं, तब जीवत्वभाव उसका अभाव हो जाता है, परमात्मा ही देखता है. हे रामजी ! जैसे जलविषे द्रवताकरिकै तरंग भासते हैं परंतु जलते इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदनकरिकै आदि ब्रह्मा फुरा है, तिसने यह जगत् मानोराज्यकरि कल्पा है, सो आकाशरूप निराकार है, अपर कछु बना नहीं अरु जो विराट् ही आकाशरूप हुआ तौ उसका शरीर कैसे साकार होवै, वह भी निराकार है, जैसे अपना अनुभव स्वरूपविषे पर्वत नदियां जड चेतन होकरि भासता है, तैसे जेता कछु जगत् भासता है सो सर्व आत्मरूप है. हे रामजी ! जैसे एक निद्राके दो स्वरूप हैं, स्वप्न अरु सुषुप्ति, तैसे एक ही आत्माने जड अरु चेतन दो स्वरूप धारे हैं अरु जगत् आत्माविषे कछु बना नहीं यह आभासरूप है, आत्मसत्ता ही अपने वचनद्वारा जगत्रूप हो भासती है, जैसे आकाशविषे घन शून्यताकरि नीलता भासती है सो अविचारसिद्ध है, नीलता कछु बनी नहीं, तैसे आत्माविषे घन चेतनाकरिकै जगत् भासता है परंतु जगत् आकार कछु बना नहीं सर्व काल आत्मा अद्वैत निराकार है, अनंत सृष्टि आत्माविषे आभास उपजिकरि लीन हो जाती हैं, आत्मा ज्योंका त्यों है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजि लीन हो जाते हैं परंतु जलरूप हैं, तैसे परब्रह्मविषे सृष्टि परब्रह्मरूप है. हे रामजी ! यह जगत् विराट्का शरीर है, शीश उसका महाआकाश है, दशों दिशा तिसकी भुजा हैं अरु पृथ्वी उसके चरण हैं पातालरूप तलियां हैं, अंतरिक्ष मध्यलोक उसका उदर है, सर्व जीव तिसकी रोमावली हैं, इनते लेकरि सर्वपदार्थ विराट्के अंग हैं, सो विराट् आकाशरूप है, जैसे विराट् ब्रह्माजी आकाशरूप हैं, तैसे तिसका जगत् भी आकाशरूप है, ताते सर्व जगत् विराट्रूप है सो ब्रह्म ही है अपर कछु बना नहीं, चंद्रमा सूर्य

उसके नेत्र हैं, मैं अरु तू यह इनते आदि लेकरि जेते कछु शब्द हैं तिन शब्दोंका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो ब्रह्म मैं हौं, कैसा हौं जिसविषे दूसरा बना कछु नहीं, सदा मैं अपने ही आपविषे स्थित हौं. हे रामजी! जेते कछु शास्त्रके मत हैं, शून्यवादी पांचरात्रिक शैवी शाक्तते आदि लेकरि सो सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है सबका साररूप वही सर्वात्मरूप है, जैसे किसीको निश्चय होता है तैसा उसको फल सर्वरूप होकरि देता है अपर कछु बना नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७७ ॥

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७८.

ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस जगत्के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी तिसविषे जो जगत् आभास फुरा है तिसको भी तू वही स्वरूप जान, जैसे स्वप्नके आदि अनुभव आकाश होता है तिसविषे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है सो अनुभवरूप है इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है इतर कछु नहीं, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंगरूप हो भासता है तैसे ब्रह्मचेतनता जगत्रूप हो भासती है सो जगत् भी वही रूप है. हे रामजी! वास्तवते न कोऊ दुःख है न कोऊ सुख है, दुःख अरु सुख अज्ञानकरि भासते हैं, जैसे एक निद्राविषे दो वृत्ति भासती हैं एक स्वप्नवृत्ति अरु एक सुषुप्तिवृत्ति तैसे अज्ञानीको दो वृत्ति होती हैं, सुखकी अरु दुःखकी अरु ज्ञानवान्को सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नते जाग उठता है तो उसको स्वप्नकी सृष्टि असत्रूप भासती है तैसे ज्ञानवान्को यह सृष्टि असत् भासती है, जैसे मरुस्थलकी नदीके जलका अत्यंत अभाव जिसने जाना है सो जलपानकी इच्छा नहीं करता तैसे सम्यक्दर्शी जगत्को असत् जानता है ताते जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता अरु जो असम्यक्दर्शी है तिसको जगत् सत् भासता है, सो

किसी पदार्थको ग्रहण करता है किसीको त्याग करता है. हे रामजी ! ईश्वर जो परमात्मा है तिसविषे जगत् इस प्रकार है जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं अरु जो तू कहै अविद्या ही जगत्का कारण होवै तौ अविद्या जगत्का कारण कहाती है जो जगत्ते प्रथम सिद्ध होती है सो अविद्या तौ अविद्यमान है, जैसे परमात्माविषे जगत् आभासमात्र है तैसे अविद्या भी आभासमात्र है जो आप ही आभासमात्र होवै सो जगत्का कारण कैसे कहिये, जगत्का आभास अरु अविद्याका आभास इकट्ठा ही फुरा है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासि आती है तिसविषे घटपटादिक पदार्थ भासते हैं सो किसी कुलालने मृत्तिका लेकरि तौ नहीं बनाये, जैसे घट भासा है तैसे कुलाल अरु मृत्तिका भी भास आये सबका भासना इकट्ठा ही होता है, तैसे जगत् अरु अविद्या इकट्ठे ही फुरे हैं अविद्या पूर्व तौ सिद्ध नहीं होती तौ अविद्याको जगत्का कारण कैसे मानिये. हे रामजी ! परमात्माते जगत् अरु अविद्या इकट्ठा ही आभास फुरा है सो आभास कछु वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है न कहूँ अविद्या है न जगत् है सदा ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता स्थित है. हे रामजी ! निर्विकल्पविषे जगत्का अत्यंत अभाव होता है सो निर्विकल्प कैसे होवै जो निर्विकल्प होता है तब जडता आती है अरु जब विकल्प उठता है तब संसार उदय होता है अरु जब ध्यान लगाता है तब ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी हो जाती है, इस प्रकार तौ निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती काहेते कि निर्विकल्पविषे भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, निर्विकल्प तिसका नाम है जहां चित्तकी वृत्ति न फुरै तौ तब भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती काहेते कि, तहां भी अभाववृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है; वह जडात्मक सुषुप्तिरूप है अरु सविकल्प सुषुप्ति है तिसकेविषे भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती ताते सम्यक्बोधका नाम निर्विकल्प है सम्यक्बोध निर्विकल्पताकरिकै जगत्का अत्यंत अभाव जिसको भया है सो जीवन्मुक्त है वही निर्विकल्प कहाता है अरु वही परम जडता है, जहां जगत्का परम असंभव है. हे रामजी !

यह जो निर्विकल्प अरु सविकल्प हैं, तिसकारि स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, यह दोनों मनकी वृत्ति हैं, जैसे एक निद्राको दो वृत्ति हैं, स्वप्न-सुषुप्तिरूप, तैसे यह निर्विकल्प अरु सविकल्प मनकी वृत्ति हैं, निर्विकल्प सुषुप्तिरूप पत्थरवत् अरु सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप अरु निर्विकल्प-विषे भी अभाववृत्ति रहती है, तिसकारि भी मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तब होती है, जब अत्यंत अभाव दृश्यका होवै तब मुक्त होवै. हे रामजी! आत्मअनुभव आकाशते इतर कछु उत्थान नहीं होता, तिसका नाम अत्यंत सुषुप्ति निर्विकल्पता है. हे रामजी! ऐसे होकरि तू चेष्टा भी करैगा तौ भी कर्तृत्व अरु भोक्तृत्वका अभिमान तुझको न होवैगा, आत्माको अद्वैत जानना, जगत्को अत्यंत अभाव जानना, इसका नाम बोध है, इस बोधकी दृढता होवै और तिसके ध्यानकी दृढता होवै तब उसका नाम परमपद है, उसीका नाम निर्वाण है, तिसीका नाम मोक्ष है, सो कैसा पद है किंचन भी वही है, अकिंचन भी वही है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे न नानात्व कहना है, न अनाना शब्द है, न सविकल्प कहता है, न निर्विकल्प है, न सत् है, न असत् है, न एक है, न दो है, सर्वशब्दका अंत है, जिसविषे किसी शब्दकरिकै वाणी नहीं प्रवर्तती, तिस सत्ताको प्राप्त होनेका उपाय मैं कहता हौं. हे रामजी! यह मोक्षउपाय ग्रंथ मैंने तुझको कहा है इसको विचारना, जो पुरुष अर्धप्रबुद्ध है, जो पद पदार्थ जानेवाला है अरु जिसको मोक्षकी इच्छा है, सो इस ग्रंथको विचारता है अरु शुभ आचारकरिकै बुद्धिको निर्मल करता है अरु अशुभ क्रियाका त्याग करै, तिसको शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी. हे रामजी! जो पद मोक्षउपाय शास्त्रके विचारकारि प्राप्त होता है, सो तीर्थ स्नान तप दान-कारि नहीं प्राप्त होता अरु तपदानादिककरिकै स्वर्गको प्राप्त होता है, मोक्षको नहीं प्राप्त होता, मोक्षपद अध्यात्मशास्त्रके अर्थ अभ्यासकारि प्राप्त होता है, यह जगत् आभासमात्र है, वही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकारि भासती है, जैसे जल ही तरंगरूप होकारि भासता है, जैसे वायु स्पंदरूप होकारि भासता है, तैसे ब्रह्म जगत्रूप होकारि भासता है,

जैसे स्पंद अरु निस्पंदविषे वायु ज्योंकी त्यों है परंतु स्पंद होती है तब भासती है अरु निस्पंद होती है तब नहीं भासती, तैसे ब्रह्मविषे संवेदन फुरती है तब जगत् हो भासती है अरु जब निर्वेदन होती है, अंतर्मुख अधिष्ठानकी ओर आती है, तब जगत् समेटा जाता है परंतु संवेदनके फुरणेविषे भी वही है अरु अफुरणेविषे भी वही है ताते हे रामजी ! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मते इतर कछु बना नहीं अरु जो इतर भासता है सो भ्रममात्र ही जानना, जब आत्मपदका आभास होवै तब भ्रांति शांत हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है तैसे आत्मपदके अभ्यासकरि भ्रांति निवृत्त होती है, यद्यपि नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है परंतु कछु हुई नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि दृष्टि आती है परंतु कछु बनी नहीं वह अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकरि भासती है, तैसे यह जगत् सब अनुभवरूप है, जैसे रत्न अरु रत्नके चमत्कारविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं. हे रामजी ! तू स्वभाव निश्चय होकरि देख जो भ्रम मिटि जावै सृष्टि स्थिति प्रलय सब तिसकी संज्ञा हैं, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७८ ॥

एकोनाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७९.

परमार्थगीतावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जेते कछु आकार तुझको भासते हैं सो संवेदनरूप हैं, अपर कछु बना नहीं सृष्टिके आदि भी अद्वैतसत्ता थी अरु अंत भी वही है मध्यविषे जो आकार भासते हैं सो भी वहीरूप जान, जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि शुद्ध संवित् होती है तिसविषे आकार भासि आता है सो भी अनुभवरूप है, अपर कछु बना नहीं आत्मसत्ता ही पिंडाकार हो भासती है अरु जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो वही

आकाशरूप आभासमात्र हैं, अपर कछु बना नहीं, आत्मसत्ता ही सदा शुद्ध है परंतु अज्ञानकरि अशुद्धकी नाईं भासती है, विकारते रहित है परंतु विकारसहित भासती है, अनाना है परंतु नानाकी नाईं भासती है, आकारते रहित है परंतु आकारसहित भासती है, जसे स्वप्नसृष्टि अपना अनुभवस्वरूप होती है परंतु स्वरूपके प्रमादकरि नानाप्रकार भिन्न भिन्न हो भासती है, जागेते एक आत्मरूप हो जाती है, तैसे यह सृष्टि भी अज्ञानकरि नानाप्रकार भासती है, ज्ञानकरि एकरूप भासती है, विद्यमान भासती है तौ भी असत् ही जान, आत्मसत्ता सदा शुद्धरूप है अरु शांत है, अनंत है, तिसविषे देश काल पदार्थ आभासमात्र हैं, जो तू कहै आभासमात्र हैं तौ अर्थाकार क्यों होते हैं; तिसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्नविषे अंगना कंठसाथ मिलती है तिसविषे प्रत्यक्ष राग होता है, विषयरस होता है सो आभासमात्र है, तैसे यह जाग्रत्‌विषे अर्थाकार क्षुधाको अन्न, तृषाको जल, अपर भी सब ऐसे ही होते हैं अरु जेते कछु पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, जो इनका कारण विचारिये तौ कारण कोऊ नहीं पाया जाता, जिसका कारण कोई न पाइये सो जानिये कि आभासमात्र है. हे रामजी ! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना, आदि जो आभास फुरा है सो बुद्धिपूर्वक है, तिसविषे जगत्‌संकल्प दृष्टि भया तब कारणकरिकै कार्य भासने लगा परंतु जिनको स्वरूपका प्रमाद भया, तिनको कारणकरि कार्य भासने लगे, जो आत्मस्वभावविषे स्थित भये हैं तिनको सर्व जगत् आत्मस्वरूप है. हे रामजी ! कारणकरिकै कार्य तब होवै, जो पदार्थ भी कछु वस्तु होवै, जैसे पिताकी संज्ञा तब होती है जो पुत्र होता है अरु जो पुत्र ही न होवै तब पिता कैसे कहिये, तैसे कारण तब कहिये जब कार्य होवै, जो कार्य जगत् ही कछु नहीं तौ कारण कैसे कहिये. हे रामजी ! कारण अरु कार्य अज्ञानीके निश्चयविषे होते हैं, जैसे चरखेके ऊपर बालक चढता है वह आप ही भ्रमता है, तिसको सब पृथ्वी भ्रमती दृष्टि आती है, तैसे अज्ञानीको मोहदृष्टिकरि कारणकार्यभाव दृष्टि आता है अरु ज्ञानीको कारण कार्यभाव नहीं भासता अरु स्मृति भी जगत्‌का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत्‌ते पूर्व होवै

सो स्मृतिभाव अनुभव भी इस जगत्‌विषे ही फुरी है; यह भी आभासमात्र है, परंतु जिसको भासी है तिसको तैसा ही है. हे रामजी ! स्मृति अरु संस्कार अरु अनुभव यह तीनों आभासमात्र हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे तीनों भासते हैं ताते इस कल्पनाको त्यागिकरि जगत् आभासमात्र जान, जैसे स्वप्नविषे घट भासते हैं, जो उनका कारण मृत्तिका कहिये तो बनती नहीं, काहेते कि घट अरु मृत्तिका आभास इकट्ठा ही फुरा है सो तो आभासमात्र हुए तिनविषे कारण किसको कहिये अरु कार्य किसको कहिये, तैसे स्मृतिसंस्कार अरु अनुभव जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनविषे कारण किसको कहिये अरु कार्य किसको कहिये, ताते सब जगत् आभासमात्र है. हेरामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो आत्मसत्ताका आभास है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जैसे नेत्रका खोलना अरु मूँदना होता है, तैसे परमात्माविषे जगत्‌की उत्पत्ति अरु प्रलय होती है, जब चित्त संवेदन फुरती है तब जगत्‌रूप हो भासती है, जब फुरणेते रहित होती है तब जगत् आभास मिटि जाता है, उत्पत्ति अरु जगत्‌की प्रलयविषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; जैसे खोलना अरु मूँदना उभय नेत्रका स्वभाव है तैसे फुरणा अरु अफुरणा उभय संवदनके स्वभाव हैं, जैसे चलना अरु ठहरि जाना उभय वायुके स्वभाव हैं जब चलती है तब भासती है अरु नहीं भासती तब नहीं चलती अरु चलनेविषे वायुकी तीन संज्ञा होती हैं, एक मंद चलती है अथवा बहुत चलती है, शीतल अरु उष्ण स्पर्श होता है, तीसरा सुगंध दुर्गंध होती है, यह तीनों संज्ञा फुरणेविषे होती हैं, जब फुरणे चलनेते रहित होती है तब तीनों संज्ञा मिटि जाती हैं; जैसे एक ही अनुभवविषे स्वप्न अरु सुषुप्तिकी कल्पना होती है; स्वप्नविषे जगत् हो भासता है अरु सुषुप्ति विषे नहीं भासता; परंतु दोनोंविषे अनुभव एक ही है; तैसे संवित्‌के फुरणेकरि जगत् भासता है अरु ठहरनेविषे अच्युतरूप हो जाती है; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों एकरूप है; ताते जो कछु जगत् भासता है सो आत्माते इतर कछु नहीं; वही रूप है; जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय तीनों आत्माका आभास है; तिसविषे

आस्था नहीं करनी. हे रामजी ! यह परमसिद्धांत तुझको मैंने उपदेश किया है परंतु जिन युक्तिकरि मैंने कहा है तिन युक्तिकरि न किसीने कहा है, न कोऊ कहैगा, यह अज्ञानीको वडी संसाररूपी भ्रांति उदय भई है परंतु जो मेरे शास्त्रको वारंवार विचारैगा तव उसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, दिनके दो विभाग करै, अर्ध दिनपर्यंत मेरा शास्त्र विचारै अरु अर्ध दिन अपने आचारविषे व्यतीत करै अरु जो अर्ध दिन शास्त्रका विचार न करि सकै तौ एक प्रहर विचारै, जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार निवृत्त होता है, तैसे इसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी अरु जो मेरे वचनोंको वृथा जानिकरि निंदा करैगा, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी, काहेते जो उसने शास्त्रके पैहेको नहीं जाना, ताते इस जीवको यह कर्तव्य है कि प्रथम अपर शास्त्रको देख विचारि लेवै, पाछेते इसको विचारै, कि उसको इस शास्त्रकी महिमा भासै. हे रामजी ! यह मोक्षोपाय जो शास्त्र है सो आत्मवोध परम कारण है अरु यह जीव पदपदार्थको जाननेवाला होवै अरु इस शास्त्रको वरंवार विचारै तव इसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, जो संपूर्ण ग्रंथके आश्रयको न जान सकै तौ थोड़ा थोड़ा बाँचै अरु विचारै, इसके तांई सब भासि आवैगी. हे रामजी ! कछु यह पुरुष पदार्थको जाननेवाला होवै सो फेरि इसके विचारणे अरु पढनेकरि बुद्धिमान् अरु प्रीतिमान् करि लेता है, इसके विचारनेवालेकी बुद्धि अपर शास्त्रकी ओर नहीं जाती, ताते यह विचारने योग्य है अरु जो पुरुष आत्मविचारते रहित है, तिसका जीना वृथा है अरु जिनको यह विचार है तिनको सब पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं, जो एक श्वास भी आत्मविचारते रहित होता है सो वृथा जाता है, एक श्वासके समान संपूर्ण पृथ्वीका धन नहीं, जो संपूर्ण पृथ्वीके रत्न न जावैं अरु एक श्वास गया बहुरि मांगिये तौ नहीं पाता, ऐसे श्वासको जो वृथा गँमावते हैं तिनको तू पशु जान. हे रामजी ! आयुर्बल बिजुलीके चमत्कारवत् है, जैसे बिजुलीका चमत्कार होकरि मिटि जाता है, तैसे शरीर आयुर्बल होकरि नष्ट हो जाता है, ऐसे शरीरको धारिकरि जो सुखकी तृष्णा करते हैं सो महामूर्ख हैं. हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् आभा-

रमात्र है, सत् भासता है तौ भी इसको असत् जान, जैसे स्वप्नसृष्टि-विषे मृतक होता है तिसके बांधव रुदन करते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव होता है परंतु हुआ कछु नहीं, सब भ्रांतिमात्र है, तैसे यह जगत् भ्रममात्र जान.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० परमार्थगीतावर्णनं नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २७९॥

अशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८०.

ब्रह्माण्डोपाख्यानवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! जगत् तौ अनेक अरु असंख्यरूप हुए हैं अरु आगे होवैंगे, तिन जगत्‌की कथा करि मेरे तांई तुमने क्यों न उपदेश करि जगाया. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो जगत्‌के जालसमूह हैं तिन-विषे जो पदार्थ हैं सो सब शब्द अर्थते रहित हैं, जो शब्द अर्थते रहित हुए तौ कछु क्यों न हुए ताते वही व्यर्थ कहनेका प्रयोजन क्या. हे रामजी ! जब तू विदितवेद निर्मल त्रिकालदर्शी होवैगा तब इस जगत्‌को तू जानैगा अरु मैंने आगे भी तुझको बहुतबार कहा है, वारंवार वही वर्णन करना इसविषे पुनरुक्ति कहिये, बहुरि कहना दूषण होता है परंतु समु-झानेके निमित्त कहा है, जैसे एक सृष्टिको जाना तैसे संपूर्ण सृष्टिको जाना, जैसे एक मुष्टि अन्नके समूहसों भरिकै देखी तौ जानि लिया सब ऐसे ही हैं, जैसे एक सृष्टिको यथार्थ जाना तैसे अपर सृष्टिको भी जानि लिया. हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो किसी कारणकरि नहीं उत्पन्न भया, कारणविना पदार्थ जिसविषे भासा सो जानिये वही रूप है अरु सृष्टिके आदि भी वही सत्ता थी अरु अंत भी वही होवैगी मध्यविषे जो कछु भासा सो भी वही रूप जानिये, जैसे स्वप्नके आदि भी अपना अनुभव निर्मल होता है, स्वप्नके निवृत्त किये भी वही रहता है, स्वप्नके मध्य जो पदार्थ भासा, ऐसा भी वही जानिये, अपर वस्तु कछु नहीं, अनुभवसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जब तू विदितवेद होवैगा तब सर्व जगत् तुझको अपना आप भासैगा. हे रामजी ! एक

एक अणुविषे अनेक सृष्टि हैं, सो आकाशरूप हैं, कछु हुई नहीं तिसके ऊपर एक आख्यान कहता हौं सो सुन. हे रामजी! पद्मज, ब्रह्माजीसों मैं एक काल प्रश्न किया था, ब्रह्माजी एकांत बैठा था, मैंने कहा–हे भगवन्! यह सृष्टि केतिक है अरु किसविषे है, तब पितामहने कहा–हे मुनीश्वर! जेते कछु जगत् हैं तिनके शब्द अर्थ हैं, सो सब ब्रह्म-रूप हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनको जगत् सब आत्मरूप भासता है, जिस प्रकार जगत् हुआ है सो सुन. हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके सूक्ष्मअणुविषे फुरणा हुआ जो "अहम् अस्मि" तब वह अणु आपको जीव जानत भया, जैसे अपने स्वप्नविषे आपको जीव जानै अरु होवै सर्वात्मा, तैसे चिद् अणु सर्वात्मा अहंकारको अंगीकार करिकै आपको जीव जानने लगा, तिसविषे जो निश्चय हो गया तिस-करि बुद्धि भई, जैसे वायुविषे फुरणा होवै, तैसे तिसविषे संकल्पविकल्प-रूपी फुरणा हुआ, तिसका नाम मन भया, तब मनके साथ मिलिकरि वह चिद् अणु देहको चैत्यता भया, तब अपनेविषे देह अरु इंद्रियां भासने लगीं, अपने साथ शरीर देखकरि कि यह शरीर मेरा है, जैसे स्वप्नविषे अपनेसाथ शरीरको देखै अरु बडा स्थूल दृष्टि आवै, तैसे स्थूल शरीर अपने साथ देखता भया, जैसे स्वप्नमें सूक्ष्म अनुभवसों वडे पर्वत दृष्टि आते हैं, तैसे सूक्ष्म अणुसों स्थूल विराट् शरीर भासने लगा, बहुरि देश कालकी कल्पना करी अरु नाना-प्रकारके स्थावर जंगम प्राणी विराट् भासने लगे, जैसे स्वप्नविषे देश काल पदार्थ भासि आवैं सो कछु हैं नहीं, तैसे देशकाल पदार्थ भासि आये परंतु हैं कछु नहीं; जब चित्तसंवित बहिर्मुख फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब अंतर्मुख होती है तब अवाच्यरूप हो जाती है, जैसे वायु चलने ठहरनेविषे एकरूप होता है, तैसे फुरणे अफुरणेविषे संवित् एकही अभेद है. हे रामजी! जेता कछु जगत् है सो आकाशविषे आका-शरूप स्थित है, अपने आपविषे स्थित है, अणुअणुप्रति सर्वदाकाल सृष्टि है परंतु रूप क्या है, आभासमात्र है, जो चैत्यसंबंधी होकरि जीव

सृष्टिका अंत लेवै तौ सृष्टि अनंत है, इसका अंत कहूँ नहीं आता, यह सृष्टि अविद्यारूप है, सो अविद्या ही चैत्य है, जब अविद्यासंबंधी होकारि जगत्का अंत देखैगा तब अंत कहूँ न आवैगा, संसरणेका नाम संसार है, जब स्वरूपविषे स्थित होवैगा तब सब जगत् ब्रह्मरूप हो जावैगा; जगत्की कल्पना कछु न भासैगी. हे रामजी ! इस जगत्के आदि भी अद्वैतसत्ता थी अरु अंत भी अद्वैतसत्ता रहैगी, मध्य जो कछु भासता है तिसको भी वही रूप जान, अपर कछु बना नहीं, यह जगत् अकारण है, अधिष्ठानसत्ताके अज्ञानकारि भासता है, इसीका नाम जगत् है अरु इसीका नाम अविद्या है, अधिष्ठानको जानना इसीका नाम विद्या है. हे रामजी ! न कोऊ अविद्या है, न जगत् है, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है, कोऊ जगत् कहौ, कोऊ ब्रह्म कहौ, एक ही वस्तुके नाम हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मांडोपाख्यानं नामाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८० ॥

एकाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८१.

ब्रह्मगीतावर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! यह मैंने जाना है कि जगत् अकारण है, जैसे संकल्पनगर स्वप्नपुर होता है तैसे यह जगत् है, जो अकारण ही है तो अब यहां पदार्थ काहेको उपजते दृष्टि आते हैं, हैं सकारणरूप, कारणविना तौ नहीं उत्पन्न होते भासते हैं, सो यह क्या है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सर्वात्मा है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा होकारि भासता है, सो क्या भासता है, अपना अनुभव ही ऐसे होकारि भासता है,जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव ही नानाप्रकारके पदार्थ होकारि भासता है परंतु उपजा कछु नहीं, सर्व पदार्थ आकाशरूप हैं, तैसे यह जगत् कछु उपजा नहीं, कारणते रहित अकाशरूप हैं. हे रामजी ! आदिसृष्टि अकारण हुई है, पाछेते सृष्टिविषे आभासरूप मनने जैसा जैसा निश्चय किया है तैसा ही है, काहेतें जो सर्वशक्तिरूप है अरु अदि

सृष्टि जो उपजती है सो अकारणरूप है, पाछेते सृष्टिकालविषे कारण कार्य रूप हुए हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आदि कारणविना होती है, पाछेते कारणकार्य भासते हैं अरु वास्तवते न कोऊ आकाश है, न शून्य है, न अशून्य है, न सत् है, न असत् है, न असत्के सत्के मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है, न परम है, न अपरम है, न शुद्ध है, न अशुद्ध है, द्वैत कछु नहीं सब भ्रम है. हे रामजी! ज्ञानवान्को सर्व शब्द अरु अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं, हमको तौ कारणकार्यभावकी कल्पना कछु नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकारका अभाव है, तैसे ज्ञानवान्को कारणकार्यका अभाव है, जो सर्वात्मा ही है तौ कारणकार्य किसको कहिये? राम उवाच-हे भगवन्! ज्ञानीकी बात पूछता हौं, उनको कारणकार्यभाव किस निमित्त भासता है, जो कारणकार्य नहीं तौ मृत्तिका अरु कुलाल आदिकरिकै घटादिक क्योंकरि उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं, ताते तुम कहौ कि, ज्ञानवान्को अकारण कैसे भासते हैं अरु अज्ञानीको सकारण क्योंकरि भासते हैं यह मेरे ताईं ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! न कोऊ कारण है, न कार्य है, न कोऊ अज्ञानी है मैं तुझको क्या कहौं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनके निश्चयविषे जगत्की कल्पना कोऊ नहीं फुरती उनके निश्चयविषे जगत् है नहीं तौ ज्ञानी अरु अज्ञानी क्या. हे रामजी! आकाशका वृक्ष नहीं तौ तिसका वर्णन क्या करिये अरु जैसे हिमालय पर्वतविषे अग्निका कणका नहीं होता तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे जगत् नहीं होता, ज्ञानी अज्ञानी अरु कारण कार्य यह शब्द जगत्विषे होते हैं; जो जगत् ही फुरा नहीं तौ कारण कार्य ज्ञानी अज्ञानी तुझको क्या कहौं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि सुषुप्तिविषे लीन हो जाती है, तहां शब्द अरु अर्थ कोऊ नहीं फुरता, तैसे ज्ञानवान्को निश्चयविषे जगत् ही नहीं फुरता. हे रामजी! हमको तौ सर्व ब्रह्म ही भासता है, तुझको कछु कहना नहीं आता परंतु कछु कहता हौं, तुझने पूछा है, इस निमित्त अज्ञानीके निश्चयको अंगीकार करिकै कहता हौं. हे रामजी! यह जगत् अकारण है अरु आभासमात्र है, किसी आरंभ अरु परिणामकरि नहीं भया, जब पदार्थका कारण विचारिये तब सब

अधिष्ठान ब्रह्म निकसता है सो अद्वैत अच्युत है अरु सर्व इच्छाते रहित है, तिसको कारण कैसे कहिये, ताते जाना जाता है, कि जगत् आभास-मात्र है, अपर वस्तु कछु नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अकारण होती है तिसविषे अनेक पदार्थ भासते हैं तिनका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान अनुभव निकसता है, तिसविषे आरंभ अरु परिणाम कछु हुआ नहीं. सृष्टि अनुभवरूप हो भासती है. जो पुरुष स्वप्नविषे है, तिसको स्वरूपके प्रमादकरि कारण कार्य जगत् भासता है, पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं, तैसे जाग्रत् जगत् भासता है. हे रामजी ! सृष्टि आदि अकारण हुई है, पाछे सृष्टिकालविषे कारण कार्यरूप हो भासती है अरु जिसको अपना वास्तव स्वरूप स्मरण है तिसको अकारण भासता है अरु जिस अज्ञानीको अपने वास्तव स्वरूपका प्रमाद है, तिसको कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है. हे रामजी ! वस्तु एक ही अनुभव आत्मसत्ता है परंतु जैसा जैसा अनुभवविषे संकल्प दृढ होता है, तिसहीकी सिद्धि होती है, जिसका तीव्र संवेग होता है सोई होय भासता है, इसविषे संदेह कछु नहीं, कल्पवृक्षके पदार्थ निकस आते हैं, सो क्या है, संकल्पकी तीव्रताकरिके प्रत्यक्ष आनि होते हैं वह किसीका कार्य कहिये अरु जगत् किसी कारणकरि उत्पन्न होता है, तौ महाप्रलयविषे भी कछु शेष रहता, जैसे अग्निके पाछे भस्म रह जाती है, सो तौ कछु नहीं रहता, जैसे स्वप्नकी सृष्टि जागे हुए कछु नहीं रहती तैसे महाप्रलयविषे जगत्का शेष कछु नहीं रहता, ताते जाना जाता है, कि आभासमात्र है, जैसे ध्यानविषे ध्याता पुरुष जो किसी आकारको रचता है, तिसका कारण कोऊ नहीं होता, वह तौ आकाशरूप है, अनुभवसत्ता ही फुरणेकरिके इस प्रकार हो भासती है, आकार तौ कोऊ नहीं, जैसे गंधर्वनगर कारणते रहित भासता है, तैसे यह जगत् कारणविना भासि आया है, न कोऊ पृथ्वी है, न कोऊ जल है न तेज वायु आकाश है, सब आकाशरूप है परंतु संकल्पकी दृढताकरिके पिंडाकार भासता है. हे रामजी ! जब यह पुरुष मरि जाता है तब शरीर यहां ही भस्म हो जाता है, बहुरि परलोकविषे जो शरीर अपनेको देखता है अरु तिस शरीरसाथ स्वर्ग

नरकविषे सुख दुःख भोगता है,तिसका कारण कौन है उसका कारण कोऊ नहीं पाया जाता,अपनी चेतनताविषे संकल्पकी वासना जो दृढ हुई है, तिसके अनुसार शरीर भासता है स्वर्गनरकविषे सुख दुःख भासते हैं,अपर तौ कछु वस्तु नहीं, सब पदार्थ संकल्पके रचे हुए हैं, सो सब आत्मरूप हैं, जैसे आकाश व्योम शून्य एक ही वस्तुके नाम हैं, कोऊ जगत् कहौ कोऊ ब्रह्म कहौ, इनविषे भेद कछु नहीं, फुरणेका नाम जगत् कहाता है, अफुरणेका नाम ब्रह्म है, जैसे वायुको चलने ठहरनेविषे भेद कछु नहीं तैसे ब्रह्मको फुरणे अफुरणे संवेदनका भेद कछु नहीं, जो सम्यक्‌दर्शी हैं तिनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, तिस कारणते दोष किसीविषे नहीं रहता, जो बड़ा कष्ट आनि प्राप्त होता है तौ भी खेदवान् नहीं होता, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे युद्ध करता है अरु उसको अपना जाग्रत् स्वरूप चित्तमें आया तब स्वप्नको स्वप्न जानत भया, तब युद्ध करता है तौ भी दुःख मिटि जाता है, तैसे जो पुरुष परमपदविषे जागा है, तिसकी सब क्रिया होती है परंतु आपको अक्रिय जानता है. हे रामजी! सब चेष्टा उसकी होती है परंतु उसके निश्चयविषे क्रियाका अभिमान नहीं होता, जैसे नटुवा सब स्वांग धरता है, परंतु आपको स्वाँगते रहित नटुवा ही जानता है अरु स्वांगक्रियाको असत् जानता है, काहेते कि उसको अपना स्वरूप स्मरण है, तैसे ज्ञानवान् सब क्रियाको असत् जानता है. हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो अजात-जात हैं, उपजे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासते हैं परंतु उपजे कछु नहीं, अपना अनुभव इस प्रकार भासता है, तैसे यह जगत्‌के पदार्थ भी अनुभवरूप जान. हे रामजी! बहुत शास्त्र अरु वेद मैं तुझको किस निमित्त सुनावौं अरु किस निमित्त पढैं अरु जो वेदांत शास्त्र हैं तिन सबका सिद्धांत यही है कि, वासनाते रहित होना, इसका नाम मोक्ष है अरु वासनासहित है, तिसका नाम बंध है अरु वासना किसकी करिये, यह तौ सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है, इसविषे क्या आस्था बढा-इये यह तौ स्वप्नके पर्वत हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मगीतावर्णनं नामैकाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८१ ॥

द्व्यशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८२.

इंद्राख्यानवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच-हे भगवन् ! सब जगत्‌विषे दो प्रकारके पदार्थ हैं, एक अप्रत्यक्ष पदार्थ एक प्रत्यक्ष पदार्थ अरु एक मध्य भावी है, जैसे वायु अप्रत्यक्ष कहिये रूपते रहित है परंतु स्पर्श संयोगते भासती है, सो मध्य भी प्रत्यक्ष है, अप्रत्यक्ष कहिये जो किसीसाथ मिले नहीं, सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है. हे मुनीश्वर ! चंद्रमाके मंडलविषे यह संवेदन जाती है अरु बहुरि गिरती है; वृत्ति चित्तकरिकै चंद्रमाको देखती है अरु बहुरि आती है, इससे जानी जाती है कि निराकार है, जो साकार होती, तौ चंद्रमारूप हो जाती, बहुरि संवेदन आती है, जैसे जलविषे जल डारा बहुरि नहीं निकसता, इस कारणते जाना जाता है कि यह अप्रत्यक्ष कहिये निराकार है. हे मुनीश्वर ! इस शरीरविषे जो प्राण आते हैं, जाते हैं, अज्ञानीका आशय लेकरि मैं कहता हौं, सो कैसे आते अरु जाते हैं अरु जो तुम कहौ, संवित् जो ज्ञानशक्ति है सो यह शरीर अरु प्राणको लिये फिरती है, जैसे पडोई भारको लिये फिरता है तैसे संवित् शरीर अरु प्राणको लिये फिरती है, तौ ऐसे कहना नहीं बनता, काहेते कि संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है, सप्रत्यक्ष साकारसाथ तौ मिलती नहीं, वह चेष्टा क्यों करि करै अरु जो कहौ, संवित् निराकार ही चेष्टा कराती है, तौ पुरुषकी संवित् चाहती है कि पर्वत नृत्य करै, वह तो इसका चलाया नहीं चलता अरु साथ ही कहते हैं, कि यह पदार्थ उठि आवैं परंतु वह नहीं उठ आते, काहेते कि पदार्थ साकाररूप हैं अरु वृत्ति निराकार है, इसका उत्तर कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! शरीरविषे एक नाडी है, जब वह अवकाशरूपी होती है, तब उसमेंसे प्राणवायु निकसता है अरु जब संकोचरूप होती है, तब प्राणवायु अंतर आती है, जैसे लुहारकी खल होती है तैसे इसके अंतर पुरुष बल है, तिसकरि चेष्टा होती है. राम उवाच-हे भगवन् ! लुहारकी खल भी तब हलती है, जब उसके साथ बलका स्पर्श होता है अरु स्पर्श तब होता है, जो प्रत्यक्ष वस्तु

होती है, चैतन्यता सो निराकार है, तिसको स्पर्श क्योंकरि कहिये, जो तुम कहौ, उसकी इच्छाहीकरि स्पर्श होता है, तौ हे मुनीश्वर! मैं चाहता हौं कि मेरे सन्मुख वृक्ष है सो गिर पडे, वह तौ गिरता नहीं, काहेते कि इच्छा निराकार है, जो साकार स्पर्श शब्द होवै तब उसकी शक्तिकरि गिर पडे अरु जो इच्छाहीकरि चेष्टा होती है तौ कर्म इंद्रियां किस निमित्त धारी हैं इच्छा ही करि जगत्की चेष्टा होवै अरु यह भी संशय है कि, एकके बहुत क्योंकरि हो जाते हैं अरु बहुतका एक क्योंकरि हो जाता है? एक चेतन है, जब प्राण निकस जाते हैं तब जड जैसा हो जाता है, पाषाण अरु वृक्षकी नांई हो जाता है, आत्मा तौ सर्वव्यापी है, जड कैसे हो जाता है, अरु एक पाषाण वृक्षरूप जड है, एक चेतन है, यह भेद एक आत्माविषे कैसे हुआ है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तेरे संशयरूपी जो वृक्ष हैं तिन सबको मैं वचनरूपी कुहाड़ेकरि काटता हौं, जिनको तू प्रत्यक्ष साकार कहता है सो आकार कोऊ नहीं, सब निराकार हैं वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ता इस प्रकार हो भासती है, यह आकार कछु बने नहीं, जैसे स्वप्न नगरविषे आकार भासते हैं सो आकाशरूप निराकार हैं, तैसे यह आकार भी तुझको दृष्टि आते हैं सो सब निराकार हैं अरु स्वप्नविषे जो पर्वत भासते हैं सो किसके आश्रय होते हैं अरु देहादिक भासते हैं सो किसके आश्रय होते हैं, ताते वह कछु बने नहीं; अनुभवसत्ता ही आकाररूप हो भासती है, तैसे यह भी जान. आकार कोऊ नहीं. हे रामजी! जब इन पदार्थोंका कारण विचारिये तौ कारण कोऊ नहीं निकसता, इसीते जाने जाते हैं, आभासमात्र हैं, बने कछु नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है अरु आत्मसत्ता अद्वैत है, परमशुद्ध है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, मैं आकार क्या कहौं अरु निराकार क्या कहौं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश भी द्वैत कछु नहीं, शुद्ध आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जैसे संकल्पकरि रचे पदार्थ होते हैं सो अनुभवते इतर कछु नहीं होते तैसे यह सब पदार्थ अनुभवरूप हैं, अनुभवते इतर कछु नहीं, इसके ऊपर एक आख्यान कहता हौं सो

श्रवणको शोभता है. हे रामजी ! आगे भी मैंने तुझको कहा है, अब भी कहता हौं, प्रसंगको पायकरि जो एक कालमें एक सृष्टिविषे इंद्र ब्राह्मण था मानौ ब्रह्माजी है, तिसके गृहविषे दश पुत्र होत भये, मानौ दशों दिशा हैं, केते कालके पश्चात् वह मृतक भया, तिसकी स्त्री पतिव्रता थी, तिसके प्राण भी ब्राह्मणके पाछे छूटि गये, जैसे दिनके पाछे संध्या जाती है तैसे ब्राह्मणी गई, तब तिन पुत्रोंने यथाशास्त्र क्रमकरि तिनकी क्रिया करी बहुरि एक पहाड़की कंदराविषे जाय स्थित भये अरु विचारत भये कि, किसी प्रकार हम ऊंचे पदको पावैं. हे रामजी ! आगे मैं तुझको सुनाया है, जो मंडलेश्वर अरु चक्रवर्ती राजा अरु इंद्रादिकके पदको विचारत भये, बहुरि बडे भाईने निर्णय करिकै यही कहा कि, सबते ऊंचा ब्रह्माजीका पद है, जिसकी यह सब सृष्टि रची हुई है, हम दश ही ब्रह्मा होवैं, ऐसे विचार करिकै दश ही पद्मासन करि बैठ यह निश्चय धारा कि हम चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, सब सृष्टि हमारी रची है, ऐसे हो गये मानौ पुतलियां लिखी हुई हैं, खानपानते रहित मास युग वर्ष व्यतीत हो गये, वह ज्योंके त्यों रहे चलायमान न भये, जैसे जल नीची ठौरको जाता है ऊंचे नहीं फिरता, तैसे वह अपने निश्चयको न त्यागत भये दृढ रहे, जब केताक काल व्यतीत भया, तब उनके शरीर गिर पडे उनको पक्षी खाय गये, यह जो ब्रह्माकी वासना संयुक्त संवित् थी तिस वासनाकरिकै दश ही ब्रह्मा हो गये अरु दश ही तिनकी सृष्टि देश काल पदार्थ नीति सहित हो गई, जैसे हमारी सृष्टि है तैसे वह सृष्टि भई. हे रामजी ! वह सृष्टि क्या रूप हुई आत्मा ही वस्तु हुई, अपर तौ कछु नहीं, कछु अपर होवै तब कहौं ताते सृष्टिका अपर रूप कछु नहीं, अपना अनुभव ही सृष्टिरूप भासता है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मारूप हैं. हे रामजी ! जैसे हम ब्रह्माके संकल्पविषे रचे हैं तैसे उनने भी रचि लिये, वह भी इस प्रकार स्थित हो गये, ताते सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जो कछु कारणकरिकै जगत् बना होता तौ जाना जाता कि कछु हुआ है, इसका कारण कोऊ नहीं पाते, संकल्पमात्र आभासमात्र है ताते कहता हौं कि ब्रह्म ही है, अपर वस्तु

कछु नहीं, जो कछु पदार्थ भासते हैं, पाषाण वृक्ष जड चेतन सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, उसते इतर कछु नहीं. हे रामजी ! महाभूत जो हैं अरु वृक्ष पृथ्वी आकाश पहाड यह सब चिदाकाशरूप हैं, चिदाकाशते इतर कछु नहीं, जैसे इंद्रके पुत्र एकते अनेक हो गये तैसे यह सृष्टि भी एकते अनेक है अरु प्रलयविषे अनेकते एक हो जाती है, जैसे एक तू स्वप्नविषे अनेक हो जाता है अरु सुषुप्तिविषे अनेकते एक हो जाता है, तैसे यह जगत् है, कैसा है, अकारणरूप है अरु जो कारण भी मानिये तौ आत्मरूपी कुलाल है, संकल्प चक्र है अरु अनुभव चेतनरूपी घट तिसते उपजते हैं, आभास भी वही है, कछु दूसरी वस्तु नहीं, यह सब जगत् वही रूप है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रको अपने अनुभवहीते सृष्टि फुरि आई सो अनुभवरूपी भासने लगा, अपर सृष्टिते कछु न भई, तैसे यह सृष्टि भी जान. हे रामजी ! घट भी चैतन्य है, वृक्ष भी चैतन्य है, पृथ्वी भी चैतन्य है, जल अग्नि वायु सब चैतन्यरूप हैं, चैतन्यते इतर कछु नहीं. जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव ही घट पहाड नदियां पदार्थ हो भासते हैं, अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे यह जगत् अनुभवते इतर नहीं, ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहता है, अब एक अनेकका उत्तर सुन. हे रामजी ! जैसे मनोराज्यविषे एकते अनेक हो जाता है अरु अनेकते एक हो जाता है, चैतन्यते जड़ हो जाता है, सो जड़ कोऊ पदार्थ नहीं भासता, पदार्थ चैतन्यरूप हैं, जहां अंतःकरण प्रगट पाता है सो चेतन भासता है, जहां अंतःकरण नहीं पाता सो जड़ भासता है, चैतन्यका आभास अंतःकरणविषे पाता है, जब पुर्यष्टका निकस जाती है तब जड भासता है, यह अज्ञानीकी दृष्टि कही है अरु मुझको पूछे तौ जिसको जड़ कहते हैं अरु जिसको चेतन कहते हैं, पहाड वृक्ष पृथ्वी कहते हैं सो सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे कई जड भासते हैं, कई चेतन भासते हैं, नानाप्रकारके पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं सो आत्मरूप हैं इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् सब आत्मरूप है, इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप है सब नामरूप आत्माके हैं अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं, शून्य अशून्य सत् असत् सब आत्माके

नाम है, आत्माते इतर कछु नहीं. हे रामजी ! जिसको मूर्ख जड कहते हैं, सो जड नहीं, सब चैतन्यरूप हैं अरु सृष्टिकालविषे जड ही है, वह संवेदनविषे जडीरूप होकरि रचित हुए हैं, वह चैतन्य ही रचे हैं, जिनको अपने वास्तवस्वरूपका प्रमाद है तिनको जड चेतन भिन्न भिन्न भासते हैं अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको एक ब्रह्मसत्ता भासती है. हे रामजी ! यह मैंने तुझको उपदेश किया है, सो वारंवार विचारने योग्य है जो कोऊ इसको नित्य विचारता रहैगा तिसके दोष घटते जावैंगे अरु हृदय शुद्ध होवैगा अरु जो ब्रह्मविद्याको त्यागिकरि जगत्की ओर चित्त लगावैगा तिसके दोष बढते जावैंगे. हे रामजी ! ज्यों ज्यों इस जीवको ब्रह्मविचार उदय होता जावैगा, त्यों त्यों दुःख नाश होते जावैंगे, ज्यों ज्यों दिन होता है त्यों त्यों तम नष्ट हो जाता है, विचारके त्यागे दुःख बढते जाते हैं, जो महापापी तिनके पाप मेरे शास्त्रका संग न करने देवें, तिनको यह जगत् वज्रसारकी नाईं दृष्टि रहता है संसारभ्रम निवृत्त कदाचित् नहीं होता अरु जेता कछु जगत् भासता है सो सब आकाशरूप है, मैं तू अरु भाव अभाव आदिक जेते कछु शब्द हैं सो सब ब्रह्मसत्ताके नाम हैं सो कैसी सत्ता है परम शुद्ध है अरु निरामय है अरु अद्वैत है सदा अपने ही आपविषे स्थित है अरु तिसविषे जेते पदार्थ भासते हैं सो ऐसे हैं, जैसे शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है सो शिल्पीके चित्तविषे होती हैं तैसे जगत्के पदार्थकी प्रतिभा सब मनविषे है, सो क्या रूप है उसीका किंचनरूप है सो किंचन कछु भिन्न वस्तु नहीं जो सदा अपने आपविषे स्थित है परम मौनरूप है तिसविषे विकल्प कोऊ नहीं प्रवेश करि सकता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकणे उ० इंद्राख्यानवर्णनं नाम द्व्यशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८२ ॥

त्र्यशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८३.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! सर्व लोक चिन्मात्र इसीते शांतरूप हैं अरु अद्वैतरूप हैं अज्ञानीको भिन्न भिन्न जगत् भासता है ज्ञानीको सब निराकार आकाशरूप हैं आकार कछु बने नहीं आत्मासत्ता निराकार है वही परम शुद्ध सत्ता इस प्रकार भासती है सो शांतरूप है अनंत है चिन्मात्र है इंद्रियां भी ज्ञानरूप हैं हाड मांस रुधिर हाथ पैर शिर आदिक संपूर्ण शरीर ज्ञानमात्र है ज्ञानते इतर कछु नहीं, चिन्मात्र ही इस प्रकार भासता है, जैसे स्वप्नविषे शरीरादिक अरु पहाड नदियां वृक्ष भासते हैं सो अपना ही अनुभवरूप है अपर कछु बना नहीं तैसे यह जगत् सब अनुभवरूप हैं कारणरहित कार्य भासता है तू अपने अनुभवविषे जागिकरि देख कि सब अनुभवरूप है, आकाशविषे आकाश भी आकाशरूप है सतविषे सत है भावविषे भाव है अभावविषे अभाव है सर्व आत्मरूप है इतर कछु नहीं अरु जो तू कहै वस्तु कारणहीते उत्पत्ति होती है सो सत् होती है परंतु जगत्का कारण कहूँ नहीं पाया जाता, ताते यह मिथ्या है कारण भी इसका तब कहिये जब यह कछु वस्तु होवै अरु कार्य भी तब कहिये जब इसका कारण सत् होवै. हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता तौ न किसीका समवायिकारण है न किसीका निमित्तकारण है, अच्युत है इसीते समवायिकारण नहीं अरु अद्वैत है ताते निमित्तकारण भी नहीं सर्व इच्छाते रहित है तिनको कारण किसका कहिये जो कारण नहीं तौ कार्य किसका होवै ताते जेता कछु जगत् भासता है सो आभासमात्र है उसी ब्रह्मसत्ताका नाम जगत् है, जैसे निद्रा एक है तिसके दो स्वरूप हैं एक स्वप्न एक सुषुप्तिरूप है फुरणेरूपका नाम स्वप्न है अफुरणेरूपका नाम सुषुप्ति है तैसे दो स्वरूप चेतनके हैं फुरणेरूप चेतनका नाम जगत्, अफुरणेरूपका नाम ब्रह्म है, जैसे एक ही वायुके चलना ठहरना दो पर्याय हैं जब चलती है तब लखनेविषे आती है अरु ठहरती है तब अलक्ष

हो जाती है शब्दका विषय नहीं होती तैसे ब्रह्मसत्ता अफुरणेविषे शब्दकी प्रवृत्ति नहीं होती, जब फुरती है तब द्रष्टा-दर्शन दृश्य त्रिपुटी-रूप हो भासती है, एकते अनेकरूप हो भासती है अनेकते एकरूप है, जैसे एक ही जल नदी नाला तालाब आदिक भिन्न भिन्न संज्ञाको पाते हैं अरु जब समुद्रविषे मिलते हैं तब एकरूप हो भासते हैं जैसे एक ही कालके बहुत नाम होते हैं दिन मास वर्ष युग कल्प घटी मुहूर्त आदिक नामको पाता है परंतु काल तौ एक ही है जैसे मृत्तिकाकी सेना हस्ती घोडे आदिक बहुत नाम होते हैं परंतु मृत्तिका तौ एक ही है, जैसे फूल फल टास पत्र भिन्न भिन्न नाम होते हैं परंतु वृक्ष तौ एकहीरूप है, जैसे तरंग बुद्बुदे आवर्त फेन आदिक नाम होते हैं परंतु जल एक ही है तैसे परमात्मा-विषे जगत् अनेक रूप नामको प्राप्त होता है परंतु सदा एक ही रसरूप है, जैसे स्वप्नविषे एक ही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है अरु भिन्न भिन्न नामरूप हो भासती है जब जागता है तब अद्वैतरूप होता है तैसे यह जगत् भी भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है परंतु आत्मसत्ता एक ही रूप है. हे रामजी ! जब तू तिसविषे जागैगा तब तुझको सब अपने आप अनुभव ही भासैगा सो अनुभव कैसा है केवल आत्मत्वमात्र है अनन्य अनुभवरूप है सो आत्मरूपी समुद्र है तिसविषे जगत्रूपी जलके कणके हैं, जैसे आकाशविषे नक्षत्र फुरते हैं तैसे आत्माविषे जगत् फुरते हैं, आकाशते तारे भिन्न हैं परंतु आत्माते जगत् भिन्न नहीं जलते बुन्द अभिन्न हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८३ ॥

चतुरशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८४.

ब्रह्मगीतागौरीवाग्वर्णनम् ।

श्रीराम उवाच-हे भगवन् ! अंधकारविषे जो पदार्थ होता है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता अरु सूर्यका प्रकाश होता है तब ज्योंका त्यों

भासता है, यह निमित्त कहता हौं जो संशयरूपी तमकरिकै जगत् ज्योंका त्यों नहीं भासता, तुम्हारे वचनरूपी सूर्यके प्रकाशकरिकै जो पदार्थ वस्तु है, तिसको सम्यक् ज्ञानकरि जानौंगा. हे भगवन्! पूर्व एक इतिहास हुआ है, तिसविषे मुझको संशय है सो दूर करहु. हे प्रभो! एक कालमें अध्ययनशालाविषे विपश्चित् पंडितसों अध्ययन करता था अरु बहुत ब्राह्मण बैठे थे, तब एक ब्राह्मण विदितवेद अरु बहुत सुंदर अरु वेदांत सांख्यशास्त्रके अर्थकरि संपन्न जो सब ही उसके कंठविषे था अरु बडा तपस्वी ब्रह्मलक्ष्मी करिकै तजवान् मानौ दुर्वासा ब्राह्मण है, ऐसा ब्राह्मण सभाविषे आया, परस्पर नमस्कार करिकै आसनपर स्थित भया, हम सबने उसको प्रणाम किया और पण्डित परस्पर वेदांत सांख्य पातंजलादिक शास्त्रोंकी चर्चा करते थे सो सब तूष्णीं हो गये, अरु मैं तिससों बोला कि हे ब्राह्मण! तुम बडे मार्ग करिकै आये हो तुम्हारा पैंडा करणा किस परमार्थनिमित्त होता है, तुम मार्ग संगकरि कहांते आये हो सो कहौ. ब्राह्मण उवाच-हे भगवन्! जिस प्रकार वृत्तांत है सो मैं कहता हौं. हे रामजी! विदेह नगरका मैंने ब्राह्मण हौं, तहां मैं जन्म लिया था अरु कुंद एक बूंटा होता है तिसका फूल श्वेत है, तिस जैसे मेरे दंत हैं इस कारणते मेरा नाम पितामाताने कुंददंत रक्खा है, विदेह राजा जनकका जो नगर है तहाँसों आया हौं सो कैसा नगर है आकाशविषे जो स्वर्ग है तिसका मानौ प्रतिबिंब है अरु सबही शांतिवान् अरु निर्मल तहांके रहने वाले हैं, तहां मैं विद्या पढने लगा तिसकरि मेरा मन उद्वेगवान् हुआ कि, यह संसार महाक्रूरबंधन है, किसप्रकार इस बंधनते छूटौं. हे रामजी! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्न हुआ कि, किसप्रकार शांतिमान् होऊं, तब वहांते मैं निकसा, जो जो शुभ स्थान थे, तहां विचरने लगा, संतऋषिनके स्थान अरु ठाकुरद्वारे तीर्थ इनते आदि लेकरि जो पवित्र स्थान हैं तिनका दर्शन किया, तहांते आते एक पर्वत था, तिस ऊपर मैं गया, तहां जायकरि तप करने लगा, चिरपर्यंत मैंने तप किया, बहुरि वहांते एकांतके निमित्त आगे चला तहां एक आश्चर्य देखा, सो कहता हौं. हे रामजी! मैं वहांते चला आता था, जो बडा वन है अरु बहुत श्याम है, मानौ आकाशकी मूर्ति है,

शून्य अरु तमरूप है, तिस वनविषे एक कोमल वृक्ष मुझको दृष्टि आया, जिसके पत्र हैं अरु सुंदर टास हैं, तिसके साथ एक पुरुष लटकता है, पांवविषे मुंजका रस्सा है, वृक्षसाथ बांधा हुआ है, शीश नीचे अरु चरण ऊपरको दोनों हाथ छातीपर जुडे हुए अरु लटकता है, तब मैंने विचार किया कि, यह मृतक न होवै, इसको देखौं, जब मैं निकट गया,तब उसके श्वास आते जाते देखे अरु शरीर युवा अवस्था कांतिवारी हुई अरु अंतरते सबका ज्ञाता शीत उष्ण अरु अंधेरी मेघको सह रहा है,जानता सबको है परंतु सहि रहा है. हे रामजी ! तब मैं जानत भया कि, यह तपस्वी है, इसकी बडी शूरवीरता है, तब मैं उसके निकट बैठि गया, अरु उसके चरण जो बांधे हुए थे तिनको कछु ढीला किया, बहुरि उससे मैंने कहा, हे साधो ! ऐसी क्रूर तपस्या तू किसनिमित्त करता है, अपना वृत्तांत मुझको कहु. हे रामजी ! जब इसप्रकार मैंने कहा तब वह नेत्रको खोलिकै कहत भया. हे साधो ! यह तप मैं किसी अपनी कामनाके अर्थ करता हौं, सो ऐसी कामना है, जो तुम सुनौगे तब हांसी करोगे. हे रामजी ! जब इसप्रकार उसने कहा, तब मैंने कहा-हे साधो ! कछु हांसी न करौंगा तू अपना वृत्तांत कहु अरु जो तेरा कछु कार्य होवैगा अरु मुझसों होवैगा सो मैं करौंगा, जब मैंने इसप्रकार वारंवार कहा, तब उसने कहा, मनको उद्वेगते रहित करिकै सुन, मैं कहता हौं. हे साधो ! मैं ब्राह्मण हौं अरु मथुराविषे मेरा जन्म है, तहां जब बाल अवस्था मेरी व्यतीत भई अरु यौवन अवस्थाका आदि हुआ तब वेद अरु शास्त्रको मैंने भले प्रकार जाना, तब एक वासना आनि उदय भई कि, सबते बडा सुख राजा पाता और भोगता है, ताते मैं राजा होऊं अरु सुख भोगौं कि क्या सुख है अपर सुख मैंने भोगे हैं, बहुरि विचार किया कि, राज्यका सुख तब भोगौं जब राजा होऊं सो राजा क्योंकरि होऊं, राज्य तब होता है जब तप करता है, ताते मैंने तप करा. हे साधो ! ऐसे विचार कर मैं तप करने लगा हौं द्वादश वर्ष व्यतीत भये हैं अरु आगे भी करौंगा, जबलग सप्तद्वीपका राज्य मुझको नहीं प्राप्त होता तबलग तप करौंगा, यही निश्चय मैंने धारा है, मेरा शरीर ही नष्ट हो गया

अथवा सप्त द्वीपका राज्य मुझको प्राप्त भया, यह मेरा निश्चय है, सो मैंने तुझको कहा है अब जहां जानेकी तुझको इच्छा होय तहां जावहु. हे रामजी! इस प्रकार कहकर उस तपस्वीने बहुरि नेत्र मूंदिकरि चित्त स्थिर करनेको समाधानकरि इंद्रियकरि विषयका त्याग करि मन निश्चल किया तब मैंने उससे कहा-हे मुनीश्वर! मैं भी तेरे पास बैठा हौं जबलग तेरे तांई वरकी प्राप्ति नहीं होती तबलग मैं तेरी टहल करौंगा, मेरे तांई तेरे ऊपर दया आई है. हे रामजी! इस प्रकार मैं उससे कहकरि षट्मासपर्यंत मैं उसके पास बैठा रहा उसकी रक्षा करत रहा जब धूप आवै तब छाया करौं आंधी मेघविषे अपने शरीरको कष्ट देके रक्षा करौं, उद्वेगते रहित षट्मास जब बीते तब सूर्यके मंडलते एक पुरुष निकसा, बडा प्रकाशवान् जैसे विष्णु भगवान्का तेज है तैसे तेजवान् भासिकरि हमारे निकट आया, तिसको देखकर मैंने मन वाणी शरीर तीनोंकरि पूजा करी तब इस पुरुषने कहा-हे तपस्वी! अब इस तपको त्याग अरु जो कछु इच्छा है सो मांग, तेरी इच्छा तो यही है कि मैं सप्तद्वीपका राजा होऊं सो तू सप्तद्वीप पृथ्वीका राजा होवैगा अरु सप्तसहस्र वर्षपर्यंत राज्य करैगा परंतु अपर शरीरसाथ होवैगा. हे रामजी! इसप्रकार कहिकरि वह पुरुष सूर्यके मंडलविषे अंतर्धान हो गया, जैसे समुद्रते तरंग निकसकर लय हो जावैं तैसे लीन भया, तब उसको मैंने कहा-हे ब्राह्मण! अब क्यों तू संकट लेता है जिस निमित्त तू तप करता था सो वर तो तुझको प्राप्त भया अब क्यों संकट करता है. हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने कहा, जो सूर्यके मंडलते एक पुरुष बडा तेजवान् निकसकर तुझको वर दे गया है, तब नेत्र खोले अरु मैंने उसके चरणोंसों रसड़ी खोली तब उसका तेज बडा हो गया, उसके शरीरकी कांति प्रकाशवान् भई, तब निकट एक जलते रहित तालाव था उसके पुण्यकरि वह भी जलसों पूर्ण हो गया, तिसविषे हम दोनोंने स्नान किया बहुरि मंत्रपाठ किया अरु संध्याकरि बहुरि हम दोनों वृक्षके नीचे आये, जो वृक्ष फलते रहित था सो फलकरि पूर्ण हो गया, उसकी पुण्यवासनाकरिकै उन फलनका भक्षण किया, तीन दिनपर्यंत वहां रहा

बहुरि चला अरु कहत भया—हे साधो ! हम देशको चले हैं, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी हैं, आगे एक वन आया बहुत सुंदर फूल फल बूँटे सले हुए हैं, भँवरे विचरते हैं, जलके प्रवाह चलते हैं, कोयल अरु तोते अरु बगले इनते आदि लेकरि पक्षी पशु वृक्ष हम देखत भये, आगे ताल वृक्ष बहुत देखे, बहुरि आगे कंदराके स्थान आये ऐसे स्थान हम लंघते गये. हे रामजी ! राजसी तामसी सात्त्विकी तीनों गुणके रचे स्थानको लंघते मथुरा नगरके मार्ग आये; जो सीधा मार्ग था तिसको छांडिकरि वह टेढे मार्ग चला, तब मैंने कहा—हे साधो ! सूधे मार्गको छांडिकरि तू टेढा क्यों चलता है, तब उसने कहा—हे साधो ! तू चला आउ, इस मार्गमें गौरी भवगतीका स्थान है, तिनका दर्शन करते जावैं अरु मेरे अपर सप्त भाई गौरीके स्थानपर इसी कामनाको लेकरि तप करते थे, तिनकी भी सुधि ले आवैं. हे रामजी ! जब हम उस मार्गके सन्मुख चले तब आगे एक महाशून्य वन था, मानौ शून्य आकाश है,महातमरूप है, तहां कोऊ वृक्ष दृष्टि न आवै,अपर पशु पक्षी मनुष्य कोऊ दृष्टि न आवैं,तिस वनविषे उसने मुझको कहा—हे ब्राह्मण! इस स्थानविषे मैं आगे षट्मास रहा हौं अरु मेरे सप्त भाई अपर थे उन्होंने भी यह कामना धरिकरि देवीका तप आरंभ किया था, चलौ देखिये महापवित्र स्थान है, जिसके दर्शन कियेते संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, तब मैंने कहा चलिये, पवित्र स्थानको देखा चाहिये. हे रामजी! ऐसे विचार करि चले जावैं, जाते २ मरुस्थलकी तपी हुई पृथ्वीपर जाय निकसे, वह ब्राह्मण देखकर गिर पड़ा अरु कहत भया हा कष्ट ! हा कष्ट ! हम कहां आनि पड़े, मुझको भी भ्रम उदय हुआ कि यह क्या भया बहुरि उठा, उठिकरि आगे गये, तब एक वृक्ष हमको दृष्टि पडा, तिसके नीचे एक तपस्वी बैठा है, ध्यानविषे स्थित देखकरि हम तिसके निकट गये जायकरि कहा. हे मुनीश्वर ! जाग जाग, जब हमने बहुतवार कहा तब उसने नेत्र खोलिकरि हमको देखा अरु कहा कौन हौ तुम कौन हौ, ऐसे कहकरि कहा, बहुत आश्चर्य है, यहां गौरीका स्थान था, वह कहां गया, वृक्ष बावलियां कमल थे वह कहां गये, बडे सुंदर

स्थान थे सो कहां गये अरु बडे ऋषीश्वर मुनीश्वरके स्थान थे सो कहां गये ? हे साधो ! यह क्या आश्चर्य हुआ सो तुम कहौ, तब हमने कहा. हे मुनीश्वर ! हम नहीं जानते हम तौ अब आये हैं, इसको तुमहीं जानहु, तब कहत भया, बडा आश्चर्य है. हे रामजी ! ऐसे कहकर बहुरि ध्यानविषे स्थित हो गया अरु व्यतीत वृत्तांतका ध्यान करि देखत भया, एक मुहूर्तपर्यंत देखकरि बहुरि नेत्र खोलकरि कहा, बडा आश्चर्य होय बीता है, तब हमने कहा. हे भगवन् ! जो कछु वृत्तांत हुआ हो सो कृपा करिकै हमको कहौ, तब तपस्वीने कहा. हे साधो ! यहां एक समय वागीश्वरी भवानी इस वनविषे आती भई, तिसने एक रहनेका स्थान बनाया, तिसविषे शिवकी अर्ध शरीर गौरी रहत भई अरु उस स्थानके निकट बहुत सुंदर वृक्ष लगाये, कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष कदंबवृक्ष इत्यादिक बहुत लगाये अरु कमल फूल आदि लेकरि सर्व ऋतुके फूल लगाये, बावलियां बगीचे रमणीय रचे अरु कोयल भँवरे तोते मोर बगले इनते आदि लेकरि जो पक्षी हैं सो विश्राम करैं अरु शब्द करैं अरु निकट ऋषीश्वर मुनीश्वर तपस्वीकी कुटियाँ मानो इंद्रका नंदनवन है अरु निकट गांवकी वस्ती बहुत आनि हुई. हे साधो ! यहां आठ ब्राह्मण तपके निमित्त आये थे, षट्मास यहां रह गये हैं, बहुत सुंदर स्थान है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मगीतागौरीवाग्वर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८४ ॥

पंचाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८५.

ब्राह्मणकथावर्णनम् ।

कदंब उवाच-हे साधो ! मुझसों पूछा तौ अपना वृत्तांत मैं कहता हौं, मैं मालव देशका राजा था अरु चिरपर्यंत खेदते रहित मैंने विषयभोग भोगे हैं, बहुरि मुझको यह विचार आनि उपजा कि यह संसार स्वप्नमात्र है, इसको सत् जान स्थित होना मूर्खता है, एती आयुर्बल मेरी बीति

गई,मैंने सुकृत कछु न किया यह विषयभोग आपातरमणीय नाशवंत हैं, इनको मैं चिरपर्यंत भोगता रहा हौं अरु मुझको शांति प्राप्त भई, तृष्णा बढ़ती गई, ताते वही उपाय करौं जिसकरि मुझको शांति प्राप्त होवै, बहुरि दुःखी कदाचित् न होऊं. हे साधो ! यह विचार मुझको आनि उदय भया, तब मैं वैराग्य करिकै राज्यकी लक्ष्मी त्याग करी, ऋषि अरु मुनिके स्थान देखता इस कदंब वृक्षके नीचे आनि स्थित भया अरु ब्राह्मण आठ भाई आये थे सो एक तौ यह इसी पर्वतके ऊपर तप करने जाय लगा था अरु एक स्वामिकार्तिकके पर्वत ऊपर तप करने लगा था, एक बनारसविषे तप करने लगा, एक हिमालयके ऊपर तप करने लगा, चार भाई तौ इस प्रकार चारों स्थानोंको गये अरु अपर चार भाई यहां तप करने लगे अरु कामना आठोंकी है कि, हम सप्तद्वीप पृथ्वीके राजा होवैं. हे साधो ! इसको तौ सूर्यने वर दिया है अरु अपर जो सात थे तिनने वागीश्वरी भवानीको इष्ट करिकै तप किया, जब वह प्रसन्न भई अरु कहा, वर मांगहु, तब उन्होंने कहा, हम सप्तद्वीप पृथ्वीके राजा होवैं,सातने एकै वर मांगा तिनको वर देकरि परमेश्वरी अंतर्धान हो गई अरु यह भी वर मांगा जो यहांके वासी हैं तिनका स्थान भी हमारे पास होवै. हे साधो ! इस वरको पाइकरि वहांते चले अपने गृह गये अरु वह सदाशिवकी अर्धशरीर बारह वर्षपर्यन्त रही, बहुरि उनकी मर्यादा थापनेनिमित्त वहांते अंतर्धान हो गई, यहांके वासी भी सब जाते रहे, वागीश्वरीके जानेकरि यह स्थान शून्य हो गया, एक यह कदंब वृक्ष ही बचा है, एक मैं ध्यानविषे स्थित रहा हौं,यह वृक्ष भी रहा है, जो वागीश्वरीने अपने हाथकरि लगाया है, इस कारणते यह नष्ट नहीं भया अरु जर्जरीभाव भी नहीं भया. हे साधो ! इसके पास जो वस्तीवाले मनुष्य थे सो भी जाते रहे, भगवती अंतर्धान हो गई, मैं ध्याननिष्ठ हो रहा, अपर जीव यहां आयकरि अदृष्ट हो गये, इसकारण सब शुभ आचार रहे अरु उन आठों भाईविषे एक यह बैठा है,इसको भी घर जाना है, सात आगे गये हैं,वहां सब एकट्ठे जाय होवैंगे, जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरीविषे एकत्र होवैं तैसे एकत्र होवैंगे.हे साधो ! जब गृहते तप करने

निमित्त निकसे थे इनकी स्त्रियोंने विचार किया कि हमारे भर्ता तौ तप करने गये हैं हम भी जाय तप करैं तिन आठने तप आरंभ किया सो सौ चांद्रायण व्रत तिनने करे, महाकृश जैसे शरीर हो गये, जैसे वसन्त ऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढविषे कृश हो जाती है तैसे वह हो गईं, एक भर्ताका वियोग दूसरा तपकरि कृश हो गईं, तब पार्वती वागीश्वरी प्रसन्न भई अरु कहा कछु वर मांगहु, जैसे मेघको देखिकरि मोर प्रसन्न होकरि बोलता है तैसे वह प्रसन्न होके बोलीं. हे देवतोंकी ईश्वरी ! हम यह वर मांगती हैं कि हमारे भर्ता अमर होवैं जैसे तेरा अरु शिवका संयोग है तैसे हमारा भी होवै तब भवानीने कहा. हे सुभद्रे ! इस शरीरकरि तो अमर कोई नहीं रहता, आदि जो सृष्टि हुई है, तिसविषे नीति हुई है, जो शरीरकरि कोई नहीं रहै, जेता कछु जगत् देखा जाता है सो सब नाशरूप है, कोऊ पदार्थ स्थित नहीं रहता, अपर कछु वर मांगो, तब उन ब्राह्मणियोंने कहा. हे देवी ! भला जो जो हमारे भर्ता मरैं तौ इनके जीव हमारे गृहविषे रहैं इनकी संवित् बाहर न जावैं तब वागीश्वरीने कहा, ऐसे ही होवैगा, उनके जीव तुम्हारे ही घरविषे रहैंगे अरु उनको जो लोकांतर भासैगा तिस साथ ही तुम भी उनकी स्त्री होकरि स्थित होवोगी, ऐसे कहकरि अंतर्धान हो गई. कुंददंत उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ बहुरि मैंने कहा. हे मुनीश्वर ! तुझने आश्चर्यकथा सुनाई है कि, आठौं भाईने एक ही वर पाया; सप्तद्वीप पृथ्वीका एक ही पृथ्वीविषे तिन सबको राज्य क्योंकरि प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! जब इस प्रकार उसको मैंने कहा, तब कदंबतपा कहत भया. हे साधो ! यह क्या आश्चर्य है, अपर आश्चर्य सुन. हे ब्राह्मण ! जब यह आठौं भाई तपके निमित्त घरते निकसे थे तब इनके जो पिता माता थे, तिनने विचार किया कि, हमारे पुत्र तप करने गये हैं, हम भी उनके निमित्त जाय तप करैं, उनकी स्त्रियां साथ लेकरि तीर्थ अरु ठाकुरद्वारे दिखावते फिरे, दिखाइके उन्होंने एकांत बैठिकरि तप किया, तब कृच्छ्र चांद्रयण करिकै देवीको प्रसन्न कीनी अरु वर लेकरि अपने घरको आने लगे तब एक स्थानविषे दुर्वासा ऋषीश्वर

बैठा था, जैसा दुर्बल जैसे अंग तिसके अरु विभूति लगाई हुई अरु बडी जटा खुली हुई तिसको देखिकरि पासते ही लंघकरि चले गये, तिसको नमस्कार न किया, तब उसने कहा हे ब्राह्मण ! तू क्यों दुष्ट स्वभावकरिकै हमारे पाससे चला गया; हमको नमस्कार भी न किया अब तेरे वर निवृत्त होवैंगे, जो तुमको प्राप्त हुआ है सो न होवैगा, विपरीत हो जावैगा, तब उनने कहा. हे मुनीश्वर ! यह वचन कैसे कहते हो, हमारे ऊपर क्षमा करो, यह ऐसे ही कहते रहे कि वह अंतर्धान हो गया, तब ऐसे सुनकरि यह अपने गृहविषे शोकवान् होकरि आय स्थित भये, तौ हे ब्राह्मण ! तू देख कि, जबलग आत्मबोधते शून्य है तबलग अनेक दुःख उपजैंगे, कई प्रकारके आश्चर्य भासैंगे, संदेह दूर न होवैगा अरु जब आत्मबोध हुआ तब कोऊ संशय आश्चर्य न भासैगा. हे ब्राह्मण ! यह सब चिदाकाशविषे मायामात्र ही रचना बनतीहै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्राह्मणकथावर्णनं नाम पंचाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८५ ॥

षडशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८६.

ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनम् ।

कुंददंत उवाच–हे भगवन् ! मैं यह सुनिकरि आश्चर्यवान् हुआ हौं अरु एक संशय उत्पन्न हुआ है सो निवृत्त करौ, तुमने कहा इकट्ठे एक द्वीपविषे आठौ सप्तद्वीपके राजे होवैंगे, सप्त द्वीप तौ एक ही अरु राज्य करनेवाले आठ, यह कैसे राज्य करैंगे अरु इनने वर भी पाया अरु शाप भी पाया यह इकट्ठे क्योंकरि होवैंगे, जैसे धूप अरु छाया इकट्ठी होनी आश्चर्य है, जैसे दिन अरु रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं, तैसे वर अरु शाप एक होने कठिन हैं. कदंबतपा उवाच–हे साधो ! जो कछु इनकी भविष्यत होनी है सो मैं कहता हौं, जब केताक काल गृहविषे व्यतीत होवैगा तब इनके शरीर छूटते जावैंगे, क्रमकरिकै आठोंके शरीर छूटैंगे, इनको कुटुंबी जलावैंगे, इनकी पुर्यष्टका अनुभवसाथ मिली हुई एक

मुहूर्तपर्यंत जडीभूत सुषुप्त होवैगी, तिसके अनंतर चेतनता फुरि आवैगी शंख चक्र गदा पद्म चतुर्भुज विष्णुका रूप धारिके वर आवैंगे अरु त्रिनेत्र हाथविषे त्रिशूल भृकुटी चढाय क्रोधवान् सदाशिवका रूप धारि-करि शाप आवैंगे, दोनों इकट्ठे आनि होवैंगे, तब वर कहैंगे, हे शाप ! तुम क्यों आये हौ ? अब तौ हमारा समय है, जैसे एक ऋतुके समय दूसरी नहीं आती तैसे तुम न आवहु तब शाप कहैंगे, हे वरो ! तुम क्यों आये हौ ? अब तौ हमारा समय है, जैसे एक ऋतुके होते दूसरीका आना नहीं बनता तैसे तुम्हारा आना नहीं बनता, तब वर कहैंगे, हे शाप ! तुम्हारा कर्त्ता ऋषि मनुष्य है अरु हमारा कर्त्ता देवता है, मनुष्यकरि देवता पूजने योग्य हैं काहेते कि बडे हैं ताते तुम जावहु, जब इस प्रकार वर कहैंगे तब शाप क्रोधवान् होवैंगे अरु मारणेके निमित्त त्रिशूल हाथविषे उठावैंगे तब वर कहैंगे, हे शापो ! तुम अरु हम लडैंगे, तब पाछे किसी बडे न्यायकर्त्ताके पास जावैंगे, तब हमारा युद्ध निवृत्त करैगा सो प्रथम क्यों न किसी बडेके पास जावैं, जो कछु हमारे ताईं कहैं सो अंगीकार करना, ताते अबहीं चलौ, तब शाप कहैंगे, हे वरो ! कोऊ युक्तिसहित वचन कहता है, तिसको सब कोऊ मानता है, तुमने भला कहा है, चलिये, ऐसे चर्चा करिकै दोनों ब्रह्मपुरीविषे जावैंगे जायकरि ब्रह्मा-जीको प्रणाम करैंगे. हे देव ! यह हमारा न्याय करौ जो प्रथम वृत्तांत कहिकरि वर उनको स्पर्श करै हैं, अथवा शाप स्पर्श करै हैं तब ब्रह्माजी कहैगा हे साधो ! जो जिनका अभ्यास उनके अंतर दृढ होवे सो प्रवेश करौ तब वरके स्थान शाप जायकरि ढूंढैंगे अरु शापके स्थान वर जाय ढूंढैंगे ढूँढिकरि शाप आय कहैंगे, हे स्वामी ! हमारी हानि हुई है अरु वरकी जय हुई है, काहेते कि उनके अंतर वर ही स्थित हैं, जिसका अभ्यास अंतर स्थित है तिसीकी जय होती है, सो तौ इनके अंतर वज्रसारकी नाईं वर स्थित है. हे स्वामी ! हमारा आधिभौतिक शरीर कोऊ नहीं, हम संकल्परूप हैं, तिस संकल्पकी दृढता होती है, सोई आनि उदय होता है, वरका कर्त्ता भी ज्ञानमात्र होता है, वरको लेता भी वही ज्ञान-रूप है, वरको ग्रहण करता जानता जो यह हमारा स्वामी है तिस

संकल्पकारि वरका कर्त्ता देवता है, जो मैंने वर दिया है अरु ग्रहण करने-वाला जानता है कि, मैंने वर लिया है, हे ईश्वर ! उसका जो वररूप संकल्प है उसके निश्चयविषे दृढ होता जाता है, जिस संकल्पकी संवित् साथ एकता होती है, बहुरि वही प्रगट होता है, इसी प्रकार शाप भी है तो क्या है,न कोऊ वरहै,न शाप है, दोनों संकल्परूप हैं, जैसा संकल्प अनु-भव आकाशविषे दृढ होता है सोई भासता है, वर देनेवाला भी अनुभव-सत्ता है अरु लेनेवाला भी आत्मसत्ता है वही सत्ता वररूप होकरि स्थित होती है वही सत्ता शापरूप होकरि स्थित होती है,जिस संकल्पकी दृढता होती है तिसीका अनुभव होता है. हे स्वामी ! यह तुमसों सुना हुआ हम कहते हैं कि बाह्य कर्म कोऊ इसको फलदायक नहीं होता, जो कछु उसके अंतर सार होता है सोई फल होता है,इनके अंतर तौ वरका संकल्प दृढ़ है, हमारा है नहीं ताते हमारा तुमको नमस्कार है,अब हम जाते हैं. हे कुंददंत ! इस प्रकार करिकै शाप आधिभौतिक शरीर त्यागिकरि अंतवाहक शरीरसाथ अंतर्धान हो जावैंगे, जैसे आकाशविषे भ्रमकरिकै तरवरे भासैं अरु सम्यक् ज्ञानकरि अंतर्धान हो जावैं तैसे शाप अंतर्धान हो जावैंगे तब ब्रह्माजी कहैगा, हे वरो ! तुम शीघ्र ही उन पास जावहु, तब वह वर बहुरि पूछैगा अरु दूसरा वर जो उनकी स्त्रियोंने लिया था जो उनकी पुर्यष्टका अंतःपुरविषे रहै, ताते हे भगवन् ! हमको क्या आज्ञा है हमको तौ उनको उसी मंदिरविषे रखना है अरु उनको सप्त-द्वीप पृथ्वीका राज्य भी भोगना है अरु दिग्विजय करना है, यह कैसे होवैगा तब ब्रह्माजी कहैगा, हे साधो ! यह क्या है, जो सप्तद्वीपकी पृथ्वीका राज्य करना है, उनका तुम्हारेसाथ विरोध कछु नहीं, तुमको उसी मंदिरविषे उनकी पुर्यष्टका रखनी है अरु वहां ही राज्य भुगावना, अपना जो कछु तुम्हारा स्वभाव है सो करना. कुंददंत उवाच-हे भगवन् ! इसकारि तौ हमको बडा संशय उत्पन्न हुआ है उसी मंदिर-विषे आठों भाई सप्तद्वीप पृथ्वीका राज्य कैसे करैंगे एती पृथ्वी उस मंदिरविषे क्योंकरि समावैगी यह आश्चर्य है, जैसे कमलफूलकी डाँडी-विषे कोऊ कहै हस्ती शयन करै अरु हस्तीकी पंक्ति उसीविषे है, सो

आश्चर्य है तैसे यह आश्चर्य है. ब्राह्मण उवाच-हे साधो! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके अणुका जो सूक्ष्म अणु है तिसविषे जो स्वप्न फ़ुरा है सो हमारा जगत् है, तिस स्वप्नविषे यह समाय रही है सो मंदिरविषे समावना क्या आश्चर्य है. हे साधो! यह जगत् सब स्वप्नमात्र है, अहं त्वम् आदिक जगत सब स्वप्ननिद्राविषे फ़ुरती है आत्मसत्ता सदा अद्वैत है परमशांत अरु अनंत है तिसविषे जगत् आभासमात्र है, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव सूक्ष्मते सूक्ष्म होता है, तिसविषे त्रिलोकी भासि आती है जो सूक्ष्मसंवित्‌विषे त्रिलोकी भासि आती है तौ मंदिरविषे भासना क्या आश्चर्य है. हे साधो! जब यह पुरुष मरि जाता है तब इसकी सूक्ष्म पुर्यष्टका जड हो जाती है तिसविषे बहुरि त्रिलोकी फ़ुरि आती है सो तुम देखहु, सूक्ष्महीविषे भासि आई, क्योंकि जो परमसूक्ष्मविषे सृष्टि बन जाती है तौ मंदिरविषे होनेका क्या आश्चर्य है. हे साधो! जेता कछु जगत् भासता है सो सब आत्माविषे स्थित है, तिसका किंचन इस प्रकार हो भासता है, ताते तुम जावहु, उनको राज्य भोगावहु. हे कुंददंत! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहेगा तब वर नमस्कार करिकै आधिभौतिक शरीरको त्यागि देवैंगे, अंतवाहक शरीर साथ उनके हृदयविषे आनि स्थित होवैंगे, जैसे एक शत्रुको दूर करि दूसरा आनि स्थित होवै तैसे शापको दूर करिकै उनके हृदयविषे वर आनि स्थित भये, तिनको त्रिलोकी भासने लगी अरु पुर्यष्टकाको अंतःपुरविषे वरने रोकि छोडा, जैसे जल बनको रोकता है तैसे उनकी पुर्यष्टकाको रोकि छोडा. हे कुंददंत! इस प्रकार उनको अपने अंतःपुरविषे सृष्टि भासी अरु जानत भये, हम सप्तद्वीपके राजा हुए हैं, इस प्रकार आठ ही उस अंतःपुरविषे सप्तद्वीप पृथ्वीके राजा हुए परंतु इसको वह न जानैं, परस्पर अज्ञात सृष्टिके एक राजा सप्तद्वीपका भया अरु रहनेका स्थान जंबूद्वीपविषे जो उज्जयिनी है तिसविषे उसकी राजधानी हुई अरु एक कुशद्वीपविषे रहने लगा, एक राजा क्रौंचद्वीपविषे रहने लगा अरु एक शाकद्वीपविषे रहै, जो तिसको हरकारे आनि कहैंगे, पातालके नाग बड़े दुष्ट हैं तिनको किसी प्रकार जीतौ तब वह

समुद्रके मार्ग पातालविषे नागको जीतने जावैगा अरु चौथा एक द्वीपविषे अपनी स्त्रीसाथ शांत हो जावैगा अरु एक राजा शाल्मलिद्वीपविषे स्थित होवैगा तहां स्वर्णकी पृथ्वी है बडी प्रकाशसंयुक्त है तिस द्वीपविषे एक पर्वत होवैगा, तिसके ऊपर एक ताल होवैगा तिस तालविषे विद्याधरीसाथ लीला करता फिरैगा अरु पंचम एक क्रौंचद्वीपविषे राजा होवैगा, दिग्विजय करिकै आवैगा, तिसकी जो प्रजा होवैगी सो बडी धर्मात्मा मानसी पीडाते रहित होवैगी अरु एक गोमेदक नाम द्वीपविषे होवैगा, तिसका युद्ध पुष्करद्वीपवालेके साथ होवैगा अरु एक पुष्करद्वीपका राजा होवैगा सो गोमेदकवाले राजासाथ युद्ध करैगा. हे कुंददंत ! इस प्रकार वह सृष्टि अपने अंतःपुरविषे देखैंगे अरु राज्य भोगैंगे, परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होवैगी अरु राजधानी भी सबकी मैंने तेरे तांई कही, एककी जंबूद्वीप उज्जयिनीविषे, एककी शाकद्वीपविषे, एककी कुशद्वीपविषे, एककी क्रौंचद्वीपविषे, एककी पुष्करद्वीपविषे, एककी गोमेदकद्वीपविषे, एक लोकालोक पर्वत स्वर्णपृथ्वीविषे. हे साधो ! इस प्रकार उनकी भविष्यत् होनी है, सो मैंने सब तुझको कही है अरु जैसा इसके अंतर निश्चय होता है तैसा ही इसको फल होता है, बाह्य यह कैसी ही क्रिया करै अरु अंतर इसके सत्ता नहीं होती तब वह फलदायक नहीं होती, जैसे नट स्वांग बनायकरि चेष्टा करता है परंतु उसके अंतर उसका सद्भाव नहीं होता, इसकरि वह फलदायक नहीं होती अरु पुत्रविषे अंतर उनकी ओर चित्त लगा रहता है तौ अंतभावनाकरि वह परे पुष्ट होते हैं. हे साधो ! जैसा इसके अंतर निश्चय होता है सोई बरदायक होता है ताते निश्चय परमार्थका कारण योग्य है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनं नाम षडशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८६ ॥

सप्ताशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८७.

कुन्ददन्तोपदेशवर्णनम् ।

कुंददंत उवाच–हे मुनीश्वर ! मुझको संशय वडा प्राप्त हुआ है, जो उसी अंतःपुरविषे अपने अपने सप्त द्वीपका राज्य करेंगे सो कैसे होवैगा ? कदंबतपा उवाच–हे साधो ! जेते कछु जगत् तुझको दृष्टि आता है सो कछु बना नहीं, शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उनको जो अंतःपुरविषे अपनी अपनी सृष्टि भासैगी सो क्या रूप है, उनका जो अपना अनुभव है सोई सृष्टिरूप हो भासैगा, आप ही सृष्टिरूप अरु आप ही राजा होवैंगे, यह जो कछु जगत् तुझको भासता है सो भी परब्रह्म है; इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग स्वाभाविक फुरते हैं सो जलहीरूप हैं अरु लीन होते हैं सो जलहीरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, न कछु उपजा है, न मिटता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् उपजता अरु लीन होता है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ताते वह ब्राह्मण भी अजरूप हैं, अपने आपको फुरणेकरिकै जगत्रूप देखैंगे. हे साधो ! जब सुषुप्ति होती है तब अद्वैत अपना ही अनुभव होता है, बहुरि तिसविषे स्वप्नकी सृष्टि फुर आती है, सो क्या रूप है, वही सुषुप्तिरूप है, तैसे परम सुषुप्तिरूप जो आत्मा है, जहां सुषुप्ति भी लीन हो जाती है, तिसविषे यह जगत् फुरता है सो वही रूप है, आधार आधेयते रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. हे साधो ! जैसे एक ही मंदिरविषे बहुत पुरुष शयन करैं, उनको अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है तो कछु आश्चर्य नहीं, तैसे उनको अपनी अपनी सृष्टि भासैगी, इसविषे क्या आश्चर्य है, जो कछु जगत् भासता है सो ब्रह्मविषे है अरु ब्रह्मरूप ही अपने आपविषे स्थित है. कुंददंत उवाच–हे भगवन् ! आत्मसत्ता तौ एक है अरु केवल है, जिसविषे एक कहना भी नहीं, परम शांतरूप शिवपद है, अरु अद्वैतरूप है, तौ नानाप्रकार क्यों भासती है, यह तो स्वभावसिद्ध है, सो नानात्व होकरि वास्तव क्यों भासती है ? कदंबतपा उवाच–हे साधो ! सर्व शांतरूप है अरु चैतन्य

आकाश है, नानाप्रकार जो भासती है सो अपर कोऊ नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है सो बनी कछु नहीं, अपना अनुभव ही सृष्टिरूप हो भासता है, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है. हे साधो ! सृष्टिके आदि अद्वैत आत्मसत्ता थी, तिसविषे जो जगत् भास आया सो भी तू वही रूप जानहु, जैसे समुद्र ही तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है, जैसे पुरुष स्तंभते रहित स्थानविषे सोया है, तिसको बहुत स्तंभसंयुक्त मंदिर भास आया तो वहां बना तो कछु नहीं, अनुभव आकाश ही स्तंभरूप हो भासता है, तैसे जो कछु जगत् तुमको भासता है सो अपने अनुभवरूप जानहु, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, जैसे वर्फविषे शीतलता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, कोऊ जगत् कहौ, कोऊ ब्रह्म कहौ, ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वृक्ष अरु तरु एक ही वस्तु हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एक ही वस्तुके दो नाम हैं, इस जगत् अरु इंद्रियां मनते अतीत आत्माको जानहु अरु जो इन तीनका विषय है सो भी आत्माको जानहु, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं अरु नानारूप जो दृष्टि आता है सो नानात्व नहीं भया, दूसरा नहीं भासता है, जैसे स्वप्नविषे बडे आरंभ दृष्टि आते सेना अरु नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं परंतु कछु हुई नहीं तैसे यही जगत् नानाप्रकार भासता है परंतु कछु हुआ नहीं सर्व चिदाकाशरूप है, जैसे एक निद्राकी दो वृत्ति हैं, एक स्वप्न एक सुषुप्तिरूप, स्वप्नविषे नानात्व भासती है अरु सुषुप्तिविषे एकसत्ता होती है, तैसे चित्तसंवित्के फुरणेविषे नानात्व भासता है अरु अफुरणेविषे एक है. हे साधो ! सर्वदा कालविषे एकरूप है परंतु प्रमादकरिके भेद भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि अपना ही अनुभवरूप है परंतु प्रमादकरिके भिन्न भिन्न भासती है, तैसे यह जगत् है, हमको तो सर्वदा काल वही भासता है, जैसे पत्र फूल फल टास एक ही वृक्षके नाम हैं, जो वृक्षका ज्ञाता है तिसको सब वृक्षरूप भासता है, तैसे सर्व नामरूपकरि हमको आत्मा ही भासता है, आत्माते इतर कछु नहीं भासता, आदि फुरणेविषे जैसे निश्चय हुआ है सो अपर निश्चयपर्यंत तैसे ही रहता है, यह सब विश्व संकल्परूप है, संकल्पका

अधिष्ठान ब्रह्म है, ब्रह्म ही संकल्परूप होकरि भासता है, ताते जेता कछु संकल्परूप जगत् भासता है सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, एक ही वस्तुके दो नाम हैं, जैसे वृक्ष अरु तरु दोनों एक वस्तुके नाम हैं तैसे ब्रह्म अरु जगत् दोनों एक चेतनके नाम हैं. हे साधो ! जो शब्द वाणीते अगोचर है तिसको ब्रह्म जान अरु जो शब्द वाणीविषे आता है तिसको भी तू ब्रह्म जान, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जो ज्ञानवान् हैं, तिसको सब ब्रह्म ही भासता है, अज्ञानीको नानात्व भासता है, जब अध्यात्म अभ्यास करैगा तब सब जगत्‌रूप ही भासैगा, इसका नाम बोध है. हे साधो ! नानाप्रकार होकरि जगत् देखाई देता तो भी नानात्व कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै नानाप्रकारके तरंग बुद्‌बुदे चक्र दृष्टि आते हैं परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थ दृष्टि आते हैं सो सब आत्मरूप हैं, जेते कछु जीव बोलते दृष्टि आते हैं सो भी महा-मौनरूप हैं, अपर कछु बना नहीं, चित्तके फुरणेकरिकै नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं परंतु आत्माते इतर कछु नहीं, वही चिदाकाश ज्योंका त्यों स्थित है अपर कछु बना नहीं, जो कछु आत्माते इतर विद्यमान भासता है तिसको अविद्यमान जान, ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि जेता जगत् भासता है सो सब स्वप्नविलास है, जैसे नेत्रदूषणकरिकै आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरिकै आत्माविषे जगत् भासता है बना कछु नहीं, जैसे सुषुप्तिविषे पुरुष सोया है तिसको फुरणा नहीं फुरता, बहुरि तिसी सुषुप्तिसों स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, सो बनी कछु नहीं वही सुषुप्तिरूप है अरु स्वप्नविषे स्थित पुरुष है तिसको सत् भासता है अरु जो अनुभवविषे जागा है तिसको सुषुप्तिरूप है, तैसे यह जगत् जान, आत्माते इतर कछु नहीं, जब जागकरि देखैगा तब सब चिन्मात्र ही भासैगा, शांतरूप है, अनंत है सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जो जगत् भासता है सो सत् भी नहीं अरु असत् भी नहीं सत् इस कारणते नहीं कि आभासमात्र है अरु नाशवंत है अरु असत् इस कारणते नहीं कि प्रगट भासता है वास्तवते आत्मसत्तासों भिन्न नहीं, भाव अभाव सुख दुःख उदय अस्त वही आत्मसत्ता इस प्रकार हो भासती

है, जैसे एक ही निद्राके दो पर्याय हैं स्वप्न भी अरु सुषुप्ति भी, तैसे जगत् अरु आत्मा दोनों एक ही सत्ताके पर्याय हैं, जैसे एक ही वायु स्पंद अरु निस्पंद दो रूप होती है, तैसे आत्मसत्ताके दोनों रूप हैं, जब संवेदन जो है जानना सो नहीं फुरता तब अद्वैतरूप होती है अरु जब अहम् इस भावको लेकरि फुरती है, तब संकल्परूपी सृष्टि बन जाती है, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी तत्त्व भास आते हैं, नक्षत्रचक्र देवता मनुष्य पशु पक्षी जलका नीचे चलना अग्निका ऊर्ध्व चलना तारागण प्रकाशवान् पृथ्वी स्थिरीभूत इनते आदि लेकरि जो स्थावर जंगम रूप सृष्टि है सो अपने स्वभावसहित भासती आती है, शुभ अशुभ कर्म होते हैं, तिसविषे सुख दुःख फलकी नेति होती है, सो क्या है आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, जैसे तू मनोराज्यकरिकै स्वप्ननगर कल्प लेवै तिसविषे अनेक प्रकारकी चेष्टा होवै सो जबलग संकल्प होवै तबलग वही सृष्टि स्थित होती है, जब संकल्प मिटि गया तब सृष्टि लय हो जाती है तौ वस्तु कछु न भई, तेरा अनुभव ही सृष्टिरूप होकरि स्थित भया, तैसे यह जगत् अनुभव-रूप है अपर कछु नहीं. कुंददंत उवाच—हे रामजी ! संकल्प जो फुरता है सो पूर्व स्मृतिको लेकरि फुरता है, ब्रह्मविषे जो मनोराज्य संकल्पकी सृष्टि उत्पन्न होती है, सो किसी संसारको लेकरि फुरती है यह संशय मेरा निवृत्त करौ. कदंबतपा उवाच—हे साधो ! यह संपूर्ण सृष्टि किसी संस्कारते नहीं उत्पन्न भई भ्रमकरिकै भासती है, जैसे स्वप्न-विषे आपको मृतक हुआ जानता है सो उसको पूर्वले संस्कारकी स्मृति तौ नहीं होती अपूर्व ही भास आती है, तैसे यह पदार्थ जो तुझको भासते हैं सो अपूर्व हैं, किसी स्मृतिकरि नहीं भये स्मृति अनुभव तौ जगत्‌ही-विषे उत्पन्न भये हैं, जब जगत्का फुरणा न फुरा था तब स्मृति अनु-भव भी न थे, जब जगत् फुरा तब यह भी फुरा है ताते संपूर्ण जगत् अपूर्व है भ्रमकरिकै भासता है, जैसे स्वप्नविषे मुआ किसी कुलविषे अपना जन्म देखै अरु उसका कुल चिरकालका चला आता है, ऐसे भासे अरु जब जागि उठा तब पूर्व किसको कहै, स्मृति किसकी करै,

न कहूँ जन्म रहता है, न कुल रहता है, तैसे ज्ञानवान्‌को यह जगत् आकाशरूप भासता है, तो मैं तुझको पूर्वकी स्मृति क्या कहौं. हे ब्राह्मण! अपर कछु बना नहीं, आत्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों स्थित है, जिसतें यह सर्व जगत् हुआ है अरु जिसविषे यह सर्व है, जो सर्व है सो सर्वात्मा है, जो वही है तौ दूसरा किसको कहौं, ताते ऐसे जानिकरि तुम विचारौ, तब तुम्हारे दुःख नष्ट होवैंगे. हे साधो! छ जो कारक हैं सो ब्रह्मरूप हैं, कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण; यह छ ब्रह्मरूप हैं; कर्त्ता कहिये कर्मको करनेहारा अरु कर्म कहिये जो कर्म करना होवै, करण कहिये क्रियाका साधक अरु संप्रदान कहिये जिस निमित्त होवै, अपादान कहिये जिसते ले करिये अरु अधिकरण कहिये जिसविषे करिये. हे साधो! यह छ कारक ब्रह्मरूप हैं, इसविषे विश्वका कर्त्ता भी ब्रह्म है, विश्वकर्मा भी ब्रह्म है, विश्वका साधक भी ब्रह्म है, जिस-विषे निमित्त यह विश्व है सो भी ब्रह्म है, जिसविषे यह विश्व होता है सो भी ब्रह्म है. हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है तिसको नमस्कार है. हे साधो! तिस सर्वात्माको ऐसे जानना, यही उसकी परम पूजा है, ऐसे ही तुम पूजन करहु. हे साधो! अब तुम जावहु, अपना जो कछु वांछित है तिसविषे विचरहु अरु तुमको अपने बांधव चितवते होवैंगे तिनके पास जावहु, जैसे कमलपास भँवरे जाते हैं अरु हम भी समाधि-विषे स्थित होते हैं, जो कछु गुह्य बात है सो भी मैं कहता हौं, जिसते कोऊ सुख पाता है, सोऊ करता है, मुझको जगत् दुःखदायक दृष्टि आया है, इस कारणते समाधिविषे जुडता हौं. हे साधो! यद्यपि मेरे तांई सब अवस्था तुल्य हैं, भेद कछु नहीं तौ भी चित्तकी वृत्ति जो संसारके कष्टते दुःखित होकरि आत्मपदविषे स्थित हुई है, तिस स्थितका जो कोऊ सुख है, तिसके संस्कारकरि बहुरि तिसी ओर धावता है, ताते तुम जावहु मैं समाधिविषे स्थित होता हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० कुंददंतोपदेशो नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८७ ॥

अष्टाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८८.
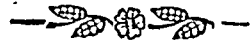
कुंददंतविश्रामप्राप्तिवर्णनम्।

कुंददंत उवाच—हे रामजी! इस प्रकार कहिकरि वह बहुरि समाधिविषे जुडि गया, इंद्रियां अरु मनकी क्रियाते रहित हुआ, मानौ कागजके ऊपर मूर्ति लिख छोडी है, ऐसे हो गया तब हम बहुरि जगाय रहे, बडे शब्दकरि रहे परंतु वह न जागा तब हम वहांते चले ब्राह्मणके घर आये उनके घरविषे बडा उत्साह हुआ बहुरि समय पाय क्रमकरिकै सातो भाई मर गये अरु अष्टम मेरा मित्र जीता रहा बहुरि वह भी मृतक हो गया, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ मेरा प्रीतम भी मर गया अब मैं क्या करौं? हे रामजी! मैंने विचार किया कि बहुरि कदंबतपाके पास जाऊं जो मेरा दुःख नष्ट होवैगा तब मैं गया जायकरि तीन मासपर्यंत उसके पास रहा, उसको मैं जगाय रहा परंतु वह न जागा, तीन मास हो चुके तब वह जागा मैंने उसको प्रणाम करिकै कहा, हे मुनीश्वर! वह तौ अपने अपने राज्यको भोगने लगे हैं अरु मैं एकला कष्टवान् हुआ हौं ताते मेरा दुःख तुम नष्ट करौ मैं तुम्हारी शरण आया हौं. कदंबतपा उवाच—हे साधो! मैं तुझको उपदेश करौं परंतु तुझको स्वरूपका साक्षात्कार न होवैगा काहेते कि अभ्यास तुझसों न होवैगा अरु अभ्यासविना साक्षात्कार स्वरूपका नहीं होता, मेरा कहना भी व्यर्थ होवैगा ताते मैं दुःख नष्ट होनेका उपाय तुझको कहता हौं तिसकरि तू मेरे समान होवैगा, दुःखते रहित अनंत आत्मा होवैगा. हे साधो! अयोध्या नगरी है तिसका राजा दशरथ है तिसके गृहविषे रामजी पुत्र है तिस रामजीको वसिष्ठजी मोक्षउपाय उपदेश करैगा, बडी सभाविषे कहैगा तहां तू जा तुझको भी स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी संशय मत कर. हे रामजी! जब इस प्रकार उस तपस्वीने मुझको कहा तब वहांते चला मैं तुम्हारे पास आया हौं जो कछु तू पूछता था सो सब वृत्तांत कहा है, जो कछु देखा सुना है सोई कहा है. राम उवाच—हे वसिष्ठ! वह वृत्तांत मैंने उसका सुना था सो प्रभुके आगे कहा है अरु कुंददंत भी

तुम्हारे पास यह बैठा है, अब इसते पूछिये कि स्वरूपकी प्राप्ति हुई है अथवा नहीं हुई, तुम इसकी अवस्था पूछहु. वाल्मीकिरुवाच-हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजीने कहा, तब वसिष्ठजी मुनिविषे शार्दूल हैं सो तिसकी ओर कृपादृष्टि करिकै बोलत भये. वसिष्ठ उवाच-हे ब्राह्मण! यह मोक्षउपाय जो मैंने संपूर्ण कहाहै तिसको सुनकरि तू क्या जानत भया है? कुंददंत उवाच-हे सर्वसंशयके छेदनेहारे! जो कछु मुझको संशयरूपी तम आवरण था सो सब नष्ट हो गया है; तुम्हारे वचनरूपी प्रकाशकरि अज्ञानरूपी अंधकारका नाश भया है अरु जो कछु जानने योग्य पद है सो मैंने जाना है, जो कछु पानेयोग्य था सो मैंने पाया है, अब मैं अपने स्वभावविषे स्थित भया हौं, अब मुझको कल्पना कोई नहीं रही, मैं अनंत आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अच्युत हौं, परमानंदस्वरूप हौं, सर्व जगत् हमारा ही स्वरूप है. हे भगवन्! अंतःपुरीविषे जो एती सृष्टि समानेका संशय था सो तुम्हारे वचनकरि दूर भया है अरु एक एक राईविषे मुझको ब्रह्मांड भासते हैं अरु आत्मत्वभावकरिकै दिखाई देते हैं, जैसे अनेक दर्पणविषे अपना मुख ही भासता है, तैसे मुझको सर्व ओरते अपना आपविषे भासता है. हे भगवन्! तुम्हारे वचन मैंने आदिते लेकरि अंतपर्यंत संपूर्ण श्रवण किये हैं, कैसे वचन तुमने कहे हैं, परम पावन हैं अरु सारते परम सार हैं आत्मबोधका कारण हैं, तिनके विचारे मेरी भ्रांति निवृत्त हो गई है अरु अपने आपविषे स्थित भया हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० कुंददंतविश्रामप्राप्तिर्नामा-ष्टाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८८ ॥

एकोननवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८९.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम्।

वाल्मीकिरुवाच-जब इस प्रकार कुंददंतने कहा, तब वसिष्ठजी मुनिकरि परम उचित वचन परमपद पानेका कारण बहुरि कहत भये.

वसिष्ठ उवाच--हे रामजी! अब कुंददंतने आत्मानुभवविषे विश्राम पाया है, इसको अब हस्तामलकवत् अपना आप अनुभवरूप जगत् भासता है, आत्मा ही निद्रास्वरूप होकरि भासता है अरु आत्मा ही क्षुधारूप है, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं अपना अनुभव जगतरूप हो भासता है सो अनुभव आकाश कैसा है, सम शांतरूप है, अनंत है अखंड है सदा ज्योंका त्यों है. हे साधो! नानारूप भासता है परंतु अनाना है सदा ज्योंका त्यों अचैत्य चिन्मात्र परम शून्य है, जिसविषे शून्य भी शून्य हो जाती है चैत्य दृश्यरूप जो फुरणा है तिसते रहित है, इसी कारणते परम शून्य है बोलता दृष्टि आता है तौ भी परम मौन है. हे रामजी! तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे पहाड दृष्टि आते हैं सो न सत् हैं न असत् हैं, तैसे यह जगत् सत् असत्ते विलक्षण है काहेते कि कछु बना नहीं, जो कछु भासता है सो आत्मा है, जैसे रत्नका प्रकाश चमत्कार होता है, तैसे आत्माका प्रकाश जगत् है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंगरूप हो भासता है तैसे ब्रह्म संवेदनकरिकै जगत्रूप हो भासता है अरु आदि स्पंद फुरि आये हैं सो जगत्-रूप होकरि स्थित भया है सो जैसे हुआ तैसे हुआ, सो कार्यकारण-भावते रहित है, जिसको प्रमाद है तिसको यह कारणभाव भासता है, उसको तैसा ही है, जब सत् जानिकरि पाप करता है सो बडे पाप आनि उदय होते हैं तब स्थावररूप होता है बहुरि स्थावरको त्यागिकै जंगम मनुष्य होता है. हे रामजी! इस प्रकार यह ज्ञानसंवित् चैत्यसंबंधी होकरि नानाप्रकारके रूप धारती है अरु प्रमादकरिकै भिन्न भिन्न भासती है परंतु स्वरूपते कछु अपर नहीं होती, सदा अखंडरूप है, जबलग प्रमाद होता है तबलग जगतका आदि अरु अंत नहीं भासता, जब प्रमादते जागता है तब सर्व कल्पना मिटि जाती हैं. हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है सो कछु बना नहीं वही ब्रह्मसत्ता अपने आप-विषे स्थित है, जब जाग्रत् अवस्थाका अभाव होता है अरु सुषुप्ति आती है, तिसविषे न शुभकी कल्पना रहती है, न अशुभकी कल्पना रहती है, उदय अस्तकी कल्पनाते रहित अद्वैत सत्ता रहती है, जब बहुरि तिसविषे

चेतनता फुरती है, तब बहुरि स्वप्नकी सृष्टि भासती है, कहूँ स्थावर जंगम सृष्टि भासती है, जिनविषे संवेदन फुरती भासती है सो जंगम कहाता है अरु जिनविषे संवेदन फुरणा नहीं भासता सो स्थावर कहाता है परंतु अपर कछु नहीं, वही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जंगमरूप हो भासती है तैसे आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है. हे रामजी! सृष्टिके आदि परम सुषुप्ति सत्ता थी तिसविषे संवेदनफुरणेकरिकै जगत् भासि आया, सो वही संवेदनरूप जगत् है, जिस आत्मसत्ताविषे फुरी है वही रूप है, इतर कछु नहीं, जैसे शरीरके अंग हस्त पाद नख केशादिक सब शरीररूप हैं, तैसे परमात्माके अंग हस्त पादादिक जंगम सृष्टि अरु नखकेशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मरूप हैं, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं बनी, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है, जैसे संकल्पपुर रची सृष्टि संकल्प रूप होती है तैसे यह सृष्टि अनुभवरूप है यह किसी कारणकरि नहीं उपजा; ताते ब्रह्महीरूप है, ब्रह्मके सूक्ष्म अणुविषे सृष्टि फुरी है सो क्या रूप है ब्रह्म ही सृष्टि है अरु सृष्टि ही ब्रह्म है, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं परंतु अज्ञाननिद्राकरिकै भिन्न भिन्न भासता है. राम उवाच--हे भगवन्! निद्राका केताक प्रमाण है अरु केते कालपर्यंत रहती है अरु सूक्ष्म अणुविषे सृष्टि कैसे फुरी है अरु कैसे स्थित है अरु अणु किसकरि उसकी संज्ञा है, अरु अनंत क्योंकरि है अरु जो देवता असुरादिक रूपको चित्त प्राप्त हुआ है? वसिष्ठ उवाच--हे रामजी! अज्ञाननिद्रा अपने कालविषे तौ अनादि है, जानी नहीं जाती कि कबकी भई है अरु अंत भी नहीं जाना जाता कि कबलग रहैगी; अज्ञानकालविषे तौ इसका आदि अन्त परिमाण कछु नहीं भासता अरु बोधमें इसका अत्यंताभाव देखा जाता है अरु चित्तसत्ताकी जो अनंतता पूछै सो हे रामजी! अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है, तिसविषे सूक्ष्मभाव "अहम् अस्मि" जो संवित् फुरती है तिसका नाम चित्त है, तिस चित्तविषे आगे जगत् होता है, शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदन चित्त फुरता है, तिसविषे जगत् है, वही चित्त देवता असुर अरु जङ्गमरूप हो भासती हैं, नाग पिशाच कीटादिक

स्थावर जंगमरूप होय भासती है अरु वस्तुते चेतनसत्ता ही है तिसते इतर कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, फुरणेकरि नानाप्रकार है. हे रामजी ! परम शुद्ध चिद् अणुसाथ मिलिकरि चित्त अनेक ब्रह्मांडको धारता है, तिस सूक्ष्म अणुविषे अनंत ब्रह्मांड फुरते हैं परंतु तिसते भिन्न नहीं, जैसे एक पुरुष शयन करता है, तिसको स्वप्नविषे अनेक जीव भास आते हैं, तिन जीवविषे अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि फुरती है, सो अनेक सृष्टि हो जाती है, तैसे सूक्ष्म चिद् अणुविषे अनंत सृष्टि फुरती है, परंतु कछु आत्मसत्ताते इतर नहीं बना, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे अनंत त्रसरेणु होती हैं सो सूक्ष्म होती हैं, तैसे परमात्मा सूर्यके चिद् अणु सूक्ष्म हैं, इन त्रसरेणुते भी सूक्ष्म चिद् अणुविषे अनंत सृष्टि अपनी अपनी फुरती हैं. हे रामजी ! जबलग चित्त फुरता रहता है तबलग सृष्टिका अन्त नहीं आता; असंख्य जगत् भ्रम इस आगे देखे हैं अरु असंख्य ही आगे दीखैगा, जब चित्त फुरणेते रहित होता है तब जगत्कलना मिटि जाती है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, बडे व्यवहार होते हैं, जब जाग उठता है तब स्वप्नसृष्टि व्यवहारकी कल्पना मिटि जाती है, अद्वैत अपना आप ही भासता है, तैसे चित्तके ठहरनेते सब भ्रम मिटि जाता है. हे रामजी ! सूक्ष्म चिद् अणु भी इसकी संज्ञा तब हुई है, जब इसको चित्तका सम्बन्ध हुआ है, जब चित्तको अपने स्वभावविषे स्थित करैगा तब द्वैतकल्पना सूक्ष्म स्थूल भाव मिटि जावैगा अरु सूक्ष्म जो इसकी संज्ञा है सो अविद्यकभावकरिकै है, जो इंद्रियका विषय नहीं, इसकरि अणुता है अरु सूक्ष्म अणुविषे व्यापा हुआ है, इसकरि सूक्ष्म अणु कहाता है अरु अनंतता इसकरिकै जो सबको धारि रहा है अरु यह जगत् क्या है. हे रामजी ! यह जगत् अभावमात्र है, जैसे मरुस्थलविषे जलाभास होता है तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, यह जगत् है ही नहीं तौ इसका कारण कौन कहिये, आदि सृष्टि अकारण फुरी है, बहुरि इसविषे कारणकार्य भासने लगे सो आभासकी दृढता हो गई है, जैसे स्वप्नविषे आदि सृष्टि अकारण बीज वृक्ष कुलाल माटी घट इकट्ठे फुरि आते हैं, जब उस स्वप्नकी दृढता हो जाती है, तब कारण

कार्य भासते हैं परंतु जो सोया पडा है तिसको दृढ भासते हैं, तैसे अज्ञानीको जगत् कार्यकारण दृढ भासता है ज्ञानवान्को सब अपना आपही भासता है, जैसे स्वप्नते जागे स्वप्नसृष्टि अपना आपही भासती है कि मैं ही था अपर कछु न था, तैसे ज्ञानवान्को सब जगत् आकाशरूप भासता है, पृथ्वी आप तेज वायु आकाश देवता मनुष्य पशु पक्षी पर्वत वृक्ष नदी स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है सो सब आकाशरूप है संवेदनके फुरणेकरि दृष्ट भासते हैं वास्तवते इतर कछु नहीं. हे रामजी! यह जगत् चित्तविषे स्थित हैं जैसे किसी पुरुषके स्तंभविषे पुतलियां कल्पीं सो पुतलीके दो रूप होते हैं, जो शिल्पीको चित्तविषे फुरती हैं सो आकाशरूप हैं अरु जो स्तंभविषे कल्पी हैं सो स्तंभरूप हैं, स्तंभविषे स्थित रूप हैं अरु शिल्पीके चित्तविषे नृत्य करती हैं. हे रामजी! अपर तौ कछु नहीं, स्तंभरूप हैं, सो शिल्पीके चित्तविषे कल्पनामात्र हैं, तैसे चित्तरूपी शिल्पीकी जगत्रूपी पुतलियां कल्पनामात्र हैं, आत्मरूपी स्तंभ ज्योंका त्यों है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे पटके ऊपर मूर्ति लिखी होवै सो मूर्तिका रूप पट ही है, पटते इतर कछु नहीं वह पट ही मूर्तिरूप भासता है, तैसे यह जगत् आत्माते इतर कछु नहीं, आत्मा ही जगत्रूप हो भासता है, आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे ब्रह्म आकाशरूप है तैसे ही जगत् आकाशरूप है, जगत्रूप आधार है, ब्रह्म तिसविषे बसनेहारा है अरु ब्रह्मरूप आधार है जगत् तिसविषे बसनेहारा है. हे रामजी! जैसे समूह है, जगत्विषे विद्या अरु अविद्यारूप सो सब संकल्पकरि रचित है अरु वास्तवते सब आत्मस्वरूप है, समता सत्यता निर्विकारता इनते आदि लेकरि अरु इनते विपरीत अविद्यारूप सो सब एक ही रूप हैं, एकहीविषे फुरते हैं अरु एक ही रूप हैं, जैसे स्वप्न जगत् अनुभवरूप अनुभवविषे स्थित होता है सो सर्व आत्मरूप होता है, तैसे यह जगत सर्व ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर न कछु वरकी कल्पना है, न शापकी कल्पना है, ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे न कारण है, न कार्य है, जैसे ताल नदी मेघका एक ही जल होता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है.

राम उवाच–हे भगवन् ! वर अरु शापके कर्त्ता तौ परिच्छिन्न पाते हैं, कारणविना तौ कार्य नहीं पाता, तुम कैसे कहते हौ; कि कारण कार्य कोऊ नहीं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ताका किंचन जगत् होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं तैसे आत्मसत्ताविषे जगत् फुरता है; जैसे तरंग जलरूप होते हैं तैसे जगत आत्मरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे आदि परमात्माते सृष्टिका फुरणा हुआ है, तैसे ही स्थित है, अन्यथा नहीं होता सब जगत् संकल्परूप है अनेक प्रकारकी वासना संवेदनविषे फुरती हैं, जिनको स्वरूपका विस्मरण भया है तिनको यह जगत् सत्‌रूप भासता है, जो उनको विचार उत्पन्न होवै तौ वही काल है, जिस कालविषे विचार उत्पन्न होता है, तिसी कालविषे अज्ञान निद्राका अभाव होता है. हे रामजी ! जब विचार अभ्यासकरिकै मन तद्रूप होता है तब इसको यथाभूत दर्शन होता है अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपना आप ही भासता है, काहेते कि अपने आपविषे स्थित है, जो सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, तिसविषे इसको अहंप्रतीति होती है, इस कारणते अपने आपविषे सृष्टि भासती है, जैसे स्पंद फुरते हैं तैसे ही उसका सिद्ध होता है निरावरण दृष्ट होता है निरावरण दृष्ट करिकै सर्व संकल्प सिद्ध होता है, काहेते कि यह जगत् सब आत्माविषे संकल्पका रचा हुआ है, तिसविषे इसको अहंप्रत्यय हुई है. हे रामजी ! जो संकल्प उसको उठता है कि यह कार्य ऐसे होवै सो तैसे ही होता है. हे रामजी ! शुद्ध संवेदनविषे संकल्प होता है सोई हो भासता है, सो संकल्प ही रूप है संकल्पते इतर नहीं इस कारणते वर अरु शापका अपर कारण कोऊ नहीं, वर अरु शाप भी संकल्परूप हैं अरु तिसकरि जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है सो किसी कारण समवायकरि तो नहीं उत्पन्न हुआ संकल्पहीकरि क्यों हुआ ताते सब अकारणरूप हैं अरु ब्रह्मरूपी समुद्रके तरंग उठते हैं अपर कारण अरु कार्य मैं तुझको क्या कहौं सब जगत् ब्रह्मरूप है, अपर द्वैत अरु एककी कल्पना कछु नहीं. हे रामजी ! हमको सदा ब्रह्मसत्ता ही भासती है कार्य कारण कोऊ नहीं भासता, जैसे स्वप्नविषे किसीके घरमें पुत्र भया बडे उत्साहको प्राप्त हुआ जब जाग्रतका संस्कार चित्त

आया तब उसका पिता ही उपजा नहीं तौ पुत्र कैसे कहिये, सब अपना आप ही हो जाता है न कोऊ कारण भासता है, न कार्य भासता है अरु जो स्वप्नविषे सोया है तिसको जैसे भासता है तैसे ही भासता है, जैसे वर अरु शापका आश्रय संकल्प है, संकल्प ही वर शाप हो भासता है, कारण भी होता है अरु जिसको शुद्ध संवेदनसाथ एकता भई है सो निरावरण है, तिसविषे जैसे फुरणा आभास फुरता है, तैसा ही सिद्ध होता है. राम उवाच--हे भगवन् ! एक ऐसे हैं जिनको आवरण है अरु उनका संकल्प जैसे फुरता है, वर देवै अथवा शाप देवै, तैसे ही हो जाता है अरु स्वरूपका साक्षात्कार उनको नहीं भया अरु शुभ कर्म उनविषे प्रत्यक्ष पाते हैं, तौ शुद्ध कर्म ही कारण भये, वर शापके तुम कैसे कहते हौ, जो निरावरण पुरुषका संकल्प सिद्ध होता है. वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है सोई चित्तधातु कहाती है, तिस चित्तधातुविषे जो आभास फुरणा है, जो संवेदन कहाती है सो संवेदन जब फुरती है तब जाना जाता है कि मैं ब्रह्म हौं, तो संवेदन ही आपको जगत्का पितामह जानत भई क्यों ? तिसने आगे मनोराज्य कल्पा, तब पंचभूतका जानना हुआ, जो शून्यरूप आकाश हुआ स्पंदरूप वायु है, उष्णरूप अग्नि है, द्रवतारूप जल है, कठोररूप पृथ्वी है, बहुरि देश अरु कालकी कल्पना भई, स्थावर जंगम पदार्थकी कल्पनाकरि वेद शास्त्र धर्म अधर्मका फुरणा हुआ, तिसविषे यह निश्चय हुआ कि, यह तपस्वी है इसने तप किया है, इसके कहेते वर होवै अरु जो कछु कहै सो होवै, स्वरूपके साक्षात्कारते रहित है, तौ भी इसका कहा होवै, यह तपका फल है, आदि संकल्प ऐसे हुआ है, तौ वर शापका कर्त्ता तपस्वी नहीं, इसका अधिष्ठान वही संवेदन है, जिसते आदि संकल्प फुरा है. हे रामजी ! वर अरु शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदनते फुरा है, संवेदन आत्माका आभास है, तौ मैं कारण अरु कार्य क्या कहौं अरु जगत् क्या कहौं, आत्माका आभास संवेदन ब्रह्मा है, तिसने आगे संकल्पपूर्वक सृष्टि रची है, हम तुम आदिक सब उसके संकल्पविषे हैं, सो ब्रह्माजी कैसा है, निराकार अरु निराधार है, निरालंब स्थित है, कछु आकारको नहीं

प्राप्त भया, ताते उसका विश्व भी वही रूप जान. हे रामजी ! जैसे उसका स्पंद हुआ है तैसे ही स्थित है, अन्यथा नहीं होता, वही विपर्यय करै तौ होवै, अपरसों नहीं होता, अग्निविषे उष्णता, वायुविषे स्पंदता इत्यादिक जो पदार्थ हैं सो अपने अपने स्वभावविषे स्थित हैं अरु हमको सब ब्रह्मरूप हैं, जैसे शरीरविषे हाड मांसते इतर नहीं होता, तैसे हमको ब्रह्मते इतर नहीं भासता, जैसे घटविषे मृत्तिकासे इतर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठते इतर नहीं होती, तैसे जगत् ब्रह्मते इतर नहीं होता. हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही फुरनेकरि नाना प्रकार जगत् हो भासता है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग बुद्बुदे फेन हो भासते हैं, तैसे ब्रह्मसंवेदनकरि जगत्रूप हो भासता है, परब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे पर्वतते जल गिरता है सो कणके जल भासता है, जल गिरिकरि ठहरि जाता है, तब समुद्ररूप होता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं होता, तैसे जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकारका जगत् हो भासता है जब चित्त ठहरि जाता है तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है, परब्रह्मते इतर कछु नहीं होता, ब्रह्म ही स्थावर जंगमरूप हो भासता है, जहां पुर्यष्ट-काका संबंध नहीं भासता सो अजंगम कहाता है, जहां पुर्यष्टकाका संबंध होता है तहां जंगमरूप भासता है, परंतु आत्माविषे उभय तुल्य हैं, जैसे एक ही हाथकी अंगुली है, जिसको उष्णता अथवा शीतलताका संयोग होता है सो फुरणे लगती है, जिसको शीतल उष्णका संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती, तैसे जिस आकारको पुर्यष्टकाका संयोग है, सो फुरता है चेतनता भासती है अरु जिसको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं, तिसविषे जड़ता भासती है, सो जड भी आगे दो प्रकारका है, एकको पुर्यष्टकाका संयोग है अरु जड है एकको पुर्य-ष्टकाका संयोग नहीं अरु जड है, वृक्ष पर्वतको पुर्यष्टकाका संयोग है परंतु घन सुषुप्ति जडताविषे स्थित भई है, तिस कारणते जड भासते हैं अरु मृत्तिका पुर्यष्टकाते रहित है, इस कारण है तौ जड परंतु वास्तवते स्थावर जंगम इष्ट अनिष्ट वर शाप देश काल पदार्थ-

सब ही ब्रह्मरूप हैं,ब्रह्मसत्ता ही ऐसे स्थित भई है,जैसे अपने अनुभवविषे संकल्पनगर नाना प्रकारका भासता है परंतु संकल्परूप है, संकल्पते इतर कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सेना अनेक प्रकारकी होती है, परंतु मृत्तिकारूप है, मृत्तिकाते इतर कछु नहीं, तैसे सर्वके अर्थको धारणेहारी चेतनधातु नाना प्रकारके आकारको प्राप्त होती है परंतु चेतनताते इतर कछु नहीं होती. हे रामजी ! धातु उसको कहते हैं, जो अर्थको धारै, सो जेते पदार्थ तेरे ताईं भासते हैं, सब अर्थरूप हैं अरु वस्तुरूप हैं, जो धातु है सो आत्मसत्ता है, तिसने दो अर्थ धारे हैं, एक स्वप्नअर्थ, एक बोधअर्थ, स्वप्नअर्थविषे तौ नानात्व भासती है, बोधअर्थविषे एक अद्वैतसत्ता भासती है, जैसे एक ही धातु मिलने अरु विछुरने दो अर्थको धारती है, सो कैसे अर्थ हैं, सो परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं, परंतु एकहीने धारे हैं, तैसे स्वप्नका अर्थ अरु बोध अर्थ इन दोनोंको आत्मसत्ताने धारे हैं, जैसे तरंग बुद्बुदे जलरूप हैं तैसे जगत् ब्रह्मरूप है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सब ब्रह्मरूप भासता है, अज्ञानीको नानात्व भासता है, ताते तू स्वभावनिश्चय होकरि देखु, सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम एकोननवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २८९ ॥

नवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९०.

जीवसंसारवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! जो सर्व ब्रह्म ही है तो नीति क्या है, अरु नाना प्रकारके पदार्थ क्यों भासते हैं, तिसविषे तुम कहते हौ कि जगत् संकल्पकरि रचित है, तौ हे भगवन् ! यह जो पदार्थ असंख्यरूप हैं, तिनकी संज्ञा करी नहीं जाती अरु इन पदार्थोंका स्वभाव एक एकका अचलरूप होकरि कैसे स्थित है ? यह कृपा करिकै कहौ अरु सर्व देवताविषे सूर्यका प्रकाश अधिक क्यों है अरु एक ही सूर्यविषे दिन छोटे बडे क्यों होते हैं अरु रात्रि छोटी बड़ी क्यों होती है, यह

विचित्रता क्या है? वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रसत्ता-विषे अकस्मात्‌ते आभास फुरा है, तिस आभासका नाम नीति है अरु सृष्टि भी आभासमात्र है, किसी कारणकरिकै नहीं उपजी, जिसके आश्रय आभास फुरता है सो वही वस्तु अधिष्ठान होता है, ताते जगत् सब ब्रह्मरूप है, चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है, न उदय होती है, न अस्त होती है, परिणामते रहित सदा अद्वैतरूप स्थित है, तिसविषे न जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, तीनों अवस्था आभासमात्र हैं, चेतनविषे इनकारि द्वैत नहीं बना यह तीनों इसीका स्वभाव प्रकाशरूप है, इसते इतर कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु निस्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं, जैसे कपूर अरु सुगंधिविषे भेद कछु नहीं, तैसे जाग्रत् आदिक जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं. हे रामजी ! शुद्धचिन्मात्रविषे जो चित्तभाव हुआ है, तिसविषे चेतन आभास फुरा है, तिसविषे जैसा संकल्प फुरा है तैसे स्थित भया है, यह इस प्रकार होवै अरु एताकाल रहै, उस संकल्प निश्चयका नाम नीति है, जैसे आदिसंकल्प दृढ भया है, तैसे ही अबलग पदार्थ स्थित हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश अपने अपने भावविषे स्थित हैं, अपने स्वभावको त्यागते नहीं, जबलग उनकी नीति है तबलग तैसे ही जगत् सत्ताविषे स्थित हैं. हे रामजी ! इसका नाम नीति है, जो जैसे आदि संकल्प धारा तैसे स्थित हैं अरु वस्तुते क्या है आभासरूप है, अकस्मात्‌ते आभास फुरा है सो आभास किसी सूक्ष्म अणुविषे फुरा है, जैसे समुद्रके किसी स्थानविषे तरंग बुद्बुदे फुरते हैं संपूर्ण समुद्रविषे नहीं फुरते तैसे जहां संवेदनविषे जैसा फुरणा होता है तैसे स्थित होता है सो नीति है जैसे तरंग बुद्बुदे समुद्रते भिन्न नहीं तैसे नीति आत्माते भिन्न नहीं, जैसे द्रवताकरिकै समुद्रविषे तरंग फुरते हैं तैसे आत्माविषे संवेदनकरिकै नीति अरु जगत फुरते हैं, सो वही रूप है आत्माते भिन्न कछु नहीं, जैसे किसीने कहा, चंद्रमाका प्रकाश है, सो चंद्रमा अरु प्रकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, यह विश्व आत्माका स्वभाव है,

जैसे एक ही कालकी बहुत संज्ञा होती हैं, दिन पक्ष वार मास वर्ष युग कल्प इत्यादिक बहुत नाम हैं परंतु काल एक ही है, तैसे भिन्न भिन्न जगत्के नाम हैं सो सब ब्रह्म ही है. हे रामजी ! सब संवेदन चित्तके सन्मुख होती है तब प्रथम शब्दतन्मात्र फुरती है, तिसते आकाश उपजता है सो आकाशका शून्यता स्वभाव है, जब फिरि स्पर्श तन्मात्राको चेता तिसते वायु फुरा है, वायुका स्पंद स्वभाव है, बहुरि रूपतन्मात्राको चेता तब तिसते अग्नि प्रगट हुई, अग्निका उष्ण स्वभाव है बहुरि रसतन्मात्राको चेता तब तिसते जल प्रगट भया, जलका द्रवस्वभाव है, बहुरि गंधतन्मात्राको चेता तब तिसतेपृथ्वीभई पृथ्वीका स्थिरस्वभाव है,इसप्रकार पञ्चभूत फुरि आये. हे रामजी ! आदि जो शब्दतन्मात्रा फुरी है, सो जेती कछु शब्दसमूह वाणी है सो वृक्ष हुआ, तिसका बीज है, सब तिसीते उत्पन्न हुए हैं, पदार्थ वाक्य वेद शास्त्र पुराणसब तिसीते फुरे हैं, इसी प्रकार पृथ्वी, आप, तेज,वायु, आकाश इनका जो कार्य स्वभाव है, सो सबका बीज आदि इनकी तन्मात्रा है, तिस तन्मात्राका बीज वह संवित्सत्ता है. हे रामजी ! अब इन तत्त्वकी खान सुन, पृथ्वीते अणु भी होती है अरु एक दला भी होती, सो पृथ्वी तौ एक है, अणु भी वही है, तैसे सर्व तत्त्वको समुझि देखना, पृथ्वीकी खाण भूपीठ है सो संपूर्ण भूतजातको धारती है अरु जलकी खाण समुद्र है, जो सर्व पदार्थविषे रसरूप होकरि स्थित है, अग्निका जो तेज प्रकाश है तिसकी समष्टिता सूर्य है अरु सर्व स्पन्दकी समष्टिता पवन है अरु सम्पूर्ण शून्य पदार्थकी खाण आकाश है, इस प्रकार यह पांचौ तत्त्व संकल्पते उपजे हैं, जैसे बीजते अंकुर उपजता है तैसे यह भूत संकल्पते उपजे हैं, संकल्प संवेदनते फुरा है अरु संवेदन आत्माका आभास है सो आत्मा अद्वैत है, अच्युत है, निर्विकल्प है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, तिसके आश्रय संवेदन आभास फुरा है,बहुरि संवेदनते संकल्प फुरा है,संकल्पकारि जगत् बन गया है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरता अरु लीन होता है, तैसे संकल्पविषे जगत् उपजता है बहुरि संकल्पहीविषे लीन होता है, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश सब चेतनरूप हैं, जेते

कछु पदार्थ देखने सुननेविषे आते हैं अरु नहीं आते हैं सो सब चेतनरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं; वही आत्मा इस प्रकार होता है स्वप्नविषे अपना अनुभव ही पदार्थ हो भासता है परंतु कछु बना नहीं, नानाप्रकार भासता है तौ भी अनाना है, तैसे जगत् नानाप्रकार भासता है तौ भी कछु बना नहीं, जैसे एक निद्राके दो रूप हैं, एक स्वप्न, एक सुषुप्तिरूप है जब फुरणा होता है तब स्वप्नसृष्टि भासती है, जब फुरणा निवृत्त हो जाता है तब सुषुप्ति होती है, जैसे एक वायुके दो रूप हैं. स्पंद होती है तब भासती है, निस्पंद होती है तब नहीं भासती, तैसे जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है, जब नहीं फुरती तब जगत् नहीं भासता; इसीका नाम महाप्रलय है, सो दोनों आत्माका आभास है. हे रामजी! संकल्परूप जो है ब्रह्माजी बालक, तिसने आत्माविषे आकाश रचा है, पृथ्वी रची है, आकाशविषे नक्षत्रचक्र रचे हैं, अपर सम्पूर्ण क्रम रचा है, जैसे बालक अपनेविषे संकल्प रचै, तैसे ब्रह्माने रचा है. एक भूगोल रचा है तिसके ऊपर नक्षत्रचक्र रचे हैं, तिस चक्रके दो भाग हैं, सो अन्योन्य सन्मुख स्थित हैं, तिसते सूर्य होता है, सात घटी दिन अरु रात्रिका प्रमाण है, जब सूर्य नक्षत्रचक्रके ऊर्ध्व ओर उदय होता है, तब दिन बडे होते हैं, जब अधः ओर उदय होता है तब दिन छोटे हो जाते हैं, ज्यों ज्यों सूर्य क्रम करिकै ऊर्ध्वते अधःकी ओर उदय होता है, त्यों त्यों दिन छोटे होते जाते हैं, रात्रि बढती जाती है, बहुरि षट् मासते उपरांत पौष त्रयोदशीते लेकरि सूर्य क्रमकरिकै ज्यों ज्यों ऊर्ध्वको उदय होता है, त्यों त्यों दिन बढता जाता है. आषाढकी द्वादशीते लेकरि पौष त्रयोदशीपर्यंत रात्रि बढती जाती है, बहुरि रात्रि घटती है, दिन बढता जाता है, जब सूर्य मध्य चक्रके उदय होता है, तब दिन रात्रि समान हो जाता है सो क्या है संवेदनरूप जो ब्रह्मा है तिसका संकल्प विलास है, जैसे शिल्पी शिलाविषे पुतलियां कल्पता है अरु चेष्टा करता है सो बना कछु नहीं शिला ही अपने घन स्वभावविषे स्थित होती है, तैसे चित्तरूपी शिल्पी आत्मरूपी शिलाविषे जगतरूपी पुतलियां कल्पता है परंतु कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, जब संवेदन चेतती

है, जब रूप देखनेकी इच्छा होती है तब चक्षु इंद्रिय बन जाती है, वह रूपको ग्रहण करती है, जब स्पर्शकी इच्छा होती है तब त्वचा इंद्रिय बन जाती है, वह स्पर्शको ग्रहण करती है, जब गंधकी इच्छा होती है तब घ्राण इंद्रिय बनिकरि गंधको ग्रहण करती है, जब शब्द सुननेकी इच्छा होती है तब श्रवण इंद्रिय बनि जाती है, वह शब्दविषयको ग्रहण करती है, जब रसकी इच्छा होती है तब रसना इंद्रिय प्रगट होकरि स्वादको ग्रहण करती है, जब अपने उर वायुको देखनेकी ओर चेतती है तब अपने साथ वायुको देखती है, तिस वायुविषे प्राण फुरती देखती है. हे रामजी ! देखना, सुनना, रस लेना, स्पर्श करना, बोलना, गंध लेना, जहां जहां इंद्रियां विषयको ग्रहण करत भई सो देश है अरु जिस विषयको ग्रहण करने लगीं सो पदार्थ है अरु जिस समय ग्रहण करने लगीं सो काल है, इस प्रकार देश काल पदार्थ हुये हैं, बहुरि यह शुभ है, यह अशुभ है, इस क्रमकरिकै कर्म भासने लगे. हे रामजी ! इस प्रकार संवेदन फुरकरि जगत्को रचा है, शरीरको रचकरि इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है, तू कहै इंद्रियां तौ भिन्न भिन्न हैं अरु अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, सर्व इंद्रियके इष्ट अनिष्ट इस जीवको कैसे होते हैं, तब इसका दृष्टांत सुन. हे रामजी ! जैसे तंतु एक होता है अरु मणके बहुत होते हैं, सो सर्वका आश्रय सूत्र होता है, तैसे अहंकाररूपी सूत्र है अरु सर्व इंद्रियरूपी मणके हैं, यह कारणते अहंकार जीव आश्रयभूत इंद्रियके सुखसाथ सुखी होता है अरु इंद्रियके दुःखसाथ दुःखी होता है अरु इंद्रियां आपहीते कार्य कारण करनेको समर्थ नहीं होतीं. अहंकार जीवकी सत्ताकरिकै चेष्टा करती हैं, जैसे शंखको आपते बाजनेकी समर्थता नहीं, जब पुरुष बजाता है आप शब्द करता है, तब शंख बाजता है, तैसे इंद्रियकी चेष्टा अहंकार अरु जीवकरिकै होती है. हे रामजी ! वास्तवते न कोऊ इंद्रिय हैं, न इनके विषय हैं, न मनका फुरणा है, सब आभासमात्र है जब संवेदन फुरती है तब एती संज्ञाको धारती है, जब संवेदन निर्वाण होती है तब सर्व कल्पना मिटि जाती है.

इति श्रीयोग० निर्वाण० उ० जीवसंसारवर्णनं नाम नवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९० ॥

एकनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९१.
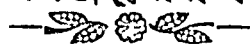
सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह संपूर्ण कल्पनाका क्रम मैंने तुझको कहा है, जेता कछु जगत् देखा जाता है सो संवेदनरूप है, शुद्ध चिन्मात्रसत्ताका जो आदिआभास चेतनताका लक्षण चित्त "अहम्अस्मि" तिसका नाम संवेदन है, तिसके एते पर्याय हुए हैं, कई ब्रह्मा कहते हैं, कई विष्णु कहते हैं, कई प्रजापति कहते हैं, कई शिव कहते हैं, इनते आदि लेकरि पर्याय हुए हैं, तिस संवेदन आगे संकल्प फुर विश्वको रचा है, सो कैसा विश्व है कि अकारण है, किसी कारणकरि नहीं बना काकतालीवत् अकस्मात् आभास फुरा है, आकारसहित दृष्टि आता है परंतु अंतवाहक है, व्यवहारसहित दृष्टि आता है, परंतु अव्यवहार है. हे रामजी ! संवेदन जो अंतवाहकरूप है, तिसने आगे विश्व रचा है, सो भी अंतवाहकरूप है, परंतु अज्ञानीको संकल्पकी दृढताकरिकै आधिभौतिकरूप हो भासती है, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर अरु संकल्पते इतर कछु नहीं, संकल्पकी दृढताकरिकै साकाररूप पहाड़, नदियां, घट, पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं परंतु बने तौ कछु नहीं शून्यरूप हैं, तैसे यह जगत् निराकार शून्यरूप है. हे रामजी ! आदि जो अंतवाहकरूप संवेदन फुरी है, सो बहिर्मुख फुरणेकरिकै देश काल पदार्थरूप हो स्थित भई है, जब बहिर्मुख फुरणा मिटि जाता तब जगत् आभास भी मिटि जाता है, जैसे स्वप्नआभास जगत् तबलग भासता है, जबलग निद्राविषे सोया होता है, जब जागता है तब स्वप्नजगत् मिटि जाता है, एक अद्वैतरूप अपना आप ही भासता है, तैसे यह जगत् अज्ञानके निवृत्त हुये लीन हो जाता है, सब जगत् निराकार है, संकल्पकी दृढताकरिकै आकार भासते हैं. हे रामजी ! संवेदनविषे जो संकल्प फुरता है, वही अंतःकरणचतुष्टय हो भासता है. पदार्थके चिंतवनेकरि इसका नाम चित्त होता है, संकल्प विकल्पके संसरणेकरि इसका नाम मन होता है अरु ज्योंका त्यों निश्चय करणेकरि इसका नाम बुद्धि होता है, वासनाके समूह मिलनेकरि पुर्यष्टका कहाती

है सो सब संकल्पमात्र है, तिनते जगत् उपजा सो भी संकल्परूप है, जैसे इंद्रजाल बाजी अरु स्वप्ननगर संकल्पकी दृढताकरिकै पिंडाकार भासते हैं परंतु सब आकाशरूप हैं तैसे यह जगत् आकाशरूप है, आत्माते इतर कछु है नहीं अरु जो तू कहै भासता क्यों है तौ जिसविषे भासता है सो वही रूप जान अरु देश, काल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जो स्थावर जंगमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है, वेद शास्त्र जगत् कर्म स्वर्ग तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, वही निराकार अद्वैतब्रह्मसत्ता संवेदनकरिकै जगतरूप हो भासती है,जैसे स्वप्नविषे अपना ही अनुभव सृष्टिरूप भासता है तैसे अपना ही अनुभव यह जगत् हो भासता है, ताते सब ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग हो भासता है अरु जल ही जल है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदनकरिकै जगत् आभास फुरता है सो ब्रह्म ही ब्रह्म है इतर कछु नहीं. हे रामजी ! जो कछु तुझको भासता है सो सब अच्युत अनंतरूप अपने आपविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नामैकनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९१ ॥

द्विनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९२.

विद्यावादबोधोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब द्रष्टा दृश्यरूपको चेतता है तब विश्व होता है, सो विश्व सब अंतवाहकरूप है, अंतवाहक कहिये निराकार संकल्परूप है, जब दृश्यविषे अहंभावकरिकै चेतता रहता है तब अंतवाहकते आधिभौतिक शरीर हो जाता है, आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुरा है सो अंतवाहक शरीर हुआ है, जब वारंवार अपने शरीरको देखता भया तब वह भी चतुर्मुख आधिभौतिक हो गया, ओंकारका उच्चारण करिकै वेद अरु वेदके क्रमको रचता भया अरु संकल्पकरिकै विश्व रचता भया, जैसे कोऊ बालक मनोराज्यकरिकै बगीचा रचै, तिसविषे नाना

प्रकारके वृक्ष अरु फूल फल टास पत्र रचै तैसे ब्रह्माजी रचत भया, सो अंतवाहक जीव उपजाये, जब जीवको शरीरविषे दृढ़ अभ्यास हुआ तब अंतवाहकते आधिभौतिक हो गये. राम उवाच– हे भगवन् ! ब्रह्मसत्ता तौ निराकार थी, तिसको शरीरका संयोग कैसे भया है तिसते आधिभौतिकता कैसी हो गई ? वसिष्ठ उवाच-- हे रामजी ! न कोऊ शरीर है, न किसीको शरीरका संयोग भया है, केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे चेतन संवेदन फुरी है, वह संवेदन दृश्यको चेतती रहती है, सोई जगत्‌रूप होकरि स्थित भई है, जब संकल्पकी दृढ़ता हो गई तब अपने साथ शरीर भासने लगा, अरु अपर आकार भासने लगे सो आकार कैसे हैं आकाश ही रूप हैं कछु बने नहीं. जैसे स्वप्नसृष्टि उपजी कहिये सो उपजी कछु नहीं अरु तिसका कारण भी कोऊ नहीं, केवल आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं परंतु स्वरूपके विस्मरण करिकै आकार भासते हैं, तैसे यह शरीर अरु जगत् जो भासता है सो केवल आभासमात्र है, असंभावनाकी दृढ़ताकरिकै प्रत्यक्ष भासता है, जब स्वरूपका विचार करि देखैगा तब शांति हो जावैगा. हे रामजी ! अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे स्वप्नका पदार्थ अविद्यमान होता है अरु विद्यमान भासता है, जब जागता है तब अविद्यमान होजाता है, तैसे यह जगत् विचारसिद्ध है, विचार कियेते शांत हो जाता है, जब विचार करि देखैगा तब सर्वात्मा ही भासैगा. हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है, अर्थ यह कि जो सत्तामात्र है इसका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु अच्युत है, सदा ज्योंकी त्यों है, अपने भावको त्यागती कदाचित् नहीं, इसते इतर भासै सो भ्रममात्र जान. हे रामजी ! विचार करिकै जब दृश्यभ्रम शांत होता है तब मोक्ष प्राप्त होता है, आत्मसत्ता ज्ञानरूप है अरु निराकार है, सदा अपने आपविषे स्थित है; जब सम्यक् ज्ञानका बोध होता है तब जगत्‌भ्रम नष्ट होता है. राम उवाच–हे मुनीश्वर ! सम्यक्‌ज्ञान किसको कहते हैं अरु बोध किसको कहते हैं ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! केवल जो बोधमात्र है सो बोध कहाता है, तिसको ज्योंका त्यों जानना इसका नाम सम्यक्‌ज्ञान है. राम उवाच–हे भगवन् ! केवल बोध

किसको कहते हैं अरु केवल ज्ञान किसको कहते हैं ? वसिष्ठ उवाच–हे राघव ! चैत्य जो है दृश्य तिसते रहित जो चिन्मात्र है तिसको तू केवलबोध जान, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, इसी प्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ताको ज्योंका त्यों जानना सोई केवल ज्ञान है.हे भगवन् ! केवलबोध अचेत चिन्मात्र है तौ चैत्य जो है दृश्य जगत्भ्रम सो तिसविषे क्यों भासता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है तिसविषे संवेदन जो है जानना सोई चैतता कहिये जब चैतता फुरती है तब वही चैतता चैत्यरूप दृश्य हो भासती है, जैसे स्पंदते रहित वायु निर्लक्षणरूप होती है अरु जब फुरती है स्पंदरूप होती है तब स्पर्शकरिकै भासती है, तैसे संवेदनकरिकै दृश्य भासती है सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है. राम उवाच–हे भगवन् ! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासता है तौ दृश्य बाह्य क्यों भासता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसी कारण भ्रम कहा है जो है अपने अंतर अरु बाह्य भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने ही अंतर होती है वास्तवते न अंतर है न बाहर है, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, तैसे अब भी ज्योंकी त्यों स्थित है अंतर अरु बाह्य भ्रमकरिकै भासती है. राम उवाच–हे भगवन् ! जो आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है अरु दृश्यभ्रमकरि भासती है तौ शशेके शृंग भी भ्रममात्र हैं वह क्यों नहीं भासते?अहम् अरु त्वम् क्योंभासतेहैं? भूतकी चेष्टा प्रत्यक्ष भासती है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अहं त्वं आदिक जगत् भी कल्पनामात्र है,जैसे शशेके सिंग कल्पनामात्र हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु संकल्पनगर भ्रममात्र है तैसे यह जगत् भ्रममात्र है, किसी कारणकरि नहीं उपजा, जैसे स्वप्नविषे शशेके शृंग नहीं भासते, अपर जगत् भासता है तैसे यह भ्रम है. राम उवाच–हे मुनीश्वर ! भूत भविष्य वर्त्तमान तीन कालविषे जगत्स्मृति अनुभवकरि जानता है अरु कारण कार्यभाव पाता है, तुम भ्रममात्र कैसे कहते हौ ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मैं कहता हौं कि कारणकरिकै कार्य होता है सो तो सत् होता है, ताते तू कहु जगत्का कारण क्याहै ? जैसे बीजते

वट होता है तैसे इसका कारण कौन है ? राम उवाच–हे भगवन् ! जगत् सूक्ष्म अणुते उपजता है अरु लीन भी तत्त्वके अणुविषे होता है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! सूक्ष्म अणु किसविषे रहते हैं ? राम उवाच–हे मुनीश्वर ! महाप्रलयविषे शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है तिसविषे अणु रहते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! महाप्रलय किसको कहते हैं जहां सर्व शब्द अर्थका अभाव है तिसका नाम महाप्रलय है, तहां शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं तौ सूक्ष्म अणु कैसे होवै अरु कारण कार्यभाव कैसे होवै ? राम उवाच–हे मुनीश्वर ! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है तिसविषे जगत् कैसे निकसि आता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! विश्व कछु उपजी होवै तौ मैं तुझको कहौं, जो इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति होती है जो जगत् कछु उपजा नहीं तौ इसकी उत्पत्ति कैसे कहौं जब चिन्मात्रविषे चेतता फुरती है तब जगत् अहं त्वम् आदिक भासता है सो फुरणा रूपही है अपर कछु उपजा नहीं वहीरूप है. हे रामजी ! ज्ञानका जो दृश्यभ्रमसाथ मिलाप है सो बंधनका कारण है, तिसका अभाव होना मोक्ष है. राम उवाच–हे भगवन् ! ज्ञानके भये जगत्का अभाव कैसे होता है?यह तौ दृढ हो रहा है इसकी शांति कैसे होती है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! सम्यक्ज्ञान करि जो बोध होता है तिस बोधकरिकै दृश्यका संबंध निवृत्त होता है सो बोध कैसा है निराकार निज शीतलरूप है, तिसकरि मोक्षविषे प्रवर्तता है. राम उवाच–हे भगवन् ! बोध तौ केवलरूप है सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं ? जिसकरि यह जीव बंधनते मुक्त होता है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिस ज्ञानकरि ज्ञेय दृश्यका संयोग नहीं तिसको केवलज्ञानी अविनाशीरूप कहते हैं, जब ज्ञेयका अभाव होता है तब सम्यक्ज्ञान कहाता है, जगत् ज्ञेय अविचारसिद्ध है. राम उवाच--हे भगवन् ! ज्ञानसों ज्ञेय भिन्न है अथवा अभिन्न है अरु ज्ञान उत्पत्ति कारण कैसे होता है ? वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! बोधमात्रका नाम ज्ञान है तिसते ज्ञान ज्ञेय भिन्न नहीं, जैसे वायुते वायुका फुरणा भिन्न नहीं. राम उवाच--हे त्रिकालज्ञ ! भूत भविष्य वर्तमानके जाननेहारे !

जो शशेके शृंगकी नांई ज्ञेय असत् हैं, तौ भिन्न होकरि क्यों भासते हैं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रांतिकरिकै भासता है, तिसका सद्भाव नहीं, न अंतर जगत् है, न बाहर जगत् है, अर्थते रहित भासता है. राम उवाच-हे भगवन्! अहं त्वम् आदिक प्रत्यक्ष भासते हैं अर्थसहित अनुभव होता है, तुम कैसे अभाव कहते हौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह सर्व जगत् विराट् पुरुषका वपु है, सो आदि विराट भी उपजा कछु नहीं तौ अपरकी उत्पत्ति कैसे कहिये. राम उवाच-हे मुनीश्वर! तीनों कालविषे जगत्का सद्भाव पाता है तुम कहते हौ उपजा नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं अरु कछु उपजा नहीं, जैसे मृगतृष्णका जल, आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा, संकल्पनगर भ्रमकरि भासते हैं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् भ्रमकरि भासता है. राम उवाच-हे भगवन्! अहं त्वं आदिक जगत् दृढ भासता है, तौ कैसे जानिये, जो उपजा नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! पदार्थ कारणते उपजा है, सो निश्चयकरि सत्य जाना जाता है, जब महाप्रलय होती है तब कारण कार्य कछु नहीं रहता, सब शांतरूप होता है, बहुरि तिस महाप्रलयसों जगत् फुरि आता है, इसते जाना जाता है कि सब आभासमात्र है. राम उवाच-हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होता है, तब अज अविनाशी सत्ता शेष रहती है, ताते जाना जाता है कि वही जगत्का कारण है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसा कारण होता है तैसा ही तिसका कार्य होता है, तिसते विपर्यय नहीं होता, जो आत्मसत्ता अद्वैत आकाशरूप है तौ जगत् भी वही रूप है, घटते पटकी नांई अपर तौ कछु नहीं उपजता. राम उवाच-हे भगवन्! जब महाप्रलय होता है तब जगत् सूक्ष्मरूप होकरि स्थित होता है, तिसते बहुरि प्रवृत्ति होती है. वसिष्ठ उवाच-हे निष्पाप रामजी! महाप्रलयविषे जो तुझने सृष्टिका अनुभव किया सो क्या रूप होता है. राम उवाच-हे भगवन्! ज्ञप्तिरूप सत्ता ही तहां स्थित होती है, तुम सारखेने अनुभव किया है सो आकाशरूप है, सत् अरु असत् शब्दकरि नहीं कही जाती. वसिष्ठ

उवाच–हे महाबाहो ! जो ऐसे हुआ तौ भी जगत् तौ ज्ञप्तिरूप हुआ क्यों ताते जन्ममरणते रहित शुद्ध ज्ञानरूप है. राम उवाच–हे भगवन् ! तुम कहते हो कि जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, भ्रममात्र है, सो भ्रम कहांते आया है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जगत् चित्तके फुरणेकरि भासता है, जैसे जैसे चित्त फुरणा करता है तैसे तैसे भासता है, इसका अपर कारण कोऊ नहीं. राम उवाच– हे भगवन् ! जो चित्तके फुरणेकरि भासता है तौ परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं, अग्निको जल नष्ट करता है, जलको अग्नि नष्ट करती है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! द्रष्टा जो पुरुष सो दृश्यभावको नहीं प्राप्त होता अरु ऐसी कछु वस्तु नहीं, भानरूप आत्मा ही चेतनघन सर्व रूप हो भासता है. राम उवाच–हे भगवन् ! चिन्मात्रतत्त्व आदि अंतते रहित है, जब जगत्को चेतता है तब होताहै, तौ भी तौ कछु हुआ, क्योंकि जगत् चैत्यका असंभव कैसे कहिये. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसका कारण कोऊ नहीं, ताते चैत्यका असंभव है, चेतन सदा मुक्त अरु अवाच्य पद है. राम उवाच–हे भगवन् ! जो इस प्रकार है तौ जगत्का अरु तत्त्वका फुरणा कैसे होता है, अहं त्वम् आदिक द्वैत कहांते आया है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! कारणके अभावते यह जगत् कछु आदिते उपजा नहीं, सर्व शांतरूप है अरु नाना भासता है सो भ्रममात्र है. राम उवाच–हे भगवन् ! प्रकाशरूप सर्वदा जो निर्मल तत्त्व है, सो निरुल्लेख अचलरूप है, तिसविषे भ्रांति कैसे है, अरु किसको है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! कारणके अभावते निश्चयकरि जान कि भ्रांति कछु वस्तु नहीं, अहं त्वम् आदिक सर्व एक अनामयसत्ता स्थित है. राम उवाच– हे ब्राह्मण ! मैं भ्रमकी नांई प्राप्त हुआ हौं, इसते अधिक पूछना नहीं जानता अरु अत्यंत प्रबुद्ध भी नहीं, अब क्या पूछौं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह प्रश्न कर कि, कारण विना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है, जब विचार करिकै कारणका अभाव जानैगा तब परम स्वभाव अशब्द पदविषे विश्रांतिको पावैगा. राम उवाच–हे भगवन् ! मैं यह जानता हौं कि कारणके अभावते जगत्

कछु उपजा नहीं परंतु चैत्यका फुरणा भ्रम कैसे हुआ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! कारणके अभावते सर्वत्र शांतिरूप है, भ्रम भी कछु अपर वस्तु नहीं, जबलग आत्मपदविषे अभ्यास नहीं तबलग भ्रम भासता है अरु शांति नहीं प्राप्त होती, अभ्यास करिकै केवल तत्त्वविषे विश्रांति पावैगा, तब भ्रम मिटि जावैगा. राम उवाच-हे भगवन्! अभ्यास कैसे होता है अरु अनभ्यास कैसे होता है एक अद्वैतविषे अभ्यास, अनभ्यास कैसे भ्रांति होती है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! अनंत तत्वविषे शांति भी कछु नहीं, जो आभास शांति भासता है सो महाचिद्घन अविनाशिरूप है. राम उवाच-हे ब्राह्मण! उपदेश अरु उपदेशके अधिकारी यह जो भिन्न भिन्न शब्द हैं सो सर्व आत्माविषे कैसे भासते हैं? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! उपदेश अरु उपदेशके योग्य यह शब्द भी ब्रह्महीविषे स्थित हैं, शुद्ध बोधविषे बंध मोक्ष दोनोंका अभाव है. राम उवाच-हे भगवन्! जो आदि उत्पत्ति कछु हुई नहीं तौ देश काल क्रिया द्रव्य इनके भेद कैसे भासते हैं? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! देश, काल, क्रिया, द्रव्य, यह जो भेद हैं सो संवेदन दृश्यविषे हैं सो अज्ञानमात्र भासते हैं, अज्ञानमात्रते इतर कछु नहीं. राम उवाच-हे भगवन्! बोधको दृश्यकी प्राप्ति कैसे हुई, जहां द्वैत एकता कारणका अभाव है तहां दृश्य भ्रम कैसे है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! बोधको दृश्य प्राप्ति अरु द्वैत एकका भ्रम मूर्खका विषय है, हम सारखेका विषय नहीं. राम उवाच-हे भगवन्! जो अंततत्त्व केवल बोधरूप है तौ अहं त्वं हमारेविषे कैसे होता है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! शुद्धबोधसत्ताविषे जो बोधका जानना है सो अहं त्वं करि कहाता है, जैसे पवनविषे फुरणा है तैसे तिसविषे चेतता फुरती है. राम उवाच-हे भगवन्! जैसे निर्मल अचल समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं, तैसे बोधविषे बोधसत्ताते इतर कछु नहीं, अपने आपविषे स्थित हैं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो ऐसे हैं तौ किसका किसको दुःख होवै एक अनंततत्त्व अपने आपविषे स्थित है अरु पूर्ण है. राम

उवाच–हे भगवन्! जो एक है तौ अहं त्वम् आदिक कलना कहाँते आई है भोक्ताकी नांई भोक्ता है जो निर्मल है तो यह कैसे दृढता हुई है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! ज्ञेय जो है दृश्यसत्ता तिसका जानना तिसको बंधन नहीं, काहेते कि ज्ञान ही सर्व अर्थरूप होकरि स्थित भया तौ बंध अरु मोक्ष किसको होवै? राम उवाच–हे भगवन्! ज्ञप्ति जो बाह्य अर्थको देखती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु स्वप्नविषे पदार्थ सो असत्रूप सत् हो भासते हैं, तैसे यह बाह्य अर्थ असत् ही सत् हो भासते हैं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! कारणते रहित जो बाह्य अर्थ सत् भी भासते हैं सो भ्रममात्र हैं,इतर कछु नहीं.राम उवाच–हे भगवन्! स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थका दुःख होता है, सत् होवै अथवा असत् होवै, तैसे यह जगत्विषे सत् असत्का दुःख होता है परंतु इसकी निवृत्तिका उपाय कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो इस प्रकार है जगत् स्वप्नकी नांई तौ जो कछु पिंडाकार भासता है सो सब भ्रममात्रकरिकै भासता है, सर्व अर्थ शांतरूप है, नानात्व कछु नहीं. राम उवाच–हे भगवन्! स्वप्न अरु जाग्रत्विषे पिंडाकार पर अपर रूप है, कैसे उत्पन्न होता है अरु कैसे शांत होता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! पूर्व अपरका विचार करिये, यह जगत् आदिविषे क्या रूप था अरु अंतविषे क्या रूप होता है, जब ऐसे विचार होवैगा तब शांति हो जावैगी, जैसे स्वप्नविषे स्थूल पदार्थ पिंडरूप भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं, तैसे जाग्रत पदार्थ भी आकाशरूप हैं. राम उवाच–हे भगवन्! भिन्न भावकी भावना प्राप्त होती है तब जगत्को कैसे देखता है अरु संस्कार कुहिड भ्रम शांत कैसे होता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो निर्वासनिक पुरुष हैं तिसको जगत्का भाव सदैव उठि जाता है, जैसे संकल्पनगर, जैसे कागजकी मूर्ति असत् भासते हैं, तैसे उसको जगत् असत् भासता है. राम उवाच–हे भगवन्! वासनाते रहित पिंडभाव शांत हुए जगत्को स्वप्नवत् जानता है, तिसते उपरांत क्या अवस्था होती है.वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जगत्को जब संकल्परूप जानता है तब वासना निर्वाण होती है, पंचतत्त्वका क्रम उपजना विनशना लीन हो जाता है, परमतत्त्वं

भासता है, सब आकाशरूप होजाता है. राम उवाच–हे भगवन्! अनेक जन्मकी जो वासना दृढ हो रही है अरु अनेक शाखाकारि पसरी है, संसारका कारण घोर वासना है सो कैसे शांत होती है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब इसको यथाभूत अर्थज्ञान होता है तब भ्रांतिरूप जगत् स्थित हुआ आत्माविषे शांत होता है, जब पिंडाकार अर्थ पदार्थ सो जाता है तब कर्मरूप दृश्यचक्र शांत हो जाता है, जैसे स्वप्न पदार्थ जाग्रतविषे नष्ट हो जाता है तैसे आत्मतत्त्वके बोधकरि सब वासना नष्ट हो जाती है. राम उवाच–हे मुनीश्वर! जब पिंडग्रहण निवृत्त हुआ अरु कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब बहुरि क्या प्राप्त होता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! पिंडग्रहणभ्रम शांत होता है तब संकुचन अरु क्षोभते रहित होता है, जगत् आस्था दृश्यकी शांति हो जाती है अरु चित्त परमात्मतत्त्वको प्राप्त होता है. राम उवाच–हे भगवन्! यह बालकके संकल्पवत् कैसे स्थित है जो संकल्परूप है तौ इसके जो जड-विषे पदार्थ हैं तिनके नष्ट हुए इसको दुःख क्यों प्राप्त होता है? इस जगत्की आस्था शांत कैसे होती है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो पदार्थ संकल्पकरि उत्पन्न हुआ है तिसके नष्टविषे दुःख नहीं होता, जो पूर्व अपर विचार करिकै चित्तते रचा जानिये तौ भ्रम शांत हो जाता है. राम उवाच–हे भगवन्! चित्त कैसा है तिसकरि रचा कैसे विचारिये? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है तिसको संकल्परूप चित्त कहते हैं, तिसते रहित विचारऐसों वासना शांत हो जाती है. राम उवाच–हे ब्राह्मण! चैत्यते रहित चित्त कैसे होता है अरु चित्तकरि उदय हुआ चैत्य जगत् निर्वाण कैसे होता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! चित्त कछु उत्पन्न नहीं भया, भ्रम होता द्वैत भासता है, कछु है नहीं. राम उवाच–हे भगवन्! जगत् प्रत्यक्ष भासता है, जो उपजा नहीं तौ इसका अनुभव कैसे होता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! अज्ञानीको जैसे जगत् भासता है सो सत् नहीं अरु जो ज्ञानवान्को भासता है सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है. राम उवाच–हे भगवन्! अज्ञानीको तीनों जगत् कैसे भासते हैं जो सत् नहीं, ज्ञानवान्को कैसे

भासते हैं जो कहनेविषे नहीं आता. वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! अज्ञानीको द्वैत सघन दृढ भासता है अरु ज्ञानवान्‌को सघन द्वैत नहीं भासता, काहेते कि आदि तौ उपजा नहीं अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्य भासता है. राम उवाच-हे भगवन् ! जो आदिते उपजा न होवे अनुभव भी न होवै यह तौ अनुभव प्रत्यक्ष होता है. असत् कैसे कहिये ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! असत् ही सत्‌की नाईं हो भासती है, यह कारणते रहित भासती है, जैसे स्वप्नविषे पदार्थका अनुभव होता है परंतु वास्तवते कछु नहीं, तैसे यह असत् ही अनुभव होता है. राम उवाच-हे भगवन् ! स्वप्नविषे असंकल्पविषे जो दृश्यका अनुभव होता है सो जाग्रत्‌के संस्कारते होता है, अपर कछु नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! स्वप्न अरु संकल्प तिसके संस्कारते होते हैं सो जाग्रत्‌के संस्कार कैसे होते हैं, वही रूप अथवा जाग्रत्‌ते अन्य हैं. राम उवाच-हे भगवन् ! स्वप्नके पदार्थ अरु मनोराज्य सो जाग्रत्‌के संस्कारते जाग्रत्‌की नाईं भासता है सो भ्रमविषे भासते हैं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो स्वप्नविषे जाग्रत्‌के संस्कारकरिकै जगत् जाग्रतकी नाईं भासता है, जो स्वप्नविषे किसीका घर लूटि गया अथवा जलके प्रवाहविषे बह गया तौ जाग्रत्‌विषे तौ कछु हुआ नहीं, प्रातःकालको उठिकरि देखता है तब ज्योंका त्यों भासता है, तौ संस्कार भी कछु न हुआ सब कल्पनामात्र जानना. राम उवाच-हे भगवन् ! अब मैंने जाना है कि यह सर्व ब्रह्म ही है, न कोऊ देह है, न जगत् है, न उदय है, न अस्त है, सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसते इतर जो कछु भासते हैं सो भ्रममात्र हैं अरु भ्रम भी कछु वस्तु नहीं, सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूप है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो कछु भासता है सो सब ब्रह्महीका प्रकाश है वही अपने आपविषे प्रकाशता है. राम उवाच-हे भगवन् ! सर्गके आदि देह चित्तादिक कैसे फुरि आये हैं अरु कैसे आत्मा प्रकाशरूप जगत् है, प्रकाश भी तिसका होता है जो साकाररूप होता है, ब्रह्म तौ निराकार है, दीपकआदिकवत् आकारते रहित है, तिसका प्रकाश कैसे कहिये ?

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! सर्व ब्रह्मरूप है, प्रकाश अरु प्रकाशकका भेद भी कछु नहीं, दूसरी वस्तु भी कछु नहीं वही अपने आपविषे स्थित है, ताते स्वप्रकाश कहा है, सूर्य आदिकका प्रकाश त्रिपुटीकरि भासता है, सो भी तिसके आश्रय होकरि प्रकाशता है, तिसके प्रकाशका आधारभूत कहाता है, तिसके आश्रय होकरि सूर्य जगत्को प्रकाशता है अरु आत्मसत्ता अद्वैतसत्ता है अरु विज्ञानघन है तिसविषे चित्त संवेदन फुरी है, वही जगत्रूप होकरि स्थित भई है, आत्मसत्ता अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं, वही इस प्रकार एक ही नाईं स्थित भया है. हे रामजी ! निराकार स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है. हे रामजी ! इस जगत्के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी, तिसीसों जो नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आया तौ वही रूप हुआ क्यों अपर कारण तौ कोऊ नहीं, जैसे स्वप्नके आदि अद्वैतसत्ता निराकार है, तिसको सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सो भी वही रूप हुए क्यों ! प्रगट भासते भी हैं तैसे यह जगत् भी अकारण अरु निराकार जान. हे रामजी ! न कोऊ जाग्रत् है न स्वप्न है न सुषुप्ति है, सब आभासमात्र है यही आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, हमको तौ वही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासती है, जैसे दर्पणविषे अपना मुख भासता है, तैसे हमको अपना आप भासता है अरु अज्ञानीको भ्रांतिरूप जगत् भासता है, जैसे वृक्षके कुंडविषे पुरुष भासता है दूरतें भ्रांतिकरिकै, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है. हे रामजी ! न कोऊ द्रष्टा है न दृश्य है द्रष्टा तब कहिये जो दृश्य होवै अरु दृश्य तब कहिये जो द्रष्टा होवै जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा किसका अरु जो द्रष्टा ही नहीं तो दृश्य किसका, ताते निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है जो आकार भी भासते हैं तौ भी निराकार हैं, आत्मसत्ता ही संवेदनकरिकै आकाररूप हो भासती है, जैसे स्तंभविषे चितेरा पुतलियां कल्पता है, कि एती पुतलियां स्तंभविषे हैं तो उसको प्रत्यक्ष खोदेबिना ही भासती हैं तैसे खोदेबिना ब्रह्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी

चितेरा यह पुतलियां देखता है, सो हुआ कछु नहीं. हे रामजी ! इन मेरे वचनोंको तू स्वप्न अरु संकल्प दृष्टांतकरिकै देखु, जो अनुभवरूप ही आकार हो भासता है अनुभवते इतर कछु नहीं, इस मेरे वचनरूपी उपदेशको हृदयविषे धारहु अरु अज्ञानीके वचनको छर्दिकी नाईं त्यागहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विद्यावादबोधोपदेशो नाम द्विनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९२ ॥

त्रिनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९३.

रामविश्रांतिवर्णनम् ।

राम उवाच--हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है कि हम अज्ञानकरिकै जगत्को देखते भये जगत् तौ कछु वस्तु नहीं सर्व ब्रह्म ही है अरु अपने आपविषे स्थित है जगत् भ्रमकारि भासता है, अब मैंने जाना है कि यह जगत् भ्रममात्र था वस्तुते न यह पीछे था न होता है न आगे होवैगा, सर्व शांत निरालंब विज्ञानघनसत्ता है अरु भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है सो कैसा है निर्विकार है शांतरूप है, जैसे सर्गके आदि अरु परलोकके आदि स्वप्नके आदि सकल पुरके आदि इन स्थानोंविषे अद्वैतचिन्मात्रसत्ता होती है तिसकी आभास संवेदन स्पंद फुरती है तब अनेक पदार्थ सहित जगत् भासि आता है सो अनुभवरूप होता है इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है. हे प्रभो ! अब मैंने तुम्हारी कृपाते ऐसे निश्चय किया है कि जगत् अविचारसिद्ध है विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे शशेके सिंग अरु आकाशके फूल असत् होते हैं तैसे जगत् असत् है, बडा आश्चर्य है जो असत्रूप अविद्याने मोहित किया था अब मैंने जाना है कि अविद्या कछु वस्तु नहीं, अपनी कल्पना ही आपको बंधन करती है, जैसे अपने परछाईंविषे बालक भूत कल्पता है अरु आप ही भय पाता है, तैसे अपनी कल्पनाही अविद्यारूप भासती है जबलग विचार प्राप्त नहीं भया तबलग भासती है विचार कियेते अविद्याका अत्यंत अभाव हो जाता है, जैसे

जेवरीविषे सर्प भासता है, जेवरीके जाननेसे सर्पका अत्यंत अभाव हो जाता है, जैसे स्थाणुविषे भ्रमकरिकै पुरुष भासता है, तैसे आत्माविषे अविद्यारूप जगत् भ्रमकरि भासता है, जैसे आकाशके फूल अरु शशेके शृंग कछु वस्तु नहीं तैसे अविद्या भी कछु नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र भासै तौ भी भ्रममात्र जानता है, जैसे स्वप्नविषे अपने मरणेका अनुभव होवै तौ भी भ्रममात्र है, तैसे अविद्यारूप जगत् भासता है तौ भी असत् है, प्रमाणरूप नहीं, प्रमाण कहिये जो यथार्थ ज्ञानका साधक होवै सो यह जो प्रत्यक्ष प्रमाण है सो यथार्थ करता नहीं; काहेते जो वस्तुरूप आत्मा है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता, विपर्यय जगत्‌रूप भासता है, सीपविषे रौप्यवत् ताते यह प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है, तौ भी असत्‌रूप है, प्रमाण क्यों करि जानना. हे भगवन् ! यह जगत् अपर कछु वस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है, जैसे जैसे आत्माविषे संकल्प दृढ होता है, तैसे तैसे जगत् भासता है अरु जो कोऊ पुरुष स्वर्गविषे बैठा होवे, तिसके हृदयविषे कोऊ चिंता उपजी तब उसको स्वर्ग भी नरकरूप हो जाता है, काहेते कि भावना नरककी हो जाती है. हे भगवन् ! यह जगत् केवल वासनामात्र है, आत्माविषे जगत् कछु आरंभ परिणामकरिकै बना नहीं, यह जगत् चित्तविषे है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है सो जैसी कल्पते तैसे ही भासता है, शिलाते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे चित्तने जगत् पदार्थ रचे हैं, जैसे जैसे भावना करता है तैसे तैसे यह भासता है अरु आत्माविषे जगत् न कछु हुआ है, न आगे होना है, केवल अपने आपविषे आत्मसत्ता स्थित है, स्वच्छ है, अद्वैत अरु परम मौनरूप है, द्वैत एक कल्पनाते रहित है, परम मुनीश्वरकरिकै सेवने योग्य है, ऐसा जो पद है सो मैं पाया हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, सर्व दुःखते रहित हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० रामविश्रांतिवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९३ ॥

चतुर्नवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९४.

रामविश्रांतिवर्णनम्।

राम उवाच-हे मुनीश्वर! जो आदि अंत मध्यतें रहित पद है अरु मुनिकारि जानना भी कठिन है सो पद मैं पाया हौं; एक अरु द्वैतकी कल्पना जो शास्त्र वेदकारि कही है सो मेरी मिटि गई है, अब मैं परम शांतिको प्राप्त भया अरु निःशंक हुआ हौं, कोऊ दुःख मुझको नहीं रहा सब जगत् मुझको आत्मरूप ही भासता है. हे भगवन्! अब मैंने जाना है कि, न कोऊ अविद्या है न विद्या है, न सुख है, न दुःख है, सर्वदा अपने आत्मपदविषे स्थित हौं, पाने योग्य पद सो मैंने पाया है, जो आगे ही प्राप्त था, जो कहते हैं हम तिस पदको नहीं जानते तिनको भी प्राप्तरूप है परंतु अज्ञानकरिकै नहीं जानते, सो पद अपर किसीकारि नहीं जाना जाता अपने आपकारि जाना जाता है अरु ऐसे भी नहीं, जो किसीकारि जनावे अरु जानने योग्य अपर होवै, आप ही बोधरूप है, सदा अपना आप ही है, अपर न कोऊ भ्रांति है, न जगत् है, सर्व आत्मा ही है. हे मुनीश्वर! अज्ञान अरु ज्ञान भी ऐसे हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि भासे तिसविषे अंधकार भासे, सो अंधकार तब नाश होवै जब सूर्य उदय होवै अरु जब स्वप्नते जागि उठै तब न अंधकार रहता है, न प्रकाश ही रहता है, तैसे आत्मपदविषे जागेते ज्ञान अज्ञान दोनोंका अभाव हो जाता है, द्वितीय कल्पना मिटि जाती है, जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है परंतु जगत् आत्मसत्ताते भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे शिलाका अंतर जडीभूत होता है, तैसे आत्माका रूप जगत् है, जैसे जलरूप तरंगविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत् अभेदरूप हैं. हे मुनीश्वर! जिस पुरुषको ऐसे आत्माविषे अहं प्रतीति भई है, सो कार्यकर्ता दृष्टि आता है तौ भी अंतरते निश्चयकारि कछु नहीं करता, अशांतरूप दृष्टि आता है, तौ भी सदा शांतरूप है. हे मुनीश्वर! अज्ञानरूपी मध्याह्नका सूर्य है अरु जगत्की सत्यतारूपी दिन है, जगत्के भाव

अभाव पदार्थरूपी तिसका प्रकाश है अरु तृष्णारूपी मरुस्थल है, तिसविषे अज्ञानी जीवरूपी मार्गपंथी हैं, तिनको दिन अरु मार्ग निवृत्त नहीं होता अरु जो ज्ञानवान् स्वभावविषे स्थित हैं तिनको न संसारकी सत्यतारूपी दिन भासता है, न तृष्णारूपी मरुस्थल भासता है, वह संसारकी ओरते सोइ रहे हैं, ऐसी अद्वैतसत्ता तिनको प्राप्त भई है, जहां सत् असत् दोनों नहीं, तिस कारणते जगत्कलना नहीं भासती. हे मुनीश्वर! अब मैं जागा हौं, सब जगत् मुझको अपना आप ही दृष्टि आता है, मैं निर्वाणरूप निराकार हौं, निरिच्छितरूप हौं परंतु मैं स्वभावसत्तारूप हौं, अब कोऊ दुःख मुझको नहीं. हे मुनीश्वर! तिस पदको मैं पाया हौं, जिसके पानेकरि तृष्णा कदाचित् नहीं उपजै, जैसे पाषाणकी शिलाविषे प्राण नहीं फुरते, तैसे मुझविषे तृष्णा नहीं फुरती, सर्व आत्मरूप ही मुझको भासता है अरु यह जो जीव है, तिसविषे जीवत्व कछु नहीं जीवत्व भ्रांतिसिद्ध है, सब आत्मस्वरूप है, मुझको तौ निरालंबसत्ता अपना आप ही भासती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० रामविश्रांतिवर्णनं नाम चतुर्नवधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९४ ॥

पंचनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९५.

रामविश्रांतिर्णनम्।

राम उवाच–हे मुनीश्वर! आत्माविषे अनंत सृष्टि फुरती हैं, जैसे मेघकी बूंदका अंत गनतीते कछु नहीं होता, तैसे परमात्माविषे सृष्टिका अंत गनतीते नहीं होता, जैसे एक रत्नकी असंख्यात किरणैं होती हैं, तैसे परमात्माविषे असंख्य सृष्टि हैं, कोई परस्पर मिलती हैं, कई नहीं मिलतीं परंतु स्वरूपते एकरूप हैं, जैसे एक समुद्रमें लहरियां उठती हैं; कई नूतन भिन्न भिन्न अपर ही प्रकारकी उठती हैं, एक तौ परस्पर ज्ञात होती हैं, एक नहीं होती हैं अरु जैसे एक ही ज्वालाके बहुत दीपक होते हैं, कई अन्योन्य होते हैं, कोऊ परस्पर मिलते हैं, स्वरूपते एकरूप हैं, तैसे आत्माविषे

अनंत जगत् फुरते हैं, परस्परते एकरूप हैं,जो नाना प्रकारका जगत् दृष्टि आया, तिसविषे तौ वही रूप हुआ क्यों अपर कारण तौ कोऊ नहीं, जैसे शून्यके आदि निराकारसत्ता होती है, तिसीसों सूर्यादिक पदार्थ भास आते हैं, सो भी वही रूप हुए, प्रगट भासते भी हैं परंतु निराकार होते हैं, जैसे यह जगत् भी अकारण निराकार है. हे मुनीश्वर! अब मैंने ज्योंका त्यों जाना है, जैसे स्वप्नविषे मुये हुए बोलते दृष्टि आते हैं अरु जीवते हुए मृतक दृष्टि आते हैं, स्वप्नकालविषे पदार्थ विपर्यय भासते हैं, परंतु जब जागि उठे, तब ज्योंके त्यों भासते हैं, तैसे मैं जाग उठा हौं, मुझको विपर्यय नहीं भासता, यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्मा ही भासता है. हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो परम समाधिविषे स्थित हैं; तिनको उत्थान कदाचित् नहीं होता, अर्थ यह कि स्वरूपते इतर नहीं भासता, व्यवहार करते दृष्टि आते हैं परंतु व्यहारते रहित हैं, काहेते कि अभिलाषा कछु नहीं रहती, विना अभिलाषा चेष्टा करते हैं, अंतरते कछु कर्तृत्वका अभिमान नहीं फुरता, इसीका नाम परम समाधि है, जब बोधकी प्राप्ति होती है, तब तृष्णा कोऊ नहीं रहती, सब पदार्थ विरस हो जाते हैं, काहेते कि, आत्मपद जो परमानंदरूप है, जो तृष्णाते रहित है, तिसीका नाम मोक्ष है अरु तिसीका नाम निर्वाण है, जिसविषे उत्थान कोऊ नहीं. हे मुनीश्वर! आत्मानंद ऐसा पद है,जिस पदके आनंदको ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक ज्ञानवान्‌की वृत्ति सदा दौड़ती है, संसारके पदार्थकी ओर नहीं धावती अरु जिस पुरुषको शीतल स्थान प्राप्त भया है, सो बहुरि ज्येष्ठ आषाढकी धूपको नहीं चाहता जो मरुस्थलको दौडै, तैसे ज्ञानवान्‌की वृत्ति आनंदकी ओर नहीं धावती. हे मुनीश्वर! मैंने निश्चय किया है कि तृष्णा जैसा पाप कोऊ नहीं, अतृष्णा जैसी शांति कोऊ नहीं, जो पुरुष परम ऐश्वर्यको प्राप्त है अरु अंतर तृष्णा जलावती है सो कृपण दरिद्री है अरु आपदाका स्थान है अरु जो निर्धन दृष्टि आता है परंतु अंतर तृष्णा कोऊ नहीं, सो परम ऐश्वर्यकरि संपन्न है अरु परम संपदाकी मूर्ति है अरु जो बड़ा पंडित है परंतु तृष्णासहित है सो परम मूर्ख जानिये तिसको बोधकी प्राप्ति कदाचित् नहीं होती,

जैसे मूर्तिकी अग्नि शीतको निर्वाण नहीं करती तैसे उसकी मूर्खताको पंडित निर्वाण न करैगा. हे मुनीश्वर ! सहस्रके सहस्रविषे कहूँ पुरुष तृष्णाविरहित होता है, जैसे सिंह पिंजरेविषे पडा पिंजरेको तोड निकसे, तैसे कहूँ विरला तृष्णाके जालको तोड निकसता है, जो पंडित स्वरूपको विचारिके वितृष्ण नहीं होता अरु अतीत होकरि वितृष्ण नहीं होता तौ पंडित अरु अतीत दोनों मूर्ख हैं, जेता जेता तृष्णाको घटावैगा त्यों त्यों जाग्रत् बोध उदय होवैगा ज्यों ज्यों रात्रिकी क्षीणता होती है त्यों त्यों दिनका प्रकाश होता है अरु ज्यों ज्यों रात्रिकी वृद्धि होती है त्यों त्यों दिनकी क्षीणता होती है तैसे ज्यों ज्यों तृष्णा बढती जावैगी त्यों त्यों बोधकी प्राप्ति कठिन होवैगी अरु ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावैगी त्यों त्यों बोधकी प्राप्ति सुगम होवैगी. हे मुनीश्वर ! अब मैं तिस पदको प्राप्त हुआ हौं अच्युत निराकार पद है अरु द्वैत एक कलनाते रहित है तिस पदको मैंने आत्माकरि जाना है अब मैं निःशंक हुआ हौं अरु जिस पदको पायेते इच्छा कोऊ नहीं रही सो परमानंद आत्मपद है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० रामविश्रांतिवर्णनं नाम पंचनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९५ ॥

षण्णवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९६.

रामविश्रांतिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! बडा कल्याण हुआ है जो तू जागा है. हे रामजी ! यह परम पावन वचन तुझने कहे हैं जिनके सुनेते पापका नाश होता है बहुरि कैसे वचन तुझने कहे हैं, जो अज्ञानरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य है अरु मन तनके तापको नाशकर्त्ता चंद्रमाकी किरणें हैं. हे रामजी ! जो पुरुष अपने स्वभावविषे स्थित हैं तिनको व्यवहार अरु समाधिविषे एक ही दशा है, अनेक प्रकारके चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परंतु उनके निश्चयविषे कर्तृत्वका अभिमान कछु

नहीं फुरता, सदा परम ध्यानविषे स्थित हैं, जैसे पत्थरकी शिला होती है तिसविषे स्पंद कछु नहीं फुरता तैसे उनको कछु कर्तृत्वबुद्धि नहीं फुरती. काहेते कि दृश्यविषे उनका अहंकार देहाभिमान निवृत्त भया है, स्वस्वरूप चिन्मात्रविषे स्थिति पाई है सो कैसा आत्मपद है परम शांतरूप है द्वैतकलनाते रहित एक है ऐसा जो पद है सो ज्ञानवान् आत्मताकरिकै जानता है तिसको निर्वाण कहते हैं तिसीको मोक्ष कहते हैं. हे रामजी ! ऐसा जो पद है तिसविषे हम सदा स्थित हैं अरु ब्रह्मा विष्णुते आदि लेकरि जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो तिसी पदविषे स्थित हैं, नानाप्रकारके चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परंतु सदा शांतरूप हैं, तिनको क्रिया अरु समाधिविषे एकही आत्मनिश्चय रहता है,जैसे वायु स्पंदविषे एक ही है तरंग अरु ठहरायेविषे जल वही है तैसे ज्ञानी दोनोंविषे सम है, जैसे आकाशरूप अरु शून्यताविषे भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं. राम उवाच-हे भगवन् ! तुम्हारी कृपाते मुझको कलना कोऊ नहीं फुरती ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि जेता कछु जगत् है सो सब आकाशरूप मुझको भासता है, सर्वदा काल सर्व प्रकार मैं अपने आपविषे स्थित हौं, अच्युत अरु अद्वैत रूप हौं मेरेविषे जगत्की कलना कोऊ नहीं चित्त संवेदनद्वारा मैं ही जगत्रूप हो भासता हौं अरु स्वरूपते कदाचित् चलायमान नहीं भया अचेत चिन्मात्र स्वरूप हौं, अपने आपते इतर मुझको कछु नहीं भासता. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मैं जानता हौं कि तू जागा है परंतु अपने दृढ बोधके निमित्त मुझसों बहुरि प्रश्न करु कि यह जगत् है नहीं तौ भासता क्यों है. राम उवाच-हे भगवन् ! मैं तुमसों तब पूछौं जो जगत् आकार मुझको भासता होवै सो मुझको जगत् कछु भासता नहीं, जैसे संकल्पके अभाव हुए संकल्पकी चेष्टा नहीं भासती, जैसे बाजीगरकी मायाका अभाव हुए बाजी नहीं भासती जैसे स्वप्नके अभाव हुए स्वप्नसृष्टि नहीं भासती, जैसे भविष्यत्कथाके पुरुष नहीं भासते तैसे मुझको जगत् नहीं भासता, बहुरि संशय किसका उठावौं; आदि जो चित्तसंवेदन फुरी है सो विराट् पुरुष होकरि स्थित भया है, तिसने आगे देश काल पदार्थ रचे हैं अरु स्थावर

जंगम जगत्‌को रचा है, तिसके समष्टि वपुका नाम विराट् है, जैसे स्वप्नका पर्वत होवै तैसे यह विराट् पुरुष है, बहुरि कैसा विराट् है, जो आप आकाशरूप है, जो आप ही आकाश रूप है तिसका रचा जगत् मैं क्यों पूछौं,जैसे स्वप्नकी मृत्तिका ही अकाशरूप है, अर्थ यह जो उपजी अनउपजी है,तिसके पात्रका मैं क्या पूछौं, ताते न कोऊ विराट् है, न तिसका जगत् है,मिथ्या ही विराट् है मिथ्या ही तिसकी चेष्टा है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ तिसका विराट् है, जैसे स्वप्नका पर्वत आभासमात्र होता है, तैसे यह जगत् आकार भासता है, जैसे बीजते वृक्ष होता है, तैसे ब्रह्मते जगत् प्रगट हुआ है, यह भी कैसे कहिये कि बीज साकार होता है, तिसविषे वृक्षका सद्भाव रहता है, वही परिणामी करिकै वृक्ष होता है, आत्मा ऐसे कैसे होवै, आत्मा तौ निराकार है, तिसविषे जगत्‌का होना नहीं, काहेते कि जो निर्विकार है अरु अद्वैत है, निर्वेद है, तिसको जगत्‌का कारण कैसे कहिये, न कोऊ जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह अवस्था भी आकाशमात्र हैं, परिणामभावको नहीं प्राप्त भया, सदा अपने आपविषे स्थित है. हे मुनीश्वर! मैं तू भी आकाशरूप हैं, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आकाशरूप हैं, अब सर्व आत्मा ही मुझको भासता है. हे मुनीश्वर! एक सविकल्प ज्ञान है, एक निर्विकल्प ज्ञान है सो आकाशवत् अचैत्य चिन्मात्र है, चैत्य जो दृश्य है तिसके संबंधते रहित है,सो आकाशवत् निर्मल जान सो निर्विकल्पज्ञान है, जिसको यह ज्ञान प्राप्त भया है सो महापुरुष है; तिसको मेरा नमस्कार है अरु जिसको दृश्यका संयोग है सो सविकल्पज्ञान जीवको होता है; संसारी है, तिसको भिन्न भिन्न जगत् विषमता सहित भासता है परंतु वही भिन्न कछु नहीं, जैसे समुद्र विषे नाना प्रकारके तरंग भासते हैं तौ भी जलस्वरूप हैं, तैसे भिन्न भिन्न जीव अरु तिनका ज्ञान है, तो भी मुझको अपना आप ही भासता है, जैसे अवयवीको सब अंग अपने ही भासते हैं तैसे सर्व जगत् अपना आप ही केवल अद्वैतरूप भासता है,जगत्‌की कलना कोऊ नहीं फुरती, जैसे स्वप्नते जागेको स्वप्नसृष्टि नहीं फुरती, कल्पनाते

हित अपना आप ही अद्वैत भासता है, तैसे मुझको जगत कल्पनाते रहित अपना आप ही भासता है. हे मुनीश्वर ! आगमते लेकरि जो शास्त्र हैं, तिनते उल्लंघि वचन मैं कहे हैं परंतु जो मेरे हृदयविषे हैं सोई कहे हैं, जो कछु अंतर होता है सोई बाह्य प्रगट बाणीकरि कहता है, जैसे जो बीज बोता है सोई अंकुर निकसता है बीजविना अंकुर नहीं निकसता, तैसे जो कछु मेरे हृदयविषे है सोई वाणीकरि कहता हौं अरु यह विद्या सर्व प्रमाणकरि सिद्ध है. हे मुनीश्वर ! जिसको यह दशा प्राप्त है सोई जानता है, अपर कोऊ नहीं जान सकता अरु जिसने मद्य पान किया है, सोई उन्मत्तताको जानता है, अपर कोऊ नहीं जान सकता, तैसे जो ज्ञानवान् है, सोई आत्मरसको जानता है; अपर कोऊ नहीं जानता, सो कैसा आत्मरस है जिसके पियेते बहुरि कोई कल्पना नहीं रहती. हे मुनीश्वर ! मैं आत्मा अजन्मा अविनाशी अरु परम शांत रूप हौं उभय एककी कल्पनाते रहित अचेत चिन्मात्र हौं अरु जगतरूप हुएकी नांई भी मैं भासता हौं अरु निराभास हौं मेरेविषे आभास भी कोऊ वस्तु नहीं, काहेते कि निराकार हौं इस प्रकार मैंने अपने आपको यथार्थ चिन्मात्र जाना है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० रामविश्रांतिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९६ ॥

सप्तनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९७.
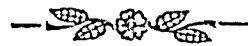
चिंतामणिप्राप्तिवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच–हे भारद्वाज ! इस प्रकार रामजी कहिकरि एक मुहूर्तपर्यंत तूष्णीं होगया. अर्थ यह कि परमात्मपदविषे विश्रांतिको पावत भया, इंद्रिय अरु मनकी वृत्ति जो है सो आत्मपदविषे उपशम भई, तिसते उपरांत जानकारि भी कमलनयन रामजी लीलाके निमित्त प्रश्न करत भया. राम उवाच–हे संशयरूपी मेघके नाशकर्ता शरत्काल ! मुझको एक संशय कोमल जैसा भया तिसको दूर करहु,

हे मुनीश्वर! आत्मपद अव्यक्त है अरु अचिंत्य है, अर्थ यह कि इंद्रिय अरु मनका विषय नहीं, इंद्रियोंकरि ग्रहण नहीं होता अरु मनकी चिंतवनाविषे भी नहीं आता, जो बडे महापुरुष हैं तिनके कहनेविषे भी नहीं आता, ऐसा जो अचेत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है, सो शास्त्रकरि कैसे जाना जाता है, शास्त्र तौ अविच्छेद प्रतियोगीकरि कहते हैं, सो सविकल्प है, सविकल्पकरिकै निर्विकल्पपद कैसे जाना जाता है, गुरु अरु शास्त्रकरिकै जानिये अरु विकल्परूप जो शास्त्र तिनविषे भी सार अर्थ पाया जाता है परंतु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो तिससाथ हैं, तिनकरिकै सर्वात्मा क्योंकरि जानिये? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! गुरु अरु शास्त्रकरि नहीं जाना जाता अरु गुरु शास्त्रविना भी नहीं जाना जाता. हे रामजी! नानाप्रकार जो विकल्परूप शास्त्र हैं, तिनकरिकै निर्विकल्परूप कैसे जाना जाता है परंतु जिस प्रकार इनकरि जाना है, सो भी सुन. हे रामजी! एक व्यवधान देशके कीटके थे, सो गृहस्थविषे रहते थे, तिनको आपदा आनि प्राप्त हुई; वह चिंताकरि दुर्बल होते जावैं अरु भोजन भी न जुड जावै, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि सूख जाती है, जैसे कमल जलते निकसा सूख जाता है, तैसे संपदारूपी जलते निकसकरि कीटक आपदारूपी धूपकरि सूख गये, तब उनने विचार किया कि, किसी प्रकार हमारी उदरपूर्तता चलै ताते हम वनविषे जायकरि लकडी चुन लेवैं, जो हमारा कष्ट दूर होवै. हे रामजी! ऐसे विचार करिकै वह वनविषे गये वनविषे जायकरि लकडियां ले आये इसी प्रकार लकडियाँ वाले आवैं जब एक वनते अपर वनविषे देखैं, तब वहांते ले आवैं, बजारविषे वेचकरि उदरपूर्ति करैं, जब केताक काल व्यतीत भया, तब कोऊ चंदनकी लकडीको पिछानै सो उनते विशेष मोल पावै, एकको ढूंढते ढूंढते रत्न प्राप्त भये तिनको विशेष ऐश्वर्य प्राप्त भया, सो लकडी उठावनेके यत्नते रहित भये, बहुरि अपर स्थान ढूंढने लगे, जो रत्नते भी विशेष कछु पाइये सो वनकी पृथ्वीको खोदते खोदते कोई चिंतामणिको प्राप्त भये, वह बडे ऐश्वर्यको प्राप्त भये, जैसे ब्रह्मा इंद्रादिक हैं, तैसे होत भये. हे रामजी! जिनने उद्यम-

करिकै वनकी सेवना करी तिनको बडा सुख प्राप्त भया, जो लकडियां उठावते रहे, तिनकी उदर पूर्ति ही भई अरु दुःख निवृत्त न भया अरु जिनको चंदनकी लकडियां प्राप्त भईं, तिनके उदर पूर्णताते अपर भी संताप मिटे अरु जिनको चिन्तामणि प्राप्त भई, तिनके सर्व संताप मिटि गये, वह परम ऐश्वर्यवान् भये परंतु सबको वनसों प्राप्त भया अरु जो वनके निकट उद्यमकरि न गये, घर ही बैठे रहे, सो दुःखित होकरि प्राणोंको त्यागते भये, परंतु सुख न पाया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० चिंतामणिप्राप्तिर्नाम सप्तनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९७ ॥

अष्टनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९८.
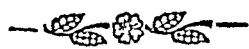
गुरुशास्त्रोपमावर्णनम् ।

राम उवाच--हे भगवन् ! यह जो तुमने कीटकका वृत्तांत कहा सो इसका तात्पर्य मैंने कछु न जाना, वह कीट कौन थे, वन क्या था अरु आपदा क्या थी? सो कृपाकरि प्रगट कहौ. वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! जेते कछु जीव देखता है सो सब कीट हैं, तिनको अज्ञानरूपी आपदा लगी हैं, आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक जो तीनों ताप हैं, आध्यात्मिक कामक्रोधादिक मानसीदुःख हैं, आधिभौतिक देहके वात पित्त कफ आदिक दुःख हैं अरु आधिदैविक जो ग्रहते दुःख अनिच्छित आनि प्राप्त होता है, तीन तापकी चिताकरि जलते हैं. हे रामजी ! तिनविषे प्रयत्न करिकै शास्त्ररूपी वनविषे गये हैं, सो सुखी भये हैं जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वनको सेवते भये, तिनको सत्धर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त भईं तिन-करि जो नरकरूपी उदरपूर्तिका दुःख था सो निवृत्त भया अरु स्वर्गरूपी सुख पाते भये, बहुरि शास्त्ररूपी वनको सेवते सेवते उपासनारूपी चंदनवृक्ष जिनको प्राप्त भया, तिसकरि अवर दुःख भी निवृत्त भये अरु विशेष सुखको पावते भये, सो जब अपने इष्ट देवको सेवता है तब स्वर्गादिक विशेष सुखको पावता है, अपने स्थानको प्राप्त होता है, बहुरि शास्त्र-

रूपी वनको ढूँढता है, तब विचाररूपी रत्नविशेष सुखको पावता है, जब सत् असत्का विचार इसको प्राप्त होता है तब सर्व दुःख इसके नष्ट हो जाते हैं अरु यह जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्रकरिके होता है क्यों ? जैसे अपर पदार्थ चंदन लकडियां वनविषे प्रगट थे चिंतामणि गुप्त थी, तैसे अपर शास्त्रविषे धर्म अर्थ काम प्रगट हैं अरु ज्ञानरूपी चिंतामणि गुप्त है, जब शास्त्ररूपी वन पृथ्वीको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी यत्नकरि खोजै, तब आत्मरूपी चिंतामणिको पावता है. हे रामजी ! वनविषे उन चिंतामणि तब पाई क्यों, जो उहां चिंतामणिका वन था परंतु जब अभ्यास किया तब पाई, परंतु उसी वनविषे पाई; तैसे गुरु शास्त्र भी माटीके खोदनेवत् हैं, जब भला अभ्यास करता है तब आप ही चिंतामणिवत् आत्मप्रकाश आता है, जैसे माटीके खोदनेकरि चिंतामणिका प्रकाश उपजता नहीं, काहेते जो चिंतामणि आगे ही प्रकाशरूप है, खोदनेकरि आवरण दूर किया, तब आप ही भासि आया, तैसे गुरु शास्त्रके वचन तिनके अभ्यासकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाशि आती है सो गुरु अरु शास्त्र हृदयकी मलिनता दूर करते हैं, जब मलिनता दूर होती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशती है, ताते गुरु शास्त्रकरि मलिनता दूर होती है परंतु इनकी कल्पना भी द्वैतविषे होती है, सो कल्पना द्वैत संसारको नाश करने वाली है, परमार्थकी अपेक्षा करिके शास्त्र गुरु भी द्वैत कल्पना है अरु अज्ञानीकी अपेक्षाकरि गुरु शास्त्र कृतार्थ करते हैं, इनके अभ्यासकरि आत्मपद पाता है, प्रथम अज्ञानी शास्त्रको भोगके निमित्त सेवते हैं अरु शास्त्रविषे भोगका अर्थ जानते हैं, जैसे लकडियोंके निमित्त वनको सेवते थे अरु शास्त्रविषे सब कछु है, जैसे किसीको रुचिकरि अभ्यास होता है, तैसे पदार्थ तिसको प्राप्त होता है, शास्त्र एक ही है, परंतु पदार्थविषे भेद है, जैसे गन्नेका रस एक है, तिसते गुड शक्कर खांड मिश्री होती है, तिनविषे भेद है, तैसे शास्त्र एक है, तिनविषे पदार्थ भिन्न भिन्न हैं, जिस जिस अर्थ पावनेके निमित्त यह यत्न करैगा तिसीको पावैगा, शास्त्रविषे भोग भी है अरु मोक्ष भी है, अज्ञानी भोगके निमित्त

यह यत्न करते हैं, परंतु वह भी धन्य हैं, काहेते जो शास्त्रको सेवते तो हैं क्यों ? सेवते सेवते कबहूँ किसी कालविषे आत्मपदरूपी चिंतामणि भी प्राप्त होवैगी परंतु आत्मपद पावनेनिमित्त शास्त्र श्रवण करना योग्य है, सुनि सुनिकरि अभ्यासद्वारा आत्मपद प्राप्त होवैगा, तब सर्व ओरते समभाव होवैगा, जैसे सूर्यके उदय हुए सर्व ओरते प्रकाश पसरि जाता है तैसे सर्व ओर समता प्रकाशैगी, तब सुषुप्तिकी नांई स्थिति होवैगी अर्थ यह जो द्वैत अरु एक कलना भी शांत हो जावैगी, अनुभव अद्वैतविषे जाग्रत होवैगी, परंतु किसकरि होवैगी, संतके संग अरु शास्त्रके विचार अभ्यासद्वारा होवैगी सो संतजन कवन हैं ? जो परोपकारी संसारसमुद्रते पार करनेवाले होवैं सो संतजन हैं, तिनके संगकरि आत्मपद प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! गुरु शास्त्र नेति नेतिकरि जतावते हैं, अर्थ यह जो अनात्मधर्मको निषेधकरि आत्मतत्त्व शेष रखते हैं, जब अनात्मधर्मको त्याग करेगा तब आत्मतत्त्व शेष रहैगा, तिसको जानि लेवैगा, तिसके जानेते अवर कछु जानना नहीं रहता, तिसके जाननेविषे यत्न भी कछु नहीं, आवरण दूर करनेनिमित्त यत्न है, जैसे सूर्य आगे बादल आता है, तिसकरि सूर्य नहीं भासता, सो बादलोंके दूर करनेको यत्न चाहता है, सूर्यके प्रकाशनिमित्त यत्न नहीं चाहता, जब बादल दूर हुए, तब स्वाभाविक ही सूर्य प्रकाशता है, तैसे गुरु शास्त्रके यत्नकरि अहंकाररूपी आवरण दूर होते हैं, तब आत्मा स्वप्रकाश भासि आता है, सात्त्विक गुण जो हैं गुरु अरु शास्त्र, तिनकरि रज तम गुणोंका अभाव होता है, तब परम अनुभव ज्योतिकरि आत्मा अकस्मात् प्रकाशि आता है, जब प्रकाश भया, तब उसविषे उन्मत्त हो जाता है, द्वैतरूपी संसारकी कल्पना नहीं रहती, जैसे सुंदर स्त्रीको देखिकरि कामी पुरुष उन्मत्त हो जाता है अरु संसारकी ओरते सुरति भूलि जाती है, तैसे ज्ञानी आत्मपदको पायकरि उन्मत्त होता है अरु संसारकी ओरते सुरति भूलि जाते हैं, परमऐश्वर्यवान् होता है सो तिसका साधन शास्त्रका विचार है; वनके सेवनेते चिंतामणि पावनेका दृष्टांत कहा है सो जानि लेना।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० गुरुशास्त्रोपमावर्णनं नामाष्टनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९८ ॥

नवनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९९.

विश्रामप्रकटीकरणम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी–जो कछु सिद्धांत संपूर्ण है सो मैंने तुझको विस्तार करिके कहा है तिसके श्रवणकरि अरु वारंवार विचारनेकरि मूढ भी निरावरण होवैंगे, तौ उत्तम पुरुषको निरावरण होनेविषे क्या आश्चर्य है. हे रामजी! यह मैं भी जानता हौं जो तू विदितवेद भया है प्रथम उत्पत्ति प्रकरण तेरे तांई कहा है जो जगत्की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है, बहुरि स्थिति प्रकरण कहा है जो जगत्की स्थिति इस प्रकार हुई है, उत्पत्ति कहिये जो चित्त संवेदनके फुरणेकरि जगत् उपजा है अरु संवेदन फुरणेकी दृढताकरि जगत् स्थित भया है तिसते उपरांत उपशमप्रकरण कहा है जो मन इस प्रकार अफुर होता है, जब चित्त उपशम भया तब परम कल्याण हुआ मनके फुरणेका नाम संसार है जब मन उपशम हो जाता है तब संसारकल्पना मिटि जाती है, यह संपूर्ण विस्तारकरिकै कहा है परंतु अब जानता हौं जो तू बोधवान् भया है. हे रामजी! मैंने तुझको आत्मज्ञानका उपाय कहा है अरु जिनको ज्ञान प्राप्त भया, तिनके लक्षण भी कहे हैं सो अब भी संक्षेपते कहता हौं. हे रामजी! प्रथम बालक अवस्थाविषे इसको यह बनता है, जो संतजनका संग करना अरु सच्छास्त्रका विचारना, इस शुभ आचारकरि अभ्यासद्वारा इसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब समता आनि प्राप्त होती है अरु सर्वसाथ सुहृद हो जाता है, सो समता सुहृदता कैसी है, परमानंदरूप जो है मुदिता तिसकी जननी है, सो सदा इसके संग रहती है, जैसे सुंदर पुरुषको देखिकरि तिसकी स्त्री प्रसन्न होती है, अपने प्राणका त्यागना अंगीकार करती है परंतु इस पुरुषको नहीं त्यागती, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मलक्ष्मीकरि सुन्दरकांति है, तिसको समता मुदिता सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती, सदा इसके हृदयरूपी कंठमें लगी रहती है, वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है. हे रामजी! जिसको देवताका राज्य प्राप्त होता है, वह भी ऐसा प्रसन्न

नहीं रहता अरु जिसको सुंदर स्त्रियां प्राप्त होवैं वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होता है. हे रामजी! समता कैसी है, जो द्विधारूप अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य हैं अरु तीन तापरूपी उष्णताके नाश करनेको पूर्णमासीका चंद्रमा है, बहुरि कैसी है, सुहृदता अरु समता जो सौभाग्यरूपी जलका नीचा अस्थान है, जैसे जल नीचे स्थानमें स्वाभाविक चला जाता है, तैसे सुहृदताविषे सौभाग्यता स्वाभाविक होती है, जैसे चंद्रमाकी किरणोंके अमृतकरि चकोर तृप्तिमान् होते हैं, तैसे आत्मरूपी चंद्रमाकी समता सुहृदतारूपी किरणोंको पायकरि ब्रह्माआदिक चकोर तृप्त होकरि अनंदवान् होते हैं अरु जीते हैं. हे रामजी! वह ज्ञानवान् ऐसी कांतिकरि पूर्ण है, जो कदाचित् भी क्षीण नहीं होती, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाविषे भी उपाधि दृष्टि आती है परंतु ज्ञानवान्के मुखविषे तैसे भी उपाधि नहीं, जैसे उत्तम चिंतामणिकी कांति होती है तैसे ज्ञानवान्की कांति है, राग द्वेषकरिकै क्षीण कदाचित् नहीं होती, सदा प्रसन्न रहती है. हे रामजी! यही समता मानौ सौभाग्यकमलकी खानि है ऐसे आनंदको लिये जगत्विषे विचरता है, जो प्रकृत आचारको करता है, जो कछु कार्य करता है अरु भोजन करता है, जो कछु ग्रहण करता है, जो कछु देता है सो सब लोक उसके कर्तृत्वकी स्तुति करते हैं. हे रामजी! ऐसा जो पुरुष है सो ब्रह्मादिकोंकरि भी पूजनेयोग्य है, सर्व ही उसीका मान करते हैं अरु सर्व उसके दर्शनकी इच्छा करते हैं, दर्शनकरिकै प्रसन्न होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, सर्व हुलासको प्राप्त होते हैं, तैसे उसका दर्शन देखिकरि सर्व हुलासको प्राप्त होते हैं अरु जो कछु वह करते हैं, सो शुभ आचार ही करते हैं अरु जो कछु अपर भी करि बैठते हैं तौ भी उसकी निंदा लोक नहीं करते, काहेते कि जानते हैं यह समदर्शी है, समताकरिकै वह सर्वका सुहृद होता है, शत्रु भी उसके मित्र हो जाते हैं, जिनको समताभाव उदय हुआ है तिनको अग्नि जलाय नहीं सकता अरु जल डुबाय नहीं सकता, वायु तिसको सुखाय नहीं सकता अरु जैसी इच्छा करै तैसी सिद्ध होती है. हे रामजी! जिसको समता प्राप्त हुई है सो पुरुष

अतोल हो जाता है, संसारकी उपमा उसको कोऊ दे नहीं सकता अरु जिसको समता नहीं प्राप्त भई सो सर्व संग सुहृदताका अभ्यास करै, तब जो उसको शत्रु होवै सो भी मित्र हो जाता है, काहेते जो अभ्यासकी दृढताकरिकै इसको शत्रु भी मित्र भासने लगते हैं; जो सर्वविषे समताका अभ्यास करता है सोई दृढ होता है, तब समताभावते कदाचित् चलायमान नहीं होता. हे रामजी! एक राजा था तिसने अपने शरीरका मांस काटि क्षुधार्थीको दिया परंतु समताते चलायमान न भया ज्योंका त्यों रहा अरु एक पुरुषको पुत्री अति प्यारी थी, तिसनें किसीको दीनी सो तिसने अपर शत्रुको दीनी परंतु वह ज्योंका त्यों रहा, एक अपर राजा था उसको स्त्री अति प्यारी थी; उसका कछु व्यभिचार श्रवण किया तिसको मार डारी परंतु समता रूप धर्मको न त्यागता भया. हे रामजी! जब राजाके गृहविषे मंगल होता है, तब अपने नगरको भूषणों अरु वस्त्रोंकरि सुंदर करता है अरु प्रसन्न होता है सो अवस्था राजा जनककी देखी थी अरु एक समय सर्व स्थान अति सुंदर अग्निकरि जलते देखे, तो अपने समताभावते चलायमान न भया अरु एक अपर राजा था, उसने राज्य भी अपरको दे दिया, आप राज्य विना विचरता भया परंतु समताभावते चलायमान न भया. हे रामजी! एक दैत्य था उसको देवताका राज्य प्राप्त भया, बहुरि राज्य नष्ट हो गया परंतु दोनो भावोंविषे सम ही रहा, एक बालक था उसने चंद्रमाको मोदक लड्डू जानकरि फुँक मारी परंतु वह ज्योंका त्यों रहा. हे रामजी! इत्यादिक मैंने अनेक देखे हैं, जिनको आत्मज्ञान सम्यक् प्राप्त भया है सो सुखदुःखकरि चलायमान नहीं भये. हे रामजी! प्रारब्ध ज्ञानीको भोगणीको भोगणी तुल्य है, परंतु राग द्वेषकरि अज्ञानी तपायमान होता है अरु दृढ समझके वशते ज्ञानी तपायमान नहीं होता है, सर्व अवस्थाविषे उसको समताभाव होता है सो आत्मपदके साक्षात्कारि समताभाव होता है सो आत्मपद तपकरिकै भी नहीं प्राप्त होता, न तीर्थोंकरि न दानकरि न यज्ञकरि प्राप्त होता है, जब अपना विचार उत्पन्न होता है तब सर्व भ्रांति निवृत्त हो जाती है अरु सर्व जगत् आत्म-

रूप ही भासता है, इसी दृष्टिको लिये प्राकृत आचारविषे विचरते हैं, परंतु निश्चयते सदा निर्गुण हैं. राम उवाच-हे मुनीश्वर ! ऐसी अद्वैत दृष्टि निष्ठा जिनको प्राप्त भई है तिनको कर्मोंके करने साथ क्या प्रयोजन है, वह त्याग क्यों नहीं करते ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं, तिनको त्याग ग्रहणकी भ्रांति चली जाती है, तिस भ्रमते रहित होकरि प्रारब्धके अनुसार चेष्टा करते हैं. हे रामजी ! जो कछु स्वाभाविक क्रिया उनको बनि पड़ी है, तिसका त्याग नहीं करते, तिस-विषे उनको ज्ञान प्राप्त भया है, सो आचार करते हैं, अपरको ग्रहण नहीं करते, अरु उसका त्याग नहीं करते. हे रामजी ! जिनको गृह-स्थीविषे ज्ञान प्राप्त भया है, सो गृहस्थिहीविषे विचरते हैं, त्याग नहीं करते, जैसे हम स्थित हैं अरु जिनको राज्यविषे ज्ञान प्राप्त भया है सो राज्यहीविषे रहे हैं, जैसे तुम हौ जोब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त भया है, सो ब्राह्मणहीके कर्मोंविषे रहे हैं, इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्र जिस स्थानविषे किसीको ज्ञान प्राप्त भया है, सोई कर्म करता है. हे रामजी ! कई ज्ञानवान् गृहस्थहीविषे रहे हैं, कई राज्य ही करते हैं, कई संन्यासी हो रहे हैं कई वनविषे विचरते फिरते हैं, कई पर्वतकंदराविषे ध्यानस्थित हो रहे हैं. कई नगरविषे रहते हैं, कई ज्ञानवान् मथुराविषे, कई केदारनाथविषे, कई प्रयागविषे, कई जगन्नाथविषे रहते हैं, कई देवताका पूजन करते हैं, कर्म करते हैं, कई तीर्थ अग्निहोत्र करते हैं, हमारी नाईं कई जप करते हैं कई अस्ताचलपर्वतमें, कई उदयाचल पर्वतमें, कई मंदराचल हिमालय पर्वतविषे इत्यादिक स्थानोंमें विचरते हैं, कई शास्त्रविहित कर्म करते हैं, कई अवधूत होरहे हैं, कई भिक्षा मांग मांग भोजन करते हैं कई कठिन वचन बोलते हैं, कई अज्ञानी हुए विचरते हैं, कई विद्याध्ययन करते हैं इत्या-दिक नानाप्रकारकी चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं,काहेते कि उनको स्वाभा-विक आनि प्राप्त भई है, यत्नकरि कछु नहीं करते. हे रामजी ! शुभ कर्म करै अथवा अशुभ कर्म करै कोऊ क्रिया उनको बंधन नहीं करती अरु जो अज्ञानी हैं, सो जैसे कर्म करैंगे तैसे ही फलको भोगैंगे, पुण्य कर्म करैगा तब स्वर्गसुख भोगैगा, पापकरि नरकदुःख भोगैगा अरु जो शुभ

कर्म कामनाते रहित करैगा तब अंतःकरण शुद्ध होवैगा, संतके संग अरु सच्छास्त्रकरि शुद्धताको प्राप्त होवैगा. हे रामजी! जो अर्धप्रबुद्ध है अरु पाप करने लग जावै अरु आत्मअभ्यास त्यागि देवै सो दोनों मार्गते भ्रष्ट है, स्वर्गको नहीं प्राप्त होता अनात्मपदको प्राप्त होता है अरु तप दान तीर्थादिक सेवनेकरि भी आत्मपद प्राप्त नहीं होता, जब विचार उपजता है अरु आत्मपदका अभ्यास करता है तब आत्मपद पाता है, जब आत्मपद प्राप्त भया तब निःशंक हो जाता है, चेष्टा व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परंतु अंतरते उसका चित्त शांत हो जाता है, जैसे लोहेका तष्ट होवै, जब उसको पारसका स्पर्श करिये तब वह स्वर्ण हो जाता है, सो आकार तो उसका तष्ट ही रहता है परंतु लोहा भावको अभाव हो जाता है, तैसे जब चित्तको आत्मपदका स्पर्श होता है तब चित्त शांत हो जाता है परंतु चेष्टा उसी प्रकार होती है अरु जगत्की सत्यता नष्ट हो जाती है. हे रामजी! अब तुम जागे हौ अरु निशंक भये हौ, रागद्वेषरूपी तुम्हारा दोष नष्ट हो गया है अरु तुम निर्विकार आत्मपदको प्राप्त भये हौ, जन्म मृत्यु बढना घटना युवा वृद्ध होना इन सर्व विकारोंते रहित आत्मपदको तुम पाये हौ, सर्वका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चेतन है, सो तुमको प्राप्त भया है. हे रामजी! जो कछु मुझे कहना था सो कहा है अरु सारका सार आत्मपद कहा है अरु जो कछु जानने योग्य था, सो तुमने जाना है, इसते उपरांत न कछु कहना रहा है न कछु जानना रहा है, एतेपर्यंत कहना अरु जानना है, अब तुम निःशंक होकरि विचरौ, तुमको संशय कोऊ नहीं रहा क्षय अरु अतिशयरहित पद तुम पाये हौ अर्थ यह कि अविनाशी अरु सर्वते उत्तम पदको पाये हौ. वाल्मीकिरुवाच–हे साधो! जब इस प्रकार वसिष्ठजी मुनियोंविषे शार्दूल कहिकरि तूष्णीं हो रहा, तब जेती कछु सभा बैठी थी सो सब ही परम निर्विकल्पपदविषे स्थित हो गई, जैसे वायुते रहित कमलफूलपर भँवरे अचल होते हैं, तैसे चित्तरूपी भँवरे आत्मपदकमलके रसको लेते हुए स्थित हो रहे, ब्रह्मको जानिकरि ब्रह्म-रूप हुए ब्रह्मविषे स्थित भये, जेते कछु निकट मृग थे सो तृणभक्षणको

त्यागिकरि अचल हो गये,अपर पशु पक्षी थे सो सुनिकरि निस्पंद हो रहे अरु स्त्रियां बालकन संयुक्त चपल थीं सो सुनिकरि जडवत् हो गईं पूर्व जो मुक्तिमान् मोक्ष उपायके श्रवणको सिद्धोंके गण आते थे तिनने भी बडे फूलनकी वर्षा करी, तमाल कदंब पारिजात कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षोंके जो फूल हैं, तिनकी देवता अरु सिद्धोंने वर्षा करी, नगारे भेरी शंख बजावने लगे अरु वसिष्ठजीकी स्तुति करने लगे,बडे शब्द भये, तिनकरिकै दशों दिशा पूर्ण भईं, ऊपरते देवता सिद्धोंके नगारे शब्द हुए,तिनकरि पर्वतोंविषे शब्दभाव उठे, अरु दिव्य फूलोंकी सुगंधि पसरी मानो पवन भी रंगित भया है, तब सिद्ध कहत भये. हे वसिष्ठजी ! हमने भी अनेक मोक्षउपाय श्रवण किये हैं अरु उच्चारण किये हैं, परंतु जैसा तुमने कहा है तैसा न आगे श्रवण किया है न गाया है, न कहा है,तुम्हारे मुखारविंदते जो श्रवण किया है तिसकरि हम परम सिद्धांतको जानत भये हैं, इसके श्रवणकरि पशु पक्षी मृग भी कृतार्थ भये हैं, अपर मनुष्योंकी वार्ता क्या कहिये वह तौ कृतार्थ ही भये हैं; निष्पाप ज्ञानको पायकरि मुक्त होवैंगे. वाल्मीकिरुवाच--हे साधो ! ऐसे कहिकरि बहुरि फूलोंकी वर्षा करी अरु चंदनका लेप वसिष्ठजीको करे, जब इस प्रकार पूजा करि चुके अरु कह रहे तब अपर जो निकट बैठे थे सो परम विस्मयको प्राप्त भये जो ऐसा परम उपदेश वसिष्ठजीने किया है, तब राजा दशरथ उठि ठाढ भया, हस्त जोडिकरि वसिष्ठजीको नमस्कार किया अरु कहत भया. हे भगवन् ! षट् ऐश्वर्यसों संपन्न तुम्हारी कृपाकरि हम पूर्ण भये हैं, कैसे हम पूर्ण भये हैं, हे भगवन् ! तुमने संपूर्णशास्त्र श्रवण कराया है, तिसको सुनकरि पूजन करने योग्य हैं, सो हे देव ! तुम्हारा पूजन किससाथ करैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वीविषे कोऊ नहीं अरु आकाशलोक देवताविषे भी कोऊ नहीं, जो तुम्हारी पूजाके योग्य होवै, सर्व पदार्थ कल्पित हैं अरु जो सत् पदार्थसाथ पूजा करैं तौ सत् तुमहीते पाया है, तातें ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो तुम्हारी पूजायोग्य होवै, तथापि अपनी अपनी शक्त्यनुसार पूजन करते हैं परंतु तुम क्रोधवान् नहीं होना अरु हांसी भी नहीं करनी. हे मुनीश्वर ! मैं राजा

दशरथ अरु संपूर्ण मेरे अंतःपुरकी स्त्रियां अरु चतुष्टय पुत्र राज्य संपूर्ण पूजासहित अरु जो कछु लोकविषे यश किया अरु जो कछु परलोकके निमित्त पुण्य किये हैं सो सर्व तुम्हारे चरणोंके आगे निवेदन हैं. हे साधो! इस प्रकार कहिकरि राजा दशरथ वसिष्ठजीके चरणोंपर गिरा तब वसिष्ठजी बोले. हे राजन्! तू धन्य है, जिनकी ऐसी श्रद्धा है परंतु हम तौ ब्राह्मण हैं, हमारे राज्य क्या करना है अरु राज्यका व्यवहार क्या जानैं अरु कबहूँ ब्राह्मणने राज्य किया है? राजा क्षत्रिय होते हैं, ताते तुझहीसों राज्य होवैगा अरु यह जो तेरा शरीर है सो मैं अपना ही जानता हौं अरु यह चतुष्टय पुत्र तेरे मैं आगेते अपने जानता हौं, हम तौ तेरे परिणामकरिकै ही तुष्ट हौं, यह राज्यका प्रसाद हमने तुझको ही दिया है. वाल्मीकिरुवाच-जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा तब राजा दशरथ बहुरि कहत भया कि हे स्वामी! तुम्हारे लायक कोऊ पदार्थ नहीं, तुम ब्रह्मांडोंके ईश्वर हौ, ऐसे वचन तुमप्रति कहनेविषे भी हमको लज्जा आती है परंतु योगके निमित्त तुम्हारे आगे विनती करी है, जो मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवण किया है, अपनी शक्तिके अनुसार पूजन करैं, तब वसिष्ठजीने कहा बैठो, तब राजा बैठि गया, बहुरि रामजी निरभिमान होकरि कहत भये. हे संशयरूपी तिमिरके नाशकर्त्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससाथ करैं, जो पदार्थ गृहविषे अपना होवै, सो हे गुरुजी! मेरे पास अपर तौ कछु नहीं एक नमस्कार ही है, ऐसे कहि चरणोंपर गिरा, नेत्रोंते जल चला जावै, वारंवार उठै बहुरि आत्मानंदप्राप्तिके उत्साहकरिकै चरणोंपर गिर पड़ै, जब वसिष्ठजीने कहा बैठ जावहु, वह रामजी बैठि गये, बहुरि लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न अर्घ्य पाद्यकरि पूजने लगे, राजर्षि ब्रह्मर्षि सर्व पूजने लगे, फूलोंकी वर्षा बडी चढि गई, वसिष्ठजीका शरीर भी ढांका गया, जब वसिष्ठजीने भुजासाथ फूल दूर किये, तब मुख दृष्टि आने लगा, जैसे बादलोंके दूर भये चंद्रमा दृष्टि आता है, तैसे मुख भासा, तब वसिष्ठजीने कहा. हे ऋषीश्वरो! व्यास वामदेव विश्वामित्र नारद भृगु अत्रि इत्यादिकते लेकरि जो बैठे थे तिनप्रति कहा. हे साधो! जो कछु मैंने

सिद्धांतके वचन कहे हैं, इनते घट अथवा बढ होवै सो तुम अब कहौ, जैसा जैसा स्वर्ण होता है तैसा तैसा अग्नि बीच दिखाई देता है, तैसे तुम कहो, तब सबने कहा. हे मुनीश्वर ! यह तुमने परम सार वचन कहे हैं, जो जो तुम्हारे वचनोंको घट बढ जानिकरि तिनकी निंदा करैगा सो महापतित होवैगा, यह वचन परमपद पानेका कारण है. हे मुनीश्वर ! हमारे अंतर भी जो कछु जन्मजन्मांतरका मल था सो नष्ट भया है, हम तौ पूर्ण ज्ञानवान् थे, परंतु पूर्व जन्म जो धारे हैं, तिनकी स्मृति हमारे चित्तविषे थी, जो अमुक जन्म हम इस प्रकार पाया था अरु अमुक जन्म इस प्रकार पाया था सो सब स्मृति अब नष्ट भई है, जैसे स्वर्ण अग्निविषे डारा शुद्ध होता है, तैसे तुम्हारे वचनोंकरि स्मृतिरूप मल हमारा नष्ट भया है, अब हम जान गये हैं कि, न कोऊ हमारा जन्म था, न हमने कोऊ जन्म पाया है, हम अपने ही आपविषे स्थित हैं. हे मुनीश्वर ! तुम कैसे हौ जो संपूर्ण विश्वके गुरु हौ अरु ज्ञान-अवतार हौ ऐसे तुमको हमारा नमस्कार है, राजा दशरथ भी धन्य है, जिसके संयोगकरि हमने मोक्षउपाय श्रवण किया है अरु यह रामजी विष्णु भगवान् हैं. वाल्मीकिरुवाच–इसी प्रकार ऋषीश्वर मुनीश्वर वसिष्ठजीको परम गुरु जानिकरि स्तुति करने लगे अरु रामजीको विष्णु भगवान् जानिकरि स्तुति करने लगे अरु राजा दशरथकी स्तुति करत भये, जिसके गृहविषे विष्णु भगवान्ने अवतार लिया है, स्तुति करिकै वसिष्ठजीको अर्घ्य पाद्यकरि पूजने लगे, बहुरि आकाशके सिद्ध बोले हे वसिष्ठजी ! तुमको हमारा नमस्कार है, तुम गुरुके भी गुरु हौ, हे प्रभो ! जो कछु तुमने उपदेश किया है अरु जो कछु तिसविषे युक्तियां कही हैं, ऐसे वचन वागीश्वरी जो है सरस्वती, सो भी कहै अथवा न कहै, तुमको वारंवार नमस्कार है अरु राजा दशरथ चतुर द्वीपका राजा तिसको भी नमस्कार है, जिसके प्रसंगकरि हमने ज्ञान अरु युक्तियां श्रवण किया है अरु यह रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं, चारों आत्मा हैं, इनको हमारा प्रणाम है, यह जो चारो भाई हैं सो ईश्वर देवता हैं, विष्णु भगवान् जाके ऊपर कृपा करता है, राजकुमार जीव-न्मुक्त अवस्थाको धारि करि बैठे हैं अरु वसिष्ठजी परम गुरु हैं अरु

विश्वामित्र तपकी मूर्ति है. वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार जब सिद्ध कह रहे तब फूलकी वर्षा करने लगे, जैसे हिमालय पर्वतपर बर्फकी वर्षा होती है अरु बर्फकारि पूर्ण हो जाता है, तैसे वसिष्ठजी पुष्पकरि पूर्ण भये, आकाशचारी जो ब्रह्मलोकविषे वासी थे तिनने भी पुष्पकी वर्षा करी, अपर जो सभाविषे बैठे थे तिनने भी पूजन किया अरु अपर जो सभाविषे ब्रह्मर्षि बैठे थे तिनका भी यथायोग्य पूजन किया, इस प्रकार जब सिद्ध पूजन करि चुके तब कई ध्याननिष्ठ हो रहे, सबके चित्त शरत्कालके आकाशवत् निर्मल हो गये, अपने स्वभावविषे स्थित भये, जैसे स्वप्नकी सृष्टिका कौतुक देखिकरि कोऊ जागि उठे अरु हँसे, तैसे वह हँसने लगे, तब वसिष्ठजी रामजीको कहत भये. हे रघुवंशरूपी आकाशके चंद्र ! तू अब किस दशाविषे स्थित हौ अरु क्या जानते हौ ? राम उवाच–हे भगवन् ! सर्व धर्म ज्ञानके समुद्र ! तुम्हारी कृपाते मैं अब अपने आपविषे स्थित हौं अरु कोऊ कल्पना नहीं रही, परम शांतिमान् भया हौं, मुझको शेष विशेष कोऊ नहीं भासता, केवल अपना आप ही पूर्ण भासता है, अब मुझको संशय कोऊ नहीं रही अरु इच्छा भी कछु नहीं रही, मैं परम निर्विकल्प पद पाया हौं, कोई कल्पना मुझको नहीं फुरती, जैसे नील पीतादिक उपाधिते रहित स्फटिक प्रकाशती है, तैसे मैं निरुपाधि स्थित हौं, संकल्प विकल्प उपाधिका अभाव हो गया है, परम शुद्धताको प्राप्त भया हौं; चित्त मेरा शांत हो गया है, चेष्टा मेरी पूर्ववत् होवैगी अरु निश्चयविषे कछु न फुरैगा, जैसे शिलाविषे प्राण नहीं फुरते, मुझको द्वैत कल्पना कछु नहीं फुरती. हे मुनीश्वर ! अब मुझको सब आकाशरूप भासता है मैं शांतरूप होकरि परम निर्वाण हौं, भिन्नभाव जगत् मुझको कछु नहीं भासता, सर्व अपना आप ही भासता है, अब जो कछु तुम कहो सोई करौं, अब मुझको शोक कोऊ नहीं रहा, जैसा राज्य करणा, भोजन छाजन बैठना चलना पान करना जैसे तुम कहहु तैसे ही करौं, तुम्हारे प्रसादकरि मुझको सर्व समान है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विश्रामप्रकटीकरणं नाम नवनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९९ ॥

त्रिशततमः सर्गः ३००.

निर्वाणवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे भारद्वज! जब ऐसे रामजीने कहा तब वसिष्ठजी कहत भये. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! बडा कल्याण हुआ, जो अपने आपविषे स्थित भया, अब तुझने यथार्थ जाना है, अब जो कछु सुननेकी इच्छा है सो कहौ. राम उवाच–हे संशयरूपी अंधकारके नाशकर्ता सूर्य अरु संशयरूपी वृक्षोंके नाशकर्त्ता कुठार! अब तुम्हारे प्रसादकरिकै मैं परम विश्रांतिको प्राप्त भया हौं अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिकी कलनाते रहित हौं, जाग्रत् जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है, श्रवण करनेकी इच्छा भी नहीं रही, अब परम ध्यान मुझको प्राप्त भया है, अर्थ यह जो आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं भासती, मैं आत्मा हौं, अज अविनाशी हौं, शांतरूप हौं, अनंत हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है, प्रलयकालका पवन चलै अरु समुद्र उछलै इत्यादिक अपर क्षोभ होवै, तौ भी मेरा चित्त स्वरूपते चलायमान न होवैगा अरु जो त्रिलोकीका राज्य मुझको प्राप्त होवै तौभी मेरे चित्तविषे हर्ष न उपजैगा, मैं सत्तासमानविषे स्थित हौं. वाल्मीकिरुवाच–हे भारद्वज! जब इस प्रकार रामजीने कहा तब मध्याह्नका सूर्य शिरके ऊपर उदय भया, राजा जो बैठे थे रत्न मणिके भूषणकरि भूषित तिन मणिनकी कांति किरणोंकरि अति विशेष हुई, सूर्यसाथ ही एक हो गई, मानो ऐसे वचन सुनिकरि नृत्य करती है, तब वसिष्ठजीने कहा, हे रामजी! अब हम गमन करते हैं, मध्याह्नकी उपासनाका समय है, जो कछु पूछना होवै सो बहुरि काल पूछना, तब राजा दशरथ उठ खडा हुआ, पुत्रसहित वसिष्ठजीका बहुत पूजन किया, अपर जो ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्राह्मण थे तिनका यथायोग्य पूजन किया, मोती हीराकी माला अरु मुहर रुपये घोडे गौ वस्त्र भूषण इनते आदि लेकरि जो ऐश्वर्यकी सामग्री है तिसकरि यथायोग्य पूजन किया, जो विरक्त संन्यासी थे तिनको प्रणामकरि प्रसन्न किये, अपर जो राजर्षि थे तिनका

भी पूजन किया, तब वसिष्ठजी उठ खडे हुए, परस्पर नमस्कार किया, मध्याह्नके नौवत नगारे बाजने लगे; सब श्रोता उठिकारि अपने आप साथ विचारने लगे,चले जावैं अरु शीश हिलावैं, हाथकी अंगुली हिलावैं, नेत्रकी भावाँ हिलावैं परस्पर चर्चा करते जावैं सब अपने स्थानोंको गये, वसिष्ठजी संध्या उपासना करने लगे अरु जेते श्रोता थे सो विचारपूर्वक रात्रिको व्यतीत करत भये, सूर्यकी किरणोंसाथ बहुरि आये, गगनचारी सप्त लोकके रहनेवाले ऋषि देवता आये,सर्व श्रोता भूमिवासी राजर्षि ब्रह्मर्षि अपर जो श्रोता थे सो सब आयकारि अपने स्थानपर बैठि गये, परस्पर नमस्कार किया,तब रामजी हाथ जोडिकारि उठि खडा हुआ अरु कहा. हे भगवन् ! अब जो कछु मुझको श्रवण करना अरु जानना रहता है सो तुम ही कृपा करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो कछु सुनने योग्य था सो तुझने सुना है अब तू कृतकृत्य भया है जो कछु रघुवंशीका कुल है सो सब ही तुझने तारा है अरु जो आगे हुए हैं अरु जो अब हैं अरु जो आगे होवैंगे सो सब तुझने कृतकृत्य किये हैं, अब तू परमपदको प्राप्त भया है अपर जो कछु तुझको पूछनेकी इच्छा है सो पूछ ले अरु हे रामजी ! जो सत्तासमानविषे स्थित भया है तौ विश्वामित्रके साथ जायकारि इसका कार्य करु अरु कछु पूछनेकी इच्छा है सो पूछि ले. राम उवाच-हे भगवन् ! आगे जो मैं आपको देखता था सो इस देहसंयुक्त परिच्छिन्नरूप देखता था अरु अब आपको देखता हौं जो आपते इतर मुझको कछु नहीं भासता, सब अपना आप ही भासता है. हे मुनीश्वर ! अब इस शरीरसाथ भी मुझको प्रयोजन कछु नहीं रहा, जैसे फूलनसों सुगंधि लेकारि पवन है अपने स्थानको चला जाता है अरु फूलनसाथ तिसका प्रयोजन नहीं रहता, तैसे इस देहविषे जो कछु सार था सो मैं पायकारि अपने आपविषे स्थित हौं शरीर साथ भी मुझको प्रयोजन नहीं रहा, अब राज्य भोगनेकारि कछु सुखदुःख नहीं, इंद्रियके इष्ट अनिष्टविषे मुझको हर्ष शोक कोऊ नहीं, मैं अब सर्वते उत्तम पदको प्राप्त भया हौं, सर्व कलनाते रहित हौं, अविनाशी अव्यक्तरूप सर्वते निरंतर सदा अपने आपविषे स्थित हौं निराकार निर्वि

कछु पाने योग्य था सो पाया है, जो कछु सुनने योग्य था सो सुना है, जो कछु तुम्हारेसे कहना था सो कहा है अब तुम्हारी वाणी सफल भई है, जैसे कोऊ रोगीको औषध देता है तिस औषधसाथ उसका रोग जाता है अरु उसका कल्याण होता है; तैसे तुम्हारी वाणीकारि मेरा संशयरूप रोग गया है अरु अपने आपकारि तृप्त भया हौं अब मैं निःशंक होकारि अपने आपविषे स्थित हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० निर्वाणवर्णनं नाम त्रिशततमः सर्गः ॥ ३०० ॥

एकाधिकत्रिशततमः सर्गः ३०१.
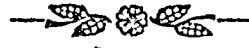
चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे महाबाहो रामजी ! तू मेरे परम वचन सुन, दृढ अभ्यासके निमित्त कहता हौं, जैसे आदर्शको ज्यों ज्यों मार्जन करता है त्यों त्यों उज्ज्वल होता है, तैसे वारंवार श्रवणकारि अभ्यास दृढ होता है अरु जेता कछु जगत् भासता है सो सब चिदानंदस्वरूप है, भासती भी सोई वस्तु है जो आगे भानरूप होती है, सो भानरूप चेतन है ताते जो पदार्थ भासते हैं सो सब चेतनरूप हैं अरु जो भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं सो द्वैतकी कल्पनाते भासते हैं, वास्तवते भानरूप चेतन है, जैसे जो उच्चार करता है सो सब शब्द हैं शब्दरूप एक है अरु अर्थकारि भिन्न भिन्न भासते हैं जब अर्थकी कल्पना त्यागि दीजै तब यही शब्द है अरु जो अर्थ करिये यह जल है, यह पृथ्वी है, यह अग्नि है इनते आदि लेकारि अनेक शब्द अरु अर्थ होते हैं, अर्थते रहित शब्द एक ही है, तैसे यह सब चेतन है, चित्तकी कल्पनाकारि भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, अपर वस्तु कछु नहीं, अपर भासता है सो तिसीका आभास है. हे रामजी ! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है परंतु ज्ञानविषे भेद होता है सो ज्ञानविषे भी भेद नहीं, वृत्तिविषे भेद है जिसविषे अर्थ भासते हैं अरु ज्ञानरूप अनुभवसत्ता है, तिसविषे जैसे अर्थकी वृत्ति आभास होती है

तिसको जानता है, जैसे जेवरी एक पडी होती है तिसविषे सर्पका अर्थ वृत्ति न ग्रहण करै तो सर्प तो कछु नहीं वह जेवरी ही है, तैसे अर्थ भेद ग्रहण करिये नहीं तौ ज्ञान ही है,जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब ज्ञानरूप ही हैं अपर कछु बना नहीं. हे रामजी ! स्वप्नके दृष्टांत मैंने तुझको जतावनेके निमित्त कहे हैं वास्तवते स्वप्न भी कोऊ नहीं, अद्वैतसत्ता आपने आपविषे स्थित है,जैसे समुद्र सदा जलरूप है,द्रवता करिकै तरङ्ग बुद्बुदे भासते हैं सो नानारूप नहीं अरु नाना हो भासता है, तैसे सर्व जगत् अनानारूप है अरु नाना हो भासता है, तू अपने स्वप्नकी स्मृतिको विचारि देख, जो तेरा अनुभव ही नानाप्रकार हो भासता है परंतु कछु हुआ नहीं, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी तेरा अपना आप है दूसरा कछु नहीं, सदा निराकार निर्विकार आकाशरूप आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. राम उवाच--हे भगवन् ! जो अद्वैतसत्ता निराकार निर्विकार सदा अपने आपविषे स्थित है, तौ पृथ्वीकहांते उपजी है ? जल कैसे उपजा है ? अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य,पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशविषे कैसे उपजे हैं? मेरे दृढ बोधके निमित्त कहहु. वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! यह तू कहु कि स्वप्नविषे जो पृथ्वी उपजी होती है सो कहांते उपजी है अरु जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप पुण्य कहांते उपजे हैं, देश काल पदार्थ कहांते उपजे हैं ? राम उवाच--हे मुनीश्वर ! स्वप्नविषे जो पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश देश काल पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप होते हैं आत्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों होती है, सो तत्त्ववेत्ताको ज्योंकी त्यों भासती है अरु जो असम्यक्दर्शी हैं तिनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, भासना दुसको तुल्य होता है परंतु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण करती है, तिसको ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता भासती है अरु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण नहीं करती, तिसको वही वस्तु अपररूप हो भासती है. हे मुनीश्वर ! अपर जगत् कछु बना नहीं वही आत्म सत्ता स्थित है, जब कठोर रूपकी संवेदन फुरती है, तब पृथ्वी पहाडरूप हो भासती है अरु द्रवताका स्पंद फुरता है, तब जलरूप हो भासता है अरु उष्णरूपकी संवेदन फुरती है, तब अग्नि भासती है, इसी

प्रकार वायु आकाशादिक पदार्थ जैसे फुरणा होता है तैसे हो भासता है, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है परंतु जलते इतर कछु नहीं, जल ही रूप है, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है वही रूप है, अपर जगत् कछु वस्तु नहीं, यह गुण क्रिया सब आकाशविषे हैं, वास्तव कछु नहीं काहेते जो कारणते रहित है; सब असत्‌रूप है अहं त्वंते आदि लेकरि जेता कछु जगत् भासता है सो सब आकाश रूप है कछु बना नहीं, अपने आपविषे आत्मसत्ता स्थित है, न कोऊ आधार है अद्वैत-सत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है अरु नानारूप हो भासती है, जब चित्तसंवेदन फुरती है तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, काल हो भासता है, कहूं सर्व आत्माका ज्ञान फुरता है, कहूं परिच्छिन्नता भासती है परंतु वास्तवते कछु बना नहीं, वही वस्तु है, जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है तैसा हो भासता है, अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है, जिसविषे आकाश भी आकाशरूप है.

इति श्रीयो० निर्वाणप्र० उ० चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनं नामैकाधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०१ ॥

द्व्यधिकत्रिशततमः सर्गः ३०२.

जगदाभासवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! यह प्रश्न है, जो जाग्रत् अरु स्वप्नविषे कछु भेद नहीं अरु परम आकाशरूप है, तौ तिस सत्ताको जाग्रत् अरु स्वप्न-शरीरसथ कैसे संयोग है, वह तौ निरवयव निराकार है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जेते कछु आकार तुझको भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं, आकाशविषे आकाश स्थित है स्वर्गके आदि आकारका अभाव था सो अबहीं जान जो उपजा कोऊ नहीं, परम आकाशसत्ता अपने आप-विषे स्थित है, जब तिस अद्वैतसत्ता चिन्मात्रविषे चित्त किंचन होता है, तब वही सत्ता आकारकी नांई भासती है परंतु कछु हुआ नहीं, आका-शरूप ही है, जैसे स्वप्नविषे शरीरोंका अनुभव करता है सो कछु आकार

तौ नहीं होते, आकाशरूप होते हैं, तैसे यह जगत् भी निराकार है परंतु फुरणेकरि आकार हो भासता है जिन तत्त्वते शरीर होता है सो तत्त्व ही उपजे नहीं तौ शरीरकी उत्पत्ति कैसे कहौं? हे रामजी! अपर जगत् कछु उपजा नहीं ब्रह्म ही किंचनकरि जगतरूप हो भासता है, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद नहीं, संवेदन करिकै अर्थ संकेत है जब संवेदन न फुरै तब असंकेत न होवै, भिन्न भिन्न वस्तुते एक ही सत्ताके नाम हैं, भिन्न नाम तब भासते हैं जब वेदना फुरती है नहीं तौ शब्द जलधरके तुल्य है वस्तुते भेद नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं परंतु स्पंदरूप हो भासती है निस्पंद नहीं भासती, परंतु दोनों रूप वायुके हैं तैसे स्पंदकरि ब्रह्मविषे किंचन जगत् भासता है जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत नहीं भासता, परंतु दोनों रूप ब्रह्म ही हैं ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, जैसे एक निद्राके दो रूप होते हैं, एक स्वप्न अरु दूसरी सुषुप्ति, परंतु दोनों एक निद्राके पर्याय हैं तैसे जगत्का होना अरु न भासना एक ब्रह्मकी दोनों संज्ञा हैं कोऊ ब्रह्म कहौ, कोऊ जगत् कहौ, ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, ब्रह्म ही जगतरूप हो भासता है, जैसे निर्मल अनुभवसों स्वप्नविषे शिला भासि आती है सो शिला तौ कछु स्वप्नविषे उपजी नहीं अपना अनुभव ही शिलारूप हो भासता है तैसे जेते कछु आकार अब भासते हैं सो जब आकाशरूप हैं आत्म-सत्ता ही आकाशरूप जगत् हो भासती है अपर जगत् कछु उपजा नहीं होता, न सत् है, न असत् है, न आता है, न जाता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. राम उवाच–हे मुनीश्वर! आगे तुमने मुझको अनेक सृष्टि कही हैं, कई जलविषे, कई अग्निविषे, कई पृथ्वीविषे, कई वायुविषे आकाशविषे पत्थरविषे पक्षीवत् उडती फिरती हैं, इत्यादिक नाना प्रकारकी सृष्टि तुमने कही हैं अब यह प्रश्न है कि हमारी सृष्टि किसते उत्पन्न भई है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! प्रश्न वही करता है जो अपूर्व होता है जो आगे देखा अरु सुना न होवै अरु जगतकरि जाना भी न होवै. इस जगत्की उत्पत्ति वेद पुराण कहते हैं अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध है जो ब्रह्मा करिकै हुई है अरु वस्तुते चिदा-

काशरूप है कछु उपजी नहीं, यह दोनों प्रकार मैंने तेरे ताईं कहे हैं, तिनको तू जानिकरि भी प्रश्न करता है सो तेरा प्रश्न ही नहीं बनता. राम उवाच-हे मुनीश्वर ! यह सृष्टि कितनीक हैं अरु कहांलग चली जाती हैं अरु केते कालपर्यंत रहैंगी ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जेती कछु सृष्टि तू जानता है सो सृष्टि कोऊ नहीं ब्रह्म ही ब्रह्मविषे स्थित है अरु सृष्टि बहुत है परंतु वस्तुते कछु हुई नहीं आदि अंत मध्यते रहित है सो ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है अरु यह जेती कछु सृष्टि है सो आभासमात्र है ब्रह्म जो आदि अंत मध्यते रहित है तिसका आभास भी तैसा ही है, जेता वृक्ष होता है तेती ही छाया होती है तिस ब्रह्मका आभास सृष्टि है अरु वास्तवते पूछै तौ आभास भी कोऊ नहीं, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है वही जगत्रूप आपको देखता है ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदी आयुध नाना प्रकारके व्यवहारके रूप धारिकारि आत्मसत्ता स्थित होती है सो कछु बना नहीं, जैसे संकल्पनगर भासता है तैसे यह जगत् भी जान अपर कछु बना नहीं, आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है जो जगत् किसी कारणकारि उपजा होता तो सत् होता इसका कारण कोऊ नहीं पाता ताते असत है न कोऊ निमित्तकारण पाता है, न समवायिकारण पाता है. हे रामजी ! जो कारणते उपजा न होवै अरु भासै तिसको आकाशमात्र स्वप्नपुरवत् जान अरु जिसविषे आभास भासता है सो अधिष्ठान सत्ता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है सो सर्प कछु नहीं जेवरी ही सत् होती है तैसे जगत् अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है सोई सत् है, शुद्ध निर्दुःख है, अच्युत है, विज्ञान है, सदा अपने आपविषे स्थित है, वही सत्ता जगत्रूप हो भासती है, जैसे जल ही तरंगरूप हो भासता है तैसे ब्रह्म ही जगत्रूप हो भासता है. हे रामजी ! यह जगत् ब्रह्मका हृदय है, अर्थ यह जो अपना स्वभाव है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ज्ञानीको सर्वदा ऐसे ही भासता है, जैसे स्वप्नते जागे तब अपना आप ही भासता है तैसे यह जगत् अपना आप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जगदाभासवर्णनं नाम द्व्यधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०२ ॥

त्र्यधिकत्रिशततमः सर्गः ३०३.

राजप्रश्नवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस जगत्का कारण कोऊ नहीं, जो जगत् ही नहीं तौ कारण कैसे होवै अरु कारण नहीं तौ जगत् कैसे होवै, ताते सर्व ब्रह्म ही है, इसके ऊपर एक उपाख्यान है सो सुन. हे रामजी! कुशद्वीपविषे पूर्व अरु पश्चिम दिशाके मध्यविषे जो ऐलावती नगरी है, सो कैसी नगरी है, स्वर्णकी अरु महाउज्ज्वलरूप है, तिसविषे बड़े स्तंभ ऊर्ध्वको गये हैं, मानौ पृथ्वी अरु आकाशको इनने ही पूर्ण किया है, ऐसे वहां स्वर्णके स्तंभ थे तिस नगरीका एक प्रागपति राजा है, एक कालमें आकाशते शीघ्र वेगकरि उसके गृहविषे मैं आया, उसने भलेप्रकार अर्घ्य पाद्य साथ प्रीतिकरि मेरा पूजन किया अरु सिंहासनके ऊपर बैठाया, बैठायकरि उसने मुझसों महाप्रश्न किया, जिन प्रश्नके उपरांत कोऊ प्रश्न नहीं. राजोवाच-हे भगवन्! संशयरूपी तमके नाशकर्ता तुम सूर्य हौ मुझको संशय है सो दूर करहु. हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होती है तब कार्य कारण सर्व शब्दकी कल्पना अभाव हो जाती है, तिसके पाछे महाआकाशसत्ता शेष रहती है तिसविषे वाणीकी गम नहीं, अवाच्यपद है, तिसते बहुरि सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है, वहां उपादानकारण अरु निमित्तकारण तौ कोऊ न था, सृष्टि कैसे हुई, श्रुति अरु पुराणकरि सुना जाता है कि महाप्रलयसों बहुरि सृष्टि उत्पन्न भई है अरु दूसरा प्रश्न यह है, जंबूद्वीपविषे कोऊ मृतक भया अथवा कहूँ अपर ठौर गया हुआ मृतक भया, तौ उसका वह शरीर तौ वहां भस्म हो गया अरु परलोकविषे पुण्य पापका फल दुःख भोगता है, जिस शरीरकरि भोगता है तिस शरीरका कारण कोऊ नहीं, जो तुम कहौ पुण्य अरु पाप शरीरका कारण है, तौ पुण्यपाप आप ही निराकार हैं, तिनते साकाररूप शरीर कैसे उपजै अरु जो तुम कहौ, परलोक कोऊ नहीं, पुण्य पाप भी कोऊ नहीं तौ श्रुति अरु पुराणके वचनोंसाथ विरोध होता है, सब ही वर्णन करते हैं, जो

मरिकरि परलोक जाता है, जैसे कर्म किये हैं तैसे भोगता है अरु जिस शरीर साथ भोगता है तिसका कारण कोऊ नहीं, न कोऊ पिता है, न माता है, सो शरीर कैसे उत्पन्न भया अरु तीसरा प्रश्न यह है कि यह परलोकविषे जाता है, इसके निमित्त दान पुण्य करते हैं, उनका फल इसको कैसे प्राप्त होता है अरु चतुर्थ प्रश्न यह जो महाप्रलयते ब्रह्म उत्पन्न भया है, उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ है, जो महाप्रलयते न उपजा होवे अरु अपना आपहीते उपजा होवे, इस कारणते स्वयंभू कहाता है अरु महाप्रलयविषे शेष अद्वैत रहा था, तिसते उत्पन्न भया है, तौ भी स्वयंभू कैसे कहिये, जो कहौ, स्वयंभू अपने आपते उपजता है, अपना आप आत्मा है, सो सबका अपना आप है, अब क्यों नहीं तिसते स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न होता अरु पंचम प्रश्न यह है, जो एक पुरुष था, तिसका एक मित्र था, एक शत्रु था, तिन दोनोंने प्रयागविषे जाइ-करि करवत लिया, जो इनका मित्र था तिसने वांछा करी कि मेरा मित्र चिरकाल जीवता रहै, चिरंजीव होवै दूसरेने यह संकल्प धारा कि मेरा शत्रु इसी कालविषे मरि जावै. हे मुनीश्वर ! एक ही कालविषे दो अवस्था कैसे होवैंगी अरु षष्ठ प्रश्न यह है, जो सहस्र ही मनुष्य ध्यान लगाये बैठे हैं, हम इसी आकाशके चंद्रमा होवैं सो एक ही आकाशविषे सहस्र चंद्रमा कैसे होवैंगे अरु सप्तम प्रश्न यह है कि सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे हैं, एक सुंदर स्त्री बैठी थी तिसके निमित्त कि हमारे ताईं यह प्राप्त होवै, सब तिसकी वांछा करते हैं हम भर्त्ता होवैं अरु एकका निश्चय यही है अरु वह स्त्री पतिव्रता है, तिसके सहस्र भर्त्ता एक कालविषे कैसे होवैंगे अरु अष्टम प्रश्न यह है कि एक पुरुष था, तिसको किसीने वर दिया कि तू जाकरि मृतक होय सप्त द्वीपका राज्य करु, अपर किसीने शाप दिया कि तेरा जीव अपने ही गृहविषे रहैगा, मृतक होय बाहिर न जावैगा, यह दोनों एक ही कालविषे कैसे होवैंगे अरु नवम प्रश्न यह है कि एक काष्ठका स्तंभ था तिसको एकने कहा, स्वर्णका हो जावैगा, वह स्वर्णका हो गया, सो स्वर्ण कैसे उत्पन्न भया, तिसका कारण कोऊ न था, कारणबिना कार्य कैसे उत्पन्न

भया ? जैसा अन्नका बीज होता है, तैसा ही अन्नकार्य उत्पन्न होता है अपर नहीं उगता, तौ काष्ठते स्वर्ण कैसे उत्पन्न भया अरु जो कहौ, संकल्पकरि उपजा तौ हम भी संकल्प करते हैं, हमारा कार्य ऐसे होवै, वह क्यों नहीं होता, ताते जाना जाता है कि संकल्पते भी उत्पन्न नहीं होता. हे मुनीश्वर ! जिस प्रकार यह वृत्तांत है सो कहो अरु एक कहते हैं, कि आगे असत् ही था तौ असत्ने जगत्की उत्पत्ति कैसे भई, यह मुझको संशय है; तिसको दूर करहु जो कोऊ संतके निकट आनि प्राप्त होता है, सो निष्फल नहीं जाता ताते कृपा करि कहौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० राजप्रश्नवर्णनं नाम त्र्यधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०३ ॥

चतुरधिकत्रिशततमः सर्गः ३०४.

प्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! जब इस प्रकार उसने मुझको संशयका समूह कहा तब मैं उसको कहत भया कि हे राजन् ! जेते कछु तुझको संशय हैं सो मैं सब दूर करूंगा, जैसे संपूर्ण अंधकारको सूर्य नाश करता है तैसे मैं संशय नाश करौंगा. हे राजन् ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब ब्रह्मरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है,जब तिसविषे चित्त ऐसे फुरता है तब वही चित्त संवेदन जगद्रूप हो भासता है, ताते जो कछु आकार भासते हैं सो सब चिन्मात्ररूप हैं, न कोऊ कार्य है न कारण है अरु जो तू प्रत्यक्षप्रमाणकरि संशय करै कि जो सब चिन्मात्ररूप है, तो यह शरीर जब मृतक हो जाता है, तब चेतना क्यों नहीं चाहिये, जो तिस कालमें भी इसविषे जानना होवै, तौ हे राजन् ! जब जाग्रत्का अंत होता है अरु स्वप्न आया नहीं तब शुद्ध चिन्मात्र रहना है, जब तिसविषे स्वप्नसृष्टि भासि आती है, तिस सृष्टिविषे कई चेतन भासते हैं, कई मृतक, कई जड भासते हैं, स्थावर जंगम नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है परंतु अपर तौ कछु नहीं,

वही चिन्मात्रस्वरूप है, वही अनुभवरूप हो भासती है, कहूँ चेतन बोलते चालते भासते हैं परंतु वही है, जो चेतनता न होती तौ भासते कैसे, जाते भासते हैं ताते सब चेतन हैं, तैसे इस जगतविषे कहूँ बोलते चालते भासते हैं, कहूँ शव भासते हैं परंतु वही चिन्मात्रसत्ता है, जैसा जैसा संकल्प तिसविषे फुरता है तैसा तैसा हो भासता है. हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलयते सृष्टि उत्पन्न भई थी तैसे उत्पत्ति होती है, यह सृष्टि किसीका कार्य नहीं अरु किसीका कारण भी नहीं, विनाकारण उपजी भासती है. हे राजन्! जो महाप्रलयविषे शेष रहता था सो चिन्मात्र है, तिस चिन्मात्र सत्तासों जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मविराट् रूप होकरि स्थित भई, तिसने जगत्कल्पना करी है तिसविषे नीति रची है, कि यह पदार्थ इस प्रकार है, तैसे चित्त संवेदनविषे दृढ होकरि भासा है, तिसका नाम जगत है, वही आत्मसत्ता किंचनरूप होकरि जगत्रूप हो भासती है. हे राजन्! जैसे तेरे संकल्पकी आदि अरु स्वप्नसृष्टिकी आदि शुद्ध आत्मसत्ता थी, वही फुरणेकरिकै पदार्थरूप हो भासती है तैसे यह जान, अपर न कोऊ कार्य है, न कोऊ कारण है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण होती है, तैसे यह जगत अकारण है, जो आदि अंतते विचारके रहित है अरु वर्त्तमान प्रत्यक्षप्रमाणको मानते हैं तिनको कार्य कारण प्रत्यक्ष भासते हैं, तिनके वचन भी निरर्थक हैं, जैसे अंधकूपके दर्दुर शब्द करते हैं, तैसे वह भी निरर्थक प्रत्यक्षप्रमाणकरि कार्यकारणके वाद करते हैं, तिनको हमारे वचन सुननेका अधिकार नहीं अरु हमको भी तिनके वचन सुनने योग्य नहीं. हे राजन्! जिस शास्त्रके श्रवणकरि अरु जिस गुरुके मिलनेकरि संपूर्ण संशय निवृत्त न होवैं, तिस शास्त्र अरु गुरुका कहना भी अंधकूपके दर्दुरवत व्यर्थ है, जो परमार्थ सत्ताते विमुख हुए हैं तिनको यह भ्रम अपनेविषे भासता है, शरीरके मृतक हुए आपको मरता जानते हैं कि मैं मुआ हौं, बहुरि वासना अनुसार शरीर उपजता जीता है, तब मानता है कि अब मैं उपजा हौं, बहुरि अपने पुण्य पाप कर्मका अनुभव करता है, जैसे स्वप्नविषे अपने साथ शरीर देखता है, तैसे परलोकविषे अपने साथ

शरीर भासि आता है, तैसे यह शरीर भी भासि आया है; न कोऊ इसका कारण है, न पांचभौतिक है, न इसका शरीर है न किसी कारणते भूत उपजे हैं, अपनी कल्पना आकाररूप होकरि भासती है; अपर आकार कोऊ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; जैसा संकल्प तिसविषे दृढ होता है, तैसा पदार्थ भासि आता है. हे राजन् ! तू इस जगत्को सत् मानता है, तो सब कछु सिद्ध होता है, शरीर भी है, परलोक भी है, नरक स्वर्ग भी हैं, जैसा यह लोक है, तैसा परलोक है, जो यह लोक निश्चयविषे सत् है तौ वह लोक भी सत् ही भासैगा, जैसा कर्म करैगा, तैसा फल भोगैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० प्रश्नोत्तरवर्णनं नाम चतुरधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०४ ॥

पंचाधिकत्रिशततमः सर्गः ३०५.

द्वितीयप्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे राजन् ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब संकल्पमात्र है, जैसे कोऊ बालक अपने मनविषे वृक्षको रचै, तिसविषे फूल फल टास कल्पे सो संकल्पमात्र हैं, तैसे यह जगत् संवेदनरूप ब्रह्माने कल्पा है, तिनके मनविषे फुरता है सो संकल्परूप है, जैसे उसने संकल्प किया है तैसे ही स्थित है, जैसे तिसविषे क्रम रचा है जो इस प्रकार यह पदार्थ होवैगा सो तैसे ही स्थित भया है, देश काल पदार्थ तैसे ही स्थित हैं, इसका नाम नीति है. हे राजन् ! तुझने प्रश्न किया कि पुरुष अरूप है अरु दूर है तिसके अर्थ किसीने दिया, तिसको कैसे पहुँचता है अरु स्वरूप अरूपका कैसे संयोग है जो कोऊ शुद्ध संवेदन पुरुष हैं तिनको सब पदार्थ निकट भासते हैं अरु जो कोऊ पुरुष मनोराज्य कल्पता है तिसविषे बडा देश रचै सो दूरते दूर मार्ग हैं, तौ जो उस देशके वासी हैं, तिनको देशकी अपेक्षाकरि दूसरा देश दूरते दूर है, परंतु जिसका मनोराज्य है तिसको तौ सब निकट है अपना आप ही है,

तिस प्रकार जो शुद्ध संवेदनरूप है तिसके अर्थ जो कोऊ ईश्वर अर्थ अथवा देवताके अर्थ देता है तिसको निकटते निकट सब अपनेविषे भासता है, आदि नीति इसी प्रकार हुई है जो शुद्ध संवेदनको सब अपने निकटते निकट ही भासे काहेते कि सब संकल्प है, जैसी रचना संकल्पविषे रचती है तैसे होती है, संकल्पविषे क्या नहीं होता अरु स्तंभका प्रश्न जो तुझने किया है काष्ठका स्वर्ण कैसे होता है सो सुन. हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्मा है तिसने अपने मनोराज्यविषे नीति करी है जो तपादिककरिकै इसका वर अरु शाप सिद्ध होता है, उसके कहेते जो काष्ठका स्तंभ स्वर्ण हो गया, तौ तू विचारकारि देख कि इस कारणते काष्ठका स्वर्ण भया है सो संकल्पमात्र है जो संकल्पते इतर भी कछु होता तौ काष्ठका स्वर्ण न होता अरु यह सर्व विश्व संकल्परूप है; जैसा संकल्प दृढ होता है तैसा ही हो भासता है, जैसे तू अपने मनोराज्यविषे संकल्प करै है कि यह ऐसे रहै अरु जो इसते अपर प्रकार करै तौ अपर हो जावै सो होता है क्यों, तैसे वर अरु शाप भी अपर प्रकार हो जाते हैं, न अपर कोऊ जगत् है न कार्य है न कारण है वही आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, जैसे संकल्प जिसविषे फुरता है तैसे हो भासता है अरु तू पूछता है असतते बहुरि जगत् कैसे उत्पन्न होता है, जो आप ही न होवै, तिसते जगत् कैसे प्रगटै? हे राजन्! असत् इसीका नाम है, जो जगत् असत् था, तिस श्रुतिने असत् कहा, जो आदि असत् था सो असत्ता जगत्की कही है, आत्मा तौ असत् नहीं होता, सबका शेषभूत आत्मा है, जब तिसविषे संवेदन फुरती है. तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप हो जाता है परंतु तिस संवेदनके फुरणे अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, तिसका अभाव नहीं होता, जलविषे तरंग उपजते हैं बहुरि लीन हो जाते हैं परंतु तिनके उपजने मिटनेविषे जल ज्योंका त्यों है, तरंग तिसका आभास फुरते हैं, जैसे तू मनोराज्यकारि एक नगर कल्पै बहुरि संकल्प छांडि देवै, तब संकल्परूप नगरका अभाव हो जाता है, परंतु सदा अविनाशी रहता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि उपजती भी है अरु लीन भी हो जाती है परंतु अधिष्ठान ज्योंका त्यों है. हे! राजन् जैसे रत्नका प्रकाश किरण

उठती है अरु लीन भी हो जाती है रस परंतु ज्योंका त्यों होता है, तैसे आत्मा विश्वके भाव अभावविषे ज्योंका त्यों होता है, तिसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है, उपजता है तब उत्पत्ति भासती है, मिटता है तब प्रलय हो जाती है, परंतु उभय आभास हैं, जैसे वायु फुरती है तब भासती है, ठहरि जाती है तब नहीं भासती, परंतु वायु एक है, तैसे आत्मा एक ही है, फुरणेका नाम उत्पत्ति है, अफु-रणेका नाम जगत्की प्रलय है, सो सर्व चिन्मात्ररूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० द्वितीयप्रश्नोत्तरं नाम पंचाधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०५ ॥

षडधिकत्रिशततमः सर्गः ३०६.

राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे राजन् ! तुझने प्रयागके दो पुरुषका प्रश्न किया है तिसका उत्तर सुन, जो उसका शत्रु बन गया है सो उसका पाप था अरु जो उसका मित्र बन गया था सो उसका पुण्य था, प्रयाग तीर्थ धर्मक्षेत्र था. हे राजन् ! पापरूप वासनाके अनुसार तिसको मृत्यु भासती है अरु पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रुको रोकता है, पुण्यरूपी तीर्थके बल करिकै हृदयसों अल्परूपी पाप वेगिकरि भासता है अरु जब उसको मृत्यु आती है तब आपको मरता जानता है कि मैं मुआ हौं, भाई जन कुटुंबी रुदन करते हैं, जब अपनी ओर देखता है तब जानता है कि मैं तौ मुआ नहीं जब मृतक स्वर्गकी ओर देखता है तब आपको मुआ जानता है भाई जन रुदन करते हैं, इस प्रकार उसको मरणा भासता है, भाई-जन जलावने चले हैं, अग्निविषे जलता देखता है कि अग्निविषे इनने मुझको पाया है, मैं जलता हौं, जब बहुरि पुण्यकी ओर देखता है, तब जानता है कि मैं मुआ नहीं जीता हौं, जब बहुरि पापकी ओर देखता है तब जानता है कि मैं मुआ हौं मुझको यमदूत ले चले हैं, यह परलोक यह इहां सुख दुःख भोगता है, जब बहुरि पुण्यकी ओर देखै तब जानै

कि मैं मुआ नहीं जीता हौं, यह मेरे भाई जन बैठे हैं, यहां मेरा व्यवहार चेष्टा होता है इस प्रकार उभय अवस्थाको एक पुरुष देखता है, जैसे संकल्प-पुरविषे उभय अवस्था देखै, जैसे स्वप्ननगरविषे उभय अवस्था देखै एकही पुरुष नाना प्रकारकी चेष्टा देखता है कहूँ जीता देखता है, कहूँ मृतक देखता है, कहूँ व्यवहार, कहूं निर्व्यापार देखता है इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा एक ही पुरुषविषे होती है, तैसे एक ही पुरुषको पुण्यपापकी वासना-करि जीना मरणा भासता है. हे राजन् ! यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प दृढ होता है तैसा रूप हो भासता है, परलोक जाना भी अपने वासनाके अनुसार भासता है अरु जो कछु उसके निमित्त बांधव पुत्र देते हैं सो पुत्र बांधव भी उसकी पुण्य पाप वासनाकरि स्थित भये हैं, जो कछु इसके निमित्त करते हैं तिनकरि यह सुख दुःख नरक स्वर्ग भोगते हैं, अपर कोऊ बांधव पुत्र नहीं, उसकी वासना ही नानाप्र-कारके आकारको धारिकरि स्थित भई है. हे राजन् ! सहस्र ही चंद्रमाका तुझने प्रश्न किया है, तिसका उत्तर सुन, सहस्र इसी आकाशविषे होते हैं, अपनी अपनी वासनाकरि कलासंयुक्त चंद्रमा हो विराजते हैं परंतु एकको दूसरा नहीं जानता, परस्पर अज्ञात हैं, जो अंतवाहक दृष्टिकरि देखै तिसको भासते हैं. हे राजन् ! जो कोऊ ऐसे भावना करै कि मैं उसके मंडलको प्राप्त होऊं तौ तत्कालही जाय प्राप्तहोता है, जैसे एक ही मंदिर-विषे बहुत मनुष्य सोये हैं, तिनको अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है, सो अन्योन्य विलक्षण हैं, एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता, तैसे एक आकाशविषे सहस्र चंद्रमा बनते हैं, जैसे इंद्र ब्राह्मणके दश पुत्र दश ब्रह्मा हो बैठे, तैसे जिसकी तीव्र भावना कोऊ करता है सोई हो जाता है, जो कोऊ भावना करै, हम इसी मंदिरविषे सप्तद्वीपका राज्य करैं तब हो जाता है काहेते कि अनुभव रूप कल्पवृक्ष है, जैसी तीव्र भावना तिसविषे होती है, तैसी हो भासती है, वरके वशते उस पुरुषको सप्तद्वीपका राज्य प्राप्त भया अरु शापके वशते उसका जीव उसी मंदिरविषे रहा, तिस मंदिरही-विषे द्वीपका राज्य करत भया, जैसे स्वप्नविषे राज्य करै है तैसे अपने मंदिर-विषे अपनी संवेदन ही सृष्टिरूप हो भासती है, इस प्रकार जो एक स्त्रीकी

भावना करिकै सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे हैं कि हम तिसके भर्ता होवें, सो भी हो जाते हैं. हे राजन्! उनकी जो तीव्र भावना है, वही स्त्रीका रूप धारिकरि उनको प्राप्त होवेगी; वह जानैंगे कि वही स्त्री हमको प्राप्त भई है, यह जगत् केवल संकल्पमात्र है, संकल्पते इतर कछु वस्तु नहीं सब चिदाकाशरूप है; अपने अनुभवकरि प्रकाशता है, जैसे तिसविषे संकल्प फुरता है तैसे हो भासता है, पृथ्वी, जल, तेजआदिक तत्त्व कोऊ नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार स्थित है, सो परम शांत है, निराकार निर्विकार अद्वैत एकरूप है. राजोवाच-- हे मुनीश्वर! जगत्के आदि जो आत्मसत्ता थी सो किस आकाररूप देहविषे स्थित थी, देह विना तौ स्थित नहीं होती, जैसे आधार विना दीपक नहीं रहता, आधार होता है तब तिसविषे जागता है, तैसे आत्मसत्ता किसविषे स्थित थी? वसिष्ठ उवाच--हे राजन्! जेते कछु आकार तुझको भासते हैं, जिनको देखिकरि तुझने प्रश्न उठाया है सो है नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, जिन भूतोंकरि देह बना भासता है, सो भूत भी मृगतृष्णाके जलवत् हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र है, जैसे सीपीविषे रूपा, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र है, अत्यंत अभाव है, तैसे यह भूताकार ब्रह्मविषे भ्रमकरि भासते हैं, अत्यंताभाव है, कछु बने नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है अरु तुझने पूछा था कि ज्यों स्वयंभू अपने आपते उपजते हैं तौ अब क्यों नहीं होता सो हे राजन्! कई इसके सदृश पडे उत्पन्न होते हैं, अनेक जो सृष्टि हैं वास्तवते कछु उपजी नहीं, कबहूँ कछु नानाप्रकार भासता है, परंतु नानाप्रकार नहीं भया; जैसे स्वप्नविषे सदा तू देखता है, जो अद्वैत अपना आपही नानारूप हो भासता है, पर्वत ऊपर दौडता फिरता है, सो किसी शरीरकरि दौडता है अरु क्या रूप होता है, जैसे वह पर्वत भी आकाशरूप है, शरीर भी आकाशरूप होता है, भ्रमकरि पिंडाकार भासता है, तसे यह जगत् भी आकाशरूप है, भ्रमकरि पिंडाकार भासता है. हे राजन्! तू अपने स्वभावविषे स्थित होकरि देख यह जगत् सब तेरा अनुभव आकाश है, स्वप्नका दृष्टांत भी मैंने तेरे जतावने निमित्त कहा है,

स्वप्न भी कछु हुआ नहीं सदा आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब तिसविषे आभास संवेदन फुरती है तब वही जगत्‌रूप हो भासती है, जब आभास संकल्प मिट जाता है तब प्रलयकाल भासता है, वास्तव न कोऊ उत्पत्ति होती है, न प्रलय भई है ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता स्थित है, जैसे एक निद्राके दो रूप होते हैं, एक स्वप्न, दूसरी सुषुप्ति, जो जाग्रत्‌विषे दोनों आकाशमात्र होती हैं, तैसे आभासकी दो संज्ञा होती हैं, एक जगत् और दूसरी महाप्रलय, आत्मरूपी जाग्रत्‌विषे दोनोंका अभाव हो जाता है जो हे रामजी ! तू स्वरूपविषे जागिकरि देख जेती कछु कलना है तिसको त्यागिकरि देखु, सब आत्मरूप है, अपर कछु नहीं. हे रामजी ! इस प्रकार मैं राजाको कहिकरि उठि खडा हुआ, उसने भले प्रकार प्रीतिसंयुक्त पूजन किया, जब पूजन करिचुका तब मैं जिस कार्यके लिये आया था सो कार्य करि स्वर्गको चला गया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनं नाम षडधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०६ ॥

सप्ताधिकत्रिशततमः सर्गः ३०७.

पूर्वरामकथावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह जगत सब चिदाकाशरूप है, अपर द्वितीय कछु बना नहीं. राम उवाच-हे भगवन् ! तुम कहते हो सब चिदाकाश है बना कछु नहीं, यह तो सिद्ध साध्य विद्याधर लोकपाल देवता इत्यादिक लोक भासते हैं, लोक अरु लोकपाल कछु बने क्यों नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह जो सिद्ध साध्य विद्याधर देवता इनते लेकरि जो लोक अरु लोकपाल हैं सो वस्तुतः कछु उपजे नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है अरु यह जो प्रत्यक्ष भासते हैं,शुद्ध संकल्पकरि रचे हुए हैं परंतु वस्तुतः कछु बने नहीं, भ्रमकरि इनकी सत्यता भासती है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी, जैसे जेवरीविषे सर्प, जैसे सीपीविषे रूपा, जैसे संकल्पनगर,तैसे आत्माविषे यह जगत् है.

हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी रचना भासती है परंतु कछु हुआ नहीं तैसे यह जगत् है, जो पुरुष इसको देखिकरि सत् मानता है सो सम्यक्दर्शी नहीं, जो आत्माको देखता है सोई सम्यग्दर्शी है. हे रामजी ! यह लोक अरु लोकपाल जगत्सत्ताविषे ज्योंके त्यों हैं, जैसे स्थित हैं तैसे ही हैं अरु परमार्थते कछु उपजे नहीं, अनुभवसत्ता ही संवेदनकरि दृश्यरूप हो भासती है, द्रष्टा ही दृश्यरूप हो भासता है परंतु स्वरूपते इतर कछु न हुआ, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं. हे रामजी ! अरु तू एक अपर दृष्टांत सुन, स्वप्नविषे जैसे अब हम हैं तैसे एक आगे भी चित्तप्रतिमा हुई थी, पूर्व एक कल्पविषे तुम अरु हम हुए थे, तू मेरा शिष्य था अरु मैं तेरा गुरु था, एक वनविषे तैंने मुझसे प्रश्न किया. शिष्य उवाच-हे भगवन् ! एक मुझको संशय है सो नाश करो, कि महाप्रलयविषे नाश क्या होता है अरु अविनाशी क्या रहता है ? गुरुरुवाच-हे तात ! जेता कछु शेष विशेषरूप जगत् है सो सब नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नका नगर सुषुप्तिविषे लीन हो जाता है तैसे सब जगत् लीन हो जाता है, निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है अपर क्रिया काल कर्म सब नाश हो जाते हैं, आकाश भी नाश हो जाता है, पृथ्वी आप तेज वायु पहाड नदियां इनते लेकरि जो जगत् है क्रिया काल द्रव्यसंयुक्त सो सब नाश हो जाता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र यह जो कार्यके कारण हैं तिनका नाम भी नहीं रहता, संवेदनशक्ति जो है चेतनका लक्षणरूप सो भी नहीं रहती, अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाश ही शेष रहता है. शिष्य उवाच-हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत् होती है तिसका नाश नहीं होता अरु जो असत् होती है सो आभासरूप है, यह जगत् तौ विद्यमान भासता है सो महाप्रलयविषे कहां जावैगा. गुरुरुवाच-हे तात ! जो सत् है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो असत् है तिसका भाव नहीं, सो जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब भ्रममात्र है इसविषे कोऊ वस्तु सत् नहीं भासती है परंतु स्थित नहीं

रहता, जैसे मृगतृष्णाका जल स्थित नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे तरुवरे भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् जो भासता है सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भी भासता है परंतु भ्रममात्र है, तैसे यह जगत् भ्रमरूप जान. हे तात ! आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे जाग्रत्का अभाव होता है अरु जाग्रत्‌विषे स्वप्नका अभाव होता है, सो सृष्टि कहां जाती है, जैसे जाग्रत्‌विषे स्वप्नसृष्टिका अभाव हो जाता है, तैसे महाप्रलयविषे इसका अभाव हो जाता है. शिष्य उवाच–हे भगवन् ! यह जो भासता है सो क्या है अरु जो नहीं भासता सो क्या है इसका रूप क्या है अरु चिदाकाशते कैसे हुआ है ? गुरुरुवाच–हे शिष्य ! जब शुद्ध चिदाकाशविषे किंचन संवेदन फुरती है तब जगत्‌रूप हो भासती है, ताते इसका रूप भी चिदाकाश ही है, चिदाकाशते इतर कछु नहीं, सृष्टि अरु प्रलय दोनों उसीके रूप हैं, जब संवेदन फुरती है अरु जब संवेदन अफुर होती है तब प्रलयरूप हो भासती है, सो दोनों उसके रूप हैं, जैसे एक ही वपुविषे दो स्वरूप हैं, दंतकरिकै शुक्ल लगता है अरु केशकरि कृष्ण लगता है, तैसे आत्माविषे सर्ग अरु प्रलय दो रूप होते हैं सो दोनों आत्मरूप हैं, जैसे एक ही निद्राकी दो अवस्था होती हैं, एक स्वप्न अरु दूसरी सुषुप्ति अरु जाग्रत्‌विषे उभय नहीं, तैसे निद्रारूप संवेदनविषे सर्ग अरु प्रलय भासते हैं अरु जाग्रत्‌रूप आत्माविषे दोनोंका अभाव है. हे तात ! जो कछु तुझको भासता है सो सब चिदाकाशरूप है अपर कछु नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव ही जगत्‌रूप हो भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है. शिष्य उवाच–हे भगवन् ! जो इसी प्रकार है, जो द्रष्टा ही दृश्यरूप हो भासता है, तौ अपर जगत् तौ कछु न हुआ क्यों, सर्व वही है. गुरुरुवाच–हे तात ! इसी प्रकार है अपर जगत् वस्तु कछु नहीं, चिदाकाश जगत्‌रूप हो भासता है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है अपर कछु नहीं, काहेते जो सब उसीका किंचन है, सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार सृष्टि होकरि फुरती है अरु किसीविषे

किसी काल किसी प्रकार कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, जो कछु जगत् भासता है सो वही रूप जान, जिसको तू सर्ग कहाता है जिसको तू प्रलय कहता है सो सब आत्मसत्ताके नाम हैं, वही सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार स्थित है, एक ही जो परमदेव है सोई घटपटरूप हुआ है पर्वतरूप, पटरूप, जल, तृण, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, स्थावर, जंगम, सत्, असत्, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्ति, अमूर्ति, बंध, मोक्ष इनते आदि लेकरि जेते कछु शब्द अर्थकरिकै पदार्थ सिद्ध होते हैं सो सर्व आत्मरूप हैं, सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मा ही है अरु जिसविषे सर्वदाकाल सर्वप्रकार नहीं सो भी आत्मा ही है, सदा ज्योंका त्योंही है, जैसे स्वप्नविषे सब कछु भासता है सो सब कछु आत्मसत्ता ही है अरु दूसरा कछु बना नहीं. हे तात! तृण ही कर्त्ता है, तृण ही भोक्ता है तृण ही सर्वेश्वर है, घट कर्त्ता है घट भोक्ता है, घटही सर्वका ईश्वर है, पट कर्त्ता है पट भोक्ता है पट ही परम ईश्वर है, नर कर्त्ता है नर भोक्ता है नर ही सर्वका ईश्वर है, इसी प्रकार एक एक वस्तुके नाम करिकै जो वस्तु है सो कर्त्ता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है, ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत जो कछु जगत् भासता है सो सर्व आत्मरूप है, क्षय अरु उदय अंतर बाहर कर्त्ता भोक्ता सब ईश्वर है, सो विज्ञानमात्र है, कर्त्ता भोक्ता वही है अरु न कर्त्ता है न भोक्ता है विधिमुखकरिकै भी वही है अरु निषेध भी वही है, शुद्ध दृष्टि करिकै सब चिदात्मा ही भासता है अरु सर्व दुःखते रहित है अरु जिनको आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त भई तिनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है सो कैसा जगत् है, जो अनुभवते इतर कछु नहीं, ऐसे जानिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी! इस प्रकार मैंने पूर्व तुझको कहा था परंतु तिसकरि तू बोधको न प्राप्त भया, सो अभ्यासकी ऊनताकरिकै वही संस्कार अब तुझको आनि प्राप्त भया, तिस कारणते अब तू जागा है. हे रामजी! अब तू अपने स्वरूपविषे स्थित भया है, ताते कृतकृत्य हुआ है अपनी राज्यलक्ष्मीको भोगु अरु प्रजाकी पालना करु अरु अंतरते आकाशवत् निर्लेप रहहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० पूर्वरामकथावर्णनं नाम सप्ताधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०७ ॥

अष्टाधिकत्रिशततमः सर्गः ३०८.

उत्साहवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच-हे भारद्वाज ! जब वसिष्ठजी इसी प्रकार रामजीको कहि रहे तब आकाशविषे जो सिद्ध देवता स्थित थे सो बडे फूलकी वर्षा करने लगे, मानौ मेघ बरफकी वर्षा करते हैं, मानौ आकाश कंपायमान हुआ है, तिसते तारे गिरते हैं, जब पुष्पकी वर्षा कर चुके तब राजा दशरथ उठि खड़ा हुआ, अर्घ्य पाद्यकरिकै पूजन किया अरु हाथ जोडिकरि कहने लगा. राजा दशरथ उवाच-बडा कल्याण हुआ, बडा हर्ष हुआ, हे मुनीश्वर ! तेरे प्रसादकरि हम आत्मपदको प्राप्त हुए हैं; अब कृतकृत्य हुए हैं, अब चित्तका वियोग हुआ है, तिसकरि दृश्य फुरणेका भी अभाव भया है, हम अचेत चिन्मात्र हैं, परमपदको प्राप्त भये हैं, सब संताप मिटि गये हैं, जो संसाररूपी अंधमार्ग था, तिसते थके हुए अब विश्रांतिको प्राप्त भये हैं, अब मैं पहाडकी नाईं अचल हुआ हौं, सब आपदाको तरि गया हूं, जो कछु जानना था सो जान गया हौं हे मुनीश्वर ! तुमने बहुत युक्ति दृष्टांतकरिकै जगाया है, शून्यके दृष्टांत अरु सीपीविषे रूपा, मृगतृष्णाका जल, जेवरीविषे सर्प, आकाशविषे दूसरा चंद्रमा अरु बेडीकरिकै नदीकिनारे चलते भासते हैं, जलविषे तरंग, स्वर्णविषे भूषण, वायुका फुरणा, गंधर्वनगर, संकल्पपुर इनते आदिलेकरि दृष्टांत कहे हैं, तिनकरिकै हमने जाना है कि आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, तुम्हारी कृपाते ऐसे जाना है. वाल्मीकिरुवाच - जब इस प्रकार दशरथने कहा तब रामजी उठा, इस प्रकार हाथ जोडिकरि कहने लगा राम उवाच- हे मुनीश्वर ! तुम्हारी कृपाकरि मेरा मोह नष्ट भया है, अब मैं परमपदको प्राप्त हुआ हौं, किसीविषे मुझको न राग है, न द्वेष है, परमशांतिको प्राप्त भया हौं, न अब मेरे तांई किसी करणेकरि अर्थ है, न अकरणेविषे कछु अनर्थ है, मैं परम शांतपदको प्राप्त हुआ हौं. हे मुनीश्वर ! तेरे वचनका मैं स्मरण करिकै आश्चर्यको प्राप्त होता हौं अरु हर्षित होता हौं, संदेह नष्ट हो गये हैं अब मुझको अपर नहीं भासता

सर्व ब्रह्म ही भासता है. लक्ष्मण उवाच- हे भगवन् ! मैं सन्तोंके वचन इकट्ठे करता रहा था अरु संपूर्ण जो मेरे पुण्य थे सो सब इकट्ठे भये थे, सबका फल अब फला है, उदय हुआ है, सर्व संशयरहित परमपदको प्राप्त भया हौं, तुम्हारी कृपाके जे कोऊ वचन हैं सो चंद्रमाकी किरणवत् शीतल हैं तिसते भी अधिक हैं, तिसकरिकै मैंने परमशांति पाई है, दुःख संताप सर्व नष्ट भये हैं. शत्रुघ्न उवाच-हे मुनीश्वर ! जरा अरु मृत्युका जो कोऊ भय था सो तुमने दूर किया है, अपनी अमृतरूपी वचनोंका सुधा पान कराया है, अब हमारे संशय सब नष्ट भये हैं, हम आत्मपदको प्राप्त भये हैं, हमारे जो कोऊ चिरकालके पुण्य थे तिनका फल आज पाया है. विश्वामित्र उवाच-हे मुनीश्वर ! सर्व तीर्थके स्नान कियेते ऐसा पवित्र नहीं होता, अपर कर्मकरि भी ऐसा पवित्र नहीं होता, जैसे तुम्हारे वचनों-करिकै पवित्र हुए हैं, आज हमारे श्रवण पवित्र हुए हैं. नारद उवाच-हे मुनीश्वर ! ऐसा मोक्षउपाय मैंने देवतोंकेविषे श्रवण नहीं किया, न सिद्धोंके स्थानविषे सुना है, न ब्रह्माके मुखते सुना है. हे मुनीश्वर ! तुमने पूर्ण उपदेश किया है, इसके श्रवण कियेते बहुरि संशय नहीं रहता. दशरथ उवाच-हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञान जैसी संपदा कोऊ नहीं, ताते तुमने परम संपदा हमको दी है, जिसके पायेते बहुरि किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रही, अब तौ हम अपने स्वभावविषे स्थित भये हैं, संपूर्ण कर्म हमको छांडि गये हैं अरु यह जो तुम्हारे वचन सुने हैं, सो हमारे बहुत जन्मके जो कोऊ पुण्य थे सो इकट्ठे आनि हुए थे तिनका यह फल अब आनि लगा है. राम उवाच-हे मुनीश्वर ! बड़ा हर्ष हुआ कि, सर्व संपदाका अधिष्ठान है सो प्राप्त हुआ है अरु सर्व आपदाका अंत भया है अरु ज्ञानते रहित अज्ञानी हैं सो बडे अभागी हैं, जो आत्म-पदको त्यागिकरि अनात्मपदार्थकी ओर धावते हैं, सो भी यत्नकरि प्राप्त होते हैं, तिनते विमुख होवै तब आत्मपद प्राप्त होवै, सो आत्मपदको पायकरि मैं शांतिवान् हुआ हौं, हर्ष शोकते रहित हुआ हौं अचलपद पाया है अरु अचिंत अविनाशी हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, तुम्हारी कृपाकरि आपको ऐसा जानत भया हौं. लक्ष्मण उवाच

हे मुनीश्वर! सहस्र सूर्य एकत्र उदय होवैं, तौ भी हृदयके तमको दूर नहीं करते सो तम तुमने दूर किया है अरु सहस्र चंद्रमा इकट्ठे उदय होवैं तौ अंतरकी तप्तको निवृत्त नहीं करि सकते, तुमने संपूर्ण तप्त निवृत करी है, हम निःसंताप पदको प्राप्त भये हैं. वाल्मीकिरुवाच. हे-साधो! जब इस प्रकार सब कह रहे तब वसिष्ठजी कहत भये. हे रामजी! इस मोक्षउपाय कथाको सुनिकारि जेते कछु ब्राह्मण हैं तिनका यथायोग्य पूजन करहु अरु दान करहु, जो इतर जीव हैं सो भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजन करते हैं, तुम तौ राजा हौ, जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा तब राजा दशरथने उठिकारि दश सहस्र ब्राह्मण मथुरावासी विद्यावानोंको भोजन कराया, दक्षिणा वस्त्र भूषण घोडे गांव आदिक दिये, यथायोग्य पूजन किया वडा उत्साह हुआ, अंगना नृत्य करने लगीं नगारे सहनाई वाजित्र बाजे हैं, चक्रवर्ती राजा होकारि उत्साह करत भये, अबलग त्रिलोकका राजा है, इस प्रकार सप्त दिनपर्यंत ब्राह्मण अतिथि निर्धन सर्वका द्रव्यकरि पूजन किया, अन्न अरु वस्त्र आदिककारि सबको प्रसन्न किया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० उत्साहवर्णनं नामाष्टाधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०८ ॥

नवाधिकत्रिशततमः सर्गः ३०९.

मोक्षोपायवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे भारद्वाज! इस प्रकार वसिष्ठ मुनिके वचन सुनिकारि रघुवंशी कृतकृत्य हुए, जैसे रामजी सुनिकारि संशयते रहित जीवन्मुक्त हुए विचरे हैं, तैसे तुम भी विचरौ, यह मोक्षउपाय ऐसा है जो अज्ञानी श्रवण करै सो भी परमपदको प्राप्त होवै, तुम्हारी क्या बात है, तुम तौ आगे भी बुद्धिमान् हौ अरु जिस प्रकार मुझको ब्रह्माजीने कहा था सो मैंने तुमको सुनाया है, जैसे रामजी आदिक कुमार अरु दशरथ आदिक राजे जीवन्मुक्त होकारि विचरे हैं तैसे तुम भी विचरौ, इनविषे मोह भी दृष्टि आया है परंतु स्वरूपते चलायमान नहीं

भये तैसे ही विचरौ अरु ज्ञान जैसा सुख अपर कोऊ नहीं अरु अज्ञान जैसा दुःख कोऊ नहीं, इसते अधिक कैसे कहिये. यह जो मोक्ष उपाय मैंने तुझको कहा है सो परम पावन है अरु संसारसमुद्रते पार करनेहारा है, दुःखरूपी अंधकारको नाशकर्त्ता सूर्यरूप हैं, सुखरूपी कमलकी खानका ताल है, जो पुरुष इसका वारंवार विचार करे सो तौ महामूर्ख होवे तौ भी शांतपदको प्राप्त होवै, जो कोऊ इस मोक्ष उपायको पढैगा, कथा करैगा अरु सुनैगा अरु लिखैगा अरु लिखकरि पुस्तक देवैगा, जो हृदयविषे कामना होवैगी तौ ब्रह्मलोकको प्राप्त होवैगा तथा राजसूययज्ञके फलको पावैगा अरु बहुरि विचारकरि ज्ञानको पावैगा अरु मुक्त होवैगा. हे अंग! यह जो मोक्ष उपाय है सो बडा शास्त्र है, इसविषे बडी कथा है, नाना प्रकारकी युक्तियां हैं, तिन कथा अरु युक्तिकरिकै वसिष्ठजीने रामजीको जगाया है सो मैंने तुझको सुनाया है, अपने उपदेशकरि तिसको जीवन्मुक्त किया अरु कहत भया कि तुम राज्यलक्ष्मी भोगहु, सोई मैं तुझको कहता हौं, जीवन्मुक्त होकरि अपने तप कर्मविषे सावधान होवहु अरु निश्चय आत्मसत्ताविषे रखना, इस उपदेशकरिकै रघुवंशी कृतकृत्य भये हैं, सो मैंने तुझको ज्योंका त्यों कहा है इस निश्चयको धारिकरि कृतकृत्य होहु, जितने इतिहास कथा हैं तिनके भिन्न भिन्न नाम सुनहु; वैराग्यप्रकरणविषे संपूर्ण रामजीके प्रश्न हैं अरु मुमुक्षुप्रकरणविषे शुकनिर्वाण ही कहा है अरु उत्पत्तिप्रकरणविषे यह अष्ट आख्यान कहे हैं-- एक आकाशजका १, दूसरा लीलाका २, तीसरा सूचीका ३, चतुर्थ इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका ४, पंचम कृत्रिम इंद्र अरु अहल्याका ५, षष्ठ चित्तोपाख्यान ६, सप्तम बालमीकिकी कथा ७, अष्टम सांबरका आख्यान ८. स्थित प्रकरणविषे चार आख्यान कहे हैं--एक भृगुके सुतका १, दूसरा दाम व्याल कटका २, तीसरा भीम भास दृढका ३, चतुर्थ दासुरका ४. उपशमप्रकरणविषे एकादश आख्यान कहे हैं--एक जनककी सिद्धगीता १; दूसरा पुण्यपावनका २, तीसरा बलको विज्ञानकी प्राप्तिका वृत्तांत ३, चतुर्थ प्रह्लादविश्रांति ४, पंचम गाधिका वृत्तांत ५, षष्ठ उद्दालक-

निर्वाण ६, सप्तम सुरगनिश्चय ७, अष्टम परघनिश्चय ८, नवम भासका ९, दशम विलाससंवादका १०, एकादश वीतवका ११. निर्वाणप्रकरणविषे सप्तविंशति आख्यान कहे हैं. भुशुण्डि वसिष्ठका १, महेश वसिष्ठका २, शिलाकोश ३, अर्जुनका उपदेश ४, स्वप्नव रुद्रका ५, वैतालका ६, भागीरथका ७, गंगाअवतारका ८, शिखरध्वजका ९, बृहस्पति कचप्रबोध १०, मिथ्यापुरुषका ११, भृंगीगणका १२, इक्ष्वाकुनिर्वाणका १३, मृग व्याधका दृष्टांत १४, बलि बृहस्पतिका १५, मंकी निर्वाणका १६, विद्याधरका १७, हरिणोपाख्यान १८, आख्यानोपाख्यान १९, विपश्चितका २०, शिवका २१, शिलाका २२, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका २३, कुंददंतका २४, महाप्रश्नोत्तरवाक्य २५, शिष्य गुरुका २६, महोत्सवग्रंथप्रशंसाफल २७. चतुष्टयप्रकरणविषे पंचाश आख्यान वर्णन भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे उ० वसिष्ठरामचंद्रसंवादे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम नवाधिकत्रिशततमः सर्गः ॥ ३०९ ॥

योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धं समाप्तम् ।
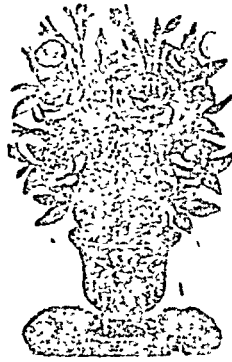
पता—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

तथा—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

विक्रय्य वेदान्तग्रन्थ-भाषा।

नाम पुस्तक.	की. रु. आ.
अनुभवप्रकाश-(वेदांत) योगेश्वर श्री १०८ वनानाथजी-कृत मारवाडी भाषा।	१-०
अभिलाखसागर-भाषा उदासीकृत	२-०
अध्यात्मप्रकाश-श्रीशुकदेवजी प्रणीत छंदोबद्ध	०-३
अमृतधारा--वेदान्त भाषाछन्दोंमें भगवानदास निरंजनीकृत--	०-१२
आत्मपुराण--भाषामें दशोपनिषदोंका भावार्थ श्रीसत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य चिद्घनानन्द स्वामीकृत	१६-०
आनन्दामृतवर्षिणी-आनन्दगिरि स्वामिकृत-गीताके कठिन शब्दोंका प्रतिपादन अर्थात् यह वेदान्तका मूल है.	१-०
एकादशस्कन्ध-भाषामें चतुरदासजी कृत	१-०
गर्भगीता-भाषा-श्रीकृष्णार्जुनसंवाद	०-१
गुप्तनाद--भाषा-मि० एनीबिसेण्टकृत-क्रिमेशन आदिका सार	०-२
चन्द्रावलीज्ञानोपमहासिन्धु-वेदान्तका सार राग रागिनियोंमें.	०-८
जीवब्रह्मशतसागर-भाषा-ज्ञानकी रोचक बातें.	०-३
तत्त्वानुसन्धान-भाषा-स्वामी चिद्घनानन्दकृत अर्थात् "अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ" वेदान्तकेसबग्रन्थ स्वयं ज्ञात होते हैं....	३-८
दशोपनिषद्-भाषामें--स्वामी अच्युतानन्दगिरिकृत	२-८
पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश-(कामलीवाले बाबाजी कृत)	५-०
प्रबोधचन्द्रोदयनाटक-(वेदान्त) भाषा गुलाबसिंहकृत.	१-८
प्रत्येकानुभवशतक--भाषा--यह वेदान्तका अनुभवदायक है.	०-५
ब्रह्मनिरूपण-ज्ञानांकुश-अथवा राम-अयन रामायण.	२-०
ब्रह्मज्ञानदर्पण-(अर्थात् ज्ञानकी आरसी.)	०-२
भावार्थसिन्धु-भाषावेदान्त.	१२-०
मोक्षगीता-इसमें सवालक्ष श्रीरामनाम लिखा गया है.	१-४

नाम पुस्तक.	की. रु. आ.
मोक्षगीता तथा विवेकवीरविजय--श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी लक्ष्मानन्दजीकृत.	०–२
मोक्षपन्थ--(गुलाबरायजीकृत)	१–०
योगवासिष्ठ बडा–भाषा–छः प्रकरणोंमें (खुला पत्रा)	१३–०
योगवासिष्ठ बडा–भाषा–छः प्रकरण २ जिल्दोंमें.	१६–०
योगवासिष्ठ–भाषा वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण–बडा अक्षर ग्ले०	१–४
योगवासिष्ठ–भाषामें- वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण-छोटा गुटका है.	०–८
योगवासिष्ठसार--संपूर्ण योगवासिष्ठका सार भाषामें वर्णित है.	२–८
विचारसागर–सटीक स्वामी निश्चलदासजी कृत.	२–०
विचारसागर–सटीक–पीताम्बरदासकृत भाषाटीकासहित.	६–०
विचारमाला–सटीक–स्वामी श्रीगोविन्ददास कृत सरल भाषाटीकासहित.	१–०
विचारचन्द्रोदय–सटिप्पण पं० पीताम्बरदासकृत बालबोधिनी टीका समेत	२–०
विज्ञानगीता--कविवर श्रीकेशवदासकृत अपूर्व वेदान्त है.	०–१२
वृत्तिप्रभाकर–स्वामी श्रीनिश्चलदासजीकृत षट्शास्त्रके मतसे भले प्रकार वेदान्तमत प्रतिपादन किया है.	३–८
श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकर–अर्थात् द्वैत वेदान्तका सार भाषामें अनेकानेक श्रुतिस्मृतिकी टिप्पणियोंसे विभूषित है.	२–०
सन्तप्रभाव--साधु श्रीमाणिकदासजीकृत.	०–६
सन्तोषसुरतरु.	०–६
स्वरूपानुसन्धान--वेदान्तियोंको अवश्य देखने योग्य.	३–०
सारुक्तावली--भाषा हरदयालकृत.	०–३
स्वानुभवप्रकाश--हनुमद्व्यासविरचित.	०–१॥
सुन्दरविलास--(ज्ञानसमुद्र ज्ञानविलास सुन्दराष्टकादिसहित) सटिप्पण ग्लेज कागज.	१–८
सूक्तावलीसंहिता–सारुक्तावली--भाषाटीकासहित.	०–६